Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
पूर्ण संख्या—१५८ *Central Provinces for use in Schools and Libraries* Reg. No. A.708

भाग २७ Vol. 27. मेष, वृष १६८४ संख्या १, २ No 1, 2

अप्रेल, मई १६२८

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग २७ | मेष, वृष संवत् १६८५ | संख्या १, २

हेकिल और जीव

[Haeckel and Soul]

(ले० श्री हरिवंश जी)

हम प्रायः लोगोंको ऐसा कहते हुए सुनते हैं, कि 'जीवोंपर दया करो', 'किसी जीव को कष्ट न दो', 'वर्षा ऋतुमें बहुतसे जीव जन्तु उत्पन्न होते हैं, इत्यादि इत्यादि। ऐसे ऐसे वाक्यों के सुनने से जीवका एक स्थूल चित्र हमारी आखोंके सामने आ जाता है। हमें प्रतीत होता है कि हम 'जीव' को देख और छू सकते हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि हम यहाँ जीव' से जीवका 'शरीर' समझते हैं। हम यहाँ अपनी भाषाके एक मुहाविरेके कारण जीवके समस्त शरीरको केवल 'जीव' कहकर सम्बोधित करते हैं। पर वास्तवमें हम जीवको देखने योग्य अथवा छूने योग्य वस्तु नहीं समझते। हम जब जीवके सूक्ष्म रूपका ध्यान करते हैं हम ऐसे ऐसे वाक्य कहते हैं 'उसके शरीरमें जीव नहीं है' 'बिना जीवके शरीर ऐसाही है जैसे बिना जलके नदी'। यहाँ हम पहलेकी तरह 'शरीर' की जगह 'जीव' का अथवा 'जीव' के स्थानपर 'शरीर' का उपयोग नहीं करते। जीव का अब कोई स्थूल रूप हमारे सामने नहीं आता। स्थूलका तो सारा ध्यान शरीर पर ही समाप्त हो जाता है और हम 'जीव' से कोई ऐसा पदार्थ समझने लगते हैं जो शरीरसे भिन्न है। प्रायः लोगोंका यही विचार है कि हमारे शरीरकी प्रक्रियाओंका कारण 'जीव' है, जीव जब तक हमारे शरीरमें रहता है हमारी सांस चलती है, हम उठते बैठते हैं, हाथ पैर हिलाते हैं और देखते हैं इत्यादि। हमने ऊपर केवल शारीरिक प्रक्रियाओंके लिये

ही जन साधारणके मतानुसार जीवकी आवश्यकता बतलायी है, क्योंकि मानसिक प्रक्रियायें बन्द हो जाने पर भी हम यह नहीं कहते कि मनुष्य मर गया। पागलों की मानसिक प्रक्रिया नाश सी हो जाती है पर हम उसे मरा हुआ नहीं कहते। इसी प्रकार मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए बहुतसे मनुष्योंकी मानसिक प्रक्रिया शारीरिक प्रक्रिया बन्द होनेके पहले बन्द हो जाती है, उदाहरणार्थ जब मनुष्य आंय बायं बकने लगता है अथवा किसीको पहचान नहीं सकता, परन्तु हम उसे मृतक नहीं समझते। शारीरिक प्रक्रिया और जीवका शरीरमें निवास—दोनों एक दूसरेसे इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं कि यह कहना असम्भव मालूम होता है कि जीव निकलनेपर शारीरिक प्रक्रिया बन्द होती है अथवा शारीरिक प्रक्रिया बन्द होनेपर जीव निकलता है। परन्तु साधारणतया लोगोंकी ऐसी धारणा है कि जीव निकलनेपर शारीरिक प्रक्रिया बन्द हो जाती है। सारांश यह है कि लोग जीवको शरीरसे एक भिन्न अदृश्य पदार्थ समझते हैं जो शरीरमें आकर इसे चेतनता देता है और जब शरीरसे निकल जाता है, शरीर एक मिट्टीके ढेलेकी तरह हो जाता है।

धार्मिक संसारमें हम इस 'जीव' के विषयमें नाना प्रकारकी विचित्र धारणायें सुनते हैं। यदि धार्मिक क्षेत्रसे हम ईश्वरको थोड़ी देरके लिये अलग करदें तो उसका केन्द्र केवल जीव ही रह जायगा। प्रत्येक धर्म्मोंमें जीवका एक मुख्य स्थान है। परन्तु 'जीव' के विषयमें जितनी धारणायें हम बहुतसे धर्म्मोंमें देखते हैं वे एक दूसरेसे भिन्न और कहीं कहीं तो सर्वथा विपरीत हैं। किसी धर्म्मकी दृष्टिसे 'जीव' अनादि और अनन्त है जैसे ईश्वर, किसीकी दृष्टिसे जीवकी उत्पत्ति तो होती है पर उसका अन्त नहीं होता, कोई कहते हैं कि जीव शरीरके साथ उत्पन्न होकर शरीरके साथ ही मर जाता है। ईसाई धर्म्मकी यह धारणा रही है कि मनुष्योंमें तो जीव है पर पशु पक्षियोंमें जीव नहीं है। हिन्दू धर्म्म तो सब प्राणियोंमें जीवकी उपस्थिति मानता है और किन्हींके मतानुसार तो हिन्दू धर्म्म वृक्ष इत्यादि स्थावरोंमें भी जीव मानता है। योरोपका एक बड़ा दार्शनिक डेकार्ट भी पशुओंको बिना जीवके समझता था और केवल मनुष्योंको ही जीव रखनेका एकाकी अधिकारी मानता था। मुसल्मानोंका तो यह विचार है कि केवल पुरुषके अन्दर ही जीव है, स्त्रीके अन्दर नहीं। कोई भी विचारवान पुरुष यह नहीं कह सकता कि ये सभी धारणायें ठीक हैं इनमेंसे केवल एक ही बात ठीक हो सकती है, अथवा यह भी हो सकता है कि ये सब गलत हों। ऐसी विपरीत उक्तियां ही वैज्ञानिक को सत्यताकी खोजके लिये उत्सुक करती हैं, परन्तु इतने पर भी वैज्ञानिक संसार इसके विषयमें कुछ अन्वेषण करनेसे बहुत काल तक उदासीन रहा। इसका कारण यह था कि वैज्ञानिक भी 'जीव' की सत्ताके विषयमें वही धारणायें रखते थे जिसे उसका धर्म्म उन्हें बतलाता था। उनके धर्म्मकी एक शिक्षा थी कि जीव अतात्विक पदार्थ (immaterial thing) है, उसे न तो हम देख सकते हैं और न छू सकते हैं। विज्ञान उन वस्तुओंको अपने क्षेत्रसे बिलकुल अलग रखता है जिसे वह अपनी प्रयोग शालामें नहीं देख सकता। अतात्विक पदार्थोंकी परीक्षा उसकी प्रयोग शालामें हो नहीं सकती। वह जीवके विषयमें बहुत कहता तो यह कह सकता था कि 'मैं अपना अच्छेसे अच्छा अणुवीक्षण यन्त्र लगाता हूं पर जीवको नहीं देखता इसलिये जीव कोई वस्तु नहीं, जैसे कि किसी वैज्ञानिकने कहा था कि 'मैं स्वर्गमें विश्वास नहीं करता क्योंकि मैं अपनी अच्छीसे अच्छी दूरबीन आकाशमें लगाता हूँ पर मुझे सिवा शून्यके और कुछ नहीं दिखाई देता' परन्तु धार्मिक संसार इससे तनिक भी विचलित नहीं होता है क्योंकि वह जीवको अदृश्य समझता है। तो भी विज्ञानने इधरभी अपना पैर बढ़ाया है। आज हम योरोपके एक बड़े वैज्ञानिक का मत जो उन्नीसवीं सदीके अन्तमें हुए हैं इस विषयमें बतलाना चाहते हैं। उनका नाम अर्नेस्ट हेकिल है। हेकिलने जो सिद्धान्त जीवके विषयमें प्रदर्शित किये हैं वे 'जीव' पर अध्ययन अथवा अनुशीलनके परिणाम नहीं वरन्

'तत्व' के विषय में अनुसन्धानके परिणाम स्वरूप हैं। संसारमें एक वस्तु दूसरीसे इतना अधिक सम्बन्ध रखती है कि यह कोई आश्चर्यकी बात नहींकि कोई मनुष्य 'तत्व' पर विचार करते करते 'जीव' के विषय में कुछ स्पष्टता प्रगट कर सके। और 'जीव' और तत्व का तो सम्बन्ध बहुत निकटस्थ प्रतीत होता है। जीव का निवासस्थान शरीर है जिसे हम तत्वों से बना हुआ मानते हैं। तुलसीदासके इस पदसे कि "छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा" हम सब भली भांति परिचित हैं। हेकिलने हमारे शरीरके तात्विक भाग पर विचार किया और वह इस सिद्धान्त पर पहुँचा कि हमारे शरीरकी प्रक्रियायें केवल इन तत्वोंकी उपस्थिति से होती हैं। उनमें कहीं जीव का हाथ नहीं दिखाई देता। हेकिल ने यह भी देखा कि मानसिक प्रक्रियायें भी तत्वोंके कारणसे ही होती हैं और इस प्रकार तत्व-को ही शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओं का कारण बतलाया। उसने यह विचार सामने रक्खा कि मनुष्य के अन्दर 'जीव' नहीं है। हेकिलके मतमें फिर जिसे हम लोग जीव कहते हैं वह क्या है? हेकिल लिखता है।

What we call the soul is in my opinion, a natural phenomenon. (Riddle of the Universe, chapter VI)

' ......The human soul is not independent, immaterial substance, but, like the soul of all the higher animals, merely a Collective title for the sum.total of the man's cerebral functions and these are just as much determined by physical and chemical processes as any of the other vital function, and just as amenable to the law of substance" (Riddle of the universe chapter XI)

अर्थात्

'मेरे विचार में जिसे हम जीव कहते हैं वह एक प्राकृतिक घटना है।

"मनुष्यका जीव कोई स्वतन्त्र, अतात्विक पदार्थ नहीं है वरन् सभी उच्च श्रेणीके पशुओंके समान मनुष्यमें जीव समस्त शरीर की प्रक्रियाओंका एक सामूहिक नाम मात्र है और ये प्रक्रियायें प्राकृतिक, रासायनिक और तात्विक नियमोंसे ही होती हैं"। हेकिल ने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि 'तत्त्व' कोई पराधीन वस्तु नहीं जो अपना काम करनेके लिये किसी अतात्त्विक वस्तु की अपेक्षा करे। आगे चलकर हम बतलायेंगे कि किस प्रकार हेकिल यह सिद्ध करता है कि हम केवल तत्त्वों के कारण इच्छा और प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार हेकिल तत्त्ववादी है और सृष्टि रचनासे प्रलय तककी सारी क्रियाओं को और पुनः निर्माणको तत्त्वके नियमोंके अनुसार समझता है।

हम प्रयोग शालाओंमें भिन्न भिन्न प्रकारके तत्त्वों को मिलाते हैं और उनके परिमाणोंको देखते हैं। कभी परिणाम इतने आश्चर्य्य-जनक होते हैं कि विज्ञानसे अनभिज्ञ लोग उन्हें जादू समझते हैं। परन्तु वैज्ञानिकके लिये वहां रसायनशास्त्रके नियमोंका ही पालन हो रहा है। प्राचीनकालमें जब विज्ञानकी इतनी उन्नति नहीं हुई जितनी वर्त्तमान् समयमें हुई है, मनुष्य लोग प्रकृतिकी उन घटनाओंके लिये जिनके लिये उन्हें कोई कारण न दिखलाई पड़ता था भूत, प्रेत अथवा देवी देवता द्वारा अवघटित समझते थे। यदि कोई भी बात साधारण नियमोंको उल्लङ्घन करती हुई प्रतीत होती तो लोग समझते थे कि किसी देव अथवा दानवने अपनी शक्तिसे यह काम किया है। उनकी समझमें प्राकृतिक नियम इतने कमज़ोर थे अथवा देव दानव इतने शक्तिवान थे कि इन नियमोंकी अवहेलना करना उनके लिये एक साधारण सी बात थी। प्राकृतिक नियम उनकी दृष्टिमें अता-त्विक शक्तियोंके अधीन थे। परन्तु अब वह समय चला गया है। आजकल विज्ञानकी उन्नति इतनी हो गई है कि देवों अथवा भूतों द्वारा किये गये कार्य्य प्रकृति-नियमोंके अनुसार होते हुए बताये जाते हैं। या

यों कहिये कि इन भूतों और प्रेतोंमें विश्वास हटानेसे ही विज्ञानकी उन्नति हुई है। क्योंकि विज्ञानकी जो उन्नति आज हम देख रहे हैं इसका कारण यह है कि विज्ञानने कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर अपनी नींव खड़ीकी है जो बड़े दृढ़ और अटल हैं। यदि ये नियम पल भरके लिये भी बदल जांय तो विज्ञानकी सारी इमारत लड़खड़ा कर गिर पड़े। उनमेंसे पहला तो यह है कि प्रत्येक घटनाका कुछ न कुछ कारण होता है, जिसे अंग्रेजीमें कारणकी व्यापकता (Universality of causation) कहते हैं। और दूसरा यह कि एक प्रकारके कारणसे एक ही प्रकारकी घटना अवघटित होती है। इसे अंग्रेजीमें कारणकी एकता (Uniformity of causation) कहते हैं। इन दोनोंके साथ एक तीसरा सिद्धान्त भी विज्ञानका है कि हम इन कारणोंको जान सकते हैं और जना सकते हैं। यदि ये नियम न होते तो वैज्ञानिकोंको कारण ढूढ़नेका प्रोत्साहन न मिल सकता। जहां कोई अनोखी बात देखी जाती है, लोग ऐसा कहते हैं कि 'परमात्माकी ऐसी इच्छा थी' पर यह सिद्धान्त होनेके कारण कि प्रत्येक घटनाका कोई न कोई जानने योग्य कारण है लोगोंने प्रयत्न किया और अन्तमें कारणोंको ढूंढ़ निकाला। एक दो नहीं, हजारों ऐसी घटनाओंको वैज्ञानिकोंने प्रकृतिके सर्वदा सत्य और अटल नियमोंके अन्तर्गत बतलाय है जो पहले अज्ञेय समझी जाती थीं। सूर्य्य अथवा चन्द्र-ग्रहणको ही ले लीजिये। इसी को लोग देव दानवोंकी एक लीला समझते थे और अब भी अज्ञानी लोग समझते हैं परन्तु इतनी बड़ी घटना तारोंकी नियमानुसार चालका परिणाम है। वहां न कोई देव है न दानव, सब काम आपही आप समय आने पर हो जाता है पहलेसे सूर्य्य या चन्द्र-ग्रहण पड़नेका समय बतलानेसे यह साफ़ जाहिर है कि हमने उस नियमको जान लिया है जिससे कि ये घटनायें होती हैं। सम्भव है कुछ मूर्ख लोग यह समझते हों कि दानव अपने इरादों को हमारे पास भेज देते हों। कभी कभी ऐसा भी होता है कि वैज्ञानिकके विचार सत्य नहीं उतरते पर वह प्रकृति नियमोंमें त्रुटि नहीं देखता वरन् अपनेही विचारोंमें अशुद्धिकी सम्भावना समझता है। यदि वह यह कह कर टाल देता कि होना तो चाहिये था यह, पर ईश्वरको और ही मंजूर था, तो विज्ञानकी उन्नतिकी इतिश्री होजाती। यदि ऐसा सम्भव होता कि प्रकृतिके नियमोंमें कोई शक्ति उद्दण्डताके साथ हस्तक्षेप किया करती तो हमारा ज्ञान कभी बढ़ ही न सकता था। हेकिल पहले तो किसी ऐसे अतात्विक पदार्थ को मानता ही नहीं कि जिसका तत्त्वोंके ऊपर अधिकार हो परन्तु यदि ऐसी कोई शक्ति है, सत्यमें अथवा केवल कल्पनामें, तो भी उसके विचारमें वह प्रकृतिसे इतनी अलग है कि उसके नियमोंको न तो कभी तोड़ सकती है और न बदल सकती है। प्रकृति अपने नियमोंके पालन करनेमें स्वतन्त्र है और स्वावलम्बित है। उसे किसी और की न तो सहायता चाहिये और न किसीका सहारा। साथ ही साथ यदि कोई चाहे भी तो उसकी गतिमें रुकावट नहीं डाल सकता और न उसकी गतिको बढ़ा सकता है।

यह केवल हेकिल का सिद्धान्त नहीं बल्कि सभी वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है। सभी यह मानते हैं कि प्रकृतिके नियम की खोज करते हुए प्रकृति से बाहर आनेकी आवश्यकता नहीं। इसी नियमको हेकिल की पुस्तक 'विश्वप्रपंच' (Riddle of the universe) के अनुवाद कर्त्ता मैकेब (Mccabe) ने इस प्रकार लिखा है :

'The machinery of the universe is found *in* the universe'

अर्थात्

संसारको चलाने की शक्ति संसारके अन्दर ही है।

संसारमें जीव रचना संसारकी ही एक प्रक्रिया है। इन्हीं जीवोंका विचार करते हुए हेकिल ने केवल एक सर्वमान्य सिद्धान्तको ही लगाया है कि जीव रचनामें भी संसारसे बाहर के पदार्थों जैसे परमेश्वर अथवा जीवकी आवश्यकता नहीं हुई। इस

प्रकार जीव और ईश्वरके अस्तित्वको मेटानेसे हेकिल ने प्रकृतिही को उन शक्तियोंसे परिपूर्ण बतलाया है जिनके लिये ईश्वर अथवा जीवकी आवश्यकता होती। इस प्रकार हेकिल ने प्रकृति की महत्ता और भी बढ़ा दी है। प्रकृति का क्षेत्र हेकिल ने वहाँ तक विस्तृत कर दिया है जहाँ पर पहले ईश्वर और जीव का राज्य था। हेकिल के विचारमें ईश्वर और जीव रचना प्रकृतिकी सम्पूर्ण शक्तियें न जाननेकी वजह से ही हुई थी। पशुओं और मनुष्यों में जो हम सजीवता अथवा चेतनता देखते हैं, हमारा ऐसा विचार है कि किसी प्रकृति से बड़ी वस्तु (supernatural) के कारण है, जो हमारे शरीर में वर्तमान है; पर हेकिलके मतानुसार हमारी यह सजीवता, निर्जीव पदार्थोंमें मौजूद शक्तिका केवल विकास है। हम आगे चल कर दिखलायेंगे कि हेकिलके मतमें जड़ पदार्थों में भी चेतनता तथा इच्छा शक्ति बीज रूपेण उपस्थित है। इस बातकी पुष्टि हम हेकिलके अनुवाद कर्त्ताकी भूमिकासे एक वाक्य उद्धृत करके करना चाहते हैं। वह हेकिलके विचारको इस प्रकार लिखता है।

Haeckels' *chief concern* is ....to bring vital energy जैसी सजीवकहलाने वालों में है) into line with inorgainc energy (जैसा निर्जीव कहलाने वाले अथवा जड़ पदार्थों में है) to refute the notion of there being an immaterial principle in living things, so that we may conceive the natural deve lopment of life.

अर्थात्

'हेकिलका मुख्य प्रयोजन यह है कि संजीवनी शक्ति (जैसी सजीव कहलाने वालोंमें है) और निरावयव शक्ति (जैसी निर्जीव कहलानेवाले अथवा जड़ पदार्थों में है) की सहयोगता दिखला कर यह बात मनुष्योंके हृदयसे दूर कर दी जाय कि सजीव वस्तुओंके अन्दर एक अतात्विक वस्तु काम कर रही है; जिससे कि हम जीवनका प्राकृतिक विकास भली भाँति समझ सकें"।

कहनेका तात्पर्य्य यह है कि हेकिलके मतानुसार चेतनता जड़ पदार्थोंसे उत्पन्न हुई है; अथवा यों कहिये कि चेतनता सभी पदार्थोंमें है, जड़में भी चेतन्नता है। जब जड़ वस्तुमें व्याप्त चेतन्नताका अधिक विकास हो जाता है तब दोनोंकी तुलना करने पर एक जड़सी प्रतीत होती है, पर वास्तवमें हमारी चेतनता लाखों बरस पहले जड़ प्रतीत होने वाले पदार्थ की चेतन्नताके समान थी।

हमारे शरीरकी दो प्रक्रियायें हैं—एक शारीरिक और एक मानसिक हम अपने स्थूल शरीरसे जितने काम करते हैं वे सब शारीरिक प्रक्रियायें हैं। इस प्रकार अंगोंका हिलाना, भोजन पचाना स्वास लेना आदि शारीरिक प्रक्रियायें हैं। सोचना, न्याय करना, कारण ढूंढना आदि मानसिक प्रक्रियायें हैं। कहीं कहीं शारीरिक प्रक्रियायोंके कारण मानसिक क्रिया आरम्भ होती है और कभी मानसिक प्रक्रियाके कारण शारीरिक क्रिया। हेकिलने पहले यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि शारीरिक प्रक्रियायोंके लिये तो जीवकी आवश्यकता ही नहीं है। इसके लिये उसने योरोपके दो बड़े शरीर-रचना-शास्त्रमें निपुण विद्वानोंकी सम्मतिका आश्रय लिया है। हेकिल लिखता है:—

Borelli followed (1660 with a reduction of the movements of the animal body to purely physical laws and Sylvius endeavoured about the same time to give a purely chemical explanation of the phenomena of digestion and respiration.

अर्थात्

'बारोलीने स्थूल शरीरकी हरकतोंको केवल प्राकृतिक नियमोंके ही अन्तर्गत बताया और सिलवियस ने उसी समयमें पाचन क्रिया और श्वास प्रश्वासका

कारण केवल रासायनिक नियमोंपर अवधारित बतलाया'।

हेकिलके पहले मूलरने भी शारीरिक प्रक्रियाओं के लिये जीव की अनावश्यकता प्रतीत की थी पर उसने जीवके स्थान पर एक संजीवनी शक्ति (Vital force) की उपस्थिति मानी थी। हेकिल उसके विषय में इस प्रकार लिखता है :—

His (Mullers') vital force was not above the physical and chemical of the rest of nature, but entirely bound up with them. It was, in a word, nothing more than life itself that is the sum of all the movements which we perceive in the living organism.'

अर्थात्

मूलरने शारीरिक प्रक्रियोंके लिये जो एक संजीवनी शक्ति की उपस्थितिकी आवश्यकता बतलाई थी वह प्रकृतिके अन्तर्गत रासायनिक और स्वाभाविक नियमोंके ऊपर न थी वरन् इनसे बिल्कुल बाध्य थी। यह 'संजीवनी शक्ति' उन गतियों का सामूहिक नाम था जिन्हें हम सावयव जीवोंमें पाते हैं। इस प्रकार यदि हम हेकिलके समान बारेली, सिलवियस और मूलर की बातों पर विश्वास करें तो हमको कहना पड़ेगा कि हमारी शारीरिक प्रक्रियाओंके लिये जीव की आवश्यकता नहीं। हमने आरम्भमें दिखलाया था कि मानसिक प्रक्रिया के कारण हम जीव का उतना अस्तित्व नहीं समझते जितना शारीरिक प्रक्रिया के लिये। ऐसे लोगों को तो यहीं पर सन्तोष हो जाना चाहिये कि मनुष्य शरीरमें 'जीव' नहीं है।

परन्तु कुछ लोगों का विचार है कि यदि शारीरिक प्रक्रियाके लिये नहीं तो मानसिक प्रक्रियाके लिये अवश्य ही जीवकी आवश्यकता है। हेकिल का उत्तर यहां पर यह है कि शारीरिक प्रक्रियाओंके समान मानसिक प्रक्रिया भी तत्वके नियमोंके अनुसार होती हैं। इस विषयमें हेकिलने स्वयं अपना विचार लिखा है। हेकिलके विचारमें, मनुष्योंका शरीर जिस आदि जन्तुके शरीरका विकसित रूप है कुछ तत्वोंके मिलनेसे बना था। इन तत्वोंका इतने दिनों तक विकास होनेके पश्चात् अब ऐसी अवस्था आ पहुँची है जब हम मनुष्य रूपमें आगये हैं। इन तत्वोंमें केवल शारीरिक विकास देनेकी शक्ति न थी वरन् मानसिक विकासके बीज भी इसी मिश्रणमें उपस्थित थे। जिस प्रकार हमारा मनुष्य-शरीर शारीरिक-विकासकी अन्तिम सीढ़ी है उसी प्रकार हमारी तर्कनात्मक बुद्धिभी मानसिक विकासकी सर्वोच्च श्रेणी है। यहाँ हम हेकिल के तत्वके विषयमें विचारोंका बिना अच्छी प्रकार समझे उसकी बात नहीं समझ सकते। हेकिल समझता था कि तत्वही जिस प्रकार शारीरिक प्रक्रिया देने में पर्याप्त है उसी प्रकार मानसिक प्रक्रियाभी देने में सर्वथा योग्य है। यही स्थान है जहाँ पर जीवकी कल्पना होती है। हेकिलके इस विचारसे यह कभी न समझना चाहियेकि मानसिक प्रक्रिया शारीरिक प्रक्रियासे जन्म पाती है वरन् दोनों साथ साथ ही रहती हैं। योरोपके प्रसिद्ध विकासवादी दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सरका यही विचार था कि मानसिक प्रकिया शारीरिक प्रक्रियाकी उत्पत्ति है पर हेकिलका मत इससे भिन्न है उसके लिये ये दोनों साथ ही साथ रहती हैं और दोनोंका विकास साथ ही साथ होता है। यद्यपि मात्रा में दोनोंमें भेद हो सकता है। परन्तु इसका कारण जीव नहीं वरन् परिस्थिति (environments) है। मानसिक प्रक्रियाओंका अधिक उपयोग होनेसे मानसिक शक्ति बढ़ेगी और शारीरिक शक्तिके अधिक उपयोग के शारीरिक तत्वके विषयमें हेकिल का यह विचार जान लेना उपयोगी है कि:—

Even the atom is not without a rudimentary form of sensation and will or as it is better expressed, of feeling (aesthesis) and inclination (tropesis)—that is, a universal "soul" of the simplest

character. The same must be said of the molecules which are composed of two or more atoms. Further combinations of different kinds of these molecules give rise to simple and, subsequently, complex chemical compounds, in the activity of which the same pheromena are repeated in a more complicated form.

अर्थात् छोटेछ‌ोटे अणुओं में इच्छा inclination और प्रयत्न (will) उपस्थित है। जब जब दो या अधिक अणु मिलते हैं तो भी उनमें यह उपस्थित रहता है और इनके मिश्रणमें यही वस्तुएं बहुत परिवर्तित होकर हमारे मष्तिष्ककी नाना प्रकारकी प्रक्रियाओं को जन्म देती हैं।

हेकिल सब जीवोंमें कललरस (Protoplasm) की उपस्थितिको ही जीवन शक्तियों का मूल समझता है। वर्त्तमान वैज्ञानिक डा० आर्थर टामसनने भी लिखा है कि (there is a common ground of protoplasm that makes the whole world kin.) अर्थात समस्त ससृति-सम्बन्ध का मूल कलल रस में ही विद्यमान है।

अब हम प्रोटोप्लाज्म विषयक हेकिलके विचार उपस्थित करेंगे, जिसको पढ़नेसे यह ज्ञात हो जायगा कि जहाँ कहीं जीवनकी संभावना है वहाँ मानसिक प्रक्रिया अवश्य होगी। हेकिलके विचारमें यही प्रोटोप्लाज्म मानसिक प्रक्रिया भी देता है। हेकिलके तत्व के विचारोंका यह केवल फल (Deduction) समझना चाहिये। हेकिल कहता है :—

All the phenomena of psychic life are, without exception bound up with certain material changes in the living substance of the body, the protoplasm. We have given to that part of the protoplasm which seems to be the indispensable substratum of psychic life, the name of psychoplasm ; in other words, we do not attribute any peculior essence to it, but we consider the spache to be merely a *collective idea of all the py chic functions of protoplasm*. ....In all cases, in the lowest as weill as the highest stages of the psychological hierarchy, a certain chemical composition and a certain physical activity of the psychoplasm are indispensable before the soul can function or act.

अर्थात्

'मानसिक जीवनकी समस्त क्रिया प्रोटोप्लाज्ममें कुछ तात्विक परिवर्तनोंके कारण होती हैं। प्रोटोप्लाज्म के उस भागको जो मानसिक क्रियाओंको जन्म देता है साइकोप्लाज्म नाम दिया गया है। यह साइकोप्लाज्म किसी प्रकारसे प्रोटोप्लाज्मके अलावा कुछ विशेषता नहीं रखता केवल प्रोटोप्लाज्मकी समस्त मानसिक प्रक्रियाओंको बोधित करनेके लिये ही उसे साइकोप्लाज्म कहते हैं। और छोटेसे छोटे लेकर बड़ेसे बड़े जितने जीवोंके अन्दर मानसिक प्रक्रिया होती है उन सबमें कलल रस और साइकोप्लाज्मका होना अनिवार्य्य है'।

स्मरण शक्तिके लिये हेकिलने इवाल्ड हेरिंगका आश्रय लिया है जिनका यह सिद्धान्त था कि 'स्मरण शक्ति संगठित तत्वोंका एक गुण है'। इसी प्रकार मस्तिष्क की सभी क्रियायोंको ले लेकर उनका तात्विक आधार दिखलाया गया है जिसे हम विस्तार भयसे यहाँ नहीं लिखना चाहते।

हेकिलका तत्त्व और प्रोटोप्लाज्मके विषयमें यह मत जान लेने पर मानसिक प्रक्रियाके लिये जो आत्मा अथवा जीवके अस्तित्वका दावा किया जा सकता था, नहीं किया जा सकता। मनुष्यको अपनी चेतनता (self-consciousness) का बड़ा अभिमान है, पर यह केवल मनुष्योंमें ही नहीं है। हेकिल-

का कथन है कि यह पशुओंमें भी है और इसका बहुत कुछ सम्बन्ध बुद्धिसे है और यह चेतनता कि अतात्विक वस्तुके कारण नहीं है। हेकिल उसके लिये एक सबूत यह देता है कि हमारी चेतन्नता ईथर (ether) अथवा क्लोरोफार्मसे नाश की जा सकती है। यदि चेतन्नता किसी अतात्विक वस्तुके कारण होती तो उस पर किसी प्रकारका तत्वका प्रभाव न पड़ता। इससे प्रतीत होता है कि चेतनता कुछ तत्वों-के कारण होती है। तब इसके लिये जीव अथवा आत्मा की कोई आवश्यकता नहीं।

हेकिल डार्विनके विकासवादको माननेवाला था। डार्विनके मतानुसार समस्त प्राणी अमीबासे ही उत्पन्न हुए हैं। जितने भी जीव हम संसारमें देखते हैं वे कभी अमीवाके रूपमें थे। हमारा मनुष्य शरीर भी अगणित पशु योनियोंमें लाखों बरस विकास पाता हुआ इस श्रेणी को पहुँचा है। यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि यदि हम पशुओंसे इतने नज़दीक हैं तब फिर क्यों हमारे और इनके बीच इतना भेद है? हेकिलने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि हम पशुओंसे इतने दूर नहीं जितना कि हम समझते हैं। और न इतना भेद ही है जितना हमें दिखलाई पड़ता है। मनुष्यों और पशुओंमें समानता दिखलानेसे हेकिलका अभिप्राय यह सिद्ध करनेका है कि यदि पशुओंको लोग बिना आत्माके कहते हैं तो मनुष्योंको भी बिना आत्मा वाला कहना चाहिये। यदि पशु अपना सारा काम आत्माके बिना कर लेता है तो मनुष्य भी कर सकते हैं।

हेकिलने पहले पहल हमारे शरीर ही को लिया है। शरीर विज्ञान वेत्ताओंने मनुष्य शरीर और पशु-शरीरकी तुलना की है। हम केवल उसको विस्तारमें न देकर उसका सारांश ही दे देते हैं। उनका कथन है कि मनुष्योंमें जिस प्रकार पाचन क्रिया होती है उसी प्रकार पशुओंमें भी होती है उसी प्रकार रुधिर बनता है और समस्त शरीरमें नाड़ियोंके द्वारा पहुंचाया जाता है। कतिपय मुख्य मुख्य हड्डियोंकी बनावट भी जिस प्रकार मनुष्योंमें है उसी प्रकार अन्य पशुओंमें भी है। इसी प्रकार बहुतसी आदतोंमें भी हम पशुओंके समानही हैं। हेकिलने तो यहाँ तक लिखा है कि :—

"Comparative anatomy proves... that the body of man and that of the anthrapoul ape are not only peculiarly similar, but that they are practically one and the same in every important respect".

अर्थात्

तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र इस बातको सिद्ध करता है कि मनुष्यका शरीर और बन्दरोंका शरीर न केवल एक विशेष प्रकारकी सभ्यता ही रखता है वरन् यह कि वे समस्त आवश्यकीय बातोंमें बस एक ही हैं।

शरीर-रचना-विज्ञानके इस सिद्धानसे हमें यह ज्ञात हो जाता है कि पशुओंका शरीर हमारे शरीरसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है। पर इसपर भी एक बड़ी शंका उठती है। शरीर-रचना-विज्ञानने हमें यह भी बतलाया है कि मनुष्यके शरीरमें मस्तिष्ककी एक कोठरीसी होती है जिसे मस्तिष्क कोष्ट (Brain cell) कहते हैं। जब हम पशुओं और मनुष्योंका शरीर एक समान मानेंगे तो हमें अवश्यही उस मस्तिष्क कोष्ठकी उपस्थिति पशुओंके शरीरमें भी माननी पड़ेगी जैसी मनुष्य मस्तिष्कमें होती है। हेकिलने यह दिखलाया है कि पशुओंके अन्दर भी हमारी ही जैसी मानसिक प्रक्रियायें हैं। परन्तु फिरभी हम इतना भेद क्यों पाते हैं? कारण उसका यह है कि हम पशुओंके बुद्धिकी तुलना बड़े बड़े दार्शनिकों की बुद्धिसे करने लगते हैं। परन्तु यदि जंगली जाति-के मनुष्योंकी तुलना बड़े बड़े दार्शनिकोंसे की जाय तो उनके सामने वे जंगली आदमी अधिक पशुसे जचेंगे जितना कि साधारण पशु साधारण मनुष्योंसे तुलना करने पर मालूम होते हैं। और यदि हम

दार्शनिक और जङ्गली दोनोंको मनुष्य कहते हैं तो मनुष्य और पशुओंमें एक प्रकारके समानता और लगाव माननेमें कोई हर्ज नहीं है। पशुओंकी मानसिक प्रक्रियाके सम्बन्धमें हेकिल का मत यह है कि:—

'Man's highest mental powers, reason, speech and conscience – have arisen from the lower stages of the same faculties in our primate ancestors. Man has no single mental faculty which is his exclusive prerogative. His whole psychic life differs from that of the nearest mammals only in degree, and not in kind, quantitatively and not qualitatively.

अर्थात्

मनुष्यमें तर्क, भाषा, तथा चेतनता आदि उत्कृष्ट-धर्म आदि पूर्वज प्राणियोंके धर्मोंके विकसित रूप ही तो हैं। मनुष्यमें कोई भी ऐसा गुण नहीं है जो अन्य पशुओंमें न पाया जाता हो। उसके और उसके निकटतम पशुओंके चेतना सम्बन्धी गुणोंमें केवल मात्राका भेद है, नकि जातिका।

जब पशुओं और मनुष्योंकी शारीरिक और मानसिक प्रक्रियायें सब एक सी होती हैं तब एकको जीव वाला और दूसरेको जीव-रहित कैसे कहा जा सकता है। और हेकिलने एक जगह पर तो आवेगमें आकर यह भी कह दिया है कि यदि मनुष्योंके अन्दर एक अमर आत्मा है तो पशुओंके अन्दर भी है। जिससे उसका तात्पर्य सम्भव है यह रहा हो कि जब पशुओंमें बहुतसे लोग आत्माका अस्तित्व नहीं मानते तब मनुष्योंमें क्यों मानते हैं। परन्तु हेकिलकी यह दलील केवल उन लोगोंके लिये ही है जो पशु पक्षियोंमें आत्माका होना नहीं मानते। हम नहीं कह सकते कि हेकिलका उत्तर क्या होता यदि हम अपना वैदिक सिद्धान्त उसके सामने रख देते कि 'हाँ, पशुओंके अन्दर और मनुष्योंके अन्दर सभीमें उसी प्रकारका अमर आत्मा निवास कर रहा है'।

हेकिलका कथन है कि जीव की कल्पना और उसकी शक्तिकी आयोजना देना रसायन शास्त्रके मूल सिद्धान्तोंके सर्वथा प्रतिकूल है। हम जीवको अतात्विक वस्तु मानते हुए भी उसके साथ शक्तिका होना सम्भव समझते हैं। हेकिल कहता है कि 'हमारे वैज्ञानिक अनुभवने अभी तक यह कभी नहीं बतलाया कि तत्वकी उपेक्षा करके शक्तिका अस्तित्व स्थिर रह सकता है या प्रकृतिके ऊपर कोई और प्रकृतिसे बड़ा संसार है जहाँकी शक्तियाँ प्रकृतिके नियमोंके ऊपर हों'। रसायन शास्त्रका सिद्धान्त तो यही है कि तत्वको (matter) और शक्ति (energy) साथ ही साथ रहती है। न तो हम तत्वको बिना शक्तिके पा सकते हैं और न शक्तिको बिना तत्वके। इस अटल सिद्धान्तको मानते हुए यदि जीव शक्तिकी चर्चा की जायगी तो जीव एक तत्व हो जायगा और हम इस तत्वको अपनी दूरबीनोंसे देख सकेंगे पर यदि यह दिखलाई नहीं पड़ता तो उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि कोई यह सिद्धान्त उपस्थित करे कि जीव-शक्ति तब तक काम नहीं कर सकती जब तक उसका तत्वके साथ मिलाप न हो तो हेकिलका यह सबूत कमजोर पड़ जाता है। बहुत सम्भव है कि हिन्दुओंके इस सिद्धान्तकी तहमें कि जीव बिना शरीर धारण किये कुछ नहीं कर सकता रसायन शास्त्र का यह नियम काम कर रहा हो कि शक्ति सदा तत्व (matter) के साथ हो रहती है।

उन्नीसवीं सदीके अन्त में शरीर विद्या विशारदों ने कोष्ठक सिद्धान्त (cellular) का अन्वेषण किया। इस सिद्धान्त से प्रयोजन यह है कि जीवोंका शरीर बहुतसे कोष्ठोंमें विभाजित है। पहले पहल केवल एक-कोष्टक (unicellulor) जीव हुए जिन्हें प्रोटोजोआ कहते हैं उन्हीं से बढ़ते बढ़ते जिस प्रकार की आवश्यकतायें पड़ती गई और अधिकाधिक कोष्ठों की वृद्धि होती गई। इन कोष्ठों की वृद्धिके लिये किन्हीं

अतात्विक पदार्थों की आवश्यकता नहीं हुई दूसरे कोष्टकी रचना पहले कोष्टकी अवस्था से वर्णितकी जा सकती थी इसी प्रकार तीसरे कोष्टकी रचना पहले पहल कोष्टोंकी अवस्था पर निर्भर थी। मनुष्य एक बहु कोष्टक (multicellular) जीव है हेकिलका कथन है कि यह बहु कोष्टक जीव लाखों बरस पूर्व प्रोटोजोआ के समान एक कोष्टक था जिसके अन्दर केवल प्रोटोप्लाज्म जीवन शक्ति से रहा था। उसी से वृद्धि पाकर यह मनुष्य शरीर उत्पन्न हुआ है जिसमें अब भी सिवा प्रोटोप्लाज्म कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो उसके शरीर को और मस्तिष्क को संजीवनी शक्ति दे रहा है। हेकिल कहता है।

'Man him-self is a tiny grain of protolopla m, in the perishable frame work of orgainc nature.

यदि हम हेकिल के अनुवादकर्त्ता जौजे मेकेब के निम्न लिखित वाक्यों पर विश्वास करें तो हमको मालूम होगा कि इन प्रयोग शालाओं में बनाने गये जीवों को यदि हम विकास क्षेत्र में रख दें तो बड़ी सम्भावना है कि कालान्तर में इन्हींसे मनुष्य सृष्टि की रचना हो जाय। अनुवाद कर्त्ता लिखता है—

'Mr. J. Butler Burke (of Cambridge) has produced in the Cavendish laboratory tiny globules that seem to be half way between the living and the non living. A French student, m. Dubois, has made a simiiar claim ; and a distinguished German physicist professer Ostwald has emphatically predicted the speedy creation of life in the laboratory.'

अर्थात्

केम्ब्रिज के जे० बटलर साहबने केवेनडिश प्रयोग शाला में छोटे छोटे गोललों की रचनाकी है जो जड़ और चैतन्यके बीचकी अवस्थाके हैं। एक फ्रांसीसी विद्यार्थी एम. डूबाय ने भी ऐसा दावा किया है और जर्मनीकी एक बड़े भारी वैज्ञानिक मि० आस्टवाल्डने बहुत शीघ्र हो प्रयोगशालाओंमें जीव रचनाको भविष्यद्वाणी बड़े जोरोंके साथकी है।

भला इससे बढ़कर हेकिलकी बातों का सबूत क्या हो सकता है ?

संसृति तथा विकास

(ले० श्री 'गोपाल' जी)

यंतुकर्मणि यस्मिन्स न्ययुक्तं प्रथमं प्रभूः
सतदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः।

मनुस्मृति अ० १, श्लोक २८

एक समय था जब विकासवादकी चर्चा जोरों पर थी। डार्विनकी "जातियों का विकास" नामक पुस्तकने वैज्ञानिकोंमें क्रान्ति उत्पन्न करदी, उसने अपनी पुस्तकमें इतने प्रमाण प्रस्तुत किये और अपने सिद्धान्तका ऐसा विलक्षण प्रतिपादन किया कि विरोधी अधिक न ठहर सके। तबसे अब तक विकास क्रमकी बहुतसी योजनाओंका खण्डन मण्डन होता रहा है, जिनमेंसे कुछका परिचय पिछले लेखमें दिया जा चुका है। इतना होते हुए भी अभी विकासवादका सिद्धान्त स्वयं स्थिर ही माना जाता है। उन मत-मतान्तरोंकी जो विकासवादके सम्बन्धमें प्रचलित है, मुझे कुछ आलोचना करनेकी आवश्यकता नहीं और इसी कारण उनके सम्बन्धमें कुछ न लिखकर केवल उन "प्रमाणों" की परीक्षाकी जायगी जिनके ऊपर विकासवादका ऐसा विशाल भवन बनाकर खड़ा किया गया है। चार्ल्स डार्विनके बाद विकासवादकी पुष्टिके लिए केवल एक ही और नया प्रमाण प्रस्तुत किया गया है और वह भी संदिग्धग्राही है उसके पक्षमें जितनी बातें कही जा सकती थीं प्रायः उन सबका समावेश "जातियोंके विकास" में हो चुका था।

और इस हेतु उस पुस्तक पर ही विशेषतया इस लेख-का लक्ष्य भी रहेगा।

वर्गीकरण (Classification) का साक्ष्य :— कोई अच्छा पुस्तकालय आपने देखा होगा। पुस्तकों-का कैसा नैसर्गिक वर्गीकरण विज्ञान, इतिहास, गणित, दर्शन काव्य इत्यादि। और फिर उनके अन्दर भी और निम्न श्रेणीका वर्गीकरण-उदाहरणके लिए विज्ञानमें-भौतिक रसायन प्राणी-भूमि विज्ञान इत्यादि भौतिक विज्ञानके भी ताप-प्रकाश-शब्द-चुम्बक-विद्युत इत्यादि भेद और उसके आगे और भी उपभेद। बाजारकी दुकानोंका और दुकानोंके सामानका भी ऐसा ही श्रेणीबद्ध वर्गीकरण किया जा सकता है। स्फट विज्ञानके भी स्फट विज्ञों ने और ३२ भेद और उपभेद कर दिये गये हैं। और इसी भांति धातु उपधातुओंके वर्गीकरणकी जो विलक्षणता तथा कठिनता सजीव-संसारमें पाई जाती है वही निर्जीव संसारमें भी। जिस भांति उद्भिज वा जीव जगतमें व्यक्तियोंके समूहमें जाति निर्णयकी कठिनता होती है उसी भांति एक लाइब्रेरियनको किसी बृहद्-पुस्तकालयमें पुस्तकोंको लगाकर रखनेमें भी वैसी ही असुविधा होगी। कृत्रिम और नैसर्गिक-सजीव वा निर्जीव-सब जगह वर्गीकरणका प्रायः एकसा ही फल होता है।

क्रम योजना और वर्गीकरण की ये खूबियाँ कोई सजीव संसारकी ही विशेषताएं नहीं कही जा सकती।

आकृति इत्यादि (morphology, Anatomy) का साक्ष्य:—बड़ी बड़ी और छोटी छोटी घड़ियोंको देख कर किसीको इस बातका सन्देह न करना चाहिए कि नन्हीं घड़ियां बड़ी घड़ियोंके बच्चे नहीं हैं। अथवा सब किसी एक पुरानी और आदिम घड़ीकी सन्तान नहीं हैं। यदि आकृतिकी समानता रुधिरके सम्बन्धकी द्योतक है तब तो निश्चय ही संसारकी सब घड़ियां किसी एक ऐसी वस्तु विशेषकी सन्तान हैं जिसके बहुत अंशोंमें वर्तमान घड़ियोंके साधारण रूपके समान रही होंगी। न केवल समय वृत्त(time piece)या जीवकी बाह्य आकृतिमें (morphology)प्रायः समानतायें होती हैं वरन उनके अन्त-रिक गठनमें भी बहुत सामंजस्य तथा समानता देखनेमें आती है, पेंडुलम या स्प्रिंग व्हील, स्केपमेण्ट (escapement) और दन्तचक्र (toothed wheel) कुछ गोल गोल दांतेदार पहिए। कहाँ तक कहें उनकी (Histology) में भी तो निरी समानता ही है। बहुतों के निर्माण तत्व (material) प्रायः मिलता जुलता होते हैं। और उदाहरण लीजिए। संसारके एक वृहत् नकशेको देखिए। सब नदियोंकी आकृति प्रायः एक सी ही दीखेगी। देशविदेशकी सरिताओंका रूप स्वयं अपने चर्म चक्षुओंसे निहारिये। आकृतिमें तथा बना-वटमें भी कितनी अधिक समानता मिलेगी। परन्तु यह कहते किसी को नहीं सुना कि अमुक नहीं अमुककी पुत्री है अथवा किसी एक विशेष नदी समान पदार्थसे ही शेष नदियोंका निकास हुआ है। आपत्तिकी जा सकती है कि यहाँ तर्क वृत अंतरगत (Arguing in circle) दोष है परन्तु यह बातही सजीव संसारके लिए भी लागू है। इस सर्वव्यापी सामंजस्य और समानता की जड़में प्रकृतिका कोई ऐसा नियम निहित है। जिसको विकासवाद पर आपेक्षित रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं दीखती और अभी तक उसका अनु-सन्धान किये जानेकी आवश्यकता है। हाँ एक बात तो रह ही गई और वह है प्राणि-देहमें ऐसे अवयवों का पाया जाना जिनका उस देहके लिए कुछ उपयोग नहीं जिनको अनुपयुक्तावयव (Vestige) या (rudi-mentary organs) कहा जाता है। पिछले लेखमें इस बातको अवश्य स्वीकार किया गया है कि बाह्य संसार के संसर्गसे प्राणि देहमें विकार उत्पन्न हो सकता है। एकसी परिस्थितिमें रहकर और समान चेष्टा तथा व्यवहार करने पर दो असमान जातियोंमें भी अंग समान रूप ग्रहण करनेमें प्रवृत होंगे। कौन कह सकता है कि मानव समुदायमें बन्दरके समान पूँछ का अवशेष इस कारण नहीं हो सकता कि पहले मनुष्योंको बन्दरोंकी भांति पूँछकी आवश्यकता तथा प्रयुक्तता प्रतीत हुई हो परन्तु पूँछकी सृष्टि एक

विशेष सीमा पर जाकर रुक गई हो। और अंगोंके विषयमें भी यही कहा जा सकता है और जीवमापकता (Biometry) से इस अनुमानकी पुष्टि भी होती है।

गर्भशास्त्र—(Embryology) का संकेत:— गर्भमें बाह्य संसारकी अपेक्षा जीवोंकी आकृति अधिक मिलती जुलती है। इसमें कुछ सन्देह नहीं। बहुत दशाओंमें तो गर्भके आरम्भमें उसकी जाति का निर्णय करनाभी दुष्कर हो सकता है। प्राणि संसार में प्राणियों का आदि प्रायः एक कोषसे ही होता है परन्तु क्या यह बात सच नहीं है कि बहुतसी जातियों के वीर्य्याणु (sperm) विशेष आकृतियोंके होते हैं। यद्यपि प्रत्येक दशामें वीर्य्याणुसे जाति निर्णय नहींकी जा सकती परन्तु बहुतसी जातियोंको उनके वीर्य्याणुओं से पहचान सकते हैं। विभिन्न जातियोंके कोषोंकी बनावटमें भी कहीं कहीं अन्तर रहता है। गर्भ धारण की और सन्तान जननकी एकसी परिस्थिति रहनेके कारण आकृतियोंमें उतनी समानताका आ जाना सम्भव है जितनीकी हम जीवोंमें पाते हैं। हमारे अनुमानसे तो एकाध ही गुण इस सृष्टि वैचित्र्य का आधार है और उस गुणके आधारकी आकृतिमें भी रूपकी बहुत एकता है। इस कारण जीव जन्मके जितने समीप होंगे उनकी आकृतिमें उतनी ही अधिक समानता होगी और विकासवादके अनुसार दो वीर्य्याणु और अण्डों (egg) में सबसे अधिक समानता होनी चाहिए जैसा कि प्रायः नहीं होता।

कुछ जीव अपने जीवनकालमें कई कई रूप बदलते हैं और कुछ जीवोंकी जीवनयात्राको उनके जातिका इतिहासभास कहा जाता है। विकासवादको मान कर यह कहना कठिन है कि इस प्रकारकी विशेषताएं सर्वव्यापक क्यों नहीं हैं। क्या इस प्रकारकी घटनाएं जिनकी व्यक्तिगत जीवनमें पुनरावृत्ति होना माना जाता है, केवल कुछ जाति विशेषके जीवनमें ही संघटित हुई होंगी। उत्कृष्ट जातियां यदि निकृष्ट जातियोंसे ही विकसित हुई हैं तो उनमें व्यक्तिगत जीवनकाल बहुत ही विचित्र होना चाहिए क्योंकि उन संस्कारोंका प्रभावाभास जो विकास पथमें उनके जीवन पर हुए थे कमसे कम गर्भ अथवा शैशव अवस्थामें तो अवश्य प्रकट होने चाहिए। मानव जाति सबसे उत्कृष्ट समझी जाती है परन्तु कुछ निकृष्ट जातियोंकी जीवन कथा उससे कहीं अधिक जटिल है। ऐसा हो सकता है कि (जातियोंकी स्वतन्त्रताको मानते हुए) जातिके जीवनपथमें परिस्थितियां सदा एक सी नहीं रहीं—भिन्न भिन्न विकार होते रहे, वे विकार जातिको अनियमित सीमा तक प्रभावान्वित नहीं कर सके और जो लीला हम देखते हैं वह उन संस्कारोंका अवशेष मात्र है।

यह सब होते हुए भी आप पूछ सकते हैं कि यह जो कृषकों, मालियों और पशुओंके पालने वालोंने जंगली जातियोंको लेकर स्वेच्छासे छाँट छाँट कर एकसे अनेक परिवर्त्तित तथा परिवर्द्धित जातियोंको उत्पन्न कर लिया है—यह क्या सब योंही हो गया है। डार्विन साहबने इस विषय पर बहुत जोर डाला है और यह भी कहा है कि उनकी विचार धाराका वही प्रभावशाली निर्देशक भी था। इस विषय पर उन्होंने बहुत परिश्रम और खोज की है और बहुत सारी सामग्री प्रस्तुत कर दी है। जातियोंमें एक विशेष सीमा तक विकार हो सकता है जिन जातियों का कृषि इत्यादिमें उपयोग हुआ है उन जातियोंकी संख्या शेष सजीव संसारके आगे नहीं के बराबर है, यह भी सम्भव है कि कुछ जातियां बहुत अधिक और वेगके साथ विकृत हो सकती हों। तिस पर भी मनुष्यने अधिक नवीन जातियोंकी सृष्टि नहीं की है—उपजातियाँ ही अधिक बनी हैं। दूसरे मनुष्यके द्वारा जो विकार होते हैं वह स्थायी नहीं होते—विकृत जातियोंकी अपने पुराने रूपकी अधिक प्रवृत्ति रहती है। एक बात और है, यदि प्राणि संसारमें यह विकार क्रिया व्यापक होती तो कृषकोंके खेतोंमें मालियोंके उद्यानोंमें और पशुपालकोंकी पशुशालाओंमें सजीव संसारकी प्रत्येक जातिको तोड़ मरोड़ कर

कई करोड़ों नवीन जातियां अथवा उपजातियाँ बना ली गई होतीं।

दूसरी बात है प्रयोगों द्वारा और निसर्गमें जातियोंकी उत्क्रान्ति तथा विक्रान्ति। डी-रीजने ईनोथेरा लैमार्किनो (oenothera lamarkana) कोलेकर अच्छा. गोलमाल किया है। यद्यपि यह और कुछ दूसरे उत्क्रान्ति (mutation) के उदाहरण अपनी ऊपरी उपयोगिता पर स्वीकार भी कर लिए जांय तब भी उनके पीछे जो पायेबन्दी की गई है वह किसी प्रकार उचित प्रतीत नहीं होती। वह एक अपवादके रूपमें है न कि सर्वव्यापक नियमके। किसी बातकी संभाव्यता एक बात है। उसकी सम्भावना दूसरी बात है और उसका घटित होना तीसरी बात। माना कि सजीव संसार की आधी करोड़ जातियोंमें आधीदर्जन अथवा आधी कोड़ी जातियोंमें ऐसा गुण हुआ। यह भी माना कि कभी कभी जातियां अपने उस गुणके अनुसार व्यवहार करती रहें परन्तु इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि उनको यह क्रिया भूतमें अवश्य ही हुई हैं। सारांश यह है कि इन उदाहरणोंके बल पर यह कभी सिद्ध नहीं होता कि भूतमें वह व्यापार अवश्य ही हो चुका है जिसकी संभावना केवल सिद्धही की जासकती हैं वरन् जिसको प्रत्यक्ष करके दिखलाया भी जा सकता है। यह एक बड़ी भारी भूल (fallacy) है और इस विषयके बड़े बड़े पंडितो ने या तो इसे जांचा नहीं या जानबूझ कर दूसरों पर भली भांति प्रकाशित नहीं किया।

भूमि-विज्ञान (Geology) का साक्ष्य। इस सम्बन्ध में दो बातें हैं। एक तो पृथ्वीकी आदि दशाका विचार दूसरे पुराजीव (palaeentology) सम्बन्धी विज्ञान।

जब पृथ्वी बननेके पश्चात् इस दशाको पहुंच गई कि उस पर प्राणिवर्ग रह सकें तब सजीवसृष्टिका आविर्भाव किस प्रकार हुआ होगा। विकासवादके अनुसार तो केवल एक आदि जीवसे (अथवा इससे कुछ अधिक) सारे चराचर जगतकी उत्पत्ति का अनुमान लगाया जाता है। प्राणके प्रथमसंचारके सम्बन्ध को वे एक गूढ़ रहस्य बतलाते हैं। यदि आदिमें एक जीवकी उत्पत्ति हो सकती थी तो अनेक की भी हो सकती थी—ऐसा माननेके लिए कोई भी स्वतन्त्र कारण नहीं कि सृष्टिके आदिमें एकसे अधिक जीवकी रचना हो ही नहीं सकती थी।

प्राणियोंके जो अवशेष भूगर्भमें मिले हैं उनसे क्या सिद्ध हो सकता है? वास्तवमें संसृतिवादके लिए यह सबसे कठिन समस्या है परन्तु उसका सुलझानाभी इतना असंभव नहीं है जितना कि विकासवादियोंने बना रखा है। निःसन्देह विकासवादके पक्षमें यह एक बहुत प्रबलसा प्रमाण दीखता है परन्तु हमको इसकी वास्तविकताकी विवेचना करने की आवश्यकता है।

भू गर्भसे जो अतीतकालके प्राणियोंके अवशेष पूर्ण वेज्ञान वेत्ताओंको उपलब्ध हो सके हैं वह उस सामग्रीका जो अभी तक भूगर्भमें गर्भित हो सकी है एक बहुतही क्षुद्र अंश हैं। जितना सृष्टिका प्रसार किसी कालमें इस भूमण्डलपर रहता है उसके एक बहुत ही क्षुद्र अंशको वसुधाके अन्तरिक्षमें शाश्वत निद्रा लाभ होती है। शेष अपनी अस्थिर जीवन लीलाको समाप्त कर सदाके लिये इस असार संसारसे विलुप्त हो जाते हैं। उनके भाग्यमें यह भी नहीं बदाकि किसी आनेवाले युद्धमें उनके अवशेषचिह्नों को लेकर हम तुम झगड़ें। डार्विन साहबने स्वयं इस कमी को स्वीकार किया है। और इस बात पर भी जोर दिया है कि इतिहासकी उपलब्ध सामग्री को ही इतिहास नहीं मान बैठना चाहिये। दूसरे जिस अनुपातसे प्राणीवर्गको विभिन्न जातियां आज इस भू क्षेत्र पर रह रहीं हैं सदा उसी अनुपातसे नहीं रहीं। यदि किसी जाति की वर्तमान जन संख्या बहुत कम है। तो वह उतनाही कम अपने चिह्नोंका अवशेष छोड़ेगी। और भविष्यमें उनके पाये जानेकी उतनीही कम संभावना रहेगी। कभी कभी ऐसा भी होता है कि भू गर्भसे नये नये विचित्र फ़ासिल (fossil) मिलते हैं। मनुष्य पिंजरका विस्तारभी कोई

५० सहस्र वर्ष पीछे तक पहुँच चुका है। ऐसी दशामें यह कहना कि जिस जातिके चिन्ह अब तक दृष्टिगत नहीं हुए उसका इस धरातलपर आस्तित्व कभी न रहा होगा, उचित नहीं जान पड़ता। भूगर्भ विज्ञान भूमिके अतीत इतिहासकी खोज करता है। भूगर्भ वेत्ताओंने इस सौर समयको चार कल्पों और १८ युगोंमें विभाजित किया है। पृथ्वीकी आयु अनुयायी मानतः कोई दो अरब वर्षोंके लगभग बताई जाती है। धरातलके निचले परतोंमें प्राणियोंके जो चिह्न मिलते हैं उनमें एक विशेषता पायी जाती है। प्रत्येक युगकी सृष्टि और शेष युगोंकी सृष्टिसे विशेष है। एक युगके प्राणी आगे पीछेके युगसे बहुत भिन्न मिलते हैं। एक बात और भी, जैसे जैसे समय बीतता जाता है वैसे ही वैसे उत्कृष्टतर जातियां आती चली जाती हैं। इन सबकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसका उत्तर यह है कि प्राचीनतमकालमें भी ऐसी बहुत सी जातियोंके चिह्न मिलते हैं जिनकी बनावट बहुत ही उन्नत है (यद्यपि इतनी उन्नत नहीं जितनी कि रीढ़वाले पशुओंकी) उस कालकी कुछ जातियां अपने उसी रूपमें अबतक कहीं कहीं पाई जाती हैं। सर्वव्यापी विकासवादके आगे वे कैसे अब तक अपने उसी रूपमें बनी रहीं, यह कुछ भी समझमें नहीं आता। इस बातके माननेमें कोई आपत्ति नहीं दीखती कि उस समय तो सजीव संसारमें बहुतेरे उन्नत प्राणी रहते थे। प्राचीनतम-कालके चिह्न विशेषतया जीवों तथा जन्तुओंके ही हैं वृक्षोंके नहीं। बिना उद्भिज वर्गके जीव जन्तुओं-का निर्वाह नहीं होता। इस कारण अवश्य ही उन जन्तुओंसे पहिले कुछ न कुछ वृक्ष उनके जीवन यापनको अवश्य रहे होंगे। उनका अभी तक विशेष पता नहीं चला, परन्तु इसी कारण उनके अस्तित्वको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अनुमानतः, सब जातिके जीव प्रत्येक कालमें रहे हैं और परिस्थिति अनुकूल होने पर उनकी इतनी संख्या बढ़ गई है कि उनके चिह्न अब तक मिलते रहते हैं। एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। भू-गर्भ इतिहास देखनेसे ऐसा जान पड़ता है कि एक कालके जीवोंका एक दम विनाश होकर नये युगमें बिल्कुल नवीन सृष्टिका आविर्भाव हुआ है। डार्विन साहबने यह कह कर इसका समाधान किया है कि एक देशके रहने वाले कल्पान्तमें अथवा एक युगके पीछे ही अपने निवास स्थानसे चलकर देश देशान्तरमें फैल जाते हैं। यह अनुमान अधिक संगत नहीं दीखता दूसरे नई विचार शैलीसे सहज ही में इसका समाधान होता है:—परिस्थिति अनुकूल आने पर वह जीव बढ़ गये जो पहिलेसे मौजूद थे परन्तु उनकी संख्या बहुत न्यून थी।

डार्विन साहबने शानके साथ बार बार यह कहा है कि एक जातिका अस्तित्व मिटकर पुनरोत्थान नहीं हो सकता, यद्यपि इसके विपक्षमें प्रमाण प्रस्तुत करनेमें कठिनाई बहुत है। कारण कि जाति का निर्णय करनेमें कालका भी ध्यान रक्खा जाता है परन्तु तिस पर भी कार्ल-फान जीट्टल (Karl Von zittel) ने इस विषयके बहुतसे उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जिनसे यह भली भांति प्रकट हो जाता है कि कोई कोई वर्ग तीन तीन बार तक इस संसारसे निर्वाण पाकर नया जीवन लेकर आगये हैं।

भौगोलिक विस्तार:—वर्तमान युगमें बहुतसे वृक्ष और जीव ऐसे हैं जो एक देशीय हैं। अतीतकालमें भी इस प्रकारकी बहुतसी सृष्टि थी। कुछ जातियोंके प्राणि ऐसे भी हैं जो सर्वदेशीय हैं और पहलेभी इस प्रकार की जातियां इस भूमंडल पर रही हैं। प्रत्येक देशके अधिवासियोंका अपना कुछ न कुछ निरालापन है; न केवल देश देशकी भिन्नताही इसका कारण है वरन् धरातलकी ऊँचाई, नीचाई का भी उनके स्वभाव पर प्रभाव पड़ता है। यदि चौरस मैदानमें किसी प्रान्तमें एक प्रकार की सृष्टि है तो पर्वत पर प्रायः और प्रकार की। मरुस्थलमें जैसे प्राणी हैं वैसे समुद्र गर्भमें नहीं। इन बातोंको कैसे विकासवादके अनुकूल समझा गया है, यह तो समझनेवालेही जानें, परन्तु इस सम्बन्धमें जो तत्व

हैं उनकी विवेचना करना अनुपयुक्त न होगा। जब सृष्टिका आरंभ एकही प्रकारके जीवसे हुआ तो आज कलके देशदेशान्तरोंमें जातियोंके इस विचित्र सम्मिश्रणका क्या कारण है? इस सम्बन्धमें यह बातभी ध्यानमें रखनी है कि युग युगान्तरमें पृथ्वी की भौगोलिक परिस्थिति कैसी रही है। भूमि ज्ञान वेत्ताओंके इस सम्बन्धमें दो मत प्रचलित हैं। एकके अनुसार महासागरों और महाद्वीपोंकी स्थतिमें भारी अन्तर नहीं आया है परन्तु वैग्नर (Wagner) के अनुसार आदिमें सब महाद्वीप एक भूमि भागमें थे औरमहासागर दूसरेमें। किसीयुगमें इस आदि भूभागके खंड खंड होकर महाद्वीप एक दूसरेसे और दूर होते हुए दक्खिनसे उत्तर की ओर चले जा रहे हैं। सृष्टि का भौगोलिक विस्तार उस प्रकार होना बहुत सम्भव है सही, जैसा डार्विन साहेब ने उल्लेख किया है परन्तु उससे विकासवाद की पुष्टि नहीं होती। एक केन्द्रसे चलकर ऐसा विचित्र जाल बन जाना सरल काम नहीं। दूसरे आदि युगमें ही भूमंडल पर सब जगह प्राणियों की पहुँचहो चुकी थी—उनके लिए डार्विन साहबके बताए उपाय लागू नहीं होते। अन्तमें यह माने बिना कि उस आदि युगमें भी आरम्भसे ही प्राणियोंका बाहुल्य रहा होगा काम नहीं चलता।

किस प्रकारके संस्कार माता पितासे संततिमें आते हैं इनको पिछले ६५-३० वर्षों से बड़ी छान बीन हो रही है—इस खोजके श्रीगणेशका श्रेय मण्डल पर है, डार्विनके समय यह विषय एक प्रकारसे अंधकारमें ही था। उन पर विस्तार-पूर्वक लिखना इस लेखका ध्येय नहीं है। और विकासवादके किसी सिद्धान्तमें उनकी विवेचना किए बिना भी काम नहीं चल सक्ता। इस कारण आगे समयानुसार इसकी आलोचना की जायगी। दो एक साधारणसी बातें अबभी लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है। विकासवादके अनुसार आदि सृष्टि आलिङ्गिक थी, जाति विस्तार मानसिक उत्पत्ति (पुराणोंकी भाषा) अथवा देहखण्ड व्युत्पत्ति द्वारा होता था। विकास पथ और विकास क्रिया आदिकालमें वर्तमानकालसे बहुत भिन्न और मन्द रहे होंगे। विषयी सृष्टिमें भी जीवोंकी प्रवृत्तिमण्डल के सिद्धान्तके अनुसार अपने-पैतृक संस्कारोंकी ओर पलटा खानेकी रहती है। जीवगणित (Biometry) की खोजके अनुसारभी यही निष्कर्ष निकलता है कि एक निश्चित सीमासे अधिक परिवर्तन प्राणियोंमें नहीं होता और इन सबसे संसृतिवाले अनुमानकी पुष्टि होती है।

इस लेखमें एक बात पर और विचार करके इसे पूरा कर देना है और वह है जीवन विज्ञान सम्बन्धी विषय भौतिक शक्तियोंका प्रायः सजीव जगतमें एक सा ही प्रभाव होता है और जितने कालसे प्राणोवर्ग एकसी परिस्थितिमें रह रहे हैं उसको देखते हुए यह कोई विलक्षण बात नहीं रह जाती। प्राणिवर्गकी देहमें कुछ लवणों (salts) की मात्रा इस अनुपातमें है जिससे इस धारणाकी पुष्टि होती है कि देह धारियों का आदि निवास समुद्र रहा हो। इस विषयमें एक बात ध्यान देने योग्य है खनिज विज्ञानविदोंके मतानुसार कोई ग्यारह तत्व ऐसे हैं जिनसे धरातल का ९९ प्रतिशत भाग बना है वह परिमाणानुसार ये हैं।

(१) ओषजन
(२) शैलम्
(३) स्फटम्
(४) लोहम्
(५) खटिकम्
(६) सैन्धकम्
(७) पांशुजम्
(८) मगनीसम्
(९) स्फुर
(१०) हरिन्
(११) गन्धक

इस सूचीमें टिटेनम् (Titanum) को छोड़ दिया गया है। विचित्रता यह है कि यही ग्यारह मुख्य तत्व खनिजोंमें से सजीव देहमें भी पाये जाते हैं केवल शैलम्की जगह कर्बन (carbon) ने लेली है। कर्बन ही सेन्द्रिय वर्ग का एक भांति मूल तत्व

है। इस रहस्य पर कि पृथ्वीके शैलम्की जगह कर्बन ने कैसे लेली फिर विचार किया जायगा। इससे विकासवाद्के पक्ष की कुछ पुष्टि नहीं होती वरन यही प्रमाणित होता है कि भोजनके अनुसार ही प्राणि-वर्गकी देहमें भी इनका संचार हो गया होगा।

एक अन्तिम बात और रह गई। प्राण रसायन् (Biochemistry) की खोजसे यह बात जानी गई है कि जिन जातियों का रुधिरका सम्बन्ध है उनमें एक के रुधिरका दूसरेके रुधिरमें सम्मिश्रण करने पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। जिन जातियोंका दूरका सम्बन्ध है उनके रुधिरमें यह प्रभाव नहीं होता इस अवनितत्र पर जो जातियां एक दूसरेसे सम्बन्धित अथवा पास रहीं उनकी जीवन क्रिया भी सामान्यतः समान ही है अथवा अतीतमें समान रही है और इस कारण उनके रुधिरमें इस प्रकारकी समता आ गई है कि एक प्राणीके रुधिरका दूसरे प्राणीके रुधिर पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

इस छोटेसे लेखमें टेकनिकल उदाहरणोंका उद्धृत करना कठिन था। प्रत्येक विषयकी सुव्यवस्थित और विस्तृत अलोचना करनेके लिए तथा अपने मतके प्रतिपादित करनेके लिए एक बहुत पुस्तककी आवश्यकता है। इसमें केवल सार रूपमें कुछ संक्षिप्त परिचय देनेकी चेष्टाकी गई है। मुझे शंका है कि मेरी शैली इतनी सुस्पष्ट नहीं हुई है कि जिन भावोंको मैंने व्यक्त करनेकी चेष्टाकी है वह ही भाव पाठक वृन्द भी निकालेंगे। कुछ और विविध आक्षेप जो विकास बाद के सिद्धान्त पर आरोपित किये जा सकते हैं अगले लेख में देनेकी चेष्टा की जायगी।

पौधा और बीज

(ले० श्री पं० शंकरराव जोशी)

सार में ऐसा कौन व्यक्ति है, जो वनस्पतिसे परिचित नहीं। अन्न, वस्त्र आदि अधिकांश जीवनोपयोगी पदार्थ हमें, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष में, बनस्पति से ही प्राप्त होते हैं। यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि—वर्तमान सभ्यता और वैज्ञानिक युगका सब दारोमदार वनस्पति संसार पर ही है। कहें तो कह सकते हैं कि प्राणियों का जीवन वनस्पति पर ही अवलंगित है।

वनस्पति विज्ञान या तरु-विज्ञान, विज्ञान की उस शाखा को कहते हैं, जिसके द्वारा पौधे या तरु के जीवन, रूप-रंग, रचना, आकार, पुनरुत्पादन आदि का ज्ञान प्राप्त होता है।

साधारण बोलचाल में पौधा शब्द बहुत ही संकुचित अर्थ में प्रयोग किया जाता है। किन्तु वनस्पति विज्ञान में पौधा शब्द बहुत ही व्यापक अर्थ का द्योतक है। बनस्पति विज्ञान की दृष्टि से आम, बड़, ज्वार, गेहूँ, खमीर, कई, कुकुरमुत्ता आदि बनस्पति संसार का प्रत्येक व्यक्ति पौधा कहा जाता है।

बनस्पति संसार के प्रत्येक व्यक्ति में पुनरुत्पादन शक्ति विद्यमान रहती है। अतएव व्यक्ति के मर जाने पर भी उसकी जाति नष्ट नहीं हो पाती है। भिन्न भिन्न जाति के पौधों में, पुनरुत्पादन की क्रिया भिन्न-भिन्न रीति से सम्पन्न होती है। अधिकांश पौधों की देह में पुनरुत्पादन के लिए विशेष अवयव होते हैं, जिन्हे पौधे की जननेद्रिय कहते सकते हैं।

अलजी, कुकुरमुत्ता, फर्न आदि पौधों की जननेन्द्रिय इतनी सूक्ष्म होती है कि अनुवीक्षण यंत्र के बिना दिखाई ही नहीं देती हैं।

वनस्पति-संसार दो वर्गों में विभक्त है—१ सपुष्प वर्ग २ अपुष्प वर्ग। ज्वर, गेहूँ, चना, आम, सन, नारङ्गी आदि पौधे, जिन पर फूल खिलते हैं, सपुष्प वर्ग के हैं। जिन पौधों पर फूल नहीं खिलते वे अपुष्प वर्ग के हैं। अमर पत्ती, अमरबेल, कुकुरमुत्ता आदि पौधे अपुष्प वर्ग के हैं।

सपुष्प वर्गको किसी बनस्पतिको जड़ समेत उखाड़ कर देखने से चार मुख्य अवयव—जड़, तना, पत्ते और फूल दिखाई देंगे। जीवन व्यापारको सुचारु रूपेण सम्पन्न करनेके लिए पौधेके प्रत्येक अवयव को भिन्न-भिन्न कार्य सम्पन्न करने पड़ते हैं। पौधेके प्रथम तीन अवयव—जड़, तना और पत्ते, पोषण कार्य सम्पन्न करते हैं, अतएव इनको पोषक अवयव नाम दिया गया है। फूलका एकमात्र काम सन्तानोत्पत्ति करना है। इसलिए इसको जननेन्द्रिय या पुनरुत्पादक या सन्तानोत्पादक अवयव कहते हैं।

जड़ तना और पत्ते भिन्न आकार और रूप रङ्गके होते हैं। अतएव वनस्पति विज्ञानसे अपरिचित व्यक्ति को, इन्हें देखकर, धोखा हो सकता है। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे जल्दी पहचान लिए जाते हैं।

बीज और उसका अंकुरित होना

सपुष्प वर्गसे अधिकांश पौधे बीज से ही पैदा होते हैं। इसलिए सबसे पहिले बीजका ही निरीक्षण किया जाना चाहिये।

कृषि विज्ञानकी दृष्टिसे पौधेका प्रत्येक भाग, जो खेतमें बोया जाता है, बीज कहाता है। इस दृष्टिसे मक्का, गेहूं, ज्वार आदि के दाने, गन्ने के टुकड़े, शकरकंद की बेलों के टुकड़े, अमर पत्ती का पत्ता, आलू अरबी आदिकी गांठोंके टुकड़े जिनको जमीनमें बोनेसे नवीन पौधा पैदा होता है बीज कहे जाते हैं। किन्तु बनस्पति शास्त्र की दृष्टि से ये बीज नहीं कहे जा सकते। बीज शब्द की व्याख्या आगे चलकर की जायगी।

चना, मूंगफली, अण्डी, सेम, मटर आदिमें से किसी बीजको लेकर निरीक्षण कीजिए। हम सेमके बीजको लेते हैं। सेमका बीज कड़े छिलकेसे ढका रहता है। इस छिलकेको बाह्याच्छादन या वाह्यावरण कहते हैं। बीजके एक सिरेपर काला धब्बा है। यह काला दाग उस स्थानका द्योतक है, जहां बीज फली से जुड़ा हुआ था। इस काले धब्बेके एक सिरे पर एक सूक्ष्म छिद्र है, जिसे 'गर्भद्वार' कहते हैं। बीजके अंदर छिपे हुए गर्भस्थ पौधेकी प्रारम्भिक जड़की नोक गर्भद्वारकी ओरको झुकी रहती है। भीगे हुए बीजको कपड़ेसे पोंछ कर हलके हाथसे दबाया जावे; तो सूक्ष्म छिद्र या गर्भद्वारमेंसे पानीके बुलबुले निकलेंगे।

बीजको थोड़ीदेरके लिए गरम पानीमें भिगो दो। इससे उसके ऊपरका छिलका नरम हो जायगा। इस छिलकेको सावधानी से हटा दिया जाय, तो भीतर की दालें निकल आवेंगी। ये दालें मिली हुई होंगी। इन दोनों दालोंके बीचमें गर्भस्थ पौधा छिपा हुआ है। दालोंकी एक बाजू पर नोकदार गांठ सी दिखाई देगी। दोनों दालोंको अलग करके निरीक्षण करो। इन दालोंको बीज-पत्र या दल-पत्र कहते हैं। एक दाल पर गर्भस्थ पौधा दिखाई देगा। गर्भस्थ पौधेका नुकीला भाग प्रारम्भिक मूलसे जुड़ा हुआ प्रारम्भिक तना है। यदि प्रारम्भिक तनेको तालसे देखा जायगा, तो उसके सिरे पर सूक्ष्म पत्तोंका गुच्छा दिखाई देगा यह गुच्छा ही पौधेकी प्रारम्भिक कलिका है; जो आगे चल कर तना, शाखा, फूल आदिको जन्म देती है। प्राम्भिकमूल, प्रारम्भिक तना और दोनों दालें मिलकर 'गर्भस्थ-तरु' या 'गर्भ' कहलाते हैं।

अब गेहूँके दानेको लेकर निरीक्षण कीजिए। सेमके बीजसे कई बातोंमें भिन्न है। साधारण बोलचालमें गेहूँके दानेको ही बीज कहते हैं,

किन्तु वास्तवमें देखा जाय, तो यह बीज नहीं, फल है किन्तु फिलहाल हम इसको बीज मान कर ही चलते हैं। गेहूं के बीजकी एक बाजू गोल है और दूसरी बाजू पर लम्बा चीरा है। गोल बाजूसे नीचेकी ओर को एक शलदार स्थान है, जो कुछ उठा हुआ होता है। गरम पानीमें भिगोये हुए बीजको चीरेपर चाकू रखकर काटा जाय, तो मालूम हो जायगा कि उठा हुआ भाग 'गर्भ' है। इसमें भी प्रारंभिक तना, प्रारंभिक मूल और बीज दल मौजूद हैं। इसमें एक ही बीज-दल दिखाई देगा। गर्भ बहुत ही छोटा होता है, अतएव प्रारंभिक तना आदि भाग स्पष्ट नहीं दिखाई देते हैं। बीज के अंकुरित होने पर ही गर्भ के भिन्न-भिन्न अंग दिखाई देते हैं। गेहूँका गर्भ बीजका एक छोटा सा भाग है। बीजका शेष भाग तन्तु-पुंज है, जिसे गर्भ-भोज्य कहते हैं। पहले गर्भ-भोज्यको एलब्यूमिन कहते थे। अतएव जिस बीजमें गर्भ-भोज्य और गर्भ दोनों ही होते हैं, उसे अलब्यूमिनस कहते हैं। सेमके बीजमें गर्भ-भोज्य नहीं होता है, अतएव उसे 'एक्स एलब्यूमिनस' कहते हैं।

अब मक्काके बीजको लेकर जाँच करो। गेहूँ और मक्काके बीजके रूप-रंग और आकारमें फर्क है। मक्काके दानेके नीचेके सफेद और नुकीले भागमें गर्भ है। मक्काके दानेको गरम पानीमें भिगोकर तेज चाकू या छुरेसे काट कर तालसे देखो। इसका गर्भ, गर्भ-भोज्यसे ढका रहता है। मक्काके दानेमें एक ही बीजदल होता है। बीजदलसे बाहरकी ओरको, ऊपर का भाग प्रारंभिक-तना है, और नीचेका भाग प्रारंभिक मूल। मक्काके गर्भमें भी सभी अंग मौजूद होते हैं।

सपुष्पवर्गके अधिकांश पौधे सेम या गेहूँकी जातिके होते हैं। चना, उड़िद, मूँग, तूअर, मूँगफली, अरण्डी, सरसों, कद्दू, तुरई, आम, इमली आदि पौधे सेमकी जातिके हैं। सेमके बीजको तरह इन बीजोंमें भी दो दालें होती हैं। अतएव इनको द्विदल या द्विपत्रक या दालवाले पौधे कहते हैं। जौ, धान, ज्वार आदिके बीजोंमें गेहूंकी तरह एक ही दल होता है। अतएव इनको 'एक-दल' या 'एक पत्रक' पौधे कहते हैं।

नोट—शिक्षकको चाहिए कि सेम, मटर, कद्दू, करेला, सरसों, तीसी, नारंगी, अरण्डी गेहूँ, चना, मूँगफली, सूरजमुखी, बाजरा आदि भिन्न भिन्न प्रकारके बीजोंको चौबीस घंटे तक पानीमें भिगो रखनेके बाद, खड़े और आड़े काटकर छात्रोंको दिखलावे। बीज तेज छुरेसे बहुत सावधानीसे काटे जाने चाहिए। थोड़ी सी असावधानीसे गर्भके कोमल और सूक्ष्म अंग नष्ट हो जाते हैं।

बीजका अंकुरित होना

अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होते ही बीज अंकुरित होने लगता है। तरी, तापक्रम और वायुकी अनुकूलताके बिना बीज अंकुरित ही नहीं होता है। अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होते ही गर्भमें परिवर्तन होने लगता है और तब गर्भस्थतरु शिशुरूपमें बीजसे बाहर निकल आता है। इस नवजात पौधेको शिशु-तरु नाम दिया गया है।

उगते समय बीजमें होने वाले परिवर्तन और शिशुतरुके बढ़नेकी रीतिका अवलोकन किए बिना भीतरी रहस्य मालूम नहीं हो सकता है। कारण कि, भिन्न भिन्न प्रकारके बीज जुदी जुदी रीतिसे उगते हैं। अतएव भिन्न भिन्न प्रकारके बीजोंको बकस या गमलेमें साफ रेती, या लकड़ीका बुरादा भरकर बीज बोये जायँ। शालाओंने छात्रोंको दिखलानेके लिए मोटे ब्लाटिंग पेपर (स्याही सोखता कागज) में बीज बोये जा सकते हैं। गीले मोटे स्याही सोखतामें बारह घंटे तक पानीमें भिगोये हुए बीज रख दिये जायँ। लकड़ीका बुरादा, रेत या स्याही सोखताको गीला बनाये रखना चाहिये। इसके बाद ये किसी साधारण गरम जगहमें रख दिये जाँय। कुछ समय बाद बीज उगने लगेंगे। सेमका बीज पहले फूल जायगा और

तब ऊपरका छिलका गर्भद्वारके पाससे फट जायगा। प्रारंभिक मूल, जो हलके पीले रंगकी होती है, बढ़कर बीजके फटे हुए भागमें से बाहर निकल आयगी। प्रारंभिक मूल धीरे धीरे जमीनकी ओर बढ़कर मिट्टीके अन्दर घुस जायगी। यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जड़ हमेशा जमीनकी ओरको ही बढ़ती है। बीज आड़ा, टेढ़ा, खड़ा या कैसा ही क्यों न बोया जाय, जड़ हर हालतमें जमीन की ओरको ही बढ़ेगी। बीजोंको उलटे, सीधे, आड़े, खड़े और तिरछे बोकर निरीक्षण करनेसे जड़की यह विशेषता अच्छी तरहसे मालुम हो सकती है। इसका कारण है पृथ्वीकी आकर्षण शक्ति पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्तिका असर जड़की नोक पर ही पड़ता है। यदि नोक काट दी जाय, तो जड़ जमीन की ओरको न बढ़कर सीधी बढ़ेगी।

प्रारम्भिकमूलके बाहर निकल आनेके कुछ समय बाद हरा प्रारंभिक तना दिखाई देने लगेगा। शुरूमें यह हुककी तरह टेढ़ा होता है; किन्तु शीघ्र ही सीधा होकर ऊपरकी ओर को बढ़ने लगेगा। किसी गमलेमें पौधा बोकर उसे आड़ा डालदो और निरीक्षण करो। कुछ रोज़बाद मालुम हो जायगा कि पौधेका तना हमेशा ऊपर को ही बढ़ता है। खेत या क्यारीमें उगे हुए पौधेको ज़मीन पर सुलाकर उसके तने पर वजन रख दो। कुछ रोज़बाद तनेका अग्र भाग आकाशकी ओरको उठा हुआ और बढ़ता हुआ नजर आवेगा।

प्रारंभिक तनेका सिरा पत्तियोंसे ढका हुआ होता है। ज्यों ज्यों तना बढ़ता जाता है, ये पत्तियां भी बड़ी होती जाती हैं और धीरे धीरे अलग होकर फैल जाती हैं। बीजके अन्दरकी दालें बीजमें ही रह जाती हैं। बीजको निकालकर देखनेसे पता लग जायगा कि दालें पतली होगईं और सिकुड़ गई हैं। कारण यह है कि जब तक नवजात पौधेकी जड़े, जमीनमेंसे खूराक सोखनेकी शक्ति नहीं प्राप्त कर लेती है, तब तक नवजात पौधेका पोषण दालोंमें संचित भोजन पर ही होता रहता है।

सेम और सरसोंके बीज एकही तरहसे उगते हैं। कद्दू, सूरजमुखी आदिके बीज सरसोंकी तरहही उगते हैं। सेम और सरसोंके बीजोंमें इतनाही फर्क है। कि सरसों, कद्दू, सूरजमुखी आदिके बीज-पत्र प्रारंभिक तनेके साथ बाहर निकल आते हैं। और हरा रंग ग्रहण कर लेते हैं। सेमके बीजके बीजदल जमीनके अंदरही रह जाते हैं। हरे बीज-पत्र पौधेके अक्ष के साथ ऊपर बढ़ने लगते हैं। यही पौधे सर्वप्रथम पत्ते हैं। इन पत्तोंके आकार और प्रारंभिक तनेके सिरे परकी पत्र-कालिकामेंसे निकलनेवाले पत्तोंके आकारमें बहुत फर्क होता है।

द्विदल जातिके सभी पौधे सेम या सरसोंकी तरहही उगते हैं। गेहूँ, ज्वार, मक्का, आदि एक-पत्रक जातिके पौधोंके बीजोंको उगाकर देखनेसे सेमके बीज और इन बीज़ोंके उगनेकी रीतिमें बड़ा भेद दिखाई देगा। ऊपर बतला आये हैं कि सेमकी प्रारंभिक मूल लम्बी बढ़ती हैं। किन्तु गेहूँ, मक्का आदि एक-पत्रक पौधोंकी जड़ें लम्बी नहीं बढ़ती हैं। गेहूंकी प्रारंभिक मूल पर कलिका जैसी तीन गांठें निकलती हैं। इन गाठोंमेंसे पतले तन्तु जैसी जड़ें निकलकर जमीनमें प्रवेश करती हैं। ध्यान-पूर्वक देखनेसे मालुम हो जायगा कि ये पतले लघु-मूल, प्रारंभिक मूलसे ही पैदा हुए हैं। प्रारंभिक मूल एक कोषसे ढकी रहती है। इस कोष को मूलावरण कहते हैं। लघुमूल इस आवरणको चीर करही बाहर निकलती है। यह आवरण लघु मूलके आधारके चारों तरफ कालरकी तरह चिपटा रहता है। प्रारंभिक तनेका प्रथम पत्ता नलिकाके आकारका होता है, जिसके अन्दर दूसरे पत्ते लिपटे रहते हैं। प्याज आदि एक-पत्रक जातिके कुछ पौधे ऐसे हैं, जिनका बीजदल प्रारंभिक तनेके साथ जमीनसे बाहर निकल आता है। एक पत्रक पौधोंके बीज गेहूँकी तरहही उगते हैं। गेहूँके बीजके साथ मक्काके बीजको उगाकर परीक्षा करना चाहिए। गेहूँ राल ब्यूमिनस बीज है। जडोंके जमीनमेंसे भोजन ग्रहण करनेकी शक्ति प्राप्त करने

तक नवजात तरुका पोषण गर्भ-भोज्य पर ही होता है।*

खटिकम्, स्त्रंशम् और भारम्

(Calcium, Strontium and Barium)

(ले० श्री सत्यप्रकाश, एम. एस-सी.)

आवर्त्त संविभगके द्वितीय समूहमें क-वंशीय चार तत्त्व हैं—खटिकम्, स्त्रंशम्, भारम् और रश्मिम्। जिस प्रकार प्रथम समूही शोणम्, सैन्धकम्, और पांशुजम् आदिके गुण परस्पर में बहुत मिलते जुलते हैं, इसी प्रकार द्वितीय समूही इन तत्त्वोंके गुण भी आपसमें बहुत मिलते जुलते हैं। इनके परमाणुभार आदि गुण नीचे दिये जाते हैं :—

तत्त्व	संकेत	परमाणुभार	घनत्व	द्रवांक
खटिकम्	ख	४०·७०	१·५५/२९	७८०°
स्त्रंशम्	स्त	८७·६३	२·५४	९००°
भारम्	भ	१३७·३७	३·७५	८५०°
रश्मिम्	मि	२२६·०	—	—

स्त्रंशम्का परमाणुभार खटिकम् और भारम्के परमाणुभारोंका औसत है। $\frac{१३७·३७+४०·०७}{२}$=८८.७२ रश्मिम् अन्य तत्त्वोंकी अपेक्षा अधिक दुष्प्राप्य है। इसके समान बहुमूल्य पदार्थ अन्य कोई नहीं है। एक औंस रश्मिम्का मूल्य उतना ही है जितना १$\frac{३}{४}$ पौंड हीरा, $^१/_४$ टन परराप्यम् या ३$\frac{३}{४}$ टन सोनेका मूल्य होता है। यहाँ हम केवल खटिकम्, स्त्रंशम्, और भारम्का ही वर्णन देंगे।

प्राकृतिक लवण

खटिकम् लवण सैन्धकम् लवणोंकी अपेक्षा भी अधिक विस्तारसे पाये जाते हैं, पत्थरोंमें खटिक शैलेत अनेक रूपमें विद्यमान रहते हैं। दांत और हड्डियोंमें खटिक स्फुरेत होता है। इसके अतिरिक्त संगमरमर, खड़िया मिट्टी आदि में खटिक कर्बनेत होता है।

कुछ मुख्य लवण नीचे दिये जाते हैं।

अरागोनाइट—खकओ$_३$
डोलोमाइट—खम (कओ$_३$)$_२$
जिप्सम्—खगओ$_४$, २उ$_२$ ओ
फ्लोरस्पार—खप्ल$_२$
चूनेका पत्थर—खकओ$_३$
कैलकस्पार—"

एपेटाइट—३ख$_३$ (स्फुओ$_४$)$_२$ + खप्ल$_२$

स्त्रंशम् सं० १८४७ वि० में स्त्रंशियन नामक ग्रामके एक खनिज पदार्थमें पाया गया था। इस ग्राम परही इस तत्त्वका नाम पड़ा है। कर्बनेत, गन्धेत आदि लवणोंके रूपमें यह तत्त्व पाया जाता है। इसके मुख्य प्राकृतिक लवण निम्न हैं :—

स्त्रंशियनाइत—स्तकओ$_३$
सिलस्टाइन—स्तगओ$_४$

भारम् तत्व भारीस्पार (हैवीस्पार) में पाया जाता है जिस पर इसका नाम पड़ा है। भारीस्पार भार गन्धेत, भगओ$_४$ होता है। विदेराइट खनिजमें यह भार कर्बनेत, भकओ$_३$ के रूपमें विद्यमान है।

खटिकम्, स्त्रंशम् और भारम् धातु

खटिकम्धातु—कर्बनकी ईटोंके बने हुए पात्रमें १०० भाग खटिक हरिद और १६·५ भाग फ्लोरस्पारके मिश्रणको ६६०°श पर पिघलाकर विद्युत् विश्लेषण करके खटिकम् धातु तैयार किया जाता है। लोहेका

---

* लेखककी वनस्पति विज्ञान नामक अप्रकाशित पुस्तक से उद्धृत—

ऋणोद होता है। इस पर खटिकम् धातु जमा हो जाती है। यह चांदीके समान श्वेत पदार्थ है इसका घनत्व आदि ऊपरकी सारिणीमें दिया जा चुका है है। यह घनवर्धनीय है और ओषजनमें तेजी से जल सकता है। गन्धक, हरिन् ओषजन आदिमें भी संयुक्त हो सकता है। जलके संसर्गसे यह धीरे धीरे सैन्धकम्के समान उदौषिदमें परिणत हो जाता है:—

ख + २उ₂ओ = ख(ओउ)₂ + उ₂ ओ

नोषजनके प्रवाहमें रक्त तप्त करनेसे खटिक नोषिद, ख₃ नो₂ बनता है। यह खटिक नोषिद भापके संसर्गसे अमोनिया देने लगता है।

ख₃ नो₂ + ६ उ₂ ओ=३ ख (ओउ)₂ + २नोउ₃

रक्त तप्त तापक्रम पर उदजनसे संयुक्त होकर यह खटिक उदिद, ख उ₂ देता है।

स्त्रंशम् और भारम् धातु भी खटिकम्के समानही विद्युत् विश्लेषण द्वारा तैयार किये जाते हैं और इनके गुण भी खटिकम् के समान हैं।

संयोग तुल्यांक—जिस प्रकार सैन्धकम् और पांशुजम् के संयोग तुल्यांक निकाले जाते हैं उसी प्रकार खटिकम् स्त्रंशम् और भारम्के भी। इनके हरिदोंको रजतनोषेत से अवक्षेपित करके रजतहरिद की मात्रा से संयोग तुल्यांक निकाले जाते हैं। खटिक कर्बनेत को उच्च तापक्रम पर खटिक ओषिदमें परिणत करके भी खटिकम्का संयोग तुल्यांक निकाला जा सकता है। इस प्रकार तीनोंके निम्न तुल्यांक प्राप्त हुए हैं:—

खटिकम्	२०.०३५
स्त्रंशम्	४३.८१५
भारम्	६८.६८५

खटिकम् का आपेक्षिकताप ०.१७ है अतः इस कारण परमाणु भार $\frac{६·४}{०.१७}$=३७·६ केलगभग है अर्थात् परमाणुभार संयोग तुल्यांकका दुगुना होना चाहिये। २०.०३५ × २=४०.०७ खटिकम्का परमाणुभार हुआ इस प्रकार खटिकम् द्विशक्तिक है।

भारमका आपेक्षिक ताप ०·०५ है अर्थात् परमाणुभार $\frac{६·४}{०·०५}$ =१२८ के लगभग हुआ। अतः यह भी द्विशक्तिक है और इसका निश्चित परमाणुभार ६८·६८५ × २=१३७·३७ है।

स्त्रंशम् धातुको शुद्ध रूपमें प्राप्त करना कठिन है अतः इसका ठीक ठीक आपेक्षिकताप नहीं ज्ञात हो सकता है। यह गुणोंमें खटिकम् और भारम्के ही समान है अतः अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि यह भी द्वि-शक्तिक होगा और इसका परमाणुभार ४३·८१५ × २=८७·६३० होगा

ओषिद और उदौषिद

खटिक ओषिद—खओ—दाहकचूना—चूनेके पत्थर, अर्थात् खटिक कर्बनेत को उच्च तापक्रम तक गरम करनेसे खटिक ओषिद अर्थात् चूना प्राप्त होता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है :—

खकओ₃ = खओ + कओ₂

इस कामके लिये चूनेकी बड़ी बड़ी भट्टियां तैयार की जाती हैं जिसमें चूनेके पत्थरके टुकड़े कोयलोंके टुकड़ोंके साथ मिलाकर इस प्रकार सजाये जाते हैं कि वायुके लिये मार्ग बना रहता है। कोयलेमें आग लगादी जाती है। कर्बन द्वि-ओषिद और अन्य वाष्पें निकल भागती हैं। इस प्रकार चूनेके पत्थरको जलाकर चूना तैयार किया जाता है।

यदि यही प्रक्रिया किसी निश्चित तापक्रमपर बन्द भट्टीमें की जाय अर्थात् प्रक्रियामें जनित कर्बन द्वि-ओषिद भगा न दिया जाय तो पत्थर पूर्ण रूपसे चूनेमें परिणत नहीं हो सकता है। यह प्रक्रिया विपर्ययित हो जाती है :—

कओ$_2$ + खओ ⇄ खकओ$_3$

अर्थात् प्रक्रियामें जनित कर्बनद्वि-ओषिद खटिक ओषिदपर प्रभाव डालता है और फिर खटिक कर्बनेत बन जाता है।

दाहक चूना श्वेत चूर्ण है जो केवल विद्युत्-भट्टीमें ही पिघलाया जा सकता है। पानीके संसर्गसे यह बुझे हुए चूने अर्थात् खटिक उदौषिद ख (ओउ)$_2$ में परिणत हो जाता है :—

खओ + उ$_2$ ओ = ख (ओउ)$_2$

इस प्रक्रियामें काफ़ी गरमी निकलती है। इस उदौषिदको जलके साथ हिलानेसे दूधिया घोल प्राप्त होता है जिसे दूधिया चूना कहते हैं। चूनेके पानीमें कर्बनद्विओषिद प्रवाहित करनेसे यह अनघुल खटिक कर्बनेतमें परिणत हो जाता है बुझे हुए चूने को पानीके साथ सानकर मकानोंके बनाने योग्य मजबूत चूना प्राप्त होता है। यह वायुमंडलसे कर्बनद्विओषिद अभिशोषित करके कड़ा हो जाता है और ईंटें एक दूसरेसे जमकर जुड़ जाती हैं।

बुझा हुआ चूना गरम पानी की अपेक्षा ठंडे जलमें अधिक घुलनशील है। इस घोलको चूनेका पानी कहते हैं। यदि खटिक हरिद, ख ह$_2$, के तीव्रघोलमें दाहकक्षार सै ओ उ, का घोल डाला जाय तो खटिक उदौषिद, ख (ओ उ)$_2$ अवक्षेपित हो जायगा क्योंकि यह उदौषिद जलमें अधिक घुलनशील नहीं है।

ख ह$_2$ + २ सै ओ उ = २ सै ह + ख (ओ उ)$_2$

स्त्रंश और भारओषिद, स्त्र ओ, भ ओ— स्त्रंश कर्बनेत और भारकर्बनेत खटिक कर्बनेतकी अपेक्षा अधिक स्थायी हैं, और गरम करने पर भारकर्बनेत तो रक्ततप्त—तापक्रम पर भी विभाजित नहीं होता है और स्त्रंशकर्बनेत केवल उच्चतापक्रमों पर ही थोड़ा सा विभाजित हो जाता है। भारकर्बनेतके कोयलेके साथमिलाकर रक्ततप्त करके जलवाष्प प्रवाहित करनेसे भार उदौषिद अवश्य मिल सकता है:—

भकओ$_3$ + क + उ$_2$ओ = भ (ओउ)$_2$ + २ कओ

भारनोषेतको गरम करके भारओषिद बनाया जाता है और स्त्रंशनोषेतको गरम करके स्त्रंशओषिद बनता है—

भ (नो ओ$_3$)$_2$ = भ ओ + नो$_2$ ओ$_5$

जलके संसर्गसे ये ओषिद उदौषिदमें परिणत हो हो जाते हैं:—

भ ओ + उ$_2$ ओ = भ (ओ उ)$_2$

स्त्र ओ + उ$_2$ ओ = स्त्र (ओ उ)$_2$

ये उदौषिद भी तीव्रक्षार होते हैं।

भारओषिद, भओ और स्त्रंशओषिद, स्तओ को ओषजनके प्रवाहमें गरम करनेसे भारपरौषिद, भओ$_2$ और स्त्रंशपरौषिद स्तओ$_2$ प्राप्त होता है। भारपरौषिद को और अधिक गरम करनेसे यह भारओषिदमें फिर परिणत हो जाता है।

२ भ ओ + ओ$_2$ = २ भ ओ$_2$

कर्बनेत

यह कहा जा चुका है खटिक कर्बनेत चूनेके पत्थर, खड़िया संगमरमर आदिके रूपमें पाया जाता है। अरागोनाइट, कैल्कस्पार आदि इसके प्राकृतिक खनिज हैं। इन सबका रासायनिक रूप तो एक ही है पर इनके रवे पृथक् पृथक् आकार के होते हैं। कैल्कस्पार सबसे अधिक शुद्ध षड् तलीय पारदर्शक रवों वाला होता है। खड़िया मिट्टी कुछ छोटे सामुद्रिक जीवोंके शरीरका भग्नावशेष भाग है। ये जीवसामुद्रिक जलमें घुले हुए खटिक कर्बनेत परनिर्भर रहते हैं और उससे अपनी हड्डियोंका निर्माण करते हैं। मर जानेके पश्चात् यह अस्थिपिंजर ही इतना संचित हो जाता है कि खड़िया मिट्टीके ढेर के ढेर बन जाते हैं। खड़िया मिट्टी छिद्रदार पदार्थ है। चूनेके पत्थर पर ही अधिक दबाव और ताप पड़नेके कारण कदाचित् संगमरमर बन जाता है।

खटिक कर्बनेत जल में बहुत ही कम घुलनशील है पर जलमें कर्बनद्विओषिद घुला हो तो यह

आसानीसे घुल जाता है। प्रक्रियामें सम्भवतः खटिक-अर्धकर्बनेत ख (उकओ$_3$)$_2$ बन जाता है—

खकओ$_3$ + उ$_2$ओ + कओ$_2$ = ख(उकओ$_3$)$_2$

जलकी अस्थायी कठोरताका भी यही कारण है जैसा कि पानीका वर्णन करते समय लिखा जा चुका है।

स्त्रंशनाइतके रूपमें स्त्रंशकर्बनेत, स्त्रकओ$_3$ मिलता है और विदेराइटके रूपमें भार कर्बनेत। इनके गुण खटिक कर्बनेतके समान हैं। ये भी जलमें अनघुल हैं।

खटिक, स्त्रंश, और भार-हरिद

खटिकहरिद—ख ह$_2$—खटिक कर्बनेतको उद-हरिकाम्लमें डालनेसे कर्बनद्विओषिद गैस निकलने लगती है और खटिक हरिद बन जाता है। घोलको वाष्पीभूत करके सुखाते हैं और फिर उच्च तापक्रम पर पिघलाते हैं इस प्रकार अनार्द्र खटिक हरिद मिल जाता है:—

खकओ$_3$ + २उह = खह$_2$ + उ$_2$ओ + कओ$_2$

खटिक हरिद शीघ्रही जल सोख लेता है और हवामें खुला रखनेसे पसीजने लगता है। इस गुणके कारण यह नम गैसोंके सुखाने के काममें आता है अमोनिया को इसकी सहायतासे शुष्क नहीं कर सकते हैं क्यों अमोनिया इससे संयुक्त होकर [खह$_2$८नोउ$_3$] नामक अस्थायो यौगिक देता है। जलमें घुलनेसे अधिक ताप जनित होता है और घोल गरम हो जाता है। इसके वाष्पीभूत होने पर [खह$_2$६उ$_2$ओ] के रवे पृथक होने लगते है।

रङ्ग विनाशक चूर्ण—खटिक ओष हरिद, ख ओ ह$_2$—इसका उल्लेख हरिन्का वर्णन करते समय किया जा चुका है। हरिन्को बुझे हुए चूने पर प्रवाहित करनेसे यह बन जाता है।

ख (ओ उ)$_2$ + ह$_2$ = खओ ह$_2$ + उ$_2$ ओ

इस कामके लिये हरिन् दो विधियोंसे प्राप्त किया जा सकता है—(१) वैल्डन विधि, (२) डीकन विधि।

वैल्डन विधि—इस विधिमें मांगनीज़ द्विओषिद पर उदहरिकाम्लका प्रभाव डाला जाता है, प्रक्रियामें हरिन् गैस बनती है:—

मा ओ$_2$ + ४उह = माह$_2$ + २उ$_2$ओ + ह$_2$

[प्रक्रियामें जनित मांगनीज़ हरिद फिर द्विओषिदमें परिणत कर लिया जाता है। घोलके अम्लको पहले खटिक कर्बनेत डालकर शिथिल कर लेते हैं और फिर दूधिया चूना अधिक मात्रामें डालते हैं। इस प्रकार मांगनस उदौषिद अवक्षेपित हो जाता है।

माह$_2$ + ख (ओ उ)$_2$ = मा (ओ उ)$_2$ + खह$_2$

उदौषिदको बेलनाकार ओषदकारक पात्रमें भाप द्वारा धीरे धीरे गरम करते हैं और इसमें वायु प्रवाहित करते हैं। ओषदीकरण होकर इस प्रकार मांगनीज़द्विओषिद बन जाता है जो फिर हरिन् बनानेके काममें आ सकता है—

मा (ओ उ)$_2$ + ओ = मा ओ$_2$ + उ$_2$ ओ

इस प्रकार अधिक मांगनीज द्विओषिदका व्यय नहीं होता है]

डीकन विधि—यह कहा जा चुका है कि नमक पर गन्धकाम्लका प्रभाव डालनेसे उदहरिकाम्ल गैस बनती है। इसे वायुमें मिला कर ढलवां लोहेके गरम बेलनोंमें जिनमें ताम्रिकहरिद, ताह$_2$, से मिश्रित ईंटोंके टुकड़े भरे होते हैं, प्रवाहित करते हैं। इस प्रकार उदहरिकाम्लका ओषदीकरण हो जाता है।

४उह + ओ$_2$ = २उ$_2$ ओ + २ ह$_2$

यह प्रक्रिया ताम्रिक हरिदकी विद्यमानतामें थोड़ा ही गरम करनेसे हो जाती है। ताम्रिक हरिद उसी प्रकारका उत्प्रेरक है जैसे पांशुज हरेतसे ओषजन बनानेमें मांगनीज द्विओषिद होता है।

इस प्रकार किसी विधिसे हरिन् गैस बनाई जाती है। सीसा धातुके बने हुए बड़े बड़े कमरोंमें तीन चार इंच मोटी बुझे हुए चूनेकी तह बिछी रहती है। कमरेको हरिन् गैससे पूर्णतः भर दिया जाता है, और फिर इसे २४ घंटेके लगभग बन्द रखते हैं। आवश्यकता पड़ने पर बीच बीचमें और

हरिन् प्रविष्ट कराते हैं। बुझा हुआ चूना इस प्रकार हरिन्से संपृक्त कर लिया जाता है। इस प्रकार रंग-विनाशकचूर्ण तैयार हो जाता है।

स्त्रंश और भार-हरिद,-स्त ह२, ६ उ२ ओ; भह२ २उ२ ओ—स्त्रंशकर्बनेत अथवा भारकर्बनेत को उदहरिकाम्लमें घोलनेसे खटिक हरिदके समान स्त्रंशहरिद और भारहरिद प्राप्त होते हैं। खटिक हरिदमें पसीजनेके गुण होते हैं अर्थात् वायुसे यह जलको सोख लेता है पर स्त्रंशहरिदमें नोना लगजाता है (पुष्पण) अर्थात् खुला रखने पर यह अपने स्फटिकीकरणके जलाणुओंको पृथक् कर देता है। भारहरिद न तो पसीजता ही है और न इसमें नोना ही लगता है। खटिक हरिद और भारहरिद जलमें भली प्रकार घुलनशील है पर स्त्रंशहरिद इनकी अपेक्षा कम घुलनशील है। स्त्रंशहरिद निरपेक्ष मद्यमें घुलनशील है पर भारहरिद इसमें अघुल है।

खटिक, स्त्रंश और भार-गन्धेत

खटिक गन्धेत—ख ग ओ४-जिप्सम, सैलेनाइट आदि खनिजोंके रूपमें खटिक गन्धेत प्राप्त होता है। जिप्सम्, ख ग ओ४ २उ२ओ, जलमें बहुत कम घुलनशील है (१०० भाग जलमें ०.२१ भाग), यह बुझे हुए चूनेके समान गरम जलकी अपेक्षा ठंडे जलमें अधिक घुलनशील है। किसी घुलनशील खटिक लवण में किसी लवण-गन्धेतके घोलको डालनेसे खटिक गन्धेतका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है। यह निर्बल अम्लोंमें भी घुलनशील है।

जिप्सम्को गरम करके इसके स्फटिकीकरणके ३/४ जलको उड़ादेनेसे 'पेरिस का प्लास्टर' (Plaster of paris) नामक एक पदार्थ मिलता है। इस प्लास्टरमें थोड़ासा जल मिलाकर यदि रख दिया जाय तो थोड़ी देरमें यह कड़ा ठोस पदार्थ हो जाता है। इस गुणके कारण इसका उपयोग वस्तुओंको जोड़नेमें सीमेण्टके समान किया जाता है। इसके ठोस हो जानेका कारण यह है कि यह पेरिस प्लास्टर फिर जलाणु ग्रहण करके जिप्सम्में परिणत हो जाता है।

स्त्रंश गन्धेत—स्त ग ओ४ सिलेस्टाइन खनिजके रूपमें यह प्राप्त होता है। यह जलमें खटिक गन्धेतसे भी कम घुलनशील है। (१०० भागमें ० १ भाग) अतः किसी घुलनशील स्त्रंश-लवणमें किसी लवण-गन्धेतके घोलको डालकर यह पूर्णतः अवक्षेपित किया जा-सकता है। सैन्धक कर्बनेतके साथ पिघलानेसे अथवा इसके घोलके साथ उबालनेसे स्त्रंश गन्धेत स्त्रंश कर्बनेतमें परिणत हो जाता है।

भार गन्धेत भ ग ओ४-भारी स्पार इसका खनिज है। यह जल, उदहरिकाम्ल, नोषिकाम्ल आदि रसोंमें अनघुल है। भारीस्पारसे ही भारम्के अन्य लवण बनाये जाते हैं। अनघुल भार गन्धेतको घुलनशील लवणोंमें परिणत करनेके लिये इसे सैन्धक कर्बनेत की अधिक मात्राके साथ गलाते हैं। इस प्रकार भार गन्धेत भार कर्बनेतमें परिणत हो जाता है:—

$$\text{भगओ}_4 + \text{सै}_2\text{कओ}_3 = \text{भकओ}_3 + \text{सै}_2\text{गओ}_4$$
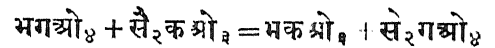
इस प्रक्रियाके लिये यह आवश्यक है कि भार-गन्धेत बहुत महीन पिसा हो और सैन्धक-कर्बनेतकी बहुत अधिक मात्राके साथ इसे गलाया जाय। यदि सैन्धक कर्बनेतमें उतनाही पांशुजकर्बनेत मिलाकर भार गन्धेतके साथ गलाया जाय तो यह प्रक्रिया और भी सरलतासे पूर्णतः हो जायगी। अनघुल लवणोंको घुलनशील लवणोंमें परिवर्तित करनेकी यह बहुतही सामान्य विधि है और इसका उपयोग बहुत किया जाता है। अस्तु, सैन्धक और पांशुज कर्बनेतके मिश्रणके साथ भार गन्धेतको गलाते हैं और गले हुए पदार्थको पानीके साथ उबालते हैं। इस प्रकार घुलनशील क्षार गन्धेत और अवशिष्ट सैन्धक-पांशुज कर्बनेत को अलग कर लेते हैं। अनघुल भार कर्बनेत रह जाता है। जिसमें भिन्न भिन्न अम्ल डालकर भिन्न भिन्न लवण बनाये जा सकते हैं।

$$\text{भकओ}_3 + 2\text{उह} = \text{भह}_2 + \text{उ}_2\text{ओ} + \text{कओ}_2$$

$$\text{भकओ}_3 + \text{सिरकाम्ल} = \text{भ (सिरकेत)}_2 + \text{उ}_2\text{ओ} + \text{कओ}_2$$
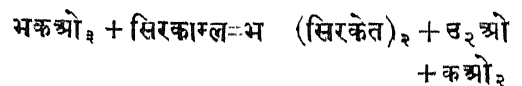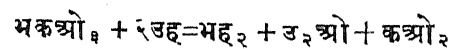
कर्बन चूर्णके साथ भार गन्धेतको गरम करने-से भारगन्धिद, भग, बनता है। सफेद वर्निशके बनानेमें भार गन्धेतका उपयोग किया जाता है।

खटिक, स्त्रंश, और भार-नोषेत

खटिक नोषेत—ख (नोओ$_3$)$_2$ खटिक कर्बनेतको नोषिकाम्लके साथ प्रभावित करके वाष्पीभूत करनेसे खटिक नोषेत प्राप्त होता है। इसमें पसीजनेका गुण है। यह निरपेक्ष मद्यमें अनघुल है। इसे गरम करनेसे खटिक ओषिद् अर्थात् चूना मिलता है। आज कल खादकी शक्तिको बढ़ाने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

स्त्रंशनोषेत और भार नोषेतभी तत्सम्बन्धी कर्ब-नेतोंपर नोषिकाम्ल द्वारा प्रक्रिया करके बनाये जा सकते हैं। स्त्रंश नोषेतमें नोना लग जाता है। इसमें स्फटिकीकरण के ४ जलाणु हैं। यह निरपेक्ष मद्यमें अनघुल है। फुलझड़ियोंमें इसका उपयोग किया जाता है क्योंकि यह ज्वालाको यह चमकदार लाल रंग देता है। भारनोषेत ज्वालाको हरा रंग देता है अतः आतशबाजीमें इसका भी उपयोग किया जाता है। यह निरपेक्ष मद्यमें अनघुल है। भारहरिद और सैन्धक नोषेतके गरम घोलोंको मिलाकर ठंडा करने पर भारनोषेतके रवे प्राप्त होते हैं।

$$भह_2 + २सै नोओ_3 = भ (नोओ_3)_2 + २सैह$$

खटिकम्के अन्य लवण

खटिक गन्धिद—खग—खटिक गन्धेतको कर्बनचूर्ण के साथ गरम करनेसे खटिक गन्धिद प्राप्त होता है—

$$खगओ_4 + ४क = खग + ४कओ$$

यह श्वेत पदार्थ है रोशनीमें थोड़ी देर रख कर यदि इसे अंधेरेमें ले जायं तो वहाँ इसमेंसे हरी दीप्ति निकलती दिखाई पड़ेगी।

खटिक स्फुरेत—खटिक स्फुरेत तीन प्रकारके होते हैं क्योंकि स्फुरिकाम्ल उ$_3$ स्फुओ$_4$ त्रिभस्मिक है। सामान्य और एक उदजन स्फुरेत जलमें अनघुल हैं पर द्विउद्जन स्फुरेत ख (उ$_2$स्फुओ$_4$)$_2$ घुलनशील है।

सामान्य खटिक स्फुरेत ख$_3$ (स्फुओ$_4$)$_2$—यह हड्डियोंमें पाया जाता है। यह जलमें अनघुल है पर यदि जलमें नमक अमोनियम हरिद घुला हो तो यह घुल जाता है। जली हुई हडडियोंको गन्धकाम्ल द्वारा प्रभा-वित करनेसे खटिक द्विउदजन स्फुरेत प्राप्त होता है—

$$ख_3 (स्फुओ_4)_2 + २उ_2 ग ओ_4$$
$$= ख उ_4 (स्फुओ_4)_2 + २ख ग ओ_4,$$

इसका उपयोग खादके रूपमें किया जाता है।

खटिक कर्बिद—ख क$_2$—चूने या चूनेके पत्थरको कोक या एन्थ्रेसाइट कोयलेके साथ विद्युत् भट्टीमें गरम करके खटिक कर्बिद तैयार किया जाता है—

$$ख ओ + ३क = ख क_2 + क ओ$$

इसका उपयोग सिरकीलिन गैसके बनानेमें बहुत किया जाता है। जलके संसर्गसे यह निम्न प्रकार सिरकीलिन, क$_2$ उ$_2$, देता है—

$$ख क_2 + २उ_2 ओ = ख (ओ उ)_2 + क_2 उ_2$$

खटिक श्यामिद, ख क नो$_2$—खटिक कर्बिदको नोषजनमें गरम करनेसे जोरोंकी प्रक्रिया होती है और खटिक श्यामिद बन जाता है—

$$ख क_2 + नो_2 = ख क नो_2 + क$$

इसका भी खादमें उपयोग किया जाता है। यह भूमिमें जलके संसर्गसे अमोनिया देता है जिसका उपयोग वृक्ष-पौधे करते हैं।

$$ख क नो_2 + ३उ_2 ओ = ख क ओ_3 + २नो उ_3$$

खटिक काष्ठेत—ख क$_2$ ओ$_4$—खटिक लवणोंमें यह सबसे अधिक अनघुल पदार्थ है। किसी घुलनशील खटिक लवणमें अमोनियम-काष्ठेतका घोल डालनेसे खटिक काष्ठेतका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता। यह नोषिकाम्ल, उदहरिकाम्ल आदि प्रबल अम्लोंमें घुलनशील है पर सिरकाम्लके समान निर्बल अम्लोंमें अनघुल है। गरम करनेसे यह खटिक कर्बनेतमें परिणत हो जाता है, जिसे और अधिक उच्चतापक्रम पर गरम करनेसे खटिक ओषिद, या चूना प्राप्त होता है—

$$ख क_2 ओ_4 = ख क ओ_3 + क ओ$$
$$ख क ओ_3 = ख ओ + क ओ_2$$

ज्वालाओंका रङ्ग

खटिकम्के यौगिक उदहरिकाम्ल द्वारा नम करनेके पश्चात् परौप्यम्के तार पर यदि ज्वालामें गरम किये जायं तो गेरुआ रंग की ज्वाला देते हैं। स्त्रंशके यौगिक चमकदार लाल ज्वाला देते हैं और भारम्के यौगिक सेबके रंगकी हरी ज्वाला देते हैं।

तीनोंके मिश्रणकी पहिचान

यदि किसी मिश्रणमें खटिकम् भारम् और स्त्रंशम् तीनोंके यौगिकोंके होनेकी सम्भावना हो तो उनकी परीक्षा इस प्रकारकी जा सकती है —

मिश्रणमें से पहले अनघुल हरिद और गन्धिद अलग कर लो और फिर इसमें अमोनियम कर्बनेतका घोल डालो। इस प्रकार खटिक, स्त्रंश-और भार-तीनोंके कर्बनेतो का अवक्षेप प्राप्त होगा। इस अवक्षेप को छान लो और फिर इसमें हलका गरम सिरकाम्ल डालकर कर्बनेतोंका घोल लो। घोलमें पांशुज द्विरागेत डालो ऐसा करनेसे भारदागेतका पीला अवक्षेप प्राप्त होगा। निम्न सारिणीके अनुसार परीक्षा करो।

<table>
<tr><td rowspan="2">अवक्षेप—पीला
भारम्—विद्यमान। परौप्यम् तार द्वारा यह हरी ज्वाला देगी।
पीले अवक्षेपको उदमें घोलो और उ$_2$ गओ$_4$ डाला तो अनघुल भगओ$_4$ का अवक्षेप मिलेगा।</td><td colspan="2">घोल—इसमें अमोनियम गन्धेत डालकर गरम करो और घोलको दस मिनट रखो।</td></tr>
<tr><td>अवक्षेपः श्वेत
स्त्रंशम्—विद्यमान। परौप्यम् तार द्वारा यह चमकदार लाल ज्वाला देगा।</td><td>घोलः इसमें अमोनियम् काष्ठेत डालो यदि श्वेत अवक्षेप आवे तो खटिकम्की विद्यमानता समझनी चाहिये।</td></tr>
</table>

इस प्रकार तीनोंकी परीक्षा की जा सकती है।

जड़ और उसका उपयोग

(ले० श्री पं० शंकरराव जोशी)

धेके अक्षका पत्रहीन भाग जो जमीनमें प्रवेश करके वहीं फैलता और वृद्धि पाता है, जड़ या निम्नाक्ष कहाता है। जड़ ज़मीनके अंदर प्रवेश करके पौधे को मजबूतीसे थामे रहती है।

जड़ की विशेषताएँ—जड़ें अन्तर्जात होती हैं। इनकी बाढ़ भीतरी तन्तुओंसे होती है। जड़ों पर पत्ते नहीं निकलते हैं और न कलिकाएँ ही पैदा होती हैं। जड़का बढ़नेवाला अग्र टोप जैसे आवरणसे ढका रहता है, जिसको मूल कोष कहते हैं। जड़के अग्र-भाग पर महीन रोएँ होते हैं। अधिकांश जड़ें प्रकाशसे परे पैदा होती हैं। तनेमें ये विशेषताएं नहीं होती हैं।

सेम, चना, आम आदि द्वि-दल जातिके पौधोंके बीजके अंकुरित होने पर प्रारंभिक मूल बढ़कर जमीनके अन्दर प्रवेश करती है। इसे मुख्य जड़ कहते हैं। मुख्य जड़ पर कई छोटी छोटी जड़ें शाखा रूपमें निकलकर जमीनमें चारों ओर फैल जाती है। इन छोटी जड़ों पर और भी जड़ें निकल आती हैं और इस प्रकार जड़ों पर शाखा प्रशाखाएँ निकलती रहती हैं।

मूसला जड़—यदि मुख्य जड़ बढ़कर मजबूत होजाय और उस पर शाखा जड़ें निकलती रहें, तो

उसे मूसला जड़ कहते हैं। यथा चने और कपास की जड़। कुछ पौधोंमें यह जड़ बहुतही मोटी और माँसल होती है।

एक पत्रक पौधोंकी प्रारंभिक जड़ ज्यादा लम्बी नहीं बढ़ती है और न मोटी ही होती है। पौधोंकी मुख्य जड़के पासही बहुतसी छोटी और पतली जड़ें निकल आती हैं, जो सूत्र जैसी होती हैं। इनको झाँखरा जड़ कहते हैं। यथा ज्वार, मक्का, गेहूँ की जड़ें।

मुख्य जड़ पर जो शाखा जड़ें निकलती हैं, उन्हें गौण जड़ें कहते हैं। गौण जड़ें मुख्य जड़की तरह सीधी नहीं बढती हैं यह दिगन्त सम या तिरछी बढ़ती है। गौण जड़ें मिट्टीके कणोंके बांध देती हैं। गौण जड़ों पर जो शाखा जड़ें निकलती हैं, उन्हें सहायक जड़ें कहते हैं। ये जड़के चारों तरफसे निकलकर मिट्टीके शून्य स्थानमें फैल जाती हैं।

ज्वार, मक्का, बड़ आदि कुछ पौधों के वायवीय अङ्गोंमेंसे जड़ें निकलकर जमीनमें घुस जाती हैं। इनको वायवीय जड़ें नाम दिया गया है। अंगूर की वायवीय जड़ें हरे रंगकी होती हैं। ये हवामेंसे जल ग्रहण करके पौधेको देती हैं। कई जाति के आर्चिड पौधे वृक्षोंकी शाखाओं पर उग आते हैं और उनकी जड़ें हवामें लटकती रहती हैं, या शाखाओं पर फैल जाती हैं। किन्तु ये जड़ें, जिस पौधे पर फैलती हैं, उसकी देहमेंसे भोजन नहीं ग्रहण करती हैं। ये जड़े हवामेंसे भोजम ग्रहण करती हैं। इनको उपरिजात मूल कहते हैं।

जो वायवीय जड़ें पौधेको सहारा देकर ऊपर चढ़नेमें सहायता देती हैं, वे चिमटनेवाली या 'श्लेषी जड़ें' कही जाती है। बहुतसे पौधोंकी जड़ें जलमें उतराया करती हैं इन्हें जलीयमूल नाम दिया गया है। जलीय जड़ों पर रोम नहीं होते हैं।

कुछ पौधोंकी जड़ें, दूसरे पौधेकी देह प्रवेश पर उसके शरीरमेंसे भोजन ग्रहण करती हैं। इन जड़ोंको परोपजीवी मूल कहते हैं। अगिया घास जैसे कुछ पौधे ऐसे हैं, जिनकी कुछ जड़ें तो मिट्टीमें से भोजन ग्रहण करती हैं और कुछ दूसरे पौधेकी देह मेंसे, ये जड़ें अर्धपरोपजीवी कही जाती हैं।

दूब आदि कुछ पौधे ऐसे हैं, जिनकी शाखाएं जमीन पर फैलतीं और ग्रंथि पर जड़ पकड़ लेती हैं। मूँगफलीकी शाखाएँ भी ग्रंथि पर जड़ पकड़ लेती हैं। कंद, कंदल और जमीन पर फैलने वाले पौधोंके तने पर भी शाखाएं निकल आती हैं। गुलाब, कनेर आदि पौधोंकी शाखाएं भी, काटकर जमीनमें लगा देनेसे ग्रंथि पर जड़ें छोड़ती हैं। इस प्रकार निकलने वाली जड़ें आगन्तुक जड़ें कही जाती हैं। आगन्तुक-मूल पतली होती हैं। यदि ये फूलकर मोटी हो जाँय, तो कन्दल-सम कही जाती हैं।

परिवर्तित मूल

ऊपर लिख आये हैं कि कई मूसला-जड़ वाले पौधोंकी मुख्य जड़ें मोटी और माँसलहो जाती हैं इन जड़ोंमें भोज्य सामग्री जमा रहती है, जो प्रारंभिक वृद्धिके समय पौधेका पोषण करती है। भोजनकी कमीके ज़मानेमें ये पौधे मूलमें संचित भोजन पर जीवित रहते और वृद्धि पाते हैं। अधिकतर द्विवर्षायु पौधोंकी जड़ें ही मोटी और मांसल होती हैं। ये जड़ें भिन्न भिन्न आकार ग्रहण कर लेती हैं।

१—मूलकाकार जड़ वह है, जो तने और सिरे पर पतली और बीचमें मोटी होती है। यथा मूली की जड़।

२—गोपुच्छाकार जड़ तनेके पास मोटी और सिरे पर पतली होती है यथा गाजरकी जड़।

३—शलजमाकार जड़का आकार शलजम जैसा होता है।

जड़ोंका कार्य—जड़ें जमीनके अन्दर प्रवेश कर पौधेको मजबूतीसे थामें रहती हैं जमीनमें से भोजन और पानी ग्रहण कर पौधेकी देहमें पहुँचने का काम भी जड़ोंके ही जिम्मे है। और इसीलिए

पौधोंको पादप संज्ञा दी गई है। मांसल और मोटी जड़ें अन्न भंडारका काम देती है।

जड़ें जमीनमें स्थिर नहीं रहती हैं। उनके वृद्धि-शील अग्र भोजनकी तलाशमें मट्टीके अंदर इधर उधर भटकते रहते हैं। जड़ें उसी दिशामें अग्रसर होती हैं, जिधर उनके मार्गमें कमसे कम रुकावट होती हैं। जड़ें तरीकी तलाशमें ही घूमती हैं अतएव सूखी जमीनकी ओर कभी नहीं बढ़ती हैं।

जड़के अग्रभाग पर वृद्धिशील अंगसे कुछ ऊपर महीन नली जैसे रोम होते हैं मूलके भोजन ग्रहण करनेकी रीति पर विचार करते समय मूल-रोम पर भी विचार किया जायगा।

पौधेका भोजन—जड़ें जमीनमें से भोजन किस प्रकार ग्रहण करती हैं इस पर कुछ लिखनेसे पहिले पौधेके भोज्य पदार्थों पर विचार करना अप्रासं-गिक न होगा।

सजीव पौधेके सभी अंगोंमें एक बड़ा भाग जलका होता है। कोश-रसका तो यह एक मुख्य अंग ही है और कोश भित्तिका, जीवन-रस और मंडको गीला बनाये रखता है। प्रत्येक पौधेमें जलका परिमाण न्यूनाधिक होता है और एक ही पौधेके भिन्न भिन्न अंगोंमें या एक ही पौधेमें भिन्न भिन्न ऋतुओंमें इसकी मिकदार कम ज्यादा पाई जाती है। पके बीजमें $\frac{1}{5}$ भाग पानी रहता है और कम उम्रके पौधोंमें १० प्रतिशत तक जल पाया जाता है।

किसी पौधेको जमीनमें से उखाड़ कर तौलिए और तब उसे धूपमें अच्छी तरहसे सुखा लीजिए। सूखे हुए पौधेको तोलनेसे मालूम हो जायगा कि उसमें कितने प्रतिशत पानी था। सूखे हुए पौधेका वजन, उन यौगिक पदार्थोंका—शकरा, मंड, तुलीन आदिका वजन है, जिनसे पौधा बना है। इनको कार्बनिक, सेंद्रिय या जैव पदार्थ कहते हैं। ये पदार्थ कर्बन, उदजन, ओषजन, नोषजन और गंधक नामक पाँच तत्वोंसे बने होते हैं। कुछ पौधोंमें तेल भी पाया जाता है। तैल, कर्बन और उदजनसे बना होता है। शर्करा, मंड तुलीनमें इन दोनों तत्वोंके अलावा ओषजन भी रहती है। जीवन-रस आदि इन पांचों तत्वोंसे योगसे बने होते हैं। ऊपरके विवेचनसे यह नहीं मान लिया जाना चाहिये कि पौधेकी देहमें केवल यही पदार्थ वर्त मान रहते हैं। पौधेकी देहमें और भी तत्व पाए जाते हैं। सूखे हुए पौधेको जलानेसे ओषजन, उदजन, नोषजन और कर्बन, जलवाष्प, कर्बन द्विओषिद, अमोनिया आदिके रूपमें वातावरणमें जा मिलेंगे और राख बच जायगी। इस राखका विश्लेषण करनेसे पता चलेगा कि उसमें पांशुज क्षार, चूना, मगनीसम, लोहा, स्फुर, सैन्धकम्, मांगनीज़, हरिन्, शैलम् आदि तत्व वर्तमान हैं। इनको खनिज तत्व या अकार्बनिक पदार्थ नाम दिया गया है।

सूखे हुए पौधेमें उक्त सभी तत्व न्यूनाधिक परिमाणमें पाये जाते हैं। कर्बन, ओषजन, उदजन और नोषजन अधिक मात्रामें पाये जाते हैं और खनिज तत्व कम मात्रामें। सूखे हुए पौधेमें खनिज तत्व प्रतिशत २ से ७ तक पाये जाते हैं। राखमें पाये जानेवाले खनिज तत्व या अकार्बनिक पदार्थ पौधेको देहमें होनेवाले रासायनिक परिव-र्तनमें सहायता देते हैं। इन्हींसे कार्बनिक पदार्थका निर्माण होता है। प्रयोगोंसे यह बात साबित हो चुकी है कि ये तत्व पौधोंकी वृद्धिमें सहायक होते हैं।

प्रयोग—एक सेर पानीमें पांशुजनोषेत (पोटै-शियम नाइट्रेट) १ माशा, सैन्धक हरिद (सोडियम क्लोराइड) $\frac{1}{2}$ माशा, खटिक गन्धेत (केलशियम सलफेट) $\frac{1}{2}$ माशा और मगनीस गन्धेत (मेगनेशियम सलफेट) आधा माशा डालदो और तब उसे एक बोतलमें भरदो। एक दूसरी बोतलमें खालिस जल भर दो। रेती, लकड़ीका बुरादा या गीले स्याही सोखतामें उगाए हुए मक्का या गेहूँके एक एक बीजको हर एक बोतलमें लगा दो। पौधेकी जड़ोंको पानीमें डुबाए रखकर बोतलका मुँह कार्कसे बन्द

कर दो। कुछ रोज तक दोनों बोतलोंमें बोये हुए पौधोंका निरीक्षण करते रहो। थोड़े दिन बाद मालुम हो जायगा कि खनिज-तत्वोंयुत पानीसे भरे हुए बोतल का पौधा ठीक तरहसे बढ़ रहा है और खालिस पानीवाले बोतलका पैाधा धीरे धीरे कमज़ोर होता जा रहा है।

इस प्रकारके प्रयोगोंसे साबित हुआ है कि पैाधेकी खूराकमें लोहेका होना बहुत जरूरी है। कारण कि इसके बिना हरित नहीं बन सकता है। पांशुजक्षार (पोटैश) के अभावमें पैाधेमें मांडी नहीं बन सकती है। घास आदि कुछ पैाधोंमें शैल (सिलिका) वर्तमान रहता है और कुछ पैाधोंमें सैन्धकम् (सोडियम) भी पाया जाता है। किन्तु पैाधोंकी बाढ़के लिए इनका होना जरूरी नहीं है।

ऊपर पैाधेके मुख्य मुख्य भोज्य पदार्थों पर विचार कर आये हैं। अब इस बात पर विचार किया जायगा कि पैाधेको कौनसा पदार्थ कहाँसे प्राप्त होता है।

कर्बन—सूखे हुए पैाधेमें करीब आधा भाग कर्बन पाया जाता है। जिन पैाधोंके पत्ते हरे होते हैं या जिनके पत्तोंमें हरित वर्तमान रहता है, वे वातावरणमें के कर्बन-द्वि-ओषिदमें से कर्बन ग्रहण करते हैं। कर्बन-द्वि-ओषिद, एक भाग कर्बन और दो भाग ओषजनके योगसे बना होता है। वातावरणके प्रति दस हजार भागमें चार भाग कर्बन-द्वि-ओषिद पाया जाता है। सारे विश्वकी वनस्पतिके लिए यह मिकदार बहुत ही कम है। अतएव यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि संसारकी वनस्पतिकी मांग किस प्रकार पूरी होती होगी। प्रकृतिने इसका अच्छा इन्तिजाम कर दिया है। संसारमें असंख्य वनस्पति और प्राणी हैं। ये प्रतिदिन कर्बन-द्वि-ओषिद उच्छ्वास द्वारा वातावरणमें छोड़ते हैं। इसके अलावा पदार्थोंके सड़ने, गैस, कोयला, दीपक, लकड़ी, आग आदिके जलनेसे भी प्रति दिन बहुतसा कर्बन द्विओषिद वातावरणमें मिलता रहता है। यही कारण है कि वातावरणमें कर्बनका परिमाण घटने नहीं पाता है। पैाधे अपने आसपास की हवामेंसे कर्बन लेते रहते हैं और हवाके प्रवाहके साथ बहकर आने वाली कर्बन-द्वि-ओषिद उस [illegible] कमीको पूरी करती रहती है।

पानी के अन्दर उगी हुई वनस्पति जल में घुली हुई कर्बन द्वि-ओषिदसे कर्बन ग्रहण करती है।

उद्जन—वातावरणमें उद्जन कम परिमाणमें पाया जाता है। यह गैस ओषजनमें मिलनेपर जल बनाती है। जड़ों द्वारा जमीन में से सोखे हुए जल से ही पौधा उद्जन ग्रहण करता है। जल के साथ सोखे हुए लवणों में से भी पौधे को उद्जन प्राप्त होता है।

ओषजन—सूखे हुए पौधेमें कर्बनको छोड़कर दूसरे सब तत्वोंसे ओषजनकी मात्रा ही अधिक रहती है। पौधेको जड़ों द्वारा सोखे हुए जलसे ओषजन प्राप्त होता है। पत्तों द्वारा वातावरणमें से ग्रहण किये हुए कर्बन-द्वि-ओषिदमें से पौधा ओषजन ग्रहण करता है।

नोषजन—सूखे हुए पौधेमें इसका परिमाण प्रति शत तीनसे अधिक नहीं पाया जाता है। वातावरणमें नोषजन मौजूद रहता है किन्तु द्वि-दल-जाति के पौधोंके अलावा, दूसरे पौधे उसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं। जो पौधे वातावरणमें से नोषजन ग्रहण नहीं कर सकते हैं, वे मिट्टीमें के नोषेतसे ही नोषजन प्राप्त करते हैं। नोषेत, मिट्टीमें के जलमें घुल जाते हैं और जड़े उन्हें सोखकर पौधेकी देहमें पहुँचा देती हैं।

कार्बनिक पदार्थोंके सड़नेसे जमीनमें अमोनिया के यौगिक बनते हैं। हरे पौधे अमोनियाके यौगिक को ग्रहण नहीं कर सकते हैं, सिर्फ फंगस पौधे ही इन को ग्रहण करनेकी शक्ति रखते हैं। मिट्टीमें वैक्टेरिया या अति सूक्ष्म कीटाणु रहते हैं। ये अमोनिया को नाइट्रेट (नोषेत) में बदल देते हैं। हरे

पौधे नत्रेतके रूप में ही नोषजन ग्रहण कर सकते हैं।

द्वि-दल जातिके पौधोंकी जड़ों पर छोटी छोटी गाठें होती हैं, जिनमें बैक्टेरिया रहते हैं। ये कीटाणु वातावरणमेंके नोषजन को कार्बनिक नोषेतमें बदल कर पौधोंको देते हैं, और यही कारण है कि जिन खेतोंकी मट्टीमें नोषेत नहीं होता है, उनमें भी द्वि-दल वर्गकी फसलें बोई जा सकती हैं। कीट भक्षक पौधोंको नोषजन कीड़ेकी देहमेंसे प्राप्त होता है।

जमीनमें अकार्बनिक या खनिज पदार्थ भी पाये जाते हैं। ये जमीनके अंदर घुलनशील अवस्थामें रहते हैं। हरितयुत अधिकांश पौधे अपनी खूराक जल, कर्बन द्वि-ओषिद, नोषेत, गधेत, स्फुर और अन्य खनिज लवणोंके रूपमें ही प्राप्त करते हैं। पौधे हरितकी सहायतासे इन अकार्बनिक पदार्थों को, शर्करा, मंड, प्रोटीड आदि भोज्य पदार्थोंमें बदलते हैं और इन्हीं पदार्थोंके रूपमें पौधा भिन्न भिन्न तत्वोंको ग्रहण करता है। यही पौधेके भोज्य पदार्थ हैं।

जड़ों द्वारा भोजन ग्रहण करना

ऊपर पौधेके भोज्य पदार्थोंका वर्णनकर आये हैं। अब इस बात पर विचार करेंगे कि पौधों की जड़ें जमीनमेंसे भोजन किस प्रकार ग्रहण करती हैं।

खेतोंकी मिट्टी खनिज तत्वोंके मिश्रणसे बनी होती है। वर्षा, धूप, शीत, पाला आदिकी रासायनिक क्रियासे चट्टानें धीरे धीरे चूर चूर हो जाती हैं, और तब मिट्टीका रूप ग्रहण कर लेती हैं। इस मिट्टीमें सड़ी गली वनस्पतियों और प्राणियोंकी देह का कार्बनिक अंश भी विद्यमान रहता है। मिट्टीमें, चट्टानोंमें के खनिज तत्व भी मिले रहते हैं।

खेतमें मिट्टीके कण एक दूसरेसे सटे तो रहते हैं, किन्तु उनके बीचमें काफी स्थान खाली रहता है जिसमें हवा भरी रहती है। पानीमें उंगली डुबाकर बाहर निकालने पर जितना पानी उस पर लगा रह जाता है, उतनाही पानी मिट्टीके प्रत्येक कणपर लगा रहता है। इसी पानीमें मिट्टीमें के भोज्य-पदार्थ घुले रहते हैं और इसी भोज्य-पदार्थ घुले हुए जलको जड़ें सोखकर पौधेमें पहुँचाती हैं—

खेतमें या गमलेमें ज्यादा पानी भरा रहनेसे फसलें नष्ट हो जाती हैं। क्यों कि मट्टीके कणोंके बीचके रिक्त स्थानमें पानी भर जाता है, जिसमें उसमें हवाका प्रवेश नहीं हो पाता है। और हवाके अभावके कारण पौधेकी जड़ोंकी तन्दुरुस्ती खराब हो जाती है। परिणाम यह होता है कि जड़ें अपना काम नहीं कर पातीं हैं और तब भोजनकी कमीके कारण पौधे मर जाते हैं।

जड़का हरएक भाग मिट्टीमें से पानी नहीं सोख सकता है। किसी नवांकुरित पौधेकी जड़का निरीक्षण करनेसे यह बात मालूम हो सकती है। सरसोंके पौधेकी जड़को बारीकीसे देखनेसे उसके कुछ सिरेपर बारीक रोएं नजर आवेंगे। ये रोएं जड़के बढ़ने वाले भागसे कुछ पीछे हटकर निकलते हैं। ये सारी जड़पर नहीं ऊगते हैं। इन रोओंको 'रोम' या मूल रोम (Root hair) कहते हैं। ये रोम स्थायी भी नहीं होते हैं। ज्यों ज्यों जड़ बढ़ती जाती हैं, रोम भी गिरते जाते हैं और बढ़ने वाले भागके पास नए रोम उगते रहते हैं। रोम सेल नहीं हैं। ये पतले और लम्बे होते हैं। रोम मट्टीके कणोंको मजबूतीसे पकड़ लेते हैं। यदि किसी पौधे की जड़ें सावधानीसे खोदकर देखी जायं, तो जड़ों पर, मिट्टीके कण चिपके हुए नजर आवेंगे। मिट्टीके कणोंसे चिपकजानेके कारण उनपरके जलके आव, रण तक रोमकी पहुँच हो जाती है, जिससे जलके साथ ही उसमें घुले हुए भोज्य-पदार्थ भी रोम द्वारा सोखे जाकर पौधेके भिन्न भिन्न भागोंमें पहुँचा दिये जाते हैं।

पहले लिख आये हैं कि जड़ोंको खनिज द्रव्यों-के मिश्रणमें डुबो रखनेसे पौधेकी वृद्धि होती रहती है। इससे मालूम होता है कि आहार मिलता रहने से पौधा बढ़ता रहता है। अब यह प्रश्न उठता है

कि, जड़ें भूमिमें से भोजन किस प्रकार ग्रहण करती हैं।

प्रयोग—देवदारके बक्समें सेम या लोबिया के कुछ बीज बोकर सींचते रहो जिससे मिट्टीमें हरी बनी रहे। पौधेके करीब एक बालिश्त ऊंचे बढ़ जाने पर उसके बढ़ने वाले भागको तेज छुरीसे काट डालो। कुछ समय बाद इस कटे हुए भाग पर पानीकी बूंदे दिखाई देने लगेगी और ध्यान पूर्वक देखनेसे मालूम हो जायगा कि ये बूंदे बड़ी होती जा रही हैं।

यह एक सर्व मान्य बात है कि बिना दबावके जल ऊपर को नहीं चढ़ता है। पिचकारी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वही नियम पौधे को भी लागू होता है। बकस की मिट्टीमें तरी मौजूद है। जड़ें रोम द्वारा इस तरीका शोषण करती हैं। पहले सोखा हुआ पानी बादमें सोखे हुए पानीके दबावसे ऊपर का चढ़ता है। यह शोषण क्रिया हमेशा जारी रहती है इससे नीचेके पानीके दबावसे पानी, तना, शाखा आदिमें चढ़ता हुआ पत्ते तक पहुँच जाता है। इस प्रयोगमें नीचेके दबावसे पानी तनमें चढ़ता है और तब दबावके कारण कटे हुए भाग पर जलकी बूंदों के रूपमें दिखाई देता है।

यदि यह देखना हो कि जड़ोंके रोम द्वारा सोखा हुआ पानी पौधेकी चोटीतक किस प्रकार पहुँचता है, तो ऊपरके प्रयोगमें पौधेके कटे हुए भाग पर एक रबरकी नली लगा दो। रबरकी नली के दूसरे सिरेपर एक कांचकी नली लगाकर उसे लकड़ीके सहारेसे सीधी खड़ी कर दो। पौधे को प्रकाशमें रख दो आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहो। एक दो घण्टे बाद कांचकी नलीमें पानी दिखाई देने लगेगा और छः घण्टे बाद नलीमें पानी चढ़ता हुआ नजर आवेगा।

दिनमें तीन चार बार पानीके चढ़ावका निरीक्षण करनेसे पता चलेगा कि पानी कम ज्यादा चढ़ता है। नलीमें पानीका नीचे उतरना और ऊपर चढ़ना दबावका कम ज्यादा होना साबित करता है।

ऊपरके प्रयोगसे हमें यह बात मालुम हो जाती है कि पौधेकी जड़ें जमीनमेंसे पानी सोखती हैं और दबावके कारण पानी धीरे धीरे पौधेके सिरे तक पहुँच जाता है।

पहिले बतला आए हैं कि मिट्टीके कणकी चारों ओर जलका आवरण रहता है। मिट्टीमें के भोज्य-पदार्थोंके घुलजानेसे यह जल शरबतका रूप ग्रहण कर लेता है। पौधेकी जड़ों परके रोम इसी शरबत-को सोखते हैं। जड़ें इस शरबत को किस प्रकार ग्रहण करती हैं यह बात नीचेके प्रयोगसे अच्छी तरहसे समझमें आसकती है।

प्रयोग—घिया तुरईके फलको बीचसे काट कर दो टुकड़े करलो। नीचेका भाग लेकर गूदा, बीज आदि चाकूसे इस ढंगसे निकाल डालो कि फलके बाहिरी छिलकेको क्षति नहीं पहुँचे। इस फलमें अब थोड़ासा शकरका शरबत (शकर और पानीका मिश्रण) भरदो। एक काँचके प्यालेमें पानी भरकर इस फलको उसके अन्दर इस प्रकार लटका दो कि शरबत और प्यालेमें के पानीकी सतह बराबर रहे। कुछ घंटे बाद निरीक्षण करनेसे मालूम हो जायगा कि फलके अन्दरके शरबतकी सतह कुछ ऊँची होगई है। शरबतकी सतहके ऊँचे होनेका कारण यह है कि पानीकी अपेक्षा शरबत अधिक सघन है। फलके छिलके महीन छिद्रोंमेंसे पानी शरबतकी ओरको खिंचता है, जिससे शरबत या मिश्रण बढ़ता जाता है।

काँचकी नलीके एक सिरे पर किसी पौधेका कोमल पत्ता बांधकर भी यह प्रयोग किया जा सकता है। पत्ता इतनी मजबूतीसे बांधा जाना चाहिए कि नलीमें भरा हुआ मिश्रण बाहर न निकल सके। पत्ता बांधनेके बाद नलीमें दो तीन इंच तक शकरका मिश्रण भरकर उसे एक काँचके प्यालेमें सीधी खड़ी करदो। बादमें काँचके प्यालेमें

इतना पानी डालो कि जल और मिश्रण की सतह बराबर होजाय। कुछ घंटों बाद शरबतके घनत्वसे आकर्षित होकर प्यालेमें का पानी नलीमें घुसने लगेगा, जिससे मिश्रण नली ऊपर चढ़ने लगेगा।

ठीक यही क्रिया जड़ परके रोमके कोषोंमें होत है। रोम एक प्रकारके रससे भरे रहते हैं। यह रस या शरबत चार और एक प्रकारकी शर्कराके मेलसे बना होता है। जड़ और रोमके के षोंकी भित्तिकामें जीवन-मूल (Protoplasm) वर्तमान रहता है। इसकी बदौलत रोयें पानी सोखते हैं। मिट्टीके कण परके जलावरणसे जड़े छूती रहती हैं। यह जल जड़ोंके अन्दर पहुँच जाता है, जिससे उसकी वृद्धि होती है और ज्यों-ज्यों अधिकाधिक जल सोखा जाता है जड़ोंमें का पानी तनेमें ऊपरकी ओरको धकेला जाता है। जड़ और रोमावलीके कोषोंमें पैदा होनेवाला रस कोषोंकी भित्तिकाको गीला बनाये रखता है। यह अघुलनशील खनिज द्रव्योंको घुलनशील बनाता है और तब वे जलमें घुलाकर सोख लिये जाते हैं।

एकही प्रकारकी जमीनमें बोये हुए सभी प्रकारके पौधे एक ही प्रकारके पदार्थ ग्रहण नहीं करते हैं और ये पदार्थ एक ही परिमाणमें ग्रहण किए जाते हैं। सेम, मटर, चना आदि द्विदल जातिके पौधे चूना अधिक ग्रहण करते हैं, आलू टर्निप आदिको पोटेशकी जरूरत होती है और सभी प्रकारके घास, मक्का आदिको सिलिका ज्यादा लगता है। भिन्न-भिन्न प्रकारके पौधे भिन्न भिन्न भोज्य-पदार्थों को न्यूनाधिक परिमाणमें क्यों ग्रहण करते हैं; इसके कुछ भी कारण क्यों न हो, किन्तु इसका अंतिम परिणाममें यही होता है कि मिट्टीमें के भोज्य पदार्थ धीरे धीरे ग्रहण कर लिए जाते हैं जिससे उनकी मिकदार घट जाती हैं। परिणाम यह होता है कि उनकी कमीके कारण पौधा मर जाता है। इसलिए यह जरूरी है कि पांशुजक्षार (पोटेश), स्फुरेत (फास्फेट), चूना आदि तत्व, उपयुक्त खाद द्वारा मिट्टीको पहुँचाये जायं। खेतमें जैसी फसल बोई जाय उसीके अनुसार खाद भी दी जानी चाहिये।*

निद्रा

(ले० श्री० धर्मनाथ प्रसाद कोहली बी० एस-सी०)

निद्रा अद्भुत किन्तु कितनी प्रिय है। प्रत्येक दिवस हम अपनेको, दिन भरके परिश्रमके उपरान्त निद्रादेवीकी गोदमें दे देते हैं। कितना ही दुःख हो, और कितनी ही चिन्ता, इस देवीकी असीम कृपासे वे सब क्षण भरमें दूर हो जाते हैं। देवी तुम धन्य हो! तुम जिसको प्राप्त नहीं उसकी अवस्था कितनी दुःख पूर्ण है। दूसरोंको घोर निद्रामें देख उसे कितना दुःख होता होगा। वह उस जागृत अवस्थामें दीन भावसे सोचता है कि निद्रा क्या है? किस कारणसे लोगोंको नींद आती है। क्या संसारके प्राणी मात्र ही नहीं वरन् समस्त वस्तुएं निद्राके वशीभूत हैं? केवल विश्राम और निद्रामें क्या अन्तर है? इत्यादि। ऐसे प्रश्नोंका उत्तर सरल नहीं है।

निद्राकी महिमा अपार है। निद्रा शोकको दूर करती है, दुःखको दमन करती है और चिन्ताको भगाती है। परिश्रमके उपरान्त एक नींद सोना क्षीर सागरमें गोता लगानेके तुल्य है। प्रकृतिका यह एक बड़ा साधन है।

बहुधा लोग निद्रा और मृत्युकी तुलना करते हैं। "तुम सदाके लिये सो गये", "अब क्या तुम नहीं उठोगे?" आदि प्रचलित वाक्य इसके प्रमाण हैं। किन्तु निद्रा और मृत्युमें घोर अन्तर है। उनका भेद प्रत्यक्ष ही है। जो सुख पूर्वक सोते हैं उनके

---

*लेखककी वनस्पति-विज्ञान नामक अप्रकाशित पुस्तकसे उद्धृत।

मुख पर एक सुन्दर छटा तथा अपूर्व कान्ति शोभा देती है। किन्तु मृत मनुष्यका मुख देखकर कौन नहीं भागता। उसकी आकृति बिगड़ कर भयानक हो जाती है। मृत शरीर ठंडा तथा इन्द्रिय-ज्ञान-शून्य होता है, हाथ पैर अकड़ जाते हैं किन्तु निद्राग्रसित मनुष्यका तापक्रम यदि घटता भी है तो बहुत कम। चेतन्नता कम हो जाती है पर उसका लोप नहीं होता। इसका कारण यह है कि मृत्युके समान निद्रामें श्वास बन्द नहीं होता। निद्रामें नाड़ी चलती ही रहती है, रुधिर प्रवाह जारी ही रहता है, हृदय अपना कार्य करता ही रहता है। इतना ही है कि मस्तिष्क कुछ कालके लिये विश्राम करता है, और इन्द्रिय-चंचलता कुछ मन्द पड़ जाती है।

संसारकी समस्त वस्तुएं "निद्रा" के वशीभूत कही जा सकती हैं। सूर्यके प्रभावसे सभी कार्य करनेको उत्प्रेरित होते हैं, और रात्रिमें उसके प्रभावसे कार्यक्रम कुछ मन्द हो जाता है। शिथिलता आ जाती है। समस्त प्राणियोंका आहार सूर्य पर निर्भर है। यहाँ तक कि कुछ कीड़े और मछली भी, जो कि समुद्रमें इतने नीचे रहते हैं जहां सूर्यके प्रकाशका नाम भी नहीं, आहारके लिये केवल उन मांसके टुकड़े आदिको खाते हैं जो जलका सतहसे नीचे गिर जाते हैं। जानवरोंका आहार वास्तवमें पौधोंसे ही प्राप्त होता है, और पौधे केवल सूर्यके प्रभावसे ही बढ़ते हैं। वायुमंडलका कर्बनद्वि-ओषिद (Carbon dioxide) और जल क्रम मिलकर नशास्ता और शकरा बनाते हैं, पौधे नोषजन (Nitrogen) भी संचय करते हैं जिनसे जीवनमूल (Proto plasm) की उत्पत्ति होता है। और इसी प्रकार पौधे बढ़ते हैं। आहारके लिये छोटेसे छोटे कीड़े भी अति वेगसे जाते दिखाई देते हैं यद्यपि उनके देखनेके लिये अणुवीक्षण यंत्रकी आवश्यकता पड़ती है। किन्तु ये कीटाणु भी रात्रिमें रुक जाते है।

इन सबसे ज्ञात होता है कि सूर्य ही जीवनका शासन करता है और जब वह दृष्टिसे ओझल हो जाता है तब हमारी जीवन शक्ति कुछ न कुछ कम अवश्य हो जाती है और शिथिलता भी आ जाती है। निद्रा अनिवार्य है। चोर डाकू आदि रात्रिमें नहीं सोते। उन्हें दिनमें सोना पड़ता है। वास्तवमें समस्त प्राणी विश्राम करते हैं। पुष्प भी संध्या होते ही झुक जाते हैं, किसी किसी पौधोंकी पत्तियाँ भी झुक जाती हैं। और यह तो सब ही जानते हैं कि पक्षी और चौपाये सोते हैं। मनुष्यके समान कोई कोई जन्तु नेत्र बन्द कर लेते हैं और विश्राम दायक अवस्थामें हो जाते हैं। मछलियोंके पलक नहीं होते और सामान्यतः लोगोंके विचारमें वे नहीं सोतीं किन्तु यह देखा गया है कि मछलियाँ रात्रिमें तहमें चली जाती हैं उस समय वे विश्राम करती हैं और उनकी चेतन्नता मन्द हो जाती है। उस समय उनपर "बाहरी" प्रभावों का असर कम पड़ता है। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि मनुष्यकी "निद्रा" और इनकी 'विश्रान्ति" में बहुत अन्तर है।

मनुष्य की निद्रामें मस्तिष्कका आध्यात्मिक ज्ञान अति मन्द हो जाता है। स्पर्श, ध्वनि और प्रकाश आदिका सहसा कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता यद्यपि जागृत अवस्था में तनिक ही स्पर्श अथवा ध्वनिसे हृदयमें कितनेही भाव उठते हैं। निद्रा में मस्तिष्ककी गृहणशक्ति कम हो जाती है और इन्द्रियोंको वश करनेकी शक्तिभी घट जाती है। पलक ढप जाते हैं और खड़े रहनेकी सामर्थ नहीं रहती।

मनुष्य न तो एक दम से सोता है और यकायक उठता है। निद्रा धीरे धीरेही आती है। घोर निद्राके आदि और अन्तमें मस्तिष्क में कुछ-कुछ चेतना शेष रहती है और उस पर सरलतासे छाप पड़ सकती है। ऐसी अवस्थामें हम स्वप्न देखते हैं। यह अवस्था अनिवार्य है चाहे एक या दो मिनटके लिये क्यों न होवे। जब घोर निद्रा होती है तब मस्तिष्क बिलकुल ज्ञान शून्य होता है। किन्तु निद्रामें केवल मस्तिष्क ही विश्राम नहीं करता सारा शरीर इस अवस्था में भागी होता है। श्वास निश्वास धीरे धीरे चलता है। नाड़ीकी गति मन्द पड़ जाती है; और जठराग्नि भी कमहो जाता है

जिससे पाचन क्रियामें कमी होती है और तापक्रम कुछ कम हो जाता है।

इस विषयमें हमारा ज्ञान परिमित है। न हमें निद्रामें मस्तिष्ककी जो अवस्था रहती है उसीका पूरा ज्ञान है न हम निद्रा का कारणही भली भाँति बतला सकते है। धारणा यह है कि रुधिर प्रवाह कम होनेके कारण निद्रामें मस्तिष्क कुछ पीला पड़ जाता है और यही कारण उसकी शिथिलता का जान पड़ता है। यह हो सकता है कि दिन भरके कठिन परिश्रमके उपरान्त वात तन्तुओं (Nervous tissues) का मार्ग रासायनिक पदार्थों से रुक जाता हो और जब तक फिर यह मार्ग साफ न होवे तब तक जीव-तन्तु अपना कार्य करनेमें असमर्थ हों।

यह भी हो सकता है कि दिन भर काम करनेके उपरान्त तन्तुओंमें भरा हुआ ओषजनका भण्डार समाप्त हो जाता हो, और जब तक यह कमी पूरी न हो तब तक शरीरमें शिथिलता छाई रहे। नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा तन्तुओंकी अचेतना बढ़ती है और इससे निद्रामें, जो कि चेतना रहित दशा है अवश्य विघ्न पड़ता है। अंधेरेमें और आँखें बन्द कर लेने पर यह उत्तेजना बहुत कम हो जाती है। वस्त्राभूषणों का उतारनाभी इसमें सहायता देता है क्योंकि वस्त्र सदा त्वचामें खुजली पैदा किया करते हैं। सोते समय लोग सुखदायक अवस्थामें हो जाते हैं और मस्तिष्क को बाहरी प्रभावोंसे दूर रखनेकी चेष्टा करते हैं। इससेभी निद्रा आनेमें सहायता मिलती है। निद्राके लिए चित्तको एकाग्र करना अति आवश्यक है। जो लोग मनको वशमें नहीं रख सकते उन्हींको निद्रा सताती है। निद्रा रहित होना बड़ी ही बुरी व्यथा है। उदरकी उत्तेजनासे वात तन्तुओं (Nervous system) में गड़बड़ी हो जाती है। कभी कभी इस कारण भी निद्रा नहीं आती। अनिद्रा (Inesomnia) के लिये कोई रामबाण नहीं है। अपने डाक्टरकी सम्मति पर पूर्णतयः विश्वास करनेसे तथा तदनुसार आचरण करनेसे अच्छे होनेकी आशाकी जा सकती है।

कभी कभी निद्रामें अव्यवस्थित तथा क्रमहीन अवस्था देखनेमें आती है। मादक वस्तुका सेवन करनेसे लोग घण्टों अचेत पड़े रहते हैं। घोर निद्रामें बहुतसे लोग खुर्राटा लेते हैं। कभी कभी कोमा (Coma) अर्थात् ऊँघनेकी अवस्था नामक अचेत अवस्था भी हो जाती है। अभी तक ज्ञात नहीं कि इन अवस्थाओंमें मस्तिष्ककी क्या दशा रहती है और न यही ज्ञात है कि इनका कारण क्या है। कैसा आश्चर्य है कि कभी कभी निद्रामें लोग चलने फिरने भी लगते हैं। इस दशामें वे जो कार्य करते हैं उसका उन्हें ज्ञान नहीं रहता और न वे उसके लिए उत्तरदायी होते हैं। उनके मास्तिष्क का कुछ भाग अचेत रहता है किन्तु कुछ इन्द्रियाँ अपना कार्य करनेमें तत्पर रहती हैं। इस दशा को निद्राभ्रमण (Somnambulism) कहते हैं।

हिप्नोटिक का नाम सबने सुना होगा इसमें विधिपूर्वक "प्रजा" (Subject or Patient) को खास दशामें लाया जाता है। उसकी स्मरण शक्ति कम हो जाती है किन्तु उसके नेत्र खुले रहते हैं और वह "जागृत" ज्ञात होता है। उसको जो कुछ आदेश दिया जाता है उसका ज्ञान उसे "जागने" पर नहीं रहता। किन्तु कभी कभी वह उनके अनुसार कार्य कर बैठता है। इनका कारण न वह ही जानता है न दूसरे ही समझते हैं।

कभी कभी मनुष्य दिनमें सो जाता है या ध्यान (Reverie) में मग्न हो जाता है। यह अवस्था हिप्नोटिक अवस्थाके समान ही है। हमारा मास्तिष्क अपना कार्य बहुत करके ऐसीही अवस्थामें करता है जिसे हम अज्ञात संचालन (unconscious Circulation) कहते हैं।

जाड़ेके दिनोंमें कुछ प्राणी कई मास तक लगातार सोए रहते हैं। इसको "दीर्घ निद्रा" (hibernation) कहते हैं। यह अत्यन्त शीतके कारण होता है जिससे मन गिराना आरम्भ हो जाता है। मारमोट डोरमाउज स्नेल और मेंढक कई मास तक सोते हैं। गर्मीके दिनों में भी यदि इन्हें निर्माणित, अस्वाभाविक ठंडक में

सकुचा जावे तो वे ज्ञान शून्य हो जाते हैं। और यदि शरद् ऋतुमें उनकी ठंडक दूर करदी जावे तो वे "जाग" जाते हैं। इससे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि इस "घोर निद्रा" का कारण शीत ही है। ध्रुवके समीप के देशोंमें जाड़ेमें कई मास तक लगाकर रात्रि होती है और गर्मीमें कई मास तक लगातार सूर्यका प्रकाश रहता है। वहांके लोग गर्मीमें कितने ही दिनों बिना सोए हुये परिश्रम करते हैं और निद्रा की कमी जाड़े में पूरीकर लेते हैं। इससे मालूम होता कि निद्राके लिए कोई नियम नहीं बनाया जा सक्ता है। न यही बतलाया जा सक्ता है कि कितने घंटे सोना चाहिये। वास्तवमें यह दिन भरके कार्य पर निर्भर है। जो मनुष्य दिनमें नहीं सोते और परिश्रम करते हैं उन्हें सामान्यता रात्रिमें अधिक सोना चाहिये। जो दिन भर पड़े पड़े समय नष्ट करते हैं उन्हे सोनेकी इतनी आवश्यकता नहीं है।

कितने घंटे सोना अति उत्तम है इसका निर्णय कठिन है। प्रायः वयसानुसार लोग सोते हैं। छोटे बालक दिवसके महान् भागमें निद्रा देवी की गोद ही में रहते हैं। जैसे जैसे बालक बढ़ता है उसका निद्रा काल कम होता जाता है। युवा सामान्यतः ६ घंटे सोते हैं। वृद्ध जन (जो बहुत वृद्ध नहीं हैं) रात्रिमें ४ या ५ घंटेसे अधिक नही सोते, किन्तु वे दिनमें एक दो घंटे सोकर कमी पूरी कर लेते हैं। जो बहुत वृद्ध हैं उनकी अवस्था निद्रित सी (somnolent) रहती है। वे बालकोंके समान बहुत काल तक सोते हैं। वृद्धावस्थामें कम परिश्रम ही निद्रासे अरुचि का कारण मालूम होता है। अवस्था बढ़ते ही परिश्रम कम होने लगता है और इसीसे निद्राकी आवश्यकता भी कम प्रतीत होती है। इससे इस धारणा की पुष्टि होती है कि अधिक परिश्रम करने वाले अधिक सोते हैं।

यहां पर एक अद्भुत घटना का उल्लेख करना अनुचित न होगा। ब्रिटिश अजायब घरमें एक वार अफ्रीकासे एक स्नेल लाकर रक्खा गया था। उस समय उसमें जीवनका कोई चिह्न न था। चार वर्षके उपरान्त यह शंका हुई कि स्नेल अपनेसे बाहर निकल आया था। कुनकुने जलमें रखने से वह चलने फिरने लगा। जलाशयोंमें व्हील प्राणि (wheel animalenles) नामक कीड़े होते हैं। ये कीचड़के विन्दु के समान होते हैं। यदि इनको सुखा दिया जावे तो इन्हें कोई जीवित न कहेगा। किन्तु पानीमें डालते ही इनमें नई स्फूर्ति आजाती है। ऐसे आचरण को स्थगित प्राण (suspended animation) कहते हैं। और इससे यही प्रतीत होता है कि संसारमें कुछ भी असम्भव नहीं है। जब हमको निद्राका भी कारण भली भांति ज्ञात नहीं है, जब हम यही कह सकते हैं कि निद्रा दिन भरके परिश्रमसे उत्पन्न थकावटके कारण आती है, जिसमें अन्धकार भी सहायता देता है—जब हमारा ज्ञान इतना अपूर्ण है तब यदि हम "स्थगित प्राण" का कारण बतानेमें बिलकुल असमर्थ हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या!

परोपजीवी चपटे कृमि

(ले० श्री० रामचन्द्र भार्गव एम. बी. बी-एस.)

परोपजीवी ऐसे जीवोंको कहते हैं जो औरोंके शरीरपर अथवा शरीरमें अपना जीवन निर्वाह करें और भोजन सामग्रीभी अपने अतिथ्याकारके शरीरमें से ही लें।

मनुष्यमें पाये जाने वाले कृमियोंमें केचुए और चुन्नोंको तो साधारण जनताभी जानती है। ये गोल कृमिवर्गीय कृमियोंको उपमायें हैं।

चपटे कृमियोंमें कद्दूदानाभी मांस भक्षी मनुष्यों में बहुत पाया जाता है। कृमिवर्ग दो समुदायोंमें विभक्त किया जा सकता है।

१. एक तो वह समुदाय कि जिसमें चपटे कृमि सम्मिलित किये जाते हैं, इस समुदायको चपटे कृमिवर्ग (प्लेटीहैल्मिथीस) कह सकते हैं।

२. दूसरे समुदायमें गोल कृमि सम्मिलित किये जाते हैं, इन्हें गोल कृमिवर्ग (नीमेहैलमिन्थीस) कहते हैं।

सपाट कृमियां दाहिनी और बाँई ओर एकसी होती है। ये तीन उप समुदायोंमें विभक्त की जा सकती हैं।

१. तरङ्गकृमि (टरबीलेरिया)

२. वह उपसमुदाय कि जिसमें कृमि अधिकतर कुछ पत्तेके आकारकी होती हैं, इस उपसमुदायको पर्णसम कह सकते हैं।

३. तीसरे उपसमुदायमें वह कृमि सम्मिलित हैं कि जो फीतेके सदृश आकारमें होती है, उस उपसमुदायको फीते सम कह सकते हैं।

उपसमुदाय १ तरङ्गकृमि—

ये अधिकतर परोपजीवी नहीं होते इसही कारण इनके वर्णनकी विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।
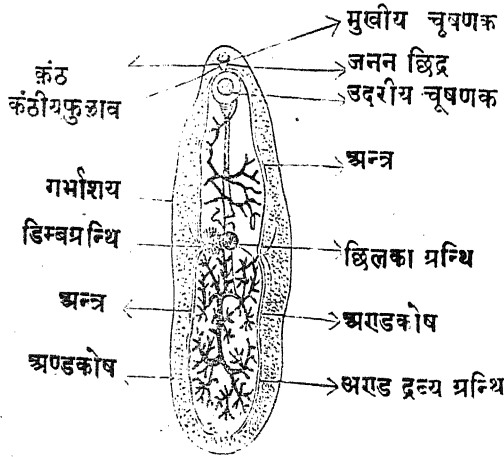
फैसीयोलोपसिस बस्की

उपसमुदाय २, पर्णसम,

इस उपसमुदायमें कृमि पर्णके रूपके और सपाट होते हैं। ये लम्बाई में ०.१ स. मी से एक मीटर तक के पाये जाते हैं। एक अथवा अधिक चूषणक (सकर) उपस्थित रह सकते हैं जो कि आगेकी ओर अथवा उदरीय पृष्ठकी ओर लगे हो सकते हैं। सामने लगे चूषणक का कुछ भोजनसे सम्बन्ध रहता है और उदरीय पृष्ठ पर लगे चूषणकोंमें कुछ चेतना उपस्थित रहती है।

पाचन प्रणालीमें यह रचनायें पाई जाती हैं— मुखीय चूषणकमें स्थित मुख, पेशीका बना हुआ कण्ठ जो कि कभी कभी अनुपस्थित हो सकता है। पतली भीतसे बना अहारपथ, जो पिछले भागमें दो अन्धान्त्रोंमें विभाजित हो जाता है। आतिथ्यकार का रक्त या कोष इन का भोजन होते हैं।

वात संस्थान आहार पथ पर स्थित और व्यत्यस्त वंधपाशसे जुड़े दो गंडोंसे बने होते हैं। इनमेंसे अन्य अवयवों को नाडियां जाती हैं। वहिष्कार संस्थान - मुख्य नालियां बीचमें स्थित वहिस्करण थैलीमें आन मिलती हैं। इस थैलीमें एकत्रित द्रव्य वहिष्करण छिद्रमेंसे बाहिर निकल जाता है।

जननेन्द्रिय अधिकतर द्विलिंगीय होती हैं, अर्थात् स्त्री पुरुष दोनों जननेद्रिय एक ही जननेद्रिय छिद्रसे बाहिर खुलती हैं। अंडकोष गोल, उठानों युक्त अथवा शाखा युक्त होते हैं। डिम्बकोष कई रूपके पाये जाते हैं अंड द्रव्यग्रन्थियां बहुशाखा युक्त होती हैं। छिलका-ग्रन्थि भी उपस्थित रहती हैं। डिम्बकोषमें बने हुए बहुतसे अंडे गर्भाशयमें उतरकर पड़े रहते हैं और जब ये अंडप्रणाली द्वारा नीचे उतरते हैं तो शुक्रग्राहकमें आकर वे शुक्राणुओंसे मिलते हैं। शुक्रग्राहकमें शुक्राणु या तो परस्पर संयोगसे आजाते हैं अथवा स्वयं संयोगकी भी सम्भावना रहती हैं।

कभी कभी शुक्रग्राहक बीचमें स्थिति लौरटकी नली द्वारा बाहिर खुलती है। यह नली कुछमें योनि-द्वारका काम देती है और संयोगमें शुक्राणु इसीके द्वारा प्रवेश करते हैं। संभोगित अंडेको अंडद्रव्य ग्रन्थिसे अंडद्रव्य मिल जाता है और छिलका-ग्रन्थि ग्रन्थि द्वारा उसका छिलका लग जाता है। जब अंडे-की बनावट पूरी हो जाती है तो वह गर्भाशयमें उतर आता है और वह बाहिर निकल आता है।

जीवन-इतिहास—दो प्रकारके जीवन चक्र पाये जाते हैं। (अ) एककुलोपजीवी जिनमें अंडे रोमविहीन कृमिलकी अवस्थामेंसे होकर द्विलिंगीय प्राणीमें परिवर्तित हो जाता है। (आ) द्विकुलोपजीवी—इनमें अंडे रोमयुक्त कृमिलमें परिवर्तित हो जाते हैं जो कि फिर अन्य प्राणियोंमें प्रवेश कर जाते हैं जैसे कि—घोंघावर्गीय प्राणी जोंख, मच्छली इत्यादि इन प्राणियोंमें पहुँचकर थैलीका रूप धारण कर लेता है। और द्वितीय कृमिल अवस्था आरंभ हो जाती है अंडे अंडद्रव्यसे घिरे एक गोल कोषके बने होते हैं, विकासमें केवल कोषही भाग लेता है। अंडा अंडाकार होता है और अधिकर उस पर एक ढकन लगा रहता है। जब कि कृमिमें अंडे निकलते हैं उसही समय अंडोंमें रोमोंसे ढका भ्रूण (कृमिल कहना अधिक उचित है) उपस्थित रहता है कि जिसे रोमयुक्त भ्रूण (मिराखिडियम) कहते हैं। मिरासिडियम निकलकर स्वतन्त्र पानीमें तैरता रहता है और मध्यस्थ आतिथ्यकारके शरीरमें घुसनेके पश्चात्‌ही उसका और विकास हो सकता है। इस प्रकारका मध्यस्थ आतिथ्यकार अधिकतर मीठे जलकी शंबूक (घोंघे) होते हैं कि जिसके यकृत्‌में घुसकर वह थैलीका रूप धारण कर लेती है। इस थैली को जननस्यूत कह सकते हैं। इन थैलियोंके भीतर जनन कोषें उपस्थित रहती हैं। इन जनन कोषोंसे कई रचनायें बन सकती हैं। (अ) विशेष कृमिल जिन्हें पुच्छिन् कह सकते हैं (आ) अथवा अन्य जनन थैलियें बन जाँय (इ) अथवा यष्टि (रेडी) बन जांय कि जिनमें मुखीय चूषणक और अन्त्रका आरम्भ पाये जाते हैं। इन यष्टियोंके शारीरिक विवरमें और पुच्छिन् उत्पन्न हो सकती है यष्टियोंमें उपस्थित जनन कोषोंके अन्य यष्टि भी बन सकती हैं।

पहिले पर्णसम कृमिके जीवन-इतिहासको एक प्रकारका विभिन्न-प्रजनन समझते थे परन्तु नवीन विचार यह है कि वह असंयोगिक और संयौगिक वंश श्रेणियोंके विपर्ययकी उपमा हैं। जनन स्यूतमें लगी प्रजनन कोषोंको असंयोगिक विधिसे बने अडे समझे जा सकते हैं।

एक अनुकूलनकी उपमा द्विमुखी बृहद्‌मुखी (डिस्टोमा मैक्रोस्टोमस) में देखी जा सकती है कि जो कीटभक्षक पक्षियोंका परोपजीवी है। इसके अण्डे सक्सिनिया अम्फिबिया घोंघेमें पहुँच जाते हैं।

इनकी अन्त्रमें पहुँच कर रोमयुक्तभ्रूण बाहिर निकल आते हैं और अन्त्र, की भीतमें से होते हुए प्राणीकी तन्तुओंमें पहुँच जाते हैं कि जहाँ पहुँच कर शाखायुक्त जननथैलियोंमें परिवर्तित हो जाते हैं। इन शाखायुक्त जनन थैलियोंमें से कुछ फन (टेंटिकिल) में प्रवेश कर जाते हैं। जननथैलियोंमें श्वेत और हरी धारियां और लाल पाये अन्न जानेके कारण फन विचित्र शोभायुक्त हो जाता है। पक्षी रंगसे आकर्षित होकर इन फन को तोड़ कर खा लेते हैं कि इन फनोंके साथ साथ उनके पेटमें जनन थैलियें भी पहुँच जाती हैं जिनमें पुच्छहीन पुच्छिन् उपस्थित रहते हैं।

पुच्छिन् पर्णसमोंके क्रमिल होते हैं कि जिनमें एक अथवा दो चूषणक और पुच्छ पाई जाती है। उनमें से कुछ की आकृति मेंढकके शावकसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। घोंघेके यकृत् अथवा पाचन ग्रन्थिसे निकल कर वे पानीमें आ जाते हैं। पानीमें ये ४८ घंटे तक रह सकते हैं। कुछ उपमाओंमें उनकी दुम गिर जाती है और वे छेद करके अपने आतिथ्यकारमें घुस जाते हैं, परन्तु कुछ प्राणी, मछली अथवा वनस्पतिमें पहुँच कर थैलीका रूप धारण कर लेते हैं और इन जीवोंके अतिथ्यकार द्वारा खाये जाने पर अतिथ्यकार तक पहुँचते हैं। अपने अतिथ्यकारमें एक बार प्रवेश करके यकृत्, फुप्फुस, अन्त्र, इत्यादि अपनी निर्वाचित स्थानको चले जाते हैं।

निम्न सारिणीमें मनुष्यमें पाये जाने वाले पर्णसमों को जातियोंमें विभक्त किया है। फिर हम पर्णसमों की कुछ आवश्यक उपमाओं का वर्णन करेंगे।

समूह	लक्षण	जाति	उपमा
द्विमुखी	अन्त्र शाखिन्	फेसियोला	फ. यकृती
	अन्त्र अशाखामय, जनन छिद्र उदरपृष्ठीय चूषणकके सामने अंडकोष गर्भाशयके पीछे		
	(अ) डिम्बाशय बड़े आकारकी और शाखामय, अंडकोष शाखामय –	फेसियोलोपसिस	फै. बस्की
	(आ) अंडकोष शाखामय	कम्पाँडकोषी (क्लोनोरकिस)	क. सीने. सिस
	(इ) अंडकोष उठानों युक्त	पश्चातंडकोषी (ओपिस्थोरकिस)	प. नोवरका प. बिल्ली
	(उ) अंडकोष गर्भाशयके सामने	डिक्रोसिलिअम	डि. डेंड्रिटकम
	अन्त अशाखामय, जनन-छिद्र उदरपृष्ठीय चूषणकके पीछे		
	(अ) अंडकोष अंडाकार, शरीर चपटा	हिटेरोफिस	हि. हिटरोफिस
	(आ) अंडकोष अंडाकार जनन-रंध्रको घेरे हुए एक पेशीमण्डल	मेटागोनिमस	मे. योकागवई
	(इ) अंडकोष उठानोयुक्त शरीर कुछ मोटा	परागोनिमस	प वेस्टरमनी
	(ई) मुखीय चूषणकमें पृष्ठीय पृष्ठ और बगलों में एक कांटोंका मण्डल	शल्यमुखी	श. शूकरान्त्री श. मलयानी
	(उ) नर और मादा पृथक् पृथक्, अन्त अशाखामय अन्धान्त समाप्त होती हुई,	विद्वतमुखी	वि. रक्तीय वि मैनसनी वि. जापानी

समूह	लक्षण	जाति	उपमा
उभयमुखी	इनमें चूषणक सामने और पीछे दोनों अन्तों पर लगे होते हैं अंडकोष डिम्बकोषके सामने होते हैं।		
	(अ) कंठमें बगली थैलियें उपस्थित	वाटसोनियस	वा. वाटसोनी
	(आ) सामनेका चूषणक सामने वाले बेलन पर लगा हुआ	उदरचक्री	उ. मानुषी

फैसिओला यकृती,

इतिहास—यह यकृत संयुक्ताशिरा और त्वचाके नीचे फोड़ोंमें पाया जा चुका है और खाउदीके कथनानुसार यह लिबेनानमें मुख और कंठके आक्रमणोंमें भाग लेता हुआ पाया गया है। इस रोगको वहां हैलजून कहते हैं।

भौगोलिक विस्तार—जहां कहीं भेड़ पाई जाती है वहां वहीं यह पृथ्वी भरमें पाया जाता है।

प्राणीका वर्णन—यह परोपजीवी वास्तवमें शाका-हारी प्राणियोंका और विशेषतः भेड़का परोपजीवी है कि जिसमें वह यकृत्के सड़नेका रोग उत्पन्न करती है। यह पर्णसम चपटा और पतला होता है और शिरीय शंकु बहुत स्पष्ट होता है। किनारे अधिक काले होते हैं। लम्बाई २०-३० स. मी. और उसकी चौड़ाई ८ से १३ स. मी. होती है। त्वचामें कुछ रेखाबद्ध काँटे लगे होते हैं। पूर्वीय अन्त कि जिसमें पूर्वीय चूषणक लगा होता है नुकीला होता है। पीछेका अन्त भौंटा होता है। उदरपृष्ठोय चूषणक बड़ा होता है और पूर्वीय चूषणकसे ३ स. मी. की दूरी पर लगा होता है और उसका छिद्र त्रिकोणीय होता है। आहार पथ कंठसे छोटा होता है और आन्त्र-प्रणालीके बहुत सी बाहिरकी ओर जाती हुई उप-थैलियाँ लगी रहती हैं। डिम्ब ग्रन्थियां शाखायुक्त होती हैं और अंडद्रव्य प्रणालियोंके सामने स्थित होते हैं। छिलका-ग्रन्थि मध्य रेखामें डिम्बग्रन्थिके समीप रखी होती है और इनके पीछे बहुशाखिन् अंडकोष लगे होते हैं।

इस पर्णसमका जीवन इतिहास पहिले पहल १२८३ ई में टोमस और लोकार्टने निकाला था। रोमयुक्तभ्रूण अंडेसे निकलकर लिमनिया जातिके घोंघोंमें पहुँचकर यष्टियों और पुच्छिनोंमें परिवर्तित हो जाता है। योरुप इसका मध्यस्थ आतिथ्यकार लिमनिया ट्रंकैट्यूला अर्थात माईन्यूटा होती है। जहां यह विशेष घोंघा नहीं होता वहाँ इसी जातिके अन्य घोंघे मध्यस्थ आतिथ्यकार का काम देते हैं। जैसे सैंडविच द्वीपमें लि० ओएहेन्सिस, दक्षिण अमेरिका में लि० विएटर, उत्तरीय अमेरिकामें लि० ह्यूमिलिस

इस परोपजीवी की एक बड़ी आकृतिकी प्रकार अफ्रीकाके भेड़ और बकरियोंमें पाई जाती है, उसे फैसिओला बृहत् कहते हैं। ७५ सी० मी० लम्बी तक उपमायें पाई गई है। ऐसी एक उपमा शाऊ-बिआको रायोजी जैनिरियोमें मिली जो कि एक खांसीके साथ एक आदमीके फुप्फुसमें सी निकली थी।

रोगोत्पादन—बहुत आक्रमणित बकरीके यकृतों को कच्चा खानेसे हैलजूनका हो जाना कोई असा-धारण नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि जो परोजीवी चबाये जानेसे बचते हैं वे कंठमें जोखकी तरह

लटक जाते हैं। लक्षण बहुत भिन्न हो सकते हैं और कई दिन तक चलते रह सकते हैं निगलने में पीड़ा बोलने में पीड़ा, सरमें भारी वमन यह मुख्य लक्षण हैं और मृत्यु भी हो जा सकती है। जब परोपजीवी वमनमें निकल जाते हैं तो रोगी अच्छा होने लगता है।

चिकित्साके लिये वमन कारक औषधियें और कुल्लों के लिये मद्यसारीय दवा देना चाहिये।

विदतमुखी रक्तीय

यह उभयलिङ्गीय पर्णसम कृमि होते हैं अर्थात् नर और मादा अलग होते हैं। नर रङ्गमें सफेद, बेलनाकार, १०-१५ स मी लम्बा और १ स. मी चौड़ा होता है। इसके एक मुखीय और दूसरा उदरीय चूषणक होते हैं। दोनों पास पासही लगे होते हैं। उदरीय चूषणक अधिक बड़ा होता है। मुखीय चूषणक के उदरीय ओष्ठकी अपेक्षा पृष्ठीय ओष्ठ अधिक लम्बा होता है। इस कृमिका बेलनाकार चपटे शरीरकी बगलोंके मुड़नेसे बनता है। इन मुड़ानों द्वारा ही मादावाहक नली बन जाती है कि जिसमें मादा आ जाती है। बाहिरी पृष्ठ पर विशेषतः पृष्ठीय भाग पर कुछ दाने बने होते हैं। चूषणकों पर भी कुछ कांटे लगे होते हैं। नली के भीतरी पृष्ठ पर सबसे अधिक बड़े बड़े दाने पाये जाते हैं। जननेंद्रिय ४ या ५ बिरूप गोल अण्डकोषोंकी बनी होती हैं जो कि उदरीय चूषणक के पीछे लगे होते हैं और जो इतनी ही शुक्रवाहक नलिकाओंद्वारा शुक्राशयसे सम्बन्धित रहते हैं। पाचन प्रणाली मुखीय चूषणक पर आरंभ हो जाती है। आहारपथमें दो फुलान होते हैं और वह उदरीय चूषणकके सामने पहुँच कर दो नालियोंमें विभाजित हो जाती है। शरीरके बीचके भागमें इन दोनोंके मिलनेसे एक अन्धान्त्र आरंभ हो जाती है जो लगभग पिछले

अन्त तक चली जाती है मादा का रंग नरसे कुछ अधिक गहरा होता है और वह नर से बहुत बड़ी होती है। उसकी लम्बाई लगभग २० स. मी. और चौड़ाई २५ स. मी. होता है। मादाका बीचका भाग अधिकतर नरकी मादा वाहक नालीसे ढका होता है और उसके शरीरके सामने और पीछेके भाग खुले रहते हैं। पिछले भाग और चूषणकोंके अतिरिक्त कि जहां बहुतसे अंकुर लगे होते हैं मादा का शरीर चिकना होता है। नर और मादा दोनोंके जनन छिद्र उदरीय चूषणकके पीछे एक दूसरेके सामने लगे होते हैं। पाचन प्रणालीकी रचना नरके समान होती है। डिम्ब ग्रन्थि अण्डाकार होती है और अन्त्रकी दो शाखाओंके मिलानके सामने लगी होती है। डिम्बप्रणाली कुछ दूर सामने जाकर अंड द्रव्य प्रणाली और छिलका ग्रन्थि और गर्भाशयसे मिल जाती है। गर्भाशय एक लम्बी और टेढ़ी मेढ़ी नली होती है कि जो जनन छिद्रमें जाकर खुलती है। गर्भाशयमें लगभग २० या तीस अण्डे होते हैं। इन अण्डोंके एक अन्त पर एक कांटा लगा होता है। जब अण्डे गर्भाशयमें होते हैं तो उनका कांटे वाला अन्त पीछेकी ओर होता है।

बहिष्करण संस्थान दो अन्वायाय नालियोंसे बना होता है जो पिछले अन्त पर वहिष्करण छिद्र द्वारा खुलती हैं। युवावस्थामें नर और मादा पृथक् रहते हैं, परन्तु प्रौढ़ावस्थामें मादा नरकी नलीमें पहुंचजाती है। ये परोप जीवी मनुष्य की संयुक्ता शिरा, और उसकी अन्तधारकीय शाखाओंमें पाये जाते हैं परन्तु मूत्राशयी और गर्भाशयी शिरा जालोंमें बहुत ही अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। यहांसे यह कृमि निम्न महा शिरामें पहुँच सकती है और वहांसे फुष्फुस में। इनकी संख्या बहुत अधिक होती है। संयुक्त शिरा और उस की शाखाओंमें ही ३०० से अधिक पाई जा सकती है। कृत्रिम रूपसे दूषित बन्दरोंमें उनकी संख्या और भी अधिक हो सकती है। लूस को मूत्राशय की अधः श्लेष्मल तन्तुमें यह परोपजीवी इतनी संख्यामें मिल चुके हैं कि प्रति आधे वर्ग श. मी. में उनका एक जोड़ा उपस्थित था।

फेयरले और मैनसन बाहरने कृत्रिम रूपसे दूषित बन्दरों को बेहोश करके उनकी अन्तधारक को निकाल कर निरीक्षण किया तो यह ज्ञात हुआ कि इस परोप जीवीके अण्डे शरीरके बाहर कैसे निकलते हैं। कृमियोंका जोड़ा रक्त प्रवाहके विमुख जितनी दूर जा सकते हैं चले जाते हैं मादा कम मोटी होती इसलिये वह नरका साथ छोड़कर अपने चूषणकों की सहायता से और भी दूर तक जाती है यहां तक कि छोटी शिराओं को फैला लेती है। अब यहां पर उदरीय चषणकके सामने अण्डे जमाकर दिये जाते हैं। मादा कृमि फिर कुछ पीछे हटती है और फिर अण्डे निकाल देती है। जब फिर शिराकमें रक्त प्रवाहन आरंभ हो जाता है तो शिराकके संकुच्चनके कारण अण्डोंका कांटा शिराकोंकी भीतमें घुस जाता है और फिर अण्डा अधः श्लेष्मल तन्तुमें निकल आता है कुछ ही घंटेमें ये अण्डे मूत्रके साथ बाहिर निकाल आते हैं छोटी शिराओंके फटनेके कारणही कारण कुछ रक्त भी मूत्रमें मिला होता है।

विद्दतमुखी रक्तीयके अण्डे बहुतसे रोगियोंके मलमेंभीपाये जाते हैं परन्तु इसमें सन्देह है कि वे विद्वतमुखी मेनसनीकी तरह अन्त्रमें अंकुरवृद्धि भी उत्पन्न कर सकते हैं या नहीं।

विद्दत मुखी रक्तीयका स्वतन्त्र भ्रूण
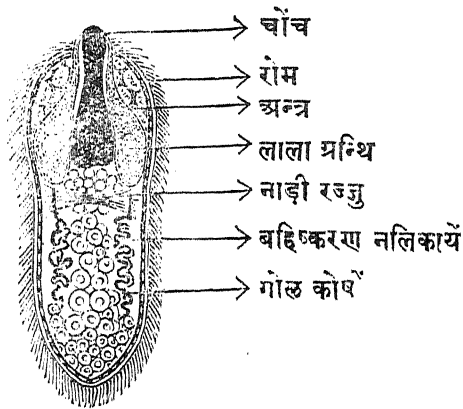
स्वतन्त्र भ्रूण—नये मूत्रमें अण्डा कुछ बादामी रंगका होता है और साधारणतः उसमें रोमयुक्त भ्रूण पाया जाता है। कुछ समयमें पानी सोख जानेके कारण छिलकेमें व्यत्यस्त फटान द्वारा भ्रूण बाहर निकल आता है। यह पानी में इधर उधर तैरता है परन्तु यदि उसे मीठा पानी न मिले तो वह शीघ्र ही मर जाता है। यदि मूत्रमें बहुत सा मीठा पानी मिला दिया जाय तो भ्रूण झूमता और तैरता रहता है और ३६ घंटे तक जीवित रह सकता है जब कि प्राणी तैरता है तो उसकी आकृतिमें बहुतसे परिवर्तन होते हैं। अधिकतर चलते समय उसकी आकृति थनाकार रहती है और पिछला अन्त कुछ कम मोटा रहता है। जब वह अधिक स्थिर होता है तो उसकी आकृति का गोल होनेकी ओर झुकाव रहता है। प्राणी रोमों द्वारा चलता है जो कि छोटी सी चोंचके अतिरिक्त कुल शरीरमें लगे होते हैं। सावधानीसे निरीक्षण करने पर चोंचसे आरम्भ होती हुई अन्त्र देखी जा सकती है। अन्त्रके दोनों ओर दो लाला ग्रन्थियें पहिचानी जा सकती हैं कि जिनकी नलियें मुंहमें खुलती है। भ्रूणका अधिकांश भाग जनन कोषोंसे भरा होता है और पिछले भागमें वहिष्करण नलिकायें उपस्थित रहती हैं कि जो चार बड़ी कोषोंसे सम्बन्धित रहती हैं। वातसंस्थान एक अण्डाकार पिन्डका बना होता है कि जो भ्रूणके शरीरके बीच में लगा होता है। भ्रूणकी त्वचा बहुत सी बहु-पार्श्वीय पृष्ठ कोषोंकी बनी होती है। शरीर तीन व्यत्यस्त मण्डलोंमें विभक्त रहता है कि जो ५ या ६ अन्वायाय स्तंभोंसे जुड़े रहते हैं।
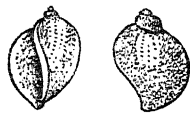
बुलीनस कन्टोर्टटस
(घोंघा)

जीवन इतिहास—वि. रक्तीयके भ्रूण मीठे पानी के घोंघोंमें घुस जाते हैं। जिन घोंघोंमें वि-रक्तीयके भ्रूण घुसते हैं अधिकतर बुलीनस जातिके होते हैं जैसे बु० डिवोवसकी बु० कन्टोर्टटस। वि० मैनसनीके प्लेनोविस बोइसियी घोंघेमें घुसते हैं। ये घोंघे मिश्र देशकी नहरोंमें बहुतायतसे पाये जाते हैं। लुटजके कथनानुसार जब भ्रूण घोंघेके सीघोंमें पहुँचते हैं तो उनके रोम तो गिरजाते है और वे जननस्यूतमें परिवर्तित हो जाते हैं कि जिनमें उप जनन स्यूत उपस्थितरहते हैं ये उपजनन स्यूत यकृत और द्विलिङ्गीय ग्रन्थि को चली जाती हैं। वहां पर व्यत्यस्त चिरावों द्वारा इनकी संख्या इतनी बढ़ जाती है कि कुल यकृतमें लम्बी, कोमल और पारदर्शिन् नलिये भरी दिखती है कुछ समय पश्चात् इन उपजननस्यूतोंमें चिरी दुमके असंख्य पुच्छिन् बन जाते हैं। यह पुच्छिन् प्रौढ़ावस्था को पहुँच कर पानीमें निकल आते हैं। यह स्वतंत्र पुच्छिन उपर्युक्त रीढ़वाले प्राणी मनुष्य चूहा, बन्दर, इत्यादि की खालमें घुसजाते हैं खालमें प्रवेश करते हुए उनकी दुम गिरजाती है। लसीका नलियों और रक्तनलियोंमें प्रवेशकरके फिर वे अपने आतिथ्यकारके यकृत्में पहुँच जाते हैं और छ सप्ताह में प्रौढ़ावस्था को पहुँच कर अण्डे उत्पन्न करने लगते हैं। प्रयोग शालामें यह सब देखनेके लिये एक प्राणी की टांग अथवा दुम ऐसे पानीमें रख दो कि जिसमें घोंघेसे कुछ पच्छिन् निकले हों। परन्तु यह सावधानी रखना चाहिए कि पुच्छनोंकी संख्या बहुत अधिक न हो अन्यथा चाहिये प्राणी बहुत शीघ्र मर जायगा। परीक्षण कर्ता को सावधानी रखना चाहिये कि वह गन्दे पानीसे अपनी खाल न स्पर्शमें आने दे। घोंघों में बहुत जातिके पर्णसमोंके भ्रूण जननस्यूत और पुच्छिन् पाये जा सकते हैं इसलिये यह आवश्यक है कि परीक्षणकर्ता वि० रक्तीय और वि० मैनसनी के पुच्छिनों को पहिचान सके। लाईपर ने चार पहिचाने बतलाई है। (१) इनके कंठ नहीं होता है (२) इनकी दुम चिमटीके सदृश चिरी हुई होती है। (३) इनके चक्षुचिन्ह नहीं होते। चक्षुचिन्ह शरीरके सामने

वाले भागमें दोनों चूषणकोंके बीचमें स्थित मध्य रेखाके दोनों ओर दो काले रंगके धब्बे होते हैं और यह कई अन्य पुच्छनोंमें पाये जाते हैं परन्तु विदन मुखियोंमें अनुपस्थित होते हैं। (४) दो जोड़ ग्रन्थियोंके होते हैं कि जो पीछेके भागके दोनों ओर लगे होते हैं और मुंहसे सम्बन्धित होते हैं। बहिष्करण संस्थान शरीरमें स्थित छः और दुमके अगले भागमें स्थित दो कोणोंका बना होता है। चिमटी सदृश दुमकी त्वचामें छोटे छोटे कांटे लगे होते है। लाईपरने यह भी दर्शाया कि जब प्राणी बूलिनस डिम्रोवमकी इत्यादि उसी जातिके घोंघोंसे निकले पुच्छिनोंसे दूषित किये जाते हैं तो सदा ही अंतमें लगे कांटे वाले अन्डे उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार प्लेनोबिस बोईसियी निकले पुच्छिनों द्वारा दूषित प्राणियोंमें केवल बगलमें कांटेदार अन्डे पाये जाते हैं। दोनों प्रकारके अन्डे एक ही आतिथ्यकारमें कभी नहीं पाये गये। इसके अतिरिक्त जो इन दो पृथक् जातिके घोंघों से निकले पुच्छिनोंसे कृमि बनते उनमें भी नियत अन्तर पाये जाते हैं।

बुलिनससे निकले पुच्छिनोंसे बने कृमियोंमें ४ या ५ अन्डकोष पाये जाते हैं और आहार प्रणालीकी शाखायें दूर जाकर मिलती है कि जिससे अन्धान्त्र छोटी ही रह जाती है।

प्लेनोर्बिस बोइसियीसे निकले पुच्छिनोंसे बने कृमियोंमें ८ या ६ अन्डकोष पाये जाते हैं और आहार प्रणालीकी शाखाओंके शीघ्र ही जुड़ जानेके कारण जो अन्धान्त्र बनी है वह बहुत लम्बी होती है। मादा वि० रक्तियमें गर्भाशयमें बहुतसे अन्डे भरे रहते है और डिम्ब ग्रन्थि पिछले भागमें पाई जाती है। मादा वि० मैनसनीमें गर्भाशय छोटा होता है, उसमें एक अथवा दो अण्डेही रहते हैं और डिम्बग्रंथि अगले भाग में आहार प्रणालीकी शाखाओंके मिलानके सामने होती है। वि. रक्तीयके विमुख विमन्सनीके आक्रमणमें आतिथ्यकारका यकृत् में काले रंगके कण जम जाते हैं। वि. रक्तीय प्रौढ अवस्था तक पहुँचनेके पहिले ही जब कि नाली में लगी मादा भी छोटी होती है अन्त्रधारकीय शिराओंकी छोटी शाखाओं तक उतर आता है। वि. मैनसनी मादायें अण्डे बनने और निकलने तक यकृत्में ही रहती है और उसके बगल में कांटेवाले अण्डे संयुक्ताशिराकी शाखाओंमें पाये जा सकते हैं।

लुट्जने यह खोजकी कि ब्राजिलमें वि. मैनसनी का आतिथ्यकार प्लेनोर्बिस ओलिवेलियस घोंघा होता है। दक्षिण अफ्रीकामें वि.रक्तीयका आतिथ्यकार फाईजोप्सिस अफ्रीकाना घोंघा होता है कि जो बुलिनसके ही समान होता है।

वि. वृषमी भी दक्षिण अफ्रीकामें पाया जाता है इसलिये ऐसा जान पड़ता है कुछ पुच्छिन् जिन्हें कास्टन ने वि. रक्तीय का पुच्छिन समझा था वे वास्तवमें वि. रक्तीयके पुच्छिन् नहीं थे। पोर्टर का कहना है कि विरक्तीय के पुच्छिन् लिमानिया नटालेन्सिसमें मिले हैं।

फेयरलेकी प्रति क्रिया—१९१७ में फेयरले ने दूषित घोंघाके यकृतका सार प्रतिजनकके स्थानमें उपयोग करके पूरकशोषणकी एक प्रतिक्रिया निकाली। प्रतिजनक ऐसे घोंघोंके यकृतोंका कि जिनमें पुच्छिन् उपस्थित हों लेकर मद्यसार द्वारा उनका सार निकाल कर बनाया जाता है। यकृत्को मद्यसारमें टुकड़ोंके रूपमें डालकर अच्छी तरह दबाया और रगड़ा जाता है और फिर जो सार निकले उसमेंसे स्रेक्सलके पम्प द्वारा मद्यसार उड़ा देते हैं। बचे हुए टोस द्रव्यमें से फिर नमकके घोल द्वारा सार निकाल लिया जाता है। फिर वासरमेनकी प्रतिक्रिया की तरह जांचकी जाती है।

यह प्रतिक्रिया सामूहिक होती है क्योंकि वि. मैनसनीके पुच्छिनोंसे बनाया प्रतिजनकसे वि. रक्तीय वाले तोय (सीरम) के साथ भी प्रतिक्रिया सफल होती पाई जाती है। परन्तु यह सिद्ध किया जा चुका है कि यह प्रति किया केवल मूत्रीय और मलीय विकृत मुखी रोगोंमें ही पाई जाती है और आरम्भिक अवस्थामें

लगभग ८९% रोगियोंमें पाई जाती है। मलमूत्रमें अण्डे पाये जानेके पहिले ही इस प्रतिक्रियासे निदान किया जा सकता है। रोगकी पिछली अवस्थामें यह प्रतिक्रिया इतनी स्पष्ट नहीं रहती है।

अमिनो-अजीव और द्वयजीव यौगिक

(Amino,-Azo und Diazo Compounds)

[ले० श्रीसत्यप्रकाश एम. एस-सी.]

बानजावीन और उसके लवणजन और नोषोयौगिकोंका वर्णन गत अध्यायमें दिया जा चुका है। अब हम यहाँ अमिनो यौगिकोंका वर्णन देते हैं। बानजावीनके एक या अधिक उद्जनोंको अमिनोमूल-नोउ२-द्वारा स्थापित करनेसे अमिनोयौगिक प्राप्त होते हैं। सम्पृक्त उदकर्बनोंका वर्णन करते हुए प्रथम खंडमें हमने अमिनका वर्णन दे दिया है। अमिनो-बानजावीनको भी इसी प्रकारका अमिन समझा जा सकता है।

क$_6$ उ$_5$ नोउ$_2$ क$_2$ उ$_5$ नोउ$_2$

अमिनो बानजावीन   ज्वलीलामिन

ज्वलीलहरिद पर अमोनियाका प्रभाव डाल कर ज्वलीलामिन बनाया जा सकता था पर अमिनो बानजावीन हरोबानजावीन और अमोनिया द्वारा नहीं बनाया जा सकता है। नोषोबानजावीनको उचित रीतिसे अवकृत करके हम इसे तैयार कर सकते हैं।

क$_6$ उ$_6$ ——> (उनोओ$_3$) क$_6$उ$_5$नोओ$_2$ ——> (उ$_2$) क$_6$उ$_5$ नोउ$_2$

बानजावीन   नोषो बानजावीन   नीलिन

इस अवकरणके लिये अम्लीय घोल होना चाहिये। लोह, दस्तम्, वंगम् अथवा लोहम् धातुचूर्ण उदहरिकाम्ल या सिरकाम्लकी विद्यमानतामें नोषोबानजावीनको नीलिन् (अमिनो बानजावीन) में परिणत कर सकते हैं। वंगस हरिद और तीव्र उदहरिकाम्लका भी उपयोग किया जा सकता है।

नीलिन् (aniline क$_6$ उ$_5$ नोउ$_2$—एक गोल कुप्पीमें ४५ ग्राम वंगम्के खुरखुरे टुकड़े लो और इनमें २५ ग्राम नोषोबानजावीन मिला दो। जल कुंडी पर मिश्रणको थोड़ी देर तक गरम करके कुप्पी को उतार लो और धीरे धीरे एक बारमें ५—१० घ. श. म. करके ६ घ. म. तीव्र उदहरिकाम्ल डालो। मिश्रण बहुत उग्रतासे उबलने लगेगा, ऐसी अवस्थामें इसे ठंडे पानीमें थोड़ी देर तक डुबाकर रक्खो। आधे घंटेमें सब उदहरिकाम्ल डालदो। जब मिश्रण शान्त पड़ जाय, इसे जल कुंडी पर एक घंटेके लग भग उबालो। प्रक्रिया इस प्रकार है।

२क$_6$ उ$_5$ नो ओ$_2$ + ३व + १४ उह

=२क$_6$ उ$_5$ नोउ$_3$ उह + ३वह$_4$ + ४उ$_2$ ओ

नीलिन् उदहरिद

प्रक्रियामें इस प्रकार नीलिन्हरिद बनता है। इसमें पानी छोड़ कर सैन्धकक्षारका तीव्रघोल (७० ग्राम १०० घ. श. म. जलमें) डालो। नीलिन्की तह पृथक होने लगेगी। पानीकी सतह पर इसकी काली तह तैरने लगेगी। पृथक्कारक कीपसे इसे पृथक करलो। तदुपरान्त वाष्प स्रवण करके इसे स्वच्छ करलो।

नोषोबानजावीनकी जगह यदि द्विनोषो बानजावीन लिया जायगा तो अवकरणके पश्चात् द्विअमिनो बानजावीन प्राप्त होगा—

क$_6$ उ$_4$ <(नो ओ$_2$, नो ओ$_2$) + ६ उ$_2$ = क$_6$ उ$_4$ <(नो उ$_2$, नो उ$_2$)

द्विनोषोबानजावीन   द्विअमिनो बानजावीन

मध्यनोष नीलिन् (Metanitraniline) म-नोषो अमिनो बानजावीन् क$_6$ उ$_4$ (नो उ$_2$) नो ओ$_2$—यदि मध्य-द्विनोषो बानजावीनको मद्यमें घोला जाय और उसमें तीव्र अमोनिया डाल दिया जाय और तदुपरान्त उदजन गन्धिद प्रवाहित किया जाय तो द्विनोषो बानजावीनका केवल एक नोषोमूलही अमिनो

मूलमें परिणत होगा। इस प्रकार मध्य नोषनोलिन बन जायगा।

$$क_६ उ_४ < \begin{matrix} नो उ_२ \\ नो ओ_२ \end{matrix} + ३ नो उ_४ उ ग$$

म-द्विनोषोबानजाबीन

$$= क_६ उ_४ < \begin{matrix} नो ओ_२ \\ नो ओ_२ \end{matrix} + ३नोउ_३ + ३ग + ३उ_२ओ$$
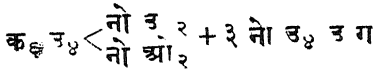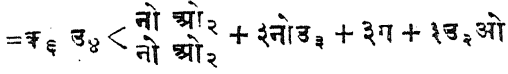
म-नोषनीलिन्

नीलिन्के गुण—ताजा तैयार किया हुआ नीलिन् नीरंग तैल-पदार्थ है। पर प्रकाश और वायुकी विद्यमानतामें यह शीघ्र ही काला पड़ जाता है, इसका क्वथनांक १८२°श है और—८°श पर यह ठोस हो जाता है। १६ श पर इसका आपेक्षिक घनत्व १·०२४ है। जलमें यह बहुत ही कम घुलनशील है। अमिनो-मूल होनेके कारण इसमें चारीय गुण हैं अतः यह अम्लोंके संसर्गसे लवण देता है—

$$क_६ उ_५ नोउ_२ + उ ह = क_६ उ_५ नो उ_२.उ ह$$

नीलिन् उदहरिद

$$२ क_६उ_५नोउ_२ + उ_२गओ_४ = (क_६उ_५नोउ_२)_२उ_२ गओ_४$$

नीलिन् गन्धेत

$$क_६ उ_५ नोउ_२ + उ नो ओ_३ = क_६ उ_५ नोउ_२ उनोओ_३$$

नीलिन् नोषेत

पररौप्यहरिदके साथ यह नीलिन-पररौप्यो-हरिद नामक द्विगुण लवण देता है—

$$२ क_६ उ_५ नोउ_२.उह + पह_४ = (क_६ उ_५ नो उ_२उ ह)_२ पह_४$$
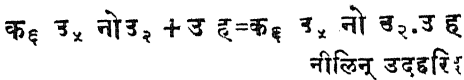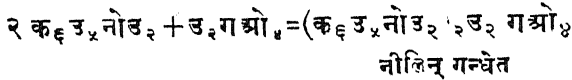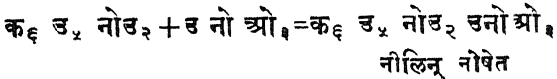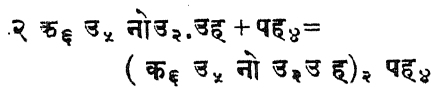
दारील नीलिन् (Methylaniline)—यदि नीलिन्को दारील नैलिद या दारील अरुणिदके साथ उबाला जाय तो पहले दारील नीलिन् बनता है और फिर वह द्विदारील नीलिन्में परिणत हो जाता है:—

$$क_६ उ_५ नोउ_२ + कउ_३ नै = क_६उ_५ नोउ. कउ_३ + उनै$$

दारील नीलिन्
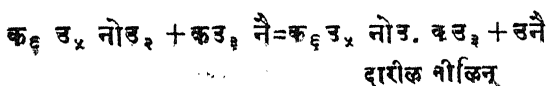
$$क_६ उ_५ नो उ (क उ_३) + क उ_३ नै$$
$$= क_६ उ_५ नो उ (क उ_३)_२ + उ नै$$
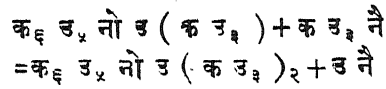
द्विदारील नीलिन्

इस प्रकार नीलिन्के अमिनोमूलके दोनों उदजन मद्यीलमूलों द्वारा संस्थापित किये जा सकते हैं। प्रथम खंडमें हम कह चुके हैं कि अमिन तीन प्रकार के होते हैं—प्रथम अमिन् द्वितीय अमिन और तृतीय अमिन। इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि नीलिन् प्रथम अमिन है और दारील-नीलिन् द्वितीयअमिन है और द्विदारील नीलिन् तृतीय अमिन है—
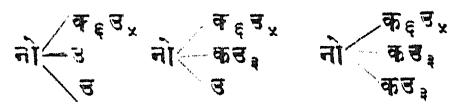
नो—क₆उ₅, उ, उ	नो—क₆उ₅, कउ₃, उ	नो—क₆उ₅, कउ₃, कउ₃
नीलिन्	दारील नीलिन्	द्विदारील नीलिन्
प्रथम-अमिन	द्वितीय-अमिन	तृतीय-अमिन

नीलिन्के अमिनोमूलमें दो उदजन स्वतन्त्र हैं, दारील नीलिन् में एक स्वतन्त्र उदजन है पर द्विदारील नीलिन्में एक भी नहीं है।

प्रथम-द्वितीय, और तृतीय अमिनों में भेद—अब यहां कुछ ऐसे नियम दिये जाते हैं जिनसे प्रथम, द्वितीय और तृतीय अमिनोंकी पहचानकी जा सकती है—

नोषसाम्ल द्वारा—प्रथम अमिन अर्थात् नीलिन्को उदहरिकाम्लमें घोलो और उसमें फिर सैन्धक नोषित का घोल डालो। नीलिन् दिव्योलमें परिणत हो जायगा।
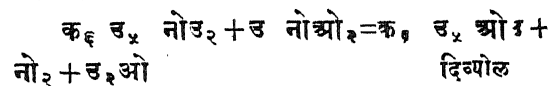
$$क_६ उ_५ नोउ_२ + उ नोओ_२ = क_६ उ_५ ओउ + नो_२ + उ_२ओ$$

दिव्योल

सूंघकर दिव्योलकी विद्यमानता मालूमकी जा सकती है।

द्वितीय अमिन अर्थात् दारील नीलिन्के साथ यही प्रक्रिया करनेसे नोषोसो दारील नीलिन् का अघुल पीला तैल पदार्थ प्राप्त होगा।

$$क_६ उ_५ नोउ (कउ_३) + उनोओ_२$$
$$= क_६ उ_५ नो (नोओ) कउ_३ + उ_२ ओ$$
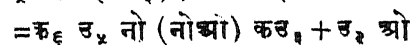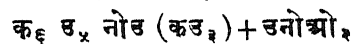
नोषोसोदारील नीलिन्

पर यदि तृतीय अमिन द्विदारील नीलिन् में सैन्धक नोषित और उदहरिकाम्ल डाला जाय तो चटकीला लाल रंगका घोल प्राप्त होता है जिसमेंसे पीले रंगके रवे पृथक् किये जा सकते हैं। त्रिषमयोगी तृतीय अमिन जैसे त्रिदारिलामिन नो (कउ$_3$)$_3$ के साथ इस प्रकार का पदार्थ उपलब्ध नहीं होता है यह अन्तर विशेष दर्शनीय है। प्रक्रियामें नोषोसो द्विदारील नीलिन् प्राप्त होता है—

कनो (कउ$_3$)$_2$ । कनो (कउ$_3$)$_2$

उक कउ उक कउ + ३ ओ

उक कउ उक कउ

क क नोओ

उ

उ ओ नो ओ
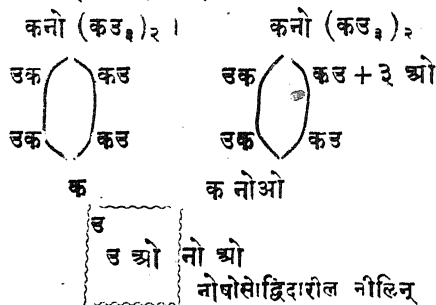
नोषोसोद्विदारील नीलिन्

दारील नीलिन्—क$_6$ उ$_5$ नोउ (कउ$_3$)—यह ०.९७८ घनत्व का नीरंग द्रव्य है जिसका क्वथनांक १९३°श है। द्विदारील नीलिन् क$_6$ उ$_5$ नो (कउ$_3$)$_2$का भी क्वथनांक १९३°श ही है। दारील और द्विदारील-नीलिनों के उदहरिदोंको बन्द पात्रोंमें २५०°-२५०°श तक गरम करनेसे इनके संगठनमें विचित्र परिवर्त्तन हो जाता है और दारीलमूल पार्श्व श्रेणीसे हटकर बानजावीन केन्द्रमें स्थापित हो जाते हैं। इस प्रकार दारील नीलिन उद-हरिदसे पूर्व-और पर-टोल्वीदिन-मलते है।

नोउ (कउ$_3$) उह

नोउ$_2$ उह नोउ$_2$ उह

कउ$_3$

पू० टोल्वीदिन कउ$_3$

प-टोल्वीदिन
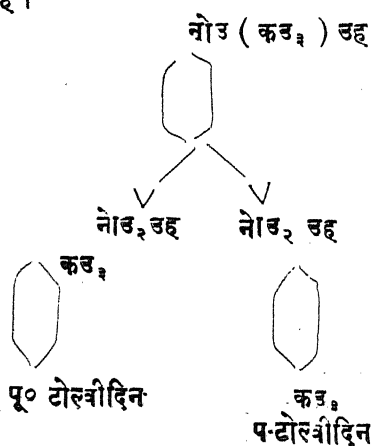
इसी प्रकार द्विदारील नीलिन-उद हरिदमें निम्न प्रकार परिवर्तन होते है।
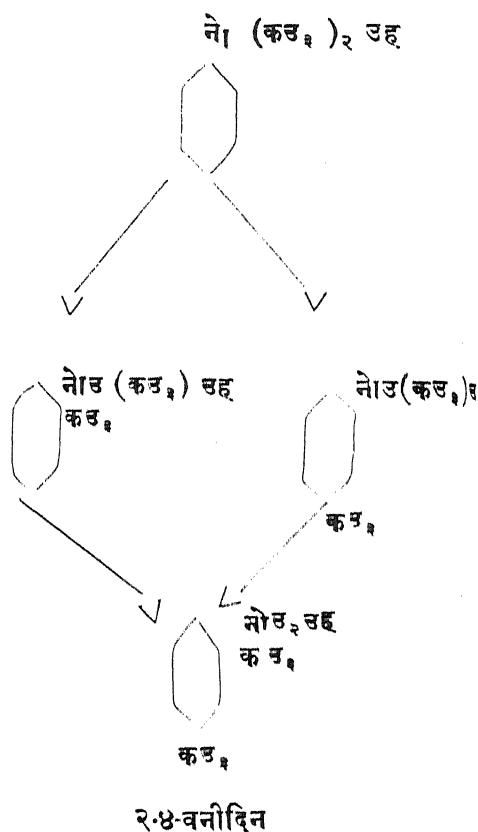
२-४-वनीदिन

अन्तमें २-४-वनीदिन (Xylidine) मिलता है।

सिरकनीलिद (acetanilide) दिव्यीलसिरामिद—नीलिन् पर सिरकमद्यानार्द या सिरकील हरिदका प्रभाव डालनेसे सिरकनीलिद बनता है अर्थात् अमिनो मूलके एक उदजनके स्थान सिरको मूल—कउ$_3$-कओ-स्थापित हो जाता है।

क$_6$ उ$_5$ नोउ$_2$ + ह क ओ कउ$_3$

→ क$_6$ उ$_5$ नोउ कओ कउ$_3$ + उह
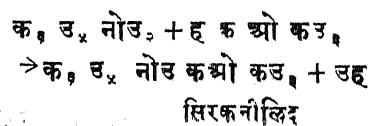
सिरकनीलिद

सिरकनीलिद् को दिव्यील सिरकामिद् भी कह सकते हैं।

क उ₃ कओ नोउ₂ कउ₃ क ओ नोउ (क₆ उ₅)
सिरकामिद दिव्यील सिरकामिद

यह श्वेत रङ्गका रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक ११४°श है। सैन्धक और उदहरिकाम्ल आदि केसाथ उबालने से इसका उद्विश्लेषण हो जाता है और नीलिन् तथा सिरकाम्ल पृथक् होजाते हैं।

क₆ उ₅ नोउ कओ क उ₃ + उ₂ ओ
= क₆ उ₅ नो उ₂ + क उ₃ कओ ओउ

दारील नीलिन् पर सिरकीलहरिद् या सिरक मद्यानार्द्रका प्रभाव डालनेसे दारील सिरकनीलिद् प्राप्त होगा—

क₆ उ₅ नो उ (क उ₃) + कउ₃ क ओ ह
= क₆ उ₅ नो (क उ₃) क ओ क उ₃ + उ ह
दारील सिरक नीलिद

द्विदारील नीलिन्से इस प्रकारकी प्रक्रिया सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें नोषजनके साथ कोई स्वतंत्र उदजन नहीं है।

नीलिन्की पहिचान—(१) रंग विनाशक-चूर्ण अथवा सैन्धक उपहरिदके घोलमें नीलिन्की एक बूंद डालनेसे बैजनी रंगका घोल प्राप्त होगा। यह रंग धीरे धीरे भूरा पड़ जायगा और बादको बिलकुल ही उड़ जायगा।

(२) चीनी मिट्टीकी प्यालीमें एक बूंद नीलिन् की डालो और इसमें तीव्र गन्धकाम्लकी कुछ बूंदे डालकर कांचकी छड़से हिलाकर मिला लो। अब इसमें पांशुजद्विरागितके घोल कुछ बूंदें मिलानेसे चटकीला नीला रंग दिखाई पड़ेगा।

नोषनीलिन्—क₆ उ₄ (नोउ₂) नो ओ₂—nitraniline—सिरकनीलिद्को ठंडे धूम्रित नोषिकाम्ल में धीरे धीरे डालनेसे पू-और प—नोषसिरकनीलिद्प्राप्त होते हैं। दोनोंके मिश्रणको हरोपिपील (क्लोरोफाम) के साथ हिलाते हैं। ऐसा करनेसे पू—नोषसिरकनीलिद् हरोपिपीलमें घुल जाता है और अघुल प-नोष-सिरकनीलिद् अलग हो जाता है। इस प्रकार दोनों सिरकनीलिदोंको पृथक् कर लेते हैं। नोषसिरकनीलिदोंको क्षारों द्वारा उद्विश्लेषित करने पर पू-और प-नोषनीलिन् पृथक् हो जाते हैं।

यदि नीलिन्को तीव्र गन्धकाम्लकी विद्यमानतामें तीव्र नोषिकाम्ल द्वारा प्रभावित किया जाय तो मध्य-नोषनीलिन् प्राप्त होगा।

पू-नोषनीलिन् (द्रवांक-७१°) म-नोषनीलिन् (द्रवांक-११४°) प-नोषनीलिन् (द्रवांक-१४७°)
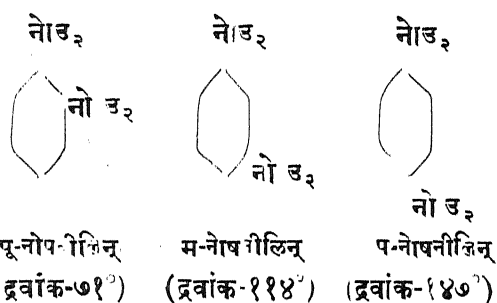
प्रत्येक नोष नीलिन्का अवकरण करनेसे नोषो-मूल अमिनोमूलमें परिणत हो जाता है और द्विव्यीलिन द्विअमिन प्राप्त होते हैं:—

पू-दिव्यीलिन-द्विअमिन (द्रवांक-१०३°) म दिव्यीलिन-द्विअमिन (द्रवांक-६३°) प-दिव्यीलिन-द्विअमिन (द्रवांक-१४०°)
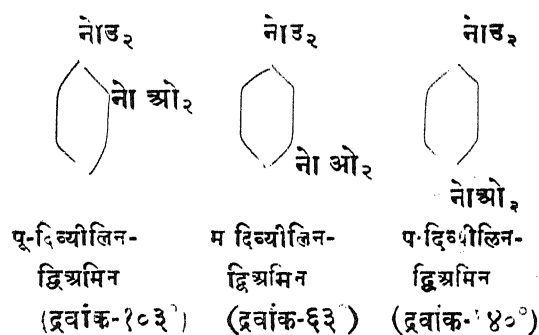
मध्य-द्विनोषो बानजावीन का अवकरण करकेभी मध्य-दिव्यीलिन द्विअमिन बनाया जा सकता है। रंग बनानेमें इनका उपयोग किया जाता है।

द्विदिव्यीलामिन—(Diphenylamine) (क₆ उ₅)₂ नो उ—नीलिन् उदहरिद् और नीलिन्के मिश्रणको बन्द पात्रमें २४०°श तक गरम करनेसे द्विदिव्यीलामिन प्राप्त होता है।

क$_६$ उ$_५$ नो उ$_२$ उह + क$_६$ उ$_५$ नो उ$_२$
= (क$_६$ उ$_५$)$_२$ नो उ + नो उ$_४$ ह
द्विदिव्यीलामिन
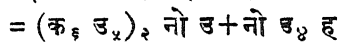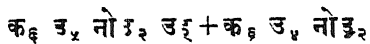
यह नीरंग रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक ५४ श और क्वथनांक ३१० श है। इसका उपयोग नीले रंग बनानेमें किया जाता है।

द्वयजीव यौगिक (Diazo compounds)

यदि नीलिन्की एक अणुमात्रा उदहरिकाम्लकी दो अणुमात्राओंमें घोली जायं और घोलको बर्फमें ठंडा रखा जाय जिससे तापक्रम ४°श के लगभग हो और फिर इसमें सैन्धक नोषितकी एक अणुमात्रा धीरे धीरे डाली जाय तो पीले रंगका एक घोल प्राप्त होता है। घोलमें एक नया यौगिक विद्यमान है जो एक प्रबल भस्मका हरिद है—
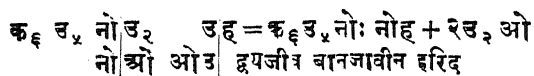
क$_६$ उ$_५$ नो उ$_२$ उह = क$_६$ उ$_५$ नोः नोह + २उ$_२$ ओ
नो ओ ओउ | द्वयजीव बानजावीन हरिद

जिस प्रकार अमोनियम हरिद्में नोउ$_४$ _अमोनियम मूल कहलाता है इसी प्रकार क$_६$ उ$_५$ नो$_२$-को द्वयजीवोनियम (diazonium) मूल कहते हैं। यह मूल नोउ$_४$ -मूलके समान लवणमें आम्लिक मूलों-हरिद गन्धेत आदि से संयुक्त ही पाया जाता है, पृथक् नहीं। कुछ मुख्य लवण नीचे दिये जाते हैं जो अमोनियम लवणोंके सर्वथा समान हैं।

क$_६$ उ$_५$ नो$_२$. ओउ द्वयजीव बानजावीन उदौषिद	नोउ$_४$ ओउ अमोनियम उदौषिद
क$_६$ उ$_५$ नो$_२$ ह द्वयजीव बानजावीन हरिद	नोउ$_४$ ह अमोनियम हरिद
क$_६$ उ$_५$ नो$_२$ नो ओ$_३$ द्वयजीव बानजावीन नोषेत	नोउ$_४$ नोउ$_३$ अमोनियम नोषेत
(क$_६$ उ$_५$ नो$_२$)$_२$ गओ$_४$ द्वयजीव बानजावीन गन्धेत	(नो उ$_४$)$_२$ ग ओ$_४$ अमोनियम गन्धेत

जिस प्रकार नीलिन्से द्वयजीव बानजावीन हरिद मिलता है उसी प्रकार दिव्यील द्विअमिनो नोष नीलिन् आदिके अमिनो मूलभी द्वयजीवोनियम मूलमें परिणत किये जा सकते हैं। आवश्यक यह है कि अमिनो यौगिकोंको उदहरिकाम्लकी उचित मात्रामें घोल कर खूब ठण्डा किया जाय अर्थात् तापक्रम ३°—६ श तक रहे और फिर सैन्धक नोषितकी उपयुक्त मात्रा डाली जाय। इस प्रक्रियाको द्वयजीवकरण (diazotising) कहते हैं। अमिनो यौगिकोंसे रंग बनानेमें इसका बहुत उपयोग किया जाता है।

नोष नीलिन् के द्वयजीवकरण से निम्नपदार्थ मिलेगा।

नोओ$_२$ ⬡ नोउ$_२$ —>

नोओ$_२$ ⬡ नोःनोह
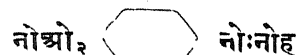
प-नोषनीलिन् | प-नोष-बानजावीन द्वयजीवहरिद

इनका उपयोग रंगोंका वर्णन देते समय बताया जायगा।

द्वयजीव यौगिकोंके गुण—(१) द्वयजीव बानजावीन हरिदको मद्यके साथ उबाला जाय तो नोषजनके बुलबुले निकलते दिखाई पड़ेंगे। प्रक्रियामें द्वयजीव बानजावीन हरिद का अवकरण हो जाता है और यह बानजावीनमें परिणत हो जाता है। मद्य स्वयं ओषदीकृत होकर सिरकमद्यानार्द्रमें परिवर्त्तित हो जाता है।

क$_६$ उ$_५$ नोः नो ह + क$_२$ उ$_५$ ओउ = क$_६$ उ$_६$ + नो$_२$ + कउ$_३$ कउ ओ + उह

अर्थात्

क$_६$ उ$_५$ { नो नो } ह = क$_६$ उ$_६$ + नो$_२$ + उह
उ { } उ
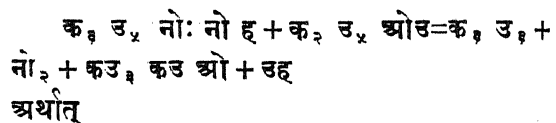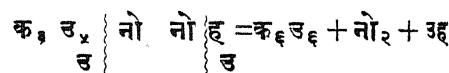
(२) यदि पानीके साथ द्वयजीव बानजावीन हरिदको उबालें तो नोषजन निकलने लगेगा और दिव्योल बन जायगा।

क$_६$ उ$_५$ { नोः नो ह } = क$_६$ ओ$_५$ ओउ + उह + नो$_२$
ओउ { } उ
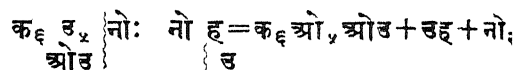
(३) इसी प्रकार पांशुजनैलिदके घोलके साथ उबालने से यह नैलोबानजावीन में परिणत हो जायगा।

क$_६$ उ$_५$ नो$_२$ ह + पां नै = क$_६$ उ$_५$ नै + पांह + नो$_२$
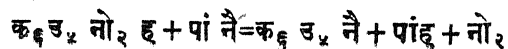
(४ अब हम यहां सैण्डमायरकी प्रक्रियायें देते हैं जिनके उपयोगसे हरोबानजावीन, अरुणो बानजावीन और श्याम-बानजावीनका संश्लेषण किया जाता है। यदि ताम्रस हरिद का उदहरिकाम्लमें घोलकर द्वयजीवबानजावीन हरिद के साथ प्रभावित किया जाय तो हरोबानजावीन प्राप्त होगा।

$$क_६ उ_५ नो_२ ह + ताह = क_६ उ_५ ह + नो_२ + ताह$$

इसी प्रकार ताम्रसअरुणिदको उदअरुणिकाम्लमें घोलकर अथवा ताम्रसश्यामिद्को उदश्यामिकाम्लमें घोलकर द्वयजीवबानजावीन हरिदके संसर्गमें लाने से क्रमशः अरुणोबानजावीन और श्यामोबानजावीन प्राप्त होंगे।

(१) $क_६ उ_५ नो_२ ह + तारु$
$= क_६ उ_५ नो_२ रु + ताह$
$= क_६ उ_५ रु + नो_२ + ताह$
अरुणो बानजावीन

(२) $क_६ उ_५ नो_२ ह + ताकनो$
$= क_६ उ_५ नो_२ कनो + ताह$
$= क_६ उ_५ कनो + नो_२ + ताह$
श्यामो बानजावीन या
दिव्यील श्यामिद
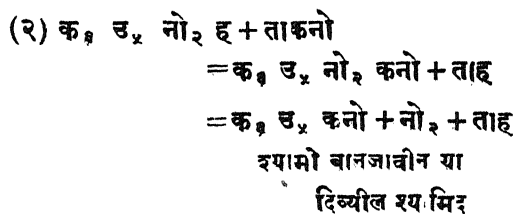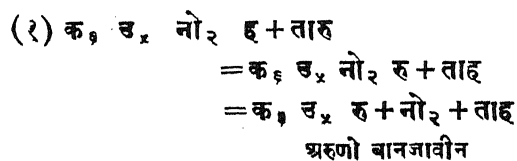
दिव्यील उदाजीविन—phenylhydrazine $क_६ उ_५ नोउ नोउ_२$—शर्कराओं का वर्णन देते समय इस यौगिक का बहुत उल्लेख किया गया था। द्वयजीव बानजावीन हरिद को वंगस हरिद और उदहरिकाम्ल द्वारा अवकरण करने से यह प्राप्त होता है—

$$क_६ उ_५ नो: नो ह + २ वह_२ + ४ उ ह$$
$$= क_६ उ_५ नोउ नोउ_२. उह + २वह_४$$
दिव्यील उदाजीविन उदहरिद
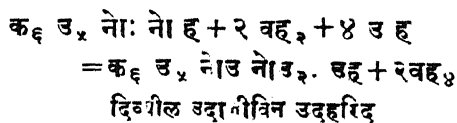
इस दिव्यील उदाजीविन उदहरिदमें सैन्धकक्षार डालनेसे दिव्यील उदाजीविन तैल के समान पृथक् हो जायगा। ताजा स्रवित पदार्थ तो नीरंग तैल के समान होता है जिसका क्वथनांक २४२° श है और द्रवांक १७°.५ है। इसमें अमोनियाकी सी गन्ध होती है। कीतोनों, मद्यानार्द्रों, और शर्कराओंके साथ यह रवेदार लवण देता है जैसा कि पहले कहा जा चुका है।

प्रयोग—२ ग्राम नीलिन् को १० घ. श. म. तीव्र उदहरिकाम्लमें घोलो, और घोलको बर्फमें ठंडा करो करो और फिर २ ग्राम सैन्धक नोषित डालो। १२ ग्राम वंगस हरिदको १० घ. श. म. तीव्र उदहरिकाम्लमें घोलकर इसमें डालदो। दिव्यील उदाजीविन उदहरिदका गाढ़ा श्वेत अवक्षेप प्राप्त होगा।

द्वयजीव अमिनोबानजावीन—(diazo amino benzene) $क_६ उ_५ नोउ. नो: नो क_६ उ_५$—द्वयजीव बानजावीन हरिदको नीलिन्के संसर्गमें लाने से पीला रवेदार यौगिक प्राप्त होता है जिसे द्वयजीव अमिनो बानजावीन कहते हैं—

$$क_६ उ_५ नो_२ ह + उ नो उ क_६ उ_५$$
नीलिन्
$$= क_६ उ_५ नो: नो. नोउ क_६ उ_५ + उह$$
द्वयजीव अमिनोबानजावीन
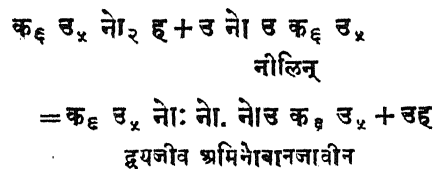
अर्थात्—
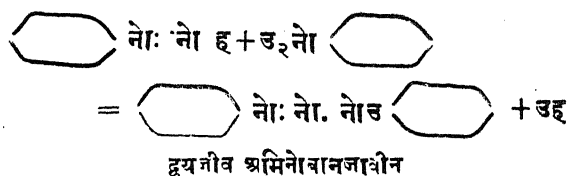
द्वयजीव अमिनोबानजावीन

मद्यमें से इसका स्फटिकीकरण करनेसे इसके पीले रवे प्राप्त होते हैं जिनका द्रवांक ९१° श है।

अमिनो अजीवबानजावीन—(amino azo benzene) $क_६ उ_५ नो: नो. क_६ उ_४ नोउ_२$—द्वयजीव अमिनोबानजावीन को थोड़े नीलिन्में जिसमें कुछ नीलिन् उदहरिद भी मिला दिया गया हो, घोल

कर मिश्रणको ४०°श पर थोड़ी देर तक गरम करने से एक यौगिक प्राप्त होता है जिसे अमिनो अजीव बानजावीन कहते हैं। प्रक्रियामें द्वयजीव अमिनो बानजावीनके संगठनमें केवल आन्तरिक परिवर्तन होता है।
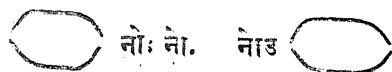
द्वयजीव अमिनोबानजावीन

अमिनो अजीवबानजावीन

$$क_{६}\ उ_{५}\ नो_{२}.\ नोउ\ क_{६}\ उ_{५} = क_{६}\ उ_{५}\ नो_{२}\ क_{६}\ उ_{४}\ नोउ_{२}$$
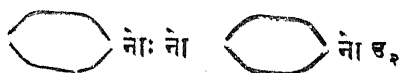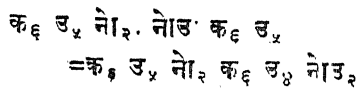
अजीव यौगिक (Azo compounds)

अजीव बानजावीन (Azo benzene)

$क_{६}\ उ_{५}\ नोः\ नो\ क_{६}\ उ_{५}$—नोषोबानजावीनको सैन्धक दारीलेत द्वारा अवकृत करने पर अजीवौषबानजावीन प्राप्त होता है:—

$$\begin{matrix} क_{६}उ_{५}\ नोओ_{२} \\ क_{६}उ_{५}\ नोओ_{२} \end{matrix} + ३उ_{२} = \begin{matrix} क_{६}उ_{५}\ नो \\ | \\ क_{६}उ_{५}\ नो \end{matrix} > ओ + ३उ_{२}\ ओ$$

नोषोबानजावीन — अजीवौषबानजावीन
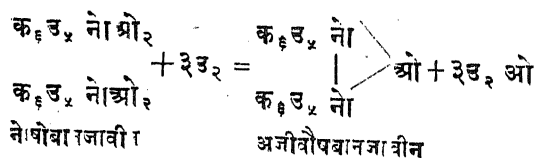
अजीववौष बानजावीनको लोहचूर्णके + साथ स्रवित करनेसे अजीवबानजावीन नामक एक यौगिक मिलता है:—

$$\begin{matrix} क_{६}\ उ_{५}\ नो \\ | \\ क_{६}\ उ_{५}\ नो \end{matrix} > ओ + लो = क_{६}\ उ_{५}\ नोः\ नो\ क_{६}\ उ_{५} + लो\ ओ$$
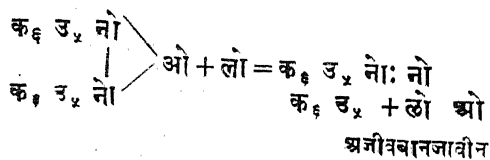
अजीवबानजावीन

स्रवित पदार्थ लाल घोल होता है जिसे ठण्डा करनेसे चटकीले लाल रवे प्राप्त होते हैं जिनका द्रवांक ६८°श है।

नोषोबानजावीनको सैन्धकक्षारकी विद्यमानता में दस्तम् चूर्ण द्वारा अवकृत करनेसे भी अजीवबानजावीन मिल सकता है।

$$२क_{६}उ_{५}\ नोओ_{२} + ४उ_{२} = क_{६}उ_{५}\ नोः\ नो\ क_{६}उ_{५} + ४\ उ_{२}\ ओ$$

अजीव बानजावीनके मद्यिक घोलको दस्तचूर्ण और सैन्धकक्षार द्वारा अवकृत करनेसे उदाजीवबानजावीन मिलता है।

$$क_{६}\ उ_{५}\ नोः\ नो\ क_{६}\ उ_{५} + उ_{२} = क_{६}\ उ_{५}\ नोउ.\ नोउ\ क_{६}\ उ_{५}$$
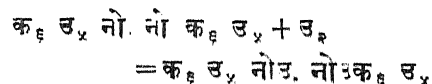
उदाजीव बानजावीन

पर वंगस हरिद और उदहरिकाम्ल द्वारा अवकरण करनेसे नीलिन्के २ अणु मिलते हैं।

$$क_{६}\ उ_{५}\ नोः\ नो\ क_{६}\ उ_{५}\quad २क_{६}उ_{५}\ नोउ_{२}$$

नीलिन्
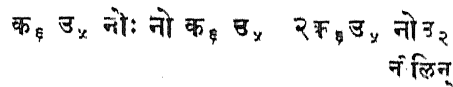
उदाजीव बानजावीन (Hydrazo benzene)

$क_{६}\ उ_{५}\ नोउ\ नोउ\ क_{६}\ उ_{५}$—अजीव बानजावीनसे बनानेकी विधिका उल्लेख अभी किया जा चुका है। नोषोबानजावीनके मद्यिक घोलको सैन्धकक्षारकी विद्यमानतामें दस्तम् चूर्णके साथ उबालनेपर पहले तो अजीव बानजावीनके घोलका लाल रंग मिलता है पर और उबालने पर घोल नीरंग हो जाता है। घोलको ठण्डा करनेपर उदाजीव बानजावीनके नीरंग रवे प्राप्त होते हैं जिनका द्रवांक १२६°श है यह वायुके संसर्गसे शीघ्र ही ओषदीकृत होकर नारंगी रंग धारण कर लेता है। वंगस हरिद और उदहरिकाम्ल द्वारा अवकृत होकर यह भी नीलिन् देता है।

अजीव बानजावीन और उदाजीव बानजावीन को निम्न प्रकार चित्रित कर सकते हैं—
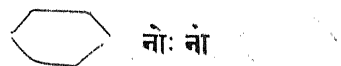
अजीव बानजावीन
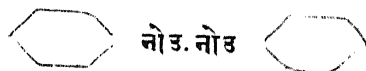
उदाजीव बानजावीन

बानजाविदिन (Benzidine) नोउ₂ क₆उ₄क₆ उ₄ नोउ₂—उदाजीव बानजावीनको तीव्र उदहरिकाम्लके साथ उबालनेसे इसके संगठनमें आन्तरिक परिवर्त्तन हो जाता है। दोनों बानजावीन मूलोंके बीचके दोनों नोउ मूल पर—स्थानमें जाकर अमिनो मूल बन जाते हैं।

बानजाविदिन

क₆ उ₅ नोउ.नोउ क₆ उ₅ = नोउ₂ क₆ उ₄ क₆ उ₄ नोउ₂
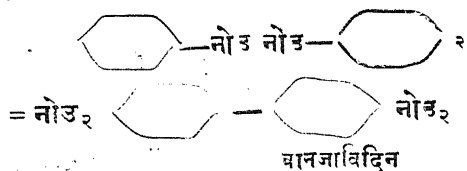
इस प्रकार परिवर्त्तन होकर बानजाविदिन यौगिक मिलता है। इस प्रकारकी प्रक्रियाको बानजाविदिन परिवर्त्तन कहते हैं। इसके चमकदार श्वेत पत्राकार रवे होते हैं।

अजीव यौगिकोंके रंग

अजीव यौगिकोंका उपयोग अनेक प्रकारके रंग बनानेमें किया जाता है। हम यहां कुछ सरल और मुख्य उदाहरण देते हैं।

नीलिन्में उदहरिकाम्ल और सैन्धक नोषित डाल कर द्वयजीव बानजावीन हरिद बनाओ जैसा पहले कहा जा चुका है। इस घोलके कई भाग करलो और उनसे निम्न प्रयोग करो।

(१) कुछ घोलमें द्विदारील नीलिन्का उदहरिकाम्ल घोल डालो। ऐसा करनेसे लाल रंग मिलेगा। प्रक्रियामें द्विदारील अमिनो अजीव बानजावीन उदहरिद नामक यौगिक मिलता है—
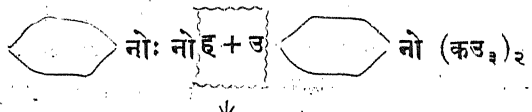
द्विदारील अमिनो अजीव बानजावीन उदहरिद

इस प्रकारके यौगिकोंके बड़े बड़े नामोंको देखकर डरना नहीं चाहिये। यौगिकके संगठनका भली प्रकार निरीक्षण करनेसे यह नाम सरलतासे याद रह सकते हैं।

(२) द्वयजीव बानजावीन हरिद्के घोलमें दिव्योल या ख-नफ्थोल (β--Naphthol) का सैन्धक क्षारीय घोल डालनेसे लाल या नारंगी रंग मिलेगा।
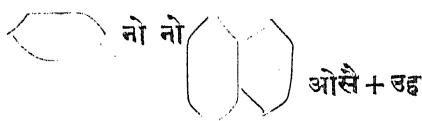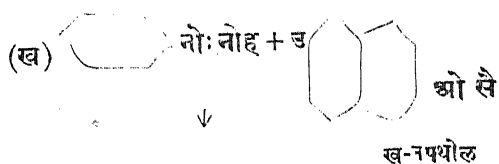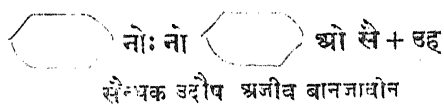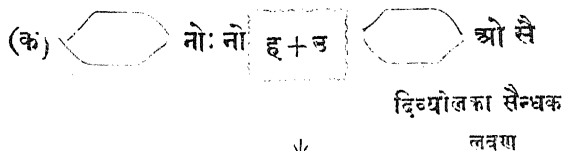
सैन्धक उदौष नफ्थलीन अजीव बानजावीन

(३) यदि नीलिन्के स्थानमें गन्धनीलिकाम्लका द्वयजीवकरण करके इसे द्विदारील नीलिन्से संयुक्त (Couple) किया जाय तो नारंगीदारील (मिथाइल आरेंज (methyl orange) नामक रंग मिलता है।
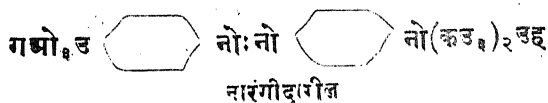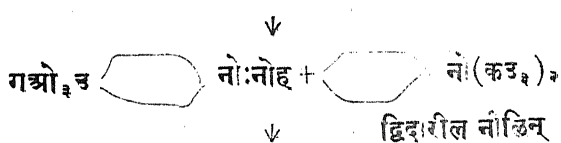
नारंगीदारील

यह रंग बहुत उपयोगी है। इसके घोलमें सैन्धकक्षार डालने पर पीले पत्राकार रवे प्राप्त हो सकते हैं।

(४) मध्य दिट्यीलिन द्विअमिनमें दो अमिनो मूल हैं। अतः इसका द्वयजीवकरण करनेसे दोनों मूल प्रभावित होंगे। इस द्वयजीव यौगिकको नीलिन् या द्विदारोल नीलिन्से संयुक्त करने पर "भूरा बिस्मार्क" (बिस्मार्क ब्राउन) रंग मिलता है—

भूरा बिस्मार्क
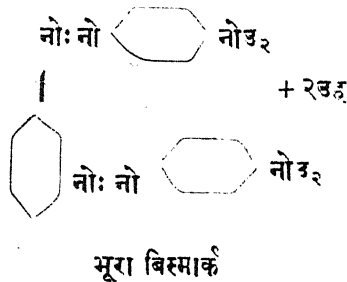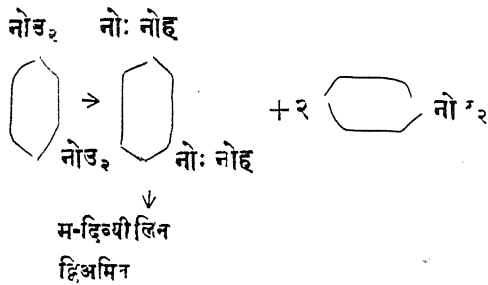
(५) नीलिन् का द्वयजीवकरण करके नोषो बानजावीन से संयुक्त करानेसे नोषो अजीव बानजावीन $क_६ उ_४$ नोः नो $क_६ उ_४$ $नोओ_२$ मिला है जिसे अवकृत करके अमिनो अजीव बानजावीनमें परिणत कर सकते हैं। अमिनो अजीव बानजावीन का फिर द्वयजीवकरण किया जा सकता है और इसे फिर द्विदारोल नीलिन् या दिट्यीलसे संयुक्त कराया जा सकता है ऐसा करने से लाल बीब्रिच (बीब्रिज स्कारलेट) रंग मिलते हैं।

लाल बीब्रिच
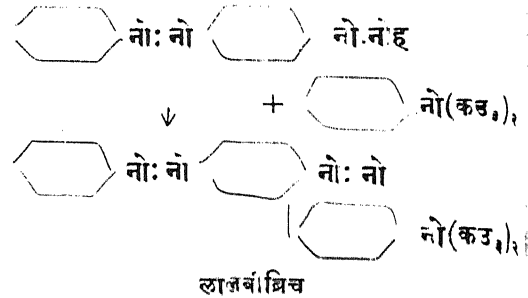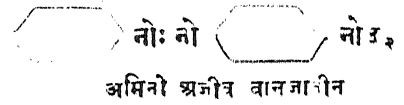
इस यौगिकमें दो (नोः नो) मूल हैं अतः इस प्रकारके यौगिकोंको चतुरजीव (Tetrazo) यौगिक कहते हैं।

द्वयजीव प्रक्रियाकी सहायतासे इस प्रकार अनेक रंग बनाये जा सकते हैं।

प्रकाशका प्रभाव

[ले० श्री चण्डीचरण पालित, एम० एस-सी]

समें सन्देह नहीं है कि जिस समयसे हमारा जन्म हुआ है उसी समय से हम सूर्य्यसे परिचित हैं परन्तु ऐसा होने पर भी हममेंसे बहुतोंको सूर्य्यके प्रकाशकी उपयोगिताका कुछ भी ज्ञान नहीं है। शीतकालके अतिरिक्त और किसी भी ऋतुमें सूर्य्यकी धूप हमें सुखकर नहीं प्रतीत होती है तथापि इससे यह नहीं समझना चाहिये कि अन्य ऋतुओंमें हमें सूर्य्यसे कोई लाभ ही नहीं है। प्रत्येक ऋतुमें और प्रत्येक स्थानमें सूर्य्यदेव अपनी चमत्कृत रश्मियोंसे समस्त भूमण्डलको अतुल सम्पत्ति प्रदान किया करते हैं। बिना धूपका मेघाच्छन्न-आकाश थोड़े ही समय पश्चात् कष्टदायक हो जाता है और

कहीं यदि कई दिन तक बराबर धूप न निकले तो प्राणिमात्र एवं वनस्पतिजगत्का जीवन ही सन्दिग्ध हो जावेगा और अनेक प्रकारके भयंकर रोग प्रसरित हो जायँगे क्योंकि सूर्य्यके प्रकाशकी विद्यमानतामें अनेक रोगकीटाणु स्वतः निश्चेष्ट एवं मृतप्राय हो जाते हैं। बन्द कमरेमें जहां धूपका प्रवेश न हो, अति असह्य दुर्गन्ध आने लगती है। वस्तुतः वह देश परम सौभाग्यवान है जिसे प्रकृतिने सूर्य्यके प्रचुर प्रकाशसे पुरस्कृत किया है। ऐसे देशकी परिस्थिति आरोग्य प्रद और सुखकर है।

शरीर निर्माणमें खटिकम् और स्फुर तत्त्वोंका उपयोगी भाग है और सूर्य्यके प्रकाशकी विद्यमानतामें इन तत्त्वोंकी मात्रामें वृद्धि हो जाती है। अंधेरेमें खटिकम् और स्फुरकी मात्रा कम हो जाती है। यही कारण है कि अस्थिमज्जा आदि अवयवोंका निर्माण अंधेरेकी अपेक्षा प्रकाशमें अधिक होता है, यदि वनस्पतियों और पौधोंको प्रकाश-विहीन स्थानमें रखा जाय तो इनका विकास भी क्षीण हो जायगा। पेड़ोंमें हरित या क्लोरोफिल नामक एक उपयोगी पदार्थ है। इसकी उत्पत्तिके लिये धूपका होना बहुत ही आवश्यक है। इन सब उपयोगिताओंके कारण ही तो सूर्य्यको देव माना गया है।

अच्छा, यह भी तो विचारिये कि सूर्य्यमें ऐसी कौन सी वस्तु विद्यमान है जिससे इसका अस्तित्व इतना सर्वमान्य और उपयोगी समझा जाता है, और जिसके कारण यह प्राणियों और वनस्पतियोंका जीवनदाता कहा जा सकता है। भौतिक विद्या विज्ञों का कथन है कि सूर्य्यके प्रकाशमें पराकासनी (ultra violet) रश्मियें विद्यमान हैं, जिनकी तरंग लम्बाई बहुत कम है और ये किरणें ही अनेक प्रकारके रासायनिक परिवर्त्तन करनेमें समर्थ होती हैं। प्रयोगोंसे यह प्रमाणित हो चुका है कि यदि पक्षियों और पशुओंको अंधेरे कमरेमें बन्द रखा जाय और कभी कभी उस कमरे क्वार्ट्ज-पारद लैम्पसे पराकासनी प्रकाश पहुँचा दिया जाय तो इन प्राणियोंमें रोग उत्पन्न नहीं होंगे और उनका शारीरिक विकास उसी प्रकार होता रहेगा जिस प्रकार सूर्य्यकी रोशनी में। यह भी देखा गया है कि किसी प्राणीके शरीरमें रोगाणु-बेक्टीरिया-यदि प्रविष्ट करा दिये जायँ और फिर उस प्राणीको सूर्य्यके अथवा क्वार्ट्ज-पारद लैम्पके प्रकाशमें जिनमें पराकासनी रश्मियें जनित होती हैं रखा जाय तो ये रोगाणु किसी प्रकारका दुष्प्रभाव पहुँचानेमें समर्थ न होंगे और कालान्तरमें सर्वथा नष्ट हो जायँगे। अतः यह सर्व सिद्ध है कि सूर्य्यका प्रकाश हमें रोगाणुओंके हानिकर प्रभावसे बहुत बचाता है। क्षयी रोग, एनीमिया रिकेट (सूखा) बेरी बेरी आदि बहुत से रोग जो असाध्य माने जाते थे अब सूर्य्यकी रोशनी अथवा अन्य कृत्रिम ज्योतियों द्वारा दूर किये जा रहे हैं।

भारत वर्षमें प्रतिवर्ष सैकड़ों बच्चे रिकेट या सूखा रोगसे ग्रस्त होते हैं और छोटीसी अवस्थामें ही कालोन्मुख हो जाते हैं। इनकी मृत्युसंख्या बढ़तीही जाती है। इस रोगका एक मात्र कारण यही है कि इन दुध मुँहे बच्चोंको सूर्य्यके प्रकाशके पान करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता है। वायु विहीन अंधेरी कोठरियोंमें रहनेके कारण यह रोग विकट रूप धारण कर लेता है और इसका परिणाम यह होता है ये बच्चे अति शीघ्रही जीवन लीला समाप्त कर देते हैं। कली पुष्पित होनेके पूर्व ही मुर्झा जाती है। प्रत्येक मुहल्लेमें ऐसे बच्चोंकी कमी नहीं है जिनका समस्त शरीर केवल अस्थिपिंजर मात्र ही अवशिष्ठ रह गया है;—जिनकी भविष्योन्नतिकी अब आशा करनाही व्यर्थ है। इस रोगको दूर करनेका एक मात्र उपाय यही है कि इन्हें सूर्य्यकी खुली रोशनीमें खेलने दिया जाय, और सरलतासे पचनेवाला भोजन दिया जाय, और इसके साथ साथ खटिक स्फुरेत (केलशम फास्फेट), खटिक दुग्धेत (केलशम लैक्टेट), चूने का पानी आदिके समान खटिक-तत्त्व युक्त कुछ औषधियोंका सेवन कराया जाय। दूधमें चूनेका पानी मिलाकर देनेसे लाभ पहुँचनेकी आशाकी जा सकती है। पर यह सदा ध्यानमें रखने योग्य है कि बिना समुचित प्रकाश-सेवनके किसी प्रकारकी भी

ओषधि लाभकर नहीं हो सकती है। प्रत्येक बालकको सूर्यके मृदु प्रकाशमें कुछ काल तक क्रीड़ा करनेका अवसर अवश्य देना चाहिये। इसीका नाम सूर्य्योपासना है। आजकल अनेक त्वचा सम्बन्धियों का उपचार सूर्यके प्रकाश, रौञ्जीन प्रकाश (एक्सरेज) अथवा पराकासनी प्रकाश (ultra violet) से किया जाता है। कोढ़ रोग को दूर करनेमें प्रकाश अतिहितकर सिद्ध हुआ है। कोढ़ियोंको सूर्य्य-स्नान अर्थात् धूपमें कुछ काल तक विहार अवश्य करना चाहिये। गठिया, मधुमेह जौण्डिस, अर्नीमिया आदि अनेक रोगोंमें भी सूर्य्य-स्नान लाभकर प्रमाणित हुआ है।

मनुष्यके भोजनमें शर्करा जन्य पदार्थ, प्रोटीन, मज्जाजनक पदार्थ जैसे घी, तैल आदि, जल, लवण आदि का होना आवश्यक है। इनके सेवनसे शरीर का निर्माण होता है और कार्य्य संचालन शक्ति भी प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त भोजनमें कुछ जीवन-मूल पदार्थों का भी जिन्हें विटेमिन कहते हैं, समावेश होना चाहिये। ये पदार्थ शाक भाजी, नीबू, नारंगी आदि फलों में, या दूध, अण्डे, आदिमें विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार सर्व प्रकारकी वस्तुओंको मिलाकर भोज्य पदार्थ निश्चित करना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं है कि कम अथवा खराब भोजन करनेसे अनेक रोग हो जाते हैं। भारतवासियोंका पेट भर अन्न भी नहीं मिलता है। ऐसी अवस्थामें उनके लिये सर्वोपयोगी स्वस्थ मूल्यवान भोजन निर्धारित करना असम्भव ही है। पर यह सौभाग्य की बात है कि इस देश पर-सूर्य्य भगवान की प्रचुर कृपा है। यदि सूर्य्यके प्रकाशका समुचित सेवन किया जाय तो भोजनके दोषोंसे उत्पन्न अनेक प्रकारके रोग स्वभावतः दूर हो सकते हैं। वायु और प्रकाशके सेवनमें तो निधनता बाधक नहीं हो सकती है। वस्तुतः यदि शरीरमें भोजन का ओषदीकरण सुचारु रूपसे होता रहे तो किसी भी रोग होने की आशंका नहीं होगी।

अभी हाल ही में पास्टूयूर इन्सटीयूटके लैफ्टिनेण्ट कर्नल आर मेक्केरिसनने लिखा है कि "थोड़ा सा मांस सेवन यद्यपि हितकर समझा जाता है पर यदि समुचित दूध दही खानेको प्राप्त हो तो मांस खाना पाचन शक्ति पर अनावश्यक भार डालना ही तो होगा क्यों कि दूधके समान सर्वांशतः उपयोगी भोजन कोई भी नहीं है।" पर आजकल कठिनता तो यह है कि भारतमें दूध दही भी दुर्लभ हो रहा है। जो देश दूध दहीके लिये प्रसिद्ध था उसकी गायें बकरियां बन रही हैं।

हमने अपनी प्रयोगशालामें सूर्यके प्रकाश द्वारा जनित परिवर्त्तनोंका विशद अध्ययन किया है। हमारे प्रयोगोंसे यह सिद्ध होगया है कि प्रोटीन, शर्करायें अथवा मज्जाजनक पदार्थों का ओषदीकरण सामान्य तापक्रम पर ही हो सकता है यदि इन पदार्थों को सूर्य के प्रकाश में रखा जाय और ओषजन प्रवाहित किया जाय। हमारे प्रयोगोंसे यह स्पष्ट है कि जितनी ही ही अधिक तेज सूर्यकी रोशनी होगी, ओषदीकरण भी उतना होगा। ओषदीकरण सम्बन्धी प्रयोगोंके परिणाम नीचे दिये जाते हैं:—

(क) कर्बोदेत शर्करा—	प्रतिशत ओषदीकरण
गन्नेकी शर्करा	१०
द्राक्ष शर्करा	१५
दुग्ध शर्करा	२०
यव शर्करा	२६
नशास्ता	३९
(ख) प्रत्यमिन (प्रोटीन)	
मूत्रिया (यूरिआ)	९
मधुन (Glycine)	१०
अश्वमूत्रिकाम्ल	१४
मूत्रिकाम्ल	२०
(ग) मज्जाजनक (चर्बी)	
पांशुज स्टीरियेट	४०
" ओलियेट	३२
" पामीटेट	३७

हमारे भोज्य पदार्थोंमें रोटी, चावल, शक्कर आदि में कर्बोदेत होते हैं, दाल, अण्डे, मांस, दूध आदिमें

प्रोटीन पदार्थ होते हैं; घी, दूध, दही, मक्खन, आदि में मज्जाजनक पदार्थ होते हैं, इस प्रकार हमारे प्रयोगोंने यह सिद्धकर दिया है कि प्रकाश की विद्यमानतामें इन सब पदार्थोंका ओषदीकरण अति शीघ्र हो जाता है पर अँधेरेमें चाहे कितनी ही देर तक क्यों न ओषजन इन पदार्थोंमें प्रवाहित किया जाय ओषदीकरण बिलकुल नहीं होगा।

हम अभी पहले कह चुके हैं कि सूर्यका प्रकाश कोढ़, बेरी बेरी, गठिया आदि रोगोंके निवारणमें सहायक होता है। यदि भारत, चीन आदि उष्ण कटिबन्ध में स्थित प्रदेशोंमें सूर्यका इतना उत्ताप न होता तो यहां की परिस्थिति बहुत ही भयानक होती, हमने अपनी प्रयोगशालामें कबूतरों पर कुछ प्रयोग किये हैं। दो कबूतरों को केवल रंगूनी चावल पर रक्खा गया। इनमें से एक को अन्धेरेमें रक्खा और दूसरे को ऐसे स्थानमें जहां सूर्यका समुचित प्रकाश पहुँचता था। छः मास पश्चात् परीक्षा करने पर पता चला कि रोशनी वाले कबूतरमें पोली न्यूरेटिक रोगके कोई भी चिह्न नहीं हैं, पर अन्धेरेमें रखे हुए कबूतरमें पहले पेट-विकार उत्पन्न हुए और फिर पोली न्यूरेटिक रोग भी उसे होगया।

अतः हमारा यह पूर्ण विश्वास है कि सूर्य-प्रकाश के कारण शारीरिक प्रक्रियाओं की गति तीव्र होजाती है जिसके कारण रोग होने की संभावना भी कम हो जाती है शारीरिक कोष्ठों की प्रेरणशक्ति प्रकाशमें उत्तेजित होजाती है और इस प्रकार भोजन की ओषदीकरण मात्रा बढ़ जाती है। बहुतसे रोग शारीरिक प्रक्रियाओंके क्षीण होनेके कारण ही होते हैं अतः उनका निवारण सूर्य-प्रकाश की सहायतासे सरलतया हो सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि समस्त सृष्टिमें सूर्यका अस्तित्व सर्वोपयोगी है। प्रकाश ही जीवन दाता है।

गुणों का विवेचन

(ले० श्री० 'तत्ववेत्त')
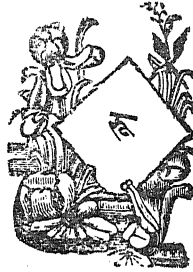
रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पांच इन्द्रिय-जन्य संवेदनायें मानी गई हैं और हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियोंसे इनका सम्बन्ध बतलाया जाता है। आंखसे रूप, जिह्वासे रस, नासिकासे गन्ध, कानोंसे शब्द तथा त्वचासे स्पर्शका अनुभव होता है। दार्शनिकों और तत्ववेत्ताओंके लिये यह प्रश्न अतीत कालसे अब तक विवादास्पद ही रहा है कि एक सूक्ष्म मूलाणु में एक ही गुण होता है अथवा एक तत्वाणुमें एक से अधिक भी गुण होने सम्भव हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही परमाणुमें रूप, रस, गन्ध आदि कई प्रकारके गुण रह सकते हैं अथवा रूपके परमाणु अलग होते हैं, रसके अलग, गन्धके अलग इत्यादि। इस प्रकार कल्पना कीजिये कि आपके हाथमें गुलाबका एक सुन्दर पुष्प है, इसको आप आँखसे देख रहे हैं, इसका गुलाबी रंग आपको आनन्द दे रहा है। अब आप नाकके पास लाकर इसको सूंघिये। एक प्रकार की संवेदना होगी जिसे आप 'सुगन्ध' नाम देकर प्रकट करते हैं। प्रत्यक्षतः यह संवेदना आपकी आंख द्वारा देखी गई गुलाबी रंग वाली संवेदनासे सर्वथा भिन्न है। गुलाबको आप शरीरकी त्वचासे स्पर्श कराइये, अब एक तीसरी संवेदना आपको प्रतीत होगी। आप कहेंगे कि गुलाबके फूलकी पखुड़ियां कोमल हैं। गुलाबकी एक पंखुड़ी का अपनी जिह्वा पर रखिये। कुछ हलकासा मिठास आपको अनुभूत होगा एक गुलाब की पंखुड़ीमें ही साधारणतः आपको ४ प्रकार की संवेदनायें प्रतीत हुई हैं। ये चारों एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। अवश्य, ये एक दूसरे को विरोधी नहीं हैं। चारों आपको चार साधनों द्वारा अनुभूत हुई हैं। एक गुलाबमें चार ये गुण क्या बताते हैं ? दो ही मत इस विषय में प्रकाशित किये जा सकते हैं, एक

तो यह कि गुलाब चार प्रकार के अणुओंके मिश्रण-का नाम है, एक प्रकारके अणुओंने इसे रंग दिया है, दूसरे प्रकारके अणु इसे सुगन्ध देते हैं, तीसरे प्रकारके अणुओंने इसे कोमलता दी है और चौथे प्रकारके अणु इसे मिठास देते हैं। चारों भिन्न भिन्न प्रकारके अणुओंकी समष्टिका नाम ही गुलाब रख दिया गया है। दूसरी सम्मति यह भी हो सकती है कि प्रत्येक गुणके लिये अलग अलग अणुओंके कल्पित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। स्पर्श, गन्ध, रूप, रस आदि संवेदनायें एक दूसरे की विरोधी नहीं है अतः यह भी सम्भव है कि एक ही प्रकारके अणुमें सभी प्रकारकी संवेदनायें विद्यमान रह सकें। वैशेषिक सम्प्रदाय वाले इस विषयमें विचित्र सम्मति रखते हैं। उन्होंने नव द्रव्योंकी कल्पनाकी है, इस समय हम उनके ५ द्रव्योंके विषयका ही उल्लेख करेंगे। द्रव्य और द्रव्योंसे उत्पन्न संवेदनायें निम्न प्रकार चित्रितकी जा सकती हैं :—

द्रव्य	संवेदना	मुख्य संवेदना	इन्द्रिय
पृथ्वी	रूप, रस, गन्ध स्पर्श	गन्ध	नासिका
आपः	रूप, रस, स्पर्श	रस	जिह्वा
तेजः	रूप, स्पर्श	रूप	नेत्र
वायु	स्पर्श	स्पर्श	त्वचा
आकाश	शब्द	शब्द	श्रोत्र

इस सारिणीसे यह नहीं कहा जा सकता है कि वैशेषिक वाले एक द्रव्यमें अथवा एक मूल तत्त्वाणुमें एक ही प्रकारका गुण होना सम्भव मानते हैं। वायु और आकाशमें तो वस्तुतः एक ही गुण है, पर पृथ्वी, आप, और तेजमें तो एकसे अधिक गुण हैं। पर इन संवेदनायों अथवा गुणोंके दो विभाग इन्होंने अवश्य कर दिये हैं—अर्थात् गौण संवेदनायें और विशेष संवेदनायें। कदाचित् इनके मतानुसार गौण संवेदनायें गुप्त (Latent) रहती हैं और विशेष या मुख्य संवेदनायें ही अपनी प्रबलताके कारण प्रकट होती हैं। पृथ्वीमें रूप, रस और स्पर्श भी है पर इनका होना न होना बराबर ही है। इसमें गन्धही एक मात्र भेदक गुण है। इसी प्रकार आपःमें रूप और स्पर्श गौण हैं और रसही मुख्य है। तेजमें स्पर्श गौण है और रूप मुख्य है। पर एक सन्देह अवश्य होता है कि यदि गौण गुण सर्वथा गुप्तही रहते हैं तो इनके कल्पित करनेकी आवश्यकताही क्या है। यदि पृथ्वीमें रूप, रस और स्पर्श न भी माना जाता तो क्या हानि थी। इसी प्रकार जलमें रूप और स्पर्शकी क्या आवश्यकता है।

वैशेषिकके गुणोंपर एक और आक्षेप हो सकता है कि पृथ्वीमें रूप, रस, स्पर्श और गन्ध ये चार ही गुण क्यों माने गये ! यदि पांचवा गुण 'शब्द' भी इसमें गौण रूपसे पड़ा रहता तो क्या हानि थी, मुख्य गुण 'गन्ध' में 'शब्द' के होनेसे कोई विकार तो उत्पन्न हो ही नहीं सकता था। वैशेषिक कार पांच तत्त्वोंके गुण निम्न प्रकार लिखते तो क्रम-उपक्रम और अधिक सुन्दर बनता—

पृथिवी—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध
आप—शब्द, स्पर्श, रूप, रस
तेज—शब्द, स्पर्श, रूप
वायु—शब्द, स्पर्श
आकाश—शब्द

इसमें प्रत्येकका अन्तिम गुण ही मुख्य गुण है। अस्तु, हमारा मुख्य प्रश्न यह था कि एक द्रव्यमें एक ही गुण हो सकता है अथवा एक द्रव्यके आश्रित अनेक गुण भी रह सकते हैं। वैशेषिकके गुणों पर विचार करनेसे यह समस्या बिलकुल भी नहीं सुलझती है। यहां एक बात विचार में रखनी चाहिये कि पृथ्वीसे तात्पर्य उस साधारण वस्तु से नहीं है जिस के पर्यायवाची क्षिति, भूमि आदि शब्द हैं अर्थात्

मिट्टी या जमीन का नाम पृथिवी नहीं है। जिस जल को हम पीते हैं उसका नाम आप नहीं है, जिस अग्नि से हम खाना पकाते हैं, उसे तेज नहीं कहना चाहिये, इसी प्रकार पंखा हिलानेसे जो हवा आती है वह वायु नहीं है। जिसे हम सर्वव्यापी आकाश, या ऊपर दिखाई देनेवाला नीला आसमान मानते हैं वह वस्तुतः आकाश नहीं है। वस्तुतः साधारण मनुष्योंके पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तो मूल तात्विक पदार्थ है ही नहीं; ये तो स्वयं कई मूल तत्वोंके मिले यौगिक है। वैशेषिकके पृथिवी, आप, तेज, वायु, और आकाश ये एक प्रकार की विशिष्ट कारणावस्था के द्योतक शब्द हैं। यदि कोई हमसे इस कार्य सृष्टिमें पूछे कि बताओ आकाश यहां है, आप कहां हैं, तेज कहां है, तो हम अलग अलग कहीं नहीं दिखा सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गन्धकी संवेदना उत्पन्न करने वाले समस्त परमाणुओं का नाम ही पृथ्वी है चाहे कार्यावस्थामें वे परमाणु हमारे पीने वाले जल में हों या प्रातःकाल की सुगन्धित वायुमें हों। इसी प्रकारसे रस की संवेदना उत्पन्न करने वाले समस्त परमाणुओं का नाम ही आपः है। इसी प्रकार आकाश, तेज और वायु को भी समझना चाहिये। वैशेषिक के परमाणु वादकी अन्तरात्मा तो यही कहती प्रतीत होती है कि प्रत्येक मूलगुण, रूप, रस, स्पर्श, गन्ध और शब्दके लिये पृथक् पृथक् मूल तात्विक पदार्थ होना आवश्यक है।

रूप, रस, स्पर्श और गन्ध ही तो केवल गुण नहीं हैं। वैशेषिकने गुणोंका इस प्रकार विधान किया है:—

रूप रस गन्ध स्पर्शास्संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च (गुणाः)

इस सूत्रमें गुणोंके कई समूह बना दिये गये हैं—

प्रथम समूह—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श
द्वितीय समूह—संख्या (बहुवचनान्त होनेसे यह स्वयं पृथक् एक समूह का वाचक है)
तृतीय समूह—परिमाण
चतुर्थ समूह—पृथक्त्व
पंचम समूह—संयोग विभाग
षष्ठ समूह—परत्व और अपरत्व

इनका सम्बन्ध अचेतन द्रव्य—पृथ्वी, आप तेज, वायु और आकाश, एवं काल और दिग्से होगा। यह दर्शनीय बात है कि इन गुणोंमें शब्दको कोई स्थान नहीं दिया गया है, यद्यपि आकाशका गुण शब्द आगे माना गया है। बुद्धियाँ, सुख-दुःख-इच्छा द्वेष, और प्रयत्न ये गुण चेतन मन और आत्मा के हैं [ज्ञानको गुण यहां नहीं माना गया है। वैशेषिक ज्ञानको आत्माका लिंग नहीं मानता है जैसा कि तीसरे अध्यायके चौथे सूत्र—प्राणापान निमेषोन्मेष जीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकारास्सुखदुःखेच्छा द्वेषप्रयत्नाश्च (आत्मनोलिंगानि)—से प्रकट है—मनका लिंग बताते हुए वह ज्ञानका उपयोग इस प्रकार करता है—आत्मेन्द्रियार्थ सन्निकर्षे ज्ञानस्य भावो भावश्च (मनसो लिंगम्)]

अन्नंभट्टने तर्क संग्रहमें चौबीस गुण गिना दिये हैं—

रूप	पृथक्त्व	द्रवत्व	इच्छा
रस	संयोग	स्नेह	द्वेष
गन्ध	विभाग	शब्द	प्रयत्न
स्पर्श	परत्व	बुद्धि	धर्म
संख्या	अपरत्व	सुख	अधर्म
परिमाण	गुरुत्व	दुःख	संस्कार

इसमें गुरुत्व (gravity pertaining to weight) द्रवत्व (Fluidity) और स्नेह (viscosity) ये तीन आवश्यक गुणोंका समावेश करना अत्यन्त दूरदर्शिताका परिचायक अवश्य है। शब्दको भी यहाँ गुण माना है। ज्ञानको गुण यहाँ भी नहीं माना गया है तथा धर्म, अधर्म और संस्कार तीन नये गुणोंका समावेश और कर दिया गया है।

जिसको साधारण भाषामें गुण कहा करते हैं, उसके लिये वैशेषिकमें चार शब्द व्यवहृत हुए हैं—

१—धर्म

२—गुण

३—कर्म

४—लिंग

कदाचित् ऐसा माना जा सकता है कि धर्म एक विस्तृत शब्द है जिसके अन्तर्गत गुण, कर्म और लिंग तीनों आ जाते हैं। गत्यर्थक धर्मका नाम कर्म है। वैशेषिकने पांच कर्म गिनाये हैं :—

उत्क्षेपण—ऊपर फेंकना (repulsion)
अवक्षेपण—नीचे फेंकना (attraction)
आकुञ्चन—सिकोड़ना (contraction)
प्रसारण—फैलाना (expansion)
गमन—चलाना (conduction)

आजकल विद्युत् चालकता (electric conductivity) उपयोगी गुण माना जाता है, पर इस प्रकारके गुणोंको वैशेषिक वाले केवल कर्म मानते हैं। आप, तेज और वायु इन तीनोंमें इस प्रकार भेद किया गया है—

शीतस्पर्शवत्य आपः।
उष्णस्पर्शवत्तेजः।
रूप रहित स्पर्शवान् वायुः। (तर्क संग्रह)

अर्थात् आपमें जो स्पर्श है वह शीत संवेदना उत्पन्न करने वाला है और तेज का स्पर्श उष्ण संवेदना उत्पन्न करता है पर वायुमें रूप रहित शीत और उष्ण दोनों प्रकार की संवेदनाय उत्पन्न करने वाले स्पर्श हैं यहां शीत और उष्ण नामक दो और गुण प्रकट हुए हैं।

गुणोंका वर्गीकरण यहीं समाप्त नहीं हो जाता है। रूपके भी कई भेद हैं। रूप किसे कहते हैं :—चक्षुर्मात्र ग्राह्यो गुणो रूपम्—अर्थात् जो कुछ आंखसे ग्रहण किया जाय बस वही रूप है। इस परिभाषाके अनुसार आँखसे तीन जातियोंके गुण ग्रहण किये जा सकते हैं।

(१) रंग

(२) आकार जिसमें परिमाण, पृथक्त्व, संभोग विभाग आदि आना चाहिये।

(३) संख्या

पर आश्चर्य यह है कि रूप शब्दसे वैशेषिक मतावलम्बियोंने केवल रङ्गका ग्रहण ही किया है। उनके अनुसार पृथ्वीमें सात प्रकारके रङ्ग होते हैं—जल और तेजमें भी रङ्ग होता है। रङ्गोंका विवरण निम्न प्रकार है—

पृथ्वी—शुक्ल (सफ़ेद), नील, पीत, रक्त, (लाल), हरित (हरा), कपिश (tawny) चित्र (शेष छः रङ्गों का मिश्रण)
जल—अभास्वर शुक्ल (हल्की सफ़ेदी)
तेज—भास्वर शुक्ल (चटकीली सफ़ेदी)

रङ्गोंका इस प्रकारका वर्गीकरण वैशेषिक दर्शनकार कणादने नहीं किया था। कालान्तरमें किसीने इस प्रकारका विभाग कर दिया है। यह विभाग अधिक युक्तिपूर्ण प्रतीत नहीं होता है क्योंकि रूप तो तेजका मुख्य गुण माना गया है पर इस विभागसे पता चलता है कि पृथ्वीमें यह रूप तेजकी अपेक्षा कहीं अधिक विस्तार और विभागसे पाया जाता है। आधुनिक मतानुसार श्वेत रङ्गमें नील, हरित, पीत आदिका समावेश है पर यहां शुक्लको अलग रंग माना गया है। भास्वर शुक्ल, अभास्वर शुक्ल और शुक्लमें केवल मात्राका भेद है न कि जाति का।

रस अर्थात् स्वादका भी विभाग किया है। रसनग्राह्यो गुणो रसः अर्थात् जिह्वासे जिसका ग्रहण किया जाय उसे रस कहते हैं। जिह्वासे रसका ग्रहण तभी हो सकता है जब रसमय पदार्थका संसर्ग जिह्वा से किया जाय। रसनेन्द्रियमें भी तो स्पर्शेन्द्रिय है। जिस समय सुलेमानी नामक जीभ पर रखा जाता है तो न केवल नमकीन स्वाद ही प्रतीत होता है प्रत्युत् एक विशिष्ट ठंडकका भी अनुभव होता है। जीभसे वस्तुओंका खुरखुरापन भी पता चलता है अतः यह कहना कि रसनेन्द्रियसे जिस गुणका ग्रहण होता है उसे रस कहते हैं अधिक उपयुक्त नहीं

है। अस्तु, पृथ्वी और जल दोनोंमें ही रस माना गया है —

पृथ्वीमें ६ रस—मधुर, अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन), कटु (कड़वा), कषाय (कसैला), तिक्त (तीत)

जलमें एक रस—मधुर

यद्यपि जलका मुख्य गुण रस है पर इस विभाग के देखनेमें जलकी कोई विशेषता नहीं रहती है। उस में केवल एक मात्र मधुर रस है और यह रस पृथ्वी में भी विद्यमान है जिसमें इस रसके अतिरिक्त पांच अन्य रस भी हैं। निम्न सारिणीमें हम सब प्रकार के गुणों को दर्शानेका यत्न करेंगे।

	रूप	रस	गन्ध	स्पर्श
पृथिवी	शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित्, कपिश, चित्र	मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त	सुरभि असुरभि	अनुष्ण
जल	अभास्वर शुक्ल	मधुर	—	शीत
तेज	भास्वर शुक्ल	—	—	उष्ण
वायु	—	—	—	अशीत

इस प्रकार पृथिवी को सर्वगुण सम्पन्न माना गया है। श्रोत्रसे ग्राह्य गुणका नाम शब्द है और यह आकाश मात्रका गुण है। ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक दो प्रकारके शब्द हैं। हम इनकी मीमांसा यहां न करेंगे।

सांख्य दर्शन वाले न तो अणुओं की ही कल्पना करते हैं और न रूपरस आदि गुणों की। ये विकास-वादी (evolutionist) हैं ❀। इन्होंने तीन गुणोंकी ही कल्पनाकी है—सत्व, रज और तम—और इन्हीं तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है। साख्यं वादियों की सृष्टिमें वैचित्र्य यह है कि ये 'गुणी' का अस्तित्व बिना माने हुए ही केवल गुणोंसे समस्त कार्यों की रचना कर डालते हैं, प्रकृति इनके यहाँ गुणी नहीं है, यह स्वयं गुण अथवा गुणोंकी साम्यावस्था है। सत्व, रज, तम क्या हैं यह कहना कठिन है, पर यह निस्सन्दिग्ध है कि ये सूक्ष्मतम गुण हैं। इन सूक्ष्मतम गुणों का स्थूली करण (condensation) आरम्भ हुआ और सूक्ष्मतर गुणोंकी उत्पत्ति हुई। विकास और आगे बढ़ा, ये सूक्ष्मगुण स्थूल गुणकी उत्पत्तिके कारण

❀ वैशेषिकमें विकासवादका प्रतिपादन नहीं है। इन्हों ने पृथिवी, आप, तेज आदि की उत्पत्ति का कहीं नाम भी नहीं लिया है। कदाचित् ये आत्मा, मन, काल, दिग आदि के समान इन्हें भी अनादि, अनन्त और स्वयंभू मानते हैं। पर कुछ उपनिषद्कार अवश्य विकासका प्रतिपादन करते हैं जिनका कथन है कि 'आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी इत्यादि'। वैशेषिक वाले कह भी आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि आदि की उत्पत्ति नहीं मानते हैं। वे सबको समान ही नित्य सत्ता समझते हैं। उन के यहां यह अवश्य है कि कारणावस्था वाली पृथिवी से कार्यावस्था वाली पृथिवी हुई और कारण जलसे कार्य जल। पर कारण रूपसे नवद्रव्य पृथक् पृथक् अनादि और नित्य हैं।

हुए। स्थूली करणने इन स्थूल गुणोंको ही स्थूल पदार्थों अथवा स्थूल भूतोंमें परिणत कर दिया।

सांख्य वादी सृष्टिका आरम्भ ब्रह्म, अथवा आत्मा से नहीं करते हैं। 'ब्रह्म ह वा इदमग्र आसीत्' अर्थात् सबसे पहले ब्रह्म था—यह सांख्यवादियोंका सिद्धान्त न था। उनके यहाँ गुणोंसे—प्रकृतिसे (जिसका साधारण अर्थ स्वभाव या गुण ही है) ही आरम्भ होता है। आत्मा भी प्रकृतिवादियों (materialist) के समान स्थूल भूतोंसे उत्पन्न सत्ताका नामही है

न्याय दर्शनवालोंने भी अधिकांशमें वैशेषिकका ही अनुसरण किया है। वैशेषिकके नवद्रव्योंके समान इन्होंनेभी पंचभूतोंकी कल्पनाकी है। इनका कथन है कि

गन्ध रस रूप स्पर्श शब्दानां स्पर्शपर्यन्ताः पृथिव्याः। अप्तेजो वायुनां पूर्वपूर्वमपोह्याकाशस्योत्तरः॥ (३।६४)

अर्थात् गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन पांच गुणोंमें गन्धसे स्पर्श तक तो पृथिवीके गुण हैं। आरम्भका क्रमशः एक एक गुण छोड़ते जानेसे आप, तेज और वायुके गुण मिलेंगे। अन्तिम गुण शब्द आकाशका है। न्याय दर्शन में इस सूत्रके आगे एक उपयुक्त शङ्का उठाई गई है कि 'न, सर्वगुणा नुपलब्धेः' अर्थात् एक इन्द्रियसे एकही गुणका अनुभव हो सकता है अतः तदनुकूल एक भूतमें एकही गुण मानना चाहिये न कि कई। पृथ्वी घ्राणेन्द्रियसे सम्बन्ध रखती है। घ्राणेन्द्रियसे केवल गन्धका अनुभव हो सकता है न कि रूप रसादिका, तो फिर पृथ्वीमें रूप, रस और स्पर्शका मानना तो सर्वथाही युक्ति विरुद्ध है। प्रश्न अत्यन्तही उत्तम है पर न्यायवालोंने इसका समाधान इस प्रकार किया है:—

संसर्गाच्चानेक गुण ग्रहणम् (३।६७)

अर्थात् संसर्गसे अनेक गुणका भी ग्रहण हो सकता है। इस सूत्रका क्या अर्थ है? यही कि यद्यपि पृथ्वीका एक मात्र गुण गन्धही है पर जल, वायु, और तेजके संसर्गमें आने पर इसमें रस, स्पर्श, और रूप गुणभी आ सकते हैं। यह समाधान हमारे मुख्य प्रश्न पर कुछ उपयोगी प्रकाश डालता है। न्याय दर्शनवाले तत्त्वतः यह मानते प्रतीत होते हैं कि एक गुणी या एक भूतमें, एकही गुण रह सकता है। हां, जब भिन्न भिन्न गुणवाले कई गुणियोंको मिला दिया जाय तो उससे कार्य्यावस्थाका जो परिणामतः पदार्थ उपलब्ध होगा उसमें कई गुण रह सकेंगे। न्यायवालोंने कारणावस्थाकी पृथ्वीमें एक मात्र गन्ध गुण स्वीकार किया है पर कार्य्यावस्थाकी पृथ्वी (अथवा जन-साधारणकी भाषा द्वारा अभिमत पृथ्वी) में कई गुण-रूप, स्पर्श और रस भी माने हैं। हम समझते हैं कि तात्विक दार्शनिक शब्द और साधारण भाषासे शब्दों को मिलाकर सिद्धान्त बनानेका प्रयत्न करना अधिक उपयुक्त नहीं था।

'संसर्गाच्चानेक गुण ग्रहणम्' सूत्र पर हमारा एक और आक्षेप है। इस सूत्रके आगे एक दूसरा सूत्र इस प्रकार है 'विष्टं ह्यपरं परेण (३।६८)' अर्थात् पहला पिछलेसे मिला हुआ है। हमारी शङ्का इस प्रकार है न्यायवालोंका कहना यह है कि पृथ्वीमें गन्धके अतिरिक्त रूप गुण इसलिये है कि इसका संसर्ग तेजसे है, वायुका संसर्ग होनेसे स्पर्श भी गुण इसे मिल गया है और आपःके संसर्गके कारण पृथ्वी रसवती भी हो

गई है। मान लीजिये कि यह है कल्पना ठीक है। तो फिर यह भी तो देखा जाता कि वायुका संसर्ग भी तो पृथिवी, तेज और आपसे होता रहता है। वायुमें भी तो सुगन्ध देखी गई है। तो फिर इसमें भी गन्ध, रस आदि गुण मानना चाहिये था। समस्त पंचभूतोंका संसर्ग एक दूसरेसे होता रहता है अतः सबमें ही सब गुण बताना चाहिये। विष्टं ह्यपरंपरेण। अर्थात् पृथ्वी का संसर्ग तो जल, वायु और तेजसे है पर जलका संसर्ग केवल वायु, तेजसे और तेजका एक मात्र वायुसे है एवं वायुका संसर्ग किसीसे नहीं है—यह कल्पना तो निराधार है। इसकी पुष्टिके लिये तो समाधान कर्त्ताके पास कोई युक्ति नहीं है। हमारी समझमें एक बात और नहीं आती कि सर्वव्यापी होने पर भी आकाश का संसर्ग किसी भी अन्यभूतसे क्यों नहीं है। यदि इसका संसर्ग पृथ्वीसे होता तो उसमें शब्द गुण भी पाया जाना चाहिये था। इस प्रहेलिकाका समाधान होना कठिन ही है।

यदि संसर्गसे ही अन्य गुण आते हैं तो यौगिकमें एक गुणका प्रधान मानना और दूसरेको अप्रधान मानना भी तो कोई अर्थ नहीं रखता।
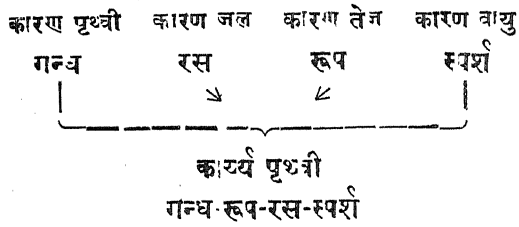
यदि चार कारण भूतोंसे मिलकर एक कार्य्य-पृथ्वी बनती है तो उस कार्य्यावस्थावाली पृथ्वीमें गन्ध उतना ही प्रधान है जितना रस, रूप अथवा स्पर्श। ऐसी अवस्थामें न्यायकार गोतमका यह कहना कि

पूर्व पूर्व गुणोत्कर्षात्तत्प्रधानम् (३। ७०)

अर्थात्- पहले पहले गुणके उत्कर्षसे वह वह प्रधान है अर्थात् कार्यावस्थाकी पृथ्वीमें रस, रूप और स्पर्शकी अपेक्षा गन्ध प्रधान है, जलमें रस प्रधान है, तेजमें केवल रूप। यह सर्वथा अयुक्ति-युक्त प्रतीत होता है। गुणोंके अपकर्ष उत्कर्षका प्रश्न ही प्रथम तो कोई अर्थ नहीं रखता है। उत्कर्ष और अपकर्ष सापेक्षिक शब्द हैं। अपेक्षा सदा सजातीय पदार्थों या गुणोंमें ही लग सकती है, विजातीयमें नहीं। यदि कई प्रकारकी गन्ध हों तो हम अवश्य यह कह सकते हैं कि एक प्रकारकी गन्ध दूसरेकी अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। पर एक पदार्थ की गन्ध और दूसरे पदार्थ के रंगमें तुलना ही कैसे की जा सकती है जब दोनों विजातीय हैं। यदि लाल पदार्थमें सर्व रंग रहित किसी इत्रको मिला दिया जाय तो उपलब्ध पदार्थमें लाल रंग और इत्रकी सुगन्ध दोनोंकी ही प्रकर्षता रहेगी।

हमारा आरम्भिक प्रश्न यह था कि प्रत्येक गुण के लिये पृथक् पृथक् गुणियोंकी कल्पना करनेकी आवश्यकता है अथवा एक गुणीके ही आश्रित अनेक गुण रह सकते हैं। इस प्रश्नके तीन रूप हो सकते हैं—

१. एक गुणीमें एक गुण
२. एक गुणीमें निश्चित गुण
३. एक गुणीमें अनन्त गुण

एक गुणीमें एक गुण माना जायगा तो संसारमें गुणियोंकी संख्या अनन्त माननी पड़ेगी। कदाचित् इसीके आधार पर वैशेषिकवालोंने अनन्त संख्या वाले परमाणुओंकी कल्पनाकी होगी। सांख्यवाले तीसरी कल्पनाके विश्वासी प्रतीत होते है। उन्होंने अनिर्वचनीय प्रकृतिकी कल्पनाकी है जिसके परमाणु-अंश आदि कुछ भी नहीं हैं इसे थोड़ी देरके लिये एक गुणी मान लीजिये। संसारकी रचना इन गुणोंके विक्षोभ अथवा स्थूलीकरणके कारण ही हुई। इस एक गुणी प्रकृतिमें ही अनन्ततः गुण प्रकट करने का सामर्थ्य विद्यमान है।

दूसरी कल्पना यह थी कि एक गुणीमें निश्चित गुणोंका होना। सामान्य दृष्टिसे ऐसा होना भी अस्वा-

भाविक नहीं है। पर यह कल्पना और भी विचित्र है। इसका कोई कारण नहीं है कि यदि एक गुणीमें अमुक ४ गुण विद्यमान हैं तो दूसरे ४ गुण भी क्यों नहीं हैं। गुण तीन प्रकारके हो सकते हैं:—

(१) जाति भेदसे

(२) विरोधसे

(३) मात्रा भेदसे

इसको इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—एक कपड़ा लाल है और दूसरा हरा। दोनोंके रंगों में भेद है। पर दोनों दो जातिके रङ्ग हैं। किताब लाल है और जलेबी मीठी है। यहां लाल होना एक प्रकार की जातिका गुण है और मीठा होना दूसरी जाति का। यदि हरा और लाल दो जातियां मानी जांय तो यह कहा जा सकता है कि एक पदार्थमें दो जातियों के गुण नहीं हो सकते हैं क्योंकि एकही गुणी लाल और हरा दोनों नहीं हो सकता, पर यह भी देखने में आता है कि एक ही पदार्थमें मिठास और रङ्ग दोनोंही होते है। जलेबी लाल और मीठी दोनों होती है। मिर्च लाल और कड़वी होती है। इस उदाहरण से यह मालूम होता है तो भिन्न जातियोंके गुण एक गुणीके आश्रित रह सकते हैं। इस प्रकार प्रहेलिका का समाधान कुछभी नहीं होता है। यदि यह कहा जाय कि लाल और हरा दोनों एक जातिके हैं और एक गुणीमें एक जातिके दो गुण नहीं रह सकते हैं, तो यह भी ठीक नहीं है। इसे इस प्रकार समझाया जा सकता है। हरा और लाल दोनों रङ्ग हैं। दोनोंके परमाणुओंमें रङ्गकी मात्राको र′, र से सूचित कीजिये—

लाल रङ्ग—र, र, र

हरा रङ्ग—र′, र′, र′

दोनों एक ही जातिके हैं। हम देखते हैं कि कोई पदार्थ हलका लाल है और कोई चटकीला लाल। यह भेद क्यों है? इसीलिये कि हलके रङ्गवाले परमाणुमें रङ्गकी कम मात्रा है और चटकीलेमें अधिक

हलका लाल—र, र, र

चटकीला लाल - (र + र + ...), (र + र + ...) (र + र + ...)

अर्थात् एक ही परमाणुमें लाल रङ्गकी कई मात्रायें रहनेकी शक्ति है। यदि र मात्रा सजातीय अन्य र मात्राओं से संयुक्त होकर

(र + र + र + ...)

बना सकती है, तो कोई कारण नहीं है कि एक ही परमाणुमें लाल और हरी दोनों मात्रायें मिश्र प्रकार न मिल सकें क्योंकि ये दोनों भी तो सजातीय हैं:—

(र + र′ + र + र′ ...)

तात्पर्य यह है कि एक परमाणुमें सजातीयताके कारण तो लाल और हरे दोनों गुण रह सकते हैं फिर यह भी तो समझमें नहीं आता है कि यदि दो विजातीय गुण एक ही गुणीके आधीन रह सकते हैं तो दो सजातीय गुण क्यों नहीं रह रहते।

एक और प्रश्न पर विचार कीजिये। यदि गुणी नित्य है तो क्या उसके गुण भी नित्य होंगे? वैशेषिक कहता है कि

कारण गुण पूर्वकः कार्य गुणो दृष्टः

अर्थात् जो गुण कारणमें होते हैं वे ही तो कार्य्यमें देखे जाते हैं। वैशेषिकने जिन गुणोंका उल्लेख किया है उनका वर्णन पहले दिया जा चुका है। उन गुणोंमें संख्या और परिमाण भी दो गुण हैं। हमारा स्वतः विचार यह है कि वैशेषिककी यह धारणा अधिक युक्ति संगत नहीं है। पहले 'संख्या' को ही लीजिये। कल्पना कीजिये कि ५०० ईंटोंसे एक दीवार बनती है। दीवार को हम कार्य और ईंटोंको कारण मान सकते हैं—कारणकी संख्या ५०० थी पर कार्यकी संख्या एकही रह गई। अब बताइये कि कारण का गुण कार्यमें कैसे कल्पित किया जा सकता है। परिमाण भी देखिये। दीवारका परिमाण वह परिमाण नहीं है जो ईंटोंका था। आप कहेंगे कि यह बात नहीं है, समस्त ईंटोंके परिमाणका योग ही दीवारका परिमाण है। पर ऐसी भी तो बात नहीं है। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय

तो ऐसा पता चलता है कि दो दो इंचकी ५ वस्तुएं मिलकर दस इंचकी लम्बाई नहीं बनाती हैं, वस्तुतः प्रत्येकके बीचमें कुछ स्थान रिक्त रहता है। जिन वस्तुओंको हम जुड़ी हुई समझते हैं, सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के देखनेसे उनके बीचमें कुछ न कुछ अवकाश विद्यमान सदा पाया जायगा। इस प्रकार दो दो इंचकी वस्तुएं सर्वदा १० इंचसे अधिक ही लम्बी वस्तु देंगी। सड़कके किनारे पर लगे हुए विद्युत दीपक दूरसे देखने पर एक दूसरेसे मिले हुए दिखाई पड़ते हैं। उनके मिलनेसे जो रेखा बनती है वह उनके पृथक् पृथक् परिमाणके योगसे तो कहीं अधिक है। अब बतलाइये कि ऐसा होने पर कैसे माना जा सकता है कि कारणके गुण कार्य्यमें होते हैं।

कदाचित् कोई शंका कर उठे कि परिमाणका इस प्रकार का भेद इसलिये है कि केवल उन वस्तुओंको ही कारण माना गया था न कि आकाशको भी। यदि दो दो इंचकी ५ वस्तुएं मिलकर १२ इंचकी लम्बाई देती हैं तो यह दो इंचकी वृद्धि वस्तुओंके बीचमें स्थित आकाशके कारण है।-पर यह युक्ति तो सर्वथा ही हेत्वाभास-युक्त है। यहां आप आकाश का गुण परिमाण माने ले रहे हैं। वैशेषिकवाले चिल्ला चिल्ला कर कह रहे हैं कि—

त आकाशे न विद्यन्ते

अर्थात् ये कोई भी गुण आकाशमें नहीं हैं। उनके यहां तो 'शब्द गुणमाकाशम' अर्थात् आकाशका एक मात्र गुण शब्द है। जब आकाशमें परिमाणका गुणही नहीं है, जब उसे तर्कसंग्रहकार 'तच्चैकं विभु नित्यंच' मानते हैं तो उससे परिमाण वृद्धि माननेका अर्थ यही होगा कि यह आवश्यक नहीं है कि माना जाय कि कार्य्यके गुण कारणमें भी हों। ऐसी अवस्था में

कारणाभावात् कार्य्याभावः (वै० १।२।१)

सूत्रके भी तो कोई अर्थ न रहेंगे।

कार्य्य-कारण की मीमांसा हम फिर कभी करेंगे। यहां हमारा तात्पर्य्य यही है कि कार्य्यके गुण कारणमें नहीं माने जा सकते हैं। घटका घटत्व उसकी मिट्टीमें नहीं होता (यहां हम पीलुपाक और पिठर पाकके सिद्धान्तोंकी उलझनोंमें नहीं पड़ना चाहते हैं। वस्तुतः ये पाक-वाद उठते ही न यदि 'कारण गुण पूर्वकः कार्य्य गुणोदृष्टः' के समान सूत्रोंकी रचना न होती।) समस्त रसायनशास्त्र इसका विरोधी है। आपने देखा होगा कि काली काली चीज़को पानीमें डालतेही लाल रंग बन जाता है। मीठी शक्करसे खट्टा सिरका बनाया जा सकता है। स्केटोल एक ऐसा पदार्थ है जिसमें विष्ठा की सी दुर्गन्ध होती है पर उसमें बहुत पानी मिला देनेसे इत्रकी सुगन्ध निकलने लगेगी।

यदि ऐसी अवस्था है तो निर्गुण पदार्थोंसे सगुण सृष्टि सम्भव हो सकती है। अतः यदि कारणावस्थाके समस्त गुणियोंको निर्गुण मानलें तो भी कोई हानि नहीं है और तब यह प्रश्न कि एक गुणी के आश्रित एक गुण रह सकता है या अनेक, निर्मूल हो जाता है। केवल प्रश्न यही रह जायगा कि निर्गुणसे सगुणकी उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है।

समालोचना

शाहवार मोती—ले० महर्षि शिवव्रतलालजी प्रकाशक श्रीदीवान वंशधारीलालजी, मैनेजर संत, संत कार्य्यालय प्रयाग। पृ० सं० १२२, मूल्य ।।=)

महर्षिजीकी लेखनीसे निकला हुआ यह अनमोल मोती है। बौद्ध और वैदिक धर्मावलम्बियोंके चरित्रोंका इसमें सुन्दर समावेश है। धार्मिक क्षमता और सहिष्णुता इस उपन्यासका मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है। 'भूकनेवाले कुत्ते' का सरल रूप अत्यन्त हृदयाकर्षक है, समस्त रचनाकी उपयोगिता इसके कारण बढ़ गई है। यह उपन्यास चमकदार मोतीसे भी अधिक मनोरञ्जक है। आशा है कि जनता इसका आदर करेगी।

सत्यप्रकाश

वैज्ञानिकीय

(ले० अमीचन्द विद्यालंकार)

चाल प्रति सेकण्ड

	इञ्च
बांस की वृक्ति	००००००१९
ग्लेशियर की चाल	००००००२६
स्नेल की चाल	००००४
हवा	६½ गज़
मक्खी के उड़ने की चाल	८. २ गज़
ताजी हवा	१.८
वर्षा की बूंद	१.९
आंधी	३२.५
प्रचण्ड आंधी	४३.३
तूफ़ान (साइक्लोन)	१२५.६९

पृथ्वी की सतह का क्षेत्रफल

एशिया	१६३६८५०० व. मी
अफ्रीका	११०९२८५० "
यूरोप	३६७० ०० "
उत्तरी अमेरिका	७६२३०५० "
दक्षिणी अमेरिका	६८६१४०० "
आस्ट्रेलिया	३०१४०५० "
द्वीप	२७८ ८५० "
ध्रुवीय द्वीप	१५०० ०० "
कुल स्थल	५४५ ०७०० व. मी
कुल जल	१३७१९९४५० व. मी
पृथ्वी कुल सतह	१९२११०१५० व. मी

संसार के सबसे बड़े पुल १०

नाम	स्थान	लंबाई मी.	ग.
(१) टे	स्काटलेण्ड	२	७
(२) ओहियो	यूनाइटिड स्टेट्स अमेरिका	२	
(३) सिडनी	सं. प्रा. आस्ट्रेलिया	२	
(४) सोन	हिन्दुस्तान	१	१५९१
(५) विक्टोरिया	कनाडा	१	१३२०
(६) गोदावरी	हिन्दुस्तान	१	१२७२
(७) फोर्थ	स्काटलेण्ड	१	१००५
(८) मिशूरी	सं. प्रा. अमेरिका	१	७८४
कीन्सबीरो	"	१	७४०
(९) विलियम्स बर्ग	"	१	६७६
(१०) महानदी	हिन्दुस्तान	१	५४४

बर्फ की ताकत

१½ इञ्च मोटी बर्फ १ आदमी का भार संभाल सकती है, ४ इञ्च मोटी एक घुड़ सवार का, १० इञ्च मोटी एक बड़ी भीड़ का, और १८ इञ्च मोटी एक रेल गाड़ी का।

वैज्ञानिक परिमाण

गतांक से आगे

(ले० श्री डा० निहाल करण सेठी डी० एस-सी०)

धातुसंकर

पदार्थ	तापक्रम	विशिष्ट बाधा	पदार्थ	तापक्रम	विशिष्ट बाधा
	°श	$\times 10^{-6}$		श°	$\times 10^{-6}$
पीतल	—१६०	४.१	यूरेका	१८	४९.०
”	१७	६.६	”	१००	४९.१
जर्मनी चांदी	—१८	१६-४०	मांगेनिन	—१६०	४३.१४
”	०	२६.६	”	१८	४४.५
”	१००	२७.६	”	१००	४२.११
स्फुर-कांसा	१८	५-१०	९०प, १० द्रु	०	२१.१
प्लेटिनायड	—१६०	३२.५	६७प, ३३ र	०	२४.२
”	१८	३.४			

८३—बाधाओं का तापक्रम गुणक

(बाधाओं का तापक्रम के साथ घटना बढ़ना)

पदार्थ	तापक्रम	गुणक	पदार्थ	तापक्रम	गुणक
स्फटम्	१८-१००	३८×१०^{-४}	वुल्फ्रामम्	०-१७०	५१
ताम्रम्	१८	४२.८	पीतल	१८	१०
स्वर्णम्	०—१००	४०	कान्स्टण्टन (यूरेका)	१८	—·४से + ·१
लोहम्	१८	६२	जर्मन-चांदी	१८	२.३—६
सीसा	१८	४३	मांगेनिन	२०	०२—·५
पारद	०-२४	९.०	९०प, १०इ	१६	१५
परौप्यम्	—१००—०	३५	९० प × १० द्रु	१५	१७
रजतम्	०—१००	४०	परौप्यम्-चांदी	१६	२.४—३.३

८४ प्रामाणिक तारमाप

तारोंकी अंग्रेजी माप नीचे दी जाती है।

तारमाप की संख्या	व्यास		तारमाप की संख्या	व्यास		तारमाप की संख्या	व्यास	
	स. म.	इंच		स. म.	इंच		स. म.	इंच
६	४·८८	·१९२	२०	·९१४	·०३६	३४	·२३४	·००९२
८	४·०६	·१६०	२२	·७११	·०२८	३६	·१९३	·००७६
१०	३·२५	·१२८	२४	·५५९	·०२२	३८	·१५२	·००६०
१२	२·६४	·१०४	२६	·४५७	·०१८	४०	·१२२	·००४८
१४	२·०३	·०८०	२८	·३७६	·०१४८	४२	·१०२	·००४०
१६	१·६३	·०६४	३०	·३१५	·०१२४	४४	·०८१	·००३२
१८	१.२२	·०४८	३२	.२७४	.०१०८	४६	·०६१	·००२४

८५ तारोंकी बाधायें

छोटे व्यासवाले संख्या १२ के तांबेके तारके लिये लगभग २७० एम्पीयर प्रतिशम² के हिसाब से और सं० २२ के तांबेके तारके लिये ५०० एम्प. प्रति शम.² के हिसाबसे निरापद धाराओं (safe currents) की गणना की जाती है। मांगेनिन और प्लैटीनायड कुण्डलियों (coils) की निरापद धाराओं के अनुमान लगानेमें १० वाट प्रति कुंडली का विचार रखा जाता है। यूरेका और कान्स्टन्टनके लिये के लिये एकही मात्रा है।

निम्न धातुओं के लिये बाधा का तापक्रम गुणक इस प्रकार है :—ताम्रम् ·००४२८; नकलम्, ·००२७; मांगेनिन, ·००००१; जर्मन चांदी, ·०००४४; यूरेका, --·००००२ प्रति अंश। धातुसंकरोंके लिये इन मात्राओं में बहुत भेद पड़ सकता है। मांगेनिनमें ८४ भाग ता, ४ न, १२ मा है; जर्मनचांदीमें ६० ता, १५ न, २५द; और यूरेका में ६० ता, ४० न है।

प्रा.ता.मा.	ताम्र		मांगोनिन	जर्मन चांदी	प्रा. ता. मा.	ताम्र		मांगोनिन	जर्मन चांदी
	ओह्मप्रति मीटर	निरापद धारा	ओह्म प्रति मीटर	ओह्म प्रति मीटर		ओह्मप्रति मीटर	निरापद धारा	ओह्म प्रति मीटर	ओह्म प्रति मीटर
		एम्पीयर					एम्पीयर		
१२	·००३२	१५·०	·०७७	·०४१	३०	·२२२	·४	५·४५	२·९०
१४	·००५४	९·८	·१३१	·०७०	३२	·२९३	·३	७·१८	३·८३
१६	·००८३	६·८	·२०४	·१०९	३४	·४०४	·२	९·९०	५·२७
१८	·०१४८	४·२	·३६१	·१९३	३६	·५९०	·१५	१४·५	७·७४
२०	·०२६०	२·६	·६४५	·३४५	३८	·९५०	·१	२३·२	१२·४
२२	·०४.५	१·७	१·०७	·५७	४०	१·४८	·०६	३६·३	१९·४
२४	·०५०	१·१	१·७३	·९२	४२	२·१०	·०५	५३·४	२७·८
२६	·१०५	·७	२·५८	१·३८	४४	३.३०	·०३	८१·७	४३·५
२८	·१५५	·५	३·८२	२·०२	४६	५·९०	·०२	१:५·५	७७·४

यूरेका या कान्सेटेन्टन

प्रा. ता. मा.	ओह्म प्रति मीटर	२०° श तापक्रम बढ़ाने के लिये	प्रा. ता. मा.	ओह्म प्रति मीटर	२०° श तापक्रम बढ़ाने के लिये
		एम्पीयर			एम्पीयर
१२	·०८६	१२·२	२०	·७२२	१·५
१४	·१४६	८·२	२२	१·२०	·७
१६	·२२८	४·९	२४	१·९३	·३
१८	·४०५	२·७	२६	२·८९	·१

८६ फुसतार (Fuses)

फुस-धारा उस धारा को कहते हैं जो तार को गला देती है जिससे विद्युत्धारा का चक्कर भंग हो जाता है। आड़े लगे हुए तारों के लिये फुस धारायें नीचे दी जाती हैं।

	फुसधार	१ एम्पीयर	३	५	१०	२०	३०	४०	५०
वंगम्	प्रामाणिक	३७	२८	२४	२१	१८	१६	१४	१३
ताम्रम्	तारमाप	४७	४१	३८	३३	२८	२५	२३	.२

८७ माध्यमिक संख्या (dielectric constant)

संग्राहक की समाइयोंकी निष्पत्तिको जब उसके पुटोंके बीचमें कोई माध्यम हो और जब कोई माध्यम न हो, माध्यमिक संख्या कहते हैं।

पदार्थ	माध्यमिक संख्या	पदार्थ	माध्यमिक संख्या
ठोस			
इबोनाइट	२·७—२·६	क्वार्ट्ज़	४·५
शीशा (क्राउन)	५—७	सिलीका (शैल)	३·५—३·४
" फ्लिण्ट	७—१०	गन्धक	३·६—४·३
" दर्पण	६—७	द्रव	
इण्डियारबर	२·१—२·३	ज्वलीलमद्य	२६·८/१४°·७
संगमरमर	८·३	बानजावीन	२·२६/१८°
माइका	५·७—७	अंडी का तैल	४·६—४·८
कागज़सूखा	२—२·५	जैतून "	३·१—३·२
पैराफीनमोम	२—२·३	पैराफीन "	४·६—४·८
पिच	१·८	पैट्रोलियम् "	२·०—२·२

पदार्थ	माध्यमिक संख्या	पदार्थ	माध्यमिक संख्या
तारपीन "	२·२—२·३	वायु २० श	१·०० ५७६
वैसलीन "	१·६	उद्जन २०	१·००० ७३
जल तरंग=∞	८१	हिमजन ०°	१·०००७४
=३६०० श.म.	३·४२	नोषजन २०°	१·०००५८१
वायव्य वायु ० श	१·०००५८६		

८८ बाटरियों की विद्युत् संचालक शक्ति (बिजली चलाने वाली शक्ति) तथा बाधायें

बाटरी	विवरण	वि० स० श०	बाधायें
ग्रिागेत	१ आयतन गन्धकाम्ल और २० आय. पां₂ रा₂ ओ₈ घोल में द और क	वोल्ट २·०	ओह्म बहुत कम
बुन्सन	१ आय. गन्धकाम्ल. १२ आय. पानी में द और तीव्रनोषिकाम्ल में क	१·८-१·६	—
क्लार्क	संपृक्त दस्तगन्धेत घोलमें दस्त अमलगम और पारद	१·४३३	५००
डेनियल	दस्त गन्धेत या गन्धकाम्ल (१ से १२) में द; संपृक्त ताम्रगन्धेत में ता	१·०७—१·०८	४
ग्रोव	बुन्सन के समान, कर्बन के स्थान में परौप्यम्	१·८-१·६	—
लेक्लाञ्ची	अमोनियम हरिद में द और क, क, और मा ओ₂	१·५	०·२५-४
परवर्त्तीय	१. २ घनत्व के गन्धकाम्ल में सी और सीओ₂ (आदि)	२·२—१·६	शून्य
वेस्टन	संपृक्त संदस्त गन्धेत घोल में संदस्तम् अमलगम और पारद	१·०१८	५००

८९ चुम्बकीय आवेश (magnetic Induction)

चुम्बकीय प्रभाव (Intensity of magnetic force) प्र—

चुम्बकत्वका प्रभाव (Intencity of magnetisation) च—

=चुम्बकीय घूर्ण प्रति इकाई आयतन

=सिरेकी प्रबलता प्रति इकाई क्षेत्र

चुम्बकीय आवेश (Induction) (चुम्बकीय प्रवाह का घनत्व) — आ.

$$= प्र + ४\pi \quad च$$

प्रवेशता (Permeability) —श.— = आ/प्र

ग्राह्यता (susceptibility) ग = च/प्र = (श—१) ४π

निकालने वाली शक्ति (Coercivity) — किसी प्रभावके बाद आवेश निकालनेके लिये जो विचुम्बकीय शक्ति आवश्यक हो—

बक़ाया (Remanence) सम्पृक्त अवस्थाके पहुँचने पर जब चुम्बकी प्रभाव हटा लिया जाय तो जो आवेश बच रहता है उसे बक़ाया कहते।

पिछड़न (Hysteresis)

स्थिर चुम्बक इस्पातमें ·५°/० बु, ·६°/० क, होता है और मा, ता, नि, टि बिलकुल नहीं होते हैं, और ८५०°श पर कड़ा किया जाता है। १०००°श पर बुझा हुआ ढलवा लोहा भी काममें आ सकता है।

पदार्थ	प्रवेशता-श.						निकालने-वाली शक्ति	बक़ाया
	प्र=·५	प्र=१	प्र=५	प्र=२०	प्र=८०	प्र=१५०		
स्वेडिश पिटवा लोहा	२५००	३७१०	२०६०	७३६	२७४	१२०	०·८	४०००
निर्वात्त ढलवा इस्पात	१४५०	३५००	८१००	७४७	२८०	१२३	०·९७	७१००
अनिर्वात्त ” ”	४९०	९७०	१७००	६८०	२७०	१२२	२·०८	९०००
ढलवा लोहा	—	—	८१	१८२	११७	६५	११·९	४२३०
चुम्बक इस्पात { कठोर	—	—	६८/१५	७८	१९३	१००	५२·६	११८००
चुम्बक इस्पात { बुल्फ़ामम्	—	—	८०/१०	११९	२०४	१०५	२७·५	९८८०

पदार्थ	प्र अधिक तम	आवेश—आ— अधिकतम प्रभावके लिये	प्र=१००	श तम अधिक	अधिकतम प्रभावके लिये निकालने वाली शक्ति	बक़ाया
मृदु इस्पात	१२९	१८१९०	१७७८०	८३५०	०·६	१०३००
इस्पात, २·८°/०, रा, ·८°/०, क	—	—	—	—	५६	६४००
” ५·५°/० वु, ·६°/० क	७७०° पर	कठोराकृष्ट	—	—	७२	७०००
” ७·७°/० वु, १·९°/० क	८००°	”	” —	—	८५	४७००
” ४°/० सु, १·२°/० क	८००°	”	”	—	८५	६५००
लोह	५०	१७१००	—	१७५०	२·२	५३°/० आवेश अधिकतम
” बहुत शुद्ध	२१०	२१२५०	—	—	१८	१००००
निर्वात नक़लम्	१००	५१३७	—	२९६	८	३५७०
कोबल्ट	१४०	१००००	९५००	१७४	१२	३४००

१०. चुम्बकीय ग्राह्यता, ग

तत्त्व	ग	तत्व	ग	तत्व	ग	तत्व	ग
ठोस	×१०⁻⁶						
आ	−·९५	त	+·९३	प	−·९	मां	+१०·६
इ	+·१५	ता	−·०८७	पां	+·४	र	−·२
ह्र	+१·१	थ	−·१२	पि	+·९	रा	+३.७
ग	−·५	थै	−.३	पै	+५·८	लो	—
ट	−·७१	थों	+१·८	ब	+१·५	व	+·०२५
		द	−·१५	म	+·५५	वा	+·०४
टि	+२	नै	−·३६				

तत्व	ग	तत्व	ग	तत्व	ग	तत्व	ग
	×१०⁻⁶						
वि	−·१४	सु	+·०४	पा	−·१९	ल	−·०१०
वु	+·३३	सै	+·५१	नो (द्रव)	+·२८	हि	−·००२
श	−·३२	स्फ	+·६५	ओ (द्रव)	+·३२४	उ	−·००८
शै	−·१२	स्फु	−·९	जल	·८३७	नो	+·०२४
त	−·३१	स्व	−·१५	वायव्य		ओ	+·१२३
सं	−·१७	द्रव		वायु	+.०३२		
सी	−·१२	रु	−४				

९१ तड़ित अवस्थायें (sparking potentials)

साधारण दबाव और तापक्रम वाली आयापित वायुमेंसे जिन बोल्टन पर तड़ित जा सकती है वह नीचे दिये जाते हैं। भिन्न भिन्न व्यासों के चिकने और चमकते हुए बराबर के गोले बिजलोदों (Electrodes) की जगह इस्तेमाल किये जाते हैं।

तड़ित् खंड	श. म.में गोलों के व्यास				तड़ित खंड	श. म. में गोलों के व्यास			
श. म.	०·५	१·०	२·०	५·०	श. म.	.५	१·०	२·०	५.०
	×१०³ वोल्ट								
०·१	४·८	४·८	४·७	—	०·९	१९·६	२५·६	२८·	३०·१
०·२	८·४	८·४	८·१	—	१·०	२०·२	२६·७	३०·८	३२.७
०·३	११·३	११·४	११ ४	—	१·५	२[illegible]	३१·६	३९	४६
०·४	१३·८	१[illegible]·४	१४·४	—	२·०	२१	३६	४७	५८
०·५	१५·७	१७·३	१७·५	१८·४	३·०	२४	४२	५७	७७
०·६	१७·२	१९·९	२० ४	२१·६	४·०	२५	४५	६४	९२
०·७	१८·३	२२·०	२३·२	२४·६	५·०	२६	४७	६९	१०५
०·८	१९·०	२४·१	२६·०	२७·५					

८३. रौञ्जन रश्मियें (X—rays)

रोञ्जन किरणें बहुतसे ऐसे पदार्थोंमें से पार निकल जाती हैं जिनमें से प्रकाशकी किरणें नहीं निकल सकती हैं पर इनमें भी कई प्रकारकी रोञ्जेन किरणें होती हैं, कोई कोई ऐसी होती हैं जो पतले सीसेमें से भी नहीं निकल पाती हैं, पर कुछ ऐसी होती हैं जो लोहे और शीशेके मोटे मोटे पत्रोंमें भी होकर निकल जाती हैं। पहले प्रकारकी किरणों को कोमल किरण (soft rays) और दूसरोंको कठोर किरण (hard rays) कहते हैं, और उनकी कठोरताका सम्बन्ध लहर लम्बाईसे है। जितनी लहर लम्बाई कम होती है उतनी ही किरण कठोर होती है। शरीरके भिन्न भिन्न भागोंके रोञ्जेन चित्र लेनेके लिये भिन्न भिन्न लम्बाइयोंकी किरणें काममें आती हैं। कठोरता या लहर लम्बाईके हिसाबसे आजकल चार प्रकारकी किरणें मालूम हैं। इन चार प्रकारकी किरणोंका आनुमानिक सम्बन्ध बतानेके लिये हम वुल्फ्राममकी प्रधान प्रधान किरणोंकी लहर लम्बाइयां नीचे देते हैं।

त	K	·०२८ आँ
थ	L	१·४७
द	M	६·६७
ध	N	—

८४. चुम्बकीय झुकाव

	अक्षांश °	'	"	देशान्तर °	'	"	चुम्बकीय झुकाव		चुम्बकीय हटाव		क्षितिज प्रभाव
एमहर्स्ट	१६	४	५०	६७	३४	०	१६.	३८	०	२६पू	०·३६३२
श्रीनगर	३४	४	१७	७४	४६	१	४६	१८	२	५४पू	०·३१०१
लाहौर	३१	३५	५०	७४	१८	५०	४५	५६	२	५८	०·३२१०
बीकानेर	२८	०	४०	७३	१८	५०	३६	५८	२	६	०·३३८६
काठगोदाम	२६	१५	२०	७६	३२	५०	४२	८	२	२४	०·३३८१
खेरी	२१	५२	३०	७५	२०	५०	२८	४१	१	०	०·३६४३
नीमच	२४	२७	०	७४	५२	५०	३३	१८	१	११	०·३५५१
उदयपुर	२४	३५	३३	७३	४१	५७	३४	४	१	२४	०·३५२७
करांची	२४	४६	५०	६७	२	२	३४	२३	१	४२	०·३४५३

	अक्षांश ०	'	"	देशान्तर ०	'	"	चुम्बकीय झुकाव		चुम्बकीय हटाव		क्षितिज प्रभाव
रावलपिंडी	३३	३५	१६	७३	३	६	४८	२१	३	४५	०·३११६
भरतपुर	२७	१३	२७	७७	२६	२८	३८	५२	१	५८	०·३६५४
बंगलोर	१२	५६	३५	७७	३५	५८	६	५७	०	४१प	०·३८१६
फैज़ाबाद	२६	४७	२७	८२	७	४०	३८	१	१	४२पू	०·३५३५
दार्जिलिंग	२६	५६	४६	८८	१६	३६	३८	५	१	३२	०·३५९०
गया	२४	४६	३०	८४	५८	५४	३४	२३	१	७	०·३६६५
जबलपुर	२३	८	५७	७६	५६	४४	३१	११	१	०	०·३६४१
प्रयाग	२५	२७	३०	८१	४६	२०	४६	·	१	०	·३६६
देहरादून	३०	१६	१६	७८	३	१६	४३	४२	२	३६	०·३३२६
बारकपुर	२२	४६	२६	८८	२१	३९	३०	३४	१	५	·३७०३
कोडाई कनाल	१०	१३	५०	७७	२७	४६	३	३१	०	४५	·३७४३

८५. रश्मिम् और रश्मिशक्तित्व
(Radium and Radioactivity)

रश्मिम् तत्वके लवणोंमें से तीन प्रकारकी किरणें निकला करती हैं। इन्हें एलफा-किरण, बीटा-किरण और गामा किरण कहते हैं। गामा किरण सामान्यतः रौञ्जीन किरणोंके समान होती है यद्यपि उनकी अपेक्षा गामा-किरणोंकी भेदकता अधिक होती है। चुम्बकी क्षेत्रमें इनका विचलन नहीं होता है। बीटा किरणें चुम्बकी क्षेत्रद्वारा विचलित हो जाती हैं. और इनमें ऋण विद्युत् सञ्चार होता है। एलफा किरणें भी चुम्बकी क्षेत्रसे विचलित होती हैं पर यह विचलन बीटा किरणोंकी विपरीत दिशामें होता है। वस्तुतः ये धनात्मक विद्युत् कण है जिन्हें हिमजन परमाणु माना जाता है। पिनाकम् और थोरम् में भी रश्मिम् तत्वोंके समान रश्मि शक्तित्व होता है।

तत्वोंका केन्द्र भार उसके धनात्मक केन्द्र-भार पर निर्भर है, अतः बीटा-किरणोंके निकलनेसे परमाणु भारमें कोई भी अन्तर नहीं आता है, पर ऋण-सञ्चार निकल जानेके कारण परमाणु पहलेकी अपेक्षा अधिक धनात्मक हो जाता है। एलफा किरणके निकलने पर परमाणु भार में कमी हो जाती

है। एलफा परमाणु हिमजनका परमाणु है जिसका परमाणुभार ४ है, अतः एक एलफा परमाणुके निकलनेसे परमाणु भारमें ४ की कमी हो जाती है।

थोरम्, रश्मिम्, पिनाकम्, आदि इन किरणोंके निकलजाने पर जिस प्रकार अन्य तत्वोंमें परिणत हो जाता है वह नीचेकी सारिणियोंसे स्पष्ट हो जायगा।

थोरम् श्रेणी

तत्त्व	परमाणुभार	औसत जीवन	किरण	समूह
थोरम् ↓	२३२	२·६ × $१०^{१०}$ वर्ष	एलफा	४ क
मध्यथोरम् १ ↓	२२८	७·९ वर्ष	बीटा	२ क
मध्यथोरम्-२ ↓	२२८	८.९ घंटा	”	३ क
रश्मिथोरम् ↓	२२८	२·९१ वर्ष	एलफा	४ क
थोरम् य ↓	२२४	५·२५ दिन	”	२ क
थोरम् जन ↓	२२०	७८ सैकण्ड	”	०
थोरम्-क ↓	२१६	०·२ ”	”	६ ख
थोरम्-ख ↓	२१२	१५·४ घंटा	बीटा	४ ख
थोरम्-ग ↓	२१२	८७ मिनट	एलफा, बीटा	५ ख
थोरम-ग' ↓	२१२	११·११ सैकण्ड	अलफा	६ ख
थोरम्-घ	२०८	४५ मिनट	बीटा	३ ख

पिनाकम्-रश्मिम् श्रेणी

तत्त्व	परमाणुभार	औसत जीवन	किरण	समूह
पिनाकम्-१	२३८	८×१०^{९} वर्ष	एलफा	६ क
पिनाकम्-य$_१$	२३४	३५·५ दिन	बीटा	४ क
पिनाकम्-य$_२$	२३४	१·६५ मिनट	,,	५ क
पिनाकम्-२	२३४	३×१०^{६} वष ?	एलफा	६ क
आयोनियम्	२३०	२×१०^{४} ,,	,,	४ क
रश्मिम्	२२६	२४४० वर्ष	,,	२ क
निटन	२२२	५·५५ दिन	,,	०
रश्मिम्-क	२१८	४·३ मिनट	,,	६ ख
रश्मिम्-ख	२१४	३८·५ ,,	बीटा	४ ख
रश्मिम्-ग	२१४	२८·१ ,,	,,	५ ख
रश्मिम्-ग′	२१४	$१०^{-६}$ सैकण्ड	एलफा	६ ख
रश्मिम्-घ	२१०	२४ वर्ष	बीटा	४ ख
रश्मिम्-च	२१०	७ २० दिन	,,	५ ख
रश्मिम्-छ	२१०	१९६ दिन	एलफा	६ ख
अन्तिम पदार्थ	२०६			४ ख

क्रमशः

विज्ञानसे लाभ

[ले० श्रीसत्येन्द्रनाथजी बी० ए०]

मनुष्य नवीन बातोंको जाननेके लिये सदा उत्सुक रहता है। वह ज्ञानकी वृद्धि तथा मानसिक शक्तियोंके विकासार्थ पुस्तकोंका अध्ययन और देशाटन करता है। परमपिता परमात्माके गुप्त भेदोंको जाननेके लिये वह सदैव तत्पर रहता है। जन्म मरणका कारण ढूंढ़ता रहता है। वृक्षोंमें जीव है या नहीं इत्यादि गूढ़ प्रश्नोंका उत्तर ढूंढ़ता रहता है। वह ईश्वरीय भेदोंको जान कर ही सन्तुष्ट नहीं होता वरन् वह प्रकृतिकी सभी वस्तुओं पर अपना सिक्का पूर्ण रूपसे अधिकार जमाना चाहता है। गंगा, यमुना सदृश्य बड़ी नदियों पर पुल बाँध कर अपना काम निकालता है। समुद्रमें जलयान और पृथ्वी पर रेलगाड़ी चलाता है। सारांश यह कि वह अपनी ईश्वरीय भेदोंके जानने तथा प्रकृति पर प्रभुत्व जमानेकी इच्छाकी पूर्तिके लिये नित्यप्रति प्रयत्न करता रहता है और कभी उसका मनोरथ सिद्ध होता है और कभी उसका परिश्रम निष्फल हो जाता है। यों तो उसकी आकांक्षाकी पूर्तिके अनेक साधन हैं परन्तु आधुनिक मुख्य साधन विज्ञान ही है। विज्ञान ही के द्वारा वह प्रकृति पर शासन करना चाहता है, परमात्माका अस्तित्व जानना चाहता है और उसके समीप पहुँचनेका प्रयत्न करता है।

आइये पाठक! हम सब आज विज्ञानके ऊपर विचार करें और देखें कि इससे मनुष्यमात्रको क्या लाभ है। यदि यह सच है कि विज्ञानने अमेरिका, इङ्गलैण्ड, जर्मनी और जापानको समृद्धिके ऊँचे शिखर पर जा बिठाया है और धनकी अनन्त राशिको प्राप्त कराया है (कुबेरधनीसे जा मिलाया है) तो हम आप भी अपने नयनोंके तारे प्राणोंके प्यारे भारतकी दरिद्रताको दूर करनेके लिये देशमें विज्ञानका तन मन धनसे प्रचार करें।

भूगोल गणित, इतिहास तथा अन्य विद्याओंकी भांति विज्ञान भी मनुष्यके ज्ञानकी वृद्धि करता है। विज्ञानका मुख्य उद्देश्य सांसारिक वस्तुओंकी वर्तमान स्थिति पर विचार करना और उनका पारस्परिक सम्बन्ध ढूंढ़ना है। अतः इससे विदित होता है कि विज्ञान मनुष्यके ज्ञानको निरन्तर बढ़ाता रहता है। सूर्य्यचन्द्र और तारेके विषयमें सदैव अनोखी बातें बतलाता है। जिस प्रकार चित्रकार नाना प्रकारके चित्र बनाता है उसी भांति वैज्ञानिक भी नये नये अन्वेषण करता रहता है। यदि चित्रकार चित्र बनानेमें सफल हो जाता है तो उसका चित्त हर्षसे गदगद हो जाता है और उसे इस बातका गर्व होता है कि उसने एक नये ढँगका चित्र खींचा है जो लोगोंके मनको मोहनेवाला है। प्रत्येक मनुष्य चित्रकारकी प्रशंसा करता है। ठीक यही दशा वैज्ञानिककी भी है। यदि वैज्ञानिक कोई नवीन बात ढूढ़ निकालता है तो उसके हर्षकी सीमा नहीं होती है। उसका मन प्रफुल्लित हो जाता है। समस्त नरनारी उसका गुण गाते हैं। वह सदाके लिये संसारमें अमर हो जाता है। बच्चा बच्चा भी उसके नामसे परिचित हो जाता है। भला कौन ऐसा अभागा होगा जो भारत दुलारे सर जगदीशचन्द्र वसुके नामसे अनभिज्ञ हो? क्या यह कभी सम्भव है कि विश्वके विद्वान न्यूटन तथा डारविनको भूल जायगे और उनका यथोचित सन्मान न करेंगे। तात्पर्य्य यह है कि विज्ञान धुरन्धर वैज्ञानिकोंको अमरत्व प्रदान करता है।

अर्थशास्त्रियोंका कथन है कि मनुष्यकी सभी प्रसन्नतायें और इच्छायें चाहे वह कितनी ही प्रबल क्यों न हों अन्तमें शान्त हो जाती हैं। उसका मन उनसे सन्तुष्ट हो जाता है और अन्तमें किसी अन्य नवीन पदार्थकी ओर आकर्षित हो जाता है। यदि कोई मनुष्य संगीत प्रेमी है तो सात आठ गाने सुननेके पश्चात उसका मन भर जाता है। अल्पकालके लिये उसका अनुराग संगीतसे हटकर किसी अन्य पदार्थमें

लग जाता है। विश्वकी समस्त वस्तुओंकी यही दशा है परन्तु ज्ञानकी दशा निराली है। ज्यों ज्यों मनुष्य का ज्ञान बढ़ता जाता है त्यों त्यों वह अधिक जानने-की चेष्टा करता है। उर्दू का शेर कि मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवाकी, ज्ञानके विषयमें बिलकुल लागू है। विज्ञानसे मनुष्य कभी नहीं घबड़ाता (उसकाजी कभी नहीं ऊबता) क्योंकि वह सदैव कुछ नवीन बातें सीखता है। वैज्ञानिक आविष्कार स्वयं ही एक भद्र कार्य्य है और यह स्वतः पुरस्कार है।

विज्ञान और व्यवसायका घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य अपने व्यवसायकी उन्नतिके लिये अपनी कार्य्य निपुणताको बढ़ाना चाहता है। कार्य्यकुशलताकी वृद्धिके हेतु वह सदैव नवीन उपाय सोचा करता है। इसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि वह कोई वैज्ञानिक अविष्कार कर डालता है, जो उसके व्यवसायकी वृद्धि करता है। अतः विज्ञान बहुधा व्यवसायसे उत्पन्न होता है, जो व्यवसायका अति उपकारी होता है(?) उदाहरणार्थ हम प्रयोगात्मक ठोस ज्यामिति को ही ले सकते हैं। एक मोञ्ज(Monge)नामी फ्रान्सीसी बालकने इसका आविष्कार किया था। वह लगभग १७-८५ ई० के पैदा हुआ था। वह सेनामें नौकरी करता था। उसने देखा कि सभी दुर्ग (Fortification) अङ्क गणितके नापद्वारा बनाये जाते हैं। मोञ्जको यह नियम अधिक टेढ़ा और लम्बा मालूम हुआ। उसने झट रेखागणित द्वारा नापना आरम्भ कर दिया। इस नवीन ढंगसे समय और परिश्रमकी बचत होने लगी। मोञ्जका यह अन्वेषण इञ्जीनियरोंके बड़े काम का है। वे सदा इससे लाभ उठाते रहते हैं। इसी प्रकार इङ्गलैण्ड आदि देशोंमें लोगोंने नाना प्रकारकी कलें बना डाली हैं जो उनके व्यवसाय को अत्यन्त हितकर हुई हैं।

विज्ञानके व्यावहारिक लाभ पर दृष्टिपात करना केवल पाठकोंके अमूल्य समयको नष्ट करना है क्योंकि हम सभी उनसे भली भाँति परिचित हैं। भला कौन ऐसा है जो रेल, तार, मोटर, उड़नेवाली मशीनें और टेलीफोनके नामसे अनभिज्ञ होगा। यह सब भौतिक विज्ञानसे उत्पन्न हुई हैं।

रसायन शास्त्रियोंने रंग बिरङ्गके साबुन, भाँति भाँतिके सुन्दर रंग और सुगन्धित तथा मुखकी शोभा की वृद्धि करनेहारे पाउडर बनाये हैं। नहीं नहीं उन्होंने केवल इतनाही नहीं किया है वरन् जीवन दात्री और भयङ्कर मृत्युके पँजोंसे छुड़ानेवाली औषधियाँ भी बनाई हैं।

यह वैज्ञानिकोंकी बुद्धिका चमत्कार है कि जिन्होंने पृथ्वीमें छिपी हुई धनकी अनन्त राशिको ढूँढ निकाला है। सोना, चाँदी, हीरा, पन्ना, कोयला लोहा आदि धातुओंकी खानें बसन्धुराकी उदरसे उत्पन्न की हैं जो मनुष्यके बड़े काम की हैं।

वैज्ञानिकोंने मनुष्यके सुखके लिये भला क्या क्या नहीं किया है। नदियोंके ऊपर उन्होंने विशाल सेतु बाँधे हैं और महाभयंकर समुद्रोंमें भी पोत चलाये हैं। यह वैज्ञानिक आविष्कारों का ही परिणाम है कि आज भारतीय किसान भी घर बैठे ही जर्मनी लालटेन और जापानी दियासलाइयोंको काम लाते हैं। आज कल समस्त संसार वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा एक छोटी कोठरीको भाँति है जिसमें हम लोग अपनी इच्छानुकूल जब चाहें तहाँ आ जा सकते हैं। यदि कोई बात आज अमेरिकामें होती है तो उसका प्रभाव जापान ऐसे दूर देश पर भी शीघ्र ही पड़ता है।

यों तो सभी वैज्ञानिक-आविष्कारों का प्रभाव मनुष्यके जीवन पर पड़ता है परन्तु कुछ आविष्कारों ने तो उसकी काया को पलट डाला है। यूरोपमें लगभग १५०० ई० के लोगोंने कुतुबनुमा (Mariner's Compass) का आविष्कार किया जिसका वहाँके निवासियोंके जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। अब कुतुबनुमाके द्वारा यूरोपवाले निडर होकर समुद्र की यात्रा करने लगे। उनके हृदयमें विदेशोंके देखने की आकांक्षा उत्पन्न हुई जिसकी पूर्तिके लिये वह अपने गृहको त्याग कर जलयानों पर चढ़कर संगमें कुतुबनुमाको लेकर चल पड़े जिसका परिणाम यह

हुआ कि कोलम्बस ने अमेरिका खोज डाली और वास्कोडी गामा ने भारत आने की राह ढूँढ़ निकाली। धीरे धीरे यूरोप वालों का साहस बढ़ा और उन्होंने संसारके महाद्वीपोंको ढूढ़ा और उनमें अपना राज्य स्थापित किया। उन देशोंसे अपने देशमें धन लाकर सुख चैन करने लगे। यदि कुतुबनुमा का आविष्कार न होता तो क्या यह सम्भव था कि आज यूरोपवाले भारत आस्ट्रेलिया और अफरीका आदि देशों पर राज करते होते? यह है विज्ञान से लाभ!

इतिहासके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन समयमें समस्त जगत में अन्ध विश्वास फैले थे जिनको विज्ञानने क्रमशः दूर किया है। भारत-वर्षमें आर्य्यलोग जलवृष्टिके लिये देवताओंकी पूजा किया करते थे और नाना प्रकारकी चीजे उनकी भेंट किया करते थे। परन्तु आजकल यह बात भली-भाँति विदित है कि वर्षा स्वयं हुआ करती है। यह मानसून इत्यादि चीजों पर निर्भर है। इसी प्रकार यूरोपमें भी अनेक अन्ध विश्वास फैले थे जिनको विज्ञान ने जड़से धो बहाया है। क्रान्ति युग-रीनेसान्सके समयमें यूरोपवालों का विश्वास था कि सूर्य्य पृथ्वीके चारों ओर घूमा करता है। गैलीलियोने वहांके निवासियों को बतलाया कि पृथ्वी सूर्य्यके चारों ओर घूमा करती है और तुम्हारा विचार नितान्त मिथ्या है। गैलीलियोकी इस ढिठाई के लिये पोपने उसको फाँसी दे दी और वीर गैली-लियोंने इस दण्डको प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया परन्तु अपने विचार को न छोड़ा।

यों तो विज्ञान से मनुष्य मात्र को अनेक लाभ हैं परन्तु पाठक आइये हम सब मिलकर इस बात पर विचार करें कि विज्ञान भारतवर्षकी उन्नति किस प्रकार कहाँ तक कर सकता है।

यह बात भली भाँति विदित है कि भारत कृषि-प्रधान देश है। यहाँके रहने वालो का मुख्य काम खेती है। खेती ही को भारतवासी अन्य पेशों से उत्तम समझते हैं। उनका कथन है कि

उत्तम खेती मध्यम बान।
निकृष्ट चाकरी भीख निदान॥

अतः यह आवश्यक है कि भारतकी आर्थिक दशा सुधारनेके लिये खेतीकी उन्नति करनी चाहिये। अब इस बात पर विचार करना चाहिये कि विज्ञान कृषिको कहाँ तक सहायता दे सकता है और कहाँ तक इसकी उन्नति कर सकता है।

विज्ञान कृषिके बड़े काम का है। विदेशोंमें किसान वैज्ञानिक रीतिसे खेती करते हैं। वे नाना प्रकारकी कलों द्वारा अपने खेतोंको जोतते बोते हैं। सारांश यह है कि अल्प समयमे वे अधिकसे अधिक काम कर लेते हैं। आश्चर्य यह है कि इस ढंगसे व्यय भी कम पड़ता है। उदाहरणार्थ हम अमेरिकाको ही ले सकते हैं। अमेरिका वाले विज्ञानकी उन्नतिमें संसार के अन्य देशोंसे अग्रसर हैं। वे अपने खेतोंको कलों द्वारा जोता बोया करते हैं। कनाडामें गेहूँके बड़े बड़े खेत हैं। जब इन खेतोंका गेहूँ पक जाता है तब एक आदमी एक मशीन द्वारा सैकड़ों बीघे खेत अल्प समय में सुगमतासे काट डालता है। परन्तु हमारे भारत वर्ष में किसान कलोंका प्रयोग बिलकुल नहीं करते हैं। वे लकीर के फकीर हैं। जब उनका अन्न पक जाता है तब वे हँसियासे अनेक मनुष्योंकी सहायता द्वारा उसको काटते हैं। इसमें अधिक समय लगता है और अन्तमें अधिक व्यय भी पड़ता है। भारतीय कृषिमें अनेक कुरीतियाँ हैं जो देशकी आर्थिक दुर्दशाकी कारण हैं। यदि भारतीय किसान विज्ञानका आश्रय लें तो वे शीघ्र ही इन कुरीतियोंका समूल नष्ट कर सकते हैं और अपनी आमदनीको बढ़ा सकते हैं। यह कहना कि भारतीय किसान कलों द्वारा खेती करने के लिये अयोग्य हैं और वे कृषिके विषय में कुछ नहीं जानते निरा मिथ्या और भ्रम है। एक धुरन्धर विद्वान का कथन है कि भारतीय कृषक विदेशी कृषकोंकी अपेक्षा कम परिश्रमी तथा बुद्धिमान नहीं हैं। यदि एक बार उनको को उपयोगी बात बतला दी जाती है और वे उसकी उपयोगिता समझ लेते हैं तो वे उस बातको सदा करते आते हैं।

हमारे भरतवर्ष में कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ खेती वैज्ञानिक रीतिसे होती है। पूसामें सरकारकी ओर से एक बड़ा फार्म है जो किसानोंको सदा अच्छी बातें बतलाया करता है। पूसामें यह देखा जाता है कि कौन सा अन्न भारतके किस भागमें अच्छी तरहसे उग सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक बड़े बड़े नगरमें गवर्नमेण्टकी ओरसे कृषि-फार्म (एग्री कल्चरल फार्म) हैं जहां साधारण सी साधरण भूमिमें वैज्ञानिक नियमोंके अनुसार दर्शनीय अन्न उत्पन्न करके दिखाया जाता है। तरह तरहके गेहूँ, तरकारियां, गन्ने आदि के उत्पन्न करने की विधि इन फार्मके अधिष्ठाताओं से ग्राम निवासियोंसे ज्ञात हो सकती हैं। प्रयागमें नयनी के निकट एक बड़ाभारी कृषि विद्या सम्बन्धी शिक्षाणलय है। इसने ऐसी भूमिमें अन्न आदि उत्पन्न करके दिखा दिया है जिसे ग्रामीण किसान खेतीके सर्वथा अयोग्य समझते थे और ६ आना, ८ आना बीघा पर भी लेकर जहां काम करना व्यर्थ समझते थे। जिस समय कृषि-विद्या-विशारद-विदेशियोंने इनकी ऊसर भूमिमें काम करना आरम्भ किया था, इन लोगोंका कहना था कि साहेब लोगोंका दिवाला निकल जायगा और हानि सहकर इन्हें शीघ्र ही भाग जाना पड़ेगा। परइन विदेशियोंने ही हमारी ऊसर भूमिको अन्नगर्भा बना दिया और उसी भूमि का मूल्य अब बहुत अधि[illegible] बढ़ गया है।

वैज्ञानिकोंने जल प्रपातोंकी सहायतासे बड़ी ब[illegible] मिल्स, मशीनें, और कारखाने चलाने आरम्भ क[illegible] दिये हैं। स्विटज़रलैण्डमें पहाड़ी झरनों और नदि[illegible] से तरह तरहके काम लिये जाते हैं, उनसे विद्युत् उत्[illegible] की जाती है जिससे समस्त देशको अनेक प्रकार[illegible] लाभ होता है। हमारे देशमें हिमालय और उनसे नि[illegible] लने वाले झरने, सरोवर तथा सरितायें वस्तुतः अमू[illegible] ल्य सम्पत्ति हैं। आवश्यकता केवल इस बातकी [illegible] कि वैज्ञानिक साधनोंके उपयोगसे हम प्रकृतिके इ[illegible] पदार्थोंसे सेवा लेना सीखें। भारतमें किसी भी व[illegible] की कमी नहीं है, यहां बड़े बड़े जंगल हैं जिनमें तर[illegible] तरह की लकड़ी होती है जिनसे कागज और दिय[illegible] सलाईके बड़े बड़े कारखाने खोले जा सकते हैं। य[illegible] बहु मूल्य खनिज पदार्थ उत्पन्न होते हैं जिनसे हमा[illegible] अनेक व्यवसाय चल सकते हैं। क्या अच्छा हो यि[illegible] हमारे देशके धनपति कुबेर लोग वैज्ञानिक साधनों[illegible] के उपयोगके लिये अपनी अतुल सम्पत्तिका व्यय क[illegible] ऐसा करने में उनका और देशका— दोनों ही का ला[illegible] होगा।

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

- मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
- स्पष्टाधिकार ... ... ॥।)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस, सी., एम-बी., बी. एस ...

९—दियासलाई और फास्फोरस—ले० प्रो. रामदास गौड़, एम. ए. ... ...

१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ...

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ...

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ...

१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० बी०के मित्र, एल. एम. एस. ... ...

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ...

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ...

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ...

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

- भाग १ ... ...
- भाग २ ... ...

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ...

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ...

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १

वैज्ञानिक कोष— ... ...

गृह-शिल्प— ... ...

खादका उपयोग— ... ...

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१६०

Reg. No. A.708

भाग २७ Vol. 27. | मिथुन कर्क १९८५ | संख्या ३, ४ No. 3, 4

जून जुलाई १९२८

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग २७ | मिथुन, कर्क संवत् १९८५ | संख्या ३, ४

चलन कलन और चलराशि कलनकी उत्पत्ति और विकास

(ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव)

आधुनिक गणितके अध्ययन और उपयोगसे परिचित किसीभी व्यक्तिको यह बतलानेकी आवश्यकता न होगी कि गणित विद्यामें चलनकलन और चलराशिकलनका क्या स्थान है।

इसका उपयोग गणितकी किसी एक शाखामें परिमित हो यह बात नहीं। प्रत्युत यह कहना अधिक उचित होगा कि गणितकी कोई भी ऐसी शाखा नहीं है जिसमें इसकी सहायताकी आवश्यकता न पड़ती हो।

पिछली शताब्दिमें गणित और गणितसे घनिष्ट सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंकी जो उन्नति और उनके साहित्यकी जो वृद्धि हुई है उसका अधिकांश श्रेय इन्हीं चलन कलन और चलराशि कलन को है। इस समयमें विज्ञान और विशेषकर गणितकी सेवा करने वाले इतने बड़े बड़े विद्वान हुए कि थोड़े ही समयमें इतना ज्ञान इकट्ठा हो गया कि उसको संगठित करने और नये रूपमें रखनेका कार्य बड़ा दुस्तर होगया है। यदि इन दो विषयोंका आविष्कार न हुआ होता तो यह कदापि सम्भव नहीं था कि हम इस ज्ञानोपार्जनसे इसका शतांश भी लाभ उठा सकते।

यह तो हुई पुरानी बात। आजकल देखिये। गणित और भौतिक विज्ञानमें जिधर आंख उठाइये तार ताय का अखंड राज्य है। भौतिक विज्ञानकी कोईभी बड़ी पुस्तक उठाइये उसमें चलन कलन या चलराशिकलनका प्रयोग अवश्य किया गया होगा। आधुनिक वैज्ञानिक साहित्यमें तो पग पग पर इनकी सहायता ली जाती है। यह बात सोचते ही कि यदि हमारे

हाथ में $\frac{\text{तार}}{\text{ताय}}$ अथवा ∫ यह दो शब्द न होते तो हम विज्ञानकी इन जटिल समस्याओंका कैसे सामना कर सकते—दिल दहल जाता है। जिस प्रश्नको करनेमें हमारा आधा पन्ना खर्च हुआ है वही यदि बिना इनके उपयोगके किया जाय तो २ या ३ सफे काले किये बिना काम न चले या हम उस प्रश्नको कर भी सकें या नहीं इसमें भी संदेह है।

आखिर यह विषय है क्या ? इसका उत्तर थोड़ेमें देना तो कठिन ही नहीं वरन् असंभव है। साधारणतया चलन कलनसे समझा जाता है डिफरेनशल-केलकुलस। इसका उद्देश्य है किसी संख्याकी वृद्धिका अंदाजा लगाना और चलराशिकलन है इसका उलटा। इसका उद्देश है उस संख्या या राशिको मालूम करना जिसकी कि वृद्धिका अन्दाजा लगाया जा चुका हो।

यह तो हुआ पारिभाषिक अर्थ परन्तु व्यवहारमें यह ऐसे स्थानों पर काममें आते हैं कि ऊपरी तौर पर इस पारिभाषिक अर्थका आभास भी नहीं पाया जाता। इसका पूरा पूरा अर्थ और गणित शास्त्रमें इसका महत्व इसको पढ़ कर और उपयोग करने पर ही समझमें आ सकता है। अस्तु हमें तो उसकी वृद्धिके इतिहाससे मतलब है।

इसकी वृद्धिको चार भागोंमें बांटा जा सकता है।

पहला काल :—जब कि इस शास्त्रकी उत्पत्ति ग्रीक लोगोंमें हुई। ग्रीक गणितज्ञोंमें से एन्टीफोनने इससे मिलती जुलती क्रियाओंका उपयोग किया था।

दूसरा कालः—बहुत दिनों तक इस विषय पर ध्यान नहीं दिया गया इसलिये दूसरा काल २००० वर्ष बाद तक आरम्भ नहीं होता इसमें अविभाजित संख्याओंकी रीति से (Method of Indivi ibles) काम लिया गया।

तीसरा कालः—इन पुरानी रीतियोंको छोड़कर १७ वीं शताब्दीमें इसे दूसरा रूप दिया गया। इस समय इसका नाम गति सम्बन्धी कलन (fluxional calculus) पड़ा।

चौथा काल वह है जिसमें कि इसकी वास्तविक उन्नति हुई इसी कालमें न्यूटनकी रीति आविष्कृत हुई। इसको सीमा (limits) की रीति कहते हैं।

चलराशिकलन का भी विकास साथही साथ होता रहा।

जेनो नामक एक ग्रीक गणितज्ञने पहले पहल उन प्रश्नोंको चलाया जिसमें बहुत छोटी अथवा अदृश्य संख्याओंका काम पड़ता था।

एन्टीफोनने ईसाके ४३० वर्ष पहले रिक्त करण (exhaustion) की रीतियोंका उपयोग किया। यह आज कलके चलराशि कलन से कुछ कुछ समानता रखती थी।

सुविख्यात ग्रीक विद्वान् आर्कमीदिसने चलानयन (Integration) से बहुतकुछ समता रखनेवाली रीतियोंका उपयोग किया। रेखाओं पर विचार करते हुए वह इन चलों (Integrals) तक आ पहुँचा था।

$$\frac{१}{\text{अ}^२}\int_0^{\text{अ}} \triangle \, \text{ता} \triangle \quad \frac{1}{a^2}\int_0^a \triangle^2 \, d\triangle$$

$$\frac{\pi}{\text{अ}}\int_0^{\text{अ}} \text{य}^२ \, \text{ताय} = \frac{१}{२}\pi \, \text{अ}^२ \quad \frac{\pi}{a}\int_0^a x^2 dx = \frac{1}{3}\pi a^2$$

माध्यमिक कालके बहुतसे गणितज्ञोंके मनमें यह विचार उपस्थित हुआ कि किसी सतहका क्षेत्रफल या उससे सम्बन्ध रखनेवाली क्रियाओंको जाननेमें उस सतहको छोटे छोटे सम चतुर्भुजों (retangles) बांटकर फिर आगे बढ़नेमें सुभीता होगा। इस प्रकार का मत १३ वीं शताब्दिमें यहूदी लेखक बरजिलाइ ने प्रकट किया था।

प्रख्यात हिन्दू गणितज्ञ और ज्योतिषी भास्कराचार्य १२ वीं शताब्दिमें उत्पन्न हुए। इनके समान विद्वान् तथा गंभीर पंडित उस समयमें बिरले ही रहे होंगे। आज भी इनके सिद्धान्तोंकी मौलिकता तथा इनकी रीतियोंकी नवीनता देखकर विद्वान् आचार्य चकित होते हैं। अपने विख्यात ग्रंथ सूर्य सिद्धान्त

में तात्कालिक गति पर विचार करते हुए इन्हों ने यह मालूम कर लिया था कि ज्या य (sin θ) का तात्कालिक चलन (differential) कोज्या य (cos θ) है जिस पद्धतिसे यह इस परिणाम पर पहुँचे वह आज कलकी रीतिसे बिलकुल भिन्न है और फिर इन्होंने इस रीतिको उन्नत करनेकी परवाह भी नहीं की। हिन्दुओंमें तो गणित केवल ज्योतिषकी सहायता के ही लिये था। जिस रीतिकी आवश्यकता पड़ी उसे काम में लाये फिर छोड़ दिया।

यदि उसे गणित का एक अलग विषय मान कर उसका अध्यन किया जाता तो न जाने उसमें कितनी उन्नति हो गई होती।

भास्कराचार्य का जिक्र फिर अन्तमें किया जायगा।

यह तो नितान्त असम्भव है कि किसी ऐसे आदमीका नाम ले दिया जाय जिसको चलन कलन आदिके आविष्कारका सारा श्रय हो। कहने को तो न्यूटन और लाइबनीजने इनका सबसे अधिक विकास किया पर विचार करके यदि देखा जाय तो विदित होगा कि इसकी नींव बहुत पहले पड़ चुकी थी और विद्वानोंको आधुनिक रीतिका आभास भी हो चला था। १६ वीं शताब्दि में ही स्टीवन और लाबित इब्न कोरा ने इसकी सहायतासे कई आकृतियोंके घन फल निकाले।

इसके पश्चात् कई विद्वानोंने इन रीतियोंका उपयोग किया। स्थानाभावके कारण उनके नाम छोड़ दिये गये हैं। उनके काममें लाई हुई रीतियों और आधुनिक रीतियोंमें फर्क यही है कि उस समयमें किसी एक प्रश्नमें किसी एक विशेष रीतिका उपयोग करके छोड़ दिया जाता था। यह उद्योग नहीं किया गया कि इन बिखरी हुई रीतियोंको संगठित कर एक पूरे विषय के रूप में रक्खा जाय।

इस सबको सुव्यवस्थित और सुसंगठित रूपमें रखनेके लिये आवश्यकता थी न्यूटनकी प्रतिभाकी और लाइबनीजके मस्तिष्ककी। सुप्रसिद्ध ज्योतिषी केपलर ने इस विषय पर बहुत कुछ काम किया $\int_{0}^{य}$ ज्या य ताय = १ — को ज्याय का मान उसने निकाला। अपनी पुस्तक स्टरो मटीरियामें जो कि सन् १६१५ में प्रकाशित हुई उसने कुछ बरतनोंका आयतन और कुछ आकारोंका क्षेत्रफल अदृश्य संख्याओंका उपयोग करके निकाला इस समयसे पहले जो रीति काममें आती थी उसमें एक तो देर बहुत लगती थी दूसरे परिणाम का पहलेसे अनुमान होना आवश्यक होता था। ऐसी दशामें किसी भी समस्याको हल करनेमें इन रीतियोंका उपयोग नहीं हो सकता था।

केपलरकी इस नई रीतिकी उत्पत्तिका हाल बड़ा ही मनोरञ्जक है। एक शराबके व्यापारीसे केपलर की इस बात पर बहस हुई कि पीपेमें बन्द शराब की तौल का अन्दाजा लगानेका सबसे आसान तरीका क्या हो सकता है? केपलरने अदृश्य संख्याओं की रीति का उपयोग कर इस प्रश्न का उत्तर दिया। पर गिल्डिन इत्यादियोंने इस पर आक्षेप किया। केपलरकी यह रीति पूर्णरूपेणतो सही नहीं कही जा सकती। फिर भी इस रीतिने न्यूटन इत्यादि के लिये रास्ता साफ कर दिया।

कारटीजियन रेखा गणितके आविष्कारक डिकारटेजने कुछ दिनोंके लिये इस विषयको हाथमें लिया था परन्तु इस पर उसने अधिक काम नहीं किया डिकारटेज़ ने जो कार्य आरम्भ किया उसको अधिक उन्नति देना उसीके सहयोगी इटली निवासी कावे लयारीके ज़िम्मे था।

बोनावेनचुआरी कावेलियारीका जन्म बोलनमें १७ वीं शताब्दिमें हुआ था। वह बोलन विश्व विद्यालयमें गणितका आचार्य रहा। केपलरने जिस अव्यक्त संख्याओंकी रीतिको जन्म दिया था उसीको कावेलियारीने और भी विस्तृत किया। इस रीतिमें कोई भी संख्या अथवा वस्तु असंख्य छोटे छोटे भागोंमें बांटी जा सकती है। रेखा असंख्य बिन्दुओं का संग्रह और सतह असंख्य रेखाओंका झुण्ड माने जा सकते हैं। इस रीतिसे जवाब तो सही आ जाता था पर गणितकी दृष्टिसे इसमें दोष थे।

गिल्डिनने इस पर आक्षेप किया और उसका उत्तर केवेलियारीने एक पुस्तकमें जो सन् १६४० में गिल्डिनकी मृत्युके पश्चात प्रकाशित हुई दिया। इस पुस्तकमें गिल्डिनके नामसे प्रसिद्ध साध्योंका प्रमाण इसी रीतिसे दिया गया।

इधर फ्रांसमें इसी समय यह रीतियां काममें लाई जा रहीं थीं। रोबरवल फरमट, पास्कल इत्यादि इन विषयों पर गम्भीर गवेषणाएं कर रहे थे।

गाइल्स परसोने द रोबरवल (१६०२-१६७५) पेरिसके कालेज (कालेज आफ फ्रांस , में गणितका अध्यापक था। इसका दावा था कि हमने ही इस रीतिका आविष्कार किया। परन्तु इस विषय पर मत भेद है इस कारण निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

इसमें तो कोई संदेह नहीं कि रोबरवलने इसमें उन्नति तो बहुत की। इसका उपयोग क्षेत्रफल, आकर्षण केन्द्र (centre of graoity) इत्यादि निकालनेमें किया। इसने चक्रालद (cycloid) की लम्बाई निकाली और अपनी स्पर्श रेखाओं (tangents) के निकालनेकी रीतियोंके लिये तो वह प्रसिद्ध है ही।

स्पर्श रेखाओं के खींचने की रीतियों पर फरमटने बहुत सा काम किया केपलरके विचारोंकी वृद्धि कर इसने महत्तम और न्यूनतम (maxima, minima) के नियमोंका आविष्कार किया। इनकी निकाली हुई रीतियोंमें और चलन कलन की रीतियोंमें भेद यही है। कि ता र (dx) की जगह फरमट इ, e का प्रयोग करता है।

फरमटने बहुत छोटी संख्याओं को गणितमें स्थान दिया, इस कारण लाग्रांज और लाप्लेसका कहना है कि चलन कलनके आविष्कर्ताका पद फरमटको ही दिया जावे। परन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि जैसा पुशांने कहा है।

"चलन कलन तो उस रीतिका नाम है जो सब संख्याओंके तात्कालिकवेग (differential) बिना किसी विशेष रीतिको काममें लाये निकालती है। इधर उधरके प्रश्नोंमें उसका उपयोग कर लेना उतना महत्व पूर्ण नहीं है" और फिर इस बातका कोई प्रमाण भी तो नहीं है कि फरमटको इस प्रथाका पूरा पूरा उपयोग मालूम रहा हो।

इन रीतियोंकी और भी उन्नति करने वाला पास्कल था। उसने चक्रालद के घूमने से बने हुए क्षेत्रफल और घनफल निकाले और १६५८ में संसारके गणितज्ञोंके वास्ते इन समस्याओंको हल करनेके लिये २ पुरस्कारोंकी घोषणा की।

वालिसने कुछ प्रश्नोंको हल किया परन्तु पुरस्कार न पा सका। पास्कलने स्वयं उनको चल राशिकलनकी रीतियोंसे किया था। उसको इन चलों (Integrals) के परिणाम की आवश्यकता पड़ी थी।

$\int \sin \phi \, d \phi$	∫ ज्याय ताय
$\int \sin \phi \, d \phi$	∫ 'ज्याय ताय
$\int \phi \sin \phi \, d \phi$	∫ वा ज्याय ताय

इनके बाद आइजक बेरीका नाम आता है। यह न्यूटनके गुरु और उसके पहले केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें गणितके आचार्य थे। उन्होंने एक अणुराशि (Infinitesiml)

की जगह दोकी सृष्टिकी अर्थात सिर्फ ताय (dx) की जगह ताय (dx) और तार (dy) दोनोंका स्थान दिया।

अब हम इन विषयोंके विकासके उस युगकी ओर आते हैं जबकि गणित और भौतिक शास्त्र और इनसे सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक विषय ने बहुत उन्नतिकी। यह वह समय है जब कि न्यूटन, लाइबनीज जैसे प्रतिभाशाली विद्वानोंका जन्म हुआ इन दिनों की हुई उन्नतिका सिंहावलोकन करते हुए आजभी उनकी प्रतिभाकी चमकसे आंखे चकाचौंध जाती हैं। न्यूटनका जन्म कलथोर्पमें १६४२ में हुआ। इनके बचपन और युवावस्थाकी कथा बड़ी ही मनोरञ्जक है। पढ़ने लिखनेकी बहुतही कम सुविधा होते हुए भी न्यूटनने बहुत ही थोड़ी अवस्था

में गणित का बहुत काफ़ी अध्ययन कर लिया था। आपको भेजा जाता था बाजार अपने खेतकी उपज बेचने के लिये पर वह सब काम नौकरके सुपुर्द कर आप रेखा गणितके साध्योंका अध्ययन सड़कके किनारे किसी झाड़ीमें बैठ कर किया करते थे।

बचपन से ही न्यूटनने आविष्कार की ओर रुचि दिखलाई। पढ़ने में आपकी तबियत कम लगती थी पर क्लास में एक साधारण घटनाके कारण आप में परिवर्तन हुआ और आप क्लासमें सर्व प्रथम आने लगे।

आगे पढ़ने के लिये आपको केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके अन्तर्गत ट्रिनटी कालेजमें भेजा गया। यहां अनुकूल वातावरण पाकर न्यूटनकी प्रतिभा चमक उठी। क्लासके साथ जो गणित पढ़ाया जाता था उसको बहुत ही अल्प समयमें न्यूटनने समाप्त कर दिया। इसके पश्चात् आपको क्लासमें जाना व्यर्थ सा प्रतीत हुआ और आप घर पर ही गणितका अध्ययन करने लगे। २० वर्षकी अल्पावस्थामें आपने बाइनोमियल थ्योरम का आविष्कार कर डाला था।

आपका २८ मई १६६५ का लिखा हुआ एक लेख पाया गया है जिसमें चलन कलन की नई रीतियोंका प्रथम बीजारोपण पायाजाता है। यह लेख उस साल लिखा गया था जिस साल कि इन्होंने बी० ए० की डिग्री ली।

इसीके पश्चात् केम्ब्रिजमें प्लेग हो गया और १६६५—६६ में विश्वविद्यालय बन्द रहनेके कारण न्यूटन घर पर ही रहे। इन दिनों इन्होंने इसकी पूरी उन्नति की। १३ नवंबर १६६५के लिखे हुए एक लेखमें न्यूटनने अपनी नई रीतिकी सहायतासे किसी भी रेखाके किसी भी बिन्दु पर स्पर्श रेखा और व्यासार्ध निकालने और १६६६ बहुतसे दूसरे प्रश्नोंमें इसका उपयोग किया।

किसी को भी इस आविष्कारका हाल १६६९ तक नहीं मालूम था। इस साल इन्होंने बैरो (Barrow) को एक अपना लिखा हुआ लेख दिया जो बैरोने कौलिन्स (Collins) को भेज दिया। कौलिन्सको यह लेख बहुत पसंद आया क्योंकि इसमें न्यूटनने अपनी रीतियोंका पूरा वर्णन किया था। फिर भी यह अधूरा ही था। बैरोंने न्यूटनसे प्रार्थना की कि वह इसको प्रकाशित करनेकी अनुमति दे परन्तु न्यूटनने अपनी इच्छा प्रकट न की। या तो इस विरोधका कारण न्यूटनका लजीलापन हो अथवा यह डर हो कि कहीं इस आविष्कारका उपयोग दूसरे न करें। यदि इसी समय यह लेख प्रकाशित हो जाता तो न्यूटन तथा लाइबनीजका प्रसिद्ध बादविवाद न होता।

फिर बहुत दिनों तक इस रीतिका हाल किसीको मालूम नहीं हुआ। १६७२ ई० में न्यूटनने कौलिन्सको एक पत्र लिखा और उसमें चलन कलनके कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किये।

न्यूटन अपने मित्रोंसे भी इस विषयको गुप्त रखना चाहता था। यहां तक कि बैरोको भी उसने अपनी रीति पहेलीके रूपमें लिख कर भेजी थी और उस पहेलीका कोई भी अर्थ निकालना कठिन ही नहीं वरन् असंभव था।

लाइबनीजका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं। न्यूटन और इनके चिह्नों या संकेतोंमें भेद था। यदि एक रेखा य हो और दूसरी र तो न्यूटनके मतानुसार जितने समयमें पहली रेखा य बढ़ेगी दूसरी र। यदि इसी वेगसे ताका काल तक गति होती रहे तो ता य=य-ता का और तार=र-ताका।

इसलिये लाइबनीजका $\frac{\text{तार}}{\text{ताय}} = \frac{\text{य}}{\text{र}}$

न्यूटनका मेथोडस डिफरेनशलित १७११ में प्रकाशित हुआ यह ग्रन्थ लैटिनमें था और इसका अनुवाद १७ ६ में निकला। इस समयमें और लिखे जानेके समयमें ६५ वर्षका अन्तर था।

अब हम लाइबनीजकी ओर अग्रसर होते हैं चलन कलनके आविष्कारके श्रेयके सम्बन्धमें दो सम्मतियां हैं। कुछ विद्वान न्यूटन को इसका आविष्कर्ता मानते हैं और कुछ लाइबनीजको। इसी

विषयको लेकर यूरोपके विद्वानोंमें एक शताब्दि तक वादविवाद चलता रहा।

लाइबनीजका जन्म लीपजिगमें सन १६४६ में हुआ। अपनी विलक्षण बुद्धिके कारण १५ वर्षकी अवस्था हीमें उसने विश्वविद्यालयमें पदार्पण किया। न्याय उसका मुख्य विषय था परन्तु उसने बहुतसे विषयोंका अध्ययन किया। १६७२ में किसी राजनैतिक कार्यसे वह पैरिस भेजा गया। १६७३ में वह लन्दन पहुँचा और रायल सुसाइटीके जिसका प्रधान न्यूटन था कुछ सदस्योंसे कहा कि मैंने एक विशेष रीतिसे प्रश्न हल करनेकी प्रथा निकाली है उससे कहा गया कि एक फराशीसी गणितज्ञ मैन्टन ने भी ऐसी ही प्रथा निकाली है। लाइबनीज जरमनी वापिस चला गया और वहांसे रायल सुसाइटीके मन्त्री औलनवर्गको लिखा कि उसके पास बहुत अच्छी और व्यवहारिक रीतियां हैं। यहांसे उत्तर गया कि न्यूटनने भी वैसी ही रीतियां निकाली हैं। लाइबनीजने इसपर न्यूटनसे प्रार्थनाकी कि उन रीतियोंका ज्ञान न्यूटन पत्र रूप में उसे भी दे इस पर न्यूटनने बाइनोमियल साध्य और कुछ दूसरी साध्य लिख भेजीं। लाइबनीजने और भी विवरण मांगा इसपर न्यूटन ने एक पहेली के रूप में चलन कलन की रीति लिख भेजी। परन्तु इससे लाइबनीजको कुछ सहायता न मिली।

लाइबनीजने फिर एक पत्र में अपनी रीतिका प्रतिपादन किया और तार(dy) और ताय (dx) रूपी चिह्नोंका उपयोग समझाया। औलनवर्ग की मृत्युके कारण यह पत्र व्यवहार बन्द होगया। १६८४ मेंएक्टा एरुडिटोरियम में लाइबनीजने अपनी रीतियां प्रकाशित कीं परन्तु न्यूटनने १६८७ तक कुछ खबर न ली। इस लिये यह निश्चत है कि रीतियां प्रकाशित तो पहले लाइबनीजने ही कीं। १५ वर्ष तक आविष्कर्ता का पद लाइबनीजके पास न्यूटनने बेरोक टोक रहने दिया।

सन् १६९९ में डुइलीयर नामी स्विस विद्वान्ने रायल सुसाइटीके पास एक लेख भेजा जिसका आशय यह था कि न्यूटन चलन कलनका आविष्कर्ता है। यही यूरोपीय वाद विवादका आरम्भ था। लाइबनीजने इसका जवाब दिया और फिर न्यूटन की गवेषणाओंकी एक आलोचना निकाली जिसमें यह लिखा था कि न्यूटनने लाइबनीज की रीतियां अपने नामसे प्रसिद्ध कीं। यह कथन बृटिश गणितज्ञों को अपमान जनक मालूम हुआ और औक्सफोर्डके कील साहबने न्यूटन की ओरसे वकालत शुरू की और एक जगह कहा कि लाइबनीजने न्यूटन की रीतियां चुराकर अपने नामसे प्रकाशित कीं। इस पर लाइबनीजने रायल सुसाइटीसे शिकायत की और इस सभाने एक कमेटी इस प्रश्नके विचारार्थ बनाई। बहुत खोजके पश्चात कमेटीने इस आशयका वक्तव्य प्रकाशित किया कि न्यूटन इसका प्रथम आविष्कर्ता है। परन्तु प्रश्न तो यह था कि किसने रीतियां चुराईं। इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया।

लाइबनीज की मृत्युके कारण यह वाद विवाद कुछ दिनोंके लिये शान्त हो गया परन्तु बादको उसके मित्रोंने फिर शुरू कर दिया।

आजकल विश्वास यह है कि लाइबनीजने बिना न्यूटन की सहायताके चलन कलनका आविष्कार किया परन्तु कुछ लेख ऐसे मिले हैं जिनसे कि कुछ विद्वानों की रायमें यह सिद्ध होता है कि लाइबनीजने न्यूटनसे भी सहायता ली। परन्तु इस विषय पर विश्वास योग्य सामग्री न होनेसे निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता।

अस्तु कुछ भी हो लाइबनीजने जो कुछ चलन कलनके लिये किया वह बहुत ही उच्च श्रेणी का है। आज जो चिह्न हम काममें ला रहे हैं यह सब लाइबनीज ही की कृपा है। कावेलियारीने चलों (Integrals) के चिह्न की जगह Omn ओम्न रक्खा था Omn अपभ्रंस था Omnia का जिसका कि अर्थ "सब" है। लाइबनीजने ∫ इस चिह्न को स्थान दिया।

तात्कालिक वेग (differentiai) का चिन्ह (dx) अथवा (dy) पहले पहल २९ अक्तूबर १६७५ मेंव्यवहारमें आया यह पहले हर (denominator)

में रक्खा गया था फिर कुछ प्रश्न निकालते समय यह अंश (numerator) के साथ रक्खा गया।

इन रीतियोंका महत्व बहुत दिनों तक गणितज्ञों की समझमें नहीं आया जाँनक्रेक और जेम्स बरनूली ने इसका महत्व समझा। बरनूलीने एक पत्रमें लाइबनीज़से इन रीतियोंका हाल पूछा परन्तु बहुत दिनों तक पत्रका उत्तर नहीं आया इस कारण बरनूलीने खुद ही बहुतसी रीतियां निकाल डालीं।

यह वादविवादजो अङ्गरेज गणितज्ञों और सारे यूरोपके विद्वानोंके बीच हुआ इंगलैंडके लिये बहुतही हानिकारक था क्योंकि अंगरेज़ विद्वानोंने इस झगड़े के कारण यूरोपके गणितज्ञोंसे पत्र व्यवहार बन्द कर दिया।

इन नई रीतियोंका विरोध भी हुआ क्योंकि न्यूटन आदि ने जिन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया था उनमें कुछ अशुद्धियां रह गईं थीं। सबसे महत्वका विरोध इङ्गलैंडके एक पादरी बर्कलेने किया। आपके मतानुसार तात्कालिक गति (differentials) "गुज़री हुई संख्याओं की भूत थी" और उनमें आपसमें कुछ सम्बन्ध होना असम्भव था। इनके विरोधका मुख्य आशय यह सिद्ध करना था कि चलन और चलराशिकलनके सिद्धान्त ईसाई धर्मके सिद्धान्तोंसे अधिक प्रामाणिक नहीं हैं। इस विरोधका कारण भी सुनिये-आपके मित्र बीमार थे और अपनी आत्मा की शान्ति ईसाई मतानुसार इसलिये नहीं कराना चाहते थे कि हेली नामी एक गणितज्ञने उन्हें विश्वास दिला दिया था कि ईसाई धर्मकी जड़ें कमजोर हैं। आपको गुस्सा आया और फलतः आप गणित पर आक्रमण कर बैठे।

यूरोपमें चलन कलन इत्यादिका प्रचार करनेका श्रेय बरनूलियों को है। इस कुटुम्बमें ८ नामी गणितज्ञ हुए। इङ्गलैण्डमें भी इसी समय अच्छे अच्छे गणितज्ञ हुए। इनमें उल्लेखनीय टेलर हैं। इनके नामसे प्रसिद्ध श्रेणी (series) का उपयोग गणितमें बहुत होता है। श्रेणी यह है।

$$फ(य+च) = फ(य) + च\, फ'(य) + \frac{च^{२}}{१.२.} फ''(य) + \cdots\cdots \frac{च^{न}\, ता^{न} फ(य)}{\underline{न}\; ता\, य^{न}} + \cdots\cdots$$

इंगलैंडमें बहुत दिनों तक इन रीतियोंको उचित महत्व नहीं दिया गया। सन् १८२०में पहले पहल केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में यह पठनपाठनका एक विषय हुआ।

सन् १७३० से १८२० तकके कालमें जो चलनकलन और चलराशि कलनकी विशेष उन्नति हुई उसका अधिकांश श्रेय लाग्रांच, लाप्लेस और ओयलर को है। ओयलर (Euler) का जन्म बेसिल जिसका कि उपनाम "गणितज्ञोंका पालना" था हुआ। आप की गणितकी प्रतिभा विलक्षण थी। एक ज्योतिषके प्रश्न को हल करनेके लिये विद्वानोंने कई महीनोंका समय मांगा था उसीको ओयलरने तीन दिनमें किया। परन्तु उससे आंखों पर इतना जोर पड़ा कि आपकी दाइनी आंख जाती रही। इन्होंने एक नास्तिक तत्वज्ञानी डिडरोट को ईश्वरके अस्तित्वका प्रमाण गणितसे दिया था। यह विद्वान् रशियाके राजदरबारमें गया और वास्तिक बादका उपदेश देने लगा। इस पर ओयलर ने उसे सूचना दी कि वह मैं ईश्वरका अस्तित्व गणितसे सिद्ध करूंगा। डिडरोट राज़ी होगया। दूसरे दिन भरी सभामें ओयलर डिडरोट की ओर बड़ा और गम्भीर स्वरमें "महाशय $\frac{(क+ख)}{न} = च$ इसलिये ईश्वरका अस्तित्व है। बोलिये! डिडरोटके लिये बीगाणित का काला अक्षर भैंस बराबर था। वह चुप हो गया और वापिस जानेकी आज्ञा मांगी।

ओयलरने चलन कलन और चल राशिकलन पर दो गवेषणा पूर्ण पुस्तकें लिखीं। इनके नामसे β (बीटा) और γ (गामा) फल प्रसिद्ध ही हैं।

इसी समय केम्ब्रिजमें एक समितिकी स्थापना हुई जिसका उद्देश न्यूटनके चिह्न ($\dot{y}$ अथवा $\dot{र}$) के स्थान पर $\frac{dy}{dx}$ या $\frac{तार}{ताय}$ का व्यवहार प्रचलित करना था। इस

सभाके उद्योगसे इंग्लैंडमें सन् १८३० तक चलन कलनका काफी प्रचार हो गया।

इधर जापानके विद्वानोंने एक प्रकारका चलन कलन अपने यहाँ प्रचलित कर दिया था। इस रीति का नाम येनरी है और १७ वीं शताब्दिमें इसका प्रचार हुआ। कहा जाता है कि इसका आविष्कार प्रसिद्ध जापानी गणितज्ञ सेकी कोवाने किया।

अंतमें हमको भास्कराचार्यके गणितकी ओर दृष्टि डालनी है। यूरोपीय विद्वानोंका विश्वास है कि चलन कलनका उद्भव भारतवर्षमें नहीं हुआ। परन्तु अपनी पुस्तक चलन कलनकी भूमिकामें स्वर्गीय पं० सुधाकर द्विवेदीने यह सिद्ध किया है कि भास्कराचार्यने इससे मिलती जुलती रीतियोंका उपयोग अपने ज्योतिषके ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि में किया है। इस विषय पर पं० सुधाकर द्विवेदी लिखते हैं:—

"भारतवर्षमें जितने प्राचीन सिद्धान्तके बनाने वाले विद्वान हुए हैं उन सबने स्पष्टाधिकारमें मध्यम-गति परसे स्पष्ट गतिका साधन किया है। परन्तु इन लोगोंकी बनाई हुई स्पष्ट गतिसे भास्कराचार्यने एक और भिन्न गति बनाई उसका नाम तात्कालिकी गति रक्खा गया ....." (परिभाषाके लिये सिद्धान्त शिरोमणिके गणिताध्यायके स्पष्टाधिकारमें दिनान्तर स्पष्ट खगान्तरं स्याद्गतिः स्फुटा तत्समया-न्तराले" इत्यादिकी व्याख्या देखिये)

चलन कलनकी रीति भास्कराचार्य जैसीही मालूम देती है परन्तु भास्कराचार्य भोग्यखंडको त्रैराशिकमें ले आते हैं। इतनाही भेद है।

"निदान इस तात्कालिक स्फुट भोग्यखंडसे भास्कराचार्यने अनेक वस्तुओंका विचार किया जिनके बल से बुद्धिमान चलन कलन सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तोंका ज्ञान कर सकता है। जैसे गणिताध्यायके स्पष्टाधिकारमें भास्कराचार्यने "फलांश खाङ्कान्तर शिञ्जनीघ्नी" इस श्लोक से ठीक

$$\frac{\text{त्रि. ज्याय}}{\sqrt{\text{ले}_2 + \text{अ}_2 + {}_2\text{अ को ज्याय}}}$$

इसकी तात्कालिक गति बनाया है। इनके वर्णित परणामोंसे यह ध्वनि भी निकलती है कि महत्तम और न्यूनतममें गति शून्य होती है।

'निदान भास्कराचार्यके पीछे भारतवर्षमें ऐसा कोई विद्वान् न हुआ जिसने चलन कलन सम्बन्धी कुछ विशेष लिखा हो"

ऊपर के लेख और अवतरणोंसे ज्ञात होगा कि भास्कराचार्यकी प्रतिभाने क्या क्या कर दिखाया था खेद यही है कि उनका काम किसी और भारतवासी ने पूरा न किया।

ऊपर कहा जा चुका है कि विदेशी विज्ञान और ज्योतिषमें इस विषय चलन और चलराशि कलन का उपयोग यथोचित् मात्रामें हुआ है। पर भारतीय ज्योतिष जहां पहले था वहीं अब भी है और इनका उपयोग भी बिलकुल नहीं हुआ। अच्छा हो यदि भारतीय ज्योतिषके विद्वान पुरानी रीतियोंको छोड़ इन नई रीतियोंको ग्रहण करें। इसी प्रकार उन्नति पूर्ण युगमें अग्रसर होनेकी सम्भावना है।

हिन्दीमें सिर्फ दो पुस्तकें इस विषय पर हैं। उनके लेखक हैं स्वनामधन्य स्वर्गीय पं सुधाकर द्विवेदी। उन ग्रन्थोंका नाम चलन कलन और चलराशिकलन है और सन् १८८६ में यह सरकारकी ओरसे प्रकाशित हुए। अब तो इनकी प्रतिभा लुप्त प्राय है। पंडितजी ने इस विषयकी जो गम्भीर और विद्वतापूर्ण विवेचनाकी है उसे देख कर आश्चार्य चकित हो जाना होता है। इनमें कई नई बातें भी हैं।

ऊपर लिखे हुए विद्वानोंकी गणनामें एक भी भारतीयका युग प्रवर्तक आविष्कार नहीं हुआ। यह देख कर खेद होता है आशा है। कि भविष्य कुछ कर दिखाये।

(अवतरण पं सुधाकरकी पुस्तक चलन चलनकी भूमिका में से हैं)

संसृति और विकास (३)

[ले० श्री 'गोपाल' जी]

विकासवाद पर कुछ विविध आक्षेप।

अब तक संसृतिवाद और विकासवादका केवल तुलनात्मक विवेचन और संसृतिवादके साधारण रूपका निरूपण किया गया है। विकासवाद की निस्सारता प्रकट करनेके लिए कुछ ऐसे आक्षेपोंका उल्लेख आवश्यक है जिनका समाधान उससे नहीं हो सका अथवा आगे होनेकी आशा भी नहीं है अन्यथा उस पर अविश्वास करनेका कोई और उपयुक्त अर्थ अथवा कारण नहीं हो सकता।

विरोध प्रायः अस्पष्टतामें लय हो जाते हैं, इस कारण अस्पष्ट अथवा संदिग्ध अनुमानों पर आपत्ति करनेसे कुछ मतलब नहीं निकलसकता। जिस अनुमान अथवा सिद्धान्तका खण्डन करना है उनका विशेष स्पष्टीकरण करना होगा, परन्तु जिन रहस्योंको विकासवादके महारथियोंने अस्पष्टताके गर्भमें पड़ा रखना उपयुक्त समझा है उनको स्पष्टताके प्रकाशमें ले आना सरल काम नहीं है। विकासवादसे स्पष्ट भाग और सन्दिग्ध अनुमान छाँट देनेपर इतना शेष रह जाता है कि उस पर आपत्ति करनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस कारण उसकी कोई क्रम बद्ध आलोचना करनेकी चेष्टा न कोजायगी।

सजीव सृष्टिके प्रथम आविर्भावको विकासवाद एक रहस्य मानता है, इस सम्बन्धमें कई अनुमान किये गये हैं परन्तु वह अनुमान भी निरापद नहीं, उद्भिजवर्ग निसर्गसे अपना आहार प्राप्त कर सकते हैं और करते हैं, वायुसे ओषजन (Oxygen जिसभांति जीवजन्तु वा मनुष्य ग्रहण करते हैं उसी भांति वे भी करते हैं। परन्तु वे वायुके दूसरे भाग-कर्बन-द्विओषिद (Carbon dioxide) और भूमिसे जल और दूसरे पदार्थ ग्रहण करके अपना भोजन तैयार करते हैं; उनकी यह नैसर्गिक क्षमता है। वह स्वयमापेक्षी है परन्तु जीव वर्गकी ऐसी बात नहीं, वह परापेक्षी है और वनस्पतिवर्गके बनाये हुए सञ्चित भोजनसे ही अपना निर्वाह कर सकते हैं। किसी युगमें जीवोंके अस्तित्वसे प्रथम उद्भिजवर्गका अस्तित्व होना चाहिए और यदि उस युगके जीवोंके अवशेष मिलते हों तो वनस्पतिवर्गके अवशेष अवश्य मिलने चाहिए। पृथ्वीके प्राचीनतम परतोंमें जो अवशेष मिले हैं वह प्रायः जीव जन्तुओंके ही हैं; वृक्षवर्गके क्यों नहीं? विकासवाद इसका ठीक उत्तर नहीं दे सकता वरन् उसके लिए इसका समाधान असम्भव सा है। भूमिकी बहुत सी ऐसी प्राचीनतम जलज शिला हैं जो प्राणियोंके अवशेष धारणके सर्वथा योग्य हैं परन्तु उनमें नाम मात्रको भी जीवनके अस्तित्वके चिह्न अब नहीं मिल रहे हैं—फिर एका एक उसके उत्तर युगोंमें ये चिन्ह बाहुल्यतासे पाये जाते हैं—इसका कारण इसके अनुसार समझमें नहीं आता। कोई महाशय कहते हैं कि जिस प्राचीनतम युगकी जलजशिला समूहोंमें जीवोंके चिह्न नहीं मिलते उस समय वसुन्धराके वक्ष पर ऐसे प्राणियोंका अवतार न हो पाया था जो अपने कठोर कंकालके द्वारा धरती माताको आहत कर अपने जीवनकी विषादमय स्मृति आनेवाली संततिके लिए छोड़जाते। उस युगके प्राणियोंमें न तो अस्थिपञ्जर ही था और न कोई और कठोर भाग। लता वनस्पति, वृक्ष, जीव जन्तु, सब ऐसे सुकोमल और सुखाद्य थे कि श्यामलाके अंकसे विलग होकर वह अपना अस्तित्व खोकर सदाके लिए उसके गर्भमें विलीन होगए। इस अनुमानको चण्डूखानेकी गपके सिवाय और किसी नामसे सम्बोधन करना चेष्टा करने पर भी नहीं बन पड़ता। ऐसा कौनसा क्रान्तिकारक परिवर्तन हुआ होगा—जो एकदम उजाड़ था वहाँ पहिले तो मुलायम चारा उगे और फिर दाँत तोड़ कचरा, अच्छी मजेकी बात है। जीव जन्तुओंके पञ्जर विशेषतः अस्थियोंके होते हैं और खटिक-

स्फुरेत (Calcuim phosphate) उनका मुख्य अव-यव होता है। भूगर्भकी आग्नेय (igneous) शिला समूहमें ऐपैटाइट (apatite) के रूपमें ऐसी वस्तु विद्यमान है। आदिमें सम्भवतः इसके अभावसे जीवों को पञ्जर धारणका सुभीता न था और जिस समय इसकी मात्रा पर्याप्त हो गई उस समय मात्रा-प्रक्रिया (mass action) के अनुसार हड्डियाँ बन सकीं—और कारण कि बननेकी क्रिया एक नियत मात्राके प्रभावमें सम्पन्न नहीं हो सकती इसलिए उस युगमें उनका अभाव है। मेरा यह अनुमान यद्यपि मेरे लिए अव रोधक प्रतीत होता है परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। दूसरे, कर्बन-द्विओषिद् वनस्पतिका मुख्य आधार पहिलेसे ही था।

अच्छा, इसे भी छोड़िये मान लीजिए कि प्राणियों में क्रम विकास हो सकता है और हुआ भी है परन्तु एक बात है कि वर्तमान समयमें प्राणियोंकी वह व्यापक क्रिया लोप सी क्यों हो गई है, वृक्षों और जीव जन्तु-ओंकी जातियाँ जैसी पूर्व कालिक इतिहासके समय थीं वैसी ही अब भी दीखती हैं। कमसे कम हमारे लकड़ दादाके समयसे तो वे झकमार कर बैठ गई हुई सी जान पड़ती हैं। वनस्पतिशास्त्र और जीव शास्त्रके ग्रन्थोंमें पुराने समयकी जातियोंका जो वर्णन है, आजकल की जातियाँ उससे भिन्न नहीं दीखतीं उत्क्रान्ति अथवा विक्रान्तिके जो दो चार उदाहरण दिये जा रहे हैं वह आधी करोड़ तककी गिनतीमें कुछ मूल्य नहीं रखते। होसकता है कि इस समय जाति योंकी इस विकास क्रियाका लोप हो गया है। वे एक भाँति स्थिर (Fixed) और (Stereotyped) होगई हैं। ठीक, परन्तु कबसे ऐसा हुआ होगा सोचिए तो कलतक जातियोंकी दशा ऐसी ही थी जैसी आज इस समय २७ जौलाई सन् १९२८ को रातके नौ बजे है। पिछले सप्ताह भी ये ही दशा थी, इस में सन्देह करने की जगह नहीं दीखती। अच्छा एक मास बीता तब भी कुछ अन्तर न था। हाँ पारसाल तक ऐसी ही थी। यदि मैं भूल नहीं करता तो इन दश वर्षों में मुझे विशेष अन्तर होनेका पता नहीं चला; मेरे बूढ़े दादा या गुरू इस बातको स्वीकार कर लेंगे कि वह अपनी उमरमें जातियोंको ऐसे ही निर्द्वन्द देखते चले आरहे हैं। यह भी कुछ नहीं। पिछली शताब्दि अथवा दो सौ वर्ष पुरानी पुस्तकों (Text books) को देखिये उनके वर्णन—जहाँ परीक्षा अथवा परिवेक्षण करनेमें भूल नहीं हुई है—आजकलकी जातियों पर बिलकुल ठीक लागू होते हैं। राजपूत युगसे अब तक राजपूतों की भाँति पशुओं अथवा वृक्षोंकी भी नस्लें बिगड़ गई हों, न तो ऐसा कोई प्रमाणही मिलता है और न इस अनुमानको स्थापित करनेके लिए कोई कारण ही दीखता है। मानना ही पड़ेगा कि जातियोंकी यह विकास क्रिया समाप्त हुए बहुत समय हो चुका। अतीतकालके ग्रन्थोंमें यदि कहीं पर किसी वृक्ष अथवा पशुका वर्णन आता है तो वह भी वर्तमान दशासे भिन्न नहीं निकलता। अब तनिक आगे चलिये। भू-विज्ञानकी ऐतिहासिक खोजको लीजिए। पचास हजार वर्ष पूर्व तक की बाबा आदमकी सन्तानकी हड्डियाँ मिलती है। पिछले युगके प्राणी अबके ही जैसे थे। इतना ही नहीं सृष्टिके आदिमें जिस प्रकारके जीव थे वैसेही कुछ आजतक भी मिलते हैं। उस समय भी जीव पर्याप्त उन्नति कर चुके थे। उसका अर्थ यह हुआ कि अति प्राचीनकालसे अथवा दूसरे शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि सजीव सृष्टिके आदिसे ही जातियोंका रूप इतना विभिन्न और व्या-पक था; और विकास मुख्य अंश न होकर एक गौण कर्म था।

यदि किसी पुराने-पुराने कालमें सृष्टिका आदि एक जीवसे होकर इतनी विभिन्न जातियाँ बन सकती हैं तो यह तो और भी अधिक नैसर्गिक है कि कई कई जातियाँ होनेसे उनके घात प्रत्याघातसे और भी अधिक सरलतासे नवीन जातियोंका निर्माण हो। जातियाँ अथवा व्यक्ति जितने अधिक होंगे विकास क्रममें उतनी ही अधिक सरलता होनी चाहिए। प्रकृतिका सरल पथकी अपेक्षा क्लिष्ट पथको ग्रहण करना—इसके लिये पर्याप्त कारण मिलना कठिन है और ठीक नहीं।

डार्विन साहबने कहा था कि जीव मात्र परस्पर झगड़ा करते हैं; एकको दबाकर दूसरा बढ़ना चाहता चाहता है, एक दूसरेके सहायक न होकर अवरोधक हुआ करते हैं प्राणि विज्ञानमें एक शब्द है सिम्बेओसिस (Symbiosis) जिसका अर्थ होता है सहकारी जीवन। कोई दो व्यक्तियोंका शरीर परस्पर एकमें सम्बन्धित हो जाता है और दोनों व्यक्ति एक दूसरे को आहारकी सामग्री प्रस्तुत किया करते हैं; एककी सहायतासे दूसरेके जीवनका निर्वाह होता है; इस प्रकारके द्विगुण के उदाहरण बहुत हैं और जीवन विज्ञानकी साधारण पुस्तकोंमें भी खोजने पर मिल जायेंगे। जीवजन्तुओंके लड़ाकू स्वभावके आगे यह सहकारिता कैसी। इनकी प्रचुरताके आगे इनको अपवादमात्र नहीं कहाजा सकता। अवश्यही इसका रहस्य और कुछ है! इतना ही नहीं। प्राणि समाजमें सामाजिक अनुभूति क्यों है? जाति प्रेम और सहकारी भावताका इतना आधिक्य क्यों है? जीवोंमें प्रतिस्पर्धा दृष्टिगोचर होती है, सही परन्तु जातीय प्रेम और सहकारिताकी मात्रा भी कुछ कम नहीं है।

परमार्थ, दया और सहानुभूतिके भाव व्यक्तिगत जीवनके लिए लाभदायक न होकर उलटे हानिकारक हैं। मानव जातिमें क्यों और कैसे उनका संचार और विकास हो गया? मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियोंकी मानसिक शक्तिमें बहुतही अधिक अन्तर है। निकृष्ट योनिके प्राणियोंमें उस मानसिक शक्तिका विकास न हो पाया जो मानव जातिमें कुछ सहस्र वर्षोंमें ही हो गया। मानव जातिके मानसिक विकासकी बात अपेक्षाकृत नवीन ही होगी फिर उन जातियोंका पता कहाँ है जिनकी मानसिक शक्ति बन्दर (apes) जाति और मानव जातिके मध्य श्रेणी की हैं। उनके अलोप और अभावका क्या कारण है। मनुष्यावतारके पूर्वकी जातियोंके चिह्न जिस बाहुल्यतासे पाये गये हैं उसके सम्मुख यहभी नहीं कह सकते कि उस समय प्राणिवर्गके चिह्न रह जानेकी सम्भावना कम थी क्या मानवजाति विकासके शिखर पर पहुँच चुकी है और आगे कोई शारीरिक विकास होनेकी सम्भावना नहीं है? यदि है तो उसके लक्षण कहाँ हैं। और यदि नहीं है तो इस विकास क्रमके रुकनेका कारण क्या है; और किस समय यह क्रिया बन्द हुई? इस प्रकार के अनेक प्रश्नोंको विकासवाद कुछ भी नहीं सुलझा सकता।

हिन्दीकी एक कहावत है कि "मारना न हो तो बल्ली उठाये।" यदि मेरा काम लाठीसे ब आसानी चल जाय तो मैं मारनेको क्रेन (Crane) से गर्डर (girder) उठाने न दौड़ूँगा। जहाँ एक पैसेसे काम निकलता हो वहाँ एक रुपया लगा बैठना कोई बुद्धिमानीका काम नहीं। फिर भी हम देखते हैं कि प्रकृति ऐसा ही करती चली जाती है। आँखें बहुतसे जीवोंके हैं। और बहुतसे चर्म चक्षुओंके न रहते भी प्रकाशका अनुभव करके उसके अनुसार अपने कार्य संचालन कर सकते हैं। उद्भिज जातिमें एक शक्ति है जिसको अंग्रेजोंमें हेलिओट्रोपिज्म (heliotropism) कहते हैं जिसका अर्थ होगा तेजावगाहन। चक्षुओंके न रहते भी यह प्रकाशको देखकर उसकी ओर आ जा सकते हैं अथवा अपने आपको प्रकाश पथसे बचा लेते हैं जीव जन्तुओंमें ही नहीं, वसु महाशयके अनुसार धातुओं तकमें प्रकाशके अनुभव करनेका गुण है। अब बतलाइये कि मनुष्य अथवा मनुष्येतर—उत्कृष्ट जातिके जीवोंकी आँखें किस कामकी। ये दोनों आँख बनावटमें इतनी जटिल हैं कि मनोविज्ञान, जीवन विज्ञान (Physiology) भौतिक विज्ञान तथा ऐनाटॉमी (Anatomy) से अनभिज्ञ मनुष्य उस जटिलताको अनुभव ही नहीं कर सका। जरा जरा में वह बिगड़ा करती हैं; जिसके कारण जान सदा खटकेमें रहती है। बताइये तो भला प्रकाश अनुभवके ऐसे सरल उपाय रहते प्रकृतिको ये क्या बेहूदापन सूझा कि आँखको आफतका पुतला बना दिया। इतना ही नहीं, विकासवादके सिद्धान्त पर जहाँ जीवन संग्राम और प्रतिस्पर्धाके क्षेत्रमें सामान्य इन्द्रियोंका सरल और सुरक्षित होना नितान्त उपयोगी है वहाँ ही इन्द्रियोंकी बनावट इतनी जटिल और अरक्षित है कि प्रकृतिकी समझ पर बिना दया किए

नहीं रहा जा सकता। आंख और कान उन्हींमें से दो उदाहरण हैं।

प्रकाश, तेज, शब्द इत्यादिको छोड़कर प्राणी वर्गके चारों ओर अनेक ऐसी शक्तियां है जिनके जाननेके लिए कोई भी इन्द्रिय उसके पास नहीं है। अपने शरीरके द्वारा न तो वह चुम्बकको पहचान सकता है और न विद्युतको। क्या ऐसी इन्द्रियोंका होना प्राणि मात्रके लिए नितान्त अनुपयोगी अथवा हानिकारक होता? या सृष्टि विकासमें कोई ऐसा अवसर ही नहीं आया कि उनके अनुभव करनेकी इन्द्रियोंके अंकुर उदय हुए हों? दोनों पर थोड़ा विचार करलें। चुम्बक शक्ति द्वारा दिशा ज्ञान बहुत ही निर्भ्रान्त हो जाता और दिशा ज्ञान जीव जन्तु तथा पक्षियोंके लिए कितना उपयोगी है उसके बतलानेकी आवश्यकता नहीं। प्राणियोंके चारों ओर नित्य विद्युत्के हानि और लाभकारक परिवर्तन हुआ करते हैं इनका ज्ञान प्राणियोंके लिए बहुत ही उपयोगी होता। निम्न जातिके कुछ प्राणियोंमें कहीं कहीं इस प्रकारकी इन्द्रियां मिलती हैं जिनसे विद्युत संचालन होता है। भूअवगाहन (geotropism) की भांति चुम्बकावगाहन (magnetotropism) की क्रिया भी हो सकती थी। परन्तु ये सब हुआ क्यों नहीं इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया जाता।

विकासवादके अनुसार प्राणियोंका शरीर संचालन और क्रिया सम्पादन उतनी ही मात्रामें होना चाहिए जितना उनकी प्राण रक्षाके लिए नितान्त आवश्यक है। परन्तु क्या सब जगह ऐसा ही होता है क्या लता, वृक्ष, जीव, जन्तु, पशु पक्षी ऐसे पले दर्जेके अर्थशास्त्री (Economists) हैं। फिर क्यों वृक्ष इतने भोजनका संञ्चय करते हैं जिसे वह पूरी तरहसे उपयोग नहीं कर पाते? क्या उनमें उतने ही फल फूल लगते हैं जितने उनकी जीवन रक्षाके लिए नितान्त आवश्यक हैं। पशु पक्षियोंके कल्लोल तो देखिए। उनकी इस क्रीड़ासे व्यर्थ ही कितनी शक्तिका ह्रास हो जाता है। खेल कूद और आमोद प्रमोद न केवल मनुष्य जातिमें ही परन्तु मनुष्येतर जातियोंमें भी इतने सर्व प्रिय और व्यापक क्यों हैं। प्राणिवर्गके जीवन व्यापारमें सबही कहीं तो आधिक्य और अतिरंजिता परिलक्षित होती है। हिरनके बच्चोंका खेलना, मोरका नाचना, गुलाबका फूलना, आमका फलना, चींटियोंका भोजन सग्रह, पशुओंका इन्द्रिय सेवन, और मनुष्यकी विषयवासना, धन संग्रह और खाना पीना, सभी तो मात्रासे अधिक होते हैं। न केवल सन्तानोत्पादन क्रिया ही (जैसा कि डार्विन साहबने बताया है) परन्तु शरीर सम्बन्धी सब प्रक्रियाओंको प्राणियोंकी नैसर्गिक प्रवृत्ति अतिकी ओर खींचे लिए जाती है जिसका रहस्य अभीतक विज्ञानविदोंने नहीं खोजा है।

प्राणियोंमें कोई हानिकर अंग अथवा क्रिया विकासके आगे रुक नहीं सकता। पतंग व्याकुल होकर दीप शिखाकी ओर दौड़ता है और न जाने किस धुनके पीछे ज्वाला मग्न होकर अपने प्राण उत्सर्ग कर देता है। उसका यह स्वभाव कितना प्राचीन है और प्राण नाशक होने पर भी उसका लोप क्यों नहीं हुआ। छिपकली की पूँछ कट जाने दीजिए चार दिनमें नई बन जाएगी। उसकी पूँछ इतनी कोमल होती है कि प्रायः कटती ही रहती है। इसमें क्या तथ्य है यह समझना बहुत कठिन है। किस शक्तिके सहारे पूँछ कटकर भी बढ़ आती है और विकासका उससे क्या सम्बन्ध है विकासवादमें इतनी असम्बद्धता का कारण?

प्राणियोंकी संख्या वर्तमान युगकी अपेक्षा पिछले युगोंमें कम होनी चाहिए वरन् जातियों और वर्गों की संख्या भी जैसे जैसे अतीतकालकी ओर बढ़ें न्यूनतर होती जानी चाहिए। परन्तु पुराविज्ञानकी अब तककी खोजसे यह बात तनिक भी प्रमाणित नहीं होती। इस अनुमान की स्पष्ट पुष्टता तक नहीं होती।

आजकल जीवोंकी उत्पत्ति जीवोंसे ही होती देखी जाती है। निर्जीवसे सजीवकी व्युत्पत्तिका अभी तक कोई भी निरापद तथा निशंक प्रमाण नहीं मिला।

पाश्च्यूरने एक भांति इस बातकी असम्भावना प्रयोग करके प्रमाणित कर दी है। आदि कालमें भी निर्जीव से सजीव सृष्टिका उत्पन्न होना नहीं माना जा सकता। यदि उस समय एक ही जीव था तो उसमें विकास भावना और विकास शक्तिके आनेका कारण? और यदि दो चार थे तो क्या वे सब एक साथ रहते थे और एक साथ रहनेका कारण? यदि पृथक पृथक रहते थे तो फिर वही पहिली कठिनता। इन सबका ठीक उत्तर क्या है?

जिस सन्निद्धता और चढ़ा ऊपरीकी बात इतनी जोरोंसे कही जाती है उसकी भी विवेचना करली जाय। किसी एक भरी पूरी जाति को लीजिए। उस जाति विशेषकी जितनी जन संख्या है उतनी उसके अंतर्गत उपजातियोंकी अथवा अनिर्णीत जातियों की नहीं। उसके निकटतम दूसरी जातियों में सख्या की फिर वही बाहुल्यता है और इन दोनों के बीचमें इने गिने कुछ प्राणी रह जाते हैं। प्राणी संसारके एक छोरसे लगाकर दूसरे छोर तक यदि इसी प्रकारगणित करके उस भावको गणित लेखन (graphically) द्वारा प्रकट किया जाय तो उसकी आकृति नीचे लिखी जैसी होगी। पड़ी रेखासे संख्या और खड़ीसे जातियों का बोध समझना चाहिए।

(अ)　　जातियों में व्यक्तियों की संख्या　　(आ)
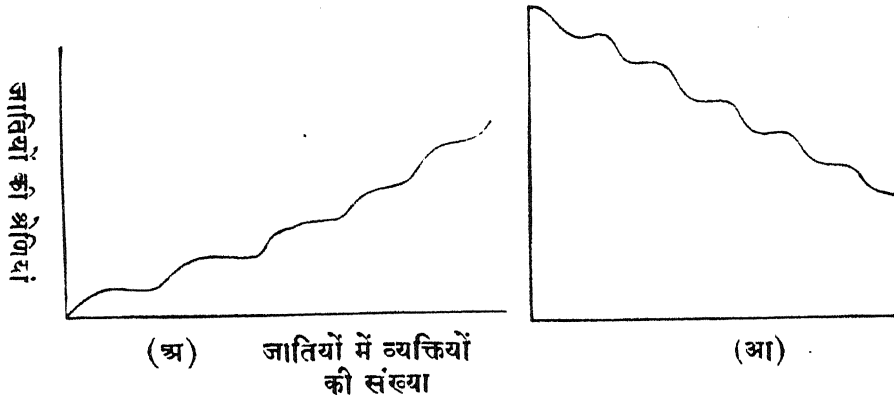
ऊपर जिस भावका चित्रण किया गया है वह केवल अनुमानिक है परन्तु काल्पनिक नहीं है। यदि जातियोंमें गणना की जायतो उससे इसी अनुमानकी पुष्टी होगी। गणितके अनुसार प्रत्येक उच्चबिन्दुसे एक स्वतन्त्र मात्राका बोध होता है—इस सन्निद्धताको विषम सन्निद्धता (discontinuous continuity) कहना उपयुक्त होगा। इसके विपरीत सिद्धान्तके अनुसार यह सन्निद्धता सम (Continues) होनी चाहिये।

जब प्रतिद्वन्दतामें भोजनही सब विग्रह और उत्पात तथा नाशका मूल है तो उसका एक प्रतिकार बहुत सरल तथा सुविधा जनक है। जहाँ भोजन कम मिलता है अथवा कठिनतासे मिलता है वहाँ मित-भोजी अवश्यही जीवमें रहेगा। इसी प्रकार क्रम क्रम से भोजन कम करते करते प्राणी उस सीमा तक पहुँच जाने चाहिए जहाँ उनको नाम मात्रके भोजन की आवश्यकता पड़े अथवा ऐसे भोजनसे काम चल जाय जिसके लिए न तो अधिक संघर्ष हो और और न मिलनेका सन्देह। वायु एक ऐसी वस्तु है जो प्रत्येक प्राणीको बिना परिश्रम किए सब कहीं मिल सकती है और इस कारण उच्चतम श्रेणीके जीवोंको केवल वायु भोजी होना चाहिए; जैसा कि देखनेमें नहीं आता।

भोजन प्रस्तुत करनेकी सामर्थ्यके अनुसार प्राणियोंकी जीवित रहनेकी योग्यताका निर्णय किया जाता है परन्तु खोजने पर ऐसी बहुत जातियाँ मिल

जायँगी जो इस अर्थमें अयोग्य होते हुएभी अभी तक जीवित हैं। फिर जिस प्रकिया द्वारा योग्यता का निर्णय होता है क्या उसमें विकास नहीं होगा? अवश्य होता है। एक युगमें किसी गुणकी प्रधानता जीवन सामर्थ्य हो र नई उत्पत्ति होनी चाहिए। इस प्रकार जातियोंका सम्बन्ध टूट टूट कर सदा नई जातियाँ आती रहेंगी।

परोप जीवी चपटे कृमि

[ले० श्री रामचन्द्र भार्गव एम० बी० बी० एस०]

(गतांक से आगे)

वि. मैनसनी

नर—१ श. मी. लम्बा होता है। उदरीय चूषणकके पीछे शरीरपर वि. रक्तीयके अपेक्षा अधिक बड़े और स्पष्ट दाने लगे रहते हैं। अन्त्र उदरीय चूषणक परही विभाजित हो जाती है परन्तु अन्त्र की शाखायें शीघ्रही शरीरके पूर्वीय भागमें फिर मिल जाती हैं और उनके मिलनेसे एक लम्बी अन्धान्त बन जाती है। जनन संस्थान ८—९ अण्डकोषोंका बना हुआ होता है, ये अण्डकोष उतनेही शुक्र वहिकारिणी नाड़ियों द्वारा शुक्राशयमें खुलते हैं।

मादा—१·५ श. मी. लम्बी होती है; नरकी तरह अन्त्रकी शाखायें पूर्वीय भागमें ही फिर मिल जाती है। डिम्बग्रन्थि अन्त्रकी शाखाओंके मिलाके सामनेही लगी होती है इस कारण गर्भाशय बहुत छोटा होता है और उसमें बहुतही कम और अधिकतर एक ही बगलमें कांटे लगा अण्डा उपस्थित रहता है। अण्डेका कांटेवाला अन्त पीछेकी ओर होता है। अण्डद्रव्यग्रन्थि शरीरके पिछले दो-तिहाई भागमें विस्तृत रहती है। अण्डे कभी कभी वि. रक्तीयसे छोटे होते हैं। कांटा इनकी बगलमें लगा होता है।

इस कृमिके मध्यस्थ आतिथ्यकार प्लेनोर्बिस घोंघे होते हैं।

संक्षेपमें वि. रक्तीय और वि. मनसनीमें अन्तर यह पाये जाते हैं—वि. मैनसनीके नर कुछ छोटे होते हैं और उनके शरीरके दाने कुछ बड़े होते हैं, वि. मैनसनीकी अन्धान्त अधिक लम्बी होती है। अण्डकोषोंकी संख्या ८—९ होती है। डिम्बग्रन्थि बहुत पूर्वमें लगी होती है इस कारण गर्भाशय बहुत छोटा होता है और उसमें अण्डे एक या दो ही उपस्थित रहते हैं। वि. मैनसनीके अण्डे कुछ छोटे होते हैं और कांटा बगलमें लगा होता है। वि. मैनसनीके अण्डे मलमें निकलते हैं और मूत्रमें बहुत ही कम अवसरों पर। भ्रूण की लाला ग्रन्थियां शरीर के आकारको ध्यानमें रखते हुए अन्य दो मानुषी विकृतमुखियोंकी लालाग्रन्थियोंकी अपेक्षा बड़ी पाई जाती हुई कही जाती हैं। वि. मैनसनीके पुच्छिन वि. रक्तीयके पुच्छिनोंकी अपेक्षा कुछ छोटे होते हैं और उनका उदरीय चूषणक इतना स्पष्ट नहीं होता।

वि० जापानी

नर—९-१२ स. मी. लम्बा—शरीर चिकना होता है और उस पर दाने नहीं होते हैं। चूषणकोंमें छोटे छोटे कांटे लगे होते हैं। पाचन प्रणाली उदरीय चूषणक पर दो शाखाओंमें विभाजित होती है और बहुत पीछे जाकर फिर मिलती है। अन्धात्र शरीरके ¼ से ⅓ वें तक विस्तृत रहती है। जननसंस्थान ६-८ अण्डकोषों का बना होता है और एक बड़ा शुक्राशय भी उपस्थित रहता है।

मादा—१२ स. मी. लम्बी होती है। नरकी तरह पिछले भागमें ही अन्धात्र आरंभ होती है। डिम्बग्रन्थि शरीरके बीचमें और अन्धात्र के आरम्भके सामने लगी होती है। अण्डद्रव्य ग्रन्थि अधिक विस्तृत रहती हैं। गर्भाशय बड़ा होता है और शरीरके पूर्वीय भागमें विस्तृत रहता है। उसमें ५० अथवा अधिक अण्डे उपस्थित रह सकते हैं। अण्डे अण्डा-

कार होते हैं। उनमें बहुत ही छोटा बगली कांटा भी लगा रहता है।

वि. जापानी साधारण रचना में वि. रक्तीयसे बहुत मिलता है। वि. रक्तीयके सदृश दोनों चूषणक पास पास लगे होते हैं। पीछेवाला चूषणक कुछ लटका रहता है और अधिक कीपके समान रहता है। नर और मादा दोनोंके चूषकों और नरके शरीरके उदरीय पृष्ठ पर छोटे छोटे कांटे लगे होते हैं। वि. जापानीका आकार, पीछेवाले चूषणकका मुखीय चूषणकसे अधिक बड़ा होना और दोनों चूषणकोंका वि. रक्तीयके चूषणकोंसे बड़ा होना भी वि. जापानीके विशेष लक्षणोंमें गिन सकते हैं। नरमें त्वचा चिकनी और बिना दानेदार होती है, नरमें शरीरका पिछला भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है और वि. रक्तीयकी अपेक्षा पार्श्विक भाग एक दूसरे पर अधिक लगे होते हैं। आहार पथमें दो फुलान होती हैं। पाचन प्रणालीकी शाखायें वि. मैनसनीके सदृश उदरीय चूलणक पर ही निकलती है परन्तु उनसे मिलकर अन्धान्त्र बहुत पीछे बनती है। बहिष्करण संस्थान दो अन्वायाय नलियोंका बना होता है और वे पीछे पीठ पर स्थित छिद्रसे बाहिर खुलती है।

नरके छ अण्डकोष उदरीय चूषणकके पीछेही लगे होते हैं। शुक्र प्रवाहिनियोंके मिलनेसे एक नली वन जाती है कि जो उदरीय चूषणकसे पश्चिम खुलती है। एक बड़ा शुक्राशय भी पाया जाता है।

मादी नरसे बहुत पतली होती है, डिम्बग्रंथि शरीरके बीचमें होती है। आन्धान्त्र उसके पीछेही आरम्भ हो जाती है। लगभग पिछले अन्त्र तक शरीर अण्डद्रव्यग्रन्थिसे भरा रहता है। गर्भाशयभी शरीरके पूर्वीय भागमें रहता है उसमें ५०-३०० अण्डे उपस्थित रह सकते हैं।

छोटी छोटी अन्त्रधारकीय रक्त प्रवाहिनियाँ, विशेषतः जिनका सम्बन्ध वृहत् अन्त्रसे होता है, इस कृमि का निवास स्थान है। अप्रौढ़ कृमि संयुक्ता शिरा और शिराओंमें भी पाई जा सकती है और आमाशय, क्षुद्र अन्त्रकी शिराओंमें और हृदय की (Coronary) धमनी तकमें पाई जा सकती है। गोरुओंमें (मनुष्यमें कभी नहीं) फुप्फुसीय धमनीमें भी यह कृमि अप्रौढ़ अवस्थामें पाया गया है। इस कृमिकी जीवन-अवधि वि. रक्तीय की जीवन अवधि के बराबर रहती हुई जान पड़ती है।

इस कृमिके अण्डेभी रक्त प्रवाहिनियोंमें वि. रक्तीय, और वि. मैनसनीके सदृशही निकलते जान पड़ते है। यह कृमि मुख्यशः अन्त्रकी भीत, यकृत् क्लोममें और लसीका ग्रन्थियोंमें पाई जाती है। अण्डोंमें कांटे का प्रतिनिधिस्वरूप छिलकेमें एक गड्ढेमें एक बहुतही छोटा अंकुर उपस्थित रहता है। तन्तुमें से निकलनेमें लगते हुए समयमें इनके आकार की कुछ वृद्धि हो जाती हुई बताई जाती है।

अण्डे रीढवाले आतिथ्यकारके मलमें निकलते हैं। इस प्रकार वह पानीमें मिल जाते हैं। पानी में रोमयुक्त भ्रूण निकल आता है। उसकी लाला ग्रन्थियाँ वि. मैनसनी और वि. रक्तीय के भ्रूण की लाला ग्रन्थियोंकी अपेक्षा छोटी होती है १९१३ में मियैरी और सुजुकीने वि. जापानीके के विषयमें यह अनवेषण किया कि मीठे पानीके घोंघेमें पहुँच कर उसके रोम तो गिर जाते हैं और वह जनन-स्यूतका रूप धारणकर लेते हैं। घोंघेके यकृत् और उभय लिंगीय ग्रन्थिमें जनन स्यूतसे चिरीदुमके पुच्छिन् बनते हैं। वि. जापानीके पुच्छिन् वि. रक्तीय और वि. मन्सनीके पुच्छिनोंसे छोटे होते हैं। उनके शरीर पर छोटे छोटे कांटे होते हैं। मुखीय चूषणक बहुत अच्छी तरह बना होता है और शरीरके पूर्वीय तिहाई भाग भरमें वह लगा होता है। अन्य विकृत मुखी पुच्छिनोंके सदृश किनारे किनारे छोटे छोटे अंकुर लगे होते हैं। लालाग्रन्थियोंके पांच जोड़े पाये जाते हैं। प्रौढ़ावस्था पहुँचने पर पुच्छिन् पानीमें निकल आते हैं और फिर अब उन्हें अवसर मिलता है तब ये पुच्छिन् किसी उपयुक्त रीढवाले प्राणी मेरे मनुष्य, बिल्ली, कुत्ता, चूहा इत्यादिमें प्रवेश कर जाते

हैं। वि. जापानीके जनन-स्यूत अन्य दो विकृतमुखियों के जननस्यूतोंसे अधिक कोमल और लम्बे रहते हुए कहे जाते हैं।

हिपसोबिया नोसोफोरा कंया तिलकीय (पेक्टिन ब्रे खियेट) श्रेणी की हाइड्रोबीडी उपश्रेणीका घोंघा होता है। उसका रंग काला भूरा होता है, वह शंकाकार होता है और उसका छिद्रका दाहिनी ओर होता है। यह घोंघा याँगटसी नदीके किनारेके देशों और जापानमें पाया जाता है। यह घोंघा ६·७-९. स. मी. लम्बा और २-४—३-४ स मी. चौड़ा होता हैं। इनके सर्पिलमें ८-८½ चक्र पाये जाते हैं।

मानुषी विकृत मुखियों की पहिचान की सारिणी

प्रौढ़	वि. रक्तीय	वि मन्सनी	वि. जापानी
नर	लम्बाई १·२ श. मी	लम्बाई १. श. मी.	लम्बाई ०.९ श. मी.
	चौड़ाई १ स. मी	चौड़ाई १·२ स. मी	चौड़ाई ०·६ स मी.
	शरीर पर दाने छोटे	दाने बड़े	दाने अनुपस्थित
	अण्डकोष, बड़े अण्डकोष की संख्या चार,	अण्डकोष छोटे, अण्डकोषों की संख्या आठ, उदरीय चूषणक अधिक स्पष्ट।	अण्डकोष आठ,
मादी	लम्बाई २ शमी	लम्बाई १·५ श. मी.	लम्बाई १·२ श. मी.
	चौड़ाई ०·२५ स मी	चौड़ाई ०·१६ स मी.	चौड़ाई ०·४ स.मी.
	डिम्बगन्थि पश्चिमीय तिहाई में अन्त्र की शाखाओं के सामने, गर्भाशय में बहुत से अण्डे जिनके अन्त पर कांटा लगा हुआ। अन्त्रकी शाखायें शरीर के लगभग बीच के भाग में मिलती हुई। अण्ड-द्रव्य ग्रन्थि पश्चिमीय चतुर्थ भाग में।	डिम्बग्रन्थि शरीर के पूर्वीय अर्द्ध में अन्धान्त्रों के सामने। गर्भाशय में अण्डे एक से तीन तक बगली कांटा लगे। अण्डद्रव्य ग्रन्थि शरीर के पश्चिमीय भाग में विस्तृत।	डिम्बग्रन्थि शरीर के बीच में स्थित। गर्भाशय पूर्वीय भाग में स्थित। गर्भाशय में ३०० तक पक्के अण्डे उपस्थित रहते हैं। अण्ड द्रव्य ग्रन्थि शरीर के पश्चिमीय भाग में विस्तृत।

	वि. रक्तीय	वि. मैनसनी	वि. जापानी
अण्डेकी नापें	१६०μ लम्बा ४० से ६०μ चौड़ा	१४०-१५०μ लम्बा ६०-७०μ चौड़ा	७०-७५μ लम्बा ४०-४५μचौड़ा
रूप	अण्डाकार;	अण्डाकार	गोल
कांटा	अन्त पर लगा	बगल में लगा (पार्श्विक)	कांटा अनुपस्थित एक छोटा अंकुर लगा
बाहिर निकलनेका पथ	मूत्र और बहुत ही कम अवसरों पर मल	मल और बहुत ही कम अवसरों पर मूत्र	केवल मल
पुच्छिम् पार्श्विक दृष्टि से कैसा दिखता है	उदरीय चूषणक बहुत निकला	उदरीय चूषणक बिल्कुल नहीं निकला रहता है	उदरीय चूषणक बहुत कम निकला रहता है
लालाग्रन्थिये	तीन जोड़े, बड़े और आम्लिक रंगों से रंजनशील	छ जोड़े दो बड़े और चार छोटे	पांच जोड़े छोटे और कणीय
मध्यस्थ आतिथ्यकार	बुलिनस घोंघे	प्लेनार्बिस	हिप्सोबिया
भौगोलिक विस्तार	चीन, जापान फिलीपीन द्वीप इत्यादि समीपवर्ती देशोंमें	मिश्र मध्य और पश्चिमी अफ्रीका दक्षिण अमेरिकामें ब्राजिलमें	अफ्रीकामें मिश्र नेटाल, रोडेसिया, मौरक्को, मरीच टापू और ऐशियामें फारस मसोपोटेमिया इत्यादिमें

परागोनिमस वेस्टरमनी

भौगोलिक विस्तार—प. वेस्टरमनी का विस्तार चीन, जापान, कोरिया फारमोसा और फिलिपाईन द्वीपोंमें ही सीमा-बद्ध है।

परोपजीवीका वर्णन—इसका रंग बादामी पाया जाता है, यह मोटा और गूदेदार होता है और अण्डाकार होता है। इसकी मुटाई इतनी अधिक होती है कि व्यत्यस्तकाटमें वह लगभग गोल पाया जाता है। इसकी लम्बाई ८-२० स. मी. होती है और चौड़ाई ५·१ स. मी. यह चौड़े पत्ते के सदृश कांटोंसे ढका रहता है। पूर्वीय अन्त मोटा गोल होता है और उसमें शिरीय शंकु अनुपस्थित रहता है। मुखीय चूषणक अन्त पर अथवा अन्तसे कुछ दूर लगा होता है। उदरीय चूषणक मुखीय चूषणकसे कुछ बड़ा होता है और शरीरके बीचके पूर्वमें लगा होता है। कंठ कुछ लम्बा होता है, परन्तु आहार पथ बहुत छोटा होता है। इसलियेही अन्त्रकी उदरीय चूषणकके पूर्व में ही उसकी शाखें हो जाती हैं। अन्त्रान्त्रें टेढ़ी मेढ़ी होती हुई पिछले अन्त तक पहुँच जाती हैं। जननछिद्र उदरीय चूषणकके पश्चनीय किनारेके समीप खुलता है। अण्डकोष निकली हुई नलियोंके बने होते हैं। एक अण्डकोष दूसरेके कुछ पच्छिममें लगा होता है। डिम्बग्रन्थिमें से भी नलियें निकली होती हैं और वे उदरीय चूषणकके कुछ पीछे दाहिनी अथवा बाँई ओर लगी होती है। छिलका ग्रन्थि उठानोंदार होती है और गर्भाशय छोटा और भरा हुआ होता है। अण्डद्रव्य ग्रन्थियें किनारे पर लगी होती हैं और बड़ी विस्तृत होती हैं। लौररकी नलिका भी उपस्थित रहती है।

जीवन-इतिहास—बहुत वर्षों तक यह नहीं ज्ञात हो सका कि परोपजीवी मनुष्य में कैसे घुसता है। अन्य समान परोपजीवियोंके जीवन इतिहासों पर विचार करने पर यह अनुमान होता था कि मनुष्यके बलगम में निकले अण्डे दरिया, तालाब, कुँये इत्यादि में पहुँच जाते हैं। उनमें से भ्रूण निकलनेके पश्चात् वह किसी अज्ञात घोंघावर्गियोंमें घुसजाता है परन्तु इसके आगे कुछ और अनुमान न किया जा सका। नाकागावा, कत्कामी, मियाईरी, योशीदा, कोबायाशी और अन्य जापानी निरीक्षकोंने यह मालुम किया कि भ्रूण मीठे पानीके घोंघेमें घुसता है और अधिकतर मिलेनिया जातिके घोंघोंमें। कमसे कम छ प्रकारके घोंघे इस परोपजीवीके मध्यस्थ आथित्यकारी सिद्ध होते हुए पाये गये हैं। इनमें जननस्यूत और रुष्टि बनती है जिनसे फिर पुच्छिन् बन जाते हैं। कुछसमय पश्चात् पुच्छिन् जलमें निकल आते हैं और फिर मीठे पानीके केकड़े और झींगा मच्छलियोंमें घुस जाते हैं। यकृत्, पेशी और विशेषतः तिलकोंमें पहुँचकर वे कवच धारण कर लेते हैं। भिन्न स्थानोंमें केकड़े और झींगा मच्छलियोंमें इन कवचोंकी संख्या बहुत भिन्न पाई जाती है। एक ही प्राणीमें एक सहस्र तक कवच पाये जा सकते हैं। यह संख्या केकड़ेकी वयस और दूषित जलमें निवासके समय पर भी निर्भर है। कवच युक्त पुच्छिनोंका व्यास ०·२ स.मी.के लगभग होता है। उनमें बहुत स्पष्ट बहिष्करण थैली पाई जाती है। उदरीय और मुखीय चूषणक भी स्पष्ट होते हैं और उनमें कांटे लगे होते हैं परन्तु पाचन प्रणाली नहीं पहिचानी जा सकती है। जब इन कवचोंको बिल्लियों में प्रवेश करा दिया जाता है उनका विकास बड़ी शीघ्रतासे होता है। कवच पाचन प्रणालीके ही द्वारा प्रवेश कराये जा सकते हैं अथवा सीधे उदरीय परिविस्तृत झिल्ली विवरमें चढ़ा दिये जा सकते हैं। वे ९६ घंटे में उरप्रदेशीय अवयवोंमें पहुँच जाते हैं और आठ दिन पश्चात् खून का वमन आरम्भ होने लगता है। मनुष्यकी छोटी अन्त्र के नीचे वाले भागमें पहुँच कर पुच्छिन् २४-४८ घंटेमें अपने कवचसे निकल आते हैं। फिर अन्त्रकी भीतमें से होते हुए पुच्छिन् परिविस्तृत झिल्ली के विवरमें पहुँच जाते हैं कुछ उर-उदर मध्यस्थ पेशी में से होते हुए फुफ्फुस में पहुँच जाते हैं। कुछ यकृत् पेशी और अन्य तन्तुओंमें प्रवेश कर जाते हैं। ६० दिनमें वे प्रौढ़ावस्था को पहुँच कर अण्डे निका-

लने लगते हैं। यह अभी अच्छी तरह ज्ञात नहीं है कि केकड़ेमें से पुच्छिन् मनुष्य तक किस प्रकार पहुँचते हैं। जापानमें तो कच्ची मच्छली भी खाली जाती है और इस प्रकार भी इन पुच्छिनोंको मनुष्य तक पहुँचनेकी सम्भावना हो सकती है परन्तु कोरिया और फारमोसाके निवासी कच्ची मच्छली नहीं खाते परन्तु वहां के भी कुछ भागोंमें मनुष्योंमें यह परोपजीवी पाया जाता है। यह भी हो सकता है कि केकड़ेमें कवच बनना इस परोपजीवीके जीवन इतिहासका आवश्यक भाग न हो और पुच्छिन् उसी प्रकार मनुष्यकी त्वचाको भी पार कर सकते हों जैसे कि वे केकड़ेकी त्वचाको पार करते हैं और मनुष्यमें यह परोपजीवी उसी प्रकार फैलता है जैसे कि तीन प्रकारके विकृतमुखी। अण्डे अण्डाकार होते हैं। उनका रंग बादामी होता है और उनकी लम्बाई ८५—१००μ होती है और चौड़ाई ५०-६७μ।

निम्न लिखित केकड़ोंमें इस परोपजीवी के पुच्छिन पाये जा चुके हैं:—पोटामोन ऑबट्यूसीपेस पो० डेहानी, एरीओशिर जापानी, ए०......सीनेनसिस सीसारमा डेहानी। झींगा मच्छलियोंमें असटेकस जापानी में इस परोपजीवीके पुछिन् पाये जा चुके हैं।

फीतेसम.

फीतेसम कृमि लम्बे और अधिकतर खंडमय चिपटे कृमि होते हैं। उनका रंग सफेद अथवा पीला होता है, मुँह और पाचन प्रणाली अनुपस्थित रहती है और सामनेके अन्त पर आतिथ्यकारके शरीरमें लगे रहनेके साधन उपस्थित रहते हैं। कृमिका शरीर खंडोंकी शृंखलाका बना होता है और उसके सामने वाले अन्त पर शिर लगा होता है। शिर और खंड-शृंखलाके बीचमें एक कम चौड़ी ग्रीवा भी होती है। शिरमें चूषणक और कांटोंके मण्डलोंके रूपमें आतिथ्यकारके लगे रहनेके साधन उपस्थित रहते हैं कांटो के मण्डल एक थोड़ी निकली हुई चोंच पर लगे होते हैं। ग्रीवासे पीछेकी ओर खंडोंका आकार बड़ा होता जाता है अर्थात् सबसे पिछले खंड अधिकतम प्रौढ़ होते हैं और ग्रीवाके समीपवर्ती खंड अप्रौढ़ होते हैं। प्रौढ़ खंडोंमें मोटे ओष्ठों से घिरे हुए १ या २ जनन

हाईमेनोलेपिस नाना

छिद्र विद्यमान रहते हैं। भिन्न जातिके कृमियोंमें जनन छिद्रोंका स्थान भी भिन्न रहता है। प्रत्येक खंड के भीतर कोमल तन्तु भरी रहती है कि जिसमें अन्य अवयव पड़े रहते हैं।

वात संस्थान सामनेवाले भागमें शिरके समीप लगी वात अंगूठीके रूप रहता है कि जिससे अन्वायाय शाखायें निकलकर खंडोंके किनारों समान्तर होती हुई पीछे की ओर जाती हैं और इनसे सब अवयवोंको शाखायें जाती हैं।

वहिष्करण संस्थान शाखिन् नलियोंके जालका बना होता है कुल शृंखला भरमें नाड़ियोंके साथ-साथ अन्वायाय वहिष्करण प्रणालियांभी उपस्थित रहती हैं।

जननसंस्थान केवल प्रौढ़ खंडोंमें ही पूर्णतः बना होता है। प्रत्येक खंड द्विलिङ्गीय होता है और उसमें नर और मादा दोनों प्रकारके अवयव विद्यमान

रहते हैं। नर अवयव बहुतसे छोटे छोटे गोल अंड-कोषोंके बने होते हैं। प्रत्येक अंडकोषसे एक प्रणालिका निकलती है और इन प्रणलिकाओंके मिलनेसे शुक्रप्रणाली बनती है जो कि जनन छिद्र में अन्त हो जाती है। उसका आंतिक भाग सर्पिलके रूपमें एक थैलीमें पड़ा रहता है जो कि शिश्नके सदृश निकाली जा सकती है और इस थैलीमें कुछ कांटे भी लगे रह सकते हैं। मादाके अवयव उठानोदार डिम्बग्रन्थि और समीपवर्ती अंडद्रव्य ग्रन्थिके बने होते हैं। अंड प्रणालीमें अंडद्रव्यप्रणालीभी आकर मिल जाती है और फिर वह नलीनुमा गर्भाशयमें खुलती है। गर्भाशयसे बहुतसी शाखायें निकली हो सकती हैं। छिलका ग्रन्थि अंडप्रणालीके समीप ही लगी होती है। योनिका आन्तिक भाग शुक्र-ग्राहकका काम देनेके लिये खोखला होता है।

जीवन वृत्तान्त—फीतेसम साधारणतः अपने आतिथ्यकारकी पाचन प्रणालीमें रहते हैं और विशेषतः छोटी अन्त्रमें यहां पर अपने शरीरके पृष्ठ द्वारा यह पर्याप्त भोजन सोख लेते हैं। नर ग्रन्थियां पहिले पकती हैं और शुक्राणु उसही अथवा समीपवर्ती खंड की योनिमें प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकार डिम्बग्रन्थि से निकले डिम्ब अंडद्रव्य और छिलकेसे समपन्न होकर गर्भाशयमें पहुँचते हैं और इसही लिये वे गर्भाशयमें भरे हुए मिलते हैं। जब एक खंड पक्के अण्डोंसे भर जाता है तो वह टूटकर मलमें निकल जाता है। अधिकतर तो अण्डे गोल अथवा कुछ अण्डाकार, और रंगमें पीले अथवा बादामी होते हैं। द्विरन्ध्र शिरीवर्गीयोंमें अण्डे अण्डाकार होते हैं और उनमें ढक्कन भी होता है पानीमें पहुँचकर अण्डेसे रोमयुक्त गोला बन जाता है कि जिसमें तीन जोड़े भ्रूणीय कांटे लगे रहते हैं। इस कांटेदार गोले का और विकास केवल उसही समय हो सकता है कि जब वे किसी दुग्धपा अथवा अकशेरूधारी मध्मस्थ आतिथ्यार द्वारा खा अथवा पी लिया जाय इस आतिथ्यकारकी पाचन प्रणालीमें पहुँच कर अण्डे का भीतरी छिलका अर्थात भ्रूणाच्छादन तो पचालिया जाता है और कांटेदार गोला मुक्त हो जाता है। फिर यह गोला कांटोंकी सहायतासे रक्त प्रवाहिनियों द्वारा उन अवयवों तक पहुँच जाता है जहाँ उसका और विकास सरलतासे हो सके। यहाँ पर यह ठहर जाता है और इसके भ्रूणीय कांटे भी नहीं रहते। आतिथ्यकारकी समीपवर्ती तन्तुओंमें संताप उत्पन्न होनेके कारण उसके चारों ओर एक थैली बनना आरम्भ हो जाती है।

भ्रूणसे कृमिल कई प्रकारसे बन सकते हैं:—

१—ठोस-उपपुच्छिन् यह फीतेके समान ठोस पिण्ड होता है जो कि भीतर धसे हुए शिरका बना होता है।

२—उस्यूत पुच्छिन्—यह एक द्रवसे भरी हुई थैली होती है जिसकी भीतके भीतरी पृष्ठसे शिर उगते हैं। यदि थैली अच्छी तरह बनी हो और कृमिल में पुच्छ भी हों तो उस कृमिलको स्यूतपुच्छिन कह सकते हैं और जब थैली अच्छी तरह बनी होती है और पुच्छ अनुपस्थित रहती है तो उस कृमिलको असली उपस्यूतपुच्छिन कह सकते हैं। उपस्यूत पुच्छिन्की तीन प्रकारें वर्णनकी गई हैं:—

(१) असली उपस्यूतपुच्छिन् जिसमें एक ही विवर और एक ही शिर होता है।

(२) बहुशिरी थैली (सिन्यूरस) जिसमें थैलीमें विवर तो एकही होता है परन्तु उसमें शिर बहुतसे लगे होते हैं।

३—बच्चियों युक्त उपस्यूत जिसमें बच्ची थैली भी बनती है और इनमें प्रत्येकमें बहुतसे शिर विद्यमान रहते हैं।

थैलीमें बन्द कृमिल मध्यस्थ आतिथ्यकारकी तन्तुओंमें बहुत समय तक रह सकते हैं परन्तु जब तक अपने अन्तिम आतिथ्यकार तक न पहुंचे तब तक उनमें और अधिक विकास नहीं हो सकता फिर थैली तो पचाली जाती है परन्तु कृमिलका शिर और ग्रीवा पाचन क्रियाको सह सकते हैं और अन्त्रमें पहुँचकर अपने को अन्त्रकी भीतसे लगा लेते हैं। कुछ थोड़े समय पश्चात् ही वे प्रौढ़ावस्थाको भी पहुँच जाते हैं।

समूह	लक्षण	जाति	उपमा
फीतावर्गीय—शिर में चार चूषणक होते हैं और एक अथवा अधिक मण्डल काँटों का लगा हो सकता है	जनन छिद्र प्रत्येक अगले खंड में बारी बारी से एक एक पार्श्विक किनारे पर —	फीता (टिनिया)	फी. कद्दू दाना फी. गोमांसी फी. बबी युक्तस्थूत
	जनन छिद्र सब खंडों में एक ही ओर के पार्श्विक किनारे पर, गर्भाशय लम्बा	हाईमेनोलेपिस	हा. नाना हा. छोटा
	जनन छिद्र सब खंडों में एक ही ओर के पार्श्विक किनारे पर, गर्भाशय नालियों के रूप में	डवेनिया	ड् मडगसकरी
	प्रत्येक खड में दो जनन छिद्र प्रत्येक खंड में जननेन्द्रियों के दो क्रम	डिपिलिडियम	डि. श्वानी
द्विरन्ध्रशिरीवर्गीय शिर में कांटें अथवा चूणणक अनुपस्थित दो दरारें शिर में बनी होती हैं। प्रत्येक खंड में एक अथवा दो गर्भाशयी छिद्र रहते हैं। नर और मादी जनन छिद्र पृथक् पृथक् बीच में रहती हैं	बीच में स्थित जनन छिद्रों का एक क्रम उपस्थित	द्विरन्ध्र शिरी स्पार्गनम ऐसे कृमिल रूपों के लिये सामूहिक नाम है, जिनकी प्रौढ़ावस्था का ठीक ज्ञान नहीं है, सम्भवतः द्विरन्ध्रशिरी हो सकता है।	द्वि. सपाट और द्वि मैनसनी के मनुष्य में पाये जाने वाले ठोस उपपुच्छिन् स्पा. प्रोलीफेरम
	मध्यस्थ रेखा से बाहिर की ओर कुछ दूरी पर स्थित जनन छिद्रों के दो क्रम	द्विजननछिद्री	द्वि. महान

फीता कद्दूदाना

निवास—अन्त्रके पूर्वीय भागमें

भौगोलिक विस्तार—यह कृमि संसार भरमें पाया जाता है। जहाँ जहाँ सुअर पाया जाता है। यह कृमि भी पाया जाता है। मुसलमान यहूदी इत्यादि उन जातियोंमें यह कृमि नहीं पाया जाता है कि जिनमें सुअरका मांस नहीं खाया जाता है। इसही कारण यह कृमि उन देशों के निवासियोंमें नहीं पाया जाता है जिनका मुख्य मत इस्लाम है।

परोपजीवी—यह क्षुद्रान्त्रके ऊपरी तिहाई भागमें लगा हुआ पाया जाता है और अधिकतर २-३ मीटर लम्बा होता है परन्तु कभी कभी ८ मीटर अथवा अधिक लम्बा भी हो जा सकता है। शिर गोल और

फी. कद्दूदाने का शिर

कुछ कुछ चौकोर होता है और इसका व्यास लगभग १ स. मी. होता है। चोंच छोटी होती है और उसपर २५-५० काँटोंके दो क्रम लगे होते हैं। चार चूषणक लगे रहते हैं जो गोल होते हैं और जिनका व्यास १/२ स. मी. होता है। सामनेके खंड छोटे होते हैं परन्तु लम्बाईकी अपेक्षा उनकी चौड़ाई अधिक होती है। अधिक प्रौढ़ खंड इसके उलटे होते हैं १२ स. मी. लम्बे और ६ स. मी. चौड़े होते हैं। प्रत्येक खंडके किनारे पर एक जनन छिद्र होता है कि जिसके ओष्ट मोटे होते हैं। जनन छिद्र बारी बारी एक खंडकी एक बगलके किनारे पर और फिर अगले खंडकी दूसरी बगलके किनारे पर स्थित रहते हैं। गर्भाशय बीचमें स्थित
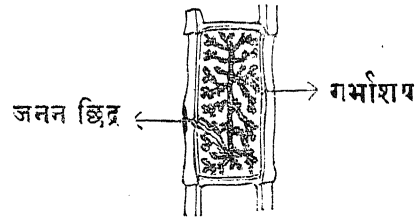
फी. कद्दूदाने का एक खंड

रहता है और उसमें ७-१० तक शाखें लगी रहती हैं। अण्डे गोल अथवा कुछ अण्डाकार होते हैं। उनका व्यास ३१-५६ μ होता है। अण्डों पर एक आच्छादन चढ़ा रहता है कि जिसके भीतर किरणोंदार ६ काँटों युक्त काँटेदार गोला रहता है।

जीवन इतिहास—४-६ प्रौढ़ खंड एक साथ टूटकर मलके साथ बाहिर निकल आते हैं। इन खंडोंके नाश होनेकी क्रियामें इनके भीतर भरे अण्डे विमुक्त हो जाते हैं। ये अण्डे दूषित जल अथवा खाद्य द्वारा फिर मध्यस्थ आतिथ्यकार - सुअरकी पाचनप्रणाली तक पहुँच जाते हैं। कभी कभी अण्डे इसही प्रकार मनुष्य की पाचन प्रणालीमें पहुँच जा सकते हैं। अब काँटोदार गोला अन्त्रकी भीतमेंसे होता हुआ रक्तमें पहुँच जाता है और फिर पेशी तन्तुमें पहुँचकर इसके काँटे तो पाया जाना बन्द हो जाता है और यह ५-२० स. मी. व्यासके उपस्यूतपुच्छिन्का रूप धारण कर लेता है। इस उपस्यूतपुच्छिन्में एक उलटा हुआ सिर और ग्रीवा उत्पन्न हो जाते हैं जो कि प्रौढ़ कृमिके उनही भागोंसे बहुत कुछ मिलते हैं। इस कृमिके उपस्यून पुच्छिन् मनुष्यके किसी अवयवमेंभी पाये जा सकते हैं जैसे जीभ ग्रीवा अथवा पसलियोंकी पेशियाँ, और कभी कभी यकृत हृदय फुफुस, और मस्तिष्कमें। एक बार उपस्यूतपुच्छिन् कद्दूदाना मनुष्यकी आँखमें भी पाया गया है, और एक बार वह इस स्थितिमें बीस वर्ष तक उपस्थित रहता हुआ देखा जा चुका है।

जब उपस्यूत पुच्छिन् मनुष्यकी पाचन प्रणालीमें पहुँच जाता है तो शिर और ग्रीवा खुलते हो जाते हैं और फिर शिर अन्त्रके नीचे के भाग में पहुँच कर अपने को वहां पर लगा लेता है और फिर इससे खंड बनते जाते हैं।

स्वस्थ मनुष्योंमें यह कृमि बिना लक्षण उत्पन्न किये भी उपस्थित रह सकता है परन्तु निर्बल मनुष्यों और बच्चों में इस कृमि से आमाशय और अन्त्रके विकार के लक्षण उत्पन्न हो जा सकते हैं जैसे भूख न लगना, वमन होना, रक्त हीनता, इत्यादि।

यदि मनुष्यकी पेशियोंमें इस कृमिके उपस्यूत-पुच्छिन् लग जाँय तो उसकी गतिमें विकार उत्पन्न हो सकता है और यदि वे जिह्वामें लगजांय तो उसकी गति बन्द हो जा सकती है।

फीता गौमांसी

निवास—छोटी अन्त्रके ऊपरी भागमें

भौगोलिक विस्तार—यह कृमि संसार भरमें पाया जाता है, वास्तवमें प्रत्येक स्थान पर जहाँ गौमांस खाया जाता है।

परोपजीवी—फीता गौमांसी रंगमें श्वेत और अर्द्ध पारदर्शिन् होता है। प्रौढ़ कृमि ४-१० मीटर अथवा और भी लम्बा हो सकता है और यह छोटी अन्त्रके ऊपरी भागमें रहता है। शिर कुछ कुछ चौकोर होता है। १-२ स.मी. व्यासमें होता है और उस पर चार चूषणक लगे होते हैं परन्तु चोंच और कांटे अनुपस्थित रहते हैं। चोंचके स्थानमें शिरकी चोटी पर भी चूषणकके समान ही कुछ रचना बनी होती है। ग्रीवा लम्बी होती है और उसकी चौड़ाई शिरकी चौड़ाईसे लगभग आधी होती है। शरीर खंड जितने प्रौढ़ होते हैं उतने ही लम्बे होते हैं। अण्डवान शरीर खंड चौड़ाईकी अपेक्षा तीन चार गुने लम्बे होते हैं। जनन छिद्र एक खंडमें एक होता है और प्रत्येक खंडके पिछले भागके किनारे पर पाया जाता है। जननछिद्र बारी बारीसे प्रत्येक खंडके दाहिने और बांये किनारे पर मिलता है। गर्भाशयसे लगभग २०-२३ शाखायें और इनमेंसे बहुत उपशाखा निकलती हुई पाई जाती हैं। अण्डे लगभग गोल होते हैं। और ०-३० μ लम्बे होते हैं। अण्डे पर दो आच्छादन लगे पाये जाते हैं एक तो वास्तविक अण्डीय छिलका जो बहुत पतला और पारदर्शिन होता है और दूसरे उसके भीतरवाले आच्छादनमें किरणें बनी होती हैं और वह मोटा होता है। उसके भीतर कंटकगोला होता है कि जिसमें तीन जोड़ भ्रूणिक काँटोंके लगे होते हैं।

जीवन-इतिहास—अण्डवान खंड बाहिर मलके साथ अथवा अपने स्वजातगतिकी सहायतासे बाहिर निकल आते हैं। एक बार शरीरके बाहिर निकलनेके पश्चात् वे घास इत्यादिमें पहुँच जाते हैं। यहाँ शरीर नाश होनेसे अण्डे मुक्त हो जाते हैं। जब अण्डे गाय बैलके पेटमें पहुँचते हैं तो कंटक गोले मुक्त होकर छोटी अन्त्रमें पहुँचते हैं। छोटी अन्त्र की भीतको पार करते हुए ये अन्तमें शरीरके भिन्न भागों की पेशियों तक पहुँच जाते हैं। विशेषतः जतूका पेशी में हृदय के चारों ओर वाली मेदस्वी तन्तुमें उर-उदर मध्यस्थ पेशी और जिह्वामें। यहां पर उपस्यूत पुच्छिन् बन जाते हैं जो लम्बाई में ७-५ से ९ स. मी. और और चौड़ाईमें ५. ५ स. मी. होते हैं। उपस्यूतपुच्छिन् आठ महीने अथवा अधिक बैलमें रह सकते हैं और आगे इनका विकास केवल मनुष्य के निगले जानेके पश्चात् ही हो सकता है। जब ऐसा होता है ऊपर का आच्छादन तो पचा लिया जाता है और मुक्त हुआ शिर चूषणकोंकी सहायतासे अपनेको अन्त्रकी भीतमें लगा लेता है। उपस्यूतपुच्छिन् ४८°श की गरमी पर मर जाता है।

हाइमेनोलेपिस नाना

निवास छोटी अन्त्रमें मनुष्यमें पाये जानेवाले इस सबसे छोटे फीता समूहीय कृमिको पहिले पहिल बिल्हार्जने कैरोमें १८५१ में निकाला था। फिर गरास्सीने यह विचार प्रकट किया कि यह कृमि और चूहेका हा. फ्रटेरना एक ही हैं। परन्तु न तो ग्रासी और न लूस

ही चूहों में इसके जीवन इतिहासको सुलझा सके। बहुत खोजके पश्चात् जोयोंका यह विचार हुआ कि हा. नाना मनुष्यमें ही पाया जाता है और हा. फेटेरना एक मिलता हुआ कृमि होता है जो कि केवल चूहे इत्यादि कुतरनोंमें पाया जाता है—

इन दोनों कृमियोंके बहुत मिलने भूलनेके कारण इसके जीवन इतिहासकी खोजमें बहुत कठिनाई पड़ी।

भौगोलिक वितरण—यह कृमि गरम देशोंमें ही पाया जाता है। मिस्र, सूडान, श्याम, जापान, दक्षिणी संयुक्त राज्य ब्राजिल में यह कृमि पाया जा चुका है यह कृमि यूरोप भरमें भी मिल चुका है परन्तु पुर्तगाल, स्पेन, सिसलीमें तो विशेषतः पाया जाता है। सिसलीमें कलनड्रूसियोंके कथनानुसार १०% बच्चों में यह कृमि मिला—

परोपजीवीका वर्णन—यह कृमिकी शृंखला खंडों की संख्याके अनुसार ५-४५ स. मी. लम्बी हो सकती है। खंडोंकी संख्या १००-२०० तक होसकती है। शिर कुछ गोल होता है और उसका व्यास १३९-४८० μ तक होता है एक अच्छी तरह बनी हुई चोंचभी उपस्थिति रहती है और उस पर एक क्रम २०-३० कांटों का लगा होता है। कांटोंकी लम्बाई लगभग १४-१८μ होती है। चूषणक गोल होते हैं और उनका व्यास ८०-μ १५० तक हो सकता है। ग्रीवा लम्बी होती है। पूर्वीय खंड बहुत छोटे होते हैं परन्तु पीछेकी ओर उनकी लम्बाई कुछ अधिक बढ़ती हुई पाई जाती है परन्तु लम्बाईकी अपेक्षा ये भी चौड़े ही रहते हैं, केवल बहुत पीछेके खंडोंमें लम्बाई चौड़ाई के बराबर अथवा अधिक पाई जा सकती है। एक खंडकी अधिकतम चौड़ाई ०·५ से ०·९ स. मी. तक पाई जा सकती है। जननछिद्र पार्श्विक किनारे पर पूर्वीय सीमाके पास पाया जाता है। प्रत्येक खंडमें तीन अण्डकोष पाये जाते हैं। शुक्र प्रणालीके चौड़े हो जानेसे शुक्राशय बन जाता है। कुल खंड भर अण्डवान गर्भाशयसे भरा होता। प्रत्येक खंडमें अण्डोंकी संख्या ८० १८० होती है। वे गोल अथवा अण्डाकार होते हैं और उन पर दो आच्छादन चढ़े होते हैं। बाहिरी आच्छादनका व्यास ४०-४९ μ होता है और भीतरी आच्छादन का २०-३४μ भीतरी आच्छादनके प्रत्येक ध्रुव पर एक घुंडी लगी पाई जा सकती है और उसमें तीन जोड़े कांटों वाला कष्टक गोला उपस्थित रहता है। इस कृमिके खंडोंके बाहिर निकलनेके पहिलेही उनका कुछ पाचन हो चुका होता है और इसही लिये मुक्त हुए अण्डे मलमें पाये जा सकते हैं।

मध्यस्थ आतिथ्यकारकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। कृमिल छोटी अन्त्रकी श्लेष्मक कलाके एक अंकुरमें घुसकर अपनी उपस्पूतपुच्छिन् अवस्था पूरी कर लेता जान पड़ता है। हा. फेटेरनाके जीवन इतिहासके आधार पर अनुमान यही होता है। ग्रासी और रोवेल्लीने हा. फ्रेटेरनाके जीवन इतिहास की खोजकी और फिर जोयो और वुडलैण्डने उनकी खोजोंका समर्थन किया।

अण्डेके खाये जानेके ४०-७० घंटे पीछे शिर बन जाता है और फिर ८-९० घंटे पीछे चोंचमें कांटे आ जाते हैं। फिर कृमि अन्त्रमें उतर आता है जहाँ कि वहां के पृष्ठीय कोषस्तरमें लगा हुआ पाया जाता है। इस समय ग्रीवा छोटीही रहती है और खंडोंका कोई चिन्ह नहीं पाया जाता। एक ही आतिथ्यकारमें कृमिकी कई अवस्थायें पाई जा सकती हैं क्योंकि सब अण्डोंके विकासकी गति एक समान नहीं होती। १०-१२ दिनमें खंड प्रौढ़ हो जाते हैं और ३० दिन पश्चात् मलमें अण्डे आने लगते हैं।

इस फीतेसम कृमिके जीवन इतिहासमें यह विशेषता पाई जाती है कि बिना किसी मध्यस्थ आतिथ्यकारमें पहुँचे और अन्तिम आतिथ्यकारके शरीरके बाहिर बिना निकलेही अण्डेसे प्रौढ़ कृमि बन जाता है।

हा. नाना बहुत छोटा होता है और अधिकतर रोगीमें यह बहुत संख्यामें सैकड़ों और सहस्रोंमें पाया जाता है।

डिप्लीडियम श्वानी

निवास—छोटी अन्त्रमें

भौगोलिक वितरण—यह कुत्तों, बिल्लियों और गीदड़ोंका साधारण परोपजीवी है।

परोपजीवी—शृंखलाकी लम्बाई १५-४० श. मी. होती है और चौड़ाई २-३ स. मी. शिरका व्यास ५५ म. मी. ही होता है। चोंच पर जो कि एक कीप में सुकेड़ ली जा सकती है, २०-३० कांटोंके तीन या चार चक्र लगे रहते हैं ये कांटे गुलाबके कांटेके सदृश होते हैं, चार उपवृत्ताकार चूषणक भी लगे रहते हैं। खंड बहुत ही कम चौड़े होते है और उनकी संख्या २०० से अधिक ही होती है। अधिक प्रौढ़ खंडोंकी चौड़ाई २-३ स. मी. और लम्बाई ६-७ स. मी. होती है अर्थात् चौड़ाईसे लम्बाई बहुत अधिक होती है। प्रत्येक खंडमें जनन सम्बन्धी अवयवों के दो क्रम उपस्थित रहते हैं और दो जनन छिद्र दोनों पार्श्विक किनारों पर छिद्र एकही समान स्थित पाये जाते हैं। गर्भाशयन अण्डोंके समूह पाये जाते हैं कि जिनमें प्रत्येक में ८-१५ अण्डे उपस्थित रहते हैं। अण्डे व्यासमें ३५-४० μ होते हैं। प्रौढ़ खंड अन्त्रमें से अपने आप निकल आते हैं।

अधिकतर इस कृमिकी उपस्थितिसे कोई रोग लक्षण नहीं उत्पन्न होते। उपस्पूतपुच्छिन् अवस्था कुत्तेकी जूं कुन्तलिकांगुली श्वानी (ट्राइकोडेक्टीज केनिसमें) निकाली जाती है अथवा कुत्तेके देहिका कंचाशिरी शूकरी (टीनोकिफेलस केनिस) अथवा मानुषी देहिका प्युलेक्स संतापी (प्युलेक्स इरीटाँस) में। जोयोके कथनानुसार देहिका के कृमिल अण्डोंको खा लेते है तो ६ कांटोवाले भ्रूणका विकास आगे उस समय बढ़ता है कि जब कृमिल प्रौढ़ावस्थाको पहुँच जाता है भ्रूण देहिका की मेरुस्वी तन्तु और पेशियोंमें रहता है। मनुष्य में छूत देहिका के। खा लेनेसे आरम्भ होती है।

ताम्रम्, रजतम् और स्वर्णम्

(Copper, Silver and Gold)

[ले० श्रीसत्यप्रकाश एम. एस सी.]

त दो अध्यायोंमें प्रथम और द्वितीय समूहके क-वंशीय तत्वोंका वर्णन दिया जा चुका है। अब हम इन दोनों समूहोंके ख-वंशीय तत्वोंका विवरण देंगे। प्रथम समूहके ख-वंशमें ताम्रम्, रजतम् और स्वर्णम् तीन तत्व मुख्य हैं तांबा, चांदी और सोना ये तीनों धातुएँ अति प्राचीनकालसे बड़े महत्वकी मानी जाती रही हैं। भिन्न भिन्न प्रकारके आभूषणोंमें उपयोग होनेसे ये अति मूल्यवान समझी जाती हैं। तीनों धातुओंके कुछ भौतिक गुण नीचेकी सारिणीमें दिये जाते हैं।

तत्व	संकेत	परमाणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक	आपेक्षिक ताप
ताम्रम्	ता	६३·५७	८·९३	१०८४°	२३१०°	०·०९३६
रजतम्	र	१०७·८८	१०·५	९६२°	१९५५°	०·०५६
स्वर्णम्	स्व	१९७·२	१९·३२	१०६३	२५३०°	०·०३०३

इस सारिणीके देखनेसे पता चलता है कि तत्वोंका परमाणुभार ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है उनका घनत्व भी बढ़ता है पर आपेक्षिकताप क्रमशः कम होता जाता है। द्रवांक और क्वथनांकोंमें इस प्रकारका कोई नियम नहीं है। इन तीनों तत्वोंमें स्वर्णम् सबसे अधिक स्थायी तत्व है और ताम्रम् सबसे कम अर्थात् वाह्य परिस्थितियों तथा अम्ल, आदि रसोंका प्रभाव स्वर्णम् पर बहुत कम होता है और रजतम् पर कुछ अधिक पर ताम्रम् पर सबसे अधिक। पर तीनों ही तत्व कवंशीय सैन्धक, पांशुजम् आदिकी अपेक्षा अधिक स्थायी हैं।

प्राकृतिक लवण

ताम्रम् प्रकृतिमें निम्न खनिजोंमें संयुक्त पाया जाता है:—

(१) ताम्र पाइराइटीज—ता लो $ग_2$

(२) मेलेकाइट—ता क $ओ_3$, ता (ओउ $)_2$

(३) ताम्र ग्लान्स—$त_2ग$

इनमें ताम्रपाइराइटीज सबसे अधिक विस्तारसे पाया जाता है और इसी खनिजसे बहुधा तांबा निकाला जाता है।

रजतम् कभी कभी स्वतंत्र तत्वावस्थामें भी मिलता है पर बहुधा यह गन्धक, आञ्जनम्, हरिन् आदिसे संयुक्त मिलता है। इसके मुख्य खनिज निम्न हैं:—

(१) रजत ग्लान्स—$र_2$ ग—रजत गन्धिद

(२) पाइरार्जिराइट—$र_3$ आ $ग_3$—रजत-गन्धक आंजनित

(३) हार्नसिलवर—र ह—रजत हरिद

स्वर्णम् बहुधा तात्विक अवस्थामें ही स्वतंत्र पाया जाता है। कभी कभी चांदी और तांबाके साथ मिला हुआ भी मिलता है। क्वार्ट्ज़की बड़ी बड़ी चट्टानोंमें स्वर्णम्के कुछ कण कभी कभी विद्यमान रहते हैं (सत्तर हजार भाग क्वार्ट्ज़में लगभग १ भाग ही सोना बहुधा होता है)। इन चट्टानोंके चूर्ण चूर्ण होने पर बालूमें भी स्वर्णके कण पाये जाते हैं। इनमेंसे सोना पृथक् करनेकी विधि नीचे दी जायेगी।

खनिजोंसे धातु-उपलब्धि

ताम्रम्

ताम्रधातु उपलब्ध करनेके लिये बहुधा ताम्र पाइराइटीजका उपयोग किया जाता है जो ताम्र-लोह-गन्धिद, ता लो$ग_2$, है। इसमें दस्तम्, सीसम् आदिके गन्धिदोंकी अशुद्धियां भी मिली रहती हैं। पहले इस खनिजको भूँजा (roast) जाता है अर्थात् वायुके प्रवाहमें गरम किया जाता है। ऐसा करनेसे ताम्रकी अपेक्षा अन्य धातुएँ अधिक शीघ्र ओषदीकृत हो जाती हैं। मिश्रण पर थोड़ी सी वायु प्रवाहित करते हैं, और फिर गरम करनेसे अन्य धातुओंके ओषिद बन जाते हैं पर ताम्र इस अवस्थामें भी ताम्र-गन्धिदके रूपमें ही रहता है।

इस प्रकार भूँजनेसे ताम्रगन्धिद और अन्य धातुओंके ओषिदोंका मिश्रण प्राप्त होता है। इन ओषिदोंको ताम्रगन्धिदसे पृथक् करनेके लिये मिश्रणमें बालू या अन्य शैल जन पदार्थ मिलाते हैं और गरम करके इसे पिघलाते हैं। ऐसा करनेसे ओषिद शैलेतोंमें परिणत हो जाते हैं और ये शैलेत ताम्र-गन्धिदकी अपेक्षा शीघ्र पिघल जाते हैं—

लो ओ + शै $ओ_2$ = लो शै $ओ_3$

लोह शैलेत

पिघले हुए धातु शैलेत ताम्र गन्धिदके ऊपर तैरने लगते हैं अतः इनकी सतहको आसानीसे पृथक् कर लिया जाता है।

इस प्रकार जो ताम्रगन्धिद मिलता है उसमें अब भी बहुतसा लोहा मिला रहता है। मूल खनिजमें १०—२० प्रतिशत तांबा था पर इस प्रकार भूंजने और पिघलाने (Smelting) के पश्चात् तांबेकी मात्रा ३०—४० प्रतिशत हो जाती है। इस प्रकार प्राप्त पदार्थको कच्ची धातु (Coarse metal) कहते हैं।

इस कच्चो धातुको फिर भूंजा जाता है अर्थात् वायु प्रवाहमें इसे गरम करते हैं। ऐसा करनेसे लोहा ओषिदमें परिणत हो जाता है और ताम्रगन्धिद वैसेका वैसाही बना रहता है। बालू अर्थात् शैल-ओषिद मिला कर इसे फिर पिघलाते हैं। और पिघले हुए लोह शैलेतकी ऊपर तहको पृथक् कर लेते हैं। यह मुख्यतः ताम्रगन्धिद, ता, ग है। इसमें लोह आदिकी कुछ अशुद्धियां अबभी रहही जाती हैं।

अब इस श्वेत धातुको वायुके मन्द प्रवाहमें क्षेपण भट्टी (reverberatory furnace) में भूंजते हैं (चित्र देखो) इस भट्टीमें श्वेत धातुको सीधी आग नहीं लगता है। गैसकी ज्वालायें एक स्थान क पर प्रदीप्त होती हैं और वहाँसे भट्टीकी डाट (arcs) द्वारा श्वेत धातुके ऊपर प्रतिबिम्बितकी जाती हैं। भट्टीमें वायु प्रवेशके लिये विशेष छेद ग, घ, बने रहते हैं। यहां ताम्रगन्धिद निम्न प्रक्रियाके अनुसार कुछ तो ताम्रओषिद में परिणत हो जाता है :—
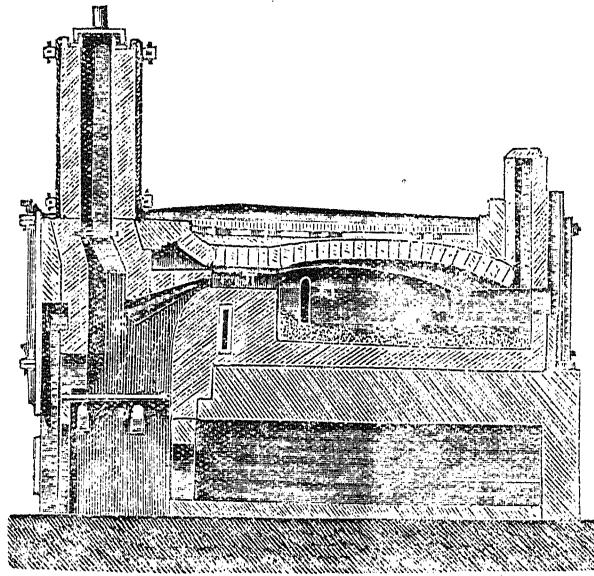
$ता_2 ग + ३ओ = ता_2 ओ + गओ_2$

पर बहुत कुछ ताम्रधातुमें ही परिवर्तित हो जाता है।

$ता_2 ग + ओ_2 = २ ता + गओ_2$

ताम्रओषिद भी ताम्रगन्धिदके संसर्गसे ताम्रम् देता है।

$ता_2 ग + २ता_2 ओ = ६ ता + ग ओ_2$

पिघले हुए ताम्र-धातुमें गन्धकद्विओषिद गैस निकलनेके कारण बहुतसे छेद हो जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त धातुको छेदीला तांबा कहते हैं।

छेदीले तांबेको फिर पिघलाते हैं और वायुके संसर्गमें लाते हैं। ऐसा करनेसे जो कुछ भी अन्य धातुओंकी अशुद्धियां होंगी वे फिर ओषदीकृत हो जांयगी और उनकी तह पिघले तांबे पर तैरने लगेगी जिसे आसानीसे पृथक कर लिया जा सकता है।

इस प्रक्रियामें थोड़ा सा तांबा ताम्रओषिदमें परिणत हो जाता है, जिसके रह जानेके कारण तांबेके भंजनशील होनेकी संभावना है। अतः पिघली हुई धातुको हरी (ताजी) लकड़ीके डंडेसे टारते हैं। लकड़ीसे निकली हुई गैसें ताम्रओषिदका अवकरण कर देंगीं और शुद्ध तांबा मिल जायगा।

इस प्रकार ताम्र-खनिजसे शुद्ध धातु प्राप्त करनेके लिये निम्न उपाय काममें लाये जाते हैं।

१—(क) कच्चीधातु प्राप्त करनेके लिये भूंजना
(ख) कच्चीधातु प्राप्त करनेके लिये पिघलाना
२—(क) श्वेत धातु प्राप्त करनेके लिये भूंजना
(ख) श्वेत धातु प्राप्त करनेके लिये पिघलाना
३—छेदोला तांबा बनानेके लिये भूंजना
४—शुद्ध करना।

घोल-विधि—इस विधिमें खनिज पदार्थको साधारण नमकके साथ गरम करते हैं। ताम्रम् ताम्र-हरिदमें परिणत हो जाता है जिसे पानीसे धोकर घोल बना लेते हैं। इस घोलमें लोह धातुको डालते हैं। ऐसा करनेसे ताम्रम् अवक्षेपित हो जाता है जिसे पिघला कर शुद्ध कर लेते हैं:—

$$ताह_2 + लो = लोह_2 + ता$$

चांदी (रजतम्)

खनिजोंसे चांदी प्राप्त करनेकी मुख्यतः चार विधियां हैं।

(१) प्याली-विधि (Cupellation)—इस विधिमें रजत-खनिजको सीस खनिजके साथ पिघलाते हैं। इस प्रकार रजतम् और सीसम्का धातु-संकर (alloy) बन जाता है। रजत-सीस संकरको हड्डीकी राख द्वारा बनाई गई विशेष प्यालियोंमें (चित्र देखो) रखकर गरम करते हैं और मिश्रण
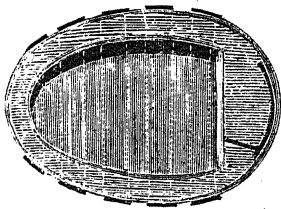
परसे वायु प्रवाहित करते हैं। रजत धातु ओषजनसे संयुक्त नहीं होती है पर सीसम्का सीस ओषिद बन जाता है। गरमी पाकर यह गल जाता है। गला हुआ सीस ओषिद कुछ तो हवाके प्रवाहसे उड़ा दिया जाता है और शेष हड्डीकी राखकी बनी हुई प्यालीके छेदोंमें सोख लिया जाता है। शुद्ध चमकदार चांदी प्यालीमें शेष रह जाती है।

(२) पार्कस विधि—पिघला हुआ सीसा केवल १.६ प्रतिशत दस्तम्को घुला सकता है और पिघला हुआ दस्ता १.२ प्रतिशत सीसाको ही। पर रजतम् दस्तम्में भली प्रकार घुलनशील है। अतः यदि सीस-रजत संकरको पिघलाकर उसमें पिघला हुआ दस्ता छोड़ा जाय तो दस्तम्में रजतम् घुल जायगा और दस्त-रजत संकर पिघले हुए सीसे पर तैरने लगेगा। ठंडा होकर यह ठोस हो जायगा। इसकी तहको अलग कर लिया जाता है। और फिर इसे कर्बनके साथ भभकेमें जोरोंसे गरम करते हैं। दस्तम् स्रवित हो जाता है और रजतम् भभकेमें रह जाता है। इसे फिर स्वच्छ कर लेते हैं।

(३) पैटिन्सनकी विधि—इस विधिका तात्पर्य्य यह है कि जब रजत-सीस संकर खनिजको पिघला कर धीरे धीरे ठंडा करेंगे तो सीसम्के रवे पहले पृथक् होने लगते हैं। इन रवोंको पृथक् कर लिया जाता है। इस प्रकार धातु-संकरमें सीसम्की प्रतिशत मात्रा कम होती जाती है और रजतम्की प्रतिशत मात्रा बढ़ती जाती है। धीरे धीरे एक बिन्दु पर रजत् और सीस दोनोंके रवे साथ साथ पृथक् होंगे। इस प्रकार सीसम्की मात्रा कम करके प्याली-विधिका उपयोग किया जाता है। अर्थात् पिघले हुए धातु संकर पर वायु या भाप प्रवाहित की जाती है। इस प्रकार २/३ सीसा और पृथक् हो जाता है। इस विधिको कई बार दोहराते हैं और अन्तमें शुद्ध चांदी मिल जाती है।

(४) पारद-मिश्रण विधि—मैक्सिकोमें इस विधिका बहुत उपयोग किया जाता है क्योंकि वहां ईंधनकी कमी है। चांदीके खनिज (रजतगन्धिद) को चक्कीमें अच्छी तरह पीसते हैं। इसमें फिर नमककी बहुत सी मात्रा मिला देते हैं। तत्पश्चात् ताम्रगन्धेत (भूँजा

हुआ ताम्र पाइराइटीज़) भी मिश्रित कर देते हैं। और साथमें पारदधातु भी डाल देते हैं। प्रक्रियामें नमक और ताम्रगन्धेतके संसर्गसे ताम्रहरिद बनता है—

२सै ह + ता ग ओ$_४$ = सै$_२$ ग ओ$_४$ + ता ह$_२$
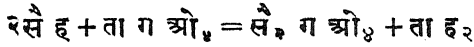
और यह खनिजको निम्न प्रकार रजतहरिदमें परिणत कर देता है—

र$_२$ ग + ता ह$_२$ = ताग + २रह
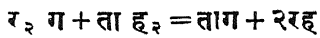
यह रजत हरिद नमकके घोलमें घुल जाता है। यहाँ पर यह पारद धातुसे प्रक्रिया करता है प्रक्रियामें पारद-हरिद बन जाता है और चांदी पृथक हो जाती है।

र ह + पा = र + पा ह
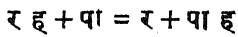
यह चांदी शेष बचे हुए पारदके साथ पारद-रजत-सम्मेल (अमलगम) बन जाती है। इस पारद-सम्मेलको धोकर पृथक् कर लेते हैं। भभकेमें इसे स्रवित करनेसे पारद उड़ जाता है और चांदी भभकेमें रह जाती है।

(५) श्यामिद विधि—खनिजको चूर्ण कर लेते हैं और ०·७ प्रतिशत सैन्धक श्यामिद, सै क नो, के घोलके साथ इसे संचालित कराते हैं। प्रक्रियामें सैन्धक-रजत-श्यामिद, सै र (क नो)$_२$ बनता है:—

र$_२$ ग + ४ सैकनो = २सैर (कनो)$_२$ + सै$_२$ ग
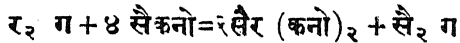
इसके घोलमें स्फटम् या दस्तम् धातु डालनेमें चांदी पृथक् अवक्षेपित हो जाती है।

स्वर्णम् (सोना)

सोना अधिकतर प्रकृतिमें ही पाया जाता है। कार्ट्ज़की चट्टानोंमें, सरिताओंकी बालूमें और ऐसेही अन्य स्थानोंमें इसके कण बिखरे पाये जाते हैं। इसके पृथक् करनेकी विधि अति साधारण है। बालू को पानीके साथ धोनेसे ही काम चल जाता है, सोने के कण अन्य पदार्थोंके कणोंसे अधिक भारी होते हैं। अतः बालूको पानीके साथ खलखला कर छोड़ देनेसे सोनेके कण तहमें शीघ्र बैठने लगते हैं। इस प्रकार इन्हें पृथक् कर लिया जाता है।

जब कार्ट्ज़में सोनेके कण बहुतही कम मात्रा में होते हैं, श्यामिद विधिका उपयोग किया जाता है, चूर्णको पांशुज श्यामिदके हलके घोलमें संचालित करते हैं। वायुकी विद्यमानतामें पांशुज श्यामिद सोनेको घुला लेता है।

२स्व + ४पां कनो + ओ + उ$_२$ ओ
= २पां स्व (कनो)$_२$ + २पां ओउ
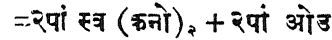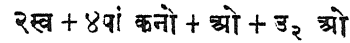
इस प्रकार प्राप्त पांशुज-स्वर्ण-श्यामिदके घोलमें दस्तम् धातु डालनेसे स्वर्ण धातु अवक्षेपित हो जाती है।

२पां स्व (कनो)$_२$ + द = पांकनो + द (कनो)$_२$ + २स्व
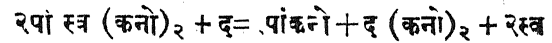
धातुओंके गुण

तांबा—शुद्ध तांबेका असली रंग तो चटकीला गुलाबी है पर बहुधा यह हलका लाल दिखाई पड़ता है। ताम्रपत्र को नोषिकाम्ल द्वारा स्वच्छ करके (/\) रूपमें मोड़कर देखा जाय तो यह गुलाबी प्रतीत होगा। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि तांबा घनवर्धनीय होता है, इसके तार खींचे जा सकते हैं। विद्युत्-विधि से तैयार किये गये शुद्ध तांबेका घनत्व ८.९४५ है। इसका द्रवांक १०८४° और क्वथनांक २३१०° हैं। यह विद्युत् और तापका अच्छा चालक है। यह अन्य धातुओंके साथ मिलकर धातु संकर बनाता है। पीतलमें दो भाग तांबा और एक भाग दस्ता होता है। तांबेको पिघला कर दस्ता छोड़नेसे यह बनती है। कांसेमें ९ भाग तांबा और १ भाग वंगम् (टिन) होता है। जर्मन सिलवरमें तांबा और नकलम् (निकल) होता है। वायुमें खुला छोड़नेसे इसमें काला जंग लग जाता है।

परमाणुभार—ताम्रम् धातु के लवण दो प्रकारके होते हैं—ताम्रिक और ताम्रस। ताम्रिक ओषिदमें ३१.७८५ भाग तांबा ८ भाग ओषजनसे संयुक्त है और ताम्रसओषिदमें ६३.५७ भाग तांबा ८ भाग ओषजन से युक्त है।

तांबेका आपेक्षिक ताप ०.०९४ है जिसके अनुसार इसका परमाणुभार $\frac{6.4}{0.094}$=६८ के लगभग होना चाहिये। अतः ओषिद द्वारा निकाली गई तुल्यांक मात्रा ६३.५७ ही ताम्रम् का परमाणुभार है।

चांदी—यह श्वेत धातु है जिसका घनत्व १०.५ है और द्रवांक ९६२°श है। यह घनवर्धनीय है और इसके पतले तार खींचे जा सकते हैं। यह सब धातुओंसे अच्छा विद्युत् और तापका चालक है। इसके बहुत पतले पत्र में आरपार देखनेसे नीली ज्योति दिखाई पड़ती है। विद्युत भट्टीमें इसका स्रवण किया जा सकता है। इसकी वाष्पोंका नीला रंग होता है। वायुमें गरम करनेसे भी यह ओषजनसे संयुक्त नहीं होता है। पर नोषिकाम्लके साथ गरम करनेसे यह नोषेतमें परिणत हो जाते हैं। गन्धकाम्ल के साथ गरम करनेसे रजत गन्धेत बन जाता है।

इन प्रक्रियाओंमें रतजम् ताम्रम्के समान है। संयोग-तुल्यांक और परमाणुभार—१०७.८८ ग्राम रजतम् को नोषिकाम्लमें घोल कर उदहरिकाम्ल द्वारा अवक्षेपित करके प्राप्त रजत-हरिदको तौलनेसे हरिदकी मात्रा १४३.३४ ग्राम मिलेगी अर्थात् १०७.८८ ग्राम रजत ३५.४६ ग्राम हरिन्से संयुक्त हो गया है। अतः रजतका संयोग तुल्यांक १०७.८८ है क्योंकि हरिन् का परमाणुभार ३५.४६ है। रजत हरिद के एक अणुमें १ परमाणु हरिन् का है।

रजतम्का आपेक्षिक ताप ०.०५६ है अतः इसका परमाणुभार $\frac{6.4}{0.056}$=११४ के लगभग हुआ। इसका संयोग तुल्यांक १०७.८८ अतः इसका परमाणुभार भी १०७.८८ ही हुआ। अर्थात् रजतम् एक-शक्तिक है।

सोना—सोनामें चटकीला पीला रंग होता है जिसे सुनहरा रंग कहते हैं। वायुमें यह अप्रभावित रह सकता है। समस्त धातुओंकी अपेक्षा यह अधिक घनवर्धनीय है और इसके बहुत ही पतले तार खींचे जा सकते हैं। इसके इतने पतले पत्र बन सकते हैं कि २८०००० पत्र यदि एक पर एक रखे जायं तो केवल एक इंच की मोटाई ही बनेगी। साधारण स्वर्ण पत्र की मोटाई ·०००१ स. म. होती है। इसके आरपार देखने से हरी ज्योति दिखाई पड़ेगी। स्वर्णका घनत्व १९.३ और द्रवांक १०६१.७° है।

बिलकुल शुद्ध सोनेके सिक्के या आभूषण नहीं बन सकते हैं क्योंकि यह बहुत नरम होता है। अङ्गरेजी सुवर्णके सिक्कोंमें हजारमें ९१६.६७ भाग सोना होता है। सोनेकी मात्रा कैरट-मापमें दी जाती है। १०० प्रतिशत अर्थात् सर्वांश शुद्ध सोनेको २४ कैरेट कहते हैं। २२ कैरेट सोना कहनेसे तात्पर्य यह होगा कि २४ भाग सोनेमें २२ भाग शुद्ध सोना है और दो भाग अन्य मिलावट। आभूषणादिक बनाने के लिये तांबेकी मिलावट दे दी जाती है। तांबेकी मिलावटके कारण सोना कुछ कड़ा पड़ जाता है और इसमें कुछ लाली भी आ जाती है। यदि सोनेमें चांदी मिलाई जायगी तो सोनाका चटकीला पीला रंग हलका पड़ जायगा।

स्वर्ण ओषजनसे संयुक्त नहीं होता है पर हरिन् या अरुणिन् गैसोंसे तत्क्षण प्रभावित हो जाता है। यह उदहरिकाम्ल, नोषिकाम्ल या गन्धकाम्लमें अनघुल है पर अम्लराज अर्थात् उदहरिकाम्ल और नोषकाम्लके मिश्रणमें घुल जाता है। वस्तुतः यह घुलनशील प्रभाव उदहरिकाम्ल और नोषिकाम्ल द्वारा जनित हरिन् गैसके कारण है।

स्वर्णके यौगिक अधिकतर अस्थायी होते हैं अर्थात् गरम करनेसे स्वर्ण धातु शीघ्र मुक्त हो जाता है। लोहस लवणों, काष्ठिकाम्ल आदि अवकारक पदार्थों से भी स्वर्ण पृथक् हो जाता है—

$$स्वह_3 + 3लोह_2 = स्व + 3लोह_3$$

$$2स्वह_3 + 3क_2\ उ_2\ ओ_4 = 2स्व + 6उह + 6कओ_2$$
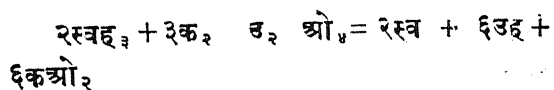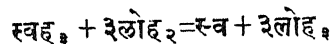
संयोग तुल्यांक और परमाणुभार—स्वर्ण अरुणिद का विश्लेषण करनेसे इसका संयोग तुल्यांक ६५.७३ निकलता है। स्वर्णम् का आपेक्षिकताप.०३११ है अतः परमाणुभार $\frac{6.4}{.0311}$=२०६ के लगभग ठहरता

है। संयोग तुल्यांकको ३से गुणा करनेसे १९७·२ आता है जो अपेक्षिकताप द्वारा निकाले गये परमाणुभारके निकट है अतः स्वर्णम् का परमाणुभार १९७·२ है। इस प्रकार स्वर्ण त्रिशक्तिक है। स्वर्ण दो प्रकारके लवण देता है—स्वर्णस और स्वर्णिक।

लवण

ताम्रम् और स्वर्णम् धातु दो प्रकारके लवण देते हैं। इनमेंसे एकको इक-लवण और दूसरेको अस-लवण कहते हैं। रजतम् केवल एकही प्रकारके लवण देता है। ताम्रिक लवणोंमें ताम्रम् द्वि-शक्तिक है पर ताम्रस लवणोंमें यह एक-शक्तिक है। स्वर्णस लवणोंमें स्वर्ण भी एक-शक्तिक है पर स्वर्णिक लवणोंमें यह त्रिशक्तिक है। कुछ मुख्य लवणोंके नाम और सूत्र नीचे दिये जाते हैं:—

	ताम्रस	ताम्रिक	रजत	स्वर्णस	स्वर्णिक
ओषिद	$ता_2ओ$	ताओ	$र_2ओ$	$स्व_2ओ$	$स्व_2ओ_3$
हरिद	$ता_2ह_2$	$ताह_2$	रह	स्वह	$स्वह_3$
नोषेत	—	$ता (नोओ_3)_2$	$रनोओ_3$	—	—
गन्धिद	$ता_2ग$	ताग	$र_2ग$	$स्व_2ग$	—
गन्धेत	—	$तागओ_4$	$र_2गओ_4$	—	—

ओषिद और उदौषिद

ताम्रिक ओषिद—ताओ—ताम्रम् धातुको वायु प्रवाहमें गरम करनेसे ताम्रिक ओषिद बनता है। ताम्रिक नोषेत और कर्बनेतको भी गरम करनेसे यह बनाया जा सकता है।

$$ता कओ_3 = ताओ + कओ_2$$

$$२ता (नोओ_3)_2 = २ताओ + ४नोओ_2 + ओ_2$$

ताम्रिक ओषिद पर उद्जन अथवा अन्य कार्बनिक पदार्थोंके वाष्पें प्रवाहित करें तो इसका अवकरण हो जाता है और ताम्रधातुमें यह परिणत हो जाता है—

$$ता ओ + उ_2 = ता + उ_2 ओ$$

टंकण (borax) की घुंडीमें ताम्रिक ओषिद घुल जाता है और इसे हरा रंग प्रदान करता है। यह ओषिद अम्लोंमें घुलनशील है और घुल कर नीला घोल देता है। घोलका यह रंगताम्रिक लवणोंके बननेके कारण है।

$$ता ओ + उ_2 ग ओ_4 + उ_2 ओ$$

ताम्रिक उदौषिद, ता (ओ उ)₂—ताम्रगन्धेतमें सैन्धकक्षारका घोल डालनेसे हलके नीले रंगका एक अवक्षेप प्राप्त होता है यह ताम्रिक उदौषिदका अवक्षेप है। यदि गन्धेत-घोलको गरम करके सैन्धकक्षार डाला जायगा तो यह अवक्षेप कुछ काला मिलेगा क्योंकि गरमघोलमें ताम्रिक उदौषिदमें से जलाणु पृथक् हो जाता है और ताम्रिकओषिद बन जाता है—

$$ता_2 ग ओ_4 + २सै ओ उ = ता (ओ उ)_2 + सै_2 गओ_4$$

$$ता (ओ उ)_2 = ता ओ + उ_2 ओ$$

घोलमें ताम्रम्का परिमाण निकालनेके लिये इसका उपयोग किया जाता है। घोलको उबालकर सैन्धकक्षार द्वारा अवक्षेपित करते हैं, अवक्षेपको छान और धो लेते हैं। तत्पश्चात् इसे सुखाकर घरियामें गरम करके प्राप्त ताम्रिक ओषिद, ता ओ, की मात्रा तौल लेते हैं। यह मात्रा जान लेने पर घोलमें ताम्रिक लवणकी मात्राका हिसाब लगाया जा सकता है।

ताम्रस ओषिद—$ता_2ओ$-ताम्रिक ओषिदको जोरोंसे गरम करने पर ताम्रस ओषिद मिलता है। पर इसके बनानेके सरल विधि यह है कि ताम्रिकलवणके घोलको सैन्धकओषिद द्वारा क्षारीय करके किसी अवकारक

पदार्थ जैसे द्राक्षोज (द्राक्षशर्करा) आदिके साथ गरम करो। ताम्रस्रोषिदका भूरा भूरा अवक्षेप मिलेगा। इस विधिका उपयोग शर्कराओंके परिमाण निकालनेमें किया जाता है और इसकामके लिये फेहलिंगघोल बनाया गया है। इस घोलके दो भाग होते है।

फेहलिंग घोल सं० १—१७ ग्राम ताम्रगन्धेतको २५० घ.श.म. जलमें घोलो और एक बूंद गन्धकाम्ल की डाल दो। यह पहला घोल हुआ। इसे अलग बोतलमें रक्खो।

फेहलिंगघोल सं०२—६० ग्राम सैन्धकपांशुज इमलेत (रोशील लवण) २५० घ. श. म. में घोलो और इसमें २५ ग्राम सैन्धकक्षारभी घोल दो। यह दूसरा घोल हुआ। इसे दूसरी बोतलमें रख दो।

परखनलीमें द्राक्षशर्कराका थोड़ासा घोल लो (२ घ. श. म.) और इसमें फेहलिगघोल सं० १ और सं०२ की दो दो घ. श. म. मात्रा डाल दो अब धीरे धीरे गरम करो। लाल भूरा अवक्षेप दिखाई देने लगेगा। इसे छान लो और गरम पानी और मद्यसे धो डालो। जलकुंडी पर जलवाष्प द्वारा सुखालो। यह ताम्रस ओषिद है।

ताम्रस ओषिद टंकणकी घुण्डीको लाल रंग प्रदान करता है। हलके गन्धकाम्ल द्वारा प्रभावित करनेसे यह ताम्र गन्धेतमें परिणत हो जाता है और कुछ ताम्र-धातु अवक्षेपित हो जाता है।

ता, + उ₂ ग ओ₄=ता ग ओ₄ + उ₂ ओ+ता

ताम्रसहरिदमें सैन्धकक्षार डालनेसे ताम्रस उदौषिद ता₂(ओ उ)₂ का पीला पदार्थ प्राप्त होता है।

रजतओषिद—र₂ओ—रजतनोषेतमें शुद्ध सैन्धकक्षारका घोल डालनेसे रजत ओषिदका भूरा चूर्ण प्राप्त होता है।

२ र नो ओ₃ + २ सै ओ उ =

र₂ओ + २ सैनोओ₃ + उ₂ ओ

यह ओषिद अमोनियामें घुल जाता है पर सैन्धकक्षारमें अनघुल है। २५०°श तक गरम करने पर यह रजतम् और ओषजनमें विभाजित हो जाता है।

२ र₂ओ=४ र + ओ₂

नम रजतओषिद कर्बन द्विओषि से संयुक्त हो कर रजत कर्बनेतमें परिणत हो जा जाता है।

द्राक्षशर्करा, दुग्धशर्करा या किसी इमलेतके घोलमें रजतनोषेत और अमोनियाका घोल बनाकर मिलाने पर गरम करनेसे रजत धातु पृथक् होने लगती है और परख नलीकी भित्तियों पर रजत दर्पण बन जाता है। इस कामके लिये रजतनोषेतमें अमोनियाका घोल इतना डालना चाहिये कि रजत ओषिदका अवक्षेप आकर फिर घुल जावे। इमलेत, द्राक्षशर्करा आदि पदार्थ रजतओषिदका अवकरण कर देते हैं इसीलिये रजत दर्पण बन जाता है।

र₂ ओ + कार्बनिक पदार्थ=२ र + (ओ + कार्बनिक पदार्थ)

स्वर्णिक उदौषिद—स्व (ओ उ)₃—स्वर्णिक हरिद के घोलमें सैन्धकक्षार डालनेसे स्वर्णिक उदौषिदका भूरा अवक्षेप मिलेगा। इस उदौषिदको धीरे धीरे गरम करनेसे स्वर्णिक ओषिद, स्व₂ ओ₃ बन जायगा। और अधिक गरम करने पर यह ओषिद विभाजित हो जाता है और स्वर्ण-धातु एवं ओषजन प्राप्त होते हैं। यदि उदौषिदके अवक्षेपमें सैन्धकक्षारकी और मात्रा डाली जायगी तो अवक्षेप घुल जायगा। इस प्रकार सैन्धक स्वर्णेत नामक पदार्थ बन जाता है।

स्व (ओ उ)₃ = उ₃ स्व ओ₃

उदौषिद स्वर्णिकाम्ल

उ₃ स्व ओ₃ + ३सै ओउ = सै₃ स्व ओ₃ + ४उ₂ ओ

सैन्धक स्वर्णेत

गन्धिद (Sulphides)

ताम्रिक गन्धिद—ता ग—ताम्रचूर्णको गन्धक पुष्पकी अधिक मात्राके साथ ४४० श तापक्रमके नीचे गरम करनेसे ताम्रिकगन्धिद बनता है। यदि उदहरिकाम्ल आदि अम्लों द्वारा अम्लीय करके किसी ताम्रिक लवणमें उदजन-गन्धिद गैस प्रवाहितकी जाय तो ताम्रिक गन्धिदका काला अवक्षेप मिलेगा।

ता ग ओ₄ + उ₂ ग=ता ग+ उ₂ ग ओ₄

जलकी विद्यमानतामें वायुके ओषजन द्वारा यह ओषदीकृत होकर ताम्रगन्धेतमें परिणत हो जाता है। इसे जोरसे गरम करनेसे या उद्‌जनके प्रवाहमें गरम करनेसे —ताम्रस-गन्धिद मिलता है।

२ ता ग = ता$_2$ ग + ग

२ ता ग + उ$_2$ = ता$_2$ ग + उ$_2$ ग

ताम्रसगन्धिद, ता$_2$ ग, काला पदार्थ है। ताम्रम्को गन्धककी वाष्पोंमें जलानेसे भी यह मिल सकता है।

रजतगन्धिद, र$_2$ ग—रजत ग्लांस खनिजमें यह होता है। रजतनोषेतके घोलमें उद्‌जन गन्धिद प्रवाहित करनेसे यह काले चूर्ण पदार्थके रूपमें उपलब्ध होता है।

२ र नो ओ$_3$ + उ$_2$ ग = र$_2$ ग + २ उ नो ओ$_3$

उद्‌जन गन्धिद अथवा सैन्धक गन्धिद द्वारा रजतधातुको प्रभावित करनेसे भी रजतगन्धिद मिल सकता है। प्रक्रियामें उद्‌जन जनित होता है।

२ र + उ$_2$ग = र$_2$ग + उ$_2$

२ र + सै$_2$ग + २ उ$_2$ओ = र$_2$ग + उ$_2$ + २सैओउ

इस विधिसे किसी लवणमें गन्धककी विद्यमानता पहिचानी जा सकी है। कोयले पर दस्त गन्धेत और सैन्धक कर्बनेतका मिश्रण लेकर फुकनीकी सहायता से तप्त करो। कोयलेकी सहायतासे दस्तगन्धेत दस्तगन्धिदमें परिणत हो जायगा। दस्तगन्धिद सैन्धक कर्बनेतके साथ सैन्धक गन्धिद दे देगा।

द ग ओ$_4$ + ४ क = द ग + ४ क ओ

सै$_2$ क ओ$_3$ + द ग = सै$_2$ ग + द क ओ$_3$

इस प्रकार उपलब्ध पदार्थमें यदि चांदीकी दुअन्नी रुपया आदिमें भिगोकर छुआये जायंगे तो चांदी पर रजत गन्धिदका काला दाग पड़ जायगा। इस प्रकार का प्रयोग प्रत्येक गन्धकवाले यौगिकसे किया जा सकता है।

स्वर्णगन्धित—स्व$_2$ग—स्वर्णिक हरिद अथवा पांशुज-स्वर्णोश्यामिद्के घोलमें उद्‌जनगन्धिद प्रवाहित करनेसे यह मिल सकता है।

२ स्व ह$_3$ + ३ उ$_2$ ग = स्व$_2$ ग + ६ उ ह + २ ग

इस प्रकारके गन्धिदके साथ कुछ गन्धक भी मिला रहता है। यह उदहरिकाम्लमें अनघुल है पर अमोनियम गन्धिदमें घुल जाता है।

गन्धेत

ताम्र-गन्धेत,—ता ग ओ$_4$.५ उ$_2$ ओ—तूतिया या नीला थोथाके नामसे यह प्रसिद्ध है। प्रकृतिमें यह ताम्र गन्धिदके ओषदीकरणसे बनता प्रतीत होता है।

ता ग + २ ओ$_2$ = ता ग ओ$_4$

व्यापारिक मात्रामें ताम्र गन्धिदको वायु प्रवाहमें भूंजनेसे यह प्राप्त हो सकता है। ताम्रम्को गन्धकाम्ल में घोलनेसे भी यह बन सकता है। जलमें घुलनशील है। घोलका स्फटिकीकरण करनेसे नीले रवे प्राप्त होते हैं। इन रवोंमें स्फटिकीकरणके ५ जलाणु हैं। रवोंको गरम करनेसे ये जलाणु धीरे धीरे पृथक् होने लगते हैं और सब जलाणुओंके निकल जानेसे सफेद पदार्थ रह जाता है। यह अनार्द्र तूतिया है। ताम्र गन्धेतके घोलमें अमोनियाका घोल डालने पर पहले तो अवक्षेप प्राप्त होता है पर यह अवक्षेप और अधिक अमोनिया डालने पर घुल जाता है। घोलका रंग चटकीला नीला हो जाता है। घोलको वाष्पीभूत करनेसे ताम्रअमोनियम गन्धेत के चटकीले नीले रवे प्राप्त होंगे।

ता ग ओ$_4$ + ४नोउ$_4$ ओ उ

= ता (नो उ$_3$)$_4$ ग ओ$_4$ उ$_2$ ओ + ३उ$_2$ ओ

ताम्रअमोनियम गन्धेत

ताम्रगन्धेतके रवों और ताम्रअमोनियम गन्धेतके रवोंमें भेद इतना ही है कि गन्धेतके ४ जलाणुओंका स्थान ताम्रअमोनियम गन्धेतमें अमोनिया (नोउ$_3$) के ४ अणुओंने ले लिया है। ताम्रिकहरिदके घोलमें अमोनियाकी अधिक मात्रा डालनेसे ताम्रअमोनिमा हरिद, ता (नोउ$_3$)$_4$ ह$_2$, २ उ$_2$ ओ मिलता है।

रजत गन्धेत, रग ओ$_4$—रजत कर्बनेतको हलके गन्धकाम्लमें घोलनेसे रजतगन्धेत मिलता है। यह श्वेत लवण है। जलमें यह बहुत कम घुलनशील है।

रजतनोषेतके संपृक्तघोलमें किसी गन्धेतका घोल डालनेसे रजतगन्धेतका अवक्षेप प्राप्त हो सकता है।

हरिद, अरुणिद और नैलिद

ताम्रिकहरिद—ताह२—ताम्रिक ओषिद या कर्बनेतको तीव्र उदहरिकाम्लमें घोलनेसे ताम्रिक हरिद् प्राप्त होगा—

ता ओ + २उह = ताह२ + उ२ ओ
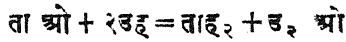
इसके रवोंमें जलके दो अणु होते हैं। ताम्रको हरिन् वायव्यमें जलानेसे आर्द्र ताम्रिक हरिद भी मिल सकता है जो कालाभूरा पदार्थ है। ताह२, २उ२ ओ के रवे नीले होते हैं, पर इसके गाढ़े घोलमें पीलापन लिये हुए हरा रंग होता है। यह मद्यमें घुलनशील है।

ताम्रस हरिद—ता२ ह२—बायलने इसे पारदिक हरिदके साथ ताम्रधातुको गरम करके तैयार किया था। ताम्र-धातुको थोड़ेसे हरिन्में गरम करनेसे भी यह बन सकता है। यदि ताम्रधातु पर उदहरिकाम्ल प्रवाहित करके यदि गरम किया जाय तो भी यह बन सकता है।

२ ता + २उ ह = ता२ ह२ + उ२
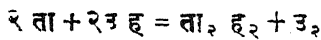
ताम्रधातु उदहरिकाम्लमें तब तक नहीं घुलता है जब तक इसमें वायु न प्रवाहितकी जाय पर ऐसी अवस्थामें ताम्रकहरिद बन जाता है—

२ता + ४उह + २ओ२ = २ताह२ + २उ२ ओ
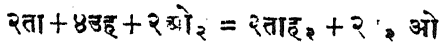
ताम्रस ओषिदको उदहरिकाम्लमें घोलनेसे भी ताम्रसहरिद बन सकता है।

ताम्रिक हरिदके अवकरण करनेसे भी यह प्राप्त हो सकता है। अवकरण करनेकी दो विधियां हैं। (१ ताम्रिक हरिदकेघोलको ताम्रछीलनके साथ तब तक गरम करो जब तक घोल नीरंग न हो जाय। इस प्रकार ताम्रस हरिद बन जायगा:—

ता ह२ + ता = ता२ ह२
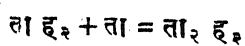
ताम्रिकहरिदका अवकरण दस्त-चूर्णसे भी हो सकता है—२ताह२ + द२ = ता२ ह२ + २द ह

(२) ताम्रिक हरिदके घोलमें गन्धक द्विओषिद प्रवाहित करने से भी इसका अवकरण हो सकता है।

२ता ह२ + उ२ ग ओ२ + उ२ ओ

= ता२ ह२ + उ२ ग ओ४ + २उ ह
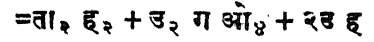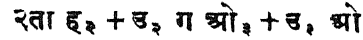
ऐसा करनेसे ताम्रस हरिदका श्वेत अवक्षेप मिल जायगा। यह श्वेत चूर्ण है पर प्रकाशके संसर्गसे बैंजनी हो जाता है। यह अमोनियामें घुलकर नीरंग घोल देता है यदि वायुका बिलकुल संसर्ग न हो अन्यथा ताम्रिक लवण बन जानेके कारण नीला रंग दे देगा। यह कर्बन एकौषिद और सिरकेलिन गैसोंको अभिशोषित कर लेता है।

ताम्रिक अरुणिद—ता रु२—ताम्रिक ओषिद और उदअरुणिकाम्लके घोलको वाष्पीभूत करनेसे इसके काले रवे प्राप्त हो सकते हैं। ताम्रिकनैलिद अत्यन्त अस्थायी होनेके कारण नहीं पाया जाता है।

ताम्रस नैलिद—ता नै—ताम्रिक गन्धेतके घोलमें पांशुजनैलिदका घोल डालनेसे ताम्रस नैलिदका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रक्रियामें पहले तो ताम्रिक-नैलिद बनता होगा जो अस्थायी होनेके कारण तत्काल ही ताम्रसनैलिद और नैलिन्में विभाजित हो जाता है।

२ ता गओ४ + ४पां नै = २ता नै२ + २पां२ ग ओ४

= २ता नै + नै२ + पां२ गओ
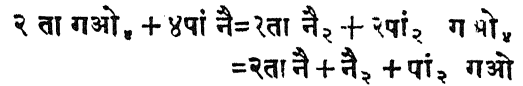
रजत हरिद—रह—यदि किसी हरिद या उदहरिकाम्लका घोल रजत नोषेतके घोलमें डाला जाय तो रजत हरिद का श्वेत अवक्षेप प्राप्त होगा। यह अवक्षेप अमोनियामें शीघ्रही घुल जाता है। घुलने पर निम्न यौगिक बनता है—

रह + २नोउ३ = र (नोउ३)२ह
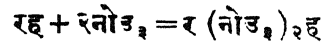
यह जलमें बहुत ही कम घुलनशील है (एक लीटरमें २५°श पर २ सहस्रांशग्राम)। किसी पदार्थमें यदि रजतम् या हरिदकी मात्रा निकालनी हो तो उसे रजत हरिदमें परिणत करके निकाल लेते हैं।

रजत अरुणिद—ररु-यह पीला पदार्थ है। रजत नोषेत में सैन्धक या पांशुज अरुणिदका घोल डालने

से पीला अवक्षेप प्राप्त होगा। यह अवक्षेप हलके नोषिकाम्ल या हलके अमोनिया में अनघुल है।

रजत नैलिद—रनै—पांशुजनैलिदके घोलको रजत नोषेतके घोलमें डालनेसे रजत नैलिदका हलका पीला अवक्षेप मिलता है। यह भी अमोनियामें बहुत कम घुलनशील है पर अमोनिया डालनेसे इसका रङ्ग सफेद पड़ जाता है।

स्वर्णिक हरिद—स्वह$_3$—स्वर्णको अम्लराज (नोषिकाम्ल और उदहरिकाम्लके मिश्रण)में घोलनेसे सुनहरा घोल प्राप्त होता है जिसको वाष्पीभूत करनेसे हर-स्वर्णिकाम्ल, उ स्वह$_4$, ४ उ$_2$ओ, के पीले रवे प्राप्त होते हैं। इस अम्लको स्वर्णिकहरिद और उदहरिकाम्ल का मिश्रण समझा जा सकता है।

उ स्वह$_4$=उ ह + स्वह$_3$

इसके घोलमें उदजन प्रवाहित करनेसे स्वर्ण धातु पृथक् हो जाता है।

२ उ स्व ह$_4$ + ३ उ$_2$=२ स्व + ८ उ ह

स्वर्ण हरिन्‌जलमें भी घुलनशील है। घोलको वाष्पीभूत करके १५०° तक गरम करनेसे स्वर्णिक हरिद, स्वह$_3$, का भूरा पदार्थ मिल जायगा। यह जल, मद्य और ज्वलकमें घुलनशील है।

स्वर्णिक हरिदको १७५° तक गरम करनेसे स्वर्णसहरिद, स्वह, का पीला पदार्थ मिलेगा।

स्व ह$_3$=स्व ह + ह$_2$

और अधिक गरम करनेसे यह स्वर्णम् और हरिन्‌में विभाजित हो जायगा। स्वर्णिकहरिद पांशुजहरिदसे संयुक्त होकर पांशुज स्वर्ण-हरिद या पांशुजहरस्वर्णेत नामक पदार्थ देता है।

पां ह + स्व ह$_3$ = पां स्व ह$_4$

इसे हर स्वर्णिकाम्लका लवण कह सकते हैं। इसका उपयोग फोटोग्राफीमें होता है।

स्वर्णिक अरुणिद—स्वरु$_3$—स्वर्णम्‌को अरुणिन्‌में घोलनेसे स्वर्णिक अरुणिद बन जाता है।

स्वर्णिक नैलिद—स्व नै$_3$, स्वर्णिक हरिदमें पांशुज नैलिद डालनेसे स्वर्णिक नैलिदका नीला अवक्षेप प्राप्त होगा। ताम्रिक नैलिदके समान यह भी शीघ्रही विभाजित होकर स्वर्णस नैलिद, स्व नै, में परिणत हो जाता है।

स्व नै$_3$ = स्व नै + नै$_2$

फोटोग्राफी

रजतहरिद, अरुणिद, स्वर्णहरिद आदि लवणोंका उपयोग फोटोग्राफी या चित्र उतारनेकी विधिमें किया जाता है। फोटोग्राफीका सूक्ष्म वृत्तान्त यहां दिया जाता है।

रजतहरिद, अरुणिद आदि लवण प्रकाशमें कुछ काले पड़ जाते हैं। प्रकाशकी किरणोंके कारण विशेषतः प्रकाशकी पराकासनी (ultra violet) तरंगोंके कारण) इन लवणोंमें रासायनिक परिवर्त्तन हो जाता हैं। फोटोग्राफीके मुख्य अंग इस प्रकार हैं।

(१) चित्र लेनेका प्लेट—यह प्लेट शीशेका होता है। जिलेटिनके घोलमें रजत नैलिद या रजत अरुणिद का चूर्ण घोला जाता है और इस घोलकी एक पतली तह इस प्लेटपर लगा दी जाती है। इस प्लेटको काले कागजमें बन्द करके रखते हैं और केवल अंधेरेमें ही खोलते हैं।

यह प्लेट केमरामें लगाया जाता है। जिस पदार्थ की फोटो लेनी होती है, उसकी किरणों कुछ सैकण्ड, बहुधा चौथाई मिनट तक तालमें होकर इस प्लेट पर पड़ने देते हैं। इस प्रकार किरणों द्वारा प्लेटके रजत लवणमें परिवर्त्तन हो जाता है। यह परिवर्त्तन केवल आंख द्वारा देखनेसे पता नहीं चल सकता है।

(२ नेगेटिव लेना—ऋणचित्र बनाना—किरणों द्वारा रजत लवणोंमें इस प्रकार का परिवर्त्तन हो जाता है कि जिन स्थानों पर किरणें पड़ी हैं वहाँ का रजत लवण लोहस गन्धेत, परमाजूफलिकाम्ल (पाइरोगेलोल) के समान हलके अवकारक पदार्थों द्वारा शीघ्र अवकृत होकर रजत धातुमें परिणत हो जाता है। जहां जितनी अधिक रोशनी पड़ती है वहां उतना ही अधिक रजत लवण का अवकरण हो

सकता है। इसलिये चित्र लिये गये प्लेटको लोहस गन्धेत, परमाजूफलिकाम्ल आदिके घोलोंसे धोते हैं।

अपरिवर्त्तित रजत अरुणिद सैन्धक गन्धेत गन्धेत (थायो सल्फेट) के घोलमें जिसे हाइपो भी कहते हैं घुल जाता है अतः प्लेटको फिर हाइपोसे धोते हैं। अब प्लेट पर जहां जहां प्रकाश पड़ा है वहां वहां रजतम् जमा रह जाता है।

सफेद पदार्थों से प्रकाशकी किरणें निकलती है पर काले पदार्थमें किरणोंका अभाव है। अतः इस प्लेटमें सफेद अंगके द्योतक अंश पर तो काला रजतम् दिखाई पड़ेगा। शेष प्लेट धुल कर सफेद हो जायगा। काल बाल इस प्लेटमें सफेद दिखाई पड़ेंगे और सफेद कमीज काली दिखाई पड़ेगी इसी कारण इसे नेगेटिव लेना या ऋण चित्र बनाना कहते हैं।

(३) नेगेटिवसे पोजीटिव बनाना—अर्थात् चित्र को सीधा करना—इस प्लेटके पीछे फिर एक कागजका पत्र रखते हैं जिस पर चित्र लेनेके प्लेट के समान जिलेटिन घोलमें घुला हुआ रजत अरुणिद लगा रहता है।

दो तीन सैकण्डके लिये इसे प्रकाश दिखाते हैं। इस प्रकार नेगेटिव अर्थात् उलटे चित्र का फिर नेगेटिव बन जाता है। इस पत्र को पूर्वके समान परमाजूफलिकाम्ल या लोहस गन्धेत के घोलमें धोकर हाइपोके घोलसे धो डालते हैं। बस सीधा चित्र तैयार हो जाता है। इस प्रक्रियाको पोजीटिव बनाना कहते हैं। इस चित्रमें काले बाल कालेही दिखाई पड़ेंगे और सफेद अंग सफेद। बस चित्र तैयार हो गया

(४) टोनिंग करना—चित्रको अधिक स्थायी करने के लिये यह आवश्यक है कि रजत धातु स्वर्ण धातुसे स्थापित करदी जाय। इसलिये इस प्रकार बनाये गये चित्र को स्वर्णिक-हरिद अथवा स्वर्णिक हरिद तथा पांशुज गन्धकोश्यामेतके मिश्रणके घोलसे धोते हैं। इस प्रकियामें जहां जहां रजत धातु होती है वहां वहां स्वर्णम् धातु जमा हो जाती है।

३ र + स्वह$_3$ = ३ र ह + स्व

फ़ोटोग्राफीके सिद्धान्तका यह सूक्ष्म विवरण है।

नोषेत (Nitrates)

ताम्रिक नोषेत—ता(नो ओ$_3$)$_2$,३$_2$ओ—ताम्रधातु ताम्रओषिद अथवा ताम्रकर्बनेतमेंसे किसीको हलके नोषिकाम्लमें घोलकर वाष्पीभूत करनेसे ताम्रिकनोषेत के नीले रवे प्राप्त होंगे। इसमें प्रबल ओषद कारक गुण हैं। अतः यदि कुछ रवोंको भिगोकर वंगम्-पत्रमें लपेटा जाय तो चिनगारियां प्रकट होंगी। गरम करने पर यह ताम्रओषिदमें परिणत हो जाता है।

रजतनोषेत—र नो ओ$_3$—चांदीको नोषिकाम्लमें घोलकर घोलको वाष्पीभूत करनेसे रजत नोषेतके रवे प्राप्त होंगे। ये जलमें भली प्रकार घुलनशील है। कपड़े या हाथसे छूनेसे काले धब्बे पड़ जाते हैं जो केवल पांशुज श्यामिदमें ही घुल सकते हैं। रजतके अन्य लवण कम घुलनशील होते हैं। अतः इस लवण का अधिक व्यवहार किया जाता है। चांदीकी गिल्ड करनेमें, फोटोग्राफी, एलेक्ट्रो प्लेटिंग आदिमें इसका उपयोग होता है। रजतके अन्य लवणभी इसीसे बनाये जाते हैं। इसका हलका घोल नेत्रोंके उपचारके लिये भी व्यहृत होता है।

ज़ोरोंसे गरम करने पर रजत नोषेत रजतओषिदमें परिणत होजाता है, रजतनोषेतमें पांशुज नोषितका घोल मिलानेसे रजतनोषित, र नो ओ$_2$ का रवेदार अवक्षेप मिलता है।

श्यामिद (cyanide)

रजतश्यामिद—र क नो रजत नोषेतके घोलमें पांशुज श्यामिदका घोल डालनेसे रजत श्यामिदका अवक्षेप प्राप्त होगा। और अधिक पांशुज श्यामिद डालनेसे यह अवक्षेप घुल जाता है। इस प्रकार इसमें रजत पांशुज श्यामिद नामक द्विगुणलवण बनजाता है।

र क नो + पां क नो = पां र (क नो)$_2$

स्वर्णश्यामिद—स्व क नो—स्वर्णको अम्ल राजमें घोलकर घोलमें अमोनिया डालनेसे अवक्षेप प्राप्त

होता है जो पांशुज श्यामिदके घोलमें घुल जाता है। घोलमें पांशुज स्वर्ण श्यामिद, पां स्व (क नो)२ बन जाता है। यह नीरंग है और जलमें भली प्रकार घुलनशील है। इस घोलमें अम्ल डालनेसे स्वर्णस श्यामिद—स्व क नो, का पीला अवक्षेप मिलता है। यह पानीमें घुलनशील है पर पांशुज श्यामिदके घोलमें घुल जाता है।

पुष्प-संगठन या पुष्प व्यूह

(ले० श्री पं० शङ्कर राव जोशी)

पत्र कलिकाओंकी नाई ही पुष्प-कलिकाएँ निकलती हैं। प्रारम्भमें दोनोंही प्रकार की कलिकाएँ एक सी होती हैं; और उनका पहचान लेना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। पत्र-कलिकाओंकी तरह पुष्प कलिकाएँ भी अन्तिम या अक्षकोणीय होती हैं।

यदि कलिकाके विकसित होने पर एक ही पुष्प निकले, तो उसे एकाकी-पुष्प कहते हैं। एकाकी-पुष्प अन्तिम और अक्षकोणीय भी होता है।

बहुत से पौधे ऐसे भी हैं, जिनमें फूलों का गुच्छा निकलता है। किसी किसी पौधेमें एक डंठल पर कई पुष्प निकलते हैं, और कुछ पौधोंके फूल एक ही स्थान पर निकलते हैं। इसे ही पुष्प-संगठन या पुष्प-व्यूह या पुष्पावलि-संगठन कहते हैं।

फूलको शाखासे जोड़नेके लिये एक डंडी या वृन्त होता है। जब एक ही डंडी पर कई पुष्प लगते हैं, तो उस मुख्य डंडी को पुष्पनाल या पुष्पाक्ष कहते हैं। पुष्पाक्ष पर के प्रत्येक पुष्पकी डंडीको पुष्प-दण्डिका या पुष्प-वृन्तिका कहते हैं। जिस डंडी पर बहुत से पुष्प लगे होते हैं, उसको पुष्प-दण्ड या कशेरुका कहते हैं। घी गुवार, कमल आदि कुछ पौधोंके पुष्प-नाल पर पत्ते नहीं होते। इनका पुष्पनाल जड़के समीप से ही सीधा ऊपर को बढ़ता है और सिरे पर फूल लगते हैं। इस प्रकारके पुष्प-नालको पुष्प-पेंड़ी या पुष्पध्वज नाम दिया गया है। जो पुष्प बिना डंडी के होते हैं; वे विनाल कहे जाते हैं।

पुष्प-व्यूहके भेद

पुष्प संगठन भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। पुष्प संगठनके दो मुख्य भेद हैं—१. अपरिमित और २ परिमित.

अपरिमित पुष्प संगठन

इस प्रकारके पुष्प-संगठन पुष्प दंड बढ़ता जाता है, और उसके अक्षकोणसे फूल निकलते जाते हैं। पुष्प-दण्ड के सिरे पर कच्ची पुष्प कलिकाएँ या नव विकसित पुष्प रहते हैं, और आधारके पास पुराने पुष्प। अपरिमित पुष्प-व्यूहके भेद निम्न लिखित हैं—

१—बहुतसे विनाल पुष्प-युत पुष्प दण्डको विदण्डिक या कणिक कहते हैं यथा केला, ज्वार बाजरा, ताड़ आदि। घास-जातीय पौधेके विदण्डिक को बाली कहते हैं।

२—एक प्रकारके विदण्डिक पुष्प नालको, जो माँसल या गुदाज होता है, मांसल विदण्डिक नाम दिया गया है। इस प्रकार का पुष्प-व्यूह चमससे घिरा रहता है।

३—यदि सारी की सारी विदण्डिक घनी और लम्बी हो और उस पर एक लिंगी पुष्प हों तो उसे लम्बित कहते हैं। संयुक्त लम्बित पुष्प व्यूह भी पाया जाता है।

४—यदि लम्बेबढ़े हुए पुष्प-दण्ड पर शाखाएँ निकलकर समान लम्बाई में बढ़ें और प्रत्येक शाखाके सिरे पर पुष्प निकल आवे, तो उसे सदण्डिक या गोस्तनी कहा जाता है। यथा राई, सन, इमली, मटर आदि।

५—यदि सदण्डिक पुष्प-व्यूह में पुष्प-दण्डकी प्रत्येक शाखा इस रीतिसे बढ़े कि सभी फूल एक समतल पर आजायँ, तो इसे सम शिख पुष्प-व्यूह

कहते हैं। इस प्रकारके पुष्प व्यूह की सतह चपटी हो जाती है यथा गोभी, मजीठ आदि।

६—यदि लम्बे बढ़े हुए पुष्पाक्ष की शाखाओं पर उपशाखाएँ निकलें और उपशाखाओं पर सदण्डिक निकल आवें तो उसे संयुक्त सदण्डिक या मंजरी कहते हैं। तथा—आम, तुलसी, महुआ, ईख, अंडी।

७—जब बहुत छोटे पुष्प-दण्ड पर समान लम्बाई की पुष्प दण्डिकाएँ निकलें और पुष्प-व्यूह खुले हुए छाते सा नजर आवे, तो इस प्रकारके पुष्प व्यूहको सचूड़ या छत्रक कहते हैं। यदि पुष्प व्यूहमें बहुतसे फूल लगे हों और पुष्प दण्डिकाओंकी लम्बाई समान हो, तो उसे साधारण सचूड़ कहेंगे। यथा आक, प्याज। यदि पुष्प दण्डकी प्रत्येक शाखा पर सचूड़ पुष्प-व्यूह हो, तो उसे सयुक्त सचूड़ समझना चाहिये यथा—गाजर, सोया, धनिया। इस प्रकारके पुष्प व्यूह में सबसे पुराने फूल बाहर की ओर को होते हैं और नव विकसित फूल भीतरकी ओर को।

८—छोटे और चपटे पुष्प-दण्ड पर बिनाऊ पुष्प हों तो वह पुष्पशेखर पुष्प संगठन है। यथा गेंदा, कदम्ब, सूरजमुखी आदि। पुष्प शेखर या शीर्षक एक प्रकार का दण्डिकाहीन सचूड़ है। इसमें बाहर के फूल पहिले खिलते हैं और भीतर के क्रमशः बाद में।

परिमित पुष्प संगठन

इस प्रकार के पुष्प-संगठनमें अक्षके सिरे पर सिर्फ एकही फूल खिलता है और उसके नीचेसे एक एक या एक से ज्यादा शाखाएँ निकलती हैं। इन शाखाओंके शिरे पर भी एक एक फूल खिलता है। ये शाखाएँ भी पुनः उपशाखाओंमें विभक्त हो जाती हैं, जिनके शिरे पर एक एक फूल निकल आता है। इस प्रकार पौधों की तरह ही पुष्पाक्ष पर शाखा-प्रशाखा निकलती रहती हैं। इस प्रकार के पुष्प व्यूह में अक्षकी अपेक्षा शाखाएँ अधिक वेग से बढ़ती हैं। फूल निकल आने पर शाखा-प्रशाखा की बाढ़ रुक जाती है।

परिमित पुष्प-संगठनके भी कई उपभेद हैं। कुछ उपभेद नीचे दिये जाते हैं—

१—पुष्प-व्यूहके अग्र पर एक फूल खिले और और उसके नीचेसे दो शाखाएँ लगभग समान लम्बाईकी निकलें, जिनके सिरे पर भी एक एक फूल खिल जाय और तब उन पर भी दो दो उपशाखाएँ निकलकर प्रत्येकके सिरे पर एक फूल खिलजाय और यही क्रम जारी रहे, तो इस प्रकारके पुष्प-व्यूहको द्वि-विभक्त क्रम कहते हैं।

२—यदि सबसे पहिले खिलनेवाले फूलके नीचे तीन या उस उससे समान लम्बाईकी शाखाएँ निकलती हैं। इन शाखाओंके सिरे पर फूल खिलजाय और प्रत्येक शाखा पर फूलके नीचेसे तीन तीन या उससे अधिक प्रशाखाएँ निकलकर उन परभी फूल निकल आते हैं। यही क्रम जारी रहनेसे एक प्रकार का संयुक्त-छत्रक बन जाय, तो इस प्रकारके पुष्प व्यूह को परिमित-छत्रक नाम दिया गया है।

३—यदि अनुक्रमसे निकलनेवाले पुष्पके नीचेसे एक ही पुष्पयुत शाखा निकले, तो इस प्रकारका परिमित पुष्प-संगठन, तिर्यगक्ष कहा जाता है।

४—यदि पुष्प, पुष्पनालकी एक ही बाजूको, चाहे दायें या बायें, निकलें, तो उसे अंतर वक्राक्ष कहेंगे।

शाखायुत पुष्प-संगठनमें शाखाएँ, भिन्न भिन्न प्रकारके परिवर्तित पत्तोंके अक्षमें से ही निकलती हैं। इन परिवर्तित पत्तोंको पुट या वृन्त-पत्र कहते हैं। ये पत्ते प्रमाणिक पत्तोंसे छोटे होते हैं। इनके किनारे, साधारणतः विभक्त नहीं होते। कभी कभी ये पत्ते वल्क-पत्र जैसे भी होते हैं। वृन्त-पत्र हरे रंगके ही होते हैं किन्तु कभी कभी इनका रंग फूल के रंग जैसा भी होता है, और तब इन्हें कुसुमायित-वृन्त-पत्र कहते हैं।

जिन फूलोंमें वृन्त-पत्र मौजूद होते हैं, वे कुसुम सवृन्त पुष्प कहे जाते हैं। कुछ फूलोंमें वृन्त-पत्रका अभाव होता है। गोभीकी जातिके पौधोंके फूल इसका उदाहरण हैं।

यदि वृन्त-पत्र पत्रव्यूहके नीचे एक वर्तुलके रूपमें क्रमबद्ध हो, तो उसे चक्रित कहते हैं। यथा नागर-मोथा में।

पुष्प

पुष्प-रचना—फूलका मुख्यकार्य सन्तानोत्पत्ति है। फूलको हम परिवर्तित तना कह सकते हैं। किसी पुष्प-कलिकाका निरीक्षण करनेसे चार प्रकारके कुसुम-पत्र पाये जाते हैं। ये ही फूलके चार मुख्य अंग हैं।

सबसे बाहरकी ओर जो पत्ते होते हैं, उनको पुट-चक्र या बाह्याच्छादन कहते हैं पुट-चक्रके पत्ते प्रायः हरे रंगके होते हैं और हर एक पत्र पुष्प-पत्र कहाता है। पुट-चक्रका मुख्य काम कलिकाकी रक्षा करना है। बाह्याच्छादनके बादमें भीतरकी ओरको अन्तराच्छादन या दल-चक्र होता है। इसे मुकुट या कटोरी भी कहते हैं। मुकुट जुदे जुदे रंगका होता है। कटोरीके प्रत्येक पत्तको दल या पँखुड़ी कहते हैं। यह चमकीला और रंगदार होता है। यथा—कनेर, गुलाब, कमल। दलचक्रसे भीतरको पुल्लिंग-चक्र होता है। यह कई पतली डंडियोंसे बना होता है, जिसको पुंकेसर कहते हैं। पुंकेसरके सिरे परकी छोटी गांठको रेत-पात्र या वीर्य-कोष कहा जाता है। सबसे भीतरका चक्र जो पुष्पके मध्यमें होता है, स्त्रीलिंग चक्र या स्त्री-केसर-चक्र कहाता है। इसे पुष्पयोनि, स्त्री केसर या गर्भ भी कहते हैं। इसकी प्रत्येक डंडी को पुष्पयोनि नलिका और इनके सिरे परकी गांठोंको रज-कोष या पुष्प योनि-छत्र कहते हैं।

पौधेके नतोदर या प्याले जैसे अक्षका, जो चपटा होता है, स्तंभक कहते हैं। इसी पर पुष्पके चारों अंग पैदा होते हैं।

सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें पुट-पत्र और दलकी उतनी आवश्यकता नहीं है, इसलिए बहुतसे फूलोंमें इनका अभाव रहता है।

निम्न लिखित कारणोंसे पुष्पोंमें भेद नजर आते हैं—(१) प्रत्येक चक्र या विवर्तुलमें पाये जानेवाले पत्र, दल आदिकी संख्या, (२) पुष्पके भिन्न भिन्न अंगोंका, सजातीय अंगोंसे मिला हुआ या जुदा जुदा होना (३) पुष्पके विजातीय अंगोंका एक दूसरेसे सयुक्त या जुदा जुदा होना।

प्रत्येक पुष्पमें प्रत्येक पत्रके भागोंकी संख्या जुदी जुदी होती है। साधारणतः एक दल पौधोंमें तीन और द्विदल पौधोंमें चार या पाँच भाग होते हैं। किसी फूलके आनुक्रमिक अंगकी संख्या यही या इसी का कोई गुणक होती है। यथा गुलाबांस। किन्तु योनि-चक्रमें अवयवोंकी संख्या कुछ कम होती है। और खास करके द्विदल पौधोंमें तो कम होती ही है। कुछ फलोंमें पुंकेसर और स्त्रीकेसरकी संख्या अत्य-धिक होती है। अकसर यह भी देखा जाता है कि किसी चक्रमें एक या उससे अधिक भागोंका अभाव ही रहता है।

पुष्पके किसी अंगके भागके किनारे न्यूनाधिक रूपसे संयुक्त रहते हैं। यथा चमेली, इश्कपेचा आदि की पँखुड़ियाँ। बहुतसे फूलोंके सजातीय अंग अलग अलग होते हैं। यथा गुलाबकी पंखुड़ियां। मटरके पुट-पत्र जुड़े हुए होते हैं, जिससे फूलका नीचेका भाग नली जैसा नजर आता है। परन्तु फूलकी पँखुड़ियाँ जुदी जुदी होती हैं।

फूलके जुदे जुदे अंग स्तंभक पर एक दूसरेसे बिलकुल जुदे जुदे उगे हुए होते हैं। कुछ फूलोंमें एक अंगके अवयव दूसरे विजातीय अंगसे संयुक्त होते हैं; यथा गुड़हल, जपा।

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षमें, फूलका मुख्य काम सन्ता-नोत्पत्ति ही है। इसके लिए फूलमें चारों अंगोंका होना जरूरी नहीं है। फूलके दो अंग स्त्रीकेसर और पुंकेसरके बिना सन्तानोत्पत्ति हो ही नहीं सकती इस लिए फूलमें इनका होना अनिवार्य है।

फूलका वर्णन

फूलके अनावश्यक अवयव पुंकेसर और स्त्री-केसरसे बाहरकी ओर को ही होते हैं। पुष्पके आवश्यक अङ्गोंकी रक्षा करना ही इनका काम है।

यदि पुष्पमें चारोंही अवयव मौजूद हों तो उसे पूर्ण पुष्प कहते हैं। चारोंमेंसे किसी एक अवयवके अभावमें पुष्प अपूर्ण कहाता है।

कलिकामें पुट-पत्र और पंखुड़ियाँ भिन्न भिन्न रीतिसे सिमटी हुई रहती हैं। कुछ पौधोंकी कलिकाओं में ये एक दूसरेसे छूते हुए लिपटे रहते हैं। कुछमें एक पुट-पत्रक पंखुड़ी दूसरीके कुछ हिस्सेको ढकती हुई सिमटी रहती है कुछ पौधोंकी कलिकाओंमें पँखुड़ियाँ बल खाकर लिपटी रहती हैं। मटर जातिके पौधों में यह लपेटन जुदेही प्रकारकी होती है।

पुट-चक्र—पुट चक्र फूलका सबसे बाहरका आवरण है। यह परिवर्तित पत्तियोंसे बना होता है। ये त्रिनाल पुट-पत्र स्तम्भकसे जुड़े रहते हैं। पुट पत्र हरे होते हैं। परन्तु कभी कभी ये पंखुड़ियाँ जैसे भी होते हैं। परन्तु कभी ये पँखुड़ियाँ जैसे भी होते हैं।

पुट पत्र संयुक्तभी होते हैं और स्वतंत्रभी। आम, कमल, कपास आदिके पुट पत्र स्वतन्त्र होते हैं और धतूरा मिर्चा आदिके संयुक्त। पुट-चक्र नलिकाकार, प्याले जैसा, घंटी जैसा और बैलन तथा कमंडलुके आकारका भी होता है।

कुछ पौधोंमें कुछ पुट-पत्र बड़े होते हैं और कुछ छोटे। कुछ फूलमें दो पुट एकके भीतर एक होते हैं। कुछ फूलों पर बालदार पुट होता है, जो गर्भाशयके सिरे पर निकलता है। कुछ फूलोंमें पुटके आधारमें एक थैली सी होती है। लार्कस्पर जैसे कुछ पौधोंमें पुट नलीका आकार ग्रहण कर लेता है और ये पूँछ की तरह निकले रहते हैं। यदि पुट-चक्र गर्भाशयसे ऊपरको हो, तो उसे ऊर्ध्ववर्ती या उच्च और नीचे या उसकी समानतामें हो, तो निम्न या अधोवर्ती कहते हैं।

कुछ फूलोंके पुट-पत्रफूल खिलनेके पहिले ही गिर पड़ते हैं। कुछ फूलोंमें ये फूलके खिलनेके बाद गिरते हैं और कुछ फूल ऐसे भी हैं, जिनके पुट-पत्र फलके बनने तक नहीं गिरते हैं, यथा—मटर, सेम नाशपाती। कुछ फूलोंमें यह बढ़कर फलको पूर्णतया ढक लेता है।

कटोरी या मुकुट—पुष्पोंके अन्तराच्छादनको कटोरी या मुकुट नाम दिया गया है। यह रंग विरंगा, आकर्षक और सुगंधित होता है। पंखुड़ियोंकी बदौलत ही पुष्प मनोरम दिखाई देता है। पुष्पमें कई पँखुड़ियाँ या पुष्प दल होते हैं।

पुट-पत्रकी तरह पंखुड़ियाँभी जुदी जुदी या एक दूसरीसे मिली हुई होती हैं। कुछ पुष्पोंके ऊपरी भागमें कई विच्छेद होते हैं किन्तु नीचेका भाग संयुक्त होता है, जिससे फूलका नीचेका भाग नली जैसा बन जाता है। इस भागको नलिका और ऊपरके स्वतंत्र भागको मुख (Limb) कहते हैं। पुष्पमें जिस स्थान पर पंखुड़ियां नलिकासे संयुक्त रहती हैं, उसे गल (Throat) कहते हैं। पुष्पके मुखका आकार भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। धतूराके फूलमें एक ही पँखुड़ी होती है और ऊपरके भागमें पाँच नोकदार विच्छेद होते हैं।

गुलाब, सेवती, गेंदा, सुरजमुखी आदिमें कई पँखुड़ियाँ होती हैं। इनकी धार या किनारा गोल होता है। कपासके फूलोंकी पँखुड़ियों का किनारा भी गोल होता है।

राई, सरसों, पोस्त आदिके पुष्पोंमें चार पँखुड़ियाँ होती हैं। इनका किनारा गोल या चपटा गोल होता है। कुछ फूलोंके किनारे कटे हुए होते हैं और कुछके गोल।

फूलों की मुख्य मुख्य आकृतियों पर यहाँ विचार किया जाता है—

१—यदि फूलकी पँखुड़ियाँ स्वस्तिक या गुणाके चिह्न जैसी हों तो उसे चतुशूल कहते हैं। इस प्रकारके पुष्पमें चार पँखुड़ियाँ होती हैं, जो चारों दिशाओं में फैली रहती हैं; यथा मूली, राई।

२—कुछ फूलोंकी आकृति तितली जैसी होती है। यथा मटर, चना।

३—जिन फूलोंके पुट या कटोरीसे लम्बी पूँछसी निकली रहती है, वे सपुच्छ-पुष्प कहलाते हैं। यथा गुल मेहँदी।

४—चमेली, धतूरा आदिके दल चक्रकी आकृति नली जैसी होती है, जिससे इन्हें नलिकाकार कहते हैं।

५—अनार आदि पुष्प घंटिकाकार होते हैं।

६—धतूरा, तम्बाकू, इश्कपेंचा आदिके पुष्पोंका आकार कीप जैसा होता है। इसलिए ये तुरमाकार कहे जाते हैं।

७—चक्राकार पुष्पोंकी नलिका छोटी होती है और विच्छेद चपटे और फैले हुए होते हैं। यथा आलू का पुष्प।

८—जिन पुष्पोंका आकार खुले हुए ओठ जैसा हो, ये लम्बोष्ठ कहाते हैं। यथा तुलसी, पुदीना आदि।

९—जिन पुष्पोंके ओंठके बढ़ जानेसे गल भाग छिप जायं; उनको पिहित गल नाम दिया दिया गया है।

१०—जिन पुष्पोंके आधारके पास तोंदभी निकली रहती है उन्हें तुन्दिल-पुष्प कहते हैं।

पुट पत्रकी तरह मुकुटभी पूर्वपाती होता है। बहुतसे पुष्पोंमें गर्भाधानकी क्रिया सम्पन्न होते ही पँखुड़ियाँ गिर जाती हैं। ये पश्चात्पाती कहाते हैं। कुछ पौधोंमें दल स्थिर रहते हैं।

पुष्प नाना प्रकारकी आकृति रंगके औरहोते हैं। पुष्पके रंगसे मोहित होकरही मधुमक्खी आदि प्राणी उसकी ओर आकर्षित होते हैं, जिससे गर्भाधानमें सहायता मिलती है।

अञ्जीर, अंगूर, गूलर, बड़ आदि पर जो गोल गोल फलसे नजर आते हैं, वे दरअसलमें फूल हैं, फल नहीं। इनके भीतर फूलोंका समुदाय होता है। धान गेहूँ, जौ आदि कुछ पौधोंके फूलोंमें पुट-चक्र और कटोरी का अभाव रहता है। इन पौधोंके फूल एक विशेष प्रकारके आवरणसे ढके रहते हैं।

प्रकृतिने पुष्पोंके आन्तरिक अवयवोंकी रक्षाके लिए अनेकानेक उपाय किये हैं। कई फूल जमीनकी ओरको झुके रहते हैं; यथा मिरची, तिल आदिके फूल। वेला, अरहई आदिके फूल ढके रहते हैं। कुछ फूलों पर महीन रोएँ होते हैं।

ऊपर लिख आये हैं कि मुकुटका मुख्य काम कीड़ोंको अपनी ओर आकर्षित करता है। पुट-पत्र और पँखुड़ियाँ परिवर्तित होकर एक प्रकारकी गाँठोंका रूप ग्रहण कर लेती हैं; जिनमें मीठा रस भरा रहता है। इन्हें मधुकोष कहते हैं। कई पुष्पोंके मधुकोष फूलके बीचमें रहता है। नस्टेरियम जैसे कुछ पौधोंके फूलकी पूंछके अन्दर मधुकोष पाया जाता है। पुष्पों की बनावटके अनुरूपही मधुकोषकी आकृति और स्थान होता है।

पुष्पके आवश्यक अवयव

पुंकेसर और स्त्रीकेसर ही पुरुषके दो आवश्यक अवयव है। इनके बिना पौधेकी जाती कायम नहीं रह सकती, क्योंकि इन्हींके संयोगसे गर्भधारण होता है जिससे बीज पैदा होता है। यही पौधेकी जननेन्द्रिय है।

अधिकांश फूलोंमें दोनोंही आवश्यक अङ्ग मौजूद रहते हैं, यथा गुलाबाँस में। इन्हें उभयेन्द्रिय या उभयलिंगी कहते हैं। तरबूज, खीरा, कद्दू आदिके पुष्पोंमें एकही जननेन्द्रिय होती है। इनको एकलिंगी पुष्प कहते हैं। उभयेन्द्रिय, पुष्प, पूर्ण और एकलिंगी अपूर्ण कहाता है।

नर पुष्पमें सिर्फ पुंकेसर ही मौजूद रहता है और मादा फूलमें स्त्रीकेसर। मादा फूलोंमें पुंकेसर नहीं रहता—पुष्पयोनि वर्तमान रहती है। खीर लौकी आदि में नर और मादा फूल एकही पौधे पर पाये जाते हैं। पपीता आदि कुछ पौधोंमें नर और मादा फूल जुदे जुदे पौधोंपर होते हैं। पपीतेमें कुछ पौधे ऐसेभी होते हैं, जिनमें उभयेन्द्रिय और एकलिंगी फूल एकही पौधे पर या दो भिन्न भिन्न सजातीय पौधों पर पाये जाते हैं। कुछ पौधोंके फूल नपुंसक होते हैं। इनका मुकुट बड़ा और पँखुड़िया अधिक होती हैं।

पुंकेसर—पुंकेसरको ही पुष्पकी पुरुषेन्द्रिय कहते हैं। प्रत्येक पुंकेसरके सिरे पर एक छोटी गाँठ सी होती है, जिसे वीर्य-कोष या रेत-पात्र कहते हैं। रेत-पात्रके अन्दरके छोटे छोटे कणोंको रेत-बिन्दु या

पराग-कण कहते हैं। पुंकेसरकी डंडीको, जिसपर रेत-पात्र लगा रहता है; लिंग-छत्र कहते हैं। लिंग छत्र हीन वीर्य कोष विनाश रेत-पात्र कहा जाता है। रेत-पात्र रहित लिंग छत्र भी पाये जाते हैं।

भिन्न भिन्न प्रकारके पुष्पोंमें जुदे जुदे आकारकी पुंकेसर पाई जाती है। पुंकेसर पुष्पके आधारसे ही निकलती है। वे प्रायः पतली होती हैं कमल आदि पुष्पोंमें पुंकेसरका नीचेका भाग पंखुड़ी जैसा होता है। उसके सिरे परके रेत पात्रसेही वह पहचानी जा सकती है। प्याज आदिमें केसर रेत-पात्रसे ऊपरको निकल आती है। आदमें पुंकेसर चौड़ी होती है और गुलेफिरंगीमें छोटी और चौड़ी अंडीके फूलमें पुंकेसर की शाखाएँ निकलती हैं। तुरई खीरा, कद्दू आदिमें पुंकेसर आधारसेही जुदी जुदी निकलती है; किन्तु ऊपरसे जुड़ी हुई होती है। कपासमें पुंकेसर गर्भाशय को चारों ओरसे घेरकर ढक लेती हैं। कुछ पौधोंमें पुंकेसर आच्छादनकी नलीके सिरे परसे निकलती है।

फूलोंमें पुंकेसरकी संख्या जुदी जुदी होती है। आम, आलू, धतूरा, बैंगन, सन आदिके फूलोंमें पांच पुंकेसर होती हैं; और पोदीना, तिल, तुलसी आदिमें चार। इनमें दो बड़ी और दो छोटी होती हैं। मोथा, गेहूँ जौ आदि घास वर्गके पौधोंके फूलोंमें तीन पुंकेसर पाई जाती हैं। चमेलीमें दो और अदरख, हलदीमें एक एक होती है। प्याज, बाँस, मूली, राई आदिमें छः पुंकेसर होती हैं, जिनमें चार बड़ी और दो छोटी रहती हैं। कचनार, मटर आदिमें दस पुंकेसर रहती हैं। कभी कभी नौ जुड़ी हुई और एक अलग पाई जाती है। लूनियामें पुंकेसरकी संख्या २ होती है। पोस्त, कमल, अनार आदिमें ये अत्यधिक होती हैं। सूरजमुखी, गेंदा आदिमें पुंकेसर जुदी जुदी रहती है, किन्तु रेत-पात्र जुड़े होते हैं।

अधिकांश फूलोंमें पुंकेसरकी संख्या पुट-पत्र या पंखुड़ियोंकी संख्याके बराबर या उसीका कोई गुणक होता है। अर्थात् पाँच पुट-पत्र और पाँच पंखुड़ियां वाले फूलमें पाँच या दस पुंकेसर पाई जाती हैं।

रेत-पात्रका आकार साधारणतः गोल या अंडाकृति होता है। ये दो भागोंमें विभक्त रहते हैं। इन दो भागोंमें या थैलियोंके बीचमें महीन तन्तु होता है, जिससे ये आपसमें जुड़े रहते हैं धान, गेहूँ जौ आदि घास वर्गके पौधोंके फूलोंमें रेत कोष दो फाड़वाला होता है। पुंकेसर के सिरे पर वीर्य-पात्र भिन्न-भिन्न रीतिसे जुड़ा रहता है। घास वर्गके पौधेके फूलोंमें वह कीलपर घूमा करता है. चम्पक आदि कुछ फूलोंमें वैसेही रेत पात्रके दोनों भागोंको मिलाये रहती है। बहुतसे फूलोंमें रेत-पात्र फूलके अन्दर ही रहता। कुछ फूलोंमें वह बाहर निकल आता है। और कुछमें नीचे-की ओरको लटका रहता है।

रेत-पात्रमें दो चार या छः थैलियाँ होती हैं। रेत-पात्रके फटने पर पराग-कण बाहर निकल आते हैं। रेत पात्र मेंकी थैलियाँ जुदे जुदे तरीकेसे फटती हैं और कुछमें बारीक बारीक छेद हो जाते हैं; जिससे पराग कण बाहर निकल आते हैं। कुछ रेत पात्र फटने पर बल खा जाते हैं, जिससे पराग-कण चारों ओर फैल जाते हैं।

पराग—पराग-कण जुदे जुदे आकारके होते हैं। ये गोल, कोणवाले, अंडाकृति और रोमयुत होते हैं। कपासकी जातिके पौधोंमें पराग-कण काँटे जैसे होते हैं। कुछ पराग-कणों पर नलियाँ भी होती हैं। कुछ पुष्पोंके पराग-कण गोल और ऊपरकी ओरको नोकदार होते हैं। कुछ फूलोंके पराग-कण तीन तीन चार चार की संख्यामें जुड़े रहते हैं। कुछ पुष्पोंमें कई पराग-कण मिलकर गुच्छेका रूप ग्रहण कर लेते हैं।

स्त्रीकेसर

स्त्री केसर फूलके बीचमें रहता है। इसकी आकृति पुंकेसरसे बिलकुल जुदे प्रकारकी होती है। यह पुष्पकी स्त्री जननेन्द्रिय है। यह एक या उससे अधिक नालिकाओंसे बनी होती है। इन्हें योनि-नलिका कहते हैं। ये पत्तोंका परिवर्तित रूप हैं। योनिनलिकाएँ स्वतन्त्र भी होती हैं और संयुक्त भी इनके आधार पर एक बन्द पेटी सी होती है, जिसे

गर्भाशय कहते हैं। इसके सिरे परकी छोटी गाँठको रज पत्र या रज-कोष कहते हैं। स्त्रीकेसरकी डंडीको योनि-सूत्र कहा जाता है। योनि-सूत्र-हीन रज-पात्र विनाल कहाता है।

योनि नलिकाको बच्चादानी भी कह सकते हैं। इसके अन्दर छोटे छोटे रज कण, रजोबिन्दु या कलल होते हैं। गर्भाधान होने पर यही वृद्धि पाकर बीज हो जाते हैं। रज कोषके पक जाने पर उनमेंसे एक चिपचिपा पदार्थ निकलता है जिस पर पराग कण चिपक जाते हैं। मटरके फूलोंमें सिर्फ एक बच्चा दाना होता है, किन्तु कई फूलोंमें से दो या उससे अधिक भी पाये जाते हैं।

भिन्न भिन्न फूलोंमें जुदे जुदे प्रकारकी स्त्रीकेसर पाई जाती है। केला राई आदिक फूलोंमें वह पुंकेसरसे छोटी होती है। सन, लाल मिर्च कपास आदि में यह पुंकेसरसे लम्बी होती है पपीता आदिमें यह बहुत ही छोटी होती है। अरुई जैसे फूलोंमें यह गर्भाशयसे चिपटी रहती है।

कुछ फूलोंमें गर्भाशयका सिरा विभक्त नहीं रहता किन्तु कुछ फूलोंमें यह दो, तीन या उससे अधिक भागोंमें विभक्त रहता है। अण्डीमें तीन और सनमें पाँच भाग होते हैं।

भिन्न भिन्न फूलोंमें रज-पात्र का आकार भी जुदा जुदा होता है। पकने पर रज-पत्र पर महीन रोएं निकल आते हैं, जिनमेंसे एक प्रकारका चिपचिपा द्रव्य निकलता है। पराग कण इससे चिपक जाते हैं और तब उनमें का जीवांश योनि-नलिका द्वारा गर्भाशयमें पहुँच कर जीवाणु से मिल कर बीज या फल पैदा करते हैं।

साधारण तौरसे दोनों ही प्रकारकी जननेन्द्रिय एक ही पुष्पमें पाई जाती है। कुछ पौधोंमें नर और मादा फूल जुदे जुदे होते हैं। कुछ पौधोंमें नर-पुष्प एक व्यक्ति पर होता है और मादा दूसरे पर। खीरा, नारियल, अंजीर आदि पर दोनों प्रकारके फूल एक ही पौधे पर होते हैं। बड़, अंजीर आदिमें ये एकही आधार पर जुदे जुदे होते हैं। गूलरमें नर फूल ऊपर को आदि मादा फूल नीचेकी ओर होता है।

गर्भाशय—यह पुष्पका वह अवयव है, जिसमें बीज और फल पैदा होते हैं। गर्भाशय दो प्रकार का होता है—१ उच्च स्थानीय और २ अधस्थ। जब पुट-चक्र, मुकुट और पुंकेसर गर्भाशयकी जड़में से निकलते हैं तो वह उच्च-स्थानीय कहाता है। जब ये तीनों अंग गर्भाशय की जड़ से ऊपर को निकलते हैं तो वह निम्न या अधस्थ कहा जाता है। कपास, राई, पोस्त आदिका गर्भाशय उच्च-स्थानीय और खीरा, अनार, अमरूद, कद्दू, तुरई, ककड़ी, लौंग आदिका गर्भाशय अधस्थ होता है।

गर्भाशय-कोष्ठ—गर्भाशयके भीतरको एक या उससे अधिक कोष्ठ होते हैं। मटर, सेम मूंग, चना, बादाम, आम आदिके गर्भाशयमें एक कोष्ठ होता है। विभक्त योनि-नलिका वाले गर्भाशयमें एक और कभी कभी दो कोष्ठ होते हैं। कपास, भिण्डी, अम्बड़ी आदिमें पाँच कोष्ठ होते हैं और पोस्त, नीबू नारङ्गी आदिका गर्भाशय बहु कोष्ठ युत होता है।

गर्भाशयका प्रत्येक कोष्ठ एक योनि नालिकाका दर्शक है। फूलमें जितनी योनि-नालिकाएं होंगी, गर्भाशयमें उतने ही कोष्ठ रहेंगे। गर्भाशयके अन्दर बीजकलल होते हैं। ये कोष्ठोंके मुड़े हुए किनारों पर चिपके रहते हैं। बीज-कलल गर्भ झिल्लीके किनारों पर पैदा होते हैं।

कुछ पौधोंके गर्भाशयके कोष्ठ मिले हुए होते हैं और कुछके जुदे जुदे। फली वाले पौधोंके गर्भाशयमें बीज-कलल कोष्ठके किनारे पर लगे रहते हैं। यथा सेम, चना, मटर, मसूर, मूँग आदि। अलसी, अनार, जामफल, केला आदिमें ये मध्याक्ष पर पैदा होते हैं। और पोस्त, राई, कद्दू आदिके गर्भाशयमें ये कोष्ठ भित्तिका पर होते हैं।

शाखा पर पत्तोंके रचनाक्रम, और पुष्पके स्तंभक पर उसके भिन्न भिन्न अवयवोंके रचनाक्रममें बहुत अन्तर है। स्तंभकके छोटे बड़े होनेके कारण ही

स्तंभक पर भिन्न भिन्न अवयवोंकी रचनामें फर्क नजर आता है।

कुछ पुष्पोंमें फूलके अवयवोंकी रचना घड़ीकी बाल कमानी (Hair-Spring) की तरह होती है। कुछ फूलोंमें प्रत्येक अवयव भिन्न भिन्न वतु्र्लमें संगठित रहता है। स्प्रिंग जैसे संगठन और वतु्र्ल-सगठनमें भी कई भेद हैं। और बनस्पति-विज्ञानमें ये भिन्न भिन्न नामोंसे पहचाने जाते हैं। स्थानाभावके कारण वैज्ञानिक विवेचनको छोड़ दिया है।

पुरानी दुनियां*

(ले० श्री जगपति चतुर्वेदी 'हिन्दी भूषण' विशारद)

आजसे सहस्रों वर्ष पूर्व मनुष्यको संसारके विस्तारके सम्बन्धमें बहुत थोड़ा ज्ञान था। उन दिनों लोगों के पास ऐसे साधन नहीं थे जिनसे वे लम्बी लम्बी यात्रायें कर दूर दूरके देशों का पता लगा सकें। आधुनिक युगकी तरह बायुयान और बड़े बड़े जलयानोंका सर्वथा अभाव था। स्थल मार्गसे यात्रा करनेके लिये भी रेलगाड़ी और मोटरोंका आविष्कार नहीं हुआ था। लोग अपने पालतू पशुओंकी सहायतासे या पैदल यात्रा कर सकते थे। परन्तु बीहड़ जगलों और सघन झाड़ियों के कारण अधिक लम्बी यात्रा कर सकना बड़ा कठिन था। इस कारण अपने आस पासकी भूमि का ही लोगोंको ज्ञान होता था। इस प्रकारकी कठिनाई में प्रकृतिने जिन देशोंको जलके अगाध कोषोंसे पृथक दिया कर दिया था उनका तो एक दूसरे को ज्ञान प्राप्त कर सकना बिलकुल ही कठिन था। समुद्रके किनारे खड़ा हुआ मनुष्य जब अपने सामने एक अगम्य अन्धकारमय विस्तृत जलखंड की प्रचंड लहरोंको किनारेसे टकरा कर गर्जन करते हुए देखता तो यही समझता कि संसारका अन्त यहीं है। इसके आगे अगाध जल ही जल है और भूमि का कहीं नाम नहीं है।

उस अन्धकारके युगमें भूमंडलके भिन्न भिन्न खंडोंमें जो जहाँ पर रहता था उसीको भूमंडल समझे बैठा था। उन दिनों लोगोंकी आवश्यकतायें बहुत थोड़ी थीं और उनकी पूर्तिके लिए साधारण वस्तुयें आस पासही मिल जाती थीं इस कारण दूसरे स्थानोंका अनुसन्धान करने और दौड़ धूप मचानेकी आवश्यकता नहीं होती थी परन्तु जब मनुष्योंके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश फैलने लगा और आवश्यकतायें बढ़ने लगीं तो उत्तरोत्तर भूमि के विस्तारका ज्ञान बढ़ता गया, दूसरे देशोंका पता लगता गया और मनुष्योंने भूमंडलके आकार प्रकारका विचार करना प्रारम्भ किया।

आज कल भूगोलका साधारण ज्ञान रखने वाले भी समझते हैं कि पृथ्वीका आकार नारंगीकी तरह गोल है और जिस प्रकार एक बहुत बड़े गोलाकार पदार्थ पर बैठा हुआ नन्हा सा कीट उसके धरातल को चपटा देख सकता है उसी प्रकार पृथ्वीकी परिधि २५ सहस्र मील होनेके कारण मनुष्यकी दृष्टिमें पृथ्वी का धरातल चपटा दिखाई पड़ता है। परन्तु प्रारम्भिक कालमें मनुष्य भूभागके अंश मात्र का ज्ञान प्राप्त कर सकता था और जलखंडोंके दुर्गम होनेके कारण पृथ्वीके आकारके सम्बन्धमें उसकी बुद्धि काम नहीं कर सकती थी इसके परिणाम स्वरूप हिब्रू लोगोंने यह विचार स्थिर किया कि पृथ्वी चपटी है और उसके चारों ओर जलकी एक प्रचंड धारा प्रवाहित हो रही है।

प्रारम्भमें बहुत दिनों तक लोगोंकी ऐसीही धारणा रही। अपने अल्प ज्ञानके कारण दुर्धर्ष महासागरको पार कर सकने का मनुष्यको उस युगमें अनुमान भी नहीं हो सकता था। धीरे धीरे जब ज्ञान की वृद्धि होने लगी तो मनुष्योंने छोटे छोटे जलखंडोंमें चल सकने वाली नन्हीं नन्हीं नौकाओंको उत्तरोत्तर सुन्दर रूप देना प्रारम्भ

*लेखककी अप्रकाशित पुस्तक 'भौगोलिक कहानियां' से

किया, नौकाओंके आकार प्रकारमें उन्नति होने लगी उसके साथ ही नाविकों का साहसभी बढ़ता गया अतएव नदी नालोंसे आगे बढ़कर छोटे छोटे समुद्रोंमें नौकायें दौड़ने लगीं।

एशिया योरप और अफ्रिका महाद्वीपोंके मध्य एक सागर है जो भूमध्य सागर नामसे प्रसिद्ध है। यह चारों ओर स्थल से घिरा हुआ है। इसके पूर्व और पश्चिममें दो छोटे छोटे जल द्वार भी हैं। स्थलसे घिरा होनेके कारण इसमें महासागरोंकी भाँति तूफान और प्रचंड लहरोंका भय नहीं रहता। इसी समुद्रके पूर्वी तट पर एशिया महाद्वीपका सीरिया प्रदेश है। प्राचीन कालमें इस देशमें फोनीशियन जातिके लोग रहते थे। इनका देश पूर्वकी ओर एक बड़े रेगिस्थानसे घिरा हुआ था। इस कारण उस ओर व्यापार करनेका मार्ग बड़ा दुर्गम था और स्वयं अपने देशमें भी धरती उपजाऊ नहीं थी अतएव इन लोगोंने समुद्रके वक्षस्थल पर उतर कर जीवन निर्वाह करनेका साहस किया। इन लोगोंके बाहुबल और अदम्य साहसने सागरसे पृथक् हुए देशोंमें सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए विकट जलबन्धको अधिकृत कर सम्बन्ध सूत्रमें परिणत कर दिया जिसके फल स्वरूप कालान्तरमें यूनानवालोंने स्थान स्थान पर भूमध्य सागरमें अपने उपनिवेश स्थापित कर व्यापार फैलाया और समृद्धि प्राप्त की यूनानके वैभव कालमें भूमध्य सागर के चारों ओरके देशोंका ज्ञान प्राप्त किया जा चुका था। इस कारण भूमध्य सागरके चारों ओरके देशोंको भूमंडल समझा जाता था। यही कारण था कि इस सागरको भूमंडलका मध्यस्थान समझ कर इसका नाम भूमध्य सागर रक्खा गया था। अन्यथा भूमिसे चारों ओरसे घिरे होनेके कारण ही इसका नाम यह पड़ना युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता क्योंकि संसारमें बहुतसे दूसरे समुद्र भी हैं जिनका नाम भूमध्य सागर नहीं है परन्तु वे भूमिसे घिरे हुए हैं।

यह मनुष्यका स्वभाव है कि जिन बातोंका उसे यथार्थ ज्ञान नहीं होता उसके सम्बन्धमें कुछ कल्पना कर लेता है। जब प्रारम्भमें मनुष्यने आकाशमें वर्षाऋतुमें मेघोंका गर्जना और बिजली का चमकना देखा तो उसे इसका कुछ कारण ज्ञात नहीं हुआ इस कारण कल्पनाकी गई कि मेघोंमें देवता रहते हैं जिनका प्रकोपही बिजलीका कड़कना और चमकना है। वही बात के आकारके सम्बन्धमें भी थी। हिब्रू लोगोंकी भाँति यूनानके लोगोंने भी पृथ्वीके आकार पर बहुत विचार किया परन्तु वे भी अपने परिमित ज्ञान और अनुभवके कारण इसी निश्चय पर पहुँचे कि पृथ्वी चपटी है और कुम्हारके चक्केकी तरह गोल है जिसके चारों ओर अनन्त समुद्र हिलोरें मार रहा है।

यूनानके पश्चात् रोमवालोंने अपनी विजय दुन्दुभी बजाकर समृद्धि शाली विस्तृत साम्राज्य स्थापित किया। रोम साम्राज्यके प्रकारसे श्रीसम्पन्न व्यक्तियों और शासक वर्गोंके आमोद प्रमोदके लिए दूर दूर देशोंको वस्तुएं आनेके कारण लोगोंमें देशों का ज्ञान बढ़ा, व्यापार और यात्रा होने लगी और भूगोल विद्यामें अधिक उन्नति हुई। उस समय तक भी संसारका लोगोंको जितना ज्ञान था उसकी उत्तरी सीमा योरपके मध्यके जंगल, दक्षिणीय सीमा उत्तरी अफ्रिकाकी मरुभूमि, पश्चिमी सीमा अटलांटिक महासागर और पूर्वीय सीमा मध्य एशियाके पठार कहे जा सकते हैं। समुद्री किनारेमें इन्दोचीन तकके एशियाके किनारे और जंजीबार तथा गिनीकी खाड़ी तक अफ्रिकाके किनारे का लोगोंको ज्ञान था। सम्पूर्ण अमेरिका महाद्वीप, आस्ट्रेलिया तथा अफ्रिका और एशियाके अवशिष्ट भाग का लोगोंको ज्ञान नहीं था। जिन स्थानों का लोगोंको ज्ञान था उसकी भी ठीक ठीक बहुत सी बातें ज्ञात नहीं थी। जो मान चित्र बनाये जाते थे वे काल्पनिक होते थे।

प्रकृतिकी लीला बड़ी विचित्र है। जिस समय वर्षाकालमें आकाशमें काले बादलोंके घिरे रहनेके

कारण निशाकालमें भूतल पर घोर अंधकार का साम्राज्य रहता है आकाशमें मन्द ज्योति वाले सितारोंका भी पता नहीं चलता उस समय भी निबिड़ अन्धकारको भेद कर आकाश मंडलमें क्षण मात्र के लिए एक विद्युत रेखा दौड़ जाती है। इसी प्रकार उस अविद्याके युगमें भी ज्ञानकी मन्द ज्योति का आभास दो एक विद्वानोंके मस्तिष्कमें दिखाई पड़ता था जिन्होंने अपने बुद्धि बलसे यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया कि पृथ्वी चपटी नहीं है प्रत्युत गेंदकी तरह गोल है। इन लोगोंने पृथ्वीका मनगढ़न्त मानचित्र भी बनाया जिसका कई शताब्दियों तक प्रयोग होता रहा। परन्तु उसमें बहुत सी भूलोंका होना स्वाभाविक ही था। उदाहरणार्थ कैस्पियन सागर वास्तवमें बहुत बड़ी झील है और इसके चारों ओर भूमि है परन्तु उस मानचित्रमें इसको समुद्र समझा गया था जो उत्तरमें उत्तरी महासागरसे मिला माना जाता था। इसी प्रकार हिन्दमहासागर स्थलसे घिरा हुआ समुद्र माना गया था जिसके दक्षिणमें एशिया और अफ्रिका मिले हुए समझे जाते थे और सूर्यकी अधिक तपन तथा भूमिके रेगिस्तान होनेके कारण उधर मनुष्यों का बसना असम्भव बतलाया जाता था। इन बातों पर आधुनिक युगके मनुष्य हँसे बिना नहीं रह सकते क्योंकि अब कैस्पियन सागरके उत्तरी महासागरसे अछूते रहने और मध्यके विस्तृत स्थल खंडको साधारण मनुष्य भी भूमंडलके मानचित्र में देख सकता है। खारा पानी और अधिक विस्तार का होने पर भी कैस्पियन सागरको झील समझनेमें अब सन्देह करनेका स्थान ही नहीं है। जिन स्थानों पर एशिया और अफ्रिका महाद्वीप को मिलाने वाली धुर दक्षिण तक विस्तृत मरुभूमि बतलायी जाती थी उन स्थानों पर समुद्र हिलोरें मार रहा है और उनमें विशालकाय जलयान दौड़ लगाते हैं परन्तु इसी प्रकारकी भूलोंको सुधारने और पृथ्वीके मानचित्रको आजका रूप देनेमें मानव समाजने कितनी शताब्दियों तक अटूट प्रयत्न किया है, कितने प्राणियोंने इसकी वेदी पर अपनेको बलि कर दिया है इसके लिये मनुष्यने हठात् कितनी विकट आपदाओंका आह्वान किया है ये ऐसी बातें हैं जिनका स्मरण करना प्रत्येक विचारशील सहृदय मानवका परम कर्त्तव्य है। ऐसे विषयका ज्ञान अवश्य ही उन्नति शील प्राणीका अच्छा मार्ग दर्शक होगा। ऐसी चर्चायें सभ्य मंडलीके आमोद प्रमोदकी अच्छी सामग्री होंगी। ऐसी कथाओंका संग्रह प्रत्येक पुस्तकालयका सुन्दर अंग होगा।

जल और स्वास्थ्य

(ले० श्रीसतीशचन्द्र सक्सेना बी० एस०-सी०)

इस बातको सभी स्वीकार करेंगे कि स्वास्थ्य रक्षा मनुष्यका परम कर्तव्य है, क्योंकि स्वास्थ्य रहित जीवन असार है। आज कलके विद्यार्थियोंके लिये स्वास्थ्य रक्षा आवश्यक है क्योंकि आई. सी. एस., रेलवे इत्यादि की परीक्षाके पहिले स्वास्थ्य परीक्षामें उत्तीर्ण होना पड़ता है। मोटापनही स्वास्थ्य नहीं है परन्तु शरीर का गठा हुआ होना और निरोगी होना ही पूर्ण स्वास्थ्य है। जब किसीका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है तो वैद्य और डाक्टर उसको बहुमूल्य औषधियां पीनेकी, घी दूध मलाई रबड़ी इत्यादि स्वास्थ्य जनक भोजन करनेकी, डण्ड और बैठक लगाने की राय देते हैं परन्तु इस पर कोई ध्यान नहीं देता कि जल का भी जो बिना पैसा कौड़ीके बहुत मिल सकता है कुछ स्वास्थ्यसे सम्बन्ध है या नहीं। मैं इस लेख में केवल जल ही का स्वास्थ्यके सम्बन्ध वर्णन करूंगा।

पहिला प्रश्न यह है कि जल बिना जीवन हो सकता है या नहीं? यह बात सिद्धकी जा चुकी है कि पेड़ों और पौधों में भी मनुष्य और पशुके समान जान है। यह बात प्रति दिन देखनेमें आती है कि पौधे पानी न देनेसे मुर्झाने लगते हैं और अगर कई

दिवस तक पानी न दिया जावे तो सूख जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि इनके जीवनके लिये जल आवश्यक है। पशु और मनुष्य भी जल बिना बहुत व्याकुल हो जाते हैं, मनुष्य व्रत रखते हैं तो आहार नहीं करते किन्तु जल तब भी पीते हैं क्योंकि आहार बिना मनुष्य बहुत दिनों तक जीवित रह सकता है परन्तु जल बिना नहीं। यह बात भी बहुतोंको मालूम होगी कि जब कोई हैजे़का रोगी बिलकुल ठंडा पड़ जाता है और जीवन की कोई आशा नहीं रहती है तो डाक्टर लोग बांहकी एक विशेष नस चीरकर नमक का पानी सूक्ष्म पिचकारी द्वारा भीतर पहुँचाते हैं ताकि वह शीघ्र ही रक्तसे मिल कर सारे शरीर में दौड़ने लगे। और इससे बहुधा रोगीका जीवन बचा लेते हैं।

ज्वरमें प्यास अधिक लगती है। इसके कई कारण है। एक तो यह कि ज्वरमें पसीना बहुत आना होता है इसलिये शरीरको जलकी आवश्यकता बढ़ जाती है। दूसरा यह कि पानी विषकी मात्राको कम करता है और ज्वरमें शरीरमें विष अधिक होता है। इसी प्रकार मदिरा पान करनेके बाद भी प्यास खूब लगती है क्योंकि शरीरका जल मदिरा के विषकी मात्रा कम करनेमें खर्च हो जाता है। इस लिये जीभ, मुंह और गला सूख जानेके कारण भोजन निगलना कठिन हो जाता है और कभी कभी जीभ और गला गंदा हो जाता है जिससे विषकी मात्रा और भी अधिक हो जाती है। ज्वरमें रोगी जल अधिक क्यों माँगता है इसका एक कारण यह भी है कि उस समय रोगीके शरीरमें गर्मी बहुत होती है और शरीरको ठंडा पानी देनेसे गर्मी घट जाती है जैसे कि गर्म पदार्थ ठंडा पानी डालनेसे ठंडा हो जाता है। इसी कारण बहुता ज्वर कम करने के लिये रोगी ठंडे पानीके कढ़ावमें बिठा देते हैं जिसको जल चिकित्सा कहते हैं।

जल केवल ताप ही को नहीं घटाता, विषकी मात्राको कम ही नहीं करता बलिक बिषको धोकर निकाल भी देता है और शरीरको बिष रहित कर देता है। इसी लिये ज्वरमें और और विषैले रोगोंमें ठंडा जल अधिक देना लाभदायक है क्योंकि शरीर में तो केवल उतना ही पानी रहता है जितनी कि उसको आवश्यकता होती है कम न अधिक तो जितना ही जल अधिक दिया जावेगा उतनाही अधिक शरीरके बाहर निकलेगा और उतना ही अधिक विष उसके साथ निकल जावेगा। निद्रा लानेके लिये भी जल खूब पीना लाभदायक है।

अभी थोड़ाही समय हुआ होगा कि इससे पहिले ज्वरमें जब प्यास लगती थी तो पानी नहीं दिया जाता था। प्यासका होना खराब समझा जाता था। लोग यह नहीं समझते थे कि ज्वरमें पानी अधिक देने ही से लाभ है। प्यास हानिकारक नहीं है बल्कि लाभदायक है। देखिये ईश्वर की माया कैसी अद्भुत है कि ज्वर में प्यास बढ़ती है और वही लाभ पहुँचाती है। डाक्टरों को जिन्होंने सबसे पहिले ज्वरमें खुब पानी पिलाना आरम्भ किया बहुत बुरा और हानिकारक समझा गया अब भी बहुधा ऐसा देखनेमें आता है कि जब कोई रोगी पानीका गिलास उठा लेता है तो शीघ्रतासे गिलास उससे छीन लिया जाता है। लोग कैसी भूल करते हैं कि जब रोगी प्यासा होता है जैसा कि उसको होना ही चहिये तो पानी नहीं देते और रोगीको भोजनकी इच्छा नहीं होती और नहीं होनी चाहिए भी, तो हम उसको भोजन करानेपर तुल जाते हैं हम समझते हैं कि वह भोजन बिना दिये निर्बल हो जायगा और मर भी जा सकता है किन्तु पानी न देनेसे कुछ हर्ज नहीं होगा बल्कि लाभ होगा। कभी कभी खाँसीके रोगीके कमरेमें बहुधा भापकी डेकची रख दी जाती है ताकि भाप वायुको जल युक्त करदे और इस तरह पर जो खाँसी फेफड़ेमें सूखा पन होने से उत्पन्न होती है दूर हो जावे क्योंकि जल युक्त वायु फेफड़ेमें जाकर उसके सूखापन को दूर कर देता है।

बहुधा वर्षा होने के पहिले हमको सिरमें दर्द और बेचैनी सी मालूम होती है परन्तु वर्षाके बाद हम अच्छे हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वर्षाके

पहिले वायु शरीरके जलको अच्छी तरह नहीं सुखाता क्योंकि उस समय वायु जलयुक्त होता है परन्तु वर्षा के बाद वायु जल रहित हो जाता है और इससे शरीर का जल सुखाने लगता है।

भोजन जो हम करते हैं उनसे भी थोड़ा विष बन जा सकता है और यह विष पेट और गुर्देमें जाकर जमा होते रहते हैं। बहुधा हृदय तक पहुँच जाते है वह शरीर को रोगी बना देते हैं और शीघ्र ही बुढ़ापेके लक्षण दिखलाई पड़ने लगते हैं। ये विष पानी द्वारा साफ हो सकते हैं। जल खूब पीनेसे भीतरी विष घुल कर निकल जाते हैं और स्नान करने से बाहिरी विष धुल जाते हैं इसीलिये प्रति दिन स्नान करना अति आवश्यक हैं। जो मनुष्य प्रति दिन स्नान नहीं करते उनके शरीर पर विष जमा होता रहता है और इसीसे शरीरसे दुर्गंध आने लगती है। दुर्गंध वायु नाक द्वारा भीतर जाने से विष भीतर पहुँच जाता है और बहुत हानि करता है। शरीरके बाहर विष पसीना द्वारा निकलता है।

रोगीको खूब पानी देने से यही तात्पर्य नहीं कि एक ही बार उसके मुंहमें एक सुराही भर जल लौट दिया जाये बल्कि यह कि थोड़ा थोड़ा करके उसको बहुत सी दफा पिलाया जावे। फलों में जल रसके रूप में होता है रसमें केवल जलही नहीं होता बल्कि और ऐसी औषधियाँ भी होती हैं जो विष निकालने में सहायता करती हैं। इसीलिये फल-आहार बहुत अच्छा है। उससे दो लाभ हैं। एकतो यह कि खाने में अच्छे लगते हैं और भोजन का काम देते हैं। दूसरे जल, और विष निकालने वाली औषधियां शरीर को खूब लाभ पहुँचाते हैं।

भोजनके साथ अधिक जल नहीं पीना चाहिए क्योंकि जल पाचन रसोंको पतला कर देता है जिससे इन रसों का गुण कम हो जाता है। दूसरे पानी पेटकी गर्मी को भी कम करता है और भोजन इस गर्मी ही से पचता है। बहुत से रोग ऐसे हैं जिनमें भोजनके साथ जल बिल्कुलही नहीं पीना चाहिए ताकि भोजन पाचन रसोंसे ही मिल कर पेटके अन्दर जावे। अब आप यह पूछ सकते हैं कि कब और कितना जल पीना चाहिए ताकि अधिक लाभ हो। भोजनके पहिले या बाद पानी पीना अच्छा है। भोजनके समय यदि जल बिल्कुल न पिया जावे और उसके लगभग एक घंटा बाद थोड़ा थोड़ा करके कई दफा पिया जावे तो लाभ दायक होगा। रातको सोनेके पहिले पानी पी लेना चाहिए और टट्टी जानेके पहिले पानी पीना अति उत्तम है। प्रति दिन पांच सेर जल शरीर के अन्दर पहुँचना चाहिए। इसमें से लगभग एक सेर जल तो भोजन द्वारा भीतर चला जाता है बस बाकी चार सेर भोजनके बाद या पहिले थोड़ा थोड़ा करके पी लेना चाहिए।

जिस मनुष्य का स्वास्थ्य अच्छा है वह चाहे जल गरम पीवे चाहे ठंडा परन्तु जिसकी पाचन शक्ति कम है उसको ठंडा जल नहीं पीना चाहिए और कम सेकम भोजनके साथ तो कदापि नहीं गरम और ठंडा पानी पीना हर मनुष्य को आदत पर निर्भर है। यह हर मनुष्य स्वयं जान सक्ता है कि उसको ठंडा जल लाभ दायक होता है कि गरम जल। कुछ मनुष्योंको गर्मी में गरम चाय ठंडक पहुँचाती है परन्तु दूसरोंको नुकसान करती है और बरफ का पानी लाभ दायक होता है।

वैज्ञानिक परिमाण

८५. यावनिक विश्लेषण सिद्धान्त

(Ionic dissociation theory)

[लेखक—श्री सत्यप्रकाश एम. एस-सी.]

आरहीनियसके सिद्धान्तके अनुसार जब सैन्धक हरिद्के समान कोई लवण जलमें घोला जाता है तो यह दो प्रकारके यवनोंमें विभाजित हो जाता है।

$$\text{सै ह} \rightarrow \text{सै}^{\circ} + \text{ह}^{-}$$

$$\text{अथवा} \rightarrow \text{सै}^{+} + \text{ह}^{-}$$
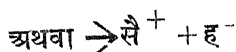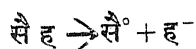
इसमें सै° धनात्मक यवन है और ह' ऋणात्मक है। इस प्रकारकी प्रक्रियाको यापन (ionisation) कहते हैं। गन्धकाम्लका जलमें निम्न प्रकार विश्लेषण होता है—

$$\text{उ}_2 \text{ग ओ}_8 = \text{उ}^{+} + \text{उ}^{+} + \text{ग ओ}_8''$$
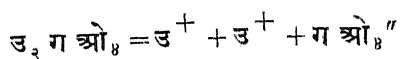
विश्लेषणकी मात्रा (degree of dissociation):—यह प्रत्येक विश्लेषणके लिये अलग अलग होती है।

व (विश्लेषण की मात्रा) =

$$\frac{\text{घुलनशील पदार्थके विश्लेषित अणुओंकी संख्या}}{\text{घुलनशील पदार्थके सम्पूर्ण अणुओंकी संख्या}}$$

यह विश्लेषण मात्रा (व) भिन्न भिन्न शक्तिके घोलों का निस्सरण दबाव (osmotic pressure) और विद्युत् चालकता निकाल कर मालूमकी जाती है।

निस्सरण दबाव तीन विधियोंसे निकाला जाता है—(१) सीधी तौरपर दबाव नापकर तथा घुलनशील पदार्थ-की विद्यमानता में (२) क्वथनांकका उत्कर्ष और (३) हिमांकका अवकर्ष नाप कर। घोलमें जितने ही यवन होंगे उसीके हिसाबसे उसकी विद्युत् चालकता होगी। घोल जितना ही हलका होता जायगा, विद्युत् विश्ले-षणकी मात्रा उतनी ही बढ़ती जायगा। घोलके एक विशेष हलकेपन पर पदार्थ पूर्णतः विश्लेषित हो जायगा और फिर और अधिक हलका करने से विश्ले-षणकी मात्रामें कुछ अन्तर न पड़ेगा और इसलिये इस विशेष हलकेपन पर विद्युत् चालकता स्थायी हो जायगी। इस हलकेपनको अनन्त (∞) हलकापन कहते हैं। यदि अनन्त हलकेपन पर विद्युत् चालकता च_{∞} हो और म शक्तिके घोलकी चालकता $\text{च}_{\text{म}}$ हो तो—विश्लेषण की मात्रा

$$\text{व} = \frac{\text{च}_{\text{म}}}{\text{च}_{\infty}}$$

यह कहा जा चुका है कि घोलमें लवण ऋण यवन और धन यवनमें विश्लेषित हो जाते हैं। एक शक्तिक लवणमें इन यवनों पर क्रमशः (− इ) और (+ इ) विद्युत् संचार रहता है और ये इकाई विद्युत् क्षेत्रमें एक दूसरेकी विपरीत दिशामें क्रमशा ग^{+} और ग^{+} रफ्तार (mobility) से घूमते हैं।

$$\frac{\text{ग}^{-}}{(\text{ग}^{+} + \text{ग})} \equiv \text{न या ऋण यवनकी भ्रमण निष्पत्ति)}$$

(migration ratio)

$$\frac{\text{ग}+}{(\text{ग}^{+} + \text{ग}^{-})} \equiv \text{न (धन यवन की भ्रमण-निष्पत्ति)}$$

इसी को हिटोर्फकी वाहक संख्या (transport number) कहते हैं।

भ्रमण निष्पत्ति

म = प्रति लीटर तुल्य-शक्ति, त° = प्रयोगका तापक्रम

पदार्थ	त° श	शक्ति म	निष्पत्ति न	पदार्थ	त° श	शक्ति म	निष्पत्ति न
पां ह	—	·००३	·५०५	र नो ओ$_3$	१७°	·४ - ·०२	·५२६
पां स	१८°	·०३-·०१	·५०४	ताग ओ$_4$	१८	·०८ - ·०२	·६२५
पां नो ओ$_3$	८	·१	·४९७	उ ह	१०	·०५ - ·०२	·१५९
सै ह	१९	·०५	·६२९	उ नो ओ$_3$	१८	·२५	·१७
शोह	१८	·०३- ·००८	·६७	उ$_2$ गओ$_4$	११	·०५	·१७
				पां ओ उ	—	·१	·७४
				सै ओ उ	२५	·०४	·८

घोलोंकी विद्युत् चालकता

क = १८° श पर घोलकी विशिष्ट विद्युत् चालकता (ओह्म$^{-1}$ शम$^{-1}$ में)
प = प्रति १०० ग्राम घोलमें अनार्द्र घुलनशील पदार्थ की मात्रा
त = घोल के १ घ. शम. में ग्राम तुल्यांककी संख्या, प्रति लीटर ग्राम तुल्यांक = १००० त/क/च = त
च = तुल्य विद्युत् चालकता

तीव्रघोल

प %	क	च = क/त	तापक्रम गुणक	प%	क	च—क/त	तापक्रम गुणक
१ पां ह				१/२ उ$_2$ ग ओ$_4$			
			·०				·०
५	·०६९०	९९·९	२०१	५	·२०८	११८	१२१
१०	·१३५९	९५·२	१८८	१०	·३९१	१८०	१२८
१५	·२०२०	९१·५	१७९	२०	·६५३	१४०	१४५
२०	·२६७७	८८·९	१६८	४०	·६८०	६४	१७८
२१	·२८१०	९७·५	१६६	६०	·३७३	२०·३	२१३
				८०	·११०	३·९	३४९
				१००	·०१५७	—	०३१

ह %	क	च = क/त	तापक्रम गुणक
१ सै ह			
			·०
५	·०६७२	७६	२१७
१०	·१२११	६६·२	२१४
१५	·१६४२	५७·८	२१२
२०	·१९५७	४९·९	२१६
२५	·२१३५	४२·०	२२७
२६·४	·२१५६	३९·८	२३३
१ उ ह			
			·०
५	·३९४८	२८१·०	१५८
१०	·६३०२	२११·१	१५६
२०	·७६१५	१२६·२	१५४
३०	·६६२०	६९·८	१५२
४०	·५१५२	३९·१	—
१ उ नो ओ$_{३}$			
			·०
६·२	·३१२	३०७	१४७
१२·४	·५४२	२५७	१४२
१८·६	·६९०	२११	१३७
२४·८	·७६८	१६९	१३७
३१	·७८२	१३३	१३९
४९·६	·६३४	६१	१५७
६२	·४९६	३६·४	१५७

प%	क	च = क/त	तापक्रम गुणक
१ पां ओ उ			
			·०
४·२	·१४६४	१८८	१८७
८·४	·२७२	१६९	१८६
१२·६	·३७६	१५०	१८८
२९·४	·५४३	८१	२२१
४२·०	·४२१	३९	२८३
१ सै ओ उ			
			·०
२·५	·१०९	१७०	१९४
५	·१९७	१४९	२०१
१०	·३१२	११२	२१७
२०	·३२७	५३	२९९
४०	·११६	८१	६५
१ र नो ओ$_{३}$			
			·०
५	·०२५६	८३·४	२१८
१०	·०४७६	७४·३	२१७
१५	·०६८३	६७·९	२१५
४०	·१५६५	४५·०	२०५
६०	·२१०१	३१·१	२०९

८६. समस्थानिक (Isotopes)

तत्व	परमाणुसंख्या	परमाणुभार	न्यूनतम समस्थानिक	समस्थानिकों के भार	तत्त्व	परमाणुसंख्या	परमाणुभार	न्यूनतम समस्थानिक	समस्थानिकों के भार
शोणम्	३	६·९४	२	७,६	जर्मनम्	३२	७२ ५	३	७४, ७२, ७०
टंकम्	७	१०·९	२	११,१०	शशिम्	३४	७९ २	६	८०, ७८, ७६, ८२, ७७, ७४
नूतन	१०	२०·२	२	२०,२२					
मगनीसम्	१२	२४·३२	३	२४,२५,२६	अरुणिन्	३५	७९ ९२	२	७९,८१
शैलम्	१४	२८·३०	२	२८,२९(३०)	गुप्तम्	३६	८२ ९२	६	८४,८६,८२,८३,८०
हरिन्	१७	३५·४६	२	३५,३७	लालम्	३७	८५·४५	२	८५,८७
आलसीम्	१८	३९·८८	२	४०,३६	रजतम्	४७	१०७ ८८	२	१०७,१०९
पांशुजम्	१९	३९·१	२	३९,४१					
खटिकम्	२०	४०·०७	२	४०,४४	वंगम्	५०	११८ ७	७(८)	१२०,११८,११६,१२४,११९,
नकलम्	२८	५८·६९	२	५८,६०					११७,१२२, (१२१),
ताम्रम्	२९	६३·५७	२	६३,६५	आंजनम्	५१	१२१·७७	२	१२१,१२३
दस्तम्	३०	६५·३७	४	६४,६६,६८,७०	अन्यजन	५४	१३०·२	७(९)	१२९,१३२,१३१,१३४,१३६,
									१२८,१३७,(१२६),(१२४)
गालम्	३१	६९·७२	२	६९,७१	पारदम्	८०	२००·६	(६)	(१९७–२००),२०२,२०४

८७. विद्युत् रासायनिक तुल्यांक

(Electro chemical equivalents)

फैरेडे का विद्युत् विश्लेषण (electrolysis) सम्बन्धी सिद्धान्त इस सूत्र से स्पष्ट हैं:—

भ=ध व स

यदि ध एम्पियर धारा द्वारा स सैकन्ड समय में मुक्त यवन (ion) की तौल भ ग्राम हो, और व यवन का विद्युत् रासायनिक तुल्यांक है अर्थात् १ सैकन्ड में १ एम्पियर धारा द्वारा मुक्त भार है।

फैरेडे के सिद्धान्तों की सत्यता कभी कभी गौण रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा अवरोधित हो जाती है। भिन्न २ विद्युत् रासायनिक तुल्यांकों का मान प्रयोग में सदा रजत के मान से हिसाब कर निकाला जाता है। रजत का मान बहुत शुद्धता पूर्वक निश्चित कर लिया गया है। विद्युत् रासायनिक तुल्यांक रासायनिक तुल्यांकों के समानुपाती हैं।

$$\text{रासायनिक तुल्यांक} = \frac{\text{तत्त्व का परमाणुभार}}{\text{विद्युत् विश्लेष्य (electrolyte) की अपेक्षा से तत्त्व की संयोग शक्ति (valency)}}$$

तत्त्व	रासायनिक तुल्यांक	व
रजत	१०७.८८/१	०.००१११८३ ग्रा० सै$^{-१}$ ए$^{-१}$
ताम्र	६३.५७/२	०.०००३२९४ „ „
उद्जन	१.००८/१	०.११९६८ „ „

८८. जल में वायव्यों की घुलनशीलता

जल में वायु

१००० घ. शम. जल ७६० स. म. दबावपर वायुसे संपृक्त होने में ओषजन इत्यादि की निम्न मात्रायें घोले रहता है। (°श और ७६० सम. पर घ. शम. में)

	जल का तापक्रम						
	०° श	५°	१०°	१५°	२०°	२५°	३०°
ओषजन	घ. शम. १०.१९	८.९	७.९	७.०	६.४	५.८	५.३
नोषजन, आलसीम इत्यादि	१९.०	१६.८	१५.०	१३.५	१२.३	११.३	१०.४
उपर्युक्तों का योग	२९.२	२५.७	२२.८	२०.५	१८.७	१७.१	१५.७
घुलितवायु में ओषजन का % (आयतनसे)	३४.९%	३४.७	३४.५	३४.२	३४.०	३३.८	३३.६

जल में वायव्य

'स' से तात्पर्य निर्दिष्ट तापक्रम पर १ घ. शम. जलमें घुलने पर ०° और ७६० सम. पर नापित

वायव्य के घ. शम. की संख्यासे है (जलवाष्प और वायव्य का दबाव मिलकर ७६० सम. होना चाहिये)।
'अ' से भी वही तात्पर्य है, केवल अन्तर यह है, कि अकेले वायव्यका एकसा दबाव ७६० स. म. है।

वायव्य	०°श	१०°	१५°	२०°	३०°	४०°	५०°	६०°
	घ.शम्							
अमोनिया-अ-	१३००	९१०	८०२	७१०	५९५/२८°	...	...	...
आलसीम्-अ-	·०५८	·०४५	·०४०	·०३७	·०३०	·०२७	...	...
उद्जन-अ-	·०२१५	·०१९८	·०१९०	·०१८४	...	...	...	...
उद्जन गन्धिद्-अ-	४·६८	३·५२	३·०५	२·६७	...	...	...	...
उदहरिकाम्ल-स-	५०६	४७४	४५८	४४२	४११	३८६	३६२	३३९
ओषजन-अ-	·०४९	·०३८	·०३४	·०३१	·०२६	·०२३	·०२१	·०१९
कर्बन एकौषिद्-अ-	·०३५	·०२८	·०२५	·०२३	·०२०	·०१८	·०१६	·०१५
" द्विओषिद,-अ-	१·७१३	१·१९४	१·०१९	·८७८	·६६	·५३	·४४	·३६
गन्धक द्विओषिद-स-	७९·८	५६·६	४७·३	३९·४	२७·२	१८·८	...	...
नोषजन-अ-	·०२३९	·०१९६	·०१७९	·०१६४	·०१३८	·०११८	·०१०६	·०१००
नोषस ओषिद्-अ-	१·०५/५°	·८८	·७४	·६३	...	...	...	...
नोषिक ओषिद्-अ-	·०७४	·०५७	·०५१	·०४७	·०४०	·०३५	·०१३	·०२९
हरिन्-स-	...	३·०९	२·६३	२·२६	१·७७	१·४१	१·२०	१·०
हिमजन-अ-	·०१५०	·०१४४	·०१३९	·०१३८	·०१३८	·०१३९	·०१४०	...

नू, ·०१४७/२०°; गु, ·६७०—·०७८८/२०°; अ; ·११०९/२०°

९९. द्रवों की परस्पर घुलन शीलता

साम्यावस्था में दो घोलोंमें से ऊपर की तह वाले के लिये दृष्टाङ्क पहली पंक्ति में दिये गये हैं। कुछ के लिये दबाव १ वातावरण से अधिक है। घोल के प्रति १०० ग्राममें ग्रामों की संख्या।

द्रव	०°श	१०°	२०°	३०°	४०°	५०°	६०°	७०°	८०°	१००°
ज्वलक में जल–ज्वलकीय तह–	१·०	१·१	१·२	१·३	१·५	१·७	१·८	२·०	२·२	—
जल में ज्वलक–जलीय तह –	१२	८·७	६·५	५·१	४·५	४·१	३·७	३·२	२·८	—
जलमें नीलिन् (Aniline) जलीयतह	—	—	३·२	—	३·५	—	३·८	—	४·५	६
जलमें नीलिन–नीलिन् तह	—	—	९५·५	—	९५	—	९५	—	९३	९२
जलमें द्विव्योल (Phenol) जलीयतह	—	७·५	८·३	८·९	९·६	१२	१७	३३·४	विपुलता	पक्रम
,, ,, द्विव्योलतह–	—	७५	७२	७०	६७	६३	५५	३३·४	६८.°३	पर
जलमें त्रिज्वलीलामिन, अमिनतह	५१·९	१८°·६	७२	९७	९६	९६	९६			
,, जलीयतह	५१·९	पर	१४·२	५·८	३·६	२·९	२·२			
क ग$_{२}$ दारीलमद्य में मद्यिक तह	—	४५	५१	५८	८०·५	विपुलता	पक्रम			
,, ,, –क ग$_{२}$ तह	—	९८	९७	९६	८०·५	४०.°५	पर			

१००. ठोस पदार्थों की जल में घुलनशीलता

निर्दिष्ट तापक्रम पर संपृक्त घोल बनाने के लिये १०० ग्राम जल में अनार्द्र पदार्थ की घुली हुई मात्रा ग्रामों में = स

१०० ग्राम प्रति संपृक्त घोल में अनार्द्र पदार्थ की ग्रामों में मात्रा = प

पदार्थ		०°श	१०°	१५°	२०°	४०°	६०°	८०°	१००°
अमोनियम हरिद, ना उ$_{४}$ ह	स	२९·४	३३·३	३५·२	३७·२	४५·८	६५·२	६[illegible]·६	७७·३
अरुणिन्, द्रव, रु	स	४·२२	३·४	३·२५	३·२०	—	—	—	—
खटिक उदेत, ख (ओ उ)$_{२}$	स	·१८५	·१७६	·१७०	·१६५	·१४१	·११६	·०९४	·०७७

पदार्थ		०°श	१०°	१५°	२०°	४०°	६०°	८०°	१००°
ताम्रगन्धेत, तागओ$_{४}$५ उ$_{२}$ओ	स	१४·३	१७·४	१८·८	२०·७	२८·५	४०·०	५५·०	७५·०
पारद हरिद, पा ह$_{२}$	प	३·५०	४·५०	५·००	५·४०	९·३०	१४·०	३·१	३८·०
पांशुज अरुणिद, पां रु		५३·५	५९·५	६२·५	६५·२	७५·५	८५·५	९५·०	१०४
,, उदेत, पां ओउ २उ$_{२}$ओ$_{२}$	स	९७·०	१०३	१०७	११२	१३८§	—	—	१७८§
,, नैलिद पां नै	स	१२७·५	१३६	१४०	१४४	१६०	१७६	१९२	२०८
,, नोषेत, पां नो ओ$_{३}$	स	१३·३	२०·९	२५·८	३२	६४	११०	५१९	२४६
,, हरिद, पां ह	स	२७·६	३१·०	३२·४	३४·०	४०·०	४५·५	५१·१	५६·७
भारउदेत, भ (ओउ)$_{२}$ ८उ$_{२}$ओ	स	१·६७	२·४८	३·२३	३·८९	८·२२	२०·९	१०१·४	—
भार हरिद, भह$_{२}$, २उ$_{२}$ओ	स	३१·६	३३·३	३४·४	३५·७	४०·७	४६·४	५२·४	५८·८
रजतनोषेत, र नो ओ$_{३}$	स	१२२	१७०	१९६	२२२	३७६	५२५	६६९	९५२
रालिकाम्ल (कउ$_{२}$)$_{२}$(कओओउ)$_{२}$	स	२·८०	४·५०	५·७	६·९	१६·२	३५·८	७०·८	१२५
शकरा (गन्ना) क$_{१२}$उ$_{२२}$ओ$_{११}$	स	१७९	१९०	१९७	२०४	२३८	२८७	३६२	४८७
शोण कर्बनेत, शो क ओ$_{३}$	स	१·५४	१·४३	१·३८	१·३३	१·१७	१·०१	·८५०	·७२०
संदस्तगन्धेत, संग ओ$_{४}$ $\frac{८}{३}$उ$_{२}$ओ	स	७६·५	७६·०	७६·६	७६·६	७८·५	८३·७	६९·७*	६०·७७*
सैन्धक कर्बनेत सै$_{२}$कओ$_{३}$ १०उ$_{२}$ओ	स	७·०	१२·५	१६·४	२१·५	४६·१‖	४६·०	४५·८	४५·५
सैन्धक गन्धेत, सै$_{२}$गओ$_{४}$ १०उ$_{२}$ओ	स	५·०	९०	१३·४	१९·४	४९†	४५†	४४†	४२†
सैन्धक हरिद, सै ह	स	३५·७	३५·८	३५·९	३६·०	३६·६	३७	३८	३९·०
स्त्रंशहरिद, स्त ह$_{२}$ ६ उ$_{२}$ ओ	स	४३	४८	५०	५३	६५	८२	९१‡	१०१‡

* ठोस स्वरूप (Phase) स्त ग ओ$_{४}$ उ$_{२}$ ओ ७४° पर हो जाता है † ३२°·३८ पर सै$_{२}$ ग ओ$_{४}$ हो जाता है ‡ ७०° पर स्तह$_{२}$ २ उ$_{२}$ ओ हो जाता है § ३२°·५ पर पां ओ उ$\frac{३}{२}$ उ$_{२}$ ओ और ५०° पर पां ओ उ उ$_{२}$ ओ हो जाता है ‖ ३५° पर सै$_{२}$ क ओ$_{३}$. उ$_{२}$ ओ होजाता है।

१०१. वायु मण्डल की शुष्क हवा का संगठन

	नो$_{२}$	ओ$_{२}$	ल	क ओ$_{२}$	गु	अ	नू	हि
भार से	७५·५	२३·२	१·३	·०४६ से ·४	·०२८	·००५	·0$_{३}$८६	·0$_{४}$५६
आयतन में	७८·०५	२१·०	·९५	·०३ से ·३	—	—	·0$_{२}$ १२३	·0$_{३}$४०

१०२. कुछ खनिजों का संगठन, घनत्व और कठोरता

नाम और सूत्र	घनत्व	कठोरता	नाम और सूत्र	घनत्व	कठोरता
अरगोनाइट, ख क ओ$_{३}$	२·९३	३·५–४	केओलिन, उ$_{४}$स्फ$_{२}$शै$_{२}$ओ$_{९}$	२·५	१
बेरील, बे$_{३}$ स्फ$_{२}$ शै$_{६}$ ओ$_{१८}$	२·६–२·७	७–८	मगनेसाइट, म क ओ$_{३}$	३	३·५–४·५
केल्कस्पार, ख क ओ$_{३}$	२·६–२·७	३	माइका, पां$_{२}$ ओ· ३ स्फ$_{२}$ओ$_{३}$· ६ शैओ$_{२}$· २ उ$_{२}$ओ(अभ्रक)	२·७–३·१	२–२·५
कारनैलाइट, पांह मह$_{२}$ ६उ$_{२}$ओ	१·६	१	मोनेज़ाइट, (श्लीदि) स्फुओ$_{४}$ (१–१६%थो)	५	५·२
कोरण्डम्–स्फ$_{२}$ ओ$_{३}$	३·९–४·२	९	पिच ब्लैण्डी, पि$_{३}$ओ$_{८}$ इत्यादि	६·४	५·५
डोलोमाइट, खम क$_{२}$ ओ$_{६}$	२·८–२·९	३·५–४	पाइराइट (लोह) लोग$_{२}$	४·८–५·१	६–६·५
फ्लोरस्पार, खप्ल$_{२}$	३–३·३	४	,, (ताम्र) ता लोग$_{२}$	४·१–४·३	३·५–४
गेलीना, सी ग	७·४–७·६	२–३	पाइरोलूसाइट, मा ओ$_{२}$	४·८–५	२–५·५
जिप्सम् ख ग ओ$_{४}$ २ उ$_{२}$ ओ	२·३	१·५–२	दस्त ब्लैण्डी, दग	३·९–४·२	३·५–४

१०३. भार मापक विश्लेषणोंके फलक

(Factors for Gravimetric Analysis)

निम्न पदार्थों का तोलसे १ भाग =	निम्न पदार्थोंकी निम्न मात्राओंके बराबर है	निम्न पदार्थों का तौल से १ भाग =	निम्न पदार्थों की निम्न मात्राओं के बराबर है
अरुणिन्		को नोओ$_2$ $_3$ पांनोओ$_2$ $_3$	·१३०६ को
र रु	·४२५६ रु	”	·१६६१ को ओ
आञ्जनम्–		(कोगओ$_4$)$_2$(पांगओ$_4$)$_3$	·१४१६ को
आ	१·९९७ आ$_2$ ओ$_3$	खटिकम्–	
”	१·३३२८ आ$_2$ ओ$_5$	ख	१·३९९ ख ओ
आ$_2$ ओ$_3$	१·११०९ आ$_2$ ओ$_5$	ख क ओ$_3$	·४००५ ख
आ$_2$ ओ$_4$	·७८९७ आ	”	·५६०४ ख ओ
”	·९४७४ आ$_2$ ओ$_3$	क ओ$_2$	२·२७५ ख क ओ$_3$
”	१·०५२६ आ$_2$ ओ$_5$	ख$_3$(स्फु ओ$_4$)$_2$	·५४२२ ख ओ
उदजन		म$_2$ स्फ$_2$ ओ$_7$	१·३९३५ ख$_3$(स्फु ओ$_4$)$_2$
उ$_2$ ओ	·१११९ उ	स्फु$_2$ ओ$_5$	२·१८४४ ”
कर्बन		गन्धक–	
क ओ$_2$	४·४८६० भक ओ$_3$	भ ग ओ$_4$	·१४६० उ$_2$ ग
”	२·२७४८ ख क ओ$_3$	”	·१३७४ ग
कोबल्टम्		”	·२७४४ गओ$_2$
को	१·२७१३ को ओ	”	·३४२९ ग ओ$_3$
को$_3$ ओ$_4$	·७३४३ को	”	·४११५ ग ओ$_4$
”	·९३३६ को ओ		

निम्न पदार्थों का तौलसे १ भाग =	निम्न पदार्थों की निम्न मात्राओंके बराबर है	निम्न पदार्थोंका तौलसे १ भाग =	निम्न पदार्थों की निम्न मात्राओंके बाराबर है
टंकम्–		पांशुजम्–	
टं$_{२}$ ओ$_{३}$	·३१४३ टं	र ह	·५२०२ पां ह
टं$_{२}$ ओ$_{३}$	२·७२९७ सै$_{३}$टं$_{४}$ओ$_{७}$१०उ$_{२}$ ओ	र रु	·६३३८ पां रु
ताम्रम्		र नै	·७०७१ पां नै
ता	१ २५१७ ताओ	र क नो	·४८६३ पां क नो
दस्तम्–		पां ह	·५२४४ पां
द	·१२४४८ द ओ	पां रु	·३२८५ पां
द ओ	·८०३३ द	पां ओ उ	१ २३१६ पां$_{२}$ क ओ$_{३}$
नकलम्		”	·८३९५ पां$_{२}$ ओ
न	१ २७२७ न ओ	पां$_{२}$ ग ओ$_{४}$	·५४०३ पां$_{२}$ ओ
नैलिन्		”	१·१६०४ पां नो ओ$_{३}$
र नै	·५४०५ नै	पां प ह$_{६}$	·१६०९ पां
नोपजन		पिनाकम्	
नो	·३८५५१ नो$_{२}$ ओ$_{५}$	पि$_{३}$ ओ$_{८}$	·८४८२ पि
पररौप्यम्		”	·९६२० पि ओ$_{२}$
पां$_{२}$ प ह$_{६}$	·४०१५ प	पि ओ$_{२}$	·८८१७ पि
”	·६९३३ प ह$_{४}$	प्लविन्	
पारदम्		ख प्ल$_{२}$	·४८६६ प्ल
पां	१ १६०४ पा ग	बेरीलम्	
पा ग	·८९६३ पा$_{२}$ ओ	बे ओ	·३६२६ बे
”	·९३१८ पा ओ		

निम्न पदार्थों का तौलसे १ भाग =	निम्न पदार्थों की निम्न मात्राओंके बराबर है	निम्न पदार्थोंका तौल से १ भाग =	निम्न पदार्थों की निम्न मात्राओं के बराबर है
भारम्		रागम्	
भ क ओ$_{३}$	·६९६० भ	रा$_{२}$ ओ$_{३}$	·६८४६ रा
,,	·७७७१ भ ओ	,,	१ ३५४ रा ओ$_{३}$
भ ग ओ$_{४}$	·५८८५ भ	लालम्	
,,	·६५७० भ ओ	ला$_{२}$ प . ह$_{६}$	·२९५३ ला
,,	·७२५५ भ ओ$_{२}$	लोहम्	
मगनीसम		लो	१ २८६५ लो ओ
म ओ	·६०३२ म	,,	१ ४२९७ लो$_{२}$ ओ$_{३}$
म$_{२}$ स्फु$_{२}$ ओ$_{७}$	·२१८४ म	,,	७ ०२१८
,,	·३६२१ म ओ		लो ग ओ$_{४}$ (नो उ$_{४}$)$_{२}$ ग ओ ६ उ ओ
मांगनीज		लो ओ	·७७७३ लो
मा ओ	१·१११३ मा$_{२}$ ओ$_{३}$	,,	१ १११३ लो$_{३}$ ओ$_{२}$
मा$_{३}$ ओ$_{४}$	·७२०३ मा	लो$_{२}$ ओ$_{३}$	१·४५०८ लो क ओ$_{३}$
,,	·९३०७ मा ओ	,,	·९६६६ लो$_{४}$ ओ$_{३}$
,,	१ ०३५० मा$_{२}$ ओ$_{३}$	क ओ$_{२}$	१ ६३३० लो ओ
,,	१·१३९९ मा ओ$_{२}$	,,	२·६३३० लो क ओ$_{३}$
रजतम्–		बंगम्	
र ह	·७५२६ र	व ओ$_{२}$	·७८८१ व
र ब्रु	·५७४४ र	विशद्	
र नै	·४५९५ र	वि	१·११५४ वि$_{३}$ ओ$_{३}$

निम्न पदार्थों का तौल से १ भाग =	निम्न पदार्थों की निम्न मात्राओंके बराबर है
वि$_2$ओ$_3$	·८९६६ वि
वि ओ ह	·८०१७ वि
,,	·८९४२ वि$_2$ ओ$_3$
व्योमम्	
वो	१·०६० वो ओ
वो$_2$ प ह$_6$	·३९४५ वो
,,	·४१८४ वो$_2$ ओ
शैलम्	
शै ओ$_2$	·४६९३ शै
शोणम्	
शो$_3$ क ओ$_3$	·१८७९ शो
,,	·४०४४ शो$_2$ ओ
शो$_3$ स्फु ओ$_4$	·१७९७ शो
,,	·३८६८ शो$_2$ ओ
संक्षीणम्	
क्ष$_2$ ओ$_3$	·७५७५ क्ष
क्ष$_2$ओ$_3$	१·१६१७ क्ष$_2$ ओ$_5$
क्षो$_2$ ओ$_5$	·६५२१ क्ष
म नो उ$_4$ क्ष ओ$_4$ $\frac{1}{2}$उ$_2$ओ	·३९३८ क्ष
,, ,,	·५१९९ क्ष$_2$ ओ$_3$

निम्न पदार्थों का तौलसे १ भाग =	निम्न पदार्थोंकी निम्न मात्राओंकी बराबर है
,, ,,	६०४० क्ष ओ$_1$
म$_2$ क्ष$_2$ ओ$_7$	·४८२७ क्ष
,,	·६३७३ क्ष ओ$_3$
,,	७४०३ क्ष$_2$ ओ$_5$
संद्रुतम्	
सं ओ	·८७५४ सं
सीसम्	
सी	१·०७७३ सी ओ
सी ग ओ$_4$	·६८३१ सी
,,	·७३५८ सी ओ
,,	·७८८७ सी ओ$_2$
,,	·७५३६ सी$_3$ ओ$_4$
सैन्धकम्	
र ह	·४०७८ सै ह
सै उ क ओ$_3$	·३६९१ सै$_2$ ओ
सै$_2$ ग ओ$_4$	·३२३८ सै
,,	·४३६४ सै$_2$ ओ
नो$_2$ ओ$_5$	१·५७४० सै नो ओ$_3$
स्त्रांशम्	
स्त क ओ$_3$	·७०१९ स्त अ

निम्न पदार्थों का तौल से १ भाग =	निम्न पदार्थो की निम्न मात्राओंके बराबर है	निम्न पदार्थोका तौलसे भाग =	निम्न पदार्थों की निम्न मात्राओंके बराबर है
स्त ग ओ$_{४}$	·५६४१ ,,	,,	·८५३४ स्फु ओ$_{४}$
स्फटम्		,,	·६३७८ स्फु$_{२}$ ओ$_{५}$
स्फ$_{२}$ ओ$_{५}$	·५३०३ स्फ	स्वर्णन्	
,,	३·३५० स्फ$_{२}$ (गओ$_{४}$)$_{३}$	स्व	१·५३९५ स्व ह$_{३}$
स्फुर		हरिन्	
स्फु$_{२}$ ओ$_{५}$	·४३६२ स्फु	र ह	·२४७४ ह
म स्फु$_{२}$ ओं$_{७}$	·२७८७ स्फु	सै ह	·६०६६ ह

१०४. कार्बनिक यौगिक

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व ग्राम/ घ. शम.	द्रवांक °श	क्थनांक °श
अ						
अग्रील नैलिद	Propyl iodide	क$_{३}$ उ$_{७}$ नै	१७०·०	१·७४५/२०°	—	१०२°
,, पिपीलेत	,, formate	उकओ$_{२}$क$_{३}$उ$_{७}$	८८·०६	·९०९/१७°	—	८०९
,, मद्य (स)	,, alcohol	क$_{२}$उ$_{७}$ओउ	६०·०६	·८०४/२०°	—	९७·२
,, सिरकेत (स)	,, acetate	कउ$_{३}$कओ$_{२}$क$_{३}$ओ$_{७}$	१०२·००	·८९१/१८°	द्रव	१०१

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व ग्राम घ. शम.	द्रवांक °श	क्वथनांक °श
अम्रीलिन	Propylene	क उ$_3$ कउ: कउ$_2$	४२·०५	वा १ ४९८	वायव्य	—५० २
अम्रेन	Propane	क$_3$ उ$_8$	४४·०७	·५३५	—१९५	-(३८-३९)
अम्रोनिकाम्ल	Propionic acid	क$_2$उ$_5$ क ओ$_2$उ	७४·०५	·९९५ २०°	—२२	१४०
अजोइकाम्ल	Caproic acid	क$_5$उ$_{11}$कओ$_2$उ	११६ १	·९२९/२०°	८	२०५
अफीमिन	Morphine	क$_{17}$उ$_{19}$नोओ$_3$ + उ$_2$ ओ	३०३·२	१·३२	—	विभा·
अरुणोबानजावीन	Bromobenzen	क$_6$ उ$_5$ रु	१५७·०	१·४९ २०°	—३१ १	१५६
अष्टेन (सा)	Octane (n)	क$_8$ उ$_{18}$	११४ १	७१९ ०°	द्रव	१२५·८
अंगारिन	Anthracene	क$_{14}$ उ$_{10}$	१७८ १	१·१५	२१६	३५१
अंगूरिकाम्ल	Racemic acid	(क ओ$_2$ उ क उ ओ उ)$_2$ + उ$_2$ओ	१६८·१	१·६९ ७°	२०५	—
आ						
आजवानोल	Thymol	३,२,१(कउ$_3$) कउ क$_6$उ$_3$(कउ$_3$)ओउ	१५०·१	९९४/०°	५०	२३२
आंजन त्रिदारील	Sb-trimethyl	आ(कउ$_3$)$_3$	१६५·३	१·५२/१५°	द्रव	८६
इ						
इमिलकाम्ल(मध्य)	Tartaric acid (meso)	(कओ$_2$उ)$_2$ (कउओउ)$_2$	१६८·१ (उ$_2$ ओ)	१·६७	१४२	—
,, (द)	,, (d)		१५०·०	१·७६/७°	१७०	—
,, (उ)	,, (l)		१५०·०	१·०७६	१७०	—

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व ग्राम/व. श.म.	द्रवांक °श	क्वथनांक °श
उ						
उदश्यामिकाम्ल	Hydrocyanic-acid	उक नो	२७·०५	·६९७/१८°	–१४	२६·१
क						
कपूर	Camphor	$क_{१०}उ_{१६}ओ$	१५२·१	·९९२/१०°	१७६·४	२०५·३
कपूरिकाम्ल	Camphoric-acid	$क_{८}उ_{१४}$(कओ ओ उ)	२००·१	१·१९	१७८	विभा.
कर्बनओषगन्धिद	C-oxysulphide	क ओ ग	६०·०७	२·१०४	—	वायव्य
कर्बन चतुर्हरिद	C-tetrachlroide	$कह_{४}$	१५३·८	१·५८२/२१°	–३०	७६·७
कर्बन द्विगन्धिद	C-di Sulphide	$कग_{२}$	७६·१४	१·२९२/०°	–११०	४६·२
कहवीन	Caffeine	$क_{८}उ_{१०}नो_{४}ओ_{४}$ —$उ_{२}$ ओ	२१२·३	१·२३/१९०	२३४	उर्ध्वग,
कुनिन	Quinine	$क_{२०}उ_{२४}नो_{२}ओ_{२}$	३२४·३	—	१७४·९	—
„ गन्धेत	„ Sulphate	$(क_{२०}उ_{२४}नो_{२}ओ_{२})_{२}$ $उ_{२}गओ_{४}.७उ_{२}ओ$	८७२·७	—	२०५ (शुष्क)	—
कुनोलिन	Quinoline	$क_{६}उ_{४}<$ कउकउ. / नो क उ $>$	१२९·१	१·०९४/२०°	१९·५	२४१
क्रसोल (पू)	Cresol -o-	$कउ_{३}.क_{६}उ_{४}.ओउ$	१०८·१	१·००५	३०	१९१
केलील मद्य—	Amylalc.—	$क_{५}उ_{११}ओउ$	८८·१	·८१२/२०°	द्रव	१३७
„ सा—	„ (n)	„	„	·८२५/०°	„	१२९

भक्ष्य पदार्थ और उनमें मिलावटकी परीक्षा

[ले० श्री ब्रजबिहारीलाल दीक्षित बी० एस-सी]

आज कल भारतवर्षमें भक्ष्य पदार्थोंका बड़ा ही अभाव हो रहा है और प्रायः शुद्ध पदार्थ तोमिलते ही नहीं। यहनिश्चय करना अत्यन्त ही क्लिष्ट है, कि कौनसी वस्तु भक्ष्य है, और कौन सी नहीं, और न इस लेख का यह उद्योग ही है। जितने भी पदार्थ खाये जा सकते है उनका निरीक्षण करने की प्रयत्न किया जावेगा और इसकी कि कितनी मिलावटें कि अमुक पदार्थमें हो सकती हैं और किस कारणसे नित्यप्रति ही स्वास्थ्य-अफसरों, भोजन निरीक्षकों तथा वैज्ञानिक रसायनिकोंसे इस क्रियाका कोई सरल उपाय पूछा जाता है। उपाय तो सरल हैं उनसे बड़ी सुगमतासे यह पता लग सकता है कि कौन २ सी वस्तुएँ मिली है। हां यह पता लगाना कि किस मात्रामें व मौजूद हैं कुछ क्लिष्ट है और इसकी आवश्यकता भी नहीं है। प्रायः उसी क्रमसे जिससे एक वस्तु एक अमुक मिलावटका अमुक परीक्षा देती हो साधारणतः इसका अनुमान किया जासकता है। प्रथम मैं ऐसे पदार्थोंसे आरम्भ करना चाहता हूँ जो कि भारतवर्षमें किसी व्यक्तिसे भी दोषी नहीं समझे जाते हैं जैसे गेहूँ, चावल, घी, दूध इत्यादि इत्यादि।

भारतवर्ष एक खेतिहर देश है और हम लोगोंका मुख्य भोजन गेहूँ और चावल ही है। किसी भागमें गेहूँ अधिक होता है और किसीमें चावल और उसीके अनुसार भिन्न २ स्थानोंके भोजनमें परिवर्त्तन भी है! यह वस्तुएँ यहांसे अधिक और किसी भी देशमें नहीं होती फिर भी यह यहां शुद्ध प्राप्त करना कुछ साधारण नहीं है। गेहूँमें और चावलमें प्रायः निकृष्ट वस्तुएँ और कंकड़ तो मिले ही रहते हैं जो साधारणतः ही दृष्टि गोचर हो जाते है। गेहूँके आटेमें बहुधा घटिया नाजका आटा मिला ही देते हैं और इस कारण कि उससे आटेके रंगमें जो कुछ भद्दापन आ जाता है वह अदृष्ट हो जावे। लोग उसमें फिटकरी पीस कर मिला देते है और इसीसे पकाए जानेपर भी रोटी सफेद ही होती है यद्यपि वह उतनी स्वादिष्ट कदापि नहीं हो सकती। इसकी परीक्षा इस प्रकारकी जा सकती है कि किञ्चितमात्र आटेको लेकर उसमें कुछ जल डाल कर घोट डालो। उस घोलमें अब जिलेटीनके टुकड़े डाल दो और अर्द्ध दिवस पड़े रहने देनेके बाद निकाल कर उन टुकड़ोंको टिंकचर ओफ लोगवुड और अमोनियम कर्बनेतके सम भागोंके घोल में डुबाओ। यदि टुकड़े नीलवर्ण हो जावें तो फिटकरी अवश्य पड़ी हैं। यही परीक्षा इस प्रकार भी की जा सकती है कि टिंकचर ओफ लोग वुड का घोल दारील-मद्य में तैयार कर लो अब थोड़ेसे आटे को पानीमें भिगो लो और उसपर उपरोक्त घोल तथा अमोनियम कर्बनेत का संपृक्त घोल डालो। यदि आटा शुद्ध है तो रंग गुलाबी हो जावेगा जो शनैः शनैः खाकीमें परिवर्तित हो सकता है यदि फिटकरी होगी तो नील वर्ण प्रतीत होने लगेगा!

घटिया आटे की मिलावट इस प्रकार की जा सकती है कि ७० % नवनीत मद्य के ९५ भाग और उदहरि काम्ल के पंच भाग का घोल बनाओ अब उसमें थोड़ा सा आटा डाल कर परख नलीमें हिलानेके बाद बैठ जाने दो। ऊपर की द्रव्य पदार्थ यदि नीरंग हो तो आटा असली है। यदि नीरंगके स्थानमें जितना ही गंदा होगा अथवा और किसी वर्णका है उतनी ही मिलावट है। थोड़े से आटेको काफी मात्रा में ग्लिसरीन मिलाकर खौलाओ, यदि ज्वार का आटा मिला हुआ है तो एक विशेष प्रकार गंध आ जावेगी अन्यथा नहीं। यह

महक ज्वार की गंधसे मिलती जुलती ही होगी। अनुमान किया जाता है कि इस प्रकार ५% की मिलावट तक की परीक्षा सुगमतासे हो जावेगी।

इसके अतिरिक्त बहुत गर्द तथा रेत भी मिलाया जा सकता है क्योंकि उसके मिला देनेसे आटा बहुतही भारी हो जाता है और बेचने वाले के बहुत लाभ होता है। ऐसे आटे की रोटी देखनेमें तो भले ही न मालूम हो किन्तु खाने के समय दाँतों के बीचमें अवश्य ही किसकिसाती है। इसको पहिचाननेकी क्रिया केवल यही हो सकती है कि आटे को बहुतसे जलमें घोलो। घुलेगा तो नहीं किन्तु उपघोल जो बनता जावे उसे फेंकते जावो। नीचे कुछ रह जावेगा उसे रेतके निमित्त परीक्षा करो। कांच की दो कत्तलों के बीचमें वह वस्तु रखकर उनको बल पूवक रगड़ो जो क्रिया दांतोंमें रेतकी रोटी खानेसे होती है यहां भी होगी। उससे कोई अनभिज्ञ न होगा।

गेहूँ तथा गेहूँ के आटे के पश्चात् चावलकी गणना है। ईश्वर को धन्यवाद है कि यह अभी इतनी मिलावट के साथ क्रय विक्रय नहीं होता। बहुधा केवल अच्छे चावलों में घटिया चावल ही मिलाते हैं और उनके लिए कोई वैज्ञानिक परीक्षा भी नहीं है। किन्तु बहुधा कंकड़ इत्यादि भी मिलाया जाता है। उसकी परीक्षा इस प्रकार है कि कुछ चावलों में किञ्चित् मात्र कोई अम्ल डाल दो यदि बड़ा भारी फदफदाहट होने लगे तो कंकड़ अवश्य थे। चावलोंको धोनेमें बहुधा जो कंकड़ होते हैं नीचे अवश्य बैठ जाते हैं क्योंकि वह अधिक भारी होते हैं। उनकी परीक्षा करनेमें तथा उनको पृथक् करनेमें इसी नियम का लाभ उठाया जा सकता है।

अब दुग्धको लीजिए। यह तो ऐसी वस्तु है कि इसका शुद्ध मिलना असम्भव साही है। अत्यन्त प्रयत्न किया जाता है किन्तु फिरभी दुग्ध वाले लोग अपनी बुद्धिमत्तासे अपना काम बना ही लेते हैं। बहुधा इसमें जलही मिलाया जाता है और उसकी परीक्षा यंत्रसे हो सकती है जिसको 'दुग्धमापक यन्त्र" कहते हैं और इससे घनत्व मालूम हो जाता है। मक्खन बड़ी ही हलकी वस्तु है और प्रायः लोग मक्खन निकाल लेते हैं। ऐसा दुग्ध दो कौड़ीका भी नहीं होता है और न उसकी परीक्षा इस यंत्र ही से हो सकती है क्योंकि उनके निकाल लेनेसे दुग्ध और भारी हो जाता है और १०% और पानी मिलाने पर भी घनत्वमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। इसकी परीक्षा के निमित्त दुग्धकी चिकनाहट किञ्चित मात्र निकालो और उसमें मजीठा रगड़दो। यदि मक्खन हो तो रगड़ने से गहरा लाल हो जावेगा। इस रंगकी गहराईके अनुसारही उसमें मक्खन है। मजीठामें एक रंग होता है जो पानीमें घुलनशील नहीं है परन्तु चर्बी इत्यादि मक्खनोंमें घुल जाता है। बुद्धिमान ग्वाले अपने दूधमें कई प्रकारके आटे भी मिलाते हैं जिससे दुग्ध बहुत ही गाढ़ा दीखने लगता है और मूर्ख लोग उसे अत्युत्तम दुग्ध समझते हैं। इतना ही नहीं, मूर्खोंको औरभी मूर्ख बनानेके वास्ते वह उसमें शकर भी डाल देते हैं जिससे की दूध गाढ़ा हो नहीं वरन अत्यन्त मीठा भी हो जाता है और बड़े चावसे उसे भैंस का अधिक औटा हुआ दूध बताते हैं। वरन इस भैंसका पता दूधमें केवल एक बूँद ही पांशुज नैलिदमें नैलिन के घोलको डालनेसे प्रत्यक्ष हो जावेगा क्यों कि रंग गहरा नीला हो जावेगा जो कि नशास्ता तथा आटे का रेशेतोज सूचक है। शकरकी परीक्षा दूधमें उदहरिकाम्ल और के डालनेसे की जा सकती है जबकि दूधमें एक विशेष प्रकारका गुलाबी रंग आ जावेगा। अधिक पानीकी मिलावटको छिपाने के लिये बहुधा रंगभी डाले जाते हैं। उन रंगोका पता इस प्रकार लग सकता है कि दूध और उदहरिकाम्ल को समभाग एक बर्त्तनमें मिलावें और जो छिछड़े बन जावें उन्हें तोड़ दो। अब यदि कोई कोलतारका रंग विद्यमान होगा तो यह छिछड़े राकापव होगें अन्यथा सफेद या कुछ २ पीले।

दूधमें एक प्रकारकी मिलावट और होसकती है जो इस अभिप्रायसे मिलाई जाती है कि दूध अधिक दिनों तक विकृत न हो जावे। साधारणतः दूध थोड़े

ही समयमें फट जाता है। यह मिलावट कभी तो ऐसी होती है जो मनुष्यके शरीर को भी अत्यन्त ही हानि कारक होती है और बहुधा दूधकी प्रकृति इस प्रकार परिवर्तित कर देती है कि वहमनुष्य को अधिक लाभदायक नहीं होता ऐसे पदार्थों में एक तो पिपीलमाद्यनार्द्र है। इसकी परीक्षा इस प्रकार है कि कुछ दूधको एक चौड़े मुँह की परख नली में रखकर उसमें थोड़ा सा बाजारू गन्धकाम्ल इस प्रकार डाल दो कि वह पेंदीमें एक अलग सतह बनाले। दोनों पृष्ठोंके मिलान पर कुछ २ बैंजनी रंग पिपीलमद्यानार्द के विद्यमान होनेका प्रमाण है। बाजारू गन्धाकाम्ल न मिलाने पर असली गन्धकाम्ल प्रयोग किया जा सकता है वरन् तब कुछ लौहिकहरिद लोह काभी प्रयोग करना आवश्यक है। कभी २ गन्धकाम्लसे दूध जल जाता है इस कारण इसप्रकार परीक्षाकी जा सकती है कि बहुतसे उदहरिकाम्ल में लोह डालदो फिर उसके कुछ भागमें उतनाही दूध मिलाओ और उनको ऐसे वर्त्तनमें उबालो और बराबर घोटते रहो। वह ही बैंजनी रंग फिर आ जावेगा। टंकिकाम्ल और बिउनि काम्लका भी प्रयोग कि जाता है। दुग्ध को जलाओ और राखमें कुछ उदहरिकाम्ल डाल दो और जलमें घोललो। इस घोलमें हल्दी की कत्तल कुछ मिनट तक छुआओ तब निकाल कर शुष्क करलो यदि टंकाम्ल होगा तो इसका रंग लाल हो जावेगा।

मक्खनमें बहुधा बिनौलेका तेल मिला देतेहैं। उसकी परीक्षा इस प्रकार है कि कर्बन द्विगन्धिदमें % गन्धकका घोल बनाओ। उसमें उतनाही केलील मद्य डालदो। रसघोल और मक्खनका सम भाग लेकर एक परखनलीमें उबालो। गहरा लाल तथा गुलाबी रंग इस मिलावटका प्रत्यक्ष प्रमाणहै। इसी प्रकार मक्खन में रंग इत्यादिकी भी मिलावट होती है जिसकी परीक्षा उसी प्रकार हो सकतीहै जैसे दूधके रंगकी। बहुधा लोग मक्खनको लेकर पानीके साथ घोट लेते हैं। ऐसा करनेमें मक्खन बहुतसे जलको अधिशोषन करातेहैं और फूल जाता है। ऐसे मक्खनका पता केवल रोशनाई सुखानेके कागज पर थोड़ी देर रक्खे रहने से लग जावेगा। मक्खन सूख कर बहुतकम हो जावेगा

अब घीको लीजिए। भारतवर्षमें शुद्ध घीका मिलना तो अब सम्भव है ही नहीं। यदि है भी तो बहुत न्यूनतम इसमें सहस्रों प्रकारकी चर्बी तथा तैल मिलाए जातेहैं। एक साधारण परीक्षा इस प्रकारहै कि घीको एक साधारण कांचके एक टुकड़े पर मलदो और फिर उस पर एक सैन्धक उदोश्विदकी बत्तीसे कुछ लिखो यदि गर्म करने परभी यह किञ्चितमात्र झाग न दे तो घी शुद्ध है लिखा हुआ जितनाहो अधिक सफेद उभर आवे उतनीही मिलावट है। प्रतिक्रिया इस प्रकार है कि शुद्ध घी जल से मिल कर इतनी सरलता से उदविश्लेषित होकर साबुन नहीं बनाता, और चारिक पदार्थ बड़ी ही सरलतासे साबुन बना देते हैं। अब एक नए प्रकारके घी बनाए जाने लगे हैं। अनेक तेल जैसे बिनौले का तेल अथवा मूँगफली का तेल जिनमें असम्पृक्त कर्बन परमाणु होते हैं बड़ीही सुगमता से उदजनसे मिलकर यौगिक पदार्थ बनाते हैं। उनमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं होगी और शुद्ध वर्ण होते है। बाजारमें कोकोजम तथा लीलीब्राण्ड घी के नाम से क्रय होते हैं। यह बहुधा घी में मिलावटके काम भी आते हैं। और कुछ बुरे घीमें मिलाकर उनका रंगभी साफ कर देते हैं और मूल्य भी अधिक लाते हैं इस मिलावट का पता केवल उपरोक्त परीक्षासे नहीं हो सक्ता क्योंकि यह भी सुगमतासे उदविश्लेषित नहीं होते केवल महक से ही कुछ अनुमान किया जा सक्ता है। बिनौले के तेल की परीक्षा उस प्रकार भी की जा सकती है जो मक्खन के विषयमें कही जा चुकी है उनका ठीक पता केवल आवर्जन सरका सेही लगाया जा सकता है परन्तु इसका यत्न ही इतना विकट तथा मूल्यवान है कि साधारण प्रयोगशालाओं में भी न होगा

मसाले भी एक ऐसेही वस्तु हैं जिसमें मिलावट की परीक्षा इतनी सरल नहीं हैं। प्रायः गांव व छोटे २ शहरों में जहां कि मसाला पिसा हुआ नहीं लिया जाता है मिलावटकी संभावना कम है किन्तु बड़े २ शहरों में जहां कि सब मसाला पिसा हुआ हो लेते हैं। अधिक

मिलावट होती है। सरसों के चूर्णमें प्रायः आटा मिलादेते और जब आटेसे सफेदी अधिक हो जाती है तो कोई पीला रंग जैसे। हलदी इत्यादि या कोई कोलतारका रंग आटे की परीक्षा सुगम ही है। थोड़े से सरसों के चूर्ण को कुछ पानी में उबालो। फिर ठंडा करले और उसमें पांशुज नैलिद में नैलिनका घोल डालकर स्टार्च की परीक्षा करलो। यदि घोल नील वर्ण हो जावे तो अवश्य मिला हुआहै। इस रंगकी गहराईसे ही मिलावट की मात्रा क्या अनुमान किया जासकता है। सरसों में नशास्ता नहीं होता और इस कारण शुद्ध सरसों लेश मात्र भी नीली न होगी। शुद्ध सरसों की हलकी मद्दी पीलीहोती है। यदि चूर्णचमकदार पीला हो तो मिलावट का संदेह पूर्णतः किया जा सकता है। यदि हलदी है तो तेज अमोनिया के डालनेसे नारंगी रंग आजावेगा थोड़ी सी सरसोंको मद्य में घोलनेकी कोशिश करो इसके छानन में को बिलकुल सुखालो अब रंग को जलमें घोल लो और कुछ ऊन रंग लो। ऊनको किसी कागज़ में समेट कर गर्म करो। पत्र भी रंग जावेगा। इस प्रकार Mastics या और किसी कोलतार के रंग का पता लग जावेगा। थोड़ी सी सरसो आग में डाल दो और धुएं को सूघने से यदि फेफड़े में चरपराहट मालूम हो और खासी आवे तो अवश्य एक प्रकारकी पीपर भी पड़ी है जिसमें सरसों में चिरपिराहट आ जाती है। इसी प्रकार पीपर चूर्ण में भी इन्हीं वस्तुओं का पता लग सकता है। पीपर जब उदहरिकाम्ल से ढकदी जाती है, तो जो घुल जाती है उसका रंग गहरा पीला होना चाहिए यदि रंग में कुछ गड़बड़ होतो अवश्य मिलावट है।

मधुर मधु भी भारत की अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं में से है और बहुधा प्रत्येक हकीम तथा वैद्य अपनी दवा के साथ इसका प्रयोग बताता है। सब वैद्यक ग्रन्थोंमें इसके गुण भी अनेक लिखे हैं किन्तु इस मधुके नहीं है जो नित्यप्रति बिताार से हम लोगोंको मिलता है। उसमें अधिक भाग शीरे का होता ही है, बहुत से बेचने वाले जो मक्खी के छत्ते लिए फिरते हैं वह भी कुछ शीरे से रहित नहीं होता। मिलावट की सीमा तो यहाँ तक पहुँच गई है कि यदि तुम किसी शहद बेचने वाले को लेजाकर अपने सामने छत्ता तुड़वा कर लाओ तो भी सम्भवतः शुद्ध मधु न मिलेगा वरन् ५० प्रति शत मिलावट होगी। यह बड़े ही अचरज की मालूम होती होगी ! बात यह है छत्ते तोड़ने वालों को यदि कहीं छत्तों का पता लग गया तो वह रोज उसपर शकर डालने लगते हैं और बहुधा शीरा भी। मक्खियाँ इसी शकर या सीरे को खाती है, अपनी घरियों में भरती हैं। जब यह भोजन उन्हें इतनी सुगमता से मिल जाता है तो वे मधु संग्रह करना भी छोड़ देती हैं। इसी को निकाल कर वे असली मधु प्रमाण के साथ बेचने की चेष्टा करते हैं। कभी जिलेटीन भी डाल देते हैं जो चुनकर शहद को बहुत गाढ़ा बना देती है और कभी खटिक गन्धेत भी जो घनत्व को बहुत बढ़ा देता है। शहद की राख की प्रतिशत निकालनेसे पता लग जावेगा कि मिलावट कितनी है। शुद्ध मधु में यह इसे अधिक न होना चहिए। अधिक होनेपर मिलावटका सन्देह है। गन्धेत की पहिचान मधु में भारहरिद डाल कर की जाती है जब कि भार गन्धेत अवक्षेपित जावेगा। हरिद का पता रजत नोषेत डालकर किया जा सकता है जबकि रजतहरिद अवक्षेपित हो जावेगा। यदि राख बहुत हो और हरिद भी अधिक हो तो शीरा पड़ा होना संभव है शीरा तथा गुड़ की पहिचान के निमित्त यह किया जाता है कि थोड़े से मधुमें उतना ही जल मिलाकरऔर उसमें दारील मद्य डालदो अधिक हिलाने के पश्चात् रख देनेसे गोंद सा भारी अवक्षेपित आनेसे शीरा प्रमाणित होता है जिसमें द्राक्षोज भी होता है। थोड़े से मधु में पानी मिला कर उसमें टैनिक अम्ल का घोल डालने पर टैनिक अम्ल का अवक्षेपित हो जाने से जिलेटीन की विद्यमानता प्रमाणित हुई।

अब कुछ बातें चाय और कहवा के प्रति कहना भी आवश्यक प्रतीत होता है। कहवे में प्रायः अनेक रंग इत्यदि इस अभिप्राय से मिलाते हैं कि मिलावट से जो निरकृष्टता आगई है वह छिपजावे। इसकी टिकिया अब लोग ओर को भी बनाते हैं और कुछ २ वही

वस्तुएँ डाल देते हैं ताकि कहवेका ही स्वाद आवे। कहवे के चूर्ण को ठंडे जल पर छिड़क दो। कहवे में तैल होता है वह उसकेकणोंका पानीमें डूबनेसे रोकेगा मिलावट की वस्तुओं में नहीं होता और शीघ्र डूब जावेगी। उसके चारों ओर का पानी भी गहरा खाकी हो जावेगा। जितनी ही शीघ्रता से यह कण डूब जावे उतनी मिलावट होगी। कहवे को पानी के साथ खूब हिलाओ और उस जलमें रसायनिक प्रतिक्रियाओंसे सब अकार्बनिक परिमाणुओं की परीक्षा कर लो। इस प्रकार सब रङ्गोंका पता लग जावेगा जैसे कि शीले हरा ताम्रम् व संक्षीणमसे क्रोम पीला सीसारागेतते से इत्यादि इत्यादि नकली कहवे की टिकियों की पहिचान इस भांति है कि शुद्ध कहवे में स्टार्च नहीं होता है। उपरोक्त विधियों के अनुसार स्टार्च की परीक्षा करनेसे यह परिक्षा पूर्ण हो जावेगी।

चाय में प्रायः घटिया प्रकृति की चाय अथवा प्रयोग की हुई चाय ही मिलावट का अधिक काम देती है और यह रङ्ग भी दी जाती है। प्रयोग में आई हुई चाय के मिलाने से घुलनशील पदार्थों की प्रतिशत बहुतही न्यून रह जाती है और इसको परिपूर्ण करनेको कोटिशः वस्तुए विशेषतः कत्था प्रयोग में आती में बहुतही न्युनचाय डंठलके टुकड़ें इत्यादि को में गोंद मिलावट भी बनाते हैं जो गोंद के कारण जुड़ जाते हैं और उसी सूखेसे बने रहते हैं। इसको उपचाय कहते हैं। चाय में यदि और किसी की पत्ती पड़ी उनका तो सर्वोत्तम परीक्षा अनुवीक्षण यंत्र सेहो सकती है। पानी भिगो कर नर्म हो जानेके बाद पत्ती खोल कर एक साधारण अनुवीक्षण यंत्र में देखकर उसका शुद्ध चायकी पत्ती से मिलान करने से और उसके किनारे सीरा इत्यादि का निरीक्षण करने से पूर्णतः लग जावेगा। प्रयोग में तर हुई पत्तियां बहुधा आँख से देखकर ही प्रत्यक्ष हो जाती है। क्योंकि उनके किनारे टूट जाते हैं और वह कुछ २ खुली होती है। किन्तु पूर्ण परीक्षा घुलन शील वस्तुओं की प्रतिशत निकाल ने पर ही होगी। शुद्ध चाय में ऐसी भस्म २०५ से लेकर ४०२ तक होगी और प्रयोग में लाई हुई में १०५ प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती है। उपचाय मालूम करने के निमित्त पत्ता पर परम म जल डालदो उपचाय होगी तो गोंद घुलकर जिन २ टुकड़ोंकी बनी उन २ में पत्तियाँ टूट जावेगी। शुद्ध चाय की पत्ती सुन्दर प्रकार से घुल जावेगी। कुछ चाय को जल में उबाल कर उस जलमें अधिक मात्रा में सीसम एकौषिद डाल दो यदि चाय असली होगी तो अवश्य ही रजतनोषेत डालने पर केवल भूरा सा कुछ आजावेगा अन्यथा बहुत ही पीला भारी आवेगा।

इस प्रकार सभी प्रत्येक दिवस की वस्तुओंमें मिलावट होती है। शोक तो यह है कि भारतवर्षमें रासयनिक विद्याका प्रचार बहुतही कम है। जनता उससे काम उठानाही नहीं चाहती अन्यथा उपरोक्त विधिए कुछ सरलतासे कर सक्ता है। अधिकतर वही विधियाँ दीगई हैं जो सरल हैं और विश्वसनीय। वह अधिकतर असफल नहीं होती।

—❁▢▢❁—

कृत्रिम सुगन्ध।

[ले० श्री जटाशंकर मिश्र बी. एस-सी०]

प्रत्येक सुगन्ध या इत्रके बनानेमें तीन बातोंका ख़याल रखना पड़ता है। पहली बात तो यह कि सुगन्ध में उड़नशीलता (volatality) रहनी चाहिये परन्तु इसके साथ ही साथ इस बातका भी ध्यान रखना आवश्यक है कि वह बहुत शीघ्र हो न उड़ जाय अर्थात् वह स्थायी भी हो। तीसरी बात यह है कि सुगन्धके उड़ जानेके बाद कोई दुर्गंधित वस्तु न रह जाय। यदि कोई दुर्गंधमय। पदार्थ रहजायगा तो सुगन्धका उद्देश्य ही व्यर्थ होजायगा सुगन्धकी उड़न शीलता घटानेकेलिये बहुतसी प्राकृतिक और कृत्रिम वस्तुओंका उपयोग किया जा सकता हैं। इन वस्तुओं को आधार (Bas) कहते हैं। अगर आधार में अपनी स्वाभाविक भी कोई सुगंध हो तो और अच्छी

बात है। कृत्रिम चीजोंमेंसे प्रायः धूपका तैल (Sandal wood oil) अगरका तैल और गुलाब जिरेनियम तैलका प्रयोग करते है। इस में इनमें से किसी भी वस्तुको मिला देनेसे उसकी सुगंध उड़ जाती है और बहुत देर तक रहती है। आधार स्वयं धीरे धीरे उड़नेके कारण इनको भी जल्दी नहीं उड़ जाने देता है। कृत्रिम आधारके उदाहरणमें ज्वलील नीबूऐत, द्विसिरकिन

क उ₂ ओ क ओ क उ₃

|

क उ ओ उ

|

क उ₂ ओक ओ क ऊ₃

बानजावीन मद्य बानजील सिरकेत, इत्यादिका नाम लिया जा सकता है। ज्वलील नीबूएतकी बास धीमी और फलों- की सी होती है। इसका क्वथनांक बहुत ऊँचा है, और और यह वस्तु लगभग सभी इत्रों के उड़नशील अंश को हर एक मात्रामें घुला लेती है।

द्विसिरकिनके तैयार करनेकी विधि बहुत सरल है। जब उदहरिकाम्ल वायव्य सिरकाम्ल और मधुरोल (ग्लैसरीन) के मिश्रणमें प्रवाहित किया जाता है तो द्विसिरिकन बन जाता है यदि हैम सिरकाम्लका प्रयोग किया जाय तो एक सिरकिन बन जाता है। यदि सिरक मद्यानार्द्र और पिरीदिनका उपयोग किया जाय तो त्रि-सिरकिन तैयार हो जाता है। त्रि-सिरकिन भी आधारका काम कर सकता है।

सुगन्ध दो प्रकारके होते है। एक तो वह जो इत्र (scents की भांति सुगन्ध फैलानेके लिये लगाये जाते हैं। दूसरे वह जिनका शरबत विलायती, मिठा- इयों और भिन्न भिन्न खाद्य पदार्थोंका स्वाद व बास (flavouring matter) बढ़ानेके लिये प्रयोग किया जाता है। इन दोनों प्रकारके सुगन्धोंकेअंश constituents भिन्न होते हैं।

स्वाद और बास देने वाले पदार्थ प्रायः मज्जिकाम्ल के सम्मेल estrs) होते हैं जैसे ज्वलील सिरकेत जो सेब, केलील सिरकेत जो केला, केलील बलेत amyl valerianate जो नाशपाती, ज्वलेल अजेत (ethyl caproat) जो बेरकी बास देते हैं परन्तु, इन सब सम्मेल में से अधिकाशं की बास एक ही फल की नाईं नहीं होती उनमें कई फलों की सा मिश्रित सुगंध आती है, उदाहरणतः ज्वलील सिरकेत और ज्वलील अजेत सुगंध में कुछ कुछ हरे आम और कच्चे अंजीरों की भी बास आती है।

ज्वलील अन्थूनेजेत नारंगी ज्वलील जिरेनेत नीबू और नरंगी (मिश्रण) की बास पैदा करने के लिये काम में लाये जाते हैं कभी कभी खाली अम्ल या मद्य ही काम आता है, परन्तु बहुत कम।

इत्र के उड़न शील अंश प्रायः सुरभित बानजाविक वस्तुएं होती हैं जेसे नोषो बानजावीन, बानजाव मद्य नार्द्र, वेनिलिन कूमेरिन, आओनोन इत्यादि। नोषो बान जावीन पहिले साबुन में अधिकतर डाला जाता था।

बानजाव मद्यानार्द्र बादाम के तेल में विशेष मात्र से रहता है परन्तु इसमें एक खराबी यह है कि हवा में खुले रहने पर ओषदीकृत हो कर बानजाविकाम्ल बन जाने से सुगंध नहीं देता। मूंगफली का तेल भी इस काम आसकता है वेनिलिन एक प्रकार के जमनछीमी- वेनीला पौड–पाया जाता है। सं १८७६ में टाइमन और हरमन साहब ने इसे कृत्रिम विधियोंसे संश्लेषित भी कर लिया था।

कूमेरिन कूमेरिला नामक फूलमें पाया जाता है। कूमेरिकाम्ल स्वयं ही एक अणु पानी त्याग करने पर कूमेरिन हो जाता है। सिट्रालको जब सिरकोनके साथ प्रभावित करते हैं तो आओनोन तैयार होता है।

इण्डोल इमिल फिशर साहब ने तैयार किया था। वह पदाथ संपृक्त अवस्थामें बड़ी दुर्गंध पैदा करता है परन्तु ७०० के अंश तक हलका करने पर बहुत ही सुगन्धित प्रतीत होता है और जैसमिन को बास आने लगती है। खपील इण्डोल B-methyl indol) या स्केटोल जानवरों और मनुष्योंके विष्ठा- में पाया जाता है। यह पदार्थ भी संपृक्त रहने पर

बड़ा दुर्गंधित होता है परन्तु हलके करने पर अत्यन्त सुगन्धित बन जाता है।

टी वग मैन साहब ने एक वस्तु तयार की है जिसे कृत्रिम कस्तूरी कहते हैं। हर-तृतीय नव नीर्त ल टोल्वीन (para tertiary butyl toluene को धूम्र नोषिकाम्ल से प्रभावित करनेसे पर-तृतीय त्रिनोषोनवतील टौल्वीन तयार होजाता है। इसे ही कृत्रिम कस्तूरीके नामसे प्रसिद्ध कर रखा है। तोन कस्तूरा।

दूसरी वस्तु कीतोन कस्तूरी जो सिरको दिव्योन तयार होती है कस्तूरीकी उतनी अच्छी सुगंध नहीं देती जितनी कि कृत्रिम कस्तूरी से कुछ बान जाविन सम्मेल भी इत्रोंके उड़नशीलताओंके काम आते है जैसे ज्वलील बानजावि दारील विटपेत। ज्वलील या दाहरील अंगारनीलेत था बानजीलबानजावेतज्वलील दालीचीनेत इत्यादि कुछ असम्पृक्त दिव्योल पार्श्वश्रेणी असम्पृक्त (unsaturated) रहती है भी जिनकी सेवन किये जाते हैं जैसे युजिनोल या लौंगका तेल और सैफ्रोल इत्यादि। कुछ इत्र फूलोंसे ही खींचे जाते हैं जैसे लवण्डर तैल बरजेनोल बाईलेट रोज जो जैसे नियम तैल पेटिग्राम तैल खस इत्यादि।

पशुओंके द्वारा भी अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुए प्राप्त होती है जैसे कस्तूरी। शिवेट नामक एक अफ्रीकाका जानवर है जिसकी दुमके मध्य भागमें एक वस्तु पाई जाती है जो अत्यन्त दुर्गंधित होती है परन्तु इसे हलका करनेपर बहुत ही अच्छी गंध आती अम्बर ग्रिस एक प्रकार की उत्तरी समुद्रमें रहने वाली व्हेल मछली है इसके शिरे पर भी कस्तूरी के समान एक वस्तु पाई जाती है।

—o▭o▭■o▭o▭—

गन्धोनिकाम्ल और दिव्योल

(Sulphonic acids, & phenols)

[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम. एस-सी.]

गन्धोनिकाम्ल

यह कहा जा चुका है कि बानजावीन को तीव्र गन्धकाम्लके साथ गरम करने से बानजावीन-गन्धोनिकाम्ल बनते हैं।

$$\text{(बानजावीन) } + \text{ उ-ओ उ. ग ओ}_3 \text{ उ (गन्धकाम्ल)} = \text{(बानजावीन गन्धोनिकाम्ल) ग ओ}_3 \text{ उ} + \text{उ}_2 \text{ ओ}$$
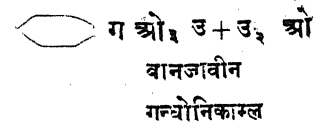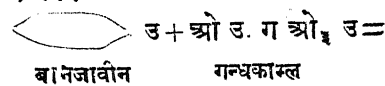
इस अम्लके खटिक, भार- और सीस-लवण घुलनशील हैं अतः घोलमें खटिक ओषिद या भार कर्बनेत डालकर अवशिष्ट गन्धकाम्लको अनघुल खटिक और भार गन्धेतके रूपमें अवक्षेपित कर लेते हैं। और तत्पश्चात् उपलब्ध खटिक बानजावीन गन्धकोनेत, (क$_6$ उ$_5$ ग ओ$_3$)$_2$ ख, में गन्धकाम्ल की ठीक मात्रा डालकर बानजावीन गन्धोनिकाम्ल मुक्त कर लेते हैं।

बानजावीन गन्धोनिकाम्लके पत्राकार रवे होते हैं। वायुमें यह पसीजने लगता है और यह मद्यमें घुलनशील है। यह स्थायी अम्ल है और अम्लों एवं क्षारोंके साथ उबाले जाने पर भी उदविश्लेषित नहीं होता है। पर उदहरिकाम्लके साथ १५०° तक उबाले जाने पर यह बानजावीन और गन्धकाम्लमें विभाजित हो जाता है।

$$\text{क}_6 \text{ उ ग ओ}_3 \text{ उ} + \text{उ}_2 \text{ ओ} = \text{क}_6 \text{ उ}_6 + \text{उ}_2 \text{ग ओ}_4$$

क्षारोंके साथ गलाने पर यह दिव्योलके पांशुज या सैन्धक लवण में परिणत हो जाता है—

$$\text{क}_6 \text{ उ}_5 \text{ ग ओ}_3 \text{ उ} + \text{पां ओ उ} = \text{क}_6 \text{ उ}_5 \text{ ग ओ}_3 \text{ पां} + \text{उ}_2 \text{ ओ}$$

$$\text{क}_6 \text{ उ}_5 \text{ ग ओ}_3 \text{ पां} + २ \text{ पां ओ उ} =$$
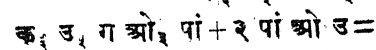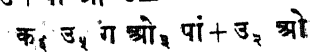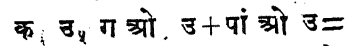
क$_{६}$ उ$_{५}$ ओ पां + पां$_{२}$ग ओ$_{३}$ + उ$_{२}$ ओ

पांशुज दिव्येत

इसी प्रकार पांशुज श्यामिदके साथ गलानेसे दिव्यील श्यामिद बनता है—

क$_{६}$ उ$_{५}$ ग ओ$_{३}$ पां + पां क नो =

क$_{६}$ उ$_{५}$ क नो + पां$_{२}$ ग ओ$_{३}$

दिव्यील श्यामिद

स्फुर पंचहरिद, स्फु ह$_{५}$, के साथ प्रभावित करनेसे यह बानजावीन गन्धोनिक हरिद देता है। इस प्रक्रियामें इसे सिरकाम्लके समान समझना चाहिये जो इस प्रकार प्रभावित करने से सिरकील हरिद देता है।

क$_{६}$ उ$_{५}$ ग ओ$_{२}$ ओ उ + स्फुह$_{५}$

= क$_{६}$ उ$_{५}$ ग ओ$_{२}$ह + उ ह + स्फु ओ ह$_{३}$

बानजावीन गन्धोनिक हरिद

क उ$_{३}$ क ओ ओ उ + स्फुर ह$_{५}$

= क उ$_{३}$ क ओ ह + उ ह + स्फु ओ ह$_{३}$

सिरकील हरिद

यह बताया जा चुका है कि उदौषिल मूल (ओ उ) स्फुर पंचहरिदसे इस प्रकार प्रभावित हुआ करते हैं अतः गन्धोनिकाम्लमें भी उदौषिलमूल की कल्पना की गई है :—

⬡ ग ओ$_{२}$ (ओ उ)

गन्धोनिकाम्ल

गन्धोनिकाम्लको दस्त चूर्णके साथ अवकृत करनेसे बानजावीन गन्धिनिकाम्ल (sulphinic acid) प्राप्त होता है। अवकरणकी प्रक्रिया और अधिक देर तक होने देने से दिव्यील पारदवेधन (phenyl mercaptan) प्राप्त होता है—

क$_{६}$ उ$_{५}$ ग ओ$_{२}$ ओ उ

बानजावीन गन्धोनिकाम्ल

↓ उ$_{२}$

क$_{६}$ उ$_{५}$ ग ओ ओ उ

बानजावीन गन्धिनिकाम्ल

↓ २ उ$_{२}$

क$_{६}$ उ$_{५}$ ग उ

दिव्यील पारदवेधन

बानजावीन गन्धोनिकाम्लको धूम्रित गन्धकाम्लके साथ पुनः प्रभावित करनेसे बानजावीन द्विगन्धोनिकाम्ल मिलेगा।

क$_{६}$ उ$_{५}$ ग ओ$_{२}$ ओ उ + उ$_{२}$ ग ओ$_{४}$

= क$_{६}$ उ$_{४}$ (ग ओ$_{३}$ उ) + उ$_{२}$ ओ

बानजावीन द्विगन्धोनिकाम्ल

इसी प्रकार नीलिन्को गन्धकाम्लके साथ प्रभावित करनेसे गन्धनीलिकाम्ल मिलता है।

क$_{६}$ उ$_{५}$ नो उ$_{२}$ + उ$_{२}$ ग ओ$_{४}$

= (ग ओ$_{३}$ उ) क$_{६}$ उ$_{४}$ नो उ$_{२}$

नो उ$_{२}$ <=> ———→ नो उ$_{२}$ <=> ग ओ$_{३}$ उ

गन्धनीलिकाम्ल

इसका उपयोग नारंगीदारील रङ्ग बनाने में आता है जैसा कि गत अध्यायमें बताया जा चुका है।

इस प्रकार गन्धकाम्ल द्वारा प्रभावित करनेकी प्रक्रियाका नाम गन्धोनकरण (sulphonation) है, और बानजावीन समुदाय में इसका बहुत उपयोग किया जाता है।

बान जावीन गन्धोनिक हरिद—क$_{६}$उ$_{५}$ग ओ$_{२}$ ह—यह कहा जा चुका है कि बान जावीन गन्धोनिकाम्लको स्फुर पंचहरिद द्वारा प्रभावित करनेसे यह यौगिक बनता है। यह गन्धोनिक-हरिद अमोनियाके साथ सरलतया संयुक्त होकर बानजावीन गन्धोनामिद (Sulphonamide) में परिणत हो जाता है—

क$_{६}$ उ$_{५}$गओ$_{२}$ह + नोउ$_{३}$ = क$_{६}$उ$_{५}$गओ$_{२}$नोउ$_{२}$ + उह$_{२}$

बानजावीन गन्धोनामिद

[सिरकीलहरिद अमोनियाके साथ सिरकामिद कउ$_{३}$ कओनोउ$_{२}$ में इसी प्रकार परिणत हो जाता है]

इस गन्धोनिक हरिदको स्फुर पंच हरिदके साथ फिर गरम करनेसे हरोबानजावीन प्राप्त होता है।

क$_{६}$उ$_{५}$गओ$_{२}$ह + स्फुह$_{५}$ = क$_{६}$उ$_{५}$ह + गओह$_{२}$ + स्फुओह$_{३}$

हमने देख लिये कि इस प्रकार गन्धोनकरणकी प्रक्रियाके बानजावीन केन्द्रका उदजन किस प्रकार उदौषिल मूल श्यामजन और हरित् द्वारा थापित किया जा सकता है। इस प्रक्रियामें अनघुल यौगिक भी घुलनशील बनाये जा सकते हैं।

द्विव्योल (Phenols)

बानजावन एक यीको अधिक उदजनोंको उदौषिल मूल द्वारा थापित करनेसे जो यौगिक बनते हैं उन्हें द्विव्योल करते हैं।

एक उदौषद्विव्योल = क$_{६}$ उ$_{५}$ (ओउ)

द्वि-उदौषद्विव्योल = क$_{६}$उ$_{४}$ (ओउ)$_{२}$

त्रि-उदौषद्विव्योल = क$_{६}$उ$_{३}$ (ओउ)$_{३}$

इस प्रकार देखनेसे यह पता चलता है द्विव्योल उसी प्रकारके यौगिक हैं जिस प्रकार के मद्य थे—

ज्वलील मद्य—क$_{२}$उ$_{५}$ओउ

मधुरोल—क$_{३}$उ$_{५}$(ओउ)$_{३}$

पर मद्योंमें और द्विव्योलमें एक बड़ा भेद यह है कि द्विव्योल में अम्लीय मूल होते हैं। मद्यमें अम्लीय मूल नहीं होते हैं। इस गुण के कारण द्विव्योल धातु-उदौषिदोंसे संयुक्त होकर द्विव्येत नामक यौगिक देते हैं:—

क$_{६}$उ$_{५}$ओउ + सैओउ = क$_{६}$उ$_{५}$ओसै + उ$_{२}$ओ

सैन्धक द्विव्येत

द्विव्योल जलमें कम घुलन शील है पर सैन्धक क्षार में अधिक। द्विव्येत जल में घुलनशील हैं। द्विव्योल कहनेसे साधारणतः एक उदौष द्विव्योलका तात्पर्य्य समझना चाहिये। इसे कर्बलिकाम्ल भी कहते हैं। इसे निम्न प्रकार चित्रित कर सकते हैं—

⬡ ओउ

द्विव्योल
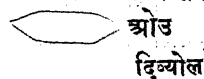
हम यहां कुछ मुख्य एक -, द्वि-, और त्रि-उदौष-द्विव्योलों का वर्णन करेंगे। इनके भौतिक गुण निम्न सारिणी में दिये जाते हैं:—

नाम	सूत्र	मूलोंका स्थान	द्रवांक	क्वथनांक	घनत्व
		ओउ १ में			
द्विव्योल	क$_{६}$ उ$_{५}$ ओ उ	१	४२.५°	१३०°	१.०३९
आजवानोल	(कउ$_{३}$)$_{२}$ कउ. क$_{६}$उ$_{३}$. (क उ$_{३}$) ओ उ	१:३:६	५१°	२३२°	०.९८२
कत्थोल	क$_{६}$ उ$_{४}$ (ओ उ)$_{२}$	१:२	१०४°	२४०°	...
रेशोनोल	,,	१:३	११९°	२७६°	...
कुनाल	,,	१:४	१६९°	...	...
र-माजूफलोल	क$_{६}$ उ$_{३}$ (ओउ)$_{३}$	१:२:३	१३२°	...	...
उदोष कुनोल	,,	१:२:४	१४०°	...	...
भद्राक्षिनोल	,,	१:३:५	२१८°	...	..

दिव्योल—(Phenol)—$क_६ उ_५ ओउ$—इसे कर्बलिकाम्ल भी कहते हैं। सं० १८९१ वि० में रञ्ज ने इस कोलतारमें सब से पहले पाया था। शाकाहारी पशुओं और मनुष्योंके मूत्रमें भी यह पाया जाता है। बानजावीनका वर्णन देते समय कोल-तार-स्रवण का उल्लेख किया जा चुका है। १०० भाग कोलतारमें ०·२० भाग कर्बलिकाम्ल या दिव्योल होता है, और स्रवण द्वारा प्राप्त मध्य तैल में जो १७०°-से २३०°का तापक्रम के बीच में स्रवित होता है यह विद्यमान रहता है। इस तैल में पांशुज क्षार डालते हैं—इस प्रकार दिव्योल का पांशुजदिव्येत बन जाता है जिसको तह तैल से पृथक कर ली जाती है। इसमें फिर अम्ल डाल कर दिव्योल अलग कर लेते हैं। दिव्योल निम्न विधियोंसे भी बनाया जा सकता है:—

(१) गन्धोनिकाम्लके पांशुज या सैन्धक लवणको पांशुज या सैन्धक क्षार के साथ गलाने से दिव्योल का पांशुज लवण प्राप्त होता है।

$$क_६ उ_५ गओ_३ पां + २ पां ओउ$$
$$= क_६ उ_५ ओ पां + पां_२ गओ_३ + उ_२ ओ$$
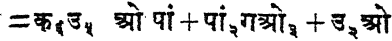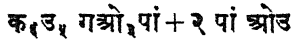
नकलम् या रजतम्की प्यालियोंमें यह प्रक्रियाकी जा सकती है। व्यापारिक मात्रामें तैयार करनेके लिये लोहेके बड़े बड़े देगोंका उपयोग किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त पांशुज दिव्येतमें उदहरिकाम्ल डालनेसे दिव्योल मुक्त हो जायगा:—

$$क_६ उ_५ ओ पां + उह = क_६ उ_५ ओउ + पां ह$$
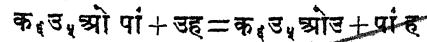
यह विधि अत्यन्त सामान्य है और यह स्मरण रखना चाहिये कि किसी भी गन्धोनिकाम्लको पांशुजक्षारके साथ गलानेसे उसका गन्धोनिक मूल उदौषिल मूलमें परिणत हो जायगा। इस प्रक्रिया द्वारा बानजावीन द्विगन्धोनिकाम्ल से द्विउदौष दिव्योल मिलेगा।

$$क_६ उ_४ (ग ओ_३ पां)_२ + ४ पां ओ उ$$
$$= क_६ उ_४ (ओपां)_२ + २ पां_२ गओ_३ + २उ_२ओ$$
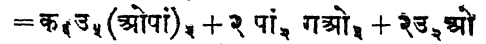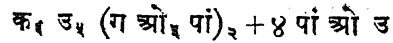
(२) यह कहा जा चुका है कि द्वयजीव बानजावीन हरिद जब जलके साथ उबाला जाता है तो यह दिव्योल में परिणत हो जाता है—

$$क_६ उ_५ नो: नो ह + उ_२ ओ$$
$$= क_६ उ_५ ओ उ + नो_२ + उ ह$$
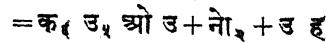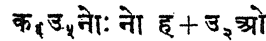
(३) बानजावीन पर ओषोन अथवा उदजन परौषिदका प्रभाव डालनेसे भी यह बन सकता है:—

$$क_६ उ_६ + उ_२ ओ_२ = क_६ उ_५ ओउ + उ_२ ओ$$
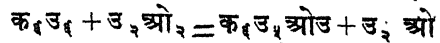
इस प्रकार बानजावीन कई विधियों से दिव्योल में परिणत किया जासकता है:—

$क_६ उ_६$
बानजावीन

उनोओ$_३$ ↙ ↘ गन्धकाम्ल

$क_६ उ_५ नो ओ_२$
नोषो बानजावीन
↓ अवकरण
$क_६ उ_५ नो उ_२$
अमिनो बानजावीन
↓ द्वयजीवकरण
$क_६ उ_५ नो: नो ह$
द्वयजीवबानजावीन हरिद
↓ जल
$क_६ उ_५ ओ उ$
दिव्योल

$क_६ उ_५ ग ओ_३ उ$
बानजावीन गन्धोनिकाम्ल
↓ क्षार के साथ गला कर
$क_६ उ_५ ओ पां$
पांशुज दिव्योल
↓ उ ह
$क_६ उ_५ ओ उ$
दिव्योल
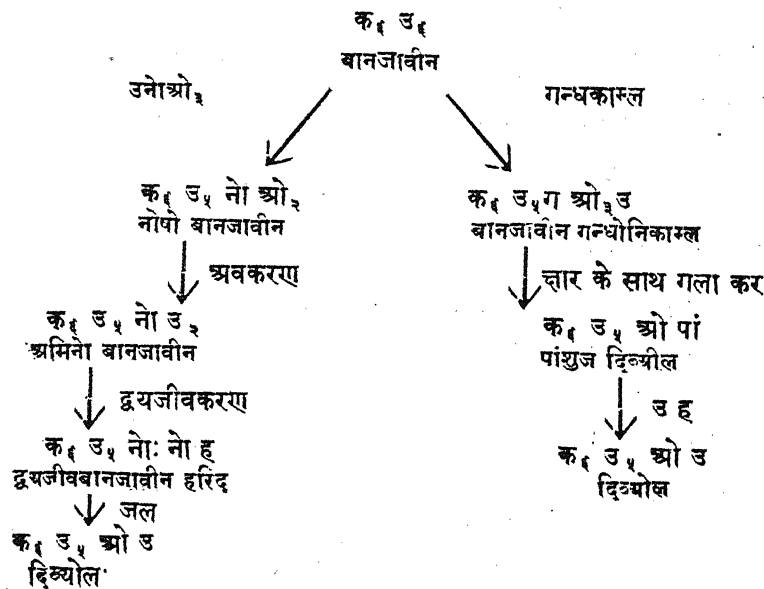
दिव्योलके गुण—इसके सूच्याकार नीरंग रवे होते हैं जिनका द्रवांक ४२° श है। वायुमें खुला छोड़नेसे एवं प्रकाशके प्रभाव से इसमें लाली आजाती है। इसमें एक विशिष्ट गन्ध होती है जिससे यह हलकी मात्रा में भी पहिचाना जासकता है। इसके घोलोंमें रोगकीटाणुओंके विनाश करनेका गुण रहता है अतः इसका अनेक प्रकार उपयोग किया जाता है। कार्बोलिक साबुनों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

प्रक्रियायें—(१) यह कहा जा चुका है कि क्षारके साथ दिव्योल दिव्येतमें परिणत हो जाता है। सैन्धक दिव्येतको दारील नैलिदके साथ प्रभावित करनेसे दारील दिव्येत प्राप्त होता है:—

क$_6$उ$_5$ओ सै + कउ$_3$नै = क$_6$उ$_5$ओ कउ$_3$ + सैनै
दारील दिव्येत
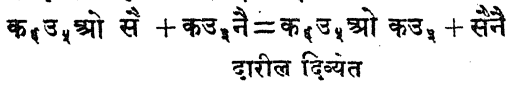
द्विदारील गन्धेतके साथ सैन्धक दिव्येतको प्रभावित करनेसे भी दारील दिव्येत सरलतासे मिल सकता है।

क$_6$उ$_5$ ओ सै + (कउ$_3$)$_2$गओ$_4$
= क उ$_5$ओकउ$_3$ + सै (कउ)$_3$गओ$_4$
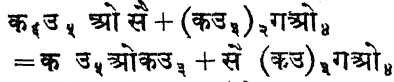
दारील दिव्येत को ज्वलकोंके समान समझना चाहिये:—

क$_2$उ$_5$ओकउ$_3$	क$_6$उ$_5$ओकउ$_3$
ज्वलील दारील ज्वलक	दारील दिव्येत या दारीलदिव्यील ज्वलक
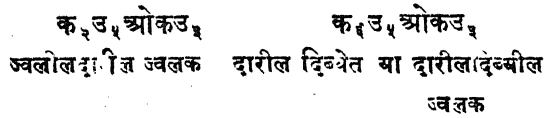
इन्हें दिव्यील—ज्वलक कह सकते हैं। इनमें मनोमोहक सुगन्ध होती है। साधारण ज्वलकों के समान ये भी उदनैलिकाम्ल द्वारा विभाजित हो जाते हैं। दिव्यील-दारीलज्वलक से दिव्योल मिलता है!

क$_6$उ$_5$ओकउ$_3$ + उनै = क$_6$उ$_5$ओउ + कउ$_3$नै
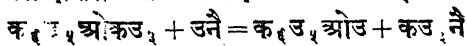
इस विधिसे किसी भी अज्ञात यौगिकमें दारौष-मूल-ओकउ अथवा ज्वलौष मूल-ओक$_2$उ$_5$ का परिमाण निकाला जा सकता है। अज्ञात यौगिककी तौल कर निश्चित मात्रा लेते हैं और इसे उदनैलिकाम्ल के साथ कबन द्विओषिद के प्रवाहमें गरम करते हैं। प्रक्रिया द्वारा जनित दारील या ज्वलील नैलिद रजत नोषेतके मद्यांल घोलमें प्रवाहित किया जाता है। यह रजत नैलिद अवक्षेपित हो जाता है जिसकी मात्रा छान, सुखा कर तौल ली जाती है। इस मात्रा द्वारा अज्ञात यौगिकमें दारौष या ज्वलौष-मूलकी मात्रा की गणना की जा सकती है। इस विधिको ज़ाइसलकी विधि कहते हैं।

(२) सिरकील हरिद और सिरकील मद्यानाद्रके साथ दिव्योल दिव्यील सिरकेत देता है।

क$_6$उ$_5$ओउ + ह.कओ. कउ$_3$ = क$_6$उ$_5$.ओ.कओ-कउ$_3$ + उह
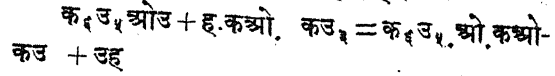
यह विधि मद्यों से सम्मेल बनाने के समान है।

(३) नोषिकाम्ल द्वारा दिव्योल नोषो दिव्योल में परिणत हो जाता है। प्रक्रिया में उदौषिल मूल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

क$_6$उ$_5$ओउ + उनोओ$_3$
= (ओउ)क$_6$उ$_4$नोओ$_2$ + उ$_2$ओ
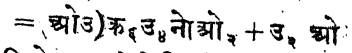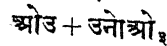
इससे फिर द्विनोषो [illegible] नोषोदिव्योल भी बन सकते हैं— और त्रिनोषो दिव्योल

(४) तीव्र गन्धकाम्ल के साथ यह [illegible] गन्धो-निकाम्ल देता है:—

क$_6$ उ$_5$ ओ उ + उ$_2$ ग ओ$_4$
= (ओ उ) क$_6$ उ$_5$ ग ओ$_3$ उ + उ$_2$ ओ
दिव्योल गन्धोनिकाम्ल
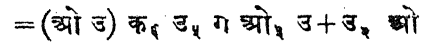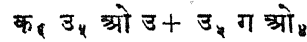
(५) गरम दस्त चूर्ण के ऊपर दिव्योल की वाष्पें प्रवाहित करने से बानजावीन मिलता है—

क$_6$उ$_5$ओउ + द = क$_6$उ$_6$ + दओ
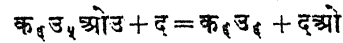
(६) लोहिक हरिदका घोल डालने दिव्योल बैंजनीरंग का घोल देता है। इस विधि से इसकी पहचान की जा सकती है।

(७) लीबर मेन विधि से भी दिव्योल की पहिचान की जाती है; यह विधि इस प्रकार है। ५ घ. श. म. तीव्र गन्धकाम्ल में सैन्धक नोषित का छोटा सा टुकड़ा डालकर धीरे धीरे गरम करो जिससे यह घुल जाय। अब इसमें ०·५ ग्राम दिव्योल डालो। ऐसा करने से भूरे रंग का घोल प्राप्त होगा जो कि गरम करने पर चटकीला नीला हो जायगा। इस घोल को पानी में छोड़ने से लाल रंग मिलेगा। यदि अब इसमें सैन्धक क्षार डालदें तो नीला रंग प्राप्त होगा।

(८) सैन्धक दिव्येत को बन्द पात्र में उच्च दबाव पर कर्बन द्विओषिद के साथ गरम करने से विटपिकाम्ल का लवण प्राप्त होता है। इसका विशेष वर्णन आगे दिया जावेगा।—

$क_६ उ_५ओसै + कओ_२ = क_६उ_४(ओउ)कओओसै$

प्रबलिकाम्ल—२, ४, ६, त्रि-नोषो द्विव्योल—$क_६उ_२(नोओ_२)_३ओउ$—(Picric acid) दिव्योल को गन्धकाम्ल के साथ १००°श तक गरम करनेसे प-दिव्योल गन्धोनिकाम्ल प्राप्त होता है। अब यदि इसमें धीरे धीरे तीव्र नोषिकाम्ल डाला जाय, और फिर गरम किया जाय तो प्रबलिकाम्ल मिलेगा। इसमें तीन नोषो-मूल और एक उदौषिल मूल हैं।
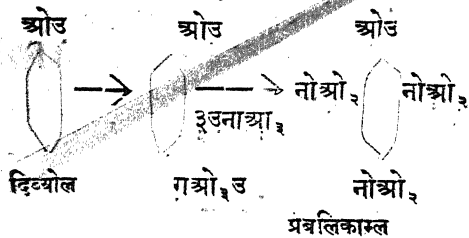
$(ओ उ) क_६उ_४(गओ_३उ) + ३ उ नो ओ_३$
$= (ओ उ)क_६उ_२(नो ओ_२)_३ + उ_२गओ_४ + ६उ_२ओ$

दिव्योल गन्धोनिकाम्ल प्रबलिकाम्ल

प्रबलिकाम्ल में तीनों नोषो मूल—ओउ-की अपेक्षा से दूसरे, चौथे और छठे स्थान पर हैं; अतः इसे २, ४, ६ त्रि-नोषो दिव्योल भी कह सकते हैं। प्रबलिकाम्ल रवेदार पदार्थ है। जलमें यह थोड़ा सा घुलनशील है। घोल का रंग पीला होगा पर यदि मिट्टी के तैल में घोला जाय तो नीरंग घोल मिलेगा। स्फुर पंचहरिद या त्रिहरिद के प्रभावसे यह प्रबलिकहरिद $क_६उ_२ (नो ओ_२)_३ह$ में परिणत हो जाता है। इस हरिद पर अमोनिया का प्रभाव डालने से प्रबलिलामिद $क_६उ_२(नोओ_२)_३ नोउ_२$, मिलेगा। यद्यपि साधारणतः प्रबलिकाम्ल को जलाने पर यह शान्तरूप से जल जाता है पर यदि इसे गला कर जोर से धमाका दे तो यह प्रबल रौद्र विस्फुटन देगा।

प्रबलिकाम्ल से रेशम और ऊनके कपड़े पीले रंगे जा सकते हैं। यह बानजावीन, नफ्थलीन, अंगारिन आदि उदकर्बनों से संयुक्त हो कर प्रबलेत नामक रवेदार यौगिक बनाता है।

बानजावीन-प्रबलेत—$क_६उ_६ \cdot क_६उ_२(नो ओ_२)_३ओउ$ —नीरंग

नफ्थलीन प्रबलेत—$क_{१०}उ_८ \cdot क_६उ_२(नो ओ_२)_३ओउ$ —पीला

अंगारिन प्रबलेत—$क_{१४}उ_{१०} \cdot क_६उ_२(नोओ_२)_३ओउ$ —लाल

आजवानोल—१ दारील ४ समअग्रील-३उदौष बानजावीन—(Thymol) यह आजवाइन के सत में विद्यमान रहता है। इसका उपयोग औषधियों में किया जाता है।

आजवानोल
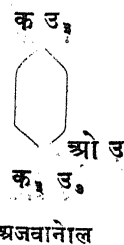
द्विउदौष दिव्योल

तीन प्रकार के समरूपी द्विउदौष दिव्योल हो सकते हैं :—
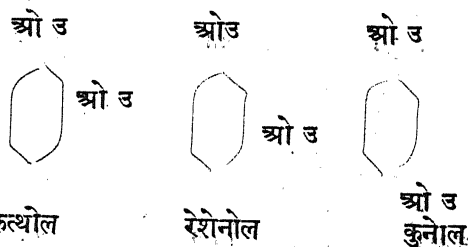
कत्थोल पूर्व उदौष दिव्योल है, रेशोनोल मध्य-उदौष और कुनोल पर—उदौष दिव्योल है।

कत्थोल $(क_६उ_४) (ओ उ)_२$ (Catechol)—यह कत्था के स्रवण करने से प्राप्त होता है। पू- दिव्योल गन्धोनिकाम्ल के के पांशुज लवण को पांशुज क्षार के साथ गलाने से भी यह मिल सकता है।

(ओ उ)क$_{६}$उ$_{४}$ गओ$_{३}$पां + पां ओउ

= क$_{६}$उ$_{४}$(ओउ)$_{२}$ + पां$_{२}$गओ$_{३}$

कत्थोल
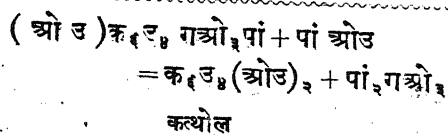
पू—उदौष बानजाव मद्यानाद्र को उदजन परौषिद्-के क्षारीय घोल के साथ ओषदीकृत करने से भी यह मिल सकता है।

ओउक$_{६}$उ$_{४}$कउओ + उ$_{२}$ओ$_{२}$ = क$_{६}$उ$_{४}$(ओउ)$_{२}$ + उ क ओ ओउ
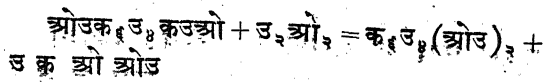
इसके नीरंग रवों का द्रवांक १०४° श है। लोहिक हरिद के साथ यह हरा रंग देता है। इस घोल में यदि सैन्धक अर्ध कर्बनेत का घोल डाल दिया जाय तो रंग लाल हो जायगा।

रेशेनोल क$_{६}$ उ$_{४}$ (ओ उ)$_{२}$—Resorcinol—म-बानजावीन द्वि गन्धोनिकाम्ल के पांशुज लवण को पांशुज क्षार के साथ गलाने से यह मिल सकता है।

ग ओ$_{३}$ पां + २ पां ओ उ = ओ उ, ओ उ + २ पां$_{२}$ ग ओ$_{३}$

पांशुज म-बानजावीन द्विगन्धोनेत — रेशेनोल
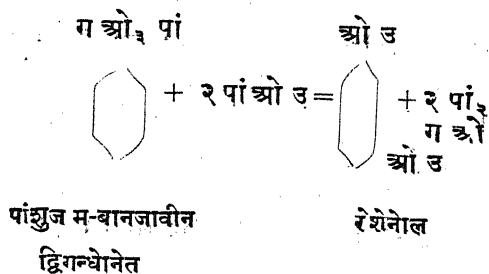
इसके नीरंग रवों का द्रवांक ११९° है। यह जल में भली प्रकार घुलनशील है। इसमें मधुर स्वाद होता है। रंगों के बनाने में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। थलिक अनार्द्रिद (जिसका वर्णन आगे दिया जावेगा) के साथ गन्धकाम्ल की विद्यमानता में गरम करनेसे फ्लोरोसीन नामक रंग मिलता है। इसके हल्के घोल में पीली-हरी दमक रहती है। लोहिक हरिद के साथ रेशेनोल बैंजनी रंग देता है।

कुनोल या उदकुनोन-क$_{६}$ उ$_{४}$ (ओ उ)$_{२}$—Quinol-कुनोन के अवकरण से यह प्राप्त होता है। अवकरण गन्धसाम्ल द्वारा हो सकता है—

कुनोन — कुनोल

क$_{६}$ उ$_{४}$ ओ$_{२}$ + उ$_{२}$ग ओ$_{३}$ = क$_{६}$उ$_{६}$ओ$_{२}$ + उ ग ओ$_{३}$

कुनोन — कुनोल
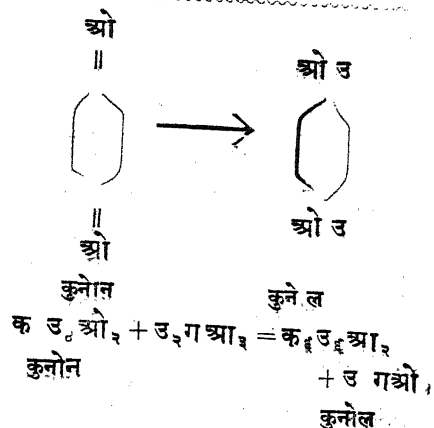
कुनोलके नीरंग रवोंका द्रवांक १६९° श है। यह पानीमें घुलनशील है। इसके क्षारीय घोल अवकारक होते हैं अतः फोटोग्राफी में इसका उपयोग किया जाता है।

त्रि-उदौष-द्विव्योल

तीन प्रकार के समरूपी त्रि-उदौषकुनोल हो सकते हैं:—

ओ उ

पर-माजूफलोल — प्रभ- द्रचिनोल — उदौषकुनोल
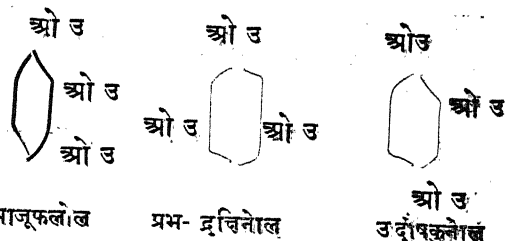
परमाजूफलोल—या पर-माजूफलिकाम्ल-क$_{६}$ उ$_{३}$ (ओ उ)$_{३}$- (Pyrogallol माजूफलसे निकले हुए माजूफलिकाम्ल-क$_{६}$उ$_{२}$(ओउ)$_{३}$कओ ओउ, को गरम करने से परमाजूफलोल मिलता है। कर्बनद्विओषिद का एक अणु निकल जाता है।

क$_{६}$ उ$_{२}$(ओ उ)$_{३}$क ओओ उ = क$_{६}$उ$_{३}$(ओ उ)$_{३}$ + क ओ$_{२}$

माजूफलिकाम्ल — परमाजूफलोल
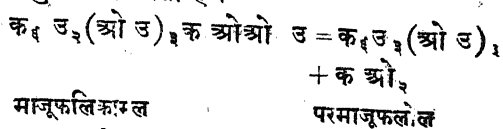
परमाजूफलोल का द्रवांक १३२° है। यह पानी में बहुत घुलनशील है। इसका क्षारीय घोल ओषजन को सोख लेता है और ऐसा करने पर काला पड़ जाता है।

ओषदीकरण होने पर यह सिरकाम्ल, कर्बन एकौषिद, द्विओषिद आदि में परिणत हो जाता है। इस गुण के कारण ओषजन की मात्रा निकालने में इसका उपयोग किया जाता है। यह रजत, स्वर्ण और पारद लवणों के घोलों का अवकरण कर सकता है। अतः फोटो ग्राफीमें भी उसका व्यवहार किया जाता है। लोहिक हरिदके साथ यह लाल रंग होता है। लोहस गन्धेतका घोल जिसमें थोड़ा सा लोहिक हरिद भी हो इसमें डालने से नीला रंग मिलेगा!

प्रभद्राक्षिनोल—क$_6$उ$_3$(ओउ)$_3$—Phloroglucinol, चर्म तन्तुओं और अनेक प्रकारके रेशोंमें यह पाया जाता है। पांशुज क्षार के साथ गलानेपर रेशेनोल वायुमें से ओषजन ग्रहण करके प्रभद्राक्षिनोल में परिणत हो जाता है—

क$_6$ उ$_4$ (ओ उ)$_2$ + ओ = क$_6$ उ$_3$ (ओ उ)$_3$
रेशेनोल प्रभद्राक्षिनोल
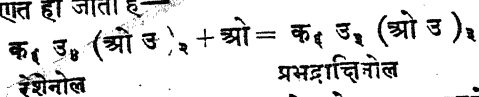
इसके रवों में स्फटिकीकरण के दो जलाणु रहते हैं। लोहिक हरिद के घोल के साथ यह नील-बैंजनी रंग देता है। यह फेहलिंग घोलका अवकरण कर देता है। और इसका क्षारीय घोल ओषजन सोख सकता है।

उदौष कुनोल—क$_6$उ$_3$ (ओउ)$_3$—hydroxy quinol यह अधिक महत्व का नहीं है। जिस प्रकार रेशो नोलसे प्रभ-द्राक्षिनोल मिलता है उसी प्रकार कुनोल को पांशुजक्षारके साथ गलानेसे उदौष कुनोल मिल सकता है।

भिन्न भिन्न दिव्योल लोहिक हरिद से भिन्न भिन्न रंग देते हैं। हम इनका संग्रह दे देना उपयोगी समझते हैं।

दिव्योल	लोहिक हरिद से	बैंजनी रंग
कत्थोल	,,	हरा
रेशेनोल	,,	बैंजनी
परमाजूक्लोल	,,	लाल
प्रभ द्राक्षिनोल	,,	नील बैंजनी

समालोचना

अद्वैतवाद—ले०श्री प० गंगा प्रसाद उपाध्याय, एम. ए., प्रकाशक कला कार्यालय प्रयाग-पृ० सं० ३८२। मूल्य ११) । छपाई कागज़ उत्तम।

उपाध्याय जी के अद्वैतवाद सम्बन्धी कुछ लेख माधुरी में प्रकाशित हुये थे। ये लेख इसी अद्वैतवाद नामक ग्रन्थ के अध्याय थे। लेखक महोदय का आस्तिक वाद नामक एक महत्व पूर्ण ग्रन्थ जनता के समक्ष पहले भी आचुका है। इस अद्वैतवाद में मुख्यतः शंकराचार्य जी के वेदान्त-भाष्य में प्रतिपादित मायावाद सिद्धान्त की समीक्षा की गई है। भूमिका में लेखक ने लिखा है— 'फिर भी मुझ जैसे बहुत आत्मा ऐसे हैं जिनकी अद्वैत वाद से संतुष्टि नहीं होती। वह एक तत्त्व की खोज करते हुए भी एकसे अधिक मूल तत्त्वों तक पहुँचते हैं।...... आप उनको दार्शनिक न कहें। वह बुरा नहीं मानते। उनको विशेष संज्ञा से इतना प्रेम नहीं है जितना सत्य से है। जो अद्वैत वाद से सन्तुष्ट हैं वह उससे सन्तुष्ट रहें परन्तु जो अद्वैत वाद में अड़चने देखें वह इसको न मानें।' आगे आप का कथन है कि 'शंकर स्वामी की विद्वत्ता के सामने हम सिर झुकाते हैं परन्तु उनके सिद्धान्तों की स्वतंत्रता पूर्वक मीमांसा करना भी कर्त्तव्य समझते हैं।'

वस्तुतः शंकर के सिद्धान्तों की थोड़ी बहुत समीक्षा उनके परावर्ती आचार्यों ने यथाशक्य सदा की है; माधवाचार्य और रामानुजाचार्य प्रभृति व्यक्तियों ने जी तोड़ यत्न किया कि शांकरिक युक्तियों की निर्मूलता सिद्ध की जाय। पर इन आचार्यों के द्वैत, विशिष्टाद्वैत अथवा शुद्धाद्वैत वादोंके सिद्धान्तों के विषय में यही प्रतीत होता है कि अन्ततोगत्वा ये सब शंकर के अद्वैतवाद में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। शांकरिक चक्र से इनका छुटकारा नहीं हो सकता है। उपाध्याय जी के सिद्धांतों की विशेषता यह प्रतीत होती है कि आद्योपान्त पढ़ जाने पर भी यह स्पष्ट ही रहेगा कि शंकर और उपाध्याय जी के वादों में क्या भेद है।

शंकर को सिद्धांतों को अद्वैतवाद कहा जाता है। उपाध्याय जी के सिद्धान्त 'बहु-वाद' या अनेक वाद, के प्रचारक है। उनके सिद्धान्तानुसार निम्न सत्तायें ब्रह्माण्ड-चक्र निर्माण में भाग लेती हैं—

१. एक ब्रह्म
२. अनन्त संख्यावाले, पर सान्त शक्ति वाले जीव
३. अनेक परमाणुवाली प्रकृति

प्रकृति के विषय में उपाध्यायजी परमाणुवादी प्रतीत होते हैं। अपरमाणुक सांख्य-प्रतिपादित प्रकृति का सिद्धान्त कदाचित् ये नहीं मानते हैं।

समस्त पुस्तक में ग्यारह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय-में लेखक ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि जिज्ञासु को इस ध्येय से अन्वेषण करना चाहिये कि समस्त विषयों के न्यूनतम कारणों की खोज की जाय। पर न्यूनतम कारण का तात्पर्य यह नहीं है कि येन केन प्रकारेण यदि न हो तब भी 'एक-कारण' ही ढूंढ निकाला जाय। यदि एक-कारण से समस्त कार्योत्पत्ति हो सकती है तो अच्छा ही है। पर यदि न हो सके तो केवल दार्शनिक परिपाटी के अन्धविश्वास में प्रवाहित हो कर एक-कारण का ही मानना उचित नहीं है।

शंकराचार्य्य के सिद्धान्त माया के जंजाल ही हैं। उनके मायावाद का प्रभाव इस वाह्य मिथ्या जगत् पर इतना नहीं है जितना कि उनकी युक्तिपटुता पर है। शंकराचार्य्य दूसरे की युक्तियों को असिद्ध करने के हेतु अपनी युक्तिया देते हैं। प्रत्यक्ष—अनुमान आदि प्रमाणों का आश्रय लेते हैं पर अपने वाद पर किये गये आक्षेपों को यह कह कर दूर कर देने का यत्न करते हैं कि

'अविद्या वद् विषयाणि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि शास्त्राणि च' अर्थात् समस्त प्रमाण और शास्त्र और उनके द्वारा सिद्ध विषय अविद्यावद् हैं। उपाध्याय जी ने विद्वत्ता पूर्वक प्रमाणों की प्रामाणिकता पर प्रकाश डाला है।

तीसरे अध्याय में स्वप्न और चौथे अध्याय में माया की विवेचना की गई है। उपाध्यायजीने डा० प्रभुदत्त शास्त्री के मत की पुष्टि करते हुए इस बात पर बल दिया है कि शंकर से पूर्व माया शब्द कहीं भी इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था जिसमें कि शंकर ने लिया है। प्रभुदत्त शास्त्री का कहना है कि यद्यपि माया शब्द के शांकरिक अर्थ वेद में अपेक्षित नहीं हैं पर वेद में मायावाद का सिद्धान्त अवश्य है। उपाध्याय जी इस बात को भी नहीं मानते हैं। ऋग्वेद के नासद् सूक्त की भी उपाध्याय जीने व्याख्या की है जिसके अनुसार उन्होंने अपने बहुवाद का प्रतिपादन किया है।

उपाध्याय जीने छठे, सातवें और आठवें अध्याय में तीन प्रकारके ऐक्य वादोंका प्रतिपादन किया है—

(१) ईश्वरैक्यवाद जिसके अनुसार ईश्वर एक है, कई नहीं पर ईश्वर के अतिरिक्त उसके समान ही सनातन अन्य सत्तायें सभी हैं।

(२) कारणैक्यवाद—अर्थात् कार्य्य रूपसे जो कुछ बहुत्व प्रतीत हो रहा है उसका आदि मूल कारण कोई एक सत्ता है। यह बहुत्व मिथ्या या भ्रम नहीं है।

(३) वस्त्वैक्यवाद—अर्थात् कार्य्यतः और कारणतः एक ही सत्ता है। जो कुछ बहुत्व दिखाई पड़ता है वह भ्रम है, मिथ्या है और इन्द्रिय विकार का फल है।

उपाध्याय जी ईश्वरैक्यवाद के समर्थक हैं और अन्य दो वादों का उन्होंने भली प्रकार समाधान किया है। ईश्वरैक्यवाद, कारणैक्य वाद और वस्त्वैक्य वाद- इस प्रकार का विभाजन उपाध्याय जी से पूर्व किसी आचार्य्य ने नहीं किया है। यह लेखक का अपना ही है। यह एक मौलिकता है।

अन्तिम अध्याय में लेखक ने वेदादि शास्त्रों की सम्मति दी है। उपनिषदों के अवतरणों को देकर यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि इनमें शांकरिक अद्वैत वात का प्रतिपादन नहीं है। उपाध्यायजी के सिद्धान्तों की सार्थकता मानते हुए भी हम यह कह देना उचित समझते हैं कि उपनिषदें भिन्न भिन्न काल में बनी हैं। उनमें किसी एक वादका प्रतिपादन नहीं है। वैशेषिक का परमाणुवाद, संख्या का प्रकृतिवाद, याज्ञिकों का

कर्म काण्ड और बौद्धों का पुनर्जन्म वाद, और लेखक का ईश्वरैक्यवाद एवं शंकर का अद्वैतवाद सभी उपनिषदों में मौजूद हैं। उपनिषदें सब वादों की जन्मदात्री हैं। किसी एक वादका उपनिषदों द्वारा प्रतिपादन कराना न शंकर को ही उचित है और न उपध्याय जी को हो। यही बात वेदों के सम्बन्ध में भी है। उनमें भी देव वाद, ईश्वरवाद, नास्ति-वाद, सत्कार्य्य वाद और असत्कार्य्य वाद सभी हैं।

अस्तु, अद्वैत वाद पुस्तक बड़े महत्व की है। शङ्करके सिद्धान्तों की इतनी विस्तृत आलोचना इस ग्रन्थ से पूर्व इतनी नियम पूर्वक न तो संस्कृत साहित्य में ही थी, और अंग्रेज़ी में भी इस प्रकार का कोई ग्रन्थ नहीं है। हिन्दीमें इस प्रकारका मौलिक दार्शनिक ग्रन्थ अभी तक कोई नहीं लिखा गया है। अतः लेखकका श्रम प्रत्येक साहित्य प्रेमीको अभिनन्दनीय होना चाहिये। अन्य आचार्यों ने अपने सिद्धान्तोंको प्रतिपादन करनेके लिये वेदान्त दर्शनका भाष्य ही बहुधा किया है और भाष्यान्तर्गत ही शंकर की आलोचना की है। पर उपाध्याय जी के ग्रन्थ में शांकरिक वाद के सभी सिद्धान्तों की सुन्दर शैली में विवेचना की गई है। इस पुस्तकका उल्लेख क्रम इतना सरल है कि साधारणसे साधारण व्यक्ति भी इस गूढ़ विषय को बहुत कुछ समझ सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस विषयमें अनेक मत भेद हैं और इस दृष्टिसे उपाध्याय जी की युक्तियां अनेक विचारवान पुरुषोंको कदाचित् हेत्वाभास पूर्ण प्रतीत होंगी। ऐसी अवस्थामें विचारवान व्यक्तियोंसे हमारा यह विशेष अनुरोध है कि इस ग्रन्थ को बार बार विचार पूर्वक पढ़ें और निष्पक्षतः अपनी सम्मति प्रकट करें। हमें यह पूर्ण आशा है कि जनता इस अद्वितीय अद्वैतवाद ग्रन्थका स्वागत करेगी और हम लेखकको उनकी सफलता के लिये बधाई देते हैं।

—'तत्ववेत्ता'

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—**विज्ञान प्रवेशिका भाग १**—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—**मिफताह-उल-फ़नून**—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—**ताप**—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—**हरारत**—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—**विज्ञान प्रवेशिका भाग २**—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—**मनोरंजक रसायन**—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)

७—**सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य**—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

मध्यमाधिकार ... ... ॥=)

स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)

त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—**पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य**—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—**ज़ीनत वहश व तयर**—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—**केला**—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—**सुवर्णकारी**—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—**गुरुदेवके साथ यात्रा**—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—**शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम**—ले०स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—**चुम्बक**—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—**क्षयरोग**—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)

९—**दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस**—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—**पैमाइश**—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)

११—**कृत्रिम काष्ठ**—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—**आलू**—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—**फसल के शत्रु**—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१४—**ज्वर निदान और शुश्रुषा**—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—**हमारे शरीरकी कथा**—ले०—डा० बी०के मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥

१६—**कपास और भारतवर्ष**—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—**मनुष्यका आहार**—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—**वर्षा और वनस्पति**—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—**सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा**—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

भाग १ ... ... २॥)

भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ॥)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
पूर्ण संख्या—१६२ Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A.708

भाग २७ Vol. 27.

सिंह, कन्या १९८५

संख्या ५, ६ No. 5, 6

अगस्त, सितम्बर १९२८

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २७ | सिंह, कन्या संवत् १९८५ | संख्या ५, ६

साबुन

(ले० श्री ब्रजविहारीलाल दीक्षित, बी० एस-सी०)

बुन भी एक ऐसी वस्तु है कि जिसने संसारको इस भांति लुभा लिया है कि उसका अब इससे छुटकारा पाना असम्भव ही प्रतीत होता है। प्रत्येक दिवस इसका महत्व बढ़ता ही जाता है "जिस गृहमें साबुन नहीं वहांके निवासी शिक्षित नहीं समझे जाते और बहुधा कहा भी जाता है कि आधुनिक सभ्यताके सिद्धान्तानुसार जो जितना ही अधिक साबुनका प्रयोग करे वह उतना ही सभ्य है" किन्तु भाई! केवल विचारशील बात तो यह है कि आंगल देशके लोग यह कहें तो ठीक भी है किन्तु भारत वासियोंके ऐसे कथन तथा विचार केवल शोकप्रद हैं। सम्भव है कि जब तक साबुन न निकले तब तक पाश्चात्य देशवासी सभ्य न हों तथा उनकी सभ्यता पूर्णतः वृद्धि पर न हो किन्तु भारतीय सभ्यता तो लाखों वर्षों की है। उसमें साबुन इत्यादि कहांसे आ सकते हैं जो अभी कलही की बात है। हां ये लोग ऐसी प्राकृतिक वस्तुओंका प्रयोग अवश्य करते थे जैसे रीठा, पीली मिट्टी तथा रेह इत्यादि जो अब भी पूर्णतया मिलती हैं। उनके प्रयोग में स्वच्छतामें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रह जाती है, और फिर उनके प्रयोगसे शरीर तथा कपड़ोंको हानि भी नहीं है जिनको परिपूर्ण करनेके निमित्त और रासायनिक पदार्थोंका प्रयोग करना पड़े। इसके विपरीत उससे अनेक शारीरिक तथा मानसिक लाभ ही होते हैं। हां इन वस्तुओंसे आधुनिक सभ्यता अवश्य सिद्ध नहीं होती।

मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि साबुनका निषेध किया जावे तथा उसको प्रयोगमें लाना पाप है किन्तु

यह अवश्य है कि जहां कम साबुनके प्रयोग से ही आवश्यकतायें निवारण होसकती हैं तो अधिक साबुन केवल अपनी सभ्यताकी सिद्धिके अर्थ प्रयोग करना अनुचितसा प्रतीत होता है अथवा जहां पर दो पैसेकी साबुनकी गोलीसे काम चलसकता है वहां केवल अन्य लोगोंको अपनी शान दिखानेके निमित्त बारह आनेकी गोलीकी आवश्यकता नहीं है। मैने बहुधा स्कूल तथा कालेजोंके छात्रालयोंमें देखा है कि छात्रगण अनेक प्रकारके अनोखे अनोखे साबुन एक रुपया अथवा बारह आनेके लाते हैं और एक सप्ताहसे अधिक चलाना पाप समझते हैं। बात यह है कि नहाते समय बार बार साबुनको शरीरमें मलना तथा उसको शरीर से भी अधिक धोना बहुत सी बीमारियोंका कारण है। नीचे यह बतलाया जावेगा कि एकबार साबुनके प्रयोगसे जो काम हो जाता है उससे सौबार साबुन प्रयोग करनेका यौगिक लाभ कुछ बहुत अधिक न होगा। फिर साबुन तो बार बार धोनेसे कालग्रसित हो ही जावेगा क्योंकि सभी लोग प्रायः जानते हैं कि वह किस भाग तक जलमें घुलनशील हैं।

अब साबुन क्या वस्तु है? यह उन अनेक २ चार्विकाम्लोंके धातु लवण होते हैं जो वाष्परूपमें इतने शीघ्र परिणत नहीं हो जाते हैं। वस्त्र तथा शरीर धोनेके निमित्त साबुन उन अम्लोंके घुलनशील लवण होने चाहिये जैसे कि सैन्धकम् पांशुजम् तथा अमोनियम के होते हैं। लकड़ी इत्यादिको धोनेवाले साबुनोंमें रेत इत्यादि भी डाला जाता है। ऐसे लवण भी हो सकते हैं जो घुलनशील नहीं हैं। सब तैल तथा चार्विक पदार्थ ग्लिसरीनके साथ चार्विकाम्लोंके लवण होते हैं। विभाजित किए जानेसे ये अम्ल तथा ग्लिसरीन पृथक् पृथक् हो जाते हैं और उन्हीं अम्लोंके धात्वीय लवण बना लिए जाते हैं जो साबुन कहलाते हैं। ग्लिसरीन जो निकली वह चाहे साबुनमें ही रहने दी जाय अथवा वह भी पृथक् कर ली जावे और व्यापारिक काममें लाई जावे। यह विभाजन क्रिया तीन प्रकारसे की जाती है। प्रथम तो लवणोंको जल तथा वाष्पमें अत्यन्त वायुभारमें अधिक ताप-क्रम तक तपाया जाता है। यदि जलमें कुछ संपृक्त अम्ल किञ्चित मात्र भी विद्यमान हो तो यह क्रिया बड़ी ही सरलतासे बहुत ही कम तापक्रम पर हो जावेगी। दूसरी विधि यह है कि उन चार्विक पदार्थोंको सैन्धकम् इत्यादि उदौषिदोंके साथ प्रतिक्रियासे प्रभावित किया जाता है। इस विधिमें ग्लिसरीन निकल आता है और अम्ल उदौषिदके साथ लवण बना देता है जो साबुन होता है। यही क्रिया प्रायः साबुन बनानेकी है। तीसरी विधि चूनाके प्रयोगसे है जो दो प्रकारकी जाती है। (अ) खुले बर्त्तनोंमें १६%. चूनेके संयोगसे चर्बीको उबालना—ग्लिसरीन पृथक् हो जावेगी और खटिक साबुन बन जावेगा जो घुलनशील नहीं है और अलग किया जानेके बाद किसी भी खनिज अम्लकी प्रतिक्रियासे चार्विकाम्ल देगा जिससे कोई भी साबुन बनाया जा सकता है। (आ) चर्बी बन्द बर्तनोंमें २%.—४%. चूनेके साथ बड़े ही भारी दबावमें उबाली जाती है। सम्भवतः चूनेसे विभाजन केवल आरम्भ हो जाता है और जल तथा वाष्प उन क्रियाओंको पूर्ण कर डालते हैं। अन्तमें कुछ खटिक साबुन तथा ग्लिसरीन और चार्विकाम्ल अलग अलग मिल जाते हैं।

उदौषिद जो अधिकतर साबुनकी प्रतिक्रियामें प्रयोग किए जाते हैं सैन्धकम् तथा पांशुजमके होते हैं। सैन्धकमसे कठोर और पांशुजसे नरम साबुन बनते हैं और ये द्रव हो सकते हैं। सैन्धक उदौषिद के व्यापारिक मात्रामें बनाये जानेसे पहिले पांशुजमसे साबुन बनाए जाते थे जो राख तथा चूनेकी प्रतिक्रियासे सरलतासे बन जाता था। फिर साबुन में अधिक साधारण नमक डालनेसे कठोर सैन्धक साबुन बन जाता था और पांशुज हरिद जलके घोलमें आ जाता था किन्तु अब अधिकतर साबुन सैन्धक उदौषिदसे ही बनते हैं।

अब रहे चार्विक पदार्थ सो जिस प्रकारके साबुन बनानेकी इच्छा हो तथा उस सुगमताके अनुसार जिससे कि वह पदार्थ मिल सकते हैं भिन्न भिन्न होते हैं। शुक्लवर्णके साबुनोंमें अधिकतर

तैल, टैलो, नारियल अथवा ताड़का तैल काममें आता है। बिनोलेका तैल भी प्रयोग किया जाता है किन्तु वह साबुन कुछ समयमें खराब होने लगते हैं और उनमें पीले व भूरे दाग पड़ जाते हैं। साबुनमें बुरी दुर्गंध आने लगती है और वह चिपचिपाने लगते हैं। वस्त्रादि धोनेके साबुन चर्बी तथा अनेक प्रकारकी वसा से बनाए जाते है और ताड़ तथा बिनौलेका तैल भी काममें आता है। पीले साबुनमें भी यही वस्तुएं काममें आती हैं किन्तु कुछ राल भी डालना होता है। यह उदौषिदके साथ बड़ी सरलतासे संयुक्त हो जाता है और प्रायः नये साबुन बनाता है। यह चर्बीसे सस्ता भी होता है और इसके मिलानेमें साबुनमें अधिक झाग तथा अनेक गुण आ जाते हैं जिनके कारण इसको मिलावट नहीं समझना चाहिए। शुष्क न होने वाले तैल सैन्धक उदौषिदके साथ अनेक कठोर साबुन बनाते हैं। अर्द्ध शुष्क होने वाले साधारण कठोर और शुष्क हो जाने वाले प्रायः नर्म साबुन बनाते हैं। गोलेका तैल बिना उबाले ही बड़ी सुगमता से विभाजित हो जाता है और इस कारण यह साबुन बनानेकी विधिमें खूब प्रयोग किया जाता है।

स्नानादिके साबुन बड़े अच्छे अत्युत्तम पदार्थों से बनाने चाहिए परन्तु बहुधा साबुनोंमें तो वस्त्रादिके साबुनसे भी सस्ते पदार्थ प्रयोगमें आते हैं और उनके दोष बढ़िया रंग तथा तीव्र सुगंधोंमें छिपा दिए जाते हैं। बहुत से साबुन तो दो या अधिक प्रकारके सस्ते साबुनों को पिघला देनेसे ही बन जाते हैं। अच्छे साबुन निःकृष्ट पदार्थों से कदापि नहीं बन सकते। उसके निमित्त सैन्धकम् समुदाय का कोई शुद्ध उदौषिद होना चाहिए जिसमें अन्य लवण आदि विशेष कर गन्धित तथा गन्धिद न हो, क्योंकि यह विशेष प्रकारसे शरीरको हानिकारक है और सुन्दर रंग चढ़ानेमें बाधक होते हैं।

साबुन बनाने की टङ्की होती है। यह गोल भी हो सकती है अथवा चौकुंठी भी। गोल टङ्की १० फुट चौड़ी और १५ फुट गहरीसे लेकर २५ फीट चौड़ी और ३५ फीट गहरी तक होती है जिसमें कोई दो सौ मन साबुन आ जावे और अधिकतर सभी स्थानोंमें वाष्प द्वारा तपायी जाती है। छोटी छोटी टङ्कियां जिनमें शारीरिक साबुन फिर टिघलाये जाते हैं वाष्पकुण्डसे घिरी रहती हैं और बड़ी बड़ी टङ्कियोंमें प्रायः दोनों ही प्रकारका प्रबन्ध होता है। आजकल तो टङ्कियोंमें एक तिकोनी पैंदी होते हैं जिसमें तपानेके निमित्त वाष्प चक्र बने होते हैं। ऐसी ही एक टङ्की जिसमें १०० मन साबुन आ जावे १५ फीट व्यास की गोल २१ फीट ऊंची होनी चाहिए और उसमें ५ फीट की पेंदी होगी। यह बड़ी ही सुदृढ़ पत्थरके स्तूपों पर रक्खी जाती है। पेंदीमें बड़े-बड़े आरपार छिद्र होते हैं जिनसे प्रतिक्रिया समाप्त होने पर निकृष्ट द्रव्य निकाल लिया जाता है और साबुन भी जो अभी द्रव ही होता है एक नलसे निकाल कर दूसरे बर्तनमें पहुंचा दिया जाता है।

साबुन बनाने की अनेक विधियां है किन्तु उनमें से अत्यन्त सुगम तथा बहुधा प्रयोगमें लाई जाने वाली निम्न लिखित हैं:—

१—चार्विक पदार्थमें उदौषिदकी ठीक मात्रा जो उसको विभाजनार्थ आवश्यक है डाल देते हैं और थोड़ी देरमें साबुन बन जाता है। यहां ग्लिसरीन साबुनमें ही रह जाती है।

२—चार्विक पदार्थ उदौषिदके घोलके साथ उबाले जाते हैं, यहां तक कि विभाजन पूर्ण रूपसे हो जाता है; और साबुनमें कुछ इच्छित गुण आजाते हैं। फिर ठंडा कर देनेके बाद या तो ग्लिसरीन निकाल देते हैं या उसीमें रहने दी जाती है। अगणित मात्रा में पड़नेके कारण अन्तमें उदौषिद अधिक रह जाता है और यह धोकर निकाली जाती है। धोनेकी विधि नीचे दी जावेगी और उसीमें ग्लिसरीन भी निकल आती है।

३—असली शुद्ध चार्विकाम्ल को लेकर उसमें गणित मात्रामें कोई उदौषिद तथा कर्बनेत डालने से बनाया जाता है। इससे लवण तथा साबुन सुन्दर बनते हैं।

साबुन बनाने की प्रायः सभी विधियोंमें शीत विधि सबसे सुगम है। किन्तु इसके प्रयोग करनेके निमित्त उदौषिद तथा चार्बिक पदार्थ की मात्राएं ठीक ठीक गणितसे निकाल लेना आवश्यक है और पदार्थों को शुद्ध भी होना चाहिए। इन पदार्थों को ठीक ठीक गणित करना कुछ क्लिष्ट है और इसी कारणसे साबुनमें कोई न कोई अधिक भागमें अवश्य रह जाता है। चार्बिक पदार्थको लेकर पिघला देने के बाद एक ऐसे बर्तनमें रखते हैं जो कि वाष्पसे तपाया जाता हो और जिसमें स्वयम् हिलनेका उचित प्रबन्ध भी हो। अब उसमें उदौषिद की ठीक मात्रा डालदेते हैं और कुछ समय तक हिलते हैं प्रतिक्रियासे जो गर्मी निकलती है वह प्रतिक्रिया को पूर्ण करनेके लिए काफी होती है किन्तु प्रतिक्रिया एक बार आरम्भ होजानी चाहिए। जब प्रतिक्रिया भली भांति आरम्भ होजाती है तो द्रव्य सांचोंमें भर दिया जाता है जहां वह कई दिवस तक ठंडा होता रहा है और प्रतिक्रिया भी शनैः शनैः पूर्ण होती रहती है। गिलसरीन इत्यादि साबुन ही में रह जाती है। जल्दीका बना हुआ साबुन तो सुन्दर होता है किन्तु कुछ समय के पश्चात् यह पीला पड़कर चिपचिपाने लगता है। गोलेका तैल अथवा इस प्रतिक्रियामें अधिक प्रयोग किया जाता है।

अधिकतर साबुन उबाल कर बनाये जाते हैं। साबुनकी टंकीमें बहुतसा पिघला हुआ चार्बिक पदार्थ तथा हलका उदौषिद भर दिया जाता है। उसमें नीचेसे वाष्प की धारा प्रवाहितकी जाती है, यहां तक कि चार्बिक पदार्थ तथा उदौषिद मिलकर एक प्रकार का उपघोल बनाने लगते हैं और विभाग क्रियाके आरम्भ होनेकी सूचना देते हैं। यह उपघोल बनना अनिवार्य होता है। इसके न बननेसे कार्य आरम्भ नहीं होता है और इतना जल डालना पड़ता है कि उपघोल बनने लगे। अब उसमें अधिक तीव्र क्षार Alkali डालकर तपाया जाता है यहां तक कि विभाजन क्रिया संपूर्ण होजाती है। अब साबुनमें लकड़ीका पहिया डालदिया जाता है और साबुन उसमें चिपट जाता है। लकड़ीके निकालने पर उसमेंसे साबुनकी लम्बी लम्बी पट्टियां लटकती हैं और निःकृष्ट द्रव्य उससे अलग हो जाता है। जब साबुन ठंड पाकर उंगलियोंमें कठोर और शुष्क प्रतीत होने लगे तो प्रतिक्रिया पूर्ण समझी जाती है। अब यह लवण क्रियासे स्वच्छ किया जाता है। इस क्रियामें साधारण लवण का एक अत्यन्त गाढ़ा घोल बनाकर साबुनमें डाल देते हैं। स्वच्छ होकर साबुन पहिएकी पट्टियोंमें चिपट जाता है और निकृष्ट द्रव्य नीचे रह जाता है। अब वाष्पका प्रवाह बन्द कर दिया जाता है और पाँच छः दिवसके बाद निकृष्ट द्रव्य जिसमें लवण अधिक उदौषिद तथा गिलसरीन इत्यादि होता है पेंदी के छिद्र से निकाल दिये जाते हैं और साबुन टंकी ही में रह जाता है। अब तीव्र क्षारकी और मात्रा डाल दी जाती है और पीले वर्णके साबुनोंके निमित्त राल तथा शुक्ल वर्ण वालोंके लिये गोले का तैल अथवा टैलो डाल दिया जाता है और दो तीन दिवस तक ऐसा उबाला जाता है कि साबुन स्वच्छ तथा अर्द्ध पारदर्शक हो जावे। इस क्रियामें साबुन पूर्णतया एक तिहाई बढ़ जाता है और टंकीके ऊपर भी आ जाता है इसी कारणसे टंकी को पहिले से ही दो तिहाईसे अधिक न भरना चाहिए। जब यह डाला हुआ पदार्थ भी पूर्णतया विभाजित हो लेता है तो निकृष्ट द्रव्य दो तीन दिवसके बाद स्वच्छतासे निकाल दिया जाता है अब अन्तिम प्रतिक्रियामें साबुन को उबालते हैं और जल डालते हैं यहाँ तक कि साबुन दानेदारके स्थानमें चिकना हो जाता है। पाँच छः दिवस तक फिर रक्खा रहने देने के पश्चात् तीन द्रव्य अलग हो जावेंगे। नीचेके द्रव्यमें उदौषिद की अधिक मात्रा तथा अन्य घुलनशील वस्तुएं होंगी और बीचवालेमें सब वस्तुओंकी मिलावट तथा अन्य निकृष्ट पदार्थ होंगे। ऊपर साबुन होगा यहाँ से निकाल कर साबुन एक कचरमें डाल दिया जाता है। यह एक ऐसा यन्त्र है कि इसमें साबुन पूर्ण रूपसे एकान्तर हो जाता है। इस यन्त्रमें एक चौड़ा यंत्र एक गोलेके अन्दर फिरता है जो एक बड़े गोलेमें

रक्खा होता है। घुमाने पर साबुन नीचेसे गोलेमें घुसता है और पेंच पर होकर ऊपर जाता है और फिर बड़े गोलेमें गिर पड़ता है। इस प्रकार यह द्रव्य भलीभांति मिल जाता है। इसी यन्त्रमें रंग सुगन्ध तथा अन्य प्रकारके मिलावटके पदार्थ डाल दिए जाते हैं जैसे कि सैन्धक कर्बनेत, नोषेत तथा टंकण इत्यादि। यह वस्तुएं भली भाँति मिल जाती हैं और साबुन हलका रंगीन तथा कठोर हो जाता है। इसके उपरान्त साबुन बड़े बड़े सांचोंमें डाला जाता है जो कि लोहकी लम्बी दो पट्टियों पर रक्खी हुई होती हैं और जिनकी दीवारें हटाई जा सकती हैं। हर एक सांचेमें दस या बीस मन साबुन भर दिया जाता है और दो रोज तक जमने देनेके पश्चात निकालकर यह चट्टे एक सप्ताह तक हवामें शुष्क तथा ठंडे होनेके निमित्त पड़े रहते हैं। पश्चात् यह चट्ठे एक ऐसे यन्त्र में दबाए जाते हैं जिनमें लोहेके सुदृढ़ तार बड़ी ही सुदृढ़ताके साथ खिचे तने रहते हैं दबाने पर तारोंसे साबुनके चट्ठेकी इच्छित चौड़ाई की पट्टियां बन जाती है। अब इन पट्टियोंको भी एक ऐसी ही मशीनमें दबाते हैं जिससे पटटियां कट कट कर छोटी छोटी चौकोर गोल बन जाती हैं। इसके पश्चात यह कोई बारह पन्द्रह घंटे तक २६° श तापक्रम पर शुष्ककी जाती हैं और फिर एक ऐसे यन्त्र में प्रत्येक टुकड़ा दबाया जाता है कि उसकी विशेष इच्छित सूरत बन जाती है और नाम इत्यादि भी खुद जाता है। तत्पश्चात् वह एक अनादि अनन्त पेटी पर ऐसे मनुष्योंके पास पहुँच जाती है जो उन्हें पत्तोंमें लपेट कर डब्बोंमें भर देते हैं और तुरन्त ही विक्रयस्थानमें भेज देते हैं।

शारीरिक साबुन भी इसी भांति बनाए जाते हैं परन्तु उनमें अत्युत्तम् पदार्थ डाले जाते और बड़ी ही बुद्धिमत्ताके साथ सब प्रतिक्रियायेंकी जाती हैं ताकि उनमें कोई उदौषिद अधिक मात्रा में न रह जावे। जो अधिक होता भी है वह कसने और धोनेकी क्रिया में दूर हो जाता है। शारीरिक साबुन भी तीन विधियों से बनता है—

१—कसे हुए साबुन-इसके निमित्त अच्छे पदार्थोंसे उपरोक्त विधियों के बने हुए साबुन ही प्रयोग में आते हैं। उनको एक साबुन-कसमें डाल कर कसते हैं जिससे साबुनके बड़े बड़े बारीक बारीक पत्र हो जाते हैं यह पत्र फिर शुष्क किए जाते हैं यहां तक कि उनमें केवल १०% ही जल रह जाता है अब यह शुष्क पत्र एक ऐसा चर्कमें डाले जाते हैं कि वह साबुनको पीस डालती हैं और रंग इत्यादि भी यहीं डाल दिए जाते हैं। जब पिसना तथा रंगका एकसार होना पूर्ण हो जाता है तब साबुन एक बड़े चौकोर छिद्रमें से बड़े ही भार तथा दबावसे निकाला जाता है। इस प्रकार एक लम्बी पट्टी बन जाती है. फिर उसको काट कर और दबा कर उपरोक्त विधिसे ही नाम इत्यादि खोद देते हैं। इस विधिमें बड़ीही कोमल सुगन्ध तथा रंग व अन्य ऐसे पदार्थ प्रयोग किए जा सकते हैं जो दूसरी विधि में तपाए जानेके कारण वाष्प रूपमें परिणित होकर नष्ट हो जाते। गोली भी बड़ी ही कठोर बनती है और प्रयोग किए जानेसे ऐसी जल्दी घिसती नहीं।

२—द्रव किए साबुन—इसमें एक या अधिक प्रकारके साबुन जल वाष्प के घिरे हुए बत्तनमें पिघलाये जाते हैं और उनमें रंग तथा सुगन्ध डाल दी जाती है। इसको अत्यन्तही वेग से हिलाते हैं और वायु इत्यादि के बुलबुले साबुनमें भिदकर भर दिए जाते हैं जिससे साबुन जल पर तैरता रहता है। यह जल्दी घिसते हैं।

३—पारदर्शक:—साधारण साबुन मद्यमें घोल लिया जावे और फिर मद्यको स्रवित करदें तो साबुन की एक पारदर्शक झिल्ली रह जावेगी जो कि सांचेमें ढाककर शुष्क करनेसे कठोर गोलीमें परिणितकी जा सकती है। ऐसे साबुन बनानेकी दूसरी विधि यह है कि चार्बिक पदार्थको उदौषिदके संयोगसे पड़ा रहने दो यहां तक कि विभाजन पूर्ण हो जावे। उसमें भी रंग तथा सुगन्ध भी डाल दो। ग्लिसरीन जो उसमें रह जावेगी वह साबुनको अर्ध पारदर्शक कर देती है।

ग्लिसरीन और डालनेसे अथवा मद्य या शकरका घोल डाल देनेसे अधिक पारदर्शक हो जावेगी।

उपर्युक्त विधियोंसे यह तो प्रत्यक्ष ही है कि सब प्रकारके साबुन बनानेमें चार्विक पदार्थ प्रयोग किए जाते हैं और रासायनिक ज्ञानसे सब चार्विक पदार्थ एक ही हैं चाहे वह गोलेका तैल हो अथवा टैलो। जो मनुष्य केवल इसी विचारसे किसी अमुक साबुन को प्रयोगमें नहीं लाते कि यह चर्बीका बना है वह सर्वथा गलती पर हैं। सभी चार्विक पदार्थोंमें चार्विकाम्ल होते हैं जो एकही समुदायके भिन्न-भिन्न सदस्य है और एक दूसरेमें बहुतही कम भेद रखते हैं। किसीमें १७ कर्बन परमाणु होते हैं, किसीमें ११ या इससे भी कम तथा अधिक हों, संपृक्त हों तथा असंपृक्त हों। हैं तो एकही। सभी चार्विक पदार्थ ग्लिसरीन और उसी अम्लमें विभाजित होते हैं। अम्लसे धात्वीयलवण बनकर साबुन बनता है और ग्लिसरीन रह जाती है जो निकाल दी जावे या न निकाली जावे। यह साबुन बनानेके पश्चात् जो निकृष्ट द्रव्य रह जाता है उसमें होती है और अधिक तापक्रम पर तपाई हुई वाष्प द्वारा स्रवणकरनेसे पृथक् की जा सकती है। पहिले तो यह साबुनका निकृष्ट पदार्थ समझी जाती थी और बहुतही कम व्यापारिक मूल्य की थी। किन्तु जब पिछले महाभारतमें जबसे इससे बनाकर विस्फोटक प्रयोग किए गए ग्लिसरीनका व्यापारिक मूल्य बहुतही बढ़ गया। अनेक अनेक स्थानों में साबुनका व्यापार केवल इसी वस्तुके व्यापारके निमित्त खुला है और साबुन इस वस्तुका निकृष्ट पदार्थ समझा जाता है। कितनेही कम मूल्य पर साबुन विक्रय किया जावे सो ग्लिसरीनसे मूल्यकी पूर्ति हो जावेगी और संभवतः कहीं भी ऐसा साबुन अब न बनता होगा जहां यह अमूल्य पदार्थ साबुनमें ही छोड़ दिया जावे।

अब साबुनके गुण देखिए प्रायः लोग रासायनिक क्रियासे परिचित नहीं हैं, वे केवल इसी गुणसे साबुन का मूल्य विचारते हैं कि यह झाग कितना देता है। झाग है अवश्य आवश्यकीय वस्तु क्योंकि यदि वह किञ्चित मात्र भी झाग न देगा तो उस जलमें वह प्रयोग नहीं किया जा सकता। 'उस जल' से मेरा अभिप्राय यह है कि बहुतसे जल ऐसेभी होते हैं। जिनमें साबुन झाग कदापि न देगा (कठोर जल) वरन् साबुनको नष्ट कर देगा। किन्तु झाग कोई गुणकारी वस्तु नहीं हैं और न कोई यह सिद्ध कर सकता है कि जितनाही झाग देगा उतनाही साबुन गुणकारी होगा। साबुनका रंग तथा सुगन्धभी कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसपर साबुनका मूल्य निर्भर हो यद्यपि खरीदते समय लोग अधिकतर यही देखते हैं। प्रथम तो उसका रंग और यदि रंगने लुभा लिया तो उसकी सुगन्धका निरीक्षण किया। यह ऊपर कहा ही जा चुका है कि बहुधा निकृष्ट साबुनोंमें सुन्दर गन्ध तथा रंग डालकर उसके दोषोंको छिपाते हैं।

वास्तवमें साबुनका मूल्य उसकी टिकियाकी कठोरता तथा मैल दूर करनेकी शक्ति है। कठोर होनेसे गोली शीघ्र नहीं घिसती है और अधिक समय तक काम देगी। मैल दूर करनेकी क्रिया इस प्रकार है। जब साबुनका घोल पानीमें बनाया जाता है तो वह उदविश्लेषित होकर मुक्त अम्ल तथा उदौषिदमें विभाजित हो जाता है। इसी उदौषिद पर मैल दूर करनेकी शक्ति निर्भर है। प्रायः हमारे सभी अङ्गोंसे कुछ न कुछ चिकनाहट निकलती रहती है और यह चिकनाहट हमारे वस्त्रों तथा शरीरमें धीरे धीरे अधिशोषित होती रहती है। जो मैलके कण वस्त्र तथा शरीर पर गिरते हैं वह इसी चिकनाहटमें फँस जाते हैं। यदि चिकनाहट हो तो झाड़ने तथा मलकर धोनेसे मैल अवश्य छूट जावे। चिकनाहट जलमें घुलनशील नहीं हैं और मैलभी इसी कारण साधारणतः छूट नहीं सकता। मुक्त उदौषिद इस चिकनाहटके संयोगसे शीतल विधिके अनुसार साबुन बना देगा जो घुलनशील है और मैलको छुटाकर घुल जानेका समय मिल जाता है। यदि किसी वस्त्रमें अधिक चार्विक पदार्थ होगा तो अवश्यही असली उदौषिदसे धोनेसे लाभ होगा। इसीसे यह भी

सिद्ध होता है कि अधिक साबुनसे कोई विशेष लाभ नहीं है। जो साबुन जिस मात्रामें प्रयोग किया गया है वह तो अपना उदौषिद देकर शरीर तथा वस्त्रमें विद्यमान चार्विक पदार्थसे स्वयमही और साबुन बनायेगा और यह साबुन फिर उसी प्रकार प्रतिक्रिया करेगा जिस भाँति प्रयोग किए साबुनमें; और यदि औरभी चार्विक पदार्थ शरीर तथा वस्त्रमें रह गया है वहभी साबुन बनकर दूर हो जावेगा। पुनः पुनः यही क्रिया प्रतिक्रिया होती रहेगी और साबुनकी किञ्चित् मात्रासे ही सारा शरीर तथा वस्त्र स्वच्छ हो जावेगा। अतः यह आवश्यक ही है कि साबुन लगाकर शरीर तथा वस्त्रको कुछ समय तक बड़े ही बलसे मला जावे और धो डालनेसे पहिले साबुनको बारबार क्रिया प्रतिक्रिया का समय दें। अधिक मात्रामें साबुन नष्ट करने और शीघ्रतासे धो डालनेसे कोई लाभ नहीं।

बोतलवाला खारा पानी

[ले० श्री हरिकुमार वर्मा, बी० एस-सी]

सोडा वाटर

आजकल सोडा वाटरका बहुत ज़ोर है। जब कभी चलनेसे या पुस्तकोंसे युद्ध करते थक गये तो पासके शर्बतवालेकी दूकान पर जा पहुँचे और झट स्टूल खींचकर बैठ गये। दूकानदारसे कहा "एक गिलास सोडा दो"। विचार करने पर हँसी आती है कि जिस पदार्थको हम पैसे देकर मोल ले रहे हैं उसीसे हम अपनी प्रत्येक सांस द्वारा छुटकारा पाना चाहते हैं।

वास्तवमें सोडा वाटरमें सोडा नहीं होता। कमसे कम इसका होना आवश्यक नहीं है। सोडा वाटरमें क्या क्या पदार्थ हैं यह जाननेके लिये अपने गिलासको थोड़ी प्यास बुझाकर मेज़ पर रख दीजिए तो देखेंगे कि वह द्रव और वायुमें अलग हो रहा है। द्रव पदार्थ सादा पानी है और वायु कर्बन द्विओषिद है जो बुलबुले बनकर निकली जा रही है। जैसे हवा हमको दिखाई नहीं पड़ती वैसे ही इस वायुको भी हम नहीं देख सकते। कर्बनद्विओषिद साधारण हवासे भारी होती है। इसका स्वाद कुछ खट्टा होता है। अगर गिलासके ऊपरी भागमें एक जलती हुई दियासलाई लावें तो वह बुझ जायगी। इस वायुमें कोई वस्तु जल नहीं सकती इसीलिये यह आग बुझानेके काममें आती है।

केवल सोडावाटरही इन दो पदार्थोंमें परिवर्तित नहीं हो रहा है किन्तु दुनियांकी सभी जीवधारी वस्तुएं हमारी ही आँखोंके सामने इन्हीं दो चीज़ोंमें बदल रही हैं। जानदारों तथा बेजान चीज़ोंके लिए वही पदार्थ जिनमें कर्बन अधिकांश में है शक्ति देनेवाले हैं। इञ्जनोंके चलानेके लिये ईंधनकी आवश्यकता है और हमारे शरीरके लिये खाने की। भट्टीसे जो धुआँ निकलता है उसमें ज़्यादा भाग कर्बनद्विओषिद होता है। हम भी श्वास द्वारा उसीको बाहर फेंकते हैं। यह वायु हमारे किसी कामकी नहीं है मगर हरी पत्तियाँ इसीसे धूपमें कर्बन लेकर अपना प्रोटोप्लाज़म बनाती हैं और ओषजन वायुमंडलको दे देती हैं। यह ओषजन हमारी और भट्टी दोनोंकी जिन्दगीके लिये आवश्यक है।

हम तो इन बातों पर विचार कर रहे हैं और गिलासके सोडावाटरका पानी भाप बनकर और घुली हुई कर्बनद्विओषिद निकलकर हवामें मिल रही है। इसी प्रकार और इन्हा दो चीज़ोंमें हमभी परिवर्तित हो रहे हैं। यह प्रमाणित करनेके लिये कि कर्बनद्विओषिद हमारे श्वास द्वारा निकलता है। एक गिलासमें चूनेका साफ़ पानी लीजिए और उसमें एक खोखले नरकटसे फूँकिए, थोड़ी ही देरमें वह सफ़ेद हो जायगा। यह सफेद चीज़ खटिक कर्बनेत है जो कर्बनद्विओषिद और चूनेके पानी से मिलकर बनी है यह देखनेके लिये कि हमारे श्वासमें भाप मिली रहती है सोडावाटरके गिलास का बाहरी हिस्सा तौलियासे पोंछ दो और उसपर

फूँको तो पानीकी नन्ही नन्ही बूँदे जमा होनेसे गिलासपर धुँधलापन आजायगा।

एक बात यह विचारके योग्य है कि बोतल खोलनेके साथ ही गैस क्यों निकलने लगती है। यह गैस पहिले पानीमें घुली हुई थी मगर बोतल खोलनेके बाद पानी उसे घुली हुई हालतमें नहीं रख सकता। एक पदार्थका दूसरेमें घुलना तापक्रम और दबाव पर निर्भर है। बोतलमें कर्बनद्वि ओषिद दाबकर भरी जाती है। उसके खुलने पर दबाव कम होजाता है इसलिये जितनी वायु पहिले घुली हुई थी उतनी अब घुली नहीं रह सकती। यही कारण है कि गैस निकलने लगती है। द्रवकी सतह पर जो वायु होती है वह किसी रोक टोकके बिना बहुत आसानीसे निकल जाती है। वायुके छोटे छोटे बुलबुले जो पानीमें सतहके नीचे घुले हुए हैं वह अकेले अपने आप पानीको हटाकर निकल नहीं सकते हैं इसलिये बहुतसे छोटे छोटे बुलबुले मिलकर बड़े बुलबुले बन जाते हैं जो अन्तमें इतने बड़े हो जाते हैं कि वह पानीमें नहीं रह सकते और ऊपर को चढ़ने लगते हैं। ज्यों ज्यों वह पानीकी ऊपरी सतहके समीप आते जाते हैं त्यों त्यों दबाव कम होनेसे और भी बड़े हो जाते हैं। जब फुटबालके ब्लैडरमें हवा भरते हैं तो प्रारम्भमें अधिक बल लगाना पड़ता है मगर जब उसमें कुछ हवा भर जाती है तो कम बल लगाना पड़ता है। यह मिसाल बुलबुले पर ठीक उतरती है। एक छोटे बुलबुले में भीतरकी वायुका दबाव बाहरके दबावसे बहुत ज्यादा होता है मगर ज्यों ज्यों वह बढ़ता जाता है यह अन्तर कम होता जाता है क्यों कि बुलबुलेकी सतहकी वक्रता कम हो जाती है। इसी लिए चिकनी सतह पर बुलबुले बड़ी मुश्किलसे बनते हैं गिलासमें अगर कहीं खुरदरापन होता है तो छोटे बुलबुले उसीके सहारे पंक्ति बाँध लेते हैं। नहीं तो एक छोटे बुलबुलेको घुली हुई दशासे बुलबुलेकी दशामें आनेके लिए बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। अगर यह चाहो कि वायु सोडावाटरसे जलदी न निकल जाय तो उसमें थोड़ी सी शक्कर मिलाकर गाढ़ा कर दो।

हम सोडा वाटर क्यों पीते हैं। गर्मीके मौसम में वायु हमारे बदनसे ज्यादा गरम होती है और गर्मी वायुसे हमारे बदनमें आती है। यही कारण है कि हमको गर्मी मालूम होती है। अपने बदनको ठण्डा रखनेका एक उपाय है और वह यह है कि हम खूब पानी पीवें। इससे हमको अधिक पसीना आयगा और वायुकी गर्मी हमारे बदनको गरम करनेके बजाय पसीनेके पानीको भाप बनानेमें काम आजायगी। पानी पीते पीतेजी उकता जाता है तो शर्बत पीते हैं। मगर मिठाससे शीघ्र ही तबीअत भर जाती है इस वास्ते सोडा वाटरका प्रयोग करते हैं क्योंकि इसमें मिठास ही नहीं बल्कि कुछ खट्टापन और मनको लुभानेवाले झाग और फेन होते हैं सोडा वाटरसे प्यास तो बुझती ही है और बदनको ठण्डक पहुँचती है मगर अपनी तबीअतको भी बहुत आनन्द आता है।

कर्बनद्वि ओषिद स्वाद और आमाशयको उत्तेजित करता है और फिर शीघ्रही शरीरसे बाहर निकल जाता है।

परमाणुवादका इतिहास

(ले० श्री दत्तात्रय श्रीधर जोग, एम. एस सी.)

विश्वमें जो-जो असंख्य और नाना प्रकार की वस्तुएँ दिखाई देती हैं उनमें ईश्वरी लीलाको देखकर साधारण मनुष्य क्षणमात्रके लिये चकित हो जाता है। हरएक विचारवान मनुष्यके मनमें यह प्रश्न किसी समय अवश्य ही उपस्थित होता है कि क्या ये सब नाना प्रकारकी वस्तुएँ बिलकुल ही एक दूसरीसे भिन्न हैं ? या उनमें आपसमें कुछ सम्बन्ध भी है। जबसे मनुष्य-जातिका इतिहास मालूम हैं यही देखा जाता है कि प्रत्येक विचारवान मनुष्य अपने समयके ज्ञानके आधारपर कोई न कोई मत इनके सम्बन्धमें बनाताही रहा है। इन ही मतोंका इतिहास इस लेखमें संक्षिप्तमें वर्णन करनेका विचार है।

हमारे भारतवर्षमें प्राचीनकालमें कणाद (the atom eater) नामक महान तत्ववेत्ता हो गये हैं उनके मतके अनुसार सर्व पदार्थ अत्यन्त, सूक्ष्म, अक्षय और अविच्छिन्न परमाणुके बने हुये हैं। यह परमाणु एक दूसरेसे बिलकुलही समान है और पदार्थोंकी भिन्नताका कारण केवल इन परमाणुओंकी पदार्थोंमें भिन्न भिन्न रचनाही है। जैसे मिट्टीसे ही ऊँट, हाथी, घोड़ा, बैल, मनुष्य इत्यादि अनेक प्रकार वस्तुएँ केवल रचनाकी भिन्नतासे बनायी जा सकती हैं, उसी तरह इस विश्वके अनन्त पदार्थोंकी रचनाभी परमाणुकी भिन्न-भिन्न रचनासे मानी गयी। यह बात बहुतही अभिमानके साथ कही जा सकती है कि यह सिद्धान्त यद्यपि उस कालमें प्रचलित न हुआ तो भी आधुनिक-कालमें इसी सिद्धान्तसे बहुत कुछ मिलता जुलता सिद्धान्त निकला है।

यूरोपमें २५०० वर्षके पूर्व थेल्स ऑफ मिलेटस नामक एक बड़ाही तत्ववेत्ता पंडित था। इस पंडितने ही पहले पहल यह सिद्ध किया कि अंबर (amber) को किसी पदार्थसे घिसनेसे बिजली उत्पन्न होती है। इस पंडितने ही कणादके सिद्धान्तके समान सिद्धान्त स्थापित किया और विश्वके अनेकत्वमें एकत्व और समानत्व सिद्ध किया। उसके २०० वर्ष पश्चात् ग्रीस देशमें डेमाक्रिटस नामक तत्ववेत्ता प्रसिद्ध था। यह वही पंडित था कि जिसने (Ex-nihilo nil fit-Nothing Comes out of nothing) शून्यसे सेकिसीभी वस्तुकी उत्पत्ति होना संभव नहीं है, इस सिद्धान्तको स्थापित किया। पदार्थोंकी रचनाके सम्बन्धमें उनका मत था कि:—

१—शून्यसे वस्तुकी उत्पत्ति संभव नहीं।

२—संसारकी किसी वस्तुका नाश नहीं हो सकता। वस्तुएं अथवा पदार्थोंके रूपांतर केवल परमाणुओंके मिल जाने या अलग हो जानेके कारण होते हैं।

३—कारण बिना कोईभी बात नहीं होती। कार्यके लिये उचित कारण आवश्यक है।

४—परमाणु असंख्य हैं, और अनेक रूपके हैं। ये परमाणु आपसमें टकराकर जो भँवर पैदा करते हैं ये ही इस विश्वके उत्पत्तिके कारण हैं।

५—पदार्थोंकी भिन्नताका कारण, परमाणुओंकी भिन्नता, संख्या, आकार व्याप्ति और उनकी मंडलमें रचना है। इत्यादि—

डेमाक्रिटसके सिद्धान्तोंका सुधार एपिक्युरस (Epicurus 370 B C) ने किया रोमन तत्वज्ञ लुक्रेशीअस (50 BC) भी डेमाक्रिटसकेही मतका अनुगामी था।

यह एक अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि डेमाक्रिटसने २५०० वर्षके पहिले जो सिद्धान्त स्थापित किये वही मत थोड़े भेदसे आज भी सर्वमान्य हैं।

परन्तु यह बात अवश्यही ध्यानमें रखना चाहिये कि ऊपर वर्णन किये हुए मत और सिद्धान्त प्रयोगोंके आधारपर नहीं परन्तु केवल तर्कशास्त्रपरही निर्भर थे।

इसके बाद तीसरी शताब्दिमें अरिस्टाटल और प्लेटो नामक सर्व प्रसिद्ध महान तत्वज्ञानियोंने एक दूसरे ही मतका प्रचार किया। उनका मत यह था कि संसार

की रचना वायु, अग्नि, जल और पृथिवी इन चारमहा भूतोंसे है, और इनके भिन्नभिन्न परिमाणोंसे मिलनेपर भिन्न भिन्न पदार्थ उत्पन्न होते हैं। हमारे भारत वर्षमेंभी ऐसाही सिद्धान्त प्रचलित था। परन्तु हमलोग चारकी जगह पांच महाभूतोंको (आप, तेज, वायु, आकाश व पृथ्वी) मानते थे। इन सर्व मतोंका प्रचार व उनकी उन्नति भारतवर्षमें विशेष न होनेसे और केवल पाश्चात्य देशोमेंही होनेके कारण उन्हीं देशोंका इस सम्बन्धमें इतिहास जानना उचित है।

अरिस्टाटलके सिद्धात उस समय और उसके बाद भी सैकड़ो वर्ष प्रचलित और बहुमान्य रहे। उनके ८०० वर्ष पहले जिस परमाणुवादकी स्थापना डेमाक्रिटसने की थी उसे लोग बिलकुल भूल चुके थे। इसका मुख्य कारण यही था कि यूरोपीय सभ्यतापर, जेनेरिक्स, आन्टिला और बरबरिअन्सके आक्रमण होनेसे पहली सभ्यता नष्ट हो चुकी थी।

अतएव ईसाकी चौथी शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें यूरोपदेशमें अरिस्टाटलका महाभूत-वाद (संसारकी रचना जल, तेज, वायु और पृथिवीसे हुई) प्रचलित था। इस मतके प्रचारसे लोगोंके मनमें ये विचार आने लगे कि यदि हर एक वस्तुमें यही चार महाभूतों का भिन्न भिन्न परिमाण हैं तो एक पदार्थको किसी प्रयोगसे दूसरे योग्य पदार्थके साथ रासायनिक क्रिया से मिलाकर इच्छित पदार्थ निर्माण करना सम्भव होना चाहिये। इस विचारसे लोग प्रयत्न करते हुये रासायनिक क्रिया-द्वारा एक पदार्थसे बहुतसे दूसरे पदार्थ जो पहिले मालूम न थे तयार करने लगे परन्तु मानवइच्छाका यही अन्तिम लक्ष्य न था। उस पर यह कल्पना निकली कि योग्य रासायनिक प्रयोगसे किसी भी साधारण कनिष्ट धातुसे सोना अवश्य बन जाना चाहिये। ऐसे विचारसे ही लोगोंके मनमें बड़ा आनन्द होने लगा और १७ वीं शताब्दी ईसवी तक (पूरे १२ सौ वर्ष) इसी विषयकी पूर्तिमें प्रत्येक देशके लोग लगे रहे। ऐसे प्रयत्नोंका घर यूरोप, पश्चिम एशिया, और भारतवर्ष था। इस मतको 'आलकेमी' कहा जाता है। जोकि 'अलकेमी' का जन्म अरिस्टाटलके महाभूतवादमेंसे हुआ तो भी इतने शताब्दियोंमें उसमें यह फर्क पड़ा कि अलकेमिस्ट जल, तेज, वायु, पृथ्वी इन चार महातत्वोंको न मानते थे, वार गन्धक और पारा इन तत्वोंको मूलतत्व मानकर उनके भिन्न भिन्न परिमाणोंमें मिलनेसे सब पदार्थोंका बनना मानने लगे।

कनिष्ट धातुसे सोना बनाना केवल उद्देश नहीं था। वह ऐसी एक औषधि बनाना चाहते थे कि जिससे आदमी अमर हो जाय और जो सब रोगोंका इलाज हो। यद्यपि ये सब प्रयत्न सफल न हो सके तो भी उससे बहुतसे नये नये पदार्थ जो पहले कभी नहीं मालूम थे तैयार हुए। औषधि शास्त्रमें उन्नति थोड़ी बहुत अवश्य होने लगी। दूसरा एक बड़ा लाभ यह हुआ कि प्रयोगशास्त्रकी उन्नति बहुत कुछ हुई। अस्तु।

राबर्ट बाइल (१६२६-१६२७) नामक एक अंग्रेज वैज्ञानिकने सबसे पहले इन उपर्युक्त प्रयत्नोंको एक नियमित रूप देनेका यत्न किया। उसने यह एक बड़ा भारी काम किया कि उसके समय तक जो-जो प्रयत्न हर एक आदमी अपने-अपने स्वार्थके लिए करता था उन प्रयत्नोंका उपयोग विज्ञानकी वृद्धिके लिए किया जाने लगा। इसी कालमें रसायनशास्त्रका जन्म हुआ, ऐसा कहा जा सकता है।

कोई सौ वर्ष तक रसायनशास्त्रकी उन्नति विशेष नहीं हुई। १८ वीं शताब्दिमें लवाशिये नामक बड़े रसायनज्ञ इस शास्त्र के प्रयोगोंमें तराजू काममें लाने लगे। रसायनशास्त्रकी उन्नति इसके बाद बहुतही शीघ्र हुई आज इस शास्त्रकी जो कल्पनातीत वृद्धि दिखाई देती है वह उसी कालसे आजतक (१५० वर्षमें) हुई है। तराजू काममें लाने का यह बड़ा भारी महत्व है।

इस नयी रीतिसे रासायनिक प्रयोगका आरम्भ होने पर सब वैज्ञानिकोंका ध्यान पृथ्वीके पदार्थोंकी रचनाके विषयमें प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा अभ्यास करनेमें लगा। इसके पहिलेके सब मत केवल तर्कशास्त्र पर

अवलंबित थे। यह बात ऊपर कही गयी है। अस्तु इसके बाद १७८३ में किरवान और १७८९ में हिगिन्सने कुछ प्रयोग करके परमाणुवादका पुनर्जीवन किया। परन्तु इस तत्वका ठीक स्वरूप वे स्थापित न कर सके।

सन् १८० में जान डाल्टन नामक अंग्रेजी रसायनज्ञने इस परमाणुवादको बहुतही स्पष्ट रूपमें प्रस्तुत किया। उसके बाद ये सिद्धान्त डाल्टनके परमाणुवाद नामसे प्रसिद्ध है यह सिद्धान्त निकालनेके समय उनके पास पूरा प्रयोगिक सबूत नहीं था। परन्तु बादमें वैज्ञानिक प्रयोगसे वह सिद्धान्त सिद्ध होकर उनकी सत्यता स्थापित हो गयी। इस सिद्धान्तका सारांश नीचे दिया है। उस कालमें ४ महातत्वके बदलेमें उदजन ओषजन नोषजन कर्बन आदि ७० भिन्न भिन्न तत्वोंका अस्तित्व माना जाता था और ऐसी कल्पना थी कि प्रत्येक पदार्थ इन ७० तत्वोंमें से १-२ या अधिक तत्वोंके विशिष्ट परिमाणमें मिलने से बनते हैं।

डाल्टनका परमाणुवाद

१ प्रत्येक तत्व (Element) अभेद्य अविनाशी व परस्पर समान परमाणुओंका बना हुआ है।

२ रासायनिक यौगिक इन्टी भिन्न भिन्न तत्वोंके परमाणुओंके विशिष्ट परिमाणमें मिलने से बनते हैं।

३ एकही तत्वके परमाणु परस्पर बिलकुलही समान है। उनका भारभी एकसा ही होता है। परन्तु वे दूसरे तत्वोंके परमाणुओंसे सर्वथा बहुत ही भिन्न होते हैं।

सन् १८०९ में गेलुसकने स्थिर-अनुपात Constant proportion) का सिद्धान्त स्थापित किया इसके अनुसारप्रत्येक वस्तुमें विशिष्ट तत्वोंके परमाणु विशिष्ट परिमाण में ही मिले रहते हैं। और वह पदार्थ बननेके लिये उन तत्वोंके परमाणुओंका उसीपरिमाणमें मिलना आवश्यक है। सन् १८११ में यह सिद्धान्त निर्धारित हुआ कि पदार्थका सबसे सूक्ष्म विभाग अणु है। अणुका और विभाग करना चाहें तो उनके परमाणुओंमें विभाग होकर पदार्थ का मूल स्वरूप नष्ट हो जायगा अणुमें मूल पदार्थके सब गुण रहते हैं। इस सिद्धान्तमें बहुत सी रासायनिक क्रियायें जो परमाणुवादसे सिद्ध नहीं हो सकती थी सिद्ध हो सकीं। यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि अणु परमाणुओंसे बहुत बड़े होते हुये भी उनका अन्वेषण परमाणुओंके पश्चात् हुआ।

सन् १८१५में इंग्लिश रसायनज्ञ प्राउट (Praut) ने एक कल्पना प्रचलित की कि प्रत्येक तत्वके परमाणु उदजन तत्वके परमाणुओंसे बनेहुए हैं। उनका यह मत निम्न लिखित कारणोंसे बना।

उदजन सब तत्वोंसे हलका है। यदि उदजनके परमाणु-भारको इकाई मानले तो बहुतसे तत्वोंके परमाणुओंका भार पूर्णांकमें लिखा जा सकता है। इस कारणसे प्राऊटने उपरिनिर्दिष्ट सिद्धान्त निकाला इस कल्पनाका प्रचार उस कालमें हो नहीं सका। क्योंकि उसकी पुष्टि करने वाले प्रयोग तब तक नहीं हुए थे। परन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि उसकी सत्यता बहुतही आधुनिक प्रयोगोंसे सिद्ध हुई है।

सन् १८२९ में डोबरनिअरने प्रथमही मूल तत्वोंकी (elements) एक रचना बताई जिनसे समान गुणोंके मूल तत्व एक एक समूहमें रखे जा सकते हैं। जैसे हरिन्-अरुणिन्-नैलिन् और शोणम् सैन्धकम्-पांशुजम् एक एक समूहके मूल तत्वोंके गुण समान हैं और एक दूसरे के परमाणु भार का अन्तर दूसरे और तीसरेके परमाणु भार के अन्तर के बराबर है।

न्यूलैन्ड्स नामक अङ्गरेजी रसायनज्ञने प्रथमही सब मूल तत्वोंकी रचना उनके परमाणु भारके अनुसार करनेकी कल्पना प्रचलित की। उसने यह बताया कि उनके परमाणुभारके क्रमसे यदि मूल तत्वोंके नाम लिखे जाय तो यह दिखाई देगा कि किसी मूल तत्व से आगेके आठवें मूल तत्वके गुण उससे बहुत मिलते हैं। इसको स्वरसप्तककी उपमासे न्यूलैन्डसका सप्तक-वाद (Newland's law of octaves) कहा जाता है। परन्तु उस कालमें इस सिद्धान्तकी बहुतही हंसी उड़ी

और लोगों ने न्यूलन्डसको पागल ही समझा। लोग कहने लगे कि इस तरह तो न्यूलैन्डस यह भी सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे कि मूल तत्वों उनके नामोंके वर्णानुक्रम से लिखा जाय तो उस रचनामें भी कुछ नियम दिखाई देगा। इस प्रकार ये सिद्धान्त निकलने पर लोगोंने उसको मानना बिलकुल न चाहा। परन्तु प्रस्तुतकालमें इन तत्वोंकी रचनाके सम्बन्धमें जो पद्धति प्रचलित है वह न्यूलैंडजके पद्धति की सी है।

१८६६ में रूसी रसायनज्ञ मेण्डेलीफ और जर्मन रसायनज्ञ लोथरमेयरने स्वतंत्र रीतिसे आवर्त्त सिद्धान्त (periodic law) स्थापित किया। मूल तत्त्वोंके नाम उनके परमाणु भारके अनुक्रमसे लिखने पर एक तत्त्वके गुणसे समान गुणवाले तत्त्व उस तत्त्वसे किसी नियमित अन्तरपर फिर फिर दिखाई देंगे। मेण्डेलीफने कोष्टकरूपमें सब मूलतत्त्वोंकी उनके परमाणुभार और गुणोंके अनुसार रचना की। उसको मेन्डेलीफका आवर्त्त संविभाग (Mendeleeff periodic classification) कहा जाता है। इसके सहाय्यसे बहुतही नये नये मूलत्व जो उस समय ज्ञात न थे उनका होना कहा जा सका। और उसके अनन्तर उस अनुमान के अनुसार उन तत्त्वोंका अन्वेषण होकर इस सिद्धान्त की सत्यता सिद्ध हुई। इस कोष्टकका सम्पूर्ण महत्त्व वर्णन करनेके लिये एक स्वतन्त्र लेखकीही आवश्यकता है। डाल्टनके कालमें ७० मूलतत्व मालूम थे परन्तु उपरिनिर्दिष्ट सिद्धान्तके पश्चात् नये नये मूलतत्वोंका अन्वेषण होकर प्रस्तुतकालमें ९२ मूलतत्वमाने जाते हैं।

यह पदार्थ रचनाके सम्बन्धमें मनुष्यके पूर्वकालके मतोंका इतिहास हुआ। प्रचलित आधुनिक मत और सिद्धान्त इनसे थोड़े भिन्न हैं। प्रयोगिक विज्ञानमें उन्नति होने पर इस विषयमें बहुत ज्ञान बढ़ सका और पूर्वकालीन मतोंमें उसके अनुसार सुधार आवश्यही हुआ। आधुनिक सिद्धान्तोंका विवरण फिर कभी दूसरे लेख में किया जावेगा। अतः १८९५के लगभग निम्नलिखितमत सर्वमान्य थे।

१—इस विश्वमें ८० मूलतत्व है। हरएक पदार्थमें इनमेंके एक या अधिक तत्वोंका विशिष्ट परिमाणमें मेल रहता है।

२—यदि किसी मूलतत्वके टुकड़े को लेकर उसके छोटे छोटे भाग करने लगे तो एक अवस्था ऐसी आजायगी कि उसके बाद रासायनिक क्रियासे भी उससे छोटा भाग करना असंभव हो जावेगा।

३—प्रत्येक मूलतत्व इस प्रकार अभेद्य और अविनाशी परमाणुओंका बना है। एक तत्वके परमाणु एवं गुण और भारमें परस्पर बिलकुल ही समान होते हैं परंतु दूसरे तत्वके परमाणु ओंसे गुण, भार इत्यादि में बहुत भिन्न होते है।

४—अणु ही पदार्थका सबसे सूक्ष्म विभाग है कि जिसमें मूल पदार्थके सब गुण होते हैं। अणुके और विभाग करने पर यह गुण नष्ट होते हैं। प्रत्येक पदार्थका अणु जिन मूल तत्वोंका यौगिक है वह पदार्थ उन तत्वोंके परमाणुओंके समूहसे बनता है।

गत ५० वर्षमें बहुत बड़े-बड़े प्रयोग होकर इस विषयका ज्ञान बहुत ही बढ़ा है। उसकालमें अभेद्य माना गया परमाणु सत्य ही अभेद्य है या विभाग संभव है इस प्रश्नका उत्तर आधुनिक विज्ञानसे देना कठिन नहीं, परंतु इस विषयका दूसरे स्वतंत्र लेखमें विवेचन करना आवश्यक है।
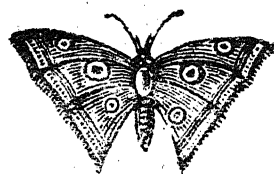
२—एशिया और योरप*

(ले० श्री जगपति चतुर्वेदी हिन्दी भूषण, विशारद)

शियाके पश्चिमी भागमें काला सागरके दक्षिण फ़ारसकी खाड़ीके समीप मेसोपोटामिया नामक एक प्रदेश है जहां फुरात और दजला नाम्नी नदियां अपना मधुर जल प्रवाहित कर सम्पूर्ण भूभागको सुरम्य और शस्य-सम्पन्न बनाती हैं। इसी प्रदेशमें प्राचीन कालीन बग़दाद और बसरा नामके प्रसिद्ध नगर हैं। समयके प्रभाव से यद्यपि इनका भाग्य सितारा अब अस्त हो चुका है तथापि एक समय था जब ये संसारके व्यापारिक केन्द्र समझे जाते थे। जिस समय स्वेज़की नहरके अभावसे लाल सागरके द्वारकी कुञ्जी प्राप्त नहीं थी और अफ्रीकाके किनारेका चक्कर काटकर उत्तमाशा अन्तरीप होते हुए भारत पहुँचनेके जलीय मार्गका पता न लग सका था स्पेन और पुर्तगाल निवासियों ने समुद्रकी छातीको नापना प्रारम्भ नहीं किया था उस समय योरोपीय देशोंमें एशियाई देशोंकी वस्तुएँ पहुँचानेमें बसरा तथा बग़दादका बड़ा हाथ था, और यही कारण था जिससे नगरोंको प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी।

भारत तथा चीन प्रभृति एशियाई देशोंकी वस्तुओंको योरोपीय देशों तक पहुँचानेके व्यापारमें योग देनेके कारण व्यापारिक केन्द्रोंके समृद्धिशाली और विख्यात बननेके रहस्यको सिकन्दरने भली भाँति समझा था। इस बातका अनुभव करही उसने मिश्र देशमें नील नदीके किनारे अपने नाम पर सिकन्दरिया नगर बसाया। सिकन्दरका विचार ठीक उतरा और थोड़े समयमेंही इस मार्गका अनुसरणकर बग़दाद व बसराकी भाँति सिकन्दरियाने भी अपनेको समृद्ध और प्रभावशाली नगर बना लिया। इस अनुभवसे कालान्तरमें बैज़ांटियम (वर्तमान कुस्तुन्तुनियां) और वेनिस नगरोंने पूरा पूरा लाभ उठाया।

ऐसे ही व्यापारिक केन्द्र थे जिनके द्वारा एशिया के दक्षिणी और पूर्वी देशोंकी वस्तुयें भिन्न भिन्न व्यापारियों द्वारा हस्तान्तरित होकर योरपके नगरों में पहुँचती थीं। एशियाके इन सुदूरवर्ती भागोंसे योरप तकके लम्बे मार्गको पार कर सकना एक ही व्यापारीके लिए सुगम नहीं था इस कारण एक व्यापारीके हाथसे दूसरेके हाथ जाते हुए कई व्यापारिक केन्द्रोंके द्वारा योरपके सभ्य देशोंको एशियाई देशोंकी वस्तुएँ मिलती रहीं। इन्हीं वस्तुओंका प्रभाव था जिससे भूमध्य सागरके तटके सभ्य देश अपने छोटे भूमंडलके एक कोनेमें एशियाई देशोंका भी नाम देख सकते थे।

इन देशोंका नाम सुनकर योरपके लोग अपना भौगोलिक ज्ञान बढ़ानेके लिए उत्सुक थे, इन सुदूरवर्ती देशोंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेके लिए उत्कण्ठित हो रहे थे, परन्तु रोम साम्राज्यके पतनके पश्चात् संसारके रंगमंचका दृश्य बिलकुल परिवर्तित होगया था। उत्तरकी ओरसे आई हुई गोथ और हूण जातियोंसे सारा योरप आक्रान्त होने लगा था जिसके परिणाम स्वरूप कला कौशलकी उन्नति रुक गई थी, अविद्या बढ़ने लगी थी और अन्धकार युगने आधिपत्य जमा लिया था। इसी समय एक धार्मिक लहर बह चली थी जिसके प्रचंड वेगने सारे योरपको कम्पायमान कर दिया था। इस लहरके जन्मदाता अरब निवासी हज़रत मुहम्मद साहब थे। उनको लोग इस भूमंडल पर मनुष्योंकी अज्ञानता दूर करनेके लिये ईश्वरका दिव्य संदेश लानेवाला देव-दूत समझते थे। उन्होंने अरबके निवासियोंको इस्लाम धर्मका जीवन पर्यन्त उपदेश दिया। उनके मरनेके पश्चात् इस लहरकी तीव्रगतिसे एशियाई कोचक, सीरिया और मिश्र,

---

* लेखककी अप्रकाशित पुस्तक 'भौगोलिक कहानियां' से

ट्रिपोली, मोरक्को आदि अफ्रिका महाद्वीपके समस्त उत्तरी प्रदेश इस्लाम धर्मके गढ़ बन गए। योरपके निवासी ईसाई धर्म माननेवाले थे और मुसलमान लोग ईसाइयोंसे युद्ध करना अपना पवित्र धर्म समझते थे इस कारण मुसलमानी राज्योंमें वा उनमें होकर दूसरे देशोंमें जा सकना ईसाइयोंके लिए बिल्कुल कठिन था। भूमध्य सागरके सम्पूर्ण दक्षिणी किनारे पर मुसलमानोंका आधिपत्य था इस कारण योरोपीय देशोंका दक्षिणी और पूर्वी देशोंसे सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। इनके परिणाम स्वरूप भौगोलिक अनुसन्धानका कार्य अधिक आगे न बढ़ सका और संसारका बहुतसा भूभाग बहुत दिनों तक अज्ञातही बना रहा।

जिस ईसाई धर्मके अनुयायी योरपके सभी प्रान्तोंमें फैले हुए हैं उसके संस्थापकका एशिया महाद्वीपमें यरूसलम नगरमें जन्म हुआ था। अतएव सम्पूर्ण ईसाई-संसार इसे तीर्थ स्थान समझता था। इस स्थान पर मुसलमान लोगोंने आधिपत्य जमा लिया था इस कारण इसको पुनः अधिकारमें लेनेके लिए कई शताब्दियों तक ईसाई राजा मुसलमानोंसे द्वन्द्व युद्ध करते रहे। इसलिए योरपकी शक्तियाँ कई शताब्दियों तक दूसरी ओर अपना ध्यान न ले जा सकीं।

इस प्रकार ईसाकी छठीं शताब्दीसे बारहवीं शताब्दी तक साम्प्रदायिकताके कारण यात्राकी ओर लोग आकर्षित नहीं हुए। इस कालमें अरबवालोंने हिन्द महासागरके किनारेके देशोंमें यात्रा की, सुमात्रा और चीन तक भी पहुँचते रहे परन्तु योरपवालोंका इससे कुछ भी लाभ न हुआ और भौगोलिक ज्ञानकी भी विशेष वृद्धि नहीं हुई।

तेरहवीं शताब्दीमें एक नई शक्तिने जन्म लिया जिसने योरप और एशियामें युगान्तर उपस्थित कर दिया और जिससे बड़ीसे बड़ी शक्तियोंका हृदय काँप उठा, मुसलमानी सत्ताकी नींव हिल उठी। इस शक्तिको उत्पन्न करनेवाले एशियाके पूर्वी भागके मंगोल (तातार) लोग थे जिनकी जन्मभूमि मंगोलिया थी। इनकी प्रलयकारिणी सेनाने मध्य एशियाकी सारी भूमिको अभिकृतकर योरपमें आस्ट्रिया हंगरी तक धावा बोलना आरम्भ कर दिया। सारे चीन पर इनका प्रभुत्व हो गया आधे फ़ारस तथा रूसके प्रदेशों परभी इनका शासन चक्र घूमने लगा। इन लोगोंके सरदार चंगेज़खाँका नाम भूलने योग्य नहीं। उस नामको यादकर आज भी लोगोंका हृदय दहले बिना नहीं रह सकता। जीवन पर्यन्त तो इसने अपने भीषण आक्रमणोंसे एशियाई और योरोपीय देशोंको त्रस्त किया ही, मरनेके समयभी भूमंडलके शेष भागों पर धावा करनेके लिए अपने उत्तराधिकारियोंको उपदेश दे गया। उनमेंसे तैमूरलंगने चंगेज़खाँके मरनेके समय की भीषण अभिलाषा पूरी करनेके लिए उत्तरी भारतको पदाक्रान्त कर तातारी आक्रमणोंकी भयंकरताका उदाहरण लोगोंके सामने रक्खा था।

भविष्यमें होनेवाले तातारी लोगोंके आक्रमणों का अनुमान कर हंगरी और पोलैण्डके आक्रमणोंके पश्चात्‌ही सारा योरप सजग हो उठा था। यद्यपि इनके आक्रमणोंमें मुसलमानी राज्योंके प्रति ही रोष अधिक प्रकट होता था और मुसलमानी राज्योंके आक्रमणके साथ ईसाई राज्योंसे अधिक सहानुभूति का आभास मिलता था तथापि योरोपीय देश मंगोल लोगोंसे कम भयभीत नहीं थे। इस कारण भावी आक्रमणोंकी आशंका दूर करनेके लिए सम्पूर्ण ईसाई संसार प्रयत्न करने लगा।

योरपमें ईसाई लोगोंने अपना एक संगठन कर रक्खा था जिसके फल स्वरूप सारे योरप भरके ईसाइयोंका एक सबसे बड़ा महन्त होता था। उसे पोप कहते थे। वह रोम में रहता था। एक प्रकारसे उसे ईसाई साम्राज्य का सम्राट कह सकते थे। ईसाई धर्मके सम्बन्धमें उसीकी आज्ञा अन्तिम मानी जाती थी। यदि ईसाई धर्म पर किसी प्रकार का बाहिरी संकट उसे दिखाई पड़ता तो वह सारे देशोंको युद्ध करने के लिए आज्ञा दे सकता था

जिसे क्रूसेड वा धार्मिक युद्ध कहते थे। तातार लोगोंसे रक्षाके लिएभी उसने सब को तैयारीकी आज्ञा दी परन्तु रक्त बहानेका अवसर नहीं आ सका। पोपके साथ दूसरे ईसाई राजाओंने तातार सर्दारोंको ईसाई धर्ममें दीक्षित कर लेनेके लिए समय समय पर उपदेशकों को भेजना प्रारम्भ किया। उनमें जोन डी प्लेनो कार्पीनी का नाम विशेष प्रसिद्ध है।

तातार लोगों का सबसे बड़ा सरदार तो मंगोलियामें रहता था परन्तु छोटे छोटे सरदार अन्य स्थानों पर भी रहते थे। योरपके निकट रूस प्रदेश में वालगाकी घाटीमें भी इनका अड्डा था। कार्पीनीने बोहीमिया, सिलिशिया और पोलैण्ड होते हुए वालगाकी घाटीके सर्दारको पोपका पत्र दिया और मंगोलियाके विकट मार्गको भी बड़े बड़े संकटोंको झेलते हुए पार किया। जिस समय कार्पीनी मंगोलिया में पहुँचा उस समय चंगेज़ खाँका उत्तराधिकारी मर चुका था। चंगेज़खाँ का आदेश था कि बड़े सरदारको एक सभा निर्वाचित करे। इस कारण ५ वर्ष तक निर्वाचन न हो सकनेके कारण उस समय सभाका अधिवेशन हो रहा था। तातारोंके प्रधान शासकका निर्वाचन हो जाने पर दरबारमें पोपका सन्देश पहुँच सका परन्तु इसका कुछ प्रभाव न पड़ा इस कारण कार्पीनीको अपने उद्देश्यमें सफलता न मिली।

इसी प्रकार धार्मिक उत्साहमें कितने उपदेशकों ने मंगोलिया तकके कठिन मार्गको पार करने का साहस किया और अब मंगोल लोगोंके आक्रमणों के परिणाम स्वरूप कितने यात्रियोंका नाम सुनाई पड़ने लगा। कई शताब्दियोंके पश्चात् इस शताब्दीमें भूज्ञानकी वृद्धि करनेकी ओर लोग आकृष्ट यात्रियोंने भी यात्रा करना प्रारम्भ किया। परन्तु इन यात्राओंके लिए प्रेरित करनेवाला एक दूसरा ही प्रलोभन था।

जब योरपके नगरोंमें कितने व्यापारियोंके हाथसे होती हुई एशियाके दक्षिणी और पूर्वी देशों की वस्तुएँ पहुँचती तो योरप निवासी व्यापारियों से पूछते कि ये वस्तुएँ किस देशसे आती हैं। परन्तु लम्बी यात्रा होनेसे उन वस्तुओंके हस्तान्तरित होते आनेके कारण स्वयं उन व्यापारियोंको ही यह पता न होता कि वे किस देशसे आती हैं। वे उन वस्तुओंको निकट के व्यापारिक केन्द्र से लाते जहाँ उन्हें दूसरे व्यपारी बेच जाते। इस कारण वे यही उत्तर देते कि ये एशियाके किसी पूर्वी देशसे आती हैं। इस प्रकार योरप निवासियोंके हृदयमें उन देशोंके देखने और उनके सम्बन्धकी बातोंके जाननेकी लालसा बहुत दिनों से बनी रही। समयके पलटाखाने पर अवसर पाकर इस लालसाने उन्हें इन देशोंकी यात्रा करने के लिए विवश किया। उन यात्राओंकी कहानियां बड़ी मनोरजक हैं। जब यात्रियोंने एशियाके इन देशोंको अपनी आँखोंसे देखकर उनका मनोरंजक वृत्तान्त अपने देशवासियोंके कान तक पहुँचाया तो योरोपीय देशोंमें इन देशोंके लिए सुगम मार्ग ढूँढ़नेके लिए लोग उन्मत्त हो उठे। इस प्रयत्नमें लोगोंने बड़े बड़े महासागरोंको छान डाला, इसके लिये महाद्वीपों की परिक्रमा करते कितनोंने अपना जीवन खपा दिया। इसी खोजके परिणाम स्वरूप एक नई दुनिया निकल आई और भूमण्डल का काया-पलट हो गया।

इसी प्रयत्नकी कहानियाँ कई शताब्दियोंके भौगोलिक अनुसन्धान की कहानियाँ हैं।

वायुमंडल

(ले० श्री राजेन्द्र बिहारी लाल बी-एस-सी)
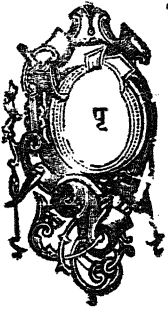
पृथ्वी ठोस जमीन ही पर समाप्त नहीं होती। पहाड़ोंकी ऊंचीसे ऊंची चोटी पर भी उसका अंत नहीं होता। मण्डलमें यात्रा करते हुए पृथ्वी अपने साथ गैसोंका एक बड़ा घन लिये रहती है जिसको हम वायु मण्डल कहते हैं। पृथ्वी चाहे जितनी तेज़ी से घूमे या नाचे परन्तु उसकी आकर्षण शक्ति वायु-मण्डल को रोके रहती है। यहां यह शंका हो सकती है कि जब पृथ्वी सूर्यके चारों ओर एक सैकण्डमें १८ मीलकी चालसे—लट्टूकी भांति नाचती हुई उड़ रही है तो वायु-मण्डल इससे छूटकर अलग क्यों नहीं हो जाता। इसका कारण यह है कि एक तो आकाश मण्डल उसके चलनेमें कोई बाधा नहीं डालता और दूसरे आकर्षण शक्ति वायु मण्डलको पकड़े रहनेमें समर्थ है।

वायु एक हलका लचीला ताल है। चिड़िया. पशु और मनुष्य वायुके समुद्रमें उसी प्रकार रहते और चलते फिरते हैं जैसे मछलियां जलके समुद्रमें। इसमें भी वज़न होता है जैसे कि भारी द्रवमें। पानी और हवामें विशेष अन्तर यह है कि हवामें बहुतसे पदार्थ मिले हुए हैं। यह बहते या जमें हुए रूपमें नहीं हैं बहुत हलकी होती है। और बड़ी सुगमतासे फैल जाती है। हवाके मुख्य भाग ओषजन और नोषजन हैं। एक और भाग जिसकी मात्रा बहुत कम होती है कर्बन द्विओषिद है जो कोयले और ओषजनके रासायनिक योगसे बनी है। हवामें इन तीनों गैसोंका सदा एक ही या लगभग एकही अंश रहता है। हवाका चौथा जुज़ पानीकी भाप है जिसकी मात्रा घटती बढ़ती रहती है। इसके नियम भी अलग हैं और इसे हम एक अलग ही वायु-मण्डल या वायु-मण्डलके भीतर एक भाप मण्डल कह सकते हैं।

हवामें और बहुतसी दिलचस्प चीज़ें रहती हैं। हिमजन, नूतनम् इत्यादि गैसे हैं जो एक दूसरेसे और और ओषजन नोषजन और कर्बन द्विओषिद सब से भिन्न होती हैं और जिनमें विचित्र गुण होते हैं। कुछ भाप बने हुए सुगन्धित तैल हवामें मिले रहते हैं जो सुगन्धका कारण होते हैं। कुछ अकार्बनिक पदार्थ के कण होते हैं जो या तो इतने सूक्ष्म होते हैं कि ख़ाली आँखसे नहीं दिखाई देते या कभी-कभी इतने मोटे और घने होते हैं कि धुआं या धूल मालूम हैं। कीटाणु और रोगाणु भी उड़ते रहते हैं जिनमें से कुछ तो पौधों और जानवरोंके जीवनमें बहुत सहायता करते हैं और कुछ भयानक बीमारियां उत्पन्न और फैलाकर उनका नाश करते हैं। मगर यह सब वस्तुएं हवामें केवल मिलावट ही होती हैं और इनकी मात्रा बहुत ही कम होती है।

यह बताना कठिन है कि वायु-मण्डल कितना ऊंचा है। दो सौ मील तककी ऊंचाई तक तो वायु परीक्षा की गई है और इसी ऊंचाई पर वायु मण्डलका अन्त समझा जाता है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हलकी गैसोंसे लवण वहाँ तक फैले हुए हैं जहाँ तक कि पृथ्वीकी आकर्षण शक्ति पहुँच सकती है। यही नहीं किन्तु कुछ लवण तो आकर्षण शक्ति को भी उलंघन कर मण्डल में निकल भागते हैं। मगर वायु-मण्डल से निकल जाना कुछ सहज नहीं है क्योंकि ज्यों ज्यों वह ऊपर चढ़ते जाते हैं ठण्डके कारण उनकी गत्यर्थक सामर्थ्य घटती जाती है। वायु ऊपर की ओर ही नहीं परन्तु नीचे भी है। जमीन के भीतर कुछ दूर तक और तमाम बिना उबाले हुए प्राकृतिक जल में वायु मिलती है। ज्यों ज्यों ऊपर जाते हैं वायु का घनत्व कम होता जाता है। लोगोंने हिसाब लगाया है कि कुल वायु मण्डल का बोझ १४०००००००००००००००० मनसे अधिक है। यदि इसी बोझ का सीसे का गोला बनाया जाय तो उसका व्यास ६० मीलसे अधिक होगा।

अब यह जानना चाहिये कि वायु मण्डल से क्या क्या लाभ है।

वायु-मण्डलकी गैसें बहुत काम करती हैं और उनका होना बहुत आवश्यक है। बिना ओषजनके दुनियामें कोई भी जीवधारी—मनुष्य, पशु पक्षी या पेड़ पौधे—एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। सांस लेनेके लिए ओषजनकी सबको जरूरत होती है क्योंकि ओषजन ही से मिलकर वह कर्बन (कोयला) जिसे हम भोजनके रूपमें खाते हैं—भस्म होता है और देहको गर्मी पहुँचाता है बस ओषजन ही हमारे शरीरको कलको सञ्चालित करता है।

जानवरोंको परमात्माने चलने फिरने और पकड़नेकी शक्ति दी है। वह एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जाकर अपना आहार ढूँढ़ सकते हैं और खा सकते हैं। मगर पेड़ पोधोंके पास उनके भोजनको स्वयं ही पहुँचना चाहिये। यह काम भी वायु-मण्डल ही करता है। वायु-मण्डलसे पौधे केवल सांस ही नहीं लेते परन्तु अपना आहार भी पाते हैं। हरी पत्तियोंमें एक वस्तु क्लोरोफील होती है जो सूर्यकी ज्योतिकी सहायता से वायु-मण्डलके कर्बन द्विओषिदमें से कर्बनको नोच लेती है और इसी कर्बनसे पौधेके शरीरका कललरस बनाती है। दुनियां में जितना कोयला पाया पाता है वह उसी कर्बनका एक रूप है जो जङ्गलोंने प्राचीनकालमें हवामें से निकाला था। यदि हवामें कर्बन द्विओषिद न होता तो पौधे अपना शरीर न बना पाते और परिणाम यह होता कि जानवरोंका भी शरीर न बन सकता। यह सब उसी गैसका चमत्कार है जिसे हम सोडा वाटरमें से छुन छुन करते हुए निकलते देखते हैं। अगर वायु-मण्डल ही पर साँस लेना निर्भर न होता तो भी बिना वायुके मनुष्यका जीवन बड़ा कठिन और दुखमय होता क्योंकि बिना ओषजनके अग्नि कहाँ और जब अग्नि नहीं तो मनुष्य और पशुमें अन्तर ही क्या रहा। सत्य है कि अग्नि भगवानकी शक्तिका एक अपूर्व उदाहरण है जो कभी मनोहर और कभी भयङ्कर रूप धारण कर लेती है। मनुष्यकी कुल सभ्यता अग्नि ही द्वारा बनी है। बिना आगके छोटे से छोटे पुर्जेसे लेकर बड़े से बड़ा हवाई जहाज या पुल कुछ नहीं बन सकता। कर्बन और ओषजनमें जबरदस्त रासायनिक खिंचाव होने से जो लाभ हमको है उसका हम पूरा पूरा अनुमान नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त यदि ओषजन और कर्बन द्विओषिदका अंश ठीक ठीक न होता और यह नोषजनसे न मिले होते तो साँस लेना और पदार्थोंका जलना बिलकुल असम्भव हो जाता। निरे ओषजन या निरे कर्बन द्विओषिदमें हमारा दम घुटने लगता। निरे ओषजनमें आग कभी बुझाई ही न जा सकती। निरे कर्बन द्विओषिदमें आग कभी जलाई न जा सकती। अगर वायु-मण्डल की गैसे किसी दूसरे अंशमें मिली होती तो जीवनका सब कारोबार बदल जाता। यदि यह भी मान लिया जाय कि मनुष्य बिना साँस लिए और बिना आगके जीवित रह सकता तो भी वह बिना वायु मण्डलके जीवित नहीं रह सकता। अगर वायु न होती तो हम दिनके समय तापसे झुलस जाते और रात्रिमें ठण्डसे जम जाते। हवाकी दो सौ मील मोटी तह दिनमें छातेका और रातमें कम्बलका काम देती है। वह दिनको गर्मी और रातकी ठण्डक दोनोंको कम कर देती है। उष्ण और शीतोष्ण कटिबन्धकी गर्मीमें दोपहर और प्रातःकालकी गर्मीमें, शरद और ग्रीष्म ऋतुकी गर्मीमें जो अन्तर होता है वह खासकर उसी रुकावटके कारण है जो वायु मण्डल सूरजकी किरणोंके मार्गमें डालता है। किरणें जितनी तिरछी होती जाती हैं उतनीही अधिक दूर तक उन्हें वायुमण्डलमें चलना पड़ता है और उतनाही अधिक वह जज्बहो जाती हैं। उष्ण कटिबन्धमें सूरजकी किरणें शीतोष्ण कटिबन्धकी अपेक्षा अधिक खड़ी पड़ती हैं। इसीलिए उष्ण कटिबन्धमें से ज्यादा गर्मी पड़ती है। इसी प्रकार सूरजकी किरणें दोपहरमें सबेरेसे और गर्मीमें जाड़ेसे अधिक सीधी (Vertical) होती हैं। यह सब ज्यादातर वायु मण्डलकी रुकावटपर निर्भर है पर दूसरी बात यह भी है कि जितनी ज्यादा किरणें तिर्छी होती हैं उतनेही ज्यादा सतहको वह गरम करती हैं और उतनाही उनका असर कम हो जाता है। अगर

पृथ्वीके चारों ओर वायुमण्डल न होता तो सूरजकी गरमी बिलकुल असह्य हो जाती। ज्यों-ज्यों हम ऊपर चढ़ते हैं और हमारे और सूर्यके बीचमें वायु कमहो जाती है धूप भी कड़ी होती जाती है। ११००८ फ़ीट-की ऊंचाई पर हम पानीको एक काली बोतलमें धूपहीमें रख कर उबाल सकते हैं। अगर वायुमण्डल न होता तो समुद्रका जल खौलने लगता और थोड़े ही समयमें सबका सब भाप बनकर उड़ जाता। बल्कि सम्भव तो यह है कि पहाड़ और चट्टानें भी पिघल जातीं। जितना ताप दिनमें पड़ता उतनाही शीत रातमें पर चाँदनी रातमें सूरजके परावर्तित (Reflected) प्रकाशसे कुछ तापक्रम बढ़ जाता।

यदि वायुमण्डल न होता तो हमारी पृथ्वीकी बड़ीही विचित्र दशा होती। दिनमें हमें एक नीला सूरज काले आसमानमें दिखाई पड़ता। तारे दिनमें भी नजर आते। सुबह और शामकी मनोहर छटाको हम सब तरसतेही रह जाते। वायुमण्डलमें गैस और धूलके जो कण हैं वह सूरजकी किरणोंको हर ओर छितरा देते हैं (Scatter)। सूरजसे दूर आकाशको हम इन्हीं छितराई हुई किरणों द्वारा देखते हैं और इसीसे वह हिस्सा हमें नीला दिखाई पड़ता है क्योंकि छितरे हुए (Scatterd) प्रकाशमें नीली किरणोंका अंश लाल या पीली किरणोंके अंशसे बहुत अधिक होता है। सूर्यके प्रकाशके उस भागमें जिसे कि वायु और धूलके कण इधर उधर छितरा नहीं देते और जो कि सीधाही चला जाता है लाल किरणोंका अंश नीली और पीली किरणोंके अंशकी अपेक्षा बहुत अधिक होता है। यही कारण है कि जब हम सबेरे और शाम के समय निकलते या डूबते हुए सूरजकी ओर देखते हैं तो आसमान और पासके बादल सब लाल दिखाई देते हैं। दिन चढ़ेपर सूरजके पासका आकाश लालयों नहीं दिखा देता कि सूरजकी किरणें कम तिर्छी आनेसे थोड़ीही दूर चलती हैं और इसलिए धूल और वायुके कणोंके छितरानेसे उनमें से नीली किरणें इतनी कम नहीं हो जातीं कि आसमान लाल दिखाई दे।

सूरजमें केवल तापही की शक्ति नहीं पर रासायनिक और (elctrical) शक्ति भी है। बैजनी और नीली किरणें कीटाणुओंका नाश करती हैं। शरीर की खालको काला बना देती हैं। इन किरणोंके प्रभाव से उदजन और हरिन् मिलकर उदहरिकाम्ल बनता है। रजत लवण काले पड़ जाते हैं और इन किरणोंके आंखों पर पड़नेसे जीव जन्तु अधिक ओषजन सोखने लगते हैं। रातमें जब हम सोते हैं तो हमारी आँखोंके बन्द रहनेसे और उनपर इन किरणोंके न पड़नेसे ही हमारे शरीरके भीतरका सब काम धीमा पड़जाता है। यह किरणें इस प्रकारके और बहुतसे आश्चर्य जनक काम करती हैं और यदि वायुमण्डल उन्हें रोकनेको और उनके प्रभावको हलका करनेको न होता तो वह और भी अनोखे—और शायद भयानक—काम कर डालतीं।

बस वायुमण्डल सूरजकी किरणोंको छान डालता है और उनकी तेजीको कम कर देता है। जो किरणें उसमें होकर हमारे पास आतीं और पृथ्वीको गर्मी पहुँचाती हैं और पत्तियोंको हरा भरा बनाती हैं वह छटी हुई किरणें होती हैं। यदि सूर्यकी सब किरणें हम तक पहुँच पातीं तो हमारी दशा कुछ औरही होती। ज़रा और गर्मी पड़ती और हम जल भुन कर कोयला हो जाते। ज़रा और ज्योति होती और हम अन्धे हो गये थे। ज़रा और रासायनिक किरणें होतीं और हम भी कीटाणुओं की भांति नष्ट हो जाते या हमारा मानसिक और शारीरिक स्वभाव ही बिलकुल बदल जाता।

वायुमण्डल केवल सूरजकी किरणोंके पृथ्वी पर आनेहीमें बाधक नहीं होता परन्तु पृथ्वीसे भी तापके विकिरण को रोकता है। इसी गुणके कारण यह रातमें कम्बलका काम देता है। दिनमें धरती धूपसे गरमहो जाती है। रातमें जब वायु ठण्डी हो जाती है तो धरतीसे ताप विकिरित होने लगता है परन्तु उस गर्मी को जो पृथ्वीसे विकिरण द्वारा निकल जाती है वायु—विशेषतः वायुका कर्बन द्वि ओषिद और भाप सोख लेती है और फिर पृथ्वीकी ओर विकिरत कर देती है। बहुत सी बातोंसे यह

ज्ञात होता है कि वायुमण्डलकी भाप पृथ्वी को गरम बनाये रखती है। यह तो सभी जानते हैं कि जब आसमानमें बादल रहते हैं तो रातमें ओस और पाला बहुत कम पड़ता है। और जिन स्थानोंकी जल वायु खुश्क है वहां उन स्थानोंकी अपेक्षा जहाँकी आबो हवा तर है रात और दिन या गर्मी और जाड़ेके तापक्रममें अधिक अन्तर होता है। गीला होनेके कारणही बङ्गालका तापक्रम क़रीब क़रीब एक सा ही रहता है और पञ्जाबकी जल वायु सूखी होनेसे ही वहाँ गर्मीमें बहुत गर्मी और जाड़ेमें बहुत ठण्डक होती है। अगर हम ऐसे पहाड़पर चढ़ जायँ जहाँकी वायु सूखी है तो देखेंगे कि रात और दिनके तापक्रम में बड़ा अन्तर है। क्रिटो में जो कि समुद्रकी सतहसे ६३५० फ़ीटकी ऊँचाई पर है तापक्रमका दैनिक अन्तर ३४° फारन हाईटसे कम नहीं होता और उसी ऊँचाईपर एक गुब्बारेमें तापक्रमका अन्तर और भी अधिक होगा।

वायु मण्डलकी भाप एक प्रकारसे एक नियंत्रित योजना (Regulating apparatus) का काम देती है। जैसे एक चक्र (flywheel) कलोंकी चालको बहुत घटने बढ़ने नहीं देता और सामर्थ्यके भण्डारका काम देता है वैसेही पानीकी भाप भी तापक्रमको बहुत घटने बढ़ने नहीं देती और गर्मीको इकट्ठा करनेका गुण रखती है। यदि धूपकी तेज़ी बढ़ जाय तो भाप भी अधिक बनने लगती हैं जो कुछ ऊँचाई पर जाकर बादल बन जाती है। और तापकी किरणोंको रोकने लगती है और यदि सर्दी बढ़ जावे तो बादल पानीके रूपमें बरस जाते हैं और सूर्य की किरणोंका रास्ता फिर साफ हो जाता है। दूसरी बात यह है कि जब पानी भाप बनता है तो बहुत सा ताप गुप्त रूप धारण कर लेता है और जब भाप जमकर पानी हो जाती है तो यही गुप्त ताप फिर प्रत्यक्ष ताप बन जाता है। बस जब गर्मी ज्यादा पड़ी, पानीने भाप बनकर उसे कम कर दिया और जब ठण्ड अधिक हुई तो भापने पानी बनकर फिर गर्मी को बढ़ा दिया। इस प्रकार हवामें भापकी मात्रा घट बढ़ कर तापक्रमको अधिक बदलने नहीं देती।

वायुमण्डलके तापक्रम पर कर्बनद्विओषिदका भी प्रभाव कुछ कम नहीं है। कार्बनद्विओषिद तापकी उन किरणके लिए जिनका कि पृथ्वी मण्डलकी ओर विकिरण करती है खास तौरसे अपारदर्शक है। कर्बन द्विओषिद इस बातमें शीशीसे मिलती जुलती है कि प्रकाशकी किरणें तो इसमें होकर सहजमें चली जाती हैं, मगर तापकी किरणें विशेष कर वह जो पृथ्वीसे निकली हैं—उसमें रुक जाती हैं। कर्बनद्वि ओषिद तापके विकिरणको इतनी अच्छी तरहसे रोकती है कि इसकी मात्राके थोड़ेही कम या अधिक हो जानेसे बहुत बड़े तापक परिणाम हो सकते हैं। घनके हिसाब से वायु मण्डलमें केवल ०.०४°/₀ कर्बनद्विओषिद है परन्तु इतनी थोड़ीसी भी कर्बनद्विओषिद न हो तो वायु मण्डलके तापमें बड़ा भारी परिवर्तन हो जायगा। आरहीनियसने हिसाब लगाया है कि वायु मण्डलमेंसे कर्बनद्विओषिदके निकल जानेसे पृथ्वी की सतहका तापक्रम कोई २१° सेंटीग्रेड कम हो जायगा। तापक्रमके इतना घटनेसे वायुमें भापकी मात्रा भी घट जायगी जिसके कारण तापक्रम लगभग इतनाही और कम हो जायगा। आरहीनियसने यह भी हिसाब लगाया है कि यदि कर्बनद्विओषिद की मात्रा दुगनी हो जाय तो पृथ्वीकी सतह पर तापक्रम लगभग ४° शतांश बढ़ जायगा और अगर कर्बनद्विओषिदकी मात्रा चौगुनी हो जाय तो तापक्रम ८° बढ़ जायगा। यहही नहीं बल्कि कर्बनद्वि ओषिदकी मात्रा कम हो जानेसे पृथ्वीके भिन्न भिन्न भागोमें तापक्रमका भेद बढ़ जायगा और कर्बनद्वि ओषिदके अधिक हो जानेसे तापक्रम समानताकी ओर आवेगा।

वायुमें जो धूलके नन्हे नन्हे कण उड़ते रहते हैं वहभी सूरज और पृथ्वीके विकिरण पर बहुत प्रभाव डालते हैं। सम्भव है कि उस प्राचीन कालमें जब पृथ्वी ज्वालामुखी पर्वतोंसे भरी थी और उस

पर बड़े बड़े तूफ़ान आया करते थे इस धूलने पृथ्वी की सतहके तापक्रमके बदलनेमें बहुत काम किया हो।

वह धूल जिस पर बीमारियोंके कीड़े रहते हैं और एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जाते हैं, वह धूल जो नाकमें पहुंच कर छींक लाती है, वह धूल जो हर मनुष्यकी आँखमें खटकती है, वह धूल जो गन्दगी और दरिद्रकी निशानी है, वह धूल जो दुर्गुणोंका भण्डार समझी जाती है और जिसका घरोंमें सबेरे शाम झाड़ू से आदर किया जाता है - हाँ वही नाचीज़ धूल-भगवानकी महिमाको देखिये। हमको बड़े लाभ पहुँचाती है केवल नीला आसमान और प्रातःकाल और सायंकालकी मनोहर छटाही नहीं बल्कि मेंह भी धूलके कणोंहीकी बदौलत हमको नसीब होता है। बिना धूलके कणोंके पानीकी बूँदोंका बनना दुर्लभ है पानी बरसनेके लिए यह आवश्यक है कि हवामें भापकी मात्रा उस अधिकसे अधिक मात्रासे ज्यादा हो जो कि हवामें उस तापक्रम पर रह सकती है दूसरी बात यह है कि एक सतह पर भापका जितना दबाव हो सकता है। उससे कई गुना अधिक एक गोलाईदार सतह पर रह सकता है और जितनी गोलाई ज्यादा होती है उतनाही ज्यादा भापका दबाव उस पर हो सकता है। परिणाम यह हुआ कि अगर हवामें कोई पानीकी बूँद हो भी तो वह भाप बनकर उड़ जायगी क्योंकि बूँदकी सतह गोल होनेकी वजहसे उसके पासकी हवा साधारण हवाकी अपेक्षा भापके लिए बहुत ज्यादा भूखी होती है और बहुत ज्यादा भाप अपनेमें रख सकती है। शुरूमें पानीकी बूँदें बहुत छोटी होती हैं और उनकी गोलाई बहुत ज्यादा होती है। इस कारण भापका जमना आरम्भ होनेके लिए उसका दबाव बहुत ज्यादा होना चाहिये। न भापका उतना दबाव होगा न बूँदें बनेंगी धूलके कण भाप जमनेके लिए केन्द्रका काम देते हैं। इन कणोंपर भाप बहुत अधिक दबाव न होते हुए भी—आसानीसे जमकर बूँदें बना देती है क्योंकि धूलके नन्हेंसे नन्हें कणोंकी भी गोलाई अणु व्यासके पानीके क़तरोंकी गोलाईसे कमही होती है।

शायद इन्हीं गुणोंके कारण धूलको यह ऊँची पदवी मिली कि हमारे सिरों पर उड़ती रहती है मगर इस लेखका आदेश धूलकी बड़ाईका बखान करना नहीं है।

वायुमण्डलमें सूरजकी किरणें आवर्जित होने के कारण दिनकी लम्बाई बढ़ जाती है। जिस प्रकार पानीमें डूबी हुई लकड़ीके नीचेका सिरा कुछ ऊपर को उठा दिखाई देता है उसी तरह आसमानमें की भी कोई चीज़ जो बिलकुल क्षितिजकी सीधमें हो वह भी ऊपरको उठी दिखाई देती है। हम वास्तवमें सूरजका दिखावटी बिम्ब देखते हैं और यह सबेरे और शामके समय सूरजके असली स्थितिसे बहुत ऊपर होता है। इस कारण सूरज उदय होनेसे कुछ देर पहिलेही हमें दिखाई देने लगता है और डूबनेके कुछ देर बाद तक दिखाई देता रहता है। भूमध्य रेखापर सूरजका प्रकाश इस वजहसे केवल चार मिनट ही अधिक रहता है मगर ऊपरके अक्षांशमें इससे घण्टों दिन बढ़ जाता है। आधी रातका सूरज भी जिसे देखने हरसाल बहुतसे लोग नार्वे जाया करते हैं एक दृष्टि भ्रम है क्योंकि सूरज दिखाई तो देता रहता है परन्तु वास्तवमें वह डूबा हुआ होता है।

अगर हवा न हो तो पृथ्वी पर बिलकुल ख़ामोशी छा जाय। बिजलीकी चमक तो दिखाई दे मगर कड़क न सुनाई दे। बड़ेसे बड़े ज्वाला मुखी पहाड़ फट जायँ मगर ज़रासा धमका भी न सुनाई दे। भारीसे भारी तोपकी आवाज़का भी पता न चले। कारण यह है कि आवाज़ बिना किसी माध्यमके एक स्थानसे दूसरे स्थान नहीं जा सकती। दुनियाके ज्यादातर कामोंमें हवा हीमें होकर आवाज़ एक जगह से दूसरी जगह जाती है। पानी बरसनेके बाद हवा—बल्कि जलकी उन नन्हीं नन्हीं बूँदोंके कारणजो हवामें लटकी होती हैं आसमानमें इन्द्र धनुष दिखाई देता है।

वायुमण्डलके तीन और गुण विचार करने योग्य हैं। प्रथम यह कि वायु हर चीज़ पर ७½ सेर प्रति

वर्ग इंचका दबाव डालती है। यह दबाव बड़ा ही नहीं किन्तु तमाम पृथ्वीपर भी व्यापक है। इस दबावका प्रभाव कहाँ-कहाँ और क्या-क्या होता है इस बातको साधारण मनुष्य बहुत कम जानते हैं। किसी बरतनमें अगर केवल एक छोटासा छेद हो तो वायु मण्डलका दबाव उसे इतना कसकर बन्द कर देता है कि यदि बरतनके अन्दर पानी हो तो वह बाहर नहीं ऊँडेला जा सकता और यदि उसके भीतर हवा हो तो बाहरसे पानी नहीं भरा जा सकता जब तक कि एक और छेद उस बरतनमें न हो जिसमें होकर हवा अन्दर जा सके या बाहर आ सके। अगर दो काँच या पत्थरके चिकने टुकड़ोंके बीचमें तेल रख कर दबा दें कि उनके बीचमें से हवा बिल्कुल निकल जाय और फिर आ भी न सके तो वह इतनी दृढ़तासे चिपक जायँगे कि लगभग ७॥ सेर प्रति वर्ग इंचसे कमका बल उन्हें लम्ब दिशामें खींच कर अलग नहीं कर सकता। यही दबाव है जिसके कारण चूना दो ईंटों को, गोंद दो कागजोंको और सरेस लकड़ी के दो टुकड़ोंको आपसमें जोड़ रखता है। इन सब जोड़नेवाले पदार्थोंका मुख्य काम यह होता है कि दो चीजोंके बीचकी कुल सन्दोंको भरदें ताकि वहाँसे बाहरकी ओर दबाव डालनेवाली हवा बिलकुल निकल जाय। इससे दोनों चीजें ७½ सेर प्रति वर्ग इञ्चके बलसे एक दूसरेसे जकड़ जाती हैं। द्रवोंके चूसने (suction) में वायुमण्डलही का दबाव पिचकारीमें पानीको चढ़ा देता है। जब किसी मनुष्यको पानी पीना होता है तो वह अपने एक होंठको गिलाससे लगाता है और दूसरेको पानीमें डुबा देता है और फिर अपने मुँहके अन्दरकी हवा को फेफड़ोंमें खींचता है जिससे मुँहके अन्दर हवा का दबाव बाहरी हवाके दबावसे कम हो जाता है और तुरन्तही पानी उसके मुँहमें ऊपर चढ़ने लगता है। अगर उसके होंठ पानीको छूकर मुँहके भीतर और बाहरकी हवाको अलग न कर देते तो चाहे वह उमर भर अपनी पूरी शक्तिसे चूसा करता तो भी एक बूँद पानी उसके मुँहमें न पहुँचता। इसी प्रकार जब कोई बच्चा माँ का दूध पीता है तो हवाको मुँहमें खींचकर स्तन (Nipple) के चारों ओर शून्य (Vacuum) बना देता है और मुँहके बाहरके भागों पर वायुमण्डल के दबावसे दूध निकलने लगता है। घरोंमें मक्खी छिपकिली और बहुतसे छोटे-छोटे जानवरोंको दीवारों पर चढ़ते और छतपर अपनी टाँगोंको ऊपर और पीठको नीचे करके चलते तो सभी ने देखा होगा उनके पास एक ऐसा यन्त्र होता है जिसके द्वारा वह अपने पैरों और उस सतहके बीचमें से जिस पर वह चलते हैं हवाको दाब कर बाहर निकाल सकते हैं और वायु-मण्डलके दबावसे अपनेको दीवार या छत से चिपका रख सकते हैं।

क्या तुमने कभी यह विचार किया है कि वायुके दबावका मनुष्यके शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। अगर मनुष्यके शरीर की कुल सतहका क्षेत्रफल १५ वर्ग फीट मान लिया जाय तो कुल शरीर पर वायु-मण्डलका बोझ कोई चार सौ मन से ऊपर हुआ। इस बोझको भला मनुष्य कैसे सहता है? उत्तर यह है कि यह बोझ एक तरफसे नहीं बल्कि चारों तरफ से मनुष्यको दबाता है इसीसे शरीरको मालूम नहीं पड़ता केवल यही नहीं वायु-मण्डलका बोझ तो मनुष्य के साँस लेने और सुखसे रहनेके लिए परम आवश्यक है। कौन कह सकता है कि वायु-मण्डल के दबावसे ही हमारी जाँघकी हड्डियां अपने घरों (Sockets) में अड़ी रहती हैं। यदि यह उठा लिया जाय तो हमारे हाथ पैर सब ढीले होकर लटकने लगें और हम लंगड़े लूले हो जायँ। ऊंचे पहाड़ों पर या हवाई जहाजोंमें जहाँ हवा बहुत पतली (Attenuated) होती है और बहुत कम दबाव रखती है वहां दबावकी कमीकी वजह से कभी कभी कुछ नसें फट जाती हैं और उनमें से खून निकलने लगता है और हवा की मात्राकी कमीकी वजहसे साँस लेनेमें बहुत कष्ट होता है। शरीरको कमजोरी मालूम होती है और दम घुटने लगता है।

वायु-मण्डलका दबाव मनुष्यके हाथमें एक बड़ी भारी शक्ति है जिससे कलोंके चलानेमें बहुत काम

लिया जाता है यहीं पारेको दबाकर भारमापक की नलीमें और पानीको दबाकर साधारण पम्पों की नलीमें ऊपर को चढ़ा देता है। इसी शक्तिके द्वारा साइफन एक तालाबसे दूसरे तालाब में पानी ले जाता है यदि बीचमें कोई तीस फीटसे ऊंची रुकावट न हो। वायु के दबावका काम इञ्जिन आदिमें भी पड़ता है।

हवामें सुगमतासे फैलने और सुकड़ने का गुण भी उतना अद्भुत है जितना कि उसका बोझ। रामायणमें इसका एक सुन्दर वर्णन मिलता है, जब पवन-सुत हनुमान सीताजी की खोजमें चले तो देवताओंने उनके बल और बुद्धिकी परीक्षा लेनेके लिए सुरसाको भेजा। सुरसाने उनको खानेके लिए मुंह फाड़ा पर ज्यों ज्यों वह अपना मुँह फैलाती गई हनुमानजी भी अपने शरीरको बढ़ाते गये—

'जस जस सुरसा बदन बढ़ावा।
तासु दुगुन कपि रूप दिखावा॥

मगर जब सुरसाने अपना रूप बहुत बढ़ा लिया तो उसको छकानेके लिए—

'अति लघु रूप पवन सुत लीन्हा'

यही शक्ति है जो तापकी सहायतासे हवायें चलाती है। इसी के द्वारा मछलियाँ पानीमें इच्छानुसार डूब या उतरा सकती हैं क्योंकि उनके पास एक थैली होती है जिसे हवासे भर कर वह पानीमें ऊपर आ सकती हैं या हवासे खाली करके पानीमें नीचे जा सकती हैं। हवा का तीसरा गुण यह है कि इसमें जितने अंश हैं वह सब चारों ओर घूम फिर कर एक दूसरे में भली भांति मिल जाते हैं। जिस प्रकार पानी जमकर साधारण नियमके विरुद्ध हलका हो जाता है उसी प्रकार वायुका यह गुण गुरुत्वाकर्षण नियमके विरुद्ध है। इसीके कारण कर्बन द्विओषिद हवासे भारी होते हुए भी उसमें समानतासे मिली रहती है नहीं तो वह पृथ्वी ही पर जमा रहती और सब जानदारों का दम घोट डालती। हलकी नोषजन गैस केवल ऊपर ही नहीं रहती बल्कि पृथ्वीकी सतहके पास भी रहती है और ओषजनकी तेजीको कम करती है। इसी अन्तरनिस्सरणके कारण पानीकी भाप—जो बहुत हलकी होती है और जो मौसम और वनस्पतिके लिए बहुत आवश्यक है तमाम ऊपर नीचे फैल जाती है। और आम तौर पर इससे वायु-मण्डलके तमाम घनको हर समय हर मौसम, और हर अवस्थामें वह एक सी मिलती है जो उन लखूबा ताल्लुकातके लिए आवश्यक है जो वायु-मण्डल, प्रकाश, बिजली रासायनिक, आवाज, जल और थल और तमाम जीव जन्तुसे रखती है।

मानलीजिये कि एक दिन तमाम वायुमण्डल पृथ्वी परसे गायब होजाय तो हमारी क्या दशा होगी? दिनमें सूरजकी किरणें बिना रोकटोक पृथ्वी पर आकर समुद्रके जल को उड़ा देंगी और पृथ्वीके ऊपर भापके घने बादल छा जायँगे। परन्तु सूरजके डूबनेके साथही इस भापके ऊपरके भागोंके मण्डलकी उस कड़ी ठण्डका सामना करना होगा जिसका तापक्रम—२३६° फारनहाइट अनुमान किया जाता है। परिणाम यह होगा कि तुरन्त ही कड़ाकेके ओले और बरफ गिरने लगेंगे यहाँ तक कि तमाम पृथ्वी बरफका एक सफेद गोला बन जायगी। रात भर बरफ ओले गिरते रहेंगे और पहाड़ मैदान सबको कई फीट तक ढक लेंगे। दूसरे दिन सूरजके निकलते ही हर जगह कड़ी धूपसे बरफ पिघलने लगेगा। मगर शायद सूरज की गर्मी इतनी होगी कि सब बरफको पिघलाकर भाप बन सके और दुनिया सदाके लिए बरफसे जकड़ जायगी। मगर शायद दिनमें कहीं कहीं बरफके गड्ढे रूपी बरतनोंमें पानी उबलता हुआ दिखाई पड़ेगा! एक नीला सूरज अन्धकारमय परन्तु तारोंसे भरे हुए आसमानमें चमकता दिखाई देगा और हम अगर जीते भी रहें तो भी लँगड़े अन्धे और बहरे हो जायँगे।

धन्य है उस परमात्माको जिसने वायुमण्डलको रचा। धन्य है भारतके ऋषियोंको जिन्होंने वायुमें भगवानको स्पष्ट रूपसे देखा।

मगनीसम्, दस्तम्, संदस्तम् और पारदम्

(Magnesium, zinc, cadmium and mercury)

(ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम. एस-सी.)

द्वितीय समूहके क-वंशीय खटिकम्, स्त्रंशम् और भारम् तत्वोंका विवरण पहले दिया जा चुका है। इस समूहके ख-वंशमें चार तत्व हैं इन तत्वोंके भौतिक गुण नीचे की सारिणीमें दिये जाते हैं:—

तत्व	संकेत	परमाणु भार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
मगनीसम्	म	२४.३२	१.७५	६३३°श	११२०°श
दस्तम्	द	६५.३७	६.६	४१९°	९१८°
संदस्तम्	सं	११२.४	८.६	३२२°	७७८°
पारदम्	पा	२००.६	१३.५९५	−३८°	३५७°

इस सारिणीके देखनेसे पता चलता है कि तत्वोंका परमाणुभार जैसे जैसे बढ़ता जाता है इनका घनत्व भी बढ़ता जाता है पर द्रवांक और क्वथनांक क्रमशः कम होता जाता है। पारदम् साधारण तापक्रम पर द्रव है। ताम्र और स्वर्णके समान पारद भी दो प्रकार के लवण देता है: – पारदस और पारदिक। इसी समूहमें बेरीलम् नामक एक और तत्व है जिसका परमाणुभार ९० है। अधिक उपयोगी न होनेके कारण इसका विशेष वर्णन यहाँ नहीं दिया जावेगा। बेरील नामक खनिजमें यह स्फटम् और शैलम्से संयुक्त पाया जाता है। इसके गन्धेत, बेगओ४·४उ२ ओ, में मीठा स्वाद होता है। बेरील ओषिद, बेओ; कर्बनेत, बेकओ३ और हरिद, बेह२ मुख्य लवण हैं।

खनिज

मगनीसम्—इप्सम स्थानके एक झरनेमें सं० १७५२ वि० में नेहेमिया ग्र्यू ने एक विशेष लवण देखा। इस लवणको अब इप्सम लवण कहते हैं यह मगनीस गन्धेत, मगओ४, ७उ२ ओ. है। मगनीसम्के मुख्य खनिज निम्न हैं:—

(१) मगनीसाइट—मगनीस कर्बनेत, मकओ३

(२) डोलोमाइट—मगनीस-खटिक कर्बनेत-मकओ३ खकओ३

(३) कारनैलाइट—पांशुज मगनीस हरिद, पांह, मह२ ६उ२ ओ

(४) एसबेस्टस—खटिक मगनीस शैलेत खम३ (शैओ३)४

दस्तम्—पीतलके बनानेमें दस्तम् और तांबेके धातु संकरका उपयोग चिरकालसे होता आया है। दस्तम्के मुख्य खनिज निम्न हैं:—

(१) दस्त ब्लैण्डी—दस्तगन्धिद—दग

(२) केलेमाइन—दस्तकर्बनेत, दकओ३

(३) इलेक्ट्रिक कैलेमाइन—दस्तशैलेत—द२ शओ४ उ२ ओ

संदस्तम्—जिन खनिजोंसे दस्तम् प्राप्त होता है उन्हींमें दस्तम्के साथ-साथ संदस्तम् भी थोड़ी सी मात्रामें विद्यमान रहता है। अतः दस्तब्लैण्डी और केलेमाइन इसके भी खनिज माने जा सकते हैं।

पारदम्—पारद संसारके अति प्राचीन धातुओंमें से है। धातुरूपमें अथवा अन्य धातुओंसे संयुक्त यह पाया जाता है। सिनेबार, पाग, इसका मुख्य खनिज है। सेंदुरमें भी पारा होता है।

धातु-उपलब्धि

मगनीसम्—सर हम्फ्रीडेवीने सबसे पहले इस धातुको विद्युत-विश्लेषणकी प्रक्रियासे प्राप्त किया था। आजकल इस कार्यके लिये कारनैलाइट (पांशुज मगनीस हरिद) को गलाते हैं। ७००°श तक गरम

करनेसे यह खनिज स्वच्छ द्रवमें परिणत हो जाता है। इसमें खटिक प्लविद् भी डाल देते हैं। लोहेकी घरिया ऋण ध्रुवका कार्य करती है। धनध्रुव कर्बन का होता है विद्युत् विश्लेषण द्वारा जनित हरिन् निकल कर अलग हो जाती है और धातु पिघले हुए द्रव की सतह पर तैरने लगता है। इस धातुके ऊपर कर्बन द्विओषिद् प्रवाहित करते रहते हैं अन्यथा यह धातु वायुके ओषजनसे संयुक्त होकर ओषिद् बन जावेगी। इस प्रकार प्राप्त मगनीस धातु अर्धद्रवित अवस्था में होती है। इसके फिर तार बना लिये जाते हैं। इन तारोंकी लच्छियां (ribbon) बाजारमें बेची जाती हैं।

दस्तम्—दस्तम्के खनिजोंको वायुमें भूंजकर ओषिदमें परिणत कर लेनेके पश्चात् इसे कोयलेके साथ स्रवित करनेसे दस्तम् धातु स्रवित होने लगती है।

द ओ + क = द + क ओ

खनिजोंसे इसे प्राप्त करनेकी दो मुख्य विधियां हैं। (१) बेलजियन विधि (२) सिलेशियन विधि। बहुधा दस्तब्लैण्डी खनिजका उपयोग किया जाता है।
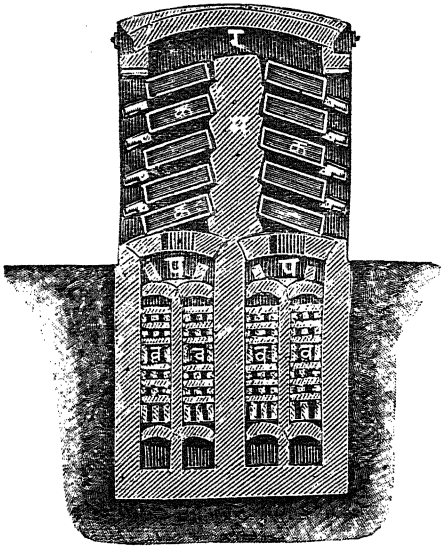
बेलजियन भट्टी

दस्तब्लैण्डीको वायुमें भूनते हैं। इस प्रकार इसका गन्धक ओषिद् बनकर पृथक् उड़ जाता है—
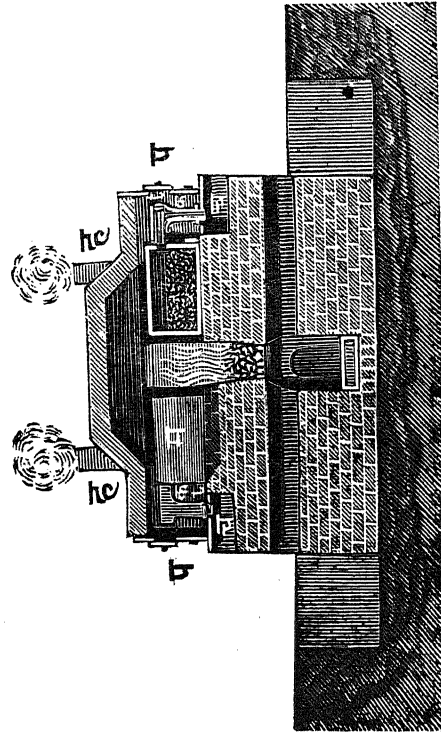
सिलेशियन भट्टी

२ द ग + ३ ओ$_2$ = २ द ओ + २ ग ओ$_2$

इसमें फिर आधा भाग पीसा हुआ कोयला मिलाकर पक्की ईंटोंकी भट्टियोंमें जोरोंसे गरम करते हैं। ८००° पर अवकरण आरम्भ हो जाता है और दस्तम् स्रवित होने लगता है। बेलजियन और सिलेशियन विधियोंमें भेद यही है कि दोनोंमें दो प्रकारकी भट्टियोंका उपयोग किया जाता है। बेलजियन भट्टीमें पक्की मिट्टीकी नलियोंके बने हुए भभके होते हैं जिनका एक सिरा बन्द रहता है। भट्टीमें ये इस प्रकार रखे जाते हैं कि खुले सिरेकी ओर ढाल रहता है। दस्तम् को स्रवित करनेके लिये खुले सिरेमें एक लोहेकी नलिका लगा देते हैं। सिलेशियन भट्टी साधारण भभकेकी तरह होती है। इसमें पक्की मिट्टीकी खत्ती (muffle) होती है जिसमें दस्तओषिद् और कार्बन भरदिया जाता है। इस खत्तीमें लोहेकी खत्ती नली होती हैं खत्तीको नीचेसे गरम करते हैं और

दस्तम् नली द्वारा स्रवित होकर लोहेके सन्दूकमें ठंडा किया जाता है।

संदस्तम्—दस्त-क्लैरइडोंमें २ से ३ प्रतिशत तक संदस्तम् भी होता है। संदस्तम् दस्तम्की अपेक्षा अधिक उड़नशील है अतः खनिजको भूंजकर कर्बन-द्वारा अवकृत होने पर स्रवण करनेसे संदस्तम् दस्तम्के पूर्वही स्रवित होने लगेगा। इस प्रकार कई बार स्रवण करनेसे शुद्ध संदस्तम् प्राप्त हो जावेगा।

पारदम्—पारदका मुख्य खनिज सिनेबार (पारद-गन्धिद) हैं। खनिजसे धातु प्राप्त करनेके लिये इसे छेददार डाटोंपर रखते हैं। छेदोंमेंसे गरम हवा प्रवाहित करते हैं। ऐसा करनेसे खनिजका गन्धक गन्धक-द्विओषिद बनकर उड़ जाता है और पारदभी स्रवित होने लगता है। ठंडे कमरोंमें पारदकी ये वाष्पें ठंडी कर ली जाती हैं।

इस प्रकार प्राप्त पारदधातुको हलके नोषिकाम्लके घोलके साथ संचालित करके शुद्ध किया जा सकता है। क्वार्ट्जकी कुप्पीमें क्षीण दबावमें स्रवित करनेसे शुद्ध पारा मिल सकता है।

धातुओंके गुण

मगनीसम्—यह अत्यन्त हलका धातु है। इसकी लच्छीको वायुमें जलानासे अत्यन्त तीव्र श्वेत प्रकाश होता है। जलने पर यह मगनीस ओषिद, मओ, और मगनीस नोषिद, $म_3नो_2$में परिवर्त्तित हो जाता है। मगनीस नोषिद जलके संसर्गसे अमोनिया देता है। मगनीसम्के चूर्णमें पांशुजहरेत या भार परौषिदको को मिलानेसे प्रवल विस्फोटक बनता है। यह क्षारोंमें नहीं घुलता है पर हलके अम्लोंमें घुल जाता है। इसके द्रवांक, घनत्व आदि पहले दिये जा चुके हैं।

दस्तम्—इसमें नीलापन लिये हुए सफेद रंग होता है। यह सख्त और भंजनशील धातु है। २०५°श पर यह खरलमें पीसी जा सकती है। इसके चूरेको आसानीसे जलाया जा सकता है। जलाने पर यह दस्त-ओषिद देता है। दस्तम् तांबेके साथ पीतल नामक धातु संकर देता है। लोहेके बर्त्तनोंको दस्तचूर्णके साथ गरम करनेसे उनपर दस्तम्की तह लग जायगी। साधारण बाटरियोंमें दस्तम्के छड़ धनध्रुवका कार्य्य करते हैं। दस्तम् हलके अम्लोंमें घुलजाता है और प्रक्रियामें उदजन निकलने लगता है। पांशुज या सैन्धकक्षारके गरम घोलोंमें भी यह घुल जाता है। घुलने पर सैन्धक या पांशुज दस्तेत लवण प्राप्त होता है और उदजन निकलने लगता है।

$$द + २ सै ओ उ = सै_2 द ओ_2 + उ_2$$

संदस्तम्—यह नरम नीलापन लिए हुए श्वेत धातु है। ८०°श पर यह भंजन शील हो जाता है। साधारण गुणोंमें यह दस्तम्के समान है। विशेष विद्युत् बाटरियोंमें इसका पारदमेल ऋणध्रुवका काम करता है।

पारदम्—साधारण बाजारके पारेमें थोड़ासा सीसा और तांबा भी मिला रहता है। पारा चांदीके समान चमकने वाली श्वेत द्रव धातु है। पारदमें अनेक धातु घुल जाते हैं। इस प्रकार पारद मेल (amalgam) बनते है। सैन्धक पारद मेल, $सै पा_2$, का उपयोग बहुत किया जाता है। पारदमें सन्धकम्के छोटे-छोटे टुकड़े सुखाकर डालते हैं और खरलमें पीसते जाते हैं। पीसने पर हलका विस्फुटन होता है और चिनगारी निकलती हैं सन्धकम् की उपयुक्त मात्रा पड़ने पर पारा ठोस पड़ जाता है और पारद मेल बन जाता है।

पारदिक हरिदके घोलमें तांबेके छीलन डालनेसे तांबे पर पारा जम जायगा। प्रक्रिया निम्न प्रकार की होगी।

$$ता + पाह_2 = ताह_2 + पा$$

इसी प्रकार पारदिक हरिदके घोलमें स्फटम्का छीलन डालनेमें स्फुट-पारद-मिथुन बनता है।

पारद धातु पर उदहरिकाम्ल या हलके गन्धकाम्लका कोई प्रभाव नहीं होता है पर तीव्र गन्धकाम्लके साथ गरम किया जाय तो पारद गन्धेत बनेगा :—

$$पा + २उ_2 गओ_4 = पा गओ_4 + गओ_2 + २ उ_2ओ$$

पारद नोषिकाम्लमें घुल जाता हैं। नोषजनके ओषिद निकलने लगते हैं। यह प्रक्रिया तांबेकी प्रक्रियाके समान है।

$$३ पा + ८उ नो ओ_3$$
$$= ३ पा (नो ओ_3)_2 + ४ उ_2ओ + २ नोओ$$

पारेका उपयोग थर्मामीटर और दबाव मापकोंमें किया जाता है।

संयोग तुल्यांक और परमाणुभार

मगनीसम्—मगनीसम्का संयोग तुल्यांक इसका ओषिद बनाकर निकाला जाता है। शुद्ध मगनीसम् तारकी ज्ञात मात्रा तौलकर नोषिकाम्लमें घोली जाती है। घोलको सुखा लेते हैं। इस प्रकार प्राप्त मगनीज नोषेतको गरम करनेसे मगनीस ओषिद मिलता है। इसे तौल लेते हैं। इस प्रकार प्रयोग करनेमें ज्ञात होगा कि ८ भाग ओषजन १२·१६ भाग मगनीसम् से संयुक्त होता है। अतः १२·१६ इसका संयोग तुल्यांक है।

मगनीसम्का आपेक्षिक ताप ०.२५ है जिसके अनुसार इसका परमाणु भार $\frac{६.४}{०.२५}$ अर्थात् २५.६ के लगभग हुआ। अतः मगनीसम्का परमाणु भार १२.१६ × २ = २४.३२ निश्चित किया गया है। मगनीसम् द्विशक्तिक है।

दस्तम्—दस्तम्का संयोग तुल्यांक भी इसके ओषिदकी परीक्षा करके निकाला गया है। इस प्रकार इसका संयोग तुल्यांक ३२.६८५ निकलता है। आपेक्षिक ताप ०.०९३५ है। अतः परमाणुकार $\frac{६.४}{०.०९३५}$ = ६८के लगभग है। अतः यह द्विशक्तिक है और परमाणुभार ३२.६८५ × २ = ६५·३७ है।

संदस्तम्—इसका भी संयोग तुल्यांक दस्तम्के समान निकला गया है। ५६.२ संयोग तुल्यांक है। इसका आपेक्षिक ताप ०.०५४ है अतः परमाणुभार $\frac{६.४}{०.०५४८}$ = ११७ के लगभग हुआ। अतः यह भी द्विशक्तिक है और परमाणुभार ५६.२ × २ = ११२.४० है।

पारदम्—पारदम् अन्य सह-तत्वोंसे इस बातमें भिन्न है कि इसके दो प्रकारके लवण होते हैं। एक प्रकारके लवणोंमें यह सैन्धकम्के समान एक शक्तिक है और दूसरे प्रकारके लवणोंमें यह खटिकम्के समान द्वि-शक्तिक है। अतः पारदके दो संयोग तुल्यांक हैं। पारदके एक हरिदमें १००.३ भाग पारद ३५.५ भाग हरिन्के साथ संयुक्त है और दूसरेमें २००.६ भाग पारद उतने ही हरिन्से संयुक्त है। पारदका आपेक्षिक ताप ०.०३१९ है जिसके अनुसार परमाणुभार $\frac{६.४}{०.०३१९}$ = २०० के लगभग हुआ। अतः एक प्रकारके लवणोंमें पारद एक शक्तिक है और दूसरेमें द्विशक्तिक और इसका परमाणुभार २००.६ है। जिन लवणोंमें पारद द्वि-शक्तिक है उन्हें पारदिक लवण कहते हैं और जिनमें यह एक शक्तिक है उन्हें पारदस-लवण कहते हैं।

	पारदस	पारदिक
ओषिद	$पा_2ओ$	पा ओ
हरिद	पा ह	$पा ह_2$
नोषेत	$पा नो ओ_3$	$पा(नोओ_3)_2$
नैलिद	पा नै	$पा नै_2$

ओषिद और उदौषिद

मगनीस ओषिद—मओ—इसको मगनीशिया भी कहते हैं। मगनीसम् धातुको वायु अथवा ओषजनमें जलानेसे मगनीस ओषिद बनता है। मगनीस कर्बनेत अथवा मगनीस नोषेतको गरम करनेसे भी यह प्राप्त होता है।

$$म क ओ_3 = म ओ + कओ_2$$

मगनीस कर्बनेत या हरिदके घोलको सैन्धकक्षार

से अवक्षेपित करनेसे मगनीस उदौषिद्, म (ओउ)$_2$ का अनघुल अवक्षेप प्राप्त होगा। इसे १००°श से ऊपर तापक्रम पर गरम करनेसे मगनीस ओषिद मिल जायगा। यदि मगनीस लवणके घोलमें अमोनिया डाला जाय तो भी उदौषिद्का अवक्षेप मिलेगा पर यदि अमोनिया डालनेसे पूर्व इस घोलमें अमोनियम हरिदकी समुचित मात्रा डाली जाय और तदुपरान्त अमोनिया डाला जाय तो कोई अवक्षेप नहीं आवेगा। इस प्रक्रियाका विश्लेषण रसायनमें उपयोग किया जाता है। तृतीय समूहमें केवल लोह, रागम् और स्फटम्के उदौषिदोंका अवक्षेप आवे और मगनीसम् का न आवे, इसके लिये घोलमें अमोनियम हरिद डाल देते हैं और फिर अमोनियासे अवक्षेपित करते हैं।

मगनीस हरिद या गन्धेतके घोलमें अमोनियम हरिद डालकर अमोनियाकी अधिक मात्रा डालनेसे जो घोल मिलता है उसे मगनीसिया-मिश्रण कहते हैं। इसका उपयोग स्फुरेतोंकी मात्रा निकालनेमें किया जाता है।

दस्त ओषिद—दओ—दस्तम् धातुके जलानेसे दस्त ओषिद प्राप्त होता है। इसे श्वेतदस्तम् भी कहते हैं। इसका दवाओंमें भी उपयोग होता है। दस्तगन्धेत को सैन्धक कर्बनेत द्वारा अवक्षेपित करनेसे दस्त-कर्बनेत मिलता है। इस कर्बनेतको गरम करनेसे दस्तओषिद मिल जाता है। यह श्वेत पदार्थ है पर गरम करनेपर गन्धकके समान पीला पड़ जाता है। ठण्डा हो जाने पर फिर सफ़ेद हो जाता है। इसे अम्लोंमें घोलनेसे दस्तम् लवण मिलते हैं :—

$$२ उह + दओ = दह_2 + उ_2ओ$$

पर क्षारोंमें घोलनेसे यह क्षार-दस्तेत देता है :—

$$२ सै ओउ + दओ = सै_2 दओ_2 + उ_2ओ$$
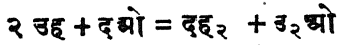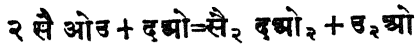
इस गुणमें दस्तम् मगनीसम्से भिन्न है। मगनीस ओषिद सैन्धकक्षारमें नहीं घुलता है।

दस्तम्के घुलनशील लवणोंके घोलमें सैन्धक या पांशुजक्षार डालनेसे दस्तउदौषिद, द (ओउ)$_2$ का श्वेत अवक्षेप मिलता है। इसे ८५°श तापक्रम पर शुष्क कर सकते हैं पर और अधिक तापक्रम तक गरम करनेसे यह ओषिदमें परिणत हो जाता है।

संदस्तम् ओषिद—संओ—यह भूरा चूर्ण पदार्थ है। संदस्त कर्बनेत अथवा नोषेतको गरम करनेसे यह भी मिल सकता है। संदस्त-धातुको जलानेसे भी यह मिल सकता है।

संदस्त-हरिदके घोलमें क्षारका घोल डालनेसे संदस्त उदौषिद, सं (ओउ)$_2$ का श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है। यह अवक्षेप सैन्धकक्षारकी अधिक मात्रा में भी घुलनशील नहीं है। दस्तउदौषिद सैन्धकक्षार-की अधिक मात्रामें घुल जाता है।

पारदिक ओषिद, पा ओ— पारदको क्वथनांक तक वायुमें गरम करनेसे पारद ओषिद बनाया जा सकता है। पारदिक नोषेतको धीरे धीरे गरम करनेसे भी मिल सकता है। पारदिक हरिदके घोलमें सैन्धकक्षार डालने पर पीला अवक्षेप प्राप्त होता है जो शीघ्रही नारंगी रंगमें परिणत हो जाता है। प्रक्रियामें पहले उदौषिद, पा (ओउ)$_2$, बनता है जो शीघ्रही में पारदिक ओषिदमें परिणत हो जाता है—

$$पा ह_2 + २सै ओउ = पा(ओउ)_2 + २सै ह$$

$$पा(ओउ)_2 = पा ओ + उ_2 ओ$$
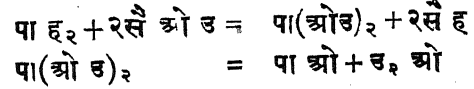
पारदिक ओषिदको गरम करनेसे ओषजन निकल जाता है और यह पारदम् और ओषजनमें विभाजित हो जाता है। पारदिक ओषिदका रंग लाल होता है। यह जलमें थोड़ासा घुलनशील है।

पारदस ओषिद, पा$_2$ ओ—पारदस लवणके घोलमें सैन्धक्षार, डालनेसे पारदस ओषिदका भूरा अवक्षेप मिलेगा।

$$२ पा ह + २ सै ओउ = पा_2 ओ + २सै ह + उ_2 ओ$$
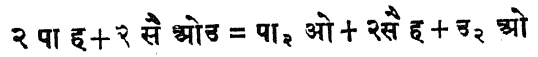
गन्धिद

मगनीस गन्धिद, मग--मगनीस लवणके घोलमें उद-जन-गन्धिद वायव्य प्रवाहित करनेसे मगनीसगन्धिदका अवक्षेप नहीं मिलता है। पर यदि मगनीसम् धातुको

गन्धकके साथ गरम किया जाय तो मगनीस गन्धिद मिल सकता है। यह जलमें अनघुल है। मगनीस उद गन्धिद, म (गउ)$_2$ जलमें घुलनशील है।

दस्तगन्धिद—द ग-दस्तगन्धिद दस्तब्लैण्डी खनिज के रूपमें प्रकृतिमें पाया जाता है। यह गन्धिद श्वेत चूर्ण पदार्थ है। दस्तम्‌के लवणोंके घोलको अमोनिया द्वारा क्षारीय करके अथवा सिरकाम्ल द्वारा अम्लीय करके यदि इसमें उदजन गन्धित प्रवाहित किया जाय तो दस्तगन्धिदका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है। पर घोलमें यदि उदहरिकाम्लके समान प्रबल अम्ल होगा तो अवक्षेप नहीं आयगा।

संदस्त गन्धिद—सं ग-यह चटकीले पीले रंगका चूर्ण है जो हलके उदहरिकाम्लमें भी अनघुल है। अतः यदि संदस्तहरिदके घोलमें हलका नोषिकाम्ल, हलका उदहरिकाम्ल आदि अम्ल डालकर उदजन गन्धिद प्रवाहित किया जाय तो संदस्त गन्धिदका पीला अवक्षेप मिलेगा। पर यदि संदस्तगन्धिदमें तीव्र उदहरिकाम्ल डाला जायगा तो यह घुल जायगा हलके गन्धकाम्लके साथ उबालने पर भी यह घुल सकता है। इन प्रक्रियाओंमें संदस्तम् दस्तम्‌की अपेक्षा भिन्न है।

पारदिक गन्धिद—पां ग-सिनेबार नामक खनिजके रूपमें यह पाया जाता है। यह लाल रवेदार है। पारद और गन्धकको साथ-साथ गरम करनेसे यह बनाया जा सकता है। गन्धक और पारदके मिश्रणमें थोड़ा सा जल और पांशुजक्षारका घोल डालकर पीसनेसे भी यह मिल सकता है। पारदिक हरिदके घोलमें थोड़ा सा उदजन गन्धिद प्रवाहित करने पर पहिले तो श्वेत अवक्षेप आवेगा। पर यदि अधिक उदजन गन्धिद प्रवाहित किया जाय तो पीला और अन्ततः काला अवक्षेप मिलेगा। यह गन्धिद उदहरिकाम्ल, नोषिकाम्लमें अनघुल है पर अम्लराजमें घुल जाता है। इस प्रकार इसका गन्धिद ताम्र, विशद, और संदस्तम्‌के गन्धिदोंमें पृथक् किया जा सकता है क्यों कि इनके गन्धिद तीव्र नोषिकाम्लमें घुलनशील हैं।

हरिद

मगनीस हरिद—मह$_2$.६ उ$_2$ ओ—स्टैसफर्टमें पांशुज हरिदके साथ-साथ मगनीस हरिद भी मिलता है। इसके घोलका स्फटिकीकरण करनेपर पांशुज हरिदके रवे पहले पृथक् होने लगते हैं क्योंकि यह मगनीस हरिदकी अपेक्षा कम घुलनशील है। इन रवों को पृथक् करनेके पश्चात् घोलमें मगनीस हरिद रह जाता है। घोलको सुखाकर मगनीस हरिद अलग कर लेते हैं। मगनीस हरिद श्वेत रवेदार पदार्थ है। यह वायुमें खुला छोड़नेपर शीघ्रही पसीजने लगता है। साधारण नमकमें भी थोड़ासा मगनीस हरिद रहता है। इसी कारण बरसातमें नमक खुला छोड़ने पर पानी-पानी हो जाता है। मगनीस हरिदको गरम करनेसे मगनीशिया मिलता है। इसके रवोंमें स्फटिकीकरणके ६ जलाणु होते हैं।

मह$_2$ + ६ उ$_2$ ओ = मओ + २ उह + ५ उ$_2$ ओ

पर यदि मगनीस हरिदके जलीय घोलको उदहरिकाम्लके प्रवाहमें गरम करें तो अनार्द्र मगनीस हरिद मिल सकता है।

दस्तहरिद—दह$_2$.उ$_2$ ओ—गरम दस्तम् पर पर हरिन् गैस प्रवाहित करनेसे दस्तहरिद बनाया जा सकता है। दस्तम् चूर्णको उदहरिकाम्लके साथ गरम करनेसे भी यह मिल सकता है। यह भी शीघ्र ही पसीजने लगता है। जलमें यह घुलनशील है पर यदि सम्पृक्त घोलमें अधिक पानी डाला जायगा तो फिर अवक्षेप आ जावेगा। यह अवक्षेप दस्तओष हरिद का है—

द ह$_2$ + उ$_2$ओ = द (ओउ ह + उह

संदस्त हरिद—संह$_2$ २ उ$_2$ओ—यह भी दस्त हरिदके समान है पर यह पसीजता नहीं है। इसमें नोना लग जाता है अर्थात यह अपना स्फटिकीकरण का जलाणु त्याग कर सूख जाता है।

पारदिक हरिद—पाह$_2$—कौरोसिव सब्लीमेट—पारद और उदहरिकाम्लके संसर्गसे यह नहीं बनाया जा सकता है। पर यदि पारदिक गन्धेतको नमक-

के साथ गरम किया जाय तो यह मिल सकता है।

पा गओ$_4$ + २सै ह=पा ह$_2$ + सै$_2$ गओ$_4$

इसके रवे सूच्याकार श्वेत होते हैं। यह प्रबल-विष है। जलमें यह घुलनशील है। क्षार हरिदोंके साथ यह द्विगुण लवण, पांह, पाह$_2$ उ$_2$ओ के समान बनाता है। दबाव पर यदि यह गरम किया जाय तो २८८°श में पिघलने लगता हैं और ३०३° में उबलने लगता है। पारदिक हरिदके घोलमें अमोनियाका घोल डालनेसे श्वेत अवक्षेप मिलता है। यह अवक्षेप अनघुल पारदामिन हरिद का है।

पाह$_2$ + नोउ$_3$=पा (नोउ$_2$) ह + उ$_2$ह

यह स्मरण रखना चाहिये कि अमोनियाके स्थान में सैन्धकक्षारका घोल पारदिक हरिदमें डालनेसे पारदिक ओषिदका पीला अवक्षेप मिलेगा।

पारदस हरिद —(केलोमल) पाह—पारदस नोषेत-के घोलमें उदहरिकाम्ल या किसी हरिदका घोल डालनेसे पारदस हरिदका श्वेत अवक्षेप मिलेगा।

पारा और पारदिक हरिदके मिश्रणको पीसकर गरम करनेसे भी यह मिल सकता है। पारदस हरिद गरम करनेपर उड़ जाता है और इसकी वाष्पोंमें पारद और पारदिक हरिद दोनों विद्यमान रहते हैं। यह जल और हलके अम्लोंमें अनघुल है। (पारदिक हरिद जलमें घुलनशील है) अम्ल-राजके साथ उबालने पर यह पारदिक हरिद में परिणत होता है। पारदिक हरिदको वंगस हरिद, स्फुरसाम्ल आदि अवकारक पदार्थों द्वारा प्रभावित करनेसे पारदस हरिदका अवक्षेप मिलेगा।

वह$_2$ + २पा ह$_2$=वह$_4$ + २पा ह

और अधिक वंगस हरिद यदि साथमें विद्यमान हो तो पारदस हरिदका भी अवकरण हो जाता है और पारद रह जाता है—

२ पाह + वह$_2$=वह$_4$ + २ पा

पारदस हरिदमें अमोनिया डालनेसे काला पदार्थ मिलता है। इसमें कुछ पारद होता है और कुछ अन्य अमिनो यौगिक।

पारदिक नैलिद— पानै$_2$—पारद और नैलिन्को खरलमें साथ-साथ पीसनेसे पारदनैलिदका सुन्दर लाल चूर्ण मिलेगा। पारदिक हरिदमें पांशुज नैलिद-का घोल डालने से भी इसका नारंगी अवक्षेप मिलता है पर यदि अधिक पांशुज नैलिद डाल दिया जाय तो यह अवक्षेप फिर घुल जाता है क्योंकि एक द्विगुण लवण बन जाता है।

२पां नै + पा ह$_2$=पा नै$_2$ + २ पां ह

पा नै$_2$ + २ पां नै=पां$_2$पानै$_4$

इस द्विगुण लवणके घोलको सुखाने पर पीले रवे प्राप्त होंगे। पारदस अरुणिद, पा$_2$ रु$_2$ और पारदस नैलिद पा$_2$ नै$_2$ पारदस हरिद के समान हैं। अरुणिद श्वेत होता हैं और नैलिद पीला।

गन्धेत

मगनीस गन्धेत – इप्सम लवण—मगओ$_4$ ७उ$_2$ओ-यह घुलनशील लवण विरेचक पदार्थके रूपमें बहुत उपयुक्त होता है। कीसेराइट लवण भी मगनीस गन्धेत है पर इसमें स्फटिकीकरणका एक जलाणु है। यह जलमें अनुघुल है। इप्सम लवणको १५०°श तक गरम करनेसे भी यह प्राप्त होता है। मगनीस गन्धेत और पांशुज-गन्धेतकी तुल्यमात्रायें जलमें घोल कर स्फटिकीकरण करनेसे पांशुज मगनीस गन्धेत, मगओ$_4$ पां$_2$ गओ$_4$ ६ उ$_2$ ओ, द्विगुण लवण मिलता है।

दस्त गन्धेत—दगओ$_4$ ७उ$_2$ओ—इप्सम लवण और दस्त गन्धेत दोनों समरूपी हैं और दोनोंमें स्फटिकीकरणके सात जलाणु हैं। दस्त ब्लैण्डीको अधिक वायुमें भूंजनेसे दस्त गन्धेत प्राप्त होता है।

दग + २ ओ$_2$=दगओ$_4$

दस्तम् धातुको हलके गन्धकाम्ल द्वारा प्रभावित करनेसे भी दस्तगन्धेत मिलता है और उदजन निकलने लगता है। यह जलमें घुलनशील श्वेत पदार्थ है।

संदस्त गन्धेत—संगओ$_4$ उ$_2$ओ यह भी दस्त गन्धेतके समान है पर इसके रवोंमें एक ही जलाणु है। यह जल में घुलनशील श्वेत पदार्थ है।

पारदिक गन्धेत—पा गओ$_4$—पारदको तीव्र गन्धकाम्ल के साथ उबालनेसे यह मिल सकता है। यह श्वेत घुलनशील पदार्थ है।

पारदस गन्धेत—पा$_2$ गओ$_4$—पारदस नोषेतके घोलमें गन्धकाम्ल डालनेसे पारदस गन्धेतका श्वेत अवक्षेप मिलता है। पारदकी अधिक मात्रा लेकर तीव्र गन्धकाम्ल द्वारा प्रभावित करनेसे भी पारदस गन्धेत मिल सकता है। यह श्वेत रवेदार अनघुल पदार्थ है।

नोषेत और नोषिद

मगनीस नोषेत—म (नो ओ$_3$)$_2$—मगनीसम् को नोषिकाम्लमें घोलनेसे मगनीस नोषेत मिलता है। गरम करनेसे यह मगनीस ओषिदमें विभाजित हो जाता है।

मगनीस नोषिद—म$_3$ नो$_2$—मगनीसम् धातु को नोषजनमें जलाने से मगनीस नोषिद मिलता है। मगनीस ओषिद जलके प्रभावसे अमोनिया देने लगता है।

म$_3$नो$_2$ + ६उ$_2$ ओ = ३ म (ओउ)$_2$ + २ नोउ$_3$

दस्त नोषेत—द (नोओ$_3$)$_2$ ६उ$_2$ ओ—यह भी दस्तम् और नोषिकाम्लके संसर्गसे बनाया जा सकता है। गरम करने पर यह भी दस्त ओषिदमें परिणत हो जाता है। खुला छोड़नेपर यह पसीजने लगता है।

पारदिक नोषेत—पा (नोओ$_3$)$_2$—पारद को अधिक नोषिकाम्लके साथ उबालनेसे पारदिक नोषेत बनता है।

पारदस नोषेत—पा नो ओ$_3$—पारद को हलके नोषिकाम्लमें घोलनेसे यह बनता है। पारदिक नोषेत को पारद धातुसे संचालित करने से भी यह मिल सकता है।

पा (नोओ$_3$)$_2$ + पा = २ पा नो ओ$_3$

पारदस नोषेत को नोषिकाम्लके साथ उबालनेसे पारदिक नोषेत बनता है।

४ पा नो ओ$_3$ + ६उ नो ओ$_3$

= ४ पा (नोओ$_3$)$_2$ + नोओ + नोओ$_2$ + ३उ$_2$ओ

यह जलमें घुलनशील है।

कर्बनेत

मगनीस कर्बनेत—मकओ$_3$—यह मगनेसाइट, डोलो माइट, आदि खनिजोंमें अन्य धातुओंके साथ विद्यमान रहता है। डोलो माइटसे अन्य मगनीस लवण भी बनाये जाते हैं। खनिजको हलके गन्धकाम्लमें संचालित करते हैं। प्रक्रियामें घुलनशील मगनीस गन्धेत और अनघुल खटिक गन्धेत बनजाते हैं। इस प्रकार मगनीस गन्धेत को पृथक किया जा सकता है।

इप्सम लवणमें सैन्धक कर्बनेतका घोल डालनेमें शुद्ध मगनीस कर्बनेत, मकओ$_3$, का नहीं पर मिश्रित कर्बनेतका श्वेत अवक्षेप मिलता है जिसे मगनीसिया अल्बा कहते हैं मगनीस कर्बनेत शुद्ध जलमें खटिक कर्बनेत की अपेक्षा भी अधिक अनघुल है पर जलमें यदि कर्बन-द्विओषिद हो तो घुलनशीलता बहुत बढ़ जाती है। मगनीस कर्बनेत अमोनियम लवणोंमें भी घुलनशील है। यदि मगनीस गन्धेतके घोलमें अमोनियम हरिद डालकर सैन्धक कर्बनेतका घोल डाला जाय तो कोई अवक्षेप नहीं मिलेगा।

दस्त कर्बनेत—द क ओ$_3$—दस्त गन्धेतके घोलमें सैन्धक कर्बनेतका घोल डालनेसे दस्त कर्बनेतका अवक्षेप मिलता है। यह खनिजोंमें भी पाया जाता है।

स्फुरेत

म (नोउ$_4$) स्फु ओ$_4$,

मगनीस अमोनियम स्फुरेत—मगनीस हरिदमें अमोनियम हरिद और अमोनिया डालकर सैन्धक स्फुरेत डालनेसे मगनीस अमोनियम स्फुरेतका अवक्षेप मिलता है।

मह$_2$ + नोउ$_4$ (ओउ) + सै$_2$ उ स्फु ओ$_4$

= म नोउ$_4$ स्फुओ$_4$ + २ सैह + उ$_2$ओ

गरम करनेसे मगनीसउत्पस्फुरेत, म$_2$ स्फु$_2$ ओ$_7$ मिलता है।

२ म नोउ$_4$ स्फु ओ$_4$ = म$_2$ स्फु$_2$ ओ$_7$ + २ नोउ$_3$ + उ$_2$ ओ

इस विधिका उपयोग मगनीसम् एवं स्फुरेतों की मात्रा निकालने में किया जाता है।

प्रकाशका वेग

(ले० श्री युधिष्ठिर भार्गवजी)

प्रकृतिके रहस्योंमें प्रकाशकी गति एक बड़ोही आश्चर्यजनक वस्तु है। इसका अनुमान करतेही बुद्धि चकरा जाती है। प्रकाशका वेग अनुमानतः १,८६००० मील प्रति सेकिंड बताया जाता है। पृथ्वीपर अभी तक मनुष्य निर्माणित यानोंमें वायुयानकी गति सबसे अधिक है, यह भी लगभग ३०० मील प्रति घण्टा अर्थात् १/१२ मील प्रति सेकिंडके ऊपर नहीं पहुँची। इसीसे अंदाजा लग सकता है। कि हम अभी प्रकृतिके सामने कितने क्षुद्र और अगण्य हैं। परन्तु आश्चर्य इस बातका नहीं होना चाहिये कि प्रकाश इतनी तेज़ीसे चलता है परन्तु इसका कि मनुष्यने अपनी बुद्धिकी तीव्रतासे इस गतिको नापा। यह गति कैसे नापी गई इसीका जिक्र हम आगे करेंगे।

पहले-पहल इटलीके विख्यात वैज्ञानिक और ज्योतिषी गैलिलिओने इस गतिका अनुमान करनेकी कोशिशकी। दो मनुष्य ढक्कनदार लालटेनें लेकर कई मीलकी दूरीपर खड़े हो गये। लालटेनें इस प्रकार बनाई गई थीं की जब तक एक ढक्कन न खोला जाता तो प्रकाश बाहर नहीं जा सकता था। पहला मनुष्य अपनी लालटेनका ढक्कन खोलता और समय लिख लेता था। दूसरा पहली लालटेनका प्रकाश देखनेपर अपनी लालटेनका ढक्कन उघाड़ता और इस प्रकाशको जब पहला मनुष्य देखता था तो वह फिर समय लिख लेता था यदि प्रकाशका वेग "ग" मील प्रति सेकिंड दोनों जगहोंके बीचकी दूरी "म" मील और जो समय प्रकाशको आने जानेमें लगा वह "स" सेकिंड हो तो

$$स = \frac{२म}{ग} \quad पया\ ग = \frac{२म}{स}$$

गैलिलिओको इस विशाल गतिका अंदाज़ा नहीं था इसलिये उसने इस रीतिकी कल्पना की। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इतनी अधिक गति होनेके कारण समय "स" निकालना असम्भव था इसलिये इस प्रयोगसे कोई फल नहीं निकला परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि यह बिलकुलही व्यर्थ हुआ। फिज़ोने इसी रीतिपर उन्नति करके प्रकाशका वेग निकाला। इस प्रयोगका जिक्र हम आगे करेंगे।

सन् १६७५ में रोमर नामी एक डैनमार्कीय ज्योतिषीने प्रकाशकी गति निकाल डाली। बृहस्पतिके चारों तरफ फिरनेवाले चार चन्द्रमा हैं यह एक चक्कर ४२ घण्टेसे लेकर १६²/₃ दिनमें लगाते हैं। हमारे चन्द्रमाकी तरह यह सूर्यकी रोशनीसे दिखाई देते हैं इसलिये यह जब कभी बृहस्पतिकी छायामें आ जाते हैं तो सूर्यसे रोशनी मिलना बन्द होनेके कारण इनका ग्रहणहो जाता है। मामूली तौरपर विचार करनेसे यही समझमें आता है कि किसी खास चन्द्रमाके किसी दो ग्रहणोंके बीचका समय दूसरे दो ग्रहणोंके बीचके समयके बराबर होना चाहिये। परन्तु रोमरने देखा कि जब पृथ्वी बृहस्पतिकी ओर आती है तो ग्रहणोंके बीचका समय कम हो जाता है और जब पृथ्वी उससे दूर जाती है तो यह समय अधिक हो जाता था। समयके इस अन्तरका कारण रोमरने यह बताया कि जब पृथ्वी बृहस्पतिके पास आ जाती है तो प्रकाशको बीचकी दूरी पार करनेमें कम समय लगता है परन्तु जब पृथ्वी दूर चली जाती है तो यही समय बढ़ जाता है रोमरके समयमें पृथ्वीके मार्गका व्यास मालूम था और इसीसे रोमरने प्रकाशका वेग १,८५५०० मील प्रति सेकिंड निकाला। आधुनिक कालमें इस वेगको निकालनेकी अधिक विशुद्ध रीतियां मालूम हैं इसलिये रोमरके प्रयोगका केवल ऐतिहासिक महत्व रह गया है।

इसके बाद इंगलिस्तानके राज-ज्योतिषी ब्रैडलेने यह वेग अपेरण (Aberration) की रीतिसे

निकाला। यदि हम डाक गाड़ीमें तेज़ीसे जा रहे हों और मेह ऊपरसे सीधा गिरता हो तो हमारी गतिके कारण वह दूसरी दिशासे गिरता मालूम होगा। इसी प्रकार कोई तारा पृथ्वीकी गति और प्रकाशकी गतिके सम्मिलनके कारण अपनी यथार्थ दिशा से हटा हुआ मालूम होता है। अर्थात् यदि पृथ्वी बजाय सूर्यकी चारों ओर फिरनेके स्थिर होती तो तारा किसी दूसरी ओर दिखाई देता। इसी हटनेको अपेरण कहते हैं। हमको पृथ्वीकी गति मालूम है और ज्योतिषकी रीतियोंसे हम अपेरण नाप सकते हैं। इन बातोंको जानते हुए हम प्रकाश का वेग निकाल सकते हैं।

यह दोनों रीतियां पारलौकिक वस्तुओंकी सहायता लेती हैं। सन् १८४९ में फिज़ो नामो एक वैज्ञानिक ने पार्थिव रीतियोंसे प्रकाशका वेग निकाला इनके यन्त्र का चित्र नीचे दिया जाता है।
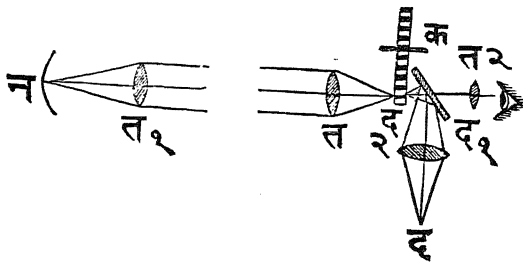
द एक तेज़ लम्प है। इससे किरणें चलकर एक उन्नतोदर ताल त में होती हुई "द१" पर जो कि एक सादा शीशा है पड़ती हैं और—इससे परावर्तित होकर द२ बिन्दु पर एकत्रित होती है। यहांसे दूसरे उन्नतोदर ताल त में होती हुई समानान्तर हो ताल 'त२' से निकल न दर्पण पर एकत्रित होती हैं। शीशा से परावर्तित (Reflect) हो फिर वही रास्ता किरणोंको नापना पड़ता है। "क" एक किर्री है। यह तेज़ी से घुमाया जा सकता है, और इसके घूमनेका वेग भी मालूम हो सकता है। जब किरणें दांतोंके बीचमें हो कर आती हैं तो त२ नामक एक ताल समूह से द का चित्र देखा जा सकता है। त१ और त के बीचकी दूरी ३ या ४ मील होती है।

मान लीजिये कि एक किरण 'द' से चल कर इस ताल समूह में से होती हुई 'न' पर पड़ी और फिर परावर्तित होकर वापिस आई। यदि किर्री 'क' स्थिर है तो किरण बिना रोक टोक 'त२' में होकर जायगी और ब का चित्र दर्शकको दिखाई देगा। अब यदि किर्री धीरे-धीरे घुमाया जाय तो जिस समय दांता आंख के सामने होगा प्रकाशकी किरण आंख तक नहीं पहुँचेगी और यदि आंख दो दांतोंकी बीचकी जगहके सामने होगी तो प्रकाशको देख सकेगी और इसलिये एक टिमटिमाती हुई रोशनी दिखाई पड़ेगी। मनुष्यकी आंखोंमें एक खास बात यह कि यदि एक वस्तु एक सेकिंड में १५ या २० दफा ओझल हो और दिखाई पड़े तो ऐसा मालूम होता है कि वस्तु अदृष्य ही नहीं हुई। इसलिये यदि पहिया ऐसी गतिसे घूमने लगे कि द की टिमटिमाहट एक सेकिंडमें २० दफा हो तो मालूम ऐसा होगा कि द का चित्र बिलकुल नहीं टिमटिमाता। अब मानिये कि पहिये की गति ऐसी करदी कि जितनी देरमें एक किरण 'न' तक जाकर वापिस आये उतनी देरमें किरणके रास्तेमें एक दांता चला आवे तो किरण दांते के सामने होनेके कारण ताल समूह त२ में नहीं आ सकेगी और इसलिये द का चित्र दर्शकको नहीं दिखाई पड़ेगा। अब यदि किर्रै की गति दुगनी करदी जाय तो जितनी देरमें एक किरण वापिस आयगी तब तक दांतेकी जगह दांतोंके बीचकी जगह आ जायगी और द का चित्र फिर दिखाई दे जायगा। यदि हमें किर्रैके घूमनेका वेग दांतोंकी संख्या तथा त१ और 'त' के बीचकी दूरी मालूम है तो प्रकाश वेग हिसाब लगानेसे मालूम हो सकता है।

यदि किर्रैका वेग और भी बढ़ादें तो फिर द का चित्र ओझल हो जायगा इस प्रकार यदि वेग बढ़ाते जाँय तो एक बार चित्र ओझल होगा और फिर दिखाई देगा।

मान लीजिए कि त, और त के बीच की दूरी 'म' मील और ग मील प्रति सेकिंड प्रकाशका वेग है। फिर्री 'च' चक्कर प्रति सेकिंड लगाता है 'स' दांतोंकी संख्या है और मानिये कि एक दांता इतनी देरमें खाली जगहके स्थानपर आ गया तो

समय जो प्रकाशको जाकर वापिस आनेके लगा—

$$= \frac{२म}{ग} \text{ सेकिंड}$$

समय जो एक दांतेको अपनी जगहसे हट कर खाली स्थान की जगह आने में लगा—

$$= \frac{१}{२ चस} \text{ सेकिंड}$$

क्यों कि 'च × स' दांते और खाली जगहें एक सेकिंड में निकलती हैं।

यह दो समय बराबर होंगे जब कि ब का चित्र ओझल होग तब।

$$\frac{२म}{ग} = \frac{१}{२चस}$$

$$ग = २ चस × २म$$

फिज़ोने इस रीतिसे प्रकाशकी गति ३१५०००००० मीटर या १८७००० मील प्रति सेकिंड निकाली।

इसके पश्चात् कार्नू ने वही प्रयोग अधिक अच्छे सामानसे किया फिर्रेकी गति निकालनेका एक खास इन्तज़ाम किया गया और बीच की दूरी लगभग १५ मील कर दी गई। कार्नू के अनुसार प्रकाश की गति ३००१००००० और ३००७००००० मीटर प्रति सेकिंड के बीच में है।

सन् १८३८ में अरागो नामी एक वैज्ञानिक ने प्रस्ताव किया कि एक घूमते हुए दर्पणकी सहायतासे प्रकाशका वेग निकाला जाय। यहाँ यह कह देना उचित होगा कि उस समय "प्रकाश क्या है? इस प्रश्न पर बड़े महत्व पूर्ण वादविवाद हो रहे थे। वैज्ञानिकों के सामने दो प्रस्ताव इस प्रश्नके उत्तरमें थे। एक दल यह कहता था कि न्यूटनका मत माना जाय। उसके अनुसार प्रकाशके छोटे छोटे परमाणु किसी दीप्तवस्तुसे निकलते हैं और जब वे मनुष्य की नेत्रों पर गिरते हैं तो उसको प्रकाशका अनुभव होता है। दूसरे सिद्धांतके अनुसार प्रकाश आकाशमें तरंगोंके रूपमें इधर उधर आता जाता है। जिस प्रकार एक तालाबमें पत्थर फेंकने पर तरंगे उठती हैं और आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार आकाशमें किसी कारण तरंगे उठती हैं और जब वे हमारे नेत्रों पर पड़ती है तब हम प्रकाश अनुभव करते हैं। पहले सिद्धाँत के अनुसार प्रकाशका वेग पानीमें हवा से अधिक होना चाहिये और दूसरेके अनुसार पानीमें हवासे कम। बस प्रकाश का वेग निकालनेका यही महत्व था। इससे यह ठीक तौरसे मालूम हो सकता था कि कौनसा मत सच्चा है और कौनसा झूठा। अस्तु। अरागोके इस प्रस्तावको मान कर फ़िज़ो और फ़ोको दोनों ने साथ ही साथ काम करना आरंभ किया परन्तु अधिक समय तक दोनों का साथ न निभा इस कारण अलग अलग प्रयोग होने आरंभ हो गये।

६ मई सन् १८५० को दोनों ने अपने प्रयोगों के परिणाम (फल) फ्राँसके विज्ञान परिषदके सामने रक्खे। फोको के परिमाण अधिक महत्व पूर्ण थे क्योंकि उन्होंने सिद्ध कर दिया था कि प्रकाश पानीमें धीरे और हवामें तेजीसे चलता है।
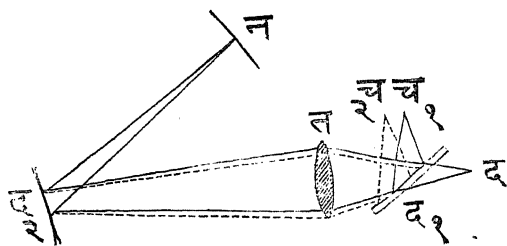
द एक लम्बा छिद्र है जिसमेंसे सूर्यकी किरणें आकर 'द$_1$' शीशेमें होती हुई एक नीरंग ताल त पर पड़ती हैं। 'त' में से निलकर और दर्पण 'द$_2$' से परावर्तित होकर 'न' बिन्दु पर एकत्रित होती हैं। 'न' बिन्दु पर एक नतोदर दर्पण है जिसका कि केन्द्र द$_2$ शीशेके मध्यमें है। इसलिये जब ग से परावर्तित होकर सूर्यकी रश्मियें न पर पड़ती हैं तो फिर अपने पुराने रास्ते पर नतोदार शीशा उन्हें लौटा देता है। वपिस आते समय किरणें शीशेसे परावर्तित हो 'च$_1$' बिन्दु पर एकचित्र हो जाती हैं। 'द$_2$' शीशा बड़ी तेज़ीसे चारों ओर घुमाया जा सकता है अब मान लीलिये कि प्रकाशकी एक किरण 'द$_2$' से परावर्तित होकर न की ओर चली। किरणको 'द$_2$' से न तक जाने और वापिस आनेमें कुछ समय लग जायगा। इसी समयमें शीशा कुछ घूम गया। अब यदि शीशा बांयसे दाहिनी ओर घूमा है तो रश्मियें बजाय 'च$_1$' बिन्दु पर एकत्रित होने के 'च$_2$' एकत्रित होंगी। किरणोंका रास्ता टूटी हुई लकीरोंसे दिखाया गया है। 'च$_1$' और 'च$_2$' के बीचकी दूरी 'द$_2$' के घूमे हुए कोणसे सम्बन्ध रखेगी यह कोण कितने समयमें घूमा गया यह हम 'द$_2$' के वेगसे मालूमकर सकते हैं और इसी समयमें प्रकाश 'द$_2$' से न तक जाकर वापिस आया है। इन बातोंसे तुरन्त प्रकाशका वेग मालूम हो सकता है। फोकोके प्रयोगमें 'द$_2$' और न के बीचकी दूरी २० मीटर थी और 'च$_1$च$_2$'=·०७ शतांश मीटर 'द$_2$' और न के बीचमें पानीका एक नल रखकर फोको ने यह दिखा दिया कि प्रकाश का वेग पानीमें हवासे कम होता है और

$$\frac{\text{प्रकाश का वेग हवामें}}{\text{प्रकाश का वेग पानीमें}} = \frac{\text{हवाकी आवर्जनसंख्या}}{\text{पानीकी आवर्जन संख्या}}$$

(Refractive Index)

इस प्रयोगसे न्यूटन का मत असत्य सिद्ध हुआ फिर बादको इसी प्रयोगमें माइकलसन और न्यूकोम्बने बहुत उन्नतिकी ताल। 'त' 'द' और 'द$_2$' के बीचसे हटाकर 'द$_2$' और 'न' के बीचमें रख दिया। इससे यह दूरी २००० फुट हो गई। द$_2$ और 'द' के बीचकी दूरी ३० फुट थी। दूरी 'च$_1$च$_2$' ·०७ श. मी. से बढ़ कर १३.३ श. मी. हो गई। शीशा 'द$_2$' एक सेकिण्डमें २५६ चक्कर करता था। इन प्रयोगोंका परिणाम था—

प्रकाशका वेग २९९ ८६५००० मीटर प्रति सेकिंड। न्यूकाम्बके प्रयोगोंमें दूरी और भी बढ़ा दी गई और द$_2$ के बजाय एक घनके रूपमें शीशे रखे गये।

अब हम उन प्रयोगोंका जिक्र करेंगे जो सन् १९२६ में किये गये हैं।

ऊपर हम कह चुके हैं कि फोकोकी रीतिसे प्रकाशका वेग जाननेके लिये तीन चीजोंके जानने-की आवश्यकता है। दोनों शीशोंके बीचकी दूरी शीशेके घूमनेकी गति और दूरी 'च$_1$च$_2$' यदि यह किसी तरकीबसे घटा कर दो कर दी जांय तो अधिक सही गति निकल सकती है।

माइकलसनने यही किया। उन्होंने इस प्रकार का इन्तजाम किया कि 'च$_1$च$_2$' नापनेकी आवश्यकता न रही इनके प्रयोगका यन्त्र नीचे दिखाया जाता है।

'अ' एक बारह पहलूवाला बेलन है इसमें बारहों पहलुओं पर दर्पण लगे हैं और यह बड़ी तेजीसे चारों ओर घुमाया जा सकता है। 'दी' एक बिजलीका बहुत तेज़ लेम्प है 'द$_1$, द$_2$,...द$_5$, श' इत्यादि सादे और 'द$_3$' और द$_4$' नतोदर दर्पण हैं। प्रकाश का रास्ता है दी, त अ द$_1$ शद$_3$ द$_4$ द$_5$। यहाँसे वापिस द$_5$,द$_4$,द$_3$,श,द$_2$,अ,ति, न। न' पर आँख रखने से प्रकाशका एक बिन्दु दीख पड़ेगा। अब मान लीजिये कि अ' इत्यादि स्थिर है एक प्रकाश की किरण ऊपर बताये हुए रास्ते पर होती हुई 'न' पर आकर दिखाई देगी। अब मान लीजिये कि 'अ' बड़ी तेज़ीसे घुमाया गया। एक किरण एक दर्पणसे

परावर्तित हो सारा रास्ता नापनेके बाद अ की दूसरी तरफ पहुँची। वहाँ पहुँचने पर देखा कि
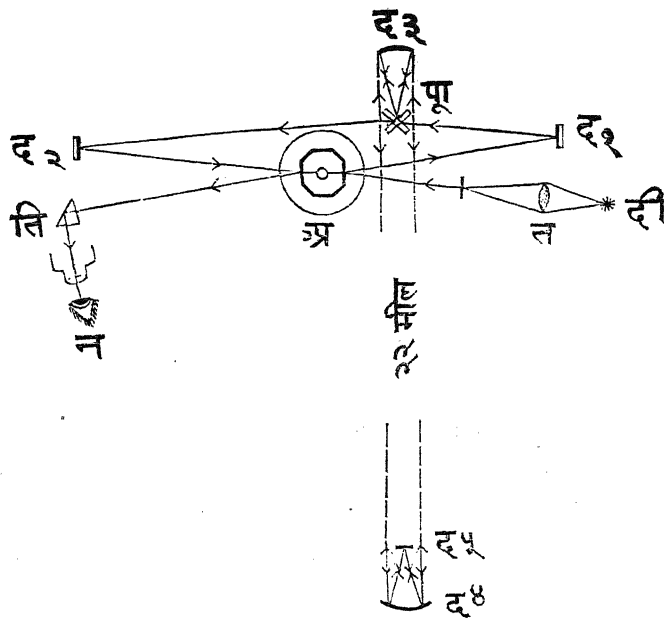
पहले दर्पणके सामने वाला दर्पण तो आगे निकल गया है पर उसकी जगह पासका दर्पण है। यदि प्रकाश को सारे रास्तेपर हो आनेमें ठीक मध्य इतना समय लगा है जितना कि एक दर्पणके बिन्दुके स्थानमें पासके दर्पणका मध्य बिन्दु आनेमें तो 'न' में जो एक प्रकाश बिन्दु दिखाई देता था वह अपनी जगहसे नहीं हटेगा। इसलिये प्रयत्न यह किया जाता है कि 'अ' का वेग इस प्रकार रखा जाय कि प्रकाश बिन्दु अपनी जगहसे न हटे। बस यह वेग और 'द३' और 'द४' के बीचकी दूरी मालूम होने पर प्रकाश का वेग निकाला जा सकता है।

प्रयोगमें दी एक बहुत तेज़लेम्प 'द१'। त माउन्ट विलसन नामकी एक पहाड़ी और द४' माउन्ट सन अन्तानियो। इनके बीचकी दूरी २२ मील थी। संयुक्त राज्य अमेरिकाके पैमायशके महकमेने यह दूरी बहुत समय खर्च करके निकाली। बेलन 'अ' दबी हुई हवा से घुमाया जाता था और ३५० चक्कर प्रति सेकिंड लगता था। इस प्रयोगसे माइकिलसन ने प्रकाश का वेग २९९७९६००० मीटर प्रति सेकिंड निकाला।

अभी तक किसी भारतीय ने इस क्षेत्रमें पदार्पण नहीं किया था। परन्तु हर्षका विषय है कि हाल ही में प्रकाशित हुआ है कि कलकत्ता विश्व विद्यालयके भौतिक विज्ञानके आचार्य प्रोफेसर मित्र बेतारके कपाटों (valves) की सहायता से प्रकाशका वेग निकालनेका प्रयत्न कर रहे हैं। फिज़ोके प्रयोगमें प्रकाशकी रश्मियोंको एक सेकिंड में कई बार रोका जाता है। यदि यह टिमटिमाहट और बढ़ा दी जाय अर्थात् यदिप्रकाशकी किरणें एक सेकिंडमें अधिक बार रोकी जांय तो अधिक अच्छे परिणाम आनेकी संभावना है। यदि नाइट्रो-बानजावीन (Nitro Benzene) में से प्रकाश को भेजा जावे तो यह एक खास स्थितिमें प्रकाशको अपनेमें से न निकलने देगा। परन्तु विद्युतीय क्षेत्र लगा देनेके बाद यह प्रकाश को निकलने देगा। यदि विद्युतीय क्षेत्र एक सेकिंड में कई लाख बार बदला जा सके तो प्रकाश की किरण भी एक सेकिंडमें कई लाख बार टिमटिमायगी। इसका नाम 'कर असर' (Kerr effect) है इसीको काममें लाकर प्रोफेसर मित्र प्रकाश का वेग निकालना चाहते हैं। विद्युतीय क्षेत्र बेतारके कपाटों (valves) की सहायतासे बदला जायगा। प्रयोग अभी नहीं किया गया है केवल यंत्र बन रहा है। आशा है कि आपको इस अभूत पूर्व प्रयोग में पूर्ण सफलता मिलेगी।

अब प्रकाशके वेग जाननेका महत्व क्या है? यह हम ऊपर कह चुके हैं कि न्यूटनके मत और तरंगसिद्धान्तके बीचमें निर्णय करने का भार प्रकाशके वेग पर ही आ पड़ा था।

फिर माइकलसनके मतानुसार प्रकाशके वेगकी सहायता से पैमायशमें बहुत सहायता मिलनेकी संभावना है। और आपेक्षावादके (Relativity) सिद्धान्तोंके अनुसार किसी वस्तुकी गति प्रकाशकी गतिसे अधिक नहीं हो सकती। इस कारण प्रकाश की गतिको और भी महत्व मिल गया है। परन्तु क्या इतने वैज्ञानिकोंने सिर्फ इसी कारण इतना समय इसमें लगाया? यह बात नहीं है।

वैज्ञानिक सदासे एक बच्चेके समान रहा है। एक अबोध शिशुका प्रधान गुण है उत्सुकता। और यही गुण संसारमें ज्ञानवृद्धि का कारण हुआ है। यदि एक बच्चा किसी वस्तुका नाम या गुण जाननेको उत्सुक है तो क्या वह इस ज्ञानसे किसी लाभकी आशा कर रहा है? नहीं उसका तो स्वभाव यही है कि छिपी हुई अथवा अज्ञात वस्तुओंको ढूंढ़ निकालना। इसीमें उसे आनन्द आता है। यही अवस्था वैज्ञानिककी है। सारी प्रकृति रहस्यमय है। वैज्ञानिक आश्चर्य चकित नेत्रों से प्रकृति के इस रहस्य को देखते-देखते उत्सुकता से अधीर हो उठता है। प्राकृतिक वस्तुओंका तात्विक ज्ञान प्राप्त करनाही उसका अन्तिम ध्येय हो जाता है। प्रत्येक प्रयोगसे लाभकी आशा करना वैज्ञानिकका काम नहीं है।

सिकंदर के बारेमें एक किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि अपने पिताको देश जीतते देख वह रो उठा था। इस कारण कि मेरे लिये पृथ्वी पर कोई देश जीतने को नहीं रह जायगा। वैज्ञानिक को इसकी भी आशंका नहीं है। प्रकृतिका रहस्य ज्यों ज्यों सुलझाओ और उलझता जाता है। प्रकृति रहस्यमय है और रहेगी।

बनावटी नीलका व्यवसाय

(ले० श्री जटाशंकर मिश्र, बी. एस सी)

ल भारतवर्ष और चीनके इण्डिगोफेरा टिंक्टोरिया तथा आइसेटिस टिंक्टोरिया पौधोंमें पाया जाता है। भारतवर्षमें इसका व्यवसाय बहुत दिनोंसे होता आया है। पर अब थोड़े दिनोंसे इसके कारखाने बन्द होने लगे हैं क्यों कि जर्मन आदि देशवालोंने कृत्रिम नील अत्यन्त सस्ता वेचना आरम्भ कर दिया है। कृत्रिम नील बनानेकी विधि आगे दी जावेगी। नीलके पौधोंसे नील इस प्रकार प्राप्त किया जाता है कि पौधेको पानीमें अच्छी तरह कुचल डालते हैं और रसको बाहर हवामें थोड़ी देर तक खुला रख छोड़ते हैं। पौधेमें एक प्रकारका प्रेरकजीव (Enzyme) होता है जिसके द्वारा पौधेमें स्थित नीलजन (indican) द्राक्षशर्करा और नीलोषिल (indoxyl) में परिवर्तित हो जाता हैं। वायुमंडलका ओषजन नीलोषिलको ओषदीकृत करके नील बना देता है। इस विधिसे तो नील प्राकृतिक पदार्थोंसे ही मिल सकता है।

रसायनशास्त्रके वैज्ञानिकोंने बहुत पहिलेसे नीलको प्रयोगशालामें ही रासायनिक पदार्थों द्वारा तैय्यार करनेका विचार किया था, लेकिन सन् १८८० तक कोई प्रयत्न सफल न हुआ। १८८० में बायर साहबने पू० नोष-दिव्यील अम्रोलिकाम्लसे नीलके संश्लेषण करनेकी विधि निकाली। १९ मार्च १८८०में बायर साहेबने नील बनानेका पेटेन्ट लिया। इस खोजके बीस वर्ष बाद तक बराबर कठिन परिश्रम करनेका यह परिणाम हुआ कि खाली जर्मनी हीमें १५२ पेटेन्ट खरीदे गये और नीलका भाव वनस्पतिसे निकाले हुए नीलके दामके बराबर आगया।

१८८१में दाम प्राकृतिक वस्तुसे भी अधिक घट गया और थोड़े बहुत रुईके सामानभी इस नीलसे छापे जाने लगे।

१८८२में बेअर साहबने पू० नोषबानजावमग्नानाद्र (O-nitro-benzaldeyde) से ही नील बनाने का प्रयत्न किया था परन्तु इन दोनों उपायोंमें टोल्वीनकी आवश्यकता होती थी। टोल्वीन कम मिलता था और अधिक दाम भी लगते थे, इसलिये अब लोगोंको किसी दूसरी वस्तुसे नील बनानेकी चिन्ता करनी पड़ी। १८६० में ह्यूमान साहबने दिव्यील मधुन (phenylglycine) से नीलके बनानेकी विधि निकाली इस वस्तुके निमित्त नीलिन्, सिरकाम्ल, हरिन्, और क्षारकी आवश्यकता पड़ती थी जो सब पदार्थ बहुत सहज और सस्तेमें ही मिल जाया करते थे।

नीलिन् हर-सिरकाम्लके साथ (जो सिरकाम्ल और हरिन्के संयोगसे बनाया जाता है) संयुक्त करनेसे दिव्यील मधुन बनाया जाता है।

—नोउ$_2$

+ हकउ$_2$कओओउ

नीलिन्

—नोउ$_2$ कउ$_2$. कओओउ
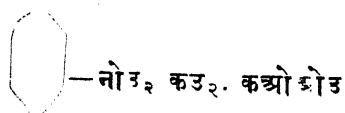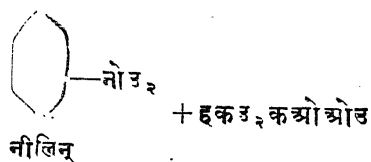
दिव्यीलमधुन

इस पदार्थ पर क्षार गन्धकाम्लका प्रयोग करनेसे एक अणु जल निकल जाता है और नीलोषिल शेष रह जाता है।

क ओ

कउ$_2$

नोउ
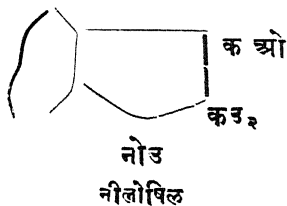
नीलोषिल

नीलोषिलको ओषदीकृत करनेसे नील तैय्यार हो गया।

नील
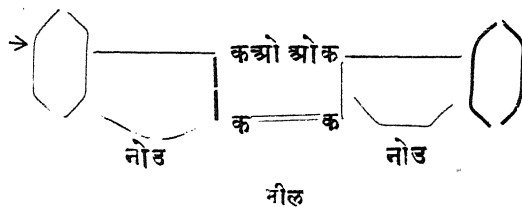
परन्तु यह विदित हुआ कि इस रीतिसे नील बहुत कम बन पाता था। तदुपरान्त ह्यूमान साहबने नीलिन्के बदले अंगारनीकाम्लका उपयोग करना निश्चित किया जिससे माल अधिक मिलने लगा और यह विधि व्यापारिक रूप पर संचालितकी गई। सात साल तक बराबर देख भाल करने पर यह फैक्टरी संसारके और रंग बनानेवाली फैक्टरियोंका सामना कर सकी। अंगारनीलिकाम्ल नप्थलीनसे बनाया गया। नप्थलीन कोलतारसे बानजावीन और टोल्वीन तैयार करते समय निकलता था और उसकी खपतका कोई उपाय न होनेसे वह बहुतही सस्ता बिकता था। नप्थलीनको ओषदीकृत करनेके लिये पहिले रागिकाम्लका प्रयोग करते थे परन्तु रागिकाम्ल बहुत मँहगी वस्तु निकली। उसी समय जब कि यह समस्या व्यापारियोंके सामने थी, बेडेन साहबने सस्ता गन्धकाम्ल बनानेकी सीस गृहविधि (लेड चैम्बर विधि) प्रकाशितकी। इस प्रकार नप्थलीनको ओषदीकृत करनेमें जो गन्धक द्विओषिद निकलता था वह फिर गन्धकाम्ल बनानेके काममें लाया जाने लगा। इस खपतसे दाम और सस्ता पड़ने लगा। गन्धकाम्लके साथ पारदिक गन्धेतका भी प्रयोग करनेसे ओषदीकरण औरभी अधिक शीघ्र हो सकता है, यह बात अनायास मालूम हो गई। एक प्रयोगमें ओषदीकरण लोहेके प्यालेमें किया जा रहा था जिसमें कि तापमापकसे ताप देखा जारहा था। तापमापकको चलाते समय वह अचानक टूट गया और बड़ी जोरकी प्रक्रिया आरम्भ होगई। अन्तमें यह पता लगा कि इच्छित वस्तु अधिक प्राप्त हुई। इसी अवसर पर पारदके उत्प्रेरक प्रभावका पता लगा।

अंगार नीलिकाम्लके उपरान्त हर सिरकाम्ल तैयार करनेके लिये सस्ते भावसे हरिन् और सिर-

काम्ल प्राप्त करनेकी खोज आवश्यक हुई। सिरकाम्ल तो लकड़ीके स्रवणसे आसानीसे मिल सकता है। हरिन् बनानेका साधारण उपाय ठीक न था। बेलडन साहब की विधिके अनुसार बनानेसे दाम बहुत खर्च करना पड़ता था और डीकन साहबका हरिन् बहुत हलका था। अन्तमें विद्युत् विश्लेषण विधिका उपयोग किया गया। उपजको द्रवीभूत करके और शुद्धकर लेते थे।

इस प्रकार नील बनाया जाने लगा और दाम इतना कम हो गया कि प्राकृतिक नीलके भावका एक चौथाई आ गया।

समस्त क्रियाका सारांश यहाँ दिया जाता है।

दिव्यील मधुन-पू कर्बोषिलिकाम्ल

नीनोषित कर्बोषिलिकाम्ल नोलोषित

↓ ओषदीकृत करके

नील
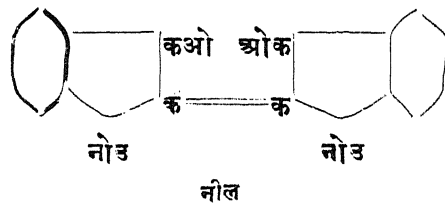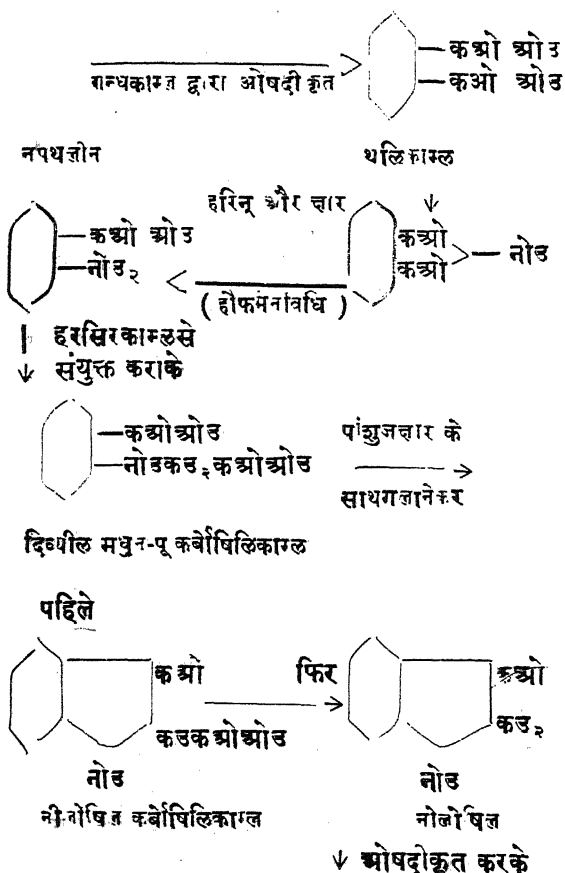
ह्यूमान साहेबकी विधिके उपरान्त और बहुतसे प्रयत्न नील बनानेके किये गये हैं परन्तु ह्यूमानसाहब की विधि अबतक सबसे सरल सिद्ध हुई है। उसमें थोड़ा सुधार अवश्य किया गया है।

अंगार नीलिकाम्लको हरसिरकाम्ल द्वारा दिव्यील मधुन-पू-कर्बोषोलिकाम्लमें परिवर्तित करनेकी विधिमें कुछ त्रुटि प्रगट हुई क्योंकि कुछ तो कर्बनद्विओषिद बन जानेके कारण और कुछ द्विसिरकाम्लके यौगिक बन जानेके कारण उपजकम हो जाती है।

इस हानिसे बचनेके विचारसे मिलर और प्लोइ-कोल साहबके मतानुसार वेनडर साहबने अंगार-नीलिकाम्लके उदहरिदके अम्लीय घोल पर पहिले पांशुज श्यामिद और फिर पिपील मद्यानार्द्रका प्रयोग किया जिससे दिव्यील मधुन कर्बोषिलिकाम्लका नोषिल पृथक् होगया।

$$\text{क}_6\text{उ}_4 < {\text{कओओउ} \atop \text{नोउ}_2} + \text{कउ}_2\text{ओ} \rightarrow \text{क}_6\text{उ}_4 < {\text{कओओउ} \atop \text{नो=कउ}_2}$$

$$+ \text{उकनो} \rightarrow \text{क}_6\text{उ}_4 < {\text{कओओउ} \atop \text{नोउ(कनो)कउ}_2}$$
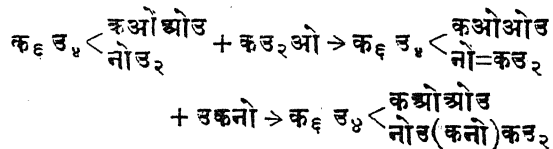
यह नोषिल सहजही उदविश्लेषित किया जा सकता है। आजकल फिर ह्यूमान साहबकी पहिली विधिका उपयोग किया जाने लगा है। अब नीलिन्के ऊपर हरसिरकाम्लका प्रयोग लोहिक ओषिद्की उपस्थितिमें किया जाता है जिससे मधुनका अनघुल लोहिक लवण बनकर अलग निकल जाता है और सिरकाम्लके विशेष आक्रमणसे निवृत हो जाता है।

मधुनसे नीलोषिल यौगिक बनानेके लिये ह्यूमान साहबने पांशुजक्षारके साथ गलानेसे काम लिया परन्तु इस कार्य्यके लिये ३००°—३५०° शका ताप आवश्यक

है और उपज भी कमही आती है। इस विषयमें सब से उत्तम विचार सैन्धकामिद् मिला देनेका है। सैन्धकामिद् महंगी तो पड़ती है परन्तु लाभदायक इतनी है कि हुइस्ट साहबका रंग बनानेका कारखाना जैसी बड़ी फ़ैक्टरियाँ भी इसका उपयोग करती हैं और वैज्ञानिकोंके अनुसार पर्थिवक्षार सैन्धकओषिद मगनीस नोषिद् और खटिक कर्बिद् इत्यादि भी लाभकारी हैं। पांशुजक्षारके साथ गलानेकी क्रियामें मूल बात यह है कि जल बिलकुल न रहे। खाली पांशुज क्षारके बदले पांशुज और सैन्धकक्षार अणुमात्रामें मिश्रित करके प्रयुक्त किये जा सकते हैं। यह मिश्रण शीघ्र गल जानेके कारण उपयोगी होता है। यह भी ज्ञात हुआ है कि गले मिश्रणके भीतर अमोनियाकी धारा प्रवाहित करनेसे उपज (yield) बढ़ जाती है और उद्जन, नोषजनकोलगैसे जैसे वायव्य पदार्थ भी लाभकारी हैं।

एक दूसरी ही नई विधि सैन्डमेयर साहबकी है। उन्होंने गन्धकोकर्ब नीलिदके जल-मद्यिक घोलको पांशुज श्यामिद् और भस्मिक सीस कर्बनेतके साथ ५०°—६० तक गरम किया जिससे उद्जन गन्धिद निकलकर कर्ब-द्वि-दिव्यील-इमिद तैय्यार हो गया। यह फिर प्रूशिकाम्लसे मिल गया।

क$_६$उ$_५$नोउ
क$_६$उ$_५$नोउ >कग → क$_६$उ$_५$नो
क$_६$उ$_५$नो >क ↓

गन्धको कर्ब नीलिद   कर्बद्विदिव्यील इमिद

क$_६$उ$_५$नोउ
→ क$_६$उ$_५$ नो >क.कनो
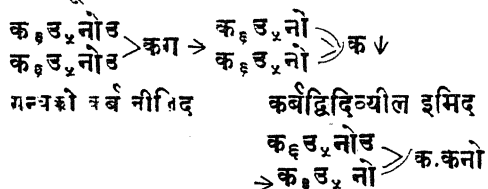
इस पदार्थ को पीत अमोनियम गन्धिद् के साथ दो दिन तक २५°—३५° पर रखनेसे यह गन्धको-अमिदमें परिवर्तित हो जाता है।

क$_६$उ$_५$नोउ
क$_६$उ$_५$नोउ >क.कग.नोउ$_२$
गन्धकोअमिद
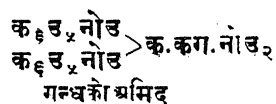
यह गन्धको-अमिद् यदि ६५°—११०°के ताप पर तीव्र गन्धकाम्लके साथ गरम किया जाय तो गन्धक-द्विओषिद निकल जाता है और क-आइसेटिन-नीलिद की उत्पत्ति होती है।

नोउ$_२$.कग
क$_६$उ$_५$.नो >कनोउ क$_६$उ$_५$ + २ ओ

↓

क$_६$उ$_४$ <कओ, नो> क.नोउ.क$_६$उ$_५$ + नोउ$_३$ + गओ$_२$
आइसेटिन नीलिद
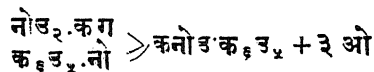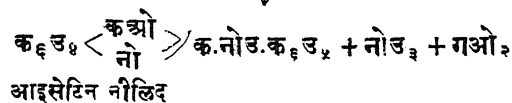
हलके अम्लके साथ गरम करनेसे यह नीलिन् और आइसेटिनमें विभाजित हो जाता है। परन्तु पीत अमोनियम् गन्धिदके साथ गर्म करनेसे शीघ्रही नील तैयार हो जाता है। वस्तुतः क-आइसेटिन नीलिद को तीव्र गन्धकाम्लमें घोलकर धीरे धीरे जलमें बह जाने देते हैं और साथ ही साथ उसीमें सैन्धक अर्ध-गन्धिदका हलका घोलभी डालते जाते हैं। क-गन्धको आइसेटिन अवक्षेपित हो जाता है। उस पर क्षारीय घोलका प्रयोग करनेसे नील और गंधकका मिश्रण मिलता है।

यह क्रिया कुछ कठिन अवश्य थी परन्तु बनाने की सामिग्री इतनी सस्ती थीं और हर एक भाग में उपज इतनी अच्छी आती थी कि ह्यूमान साहबके अनुसार काम करनेवाली फ़ैक्टरियों पर भी कुछ धक्का लगनेकी सम्भावना हुई। पहिले पहिल इस बनावटी नील का प्रचार करनेमें बड़ी बड़ी असुविधायें उपस्थित हुईं। लोगों का मत था कि यह बनावटी पदार्थ नकली है और प्राकृतिक नीलके गुण इसमें नहीं हो सकते। धीरे धीरे यह शंका दूर हुई और बनावटी नीलकी शुद्धता और उपयोगिता का विश्वास हुआ, यह विदित हुआ कि इस नीलसे रंगाई बहुत सरल हो जाती हैं और दाम भी कम पड़ता है। सन् १८६६ ई० में नील का भाव ६०० पौण्ड फी टन था। सन् १६०० में घट कर २५० पौण्ड हो गया और १९०५ तक ११५ पौण्ड हो गया। प्राकृतिक नील का भाव ज्यादा था। १६०० में ५,००० नील दुनिया भरमें बना परन्तु १६०५ में खाली जर्मनी ही ने ११,००० टन से अधिक नील बाहर

भेजा, लगभग कुल तैयारी २०,००० टनकी हुई होगी।

नीलका रंग गाढ़ा नीला होता है। रगड़नेसे तांबेके समान लाल परावर्त्तन होता है। इसमें कोई गन्ध अथवा स्वाद नहीं होता। यह जल क्षार, अम्ल, मद्य एवं ज्वलकमें नहीं घुलता परन्तु नीलिन्, पिघले पैराफीन इत्यादि कार्बनिक घोलोंमें घुल जाता है और ठंडा होने पर फिर रवा बनकर पृथक् हो जाता है।

नीलसे रंगनेके दो उपाय हैं। या तो इसे गन्धकाम्ल में गरम करके घोल कर द्विगन्धोनिकाम्ल बना डालते हैं जो जलमें घुल जानेके कारण साधारण रूपसे रंगनेके काम आता है, या इसका अवकरण करके श्वेत नील बना डालते हैं। यह क्रिया द्राक्षशर्करा द्वारा क्षारीय घोलमें की जाती है। रंगनेका कपड़ा इसमें डुबो दिया जाता है। वायु मण्डलका ओषजन श्वेत नीलको सूतके ऊपर ओषदीकृत कर देता है।

क (ओउ)   क (ओउ)
क$_६$उ$_४$<   >क—क<   >क$_६$उ$_४$
नोउ   नोउ

श्वेत नील

↓

कओ   कओ
क$_६$उ$_४$<   >क = क<   >क$_६$उ$_४$
नोउ   नोउ

नील
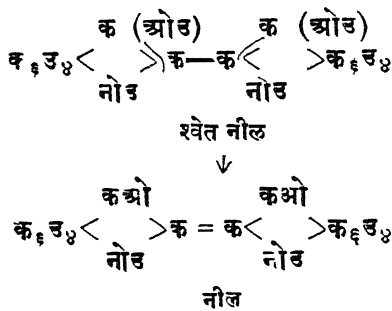
प्रकाशका सीधी रेखा में चलना

(ले० श्री प्रेमनारायण टण्डन)

प्रकाश सीधी रेखामें चलता है। यह सब मनुष्य अपने दैनिक अभ्याससे जानते हैं —एक अन्धेरे कमरेमें यदि सूर्य्यकी किरणें एक छोटे छिद्रमें होकर आवे, तो उनका पथ एक रेखा होता है। जब कभी हम किसी वस्तु को देखते हैं तो हम उस रेखामें देखते हैं जो कि उस वस्तुसे हमारे नेत्रों तक खींची जाती है। और यदि हम एक मोम बत्तीके सन्मुख एक परदा रखदें और बत्तीकी शिखा से एक रेखा परदे को छूती हुइ खेंचे तो वह रेखा परदेकी परछाईकी सीमापर काटती है। इससे यह मालूम हो जाता है कि 'प्रकाश' साधारणतया रेखाकी सीधमें चलता है। गोल वस्तुकी परछाई गोल होती है—चौखूंडो की चौखूंडी—इनसे भी यही सिद्ध होता है कि प्रकाश रेखामें ही चलता है।
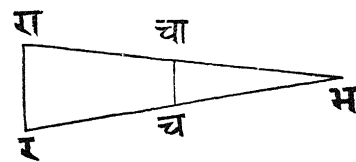
मान लीजिए कि 'भ' एक बिन्दू है जिससे 'प्रकाश' चलता है। और 'चचा' एक उसके सामने एक परदा है। और 'ररा' एक दूसरा परदा है जिस पर पहिले परदेकी परछाई पड़ती है। यदि हम रेखा 'भ चारा' को खेंचे तो यह दूसरे परदेको 'रा' पर काटेगी। इसी प्रकार यदि हम 'भच' को खेंचे तो यह दूसरे परदे को 'र' पर काटेगी—

'ररा' 'चचा' का परछाई होगी—

क्योंकि दोनों त्रिकोण 'भचाच' 'भरार' एक से हैं

$$\frac{\text{ररा}}{\text{चचा}} = \frac{\text{भरा}}{\text{भचा}}$$

$$\text{रग} = \frac{\text{भग}}{\text{भचा}} \times \text{चग}$$

यदि हमें वस्तु की लम्बाई, और 'भचा' व 'भग' मालूम हो तो हम उस वस्तुकी परछाईकी लम्बाई निकाल सकते हैं।

मान लीजिये कि 'र' से प्रकाश निकलता है। 'च' एक गोल वस्तु है और 'उऊ' एक परदा है। 'भाई' की परछाई 'उऊ' पर पड़ती है। 'अ' से यदि हम दो रेखाए' 'अआछ' और 'अईऊ' खेंचे, तो परदेका 'छऊ' भाग 'अ' प्रकाश नहीं पा सकता। इसी प्रकार यदि हम 'इ' की परछाई शंकु खेंचे, तो 'उछा' भाग में 'इ' से प्रकश नहीं पड़ता। चित्र (न० २) से यह मालूम हो जाता है कि 'छछा' भाग पर प्रकाश नहीं पड़ती है। और इस कारण हम इस भागको पूर्ण छाया कहते हैं। परन्तु 'उछ' और 'छऊ' भागोंमें 'र' के कुछ भागसे प्रकाश अवश्य जाता है और इस कारण 'उछ' और 'छऊ' 'छछा' भागसे कुछ अधिक प्रकाशित हैं। और 'उछ' और 'छछा' भागोंको हम खंडछाया कहते हैं।

यदि हम परदे को 'च' के निकट लेजावें तो 'छछा' बढ़ जायेगा और 'उछ' और 'छाऊ' भागघट जायेंगे—इसी प्रकार यदि हम परदेको 'च' से दूर ले जावें तो 'छछा' घट जावेगा और दूसरे दोनों बढ़ जावेंगे।

यदि अब हम 'र' को सूर्य्य मान लें और 'च' को हम पृथ्वी मानलें और परदे को चन्द्रमा की सतह मानें तो जैसे ही चन्द्रमा पृथ्वी की परछाई शंकु में प्रवेश है वैसे ही चन्द्र ग्रहण शुरू हो जाता है।

और यदि हम 'च' को चन्द्रमा मानलें और परदेको पृथ्वीकी सतह मान लें तो जैसे ही चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य्यकी बीचमें आ जाता है वैसे ही सूर्य्य गृहण लग जाता है।

बिन्दु छिद्र केमरा

यदि हम एक लकड़ीके सन्दूकके अन्दरके भागको काला करदे और उसकी एक दीवारमें एक छोटा छिद्र करदें, और छिद्रकी सामनेकी दीवार के स्थानमें घिसा हुआ शीशेका टुकड़ा लगादें, तो हमको एक छिद्र बिन्दू केमरा मिल जायेगा यदि छिद्रके समाने हम एक मोमबत्ती 'अब' रखदें तो शीशे पर 'अब' की उलटी तसबीर आ जायेगी—मोमबत्तीके प्रत्येक भाग से किरणें खेंचने पर 'हम' को मालूम हो जाता है कि तसबीर क्यों उलटी होती है। मोमबत्ती के स्थान में यदि कोई और वस्तु रखदी जावे तो उस की भी तसबीर आजायगी - और हम इस केमेरेकी सहायतासे उसकी तसबीर या चित्र खेंच सकते हैं। चित्र उलटा होता है और तीक्ष्ण चित्रके लिये परदा आगे पीछे हटानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। और साथ ही साथ इस एक बहुत बड़े भाग की तसबीर खेंची जा सकती है।

इस पृष्ठ का चित्र, २१६ पृष्ठ पर देखिये

बानजाविक मद्य, मद्यानार्द्र और कीतोन

(Aromatic alcohols, aldehydes and ketones)

(ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी)

यह कहा जा चुका है कि यदि बानजावीन केन्द्रके किसी उद्‌जनको उदौषिल मूलसे स्थापित किया जायगा तो दिव्योल यौगिक मिलेंगे जिनमें अम्लीय गुण होते हैं। पर यदि किसी बानजाविक उदकर्बनकी पार्श्वश्रेणीका कोई उद्‌जन यदि उदौषिलों द्वारा स्थापित किया जायगा तो बानजाविक मद्य मिलेंगे जिनमें साधारण मद्योंके समान गुण होते हैं। इन मद्योंमें कर्बनकी अधिक मात्रा रहनेके कारण मद्यमज्जिक मद्योंकी अपेक्षा कम घुलनशील है। साधारण मद्योंके समान ओषदीकृत होकर ये कीतोन, मद्यानार्द्र और अम्लोंमें परिणत किये जा सकते हैं। ये अम्लोंके साथ सम्मेल भी बनाते हैं। बानजाविक मद्योंमें बानजील मद्य सबसे अधिक उपयोगी है। उसीका वर्णन यहाँ दिया जायगा। कुछ मद्योंके नाम क्वथनांक सहित यहाँ दिये जाते हैं।

बानजील मद्य—$क_{६}उ_{५}कउ_{२}ओउ$—क्व० २०४°श

दिव्यील ज्वलील मद्य—$क_{६}उ_{५}कउ_{२}कउ_{२}ओउ$—क्व० २२०°श

दिव्यील दारील कर्बिनोल—$क_{६}उ_{८}कउ (ओउ) कउ_{३}$—क्व० २०३°श

बानजील मद्य—(Benzyl alcohol)—$क_{६}उ_{५} कउ_{२} ओउ$—यह मद्य क्रुसोलका समरूपी है।

$कउ_{३} क_{६} उ_{४} ओउ$ — क्रुसोल

$क_{६} उ_{५} कउ_{२} ओउ$ — बानजील मद्य

यह नीरंग द्रव है जिसमें हलकी सुरभित गन्ध होती है। यह पेरू और टोलू राल (बालसम) में बानजाविक और दालचीनिक सम्मेलोंके रूपमें पाया जाता है। बानजील हरिद्‌को पांशुज कर्बनेतके घोलके साथ उबाल कर यह आसानीसे बनाया जा सकता है।

$$क_{६} उ_{५} कउ_{२} ह + पां_{२} कओ_{३} + उ_{२} ओ$$
$$= क_{६} उ_{५} कउ_{२} (ओउ) + २पांह + कओ_{२}$$

बानजील मद्य

यह ज्वलकमें घुलनशील है। बानजील मद्यानार्द्र पर पांशुजक्षारके जलीय घोलका प्रभाव डालनेसे भी यह मिल सकता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार हैः—

$$२क_{६} उ_{५} कउ ओ + पां ओउ$$
$$= क_{६} उ_{५} कउ_{२} ओउ + क_{६} उ_{५} कओ ओ पां$$

इस प्रकार प्रक्रियामें बानजाव मद्यानार्द्रके दो अणुओंका उपयोग होता है। एक अणु अवकृत होकर मद्यमें परिणत हो जाता है और दूसरा ओषदीकृत होकर अम्ल में।

इसका द्रवांक २०४°श है। यह जलमें काफी घुलनशील है। तीव्र उद्‌हरिकाम्लके साथ उबालनेसे यह बानजील हरिद्‌में परिणत हो जाता है। तीव्र नोषिकाम्ल डालनेसे यह गरम हो उठता है और नोषस वाष्पें निकलने लगती हैं और बानजाव-मद्यानार्द्र बन जाता है।

$$२ क_{६} उ_{५} कउ_{२} ओउ + २ उनोओ_{३}$$
$$= २ क_{६} उ_{५} कउओ + ३उ_{२} ओ + नो_{२} ओ_{३}$$

बानजाव मद्यानार्द्र

बानजाव मद्यानार्द्र (Benzaldehyde)

$क_{६}उ_{५} कउओ$

इस समूहके मद्यानार्द्रों में बानजाव मद्यानार्द्र सबसे अधिक मुख्य है। इसे कड़वे बादामों का तैल भी कहते हैं। कड़वे बादामोंमें यह द्राक्षोसिद (Glucoside) अमिगडेलिनके रूपमें विद्यमान रहता है। व्हूलरने इसकी सर्व प्रथम परीक्षा की थी। अमिगडेलिनको हलके अम्लोंके साथ उबालनेसे उद्‌विश्लेषणकी प्रक्रिया द्वारा बानजावमद्यानार्द्र, उद्‌श्यामिकाम्ल एवं द्राक्ष-शर्करा प्राप्त होते हैं। इस द्राक्षो-

सिरमें इमल्सिन नामक प्रेरकजीव भी रहता है अतः यदि अमिगडेलिन को थोड़े जलके साथ खरल में पीसा जाय तो प्रेरक जीवकी प्रेरणासे भी उसी प्रकार उद्विश्लेषण हो जायगा जैसा कि अम्लके साथ। मिश्रणमें से बानजाव मद्यानाद्रं वाष्प स्रवण द्वारा पृथक् किया जा सकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि बानजील मद्यको तीव्र नोषिकाम्ल द्वारा ओषदीकृत करनेसे भी बानजाव मद्यानाद्रं प्राप्त हो सकता है। खटिक बानजावेत और खटिक पिपीलेतके मिश्रणको स्रवित करनेसे भी यह मिल सकता है:—

क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओ ओ ख′
　　　　=क$_{६}$ उ$_{५}$ क उओ + खकओ$_{३}$
उक ओ ओ ख′　　　बानजाव मद्यानाद्रं

बानजल हरिद, क$_{६}$ उ$_{५}$ कउह$_{२}$, को जो टोल्वीन और हरिन्के प्रभावसे बनता है, जल अथवा गन्धकाम्ल द्वारा उबालनेसे भी यह मिल सकता है—

क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ ह$_{२}$ + उ$_{२}$ ओ=क$_{६}$ उ$_{५}$कउ ओ + २ उ ह

टोल्वीनको रागील हरिद, रा ओ$_{२}$ ह$_{२}$ द्वारा प्रभावित करनेसे भी यह मिल सकता है। इस प्रक्रियाको इटार्ड प्रक्रिया कहते हैं, बानजील हरिदको ताम्रिक नोषेत द्वारा ओषदीकृत करके भी यह बनाया जा सकता है।

२ क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ$_{२}$ ह + ता (नोओ$_{३}$)$_{२}$
　　= २ क$_{६}$ उ$_{५}$ कउओ + ताह$_{२}$ + २ उनोओ$_{२}$

बानजाव मद्यानाद्रंके गुण—यह नीरंग द्रव है जिसमें कड़वे बादामोंकी गन्ध होती है। वायुमें यह धीरे-धीरे ओषदीकृत हो जाता है और बानजाविकाम्ल मिलता है। इसीलिये इसकी बोतलकी पैंदीमें और डाट के पास बानजाविकाम्ल के रवे बहुधा मिलेंगे। इस मद्यानाद्रंमें साधारण मद्यानाद्रोंके सभी गुण विद्यमान हैं। यह शिफ-परीक्षा द्वारा पहचाना जा सकता है। शिफ प्रक्रियामें मेजण्टा घोल जो गन्धक द्विओषिद द्वारा नीरंग कर लिया जाता है प्रयुक्त होता है। इस घोलमें मद्यानाद्रं डालनेसे बैंजनीरंग मिलेगा। यह अमोनिया-रजत नोषेत घोलको भी अवकृत कर देता है और रजत दर्पण उपलब्ध होता है। सैन्धक अर्ध गन्धितके साथ यह रवेदार अर्ध गन्धित यौगिक देता है।

क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ ओ + सैउ गओ$_{३}$
　　= क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ (ओउ) गओ$_{३}$ सै

उदश्यामिकाम्लके साथ यह बानजाव मद्यानाद्रं-श्यामउदिन यौगिक होता है:—

क$_{६}$उ$_{५}$ कउओ + उकनो
　　= क$_{६}$ उ$_{५}$ कउ (ओउ) कनो
　　बानजावमद्यानाद्रं श्याम उदिन

इसी प्रकार साधारण मद्यानाद्रोंके समान उदौषिलामिनके साथ बानजाव मद्यानोषिम यौगिक देता है।

क$_{६}$ उ$_{५}$ कउओ + नोउ$_{२}$ ओउ
= क$_{६}$ उ$_{५}$ कउ : नोओउ + उ$_{२}$ ओ

बानजाव मद्यानोषिम

द्विदील उदाजीविनके साथ द्विदील उदाजीवोन देता है।

क$_{६}$उ$_{५}$ क उ ओ + नोउ$_{२}$ नो उक$_{६}$उ$_{५}$
= क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ : नो नोउ क$_{६}$ उ$_{५}$ + उ$_{२}$ ओ

इन गुणोंमें बानजाव मद्यानाद्रं साधारण मद्यानाद्रोंके समान है। पर अमोनिया, दाहक क्षार और पांशुज श्यामिद द्वारा इसमें विशेष प्रक्रियायें होती हैं जो अन्य मद्यानाद्रोंमें नहीं पायी जाती हैं। पांशुज उदौषिदके साथ यह बानजील मद्य और बानजाविकाम्लका पांशुज लवण देता है जैसा कि पहले कहा चुका है।

२ क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ ओ + पां ओ उ = क$_{६}$ उ$_{५}$ कउ$_{२}$ ओउ + क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओओ पां

यदि तीव्र अमोनियाको बानजाव मद्यानाद्र में डालें तो रवेदार पदार्थ अवक्षेपित हो जाता है जो उद्बानजावामिद कहलाता।

३ क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ ओ + २ नोउ$_{३}$
= (क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ)$_{३}$ नो$_{२}$ + ३ उ$_{२}$ ओ।
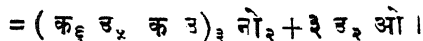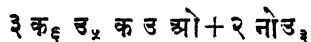
उद्बानजावामिद

अमोनियाके साथ अन्य मद्यानाद्र 'मद्यानाद्र अमोनिया' र कउ (ओउ) नोउ$_{२}$, यौगिक देते हैं। बानजाव मद्यानाद्र पांशुज श्यामिदके जल-मद्यिक घोलके संसर्गसे बानजोइन (Benzoin) यौगिक देता है। इस प्रक्रियामें बानजाव मद्यानाद्रके दो अणु परस्पर संयुक्त हो जाते हैं।

क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ ओ = क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ (ओउ)
क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ ओ   क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओ
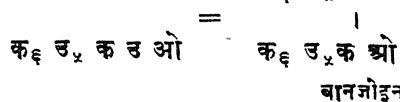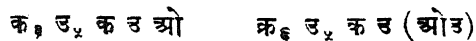
बानजोइन

पांशुज श्यामिद इस प्रकारके संयोगमें केवल सहायता मात्र देता है। बानजोइनमें मद्य और कीतोन दोनोंके गुण हैं। बानजोइनको नोषिकाम्ल द्वारा ओषदो करने से बानजिल (Benzil) यौगिक प्राप्त होता है जो द्वि-कीतोन है अर्थात् इसमें दो कीतोनिक मूल हैं।

क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओ. क ओ. क$_{६}$ उ$_{५}$
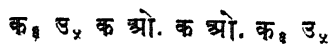
बानजिल

बानजाव मद्यानाद्रका उपयोग मेलेकाइट हरित रंग और दालचीनिकाम्लके बनानेमें किया जाता है।

ज़ीरोल (Cuminol) प-सम अमील बानजाव मद्यानाद्र-क$_{३}$ उ$_{७}$ क$_{६}$ उ$_{४}$ क उ ओ-यह ज़ीरेके तैल में पाया जाता है।

दालचीनिक मद्यानाद्र—(Cinnamic aldehyde) क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ : क उ क उ ओ:—यह भी दालचीनीके तैलमें पाया जाता है। बानजाविक मद्यानाद्र और सिरक मद्यानाद्र के मिश्रणको पांशुजक्षार द्वारा प्रभावित करनेसे भी यह मिल सकता है। इस प्रक्रियाको क्लैसनकी प्रक्रिया कहते हैं।

क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ ओ + क उ$_{३}$ क उ ओ
= क$_{६}$ उ$_{५}$ क उ : क उ क उ ओ + उ$_{२}$ ओ
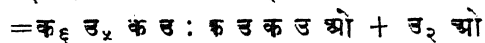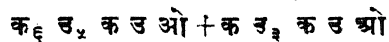
दालचीनिक मद्यानाद्र

बानजाविक कीतोन

साधारण कीतोनोंमें दो मद्योल मूल होते हैं। बानजाविक कीतोनोंमें दोनों मूल दिव्यील हो सकते हैं अथवा एक दिव्यील मूल हो और एक मद्यील।

क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओ क उ$_{३}$—सिरको दिव्योन या दिव्यील दारील कीतोन

क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओ क$_{६}$ उ$_{५}$—बानजोदिव्योन या द्विदिव्यील कीतोन।

सिरको दिव्योन-क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओ क उ$_{३}$-दिव्यीलदारील कीतोन—(Acetophenone) खटिक बानजावेत और खटिक सिरकेतके मिश्रण को स्रवण करनेसे सिरको दिव्योन प्राप्त हो सकता है।

क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओ ओ ख.' = क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओ क उ$_{३}$ + ख क ओ$_{३}$
क उ$_{३}$ क ओ ओ ख'   सिरको दिव्योन
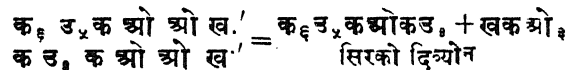
फ्रीडिल-क्राफ्टकी विधिसे यह आसानीसे बनाया जा सकता है। अर्थात् बानजावीन और सिरकील हरिद को स्फट हरिदकी विद्यमानतामें प्रक्रिया आरम्भ करते हैं।

क$_{६}$ उ$_{६}$ + ह क ओ क उ$_{३}$ [+ स्फह$_{३}$]
= क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओ क उ$_{३}$ + उह
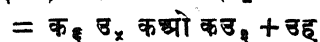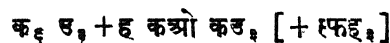
सिरको दिव्योन नीरंग रवेदार सुगंधित पदार्थ है जिसका द्रवांक २०° और क्वथनांक २०२° है। अवकरण करनेसे यह दिव्यील दारील कर्बिनोल क$_{६}$ उ$_{५}$ कउ(ओउ) कउ$_{३}$ में परिणत होजाता है। ओषदीकरण करनेसे मद्यमज्जिक पार्श्व श्रेणी पृथक हो जाती है, और बानजाविकाम्ल बन जाता है। सिरको दिव्योन अन्य कीतोनोंके समान उद्श्यामिकाम्लके साथ ओषिम और दिव्योलउदाजीविनके साथ दिव्यील उदाजीवोन यौगिक देता है।

बानजोदिव्योन—क$_६$ उ$_५$ कओ क$_६$ उ$_५$—(benzophenone) द्विदिव्यील कीतोन-खटिक बानजावेतको स्रवण करनेसे यह प्राप्त हो सकता है।

२ क$_६$ उ$_५$ कओ ओख' = क$_६$ उ$_५$कओक$_६$उ$_५$ + ख क ओ$_३$

बानजावीन और बानजावील हरिद को स्फट हरिद्के साथ प्रभावित करनेसे भी यह मिल सकता है। कर्बनील हरिद और बानजावीनके दो अणु स्फट हरिदके साथ प्रभावित करनेसे भी यह बनता है।

क$_६$ उ$_५$ कओह + क$_६$ उ$_६$ [+ स्फह$_३$]
　　= क$_६$ उ$_५$ कओ क$_६$ उ$_५$ + उह
२ क$_६$ उ$_६$ + कओह$_२$ [+ स्फह$_३$]
　　= क$_६$ उ$_५$ कओ क$_६$ उ$_५$ + २ उह

यह भी सुगंधित रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक ४८° और कथनांक १६२° है। यह भी ओषिम और उदाजीवोन यौगिक देता है।

दिव्योलिक मद्य और मद्यानार्द्र

कुछ यौगिक ऐसे हैं जिनमें दिव्योल और मद्य दोनोंके गुण होते हैं अर्थात् इनमें दो उदौषिल मूल होते हैं। एक तो बानजावीन केन्द्रमें जिसमें दिव्योलके गुण होते हैं और दूसरा पाश्र्व श्रेणीमें जिसमें मद्यके गुण होते हैं इसी प्रकार कुछ यौगिक ऐसे हैं जिनमें दिव्योल और मद्यानार्द्र दोनोंके मूल होते हैं,

विटपजनिन— Saligenin) पू० उदौष बानजीलमद्य,—क$_६$उ$_४$ (ओउ) कउ$_२$ ओउ—यह विटपिन (Salicin) नामक द्राक्षोसिदमें द्राक्ष शर्कराके साथ संयुक्त विद्यमान रहता है। यह विटपीलमद्यानार्द्रके अवकरणसे प्राप्त होता है।

विटपील मद्यानार्द्र (Salicylaldehyde)—पू० उदौष बानजाव मद्यानार्द्र—क$_६$उ$_४$ (ओउ) कउओ—यह विटपजनिनके ओषदीकरणसे मिल सकता है। टीमन-राइमर ने इसे दिव्योल, हरोपिपील, और पांशुज क्षारके संयोग से बनाया था।

क$_६$उ$_५$ ओउ + कउह$_३$ + ४ पांओउ
= पां ओ क$_६$उ$_४$कउओ + ३ पांह + ३ उ$_२$ओ

प्रक्रियामें पूर्व और पर-उदौष बानजाव मद्यानार्द्र दोनोंके पांशुजलवण बनते हैं। इनमें अम्ल डालने से उदौष मद्यानार्द्र पृथक् हो जाते हैं, पूर्व-यौगिक उड़नशील तैल है अतः स्रवण करनेपर निकल भागता है और पर-यौगिक ठोस है जो कुप्पीमें रह जाता है।
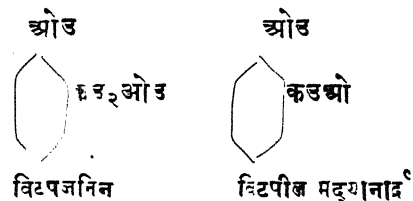
यदि दिव्योल मूल ओउ के स्थानमें दारौष मूल-ओकउ$_३$—हो तो सोंफीलमद्य (anisyl alcohol) मिलता है और इसी प्रकार सोंफील मद्यानार्द्र भी है।
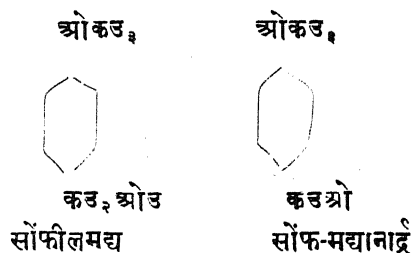
ये क्रमश: पर-दारौष बानजील मद्य और पर-दारौष बानजावमद्यानार्द्र हैं। मद्यानार्द्र सोंफमें पाया जाता है।

वैनीलिन—म-दारौष-म-उदौष बानजाव मद्यानार्द्र क$_६$ उ$_३$ (ओउ) (ओकउ$_३$) कउओ—

यह वैनीलापाड नामक जर्मन छीमियोंमें पाया जाता है छीमियोंको गरम करने पर यह उड़ने लगता है। इसके सूच्याकार नीरंग रवोंका द्रवांक ८०°श है। यह लवंगके तैल, लवंगोल (Eugenol) से भी तैयार किया जा सकता है। लवंगोलके ओषदीकरणसे वैनीलिन मिलता है।

उओ ओउ
कउ₃ओ कउ₂ क उ: कउ₂ कउ₃ओ कउओ
लवंगोल वैनीलिन

ओ
ह ह
ह ह
ओ
हरानिल
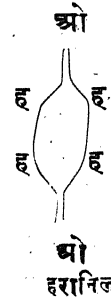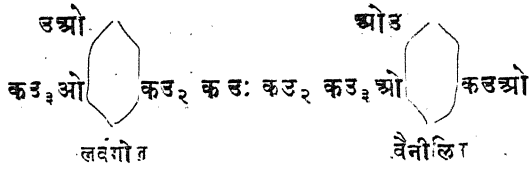
कुनोन (Quinones)

बानजावीन समूहके कुनोन विशेष यौगिक हैं। ऐसे यौगिक मद्यमज्जिक श्रेणीमें नहीं पाये जाते हैं। बानजावो कुनोन—(benzoquinone) क₆उ₄ओ₂ यह कुनिकाम्ल, क₆उ₇ (ओउ)₄ कओ ओउ₃ जो सिंकोनाकी छालमें पाया जाता है, के ओषदीकरणसे आरम्भमें बनाया गया था। पर इसका कुनैनसे कोई सम्बन्ध न समझना चाहिये। कुनोल, पर-अमिनो दिव्योल या प-दिव्यीलिन द्विअमिनका ओषदीकरण करनेसे भी यह मिल सकता है। पर बहुधा नीलिन्को साधारण तापक्रमपर ही पांशुजद्विरागेत और गन्धकाम्लकी सहायतासे ओषदीकृत करके यह बनाया जाता है। यह सुन्दर सूच्याकार सुनहरे रवों का होता है जिसका द्रवांक ११६° है। बिना विभाजित हुयेही यह ऊर्ध्व पतित होने लगता है।

बानजावो कुनोन उदौषिलामिनसे संयुक्त होकर कुनोन एकौषिम [ओ: क₆उ₄: नोओउ] और कुनोन द्विओषिम [उओनो : क₆उ₄ : नोओउ] यौगिक बनाता है।
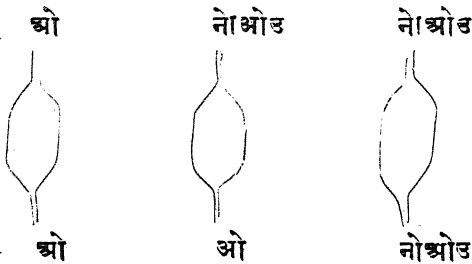
बानजावोकुनोन कुनोनएकोषिम द्विओषिम

हरानिल, चतुर्हरकुनोन, क₆ह₄ओ₂ (chloranil) दिव्योलको पांशुजहरेत और उदहरिकाम्ल द्वारा ओषदीकृत करनेसे यह मिलता है।

स्वर्गवासी श्री पं० श्रीधरजी पाठक

साहित्य-संसारको यह समाचार सुनकर अवश्य वेदना होगी कि कविवर श्रीधरजी पाठकका देहावसान अकस्मात् मंसूरीमें १३ अक्टूबर २८ को होगया। पाठक जी का सम्बन्ध हमारी विज्ञान पत्रिकासे आरम्भ से ही था। आप हमारी पत्रिकाके सर्व प्रथम सम्पादक थे। एप्रिल सन् १६१५ में विज्ञान का प्रथम अंक निकला था। उसमें सर्वोपरि मंगलाचरण के रूपमें श्री पाठकजीकी निम्न पंक्तियां अंकित हैं—

सूर्य अग्नि जल व्योम वायु में जिसका बल है।
जो सवत्र सुविज्ञों का जिज्ञासा स्थल है॥
संचालक सबका परन्तु जो स्वयं अचल है,
जगत दृश्य जिसकी केवल माया का छल है।
उस अटल तत्त्व के ज्ञानसे माया पटल विनाश हो
उस ब्रह्म बीज विज्ञानका सब थल सुखद प्रकाश हो।

आरम्भ में ६ मास तक प्रतिमास आपका एक एक छप्पय मंगलाचरण रूप में विज्ञानमें प्रकाशित होता रहता था। देखिये पाठक जी किस ज़ोरदार शब्दोंमें कह रहे हैं—

१ प्रतिज्ञेय विषय के तत्त्वका विज्ञापक विज्ञान हो।

२. जिसने सागर की तरंग पर रंग जमाया
आंधी पानी अंधियारी पर तंग चढ़ाया
बिजली पर भी विकट मोहिनी मंत्र चलाया
किया निपट परतन्त्र, स्वर्ग-संसर्ग छुड़ाया
उस विद्या बुद्धि विलासका जगमें जयजयकार हो
उस वर विज्ञान विकासका घरघरमें संचार हो।

रस राग रंग रुचि आदिका जो आदिम आधार है
उस भारतीय विज्ञानका जग भर पर ऋणभार है

पाठक जी प्रयागके रत्न थे। खड़ी बोलीके आप आचार्य माने जाते हैं। आपका जन्म माघ कृष्ण चतुर्दशी संवत् १९१६ तदनुसार ता० ११ जनवरी सन् १८६० ई० को जौन्धरी ग्राममें हुआ था। कई वर्षों से आप का स्वास्थ्य खराब था। श्वासका आप को विशेष रोग था। पाठकजी स्वयं वैज्ञानिक न थे पर उनके हृदयमें विज्ञानके लिये स्थान था। वे वैज्ञानिक साधनोंकी उपयोगिता पर विश्वास रखते थे। उन्होंने जगत् सचाईसार, ऊजड़गांव, एकान्तवासी योगी, काश्मीरकुसुमाञ्जली, देहरादून, भारत संगीत आदि उपयोगी ग्रन्थ लिखे हैं। आप साहित्य-सम्मेलनके सभापति पदको सुशोभित कर चुके हैं।

हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि विगत आत्माको शान्ति और उनके परिवारको धैर्य प्रदान करे।

—सत्यप्रकाश

समालोचना

भारत भैषज्य रत्नाकर—द्वितीय भाग...ले० रसवैद्य श्रीनगीनदास छगनलाल शाह। प्रकाशक ओझा आयुर्वेदिक फार्मेसी, रीचीरोड। अहमदाबाद। मूल्य ५)। पृ० संख्या ५७६। बृहदाकार छपाई कागज अत्युत्तम सजिल्द।

इस पुस्तकके प्रथम भागमें संग्रहकर्त्ताने अकारसे लेकर खकार तक आरम्भ होनेवाले कषाय चूर्ण तैल घृत, रस आदिका संग्रह किया था। इस दूसरे भागमें गकारसे तकार तक के रसोंका संग्रह किया गया है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थके अन्तमें चिकित्सा पथप्रदर्शिनी सूची भी है जिसमें रोगोंके अनुसार ओषधियों और रसोंकी सारिणी दी हुई है। परिशिष्टमें धातुशोधन मारणाद्यधिकार विवरण भी दिया गया है। पहले भागमें ११०७ रसोंका वर्णन दिया गया था पर दूसरे भागको भी मिला कर अब कुल २८११ रसों एवं ओषधियोंका समावेश है। प्रत्येक ओषधिके लिये संस्कृत श्लोक, उद्धरण का पता एवं हिन्दी अनुवाद दिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि रसवैद्य जी ने बड़े परिश्रम और अनुभवसे इस उपयोगी सग्रहको प्रकाशित किया है। हमें पूर्णाशा है कि चिकित्सक समुदाय इस ग्रन्थका सहर्ष अभिनन्दन करेगा। वस्तुतः इस प्रकारके ग्रन्थोंसे ही हिन्दी साहित्यकी अभिवृद्धि समझी जा सकती है। हम योग्य लेखकको बधाई देते हैं। हमें विश्वास है कि इसका तीसरा भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा इस पुस्तकको प्रत्येक पुस्तकालयमें स्थान मिलना चाहिये।

आयर्लैंडका स्वातंत्र्य युद्ध—अनुवादक 'बलवन्त' प्रकाशक 'प्रताप' कार्य्यालय कानपुर। पृ० संख्या ९९। मूल्य ।=)। कागज, छपाई साधारण।

इस पुस्तकमें आयरिशक्रान्तिकारी श्रीडेनब्रीनकी आत्म कथा है। आयर्लैण्डकी स्वतंत्रताके लिये डेन ब्रीनने जितनी उत्साह पूर्ण आयोजनायें की उनसे उनके जासूसी जीवनका सा आनन्द आता है। देशभक्तिके नामपर हत्यायें करना और डाके डालना, और फिरभी गवर्नमेण्टकी दृष्टिसे सदा साफ साफ बचते रहना इन सबका कौतूहल जनक विवरण इस पुस्तकमें मिलेगा। डेनब्रीनके जीवनमें देशभक्तिके साथ क्रान्तिका सम्मेल है। पुस्तक अनुवादक महोदय ने अत्यन्त सरस और मनोमोहक एवं प्रभावशालिनी भाषामें लिखी है।

मेरी रूस यात्रा—ले० श्री शौकत उस्मानी। प्रकाशक 'प्रताप' कार्य्यालय। पृ० सख्या १४४। मूल्य ।।=)। छपाई, कागज साधारण।

श्री शौकत उस्मानी जी ने सन् १९२० में हिज़रत के यात्रियोंके साथ भारतसे प्रस्थान किया था। इसी अवसरपर उन्होंने रूसकी भी यात्रा की। आपके साथ धर्मान्ध कट्टर अन्य मुसलमान भी थे जिनके कारण उस्मानीजी को अनेक कष्ट उठाने पड़े।

'पुस्तकमें धर्माभिमानी मुसलमानोंकी हिजरत और खिलाफत सम्बन्धी मनोवृत्तिपर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है और मुसलमान, भाइयोंको इससे काफी शिक्षा मिल सकती है।' उस्मानीजी मौतके मुँह से निकले हुए व्यक्ति हैं।

लेखकके जीवनका दृश्य कितना मर्मभेदी है जब कि वह तुर्कमानोंके पंजोंमें फंस गया था और उसका प्राणान्त करनेके लिये हत्यारे व्यक्ति सिरपर गोली ताने तैयार थे। वधस्थानमें लेखकके सामने मौत नाच रही थी। उस्मानीजी सोवियट रूसके व्यवहारके प्रशंसक है। पुस्तक छोटी, पर अत्यन्त रोचक है। पढ़ते पढ़ते रोमाञ्च हो आता है।

○ किसान—(मासिक पत्रिका)— प्रकाशक किसान कार्य्यालय इन्दौर। सम्पादक श्री सुखसम्पतिराय भण्डारी। वार्षिक मूल्य ३)

यह लगभग ४ फर्मे की मासिक पत्रिका है जो जून माससे प्रकाशित होने लगी है। इसके ४ अंक हमारे सामने है। कृषि-सम्बन्धी इसमें उपयोगी लेख हैं। पत्रिका किसानोंके विशेष लाभ की है। हम इसकी उन्नति चाहते हैं। आशा है कि जनता इनका आदर करेगी।

○ आरोग्य दर्पण—(मासिक पत्रिका)—सम्पादक श्रीवैद्य गोपीनाथ भिषग्रत्न, स्वास्थ्यसदन, इन्दौर प्रकाशक ऊंझा आयुर्वैदिक फारमसी रीची रोड अहमदाबाद। वार्षिक मूल्य २)

यह पत्रिका तीन वर्षसे प्रकाशित होती आ रही है। इसका जून जुलाईका संयुक्तांक हमारे सामने है। इसमें वैद्यक सम्बन्धी अच्छे अच्छे लेख निकलते हैं। पत्रिका उपयोगी है। आशा है कि जनता इसका आदर करेगी।

कृत्रिम कस्तूरी

(ले० श्री विष्णु गणेश नाप जोशी, बी-एस-सी.)

सारमें प्राणी द्वारा जो सुगंध प्राप्त होते हैं उसमें कस्तूरीको बहुत उच्च स्थान प्राप्त हुआ है। इसका कारण, एक तो इस वस्तु की दुष्प्राप्यता और दूसरी इसकी अप्रतिभ सुगंध है।

काश्मीर, नैपाल इत्यादि शीत प्रधान प्रदेशोंमें एक हिरन की जाति होती है। इसके नाभि स्थानमें से प्याज जैसी गुठली निकलती है। इस गुठलीमें ही कस्तूरी रहती है। इसी कारणसे इस हिरनको कस्तूरी मृग (Musk Deer) कहते हैं।

इस कस्तूरी की गन्ध अत्यन्त तीव्र होती है, इतना कि यदि, थोड़ीसी कस्तूरी नाक के पास लेकर सूंघी जावे तो नाकमें बहुत जलन होती है और आँखोंसे पानी निकलता है। कभी कभी नाकसे खून निकलने लगता है। परन्तु यदि कस्तूरीको दूरसे सूंघ जावे तो उसकी गन्ध बहुतही आनंददायक होती हैं।

कृत्रिम कस्तूरी और स्वाभाविक कस्तूरीमें सिर्फ सुगंधकी साम्यता है। कृत्रिम कस्तूरीकी आंतर रचना (constitution) से स्वाभाविक कस्तूरीका कुछ भी संबंध नहीं है।

कृत्रिम कस्तूरी का अभ्यास करनेवाला पहिला शास्त्रज्ञ मारग्राफ (Margraff) था। इसको सन् १७७९ ईसवीमें अम्बरग्रीस (Ambergris) के ऊपर नोषिकाम्ल की क्रिया करते समय कस्तूरी जैसा सुवास देनेवाला एक पदार्थ मिला। सन् १८७८ ईसवीमें वॉं- जेरिशन (Von Gerichten) ने हरो-और अरुणो स्निग्धिन (Cymene) के नोष-योगिक (Nitro-derivative) में कस्तूरीकी सुगन्ध देखी। सन् १८८७ में कोल्बे (Kolbe) को म० समअम्रील टोल्विन पर नोषिकाम्ल की क्रिया करनेपर कस्तूरी जैसे सुवास का पदार्थ मिला।

व्यापारिक कृत्रिम कस्तूरीके आकस्मिक खोज का श्रेय बार (Baur) को है। उसको सम अम्रील टोल्वीनका नोषकरण करनेपर यह पदार्थ प्राप्त हुवा। बॉरकी क्रिया नीचे लिखी जाती है :—(इसको बार की कस्तूरी कहते हैं)।

(१) सबसे पहिले टोल्वीन और तृतीय नवनीतीन हरिद (Butyl chloride) मिलाकर उससे स्फट-हरिद—की सहायतासे तृतीय नवनीतील टोल्वीन तैयार करते हैं :—

$$(\text{कउ}_3)_3\ \text{कह} + \text{कउ}_3\ \text{क}_6\text{उ}_5$$
$$= \text{कउ}_3\ \text{क}_6\ \text{उ}_4\ \text{क}\ (\text{कउ}_3)_3 + \text{उह}$$

यह क्रिया साधारण तापक्रम पर आरम्भ होकर बड़ी जोरसे चलती है। १००° पर तो ये बहुत ही शीघ्रतासे पूर्ण होती है। इस उदकर्बनका क्वथनांक १८५°-१८७° श होता है।

(२) इसके बाद नोषिकाम्लकी क्रियाकी जाती है। १ भाग नोषिकाम्ल और २ भाग ओलियम— जिसमें १५% गन्धक त्रिओषिद होता है मिश्रण बना कर उसमें उसका ½ भाग नवनीतील टोल्वीन धीरे-धीरे छोड़ते हैं। इसको वाष्पकुण्डीपर आठ नौ घंटे गरम करते हैं। तबतक क्रिया पूरी हो जाती है; इसके बाद इसको पानीमें छोड़ते हैं जिससे अशुद्ध त्रिनोष नवनीतील टोल्वीन रवोंके रूपमें तैयार हो जाता है। मद्यिकघोलमें से स्फटिकीकरण करके इसको शुद्ध कर लेते हैं।

इसके गुण:—इसके रवे सूक्ष्माकार पीले रंगके होते हैं जिनका द्रवांक ९६°-९७°श होता है। इनमें हलका क्षारीय गुण होता है। इसके मद्यिक घोल में कस्तूरी-की तीव्र सुगंध होती है।

[२]

त्रिनोष-उत्कील उप (pseudo) नवनीतील बानजावीन इसके तय्यार करनेके लिये, बार (Baur) की रीतिके अनुसार उत्कील बानजावीन पर स्फटहरिदके साथ तृतीय नवनीतील अरुणिदकी क्रिया करनी पड़ती है जब उत्कील उप नवनीतील बानजावीन बनता है

इसके साथ साथ ही कुछ नवनीतील बानजावीन और नवनीतील टोल्वीन भी बनता है और इनके बननेके कारण उबलील उप-नवनीतील बानजावीनको शुद्ध करनेमें कुछ कठिनता प्रतीत होती है बहुत देर तक बारबार आंशिक स्रवण करके २००°-२०५° के बीचमें उबलने-वाला द्रव पदार्थ मिलता है। इसका तीनबार नोषकरण करने पर कस्तूरीसी तीव्र सुगन्ध देनेवाला पदार्थ तैयार होता है।

[३]

वनीन कस्तूरी

त्रिनोष-उप-नवनीतील-म-वनीन (Trinitro pseudo mutyl b-xylene):—इसके लिये पहिले तो उप-नवनीतील-म-वनीन बनाना पड़ता है। यह पदार्थ फ्रीडेलक्राफ्ट की रीतिसे सम नवनीतीलहरिद या अहरिद और म-वनीनको स्फटहरिदके साथ उबाल करके तैयार होता है। इससे सस्ती रीतिसे बनानेके लिये म-वनीन, सम नवनीतील-मद्य (isobutyl alcohol) और दस्तहरिदका मिश्रण वायुके दबावमें गरम करते हैं बारबार आंशिक स्रवण करने पर यह बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है। ७४७ स.म. दबावपर इसका क्वथनांक २००°श है। नोषकरणके लिये धूम्रित नोषकाम्ल और गन्धकाम्लका मिश्रण लेकर उसको १००° तक गरम करते हैं।

↓

कउ₃

उ₃क क कउ₃ कउ₃ कउ₃ नोषकरण →
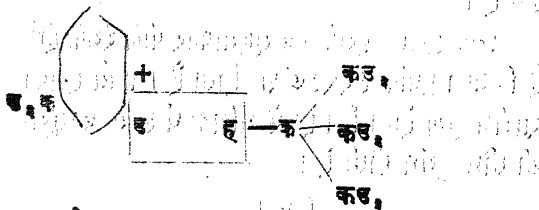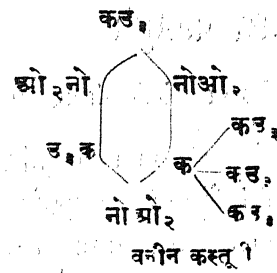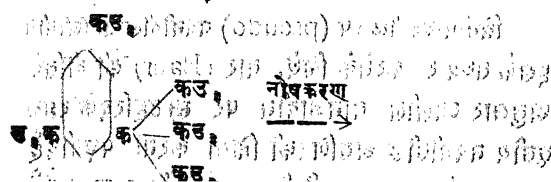
वनीन कस्तूरी

यह पदार्थ मद्यसे पीले रंगके सूच्याकार रवे देता है। इसका द्रवांक ११०°श है और इसमें कस्तूरी के समान तेज सुगन्ध होती है।

[४]

कीतोन—कस्तूरी और अमर कस्तूरी (Amb ette) नवनीतील टोल्वीनको सिरकील हरिदके साथ, विक्टर मायर (Victor meyer) की रीति के अनुसार संयुक्त करते हैं। इसके लिये १ भाग नवनीतील टोल्वीन १० भाग कर्बनद्विगन्धिदमें घोल कर उसमें ६ भाग अनार्द्र स्फट हरिद छोड़ते हैं। इस मिश्रण को अच्छी तरह से ठंडा करके उसमें ६ भाग सिरकील हरिद जल्दीसे डालते हैं और फिर एक दम उसे जल-कुंडी पर स्रवित करते हैं। बचे हुए भागको बरफमें डालते हैं, तो तृतीय नवनीतील दारौष कुसोल मिलता है।

इसका क्वथनांक २५५°-२५८° है और उपज ५०-६०% होती है। इसकी सुगन्ध भी अच्छी होती है।

इसके ऊपर १००% नोषिकाम्ल ०°श पर देकर द्विनोष यौगिक बनाते हैं। इनको मद्यसे स्फटिकीकरण करने पर चौड़ी सुइयोंके आकारके रवे मिलते हैं जिनका द्रवांक १३१°श है। इनमें बहुत तेज कस्तूरी का सुगन्ध रहता है।

कउ₃

उ₃क ओक कउ₃ क<—कउ₃ कउ₃ नोषकरण →

तृतीय नवनीतील दारौष कुसोल

कउ३
उ३कओक नोओ२
कउ३
क< कउ३
ओ२नो कउ३
द्विनोष यौगिक

[५]

म-कृ तेलसे बनाई हुई कीतोन कस्तूरी

प्रथम रीतिः—१ भाग म—कृसोल
०.८ " उप नवनीतील हरिद
२.४ " दस्तहरिद

इन तीनोंको क्रिया पूर्ण होने तक सीधे भभकेमें उबालते हैं।

क६ उ४ < ओ न / कउ३ + (कउ३)३ कह = क६ उ३ < ओक / कउ३ + उह / क(कउ३)३

फिर इसको पानीमें छोड़ते हैं। जो तेलके समान पदार्थ अलग होता है उसको धोते हैं। और आंशिक स्रवण करके शुद्ध करते हैं। इससे उप नवनीतोज कृसोल (कथ २३०°—२८०°श) मिलता है। इसका समभाग हैम सिरकाम्लमें घोलकर उसमें ४ या ५ भाग धूम्रित नोषिकाम्ल देकर कुछ देरतक मिश्रण को वैसा ही रखते हैं। फिर जलकुंडी पर गरम करके पानीमें छोड़ते हैं। इस तरहसे तैयार हुए त्रिनोष नवनीतील कृसोलका लवण बनाकर फिर मद्यील हरिद देकर उसका उवलक बनाते हैं। उवलक पहिले बनाकर बाद में भी नोषकरण हो सकता है।

द्वितीय रीतिः—१० भाग म—कृसोल-दारील उवलक

क६ उ४ < ओ. कउ३ / कउ३

५ भाग समनवनीतिल हरिद
.६ भाग स्फट हरिद

इनको जलकुंडी पर २४ घंटे तक गरम करते हैं जब तक सब उदहरिकाम्ल न निकल जाय। फिर इसको पानीमें छोड़कर अलग करते हैं और बादमें आंशिक स्रवण करके २२२°—२२४°के बीचमें स्रवित होने वाला भाग लेते हैं। इसको धीरे-धीरे ६-१० भाग धूम्रित नोषिकाम्लमें छोड़कर जलकुंडीपर गरम करते हैं जब तककि उसमेंका जरासा भाग बरफमें छोड़नेसे ठोस न हो जाय। इस ठोस कीतोन कस्तूरी को छान कर हलके सैन्धकक्षार से धोते हैं और मद्यमें से स्फटिकीकरण कर लेते हैं।

[६]

तृतीय नवनीतील बनीनसे बनी हुई कस्तूरी

१०० भाग—तृतीय नवनीतील बनीन को ३० भाग स्फटहरिद और ४० भाग सिरकील हरिद के साथ मिलाते हैं। क्रिया पूर्ण होनेपर मिश्रणको बरफ में छोड़ते हैं। नवनीतील बनीन को वाष्पस्रवण करके निकाल देते हैं। और बचे हुए भाग का आंशिक स्रवण करते हैं।

दारील कीतोन जो मिलता है वह रवेदार होता है। इसका द्रवांक ४८°श और क्वथनांक २६५°श होता है। यह सामान्य कार्बनिक घोलकों घुल जाता है।

इसके नोषकरण के लिये १० भाग १००% नोषिकाम्ल को ०° तक ठंडा करते हैं और फिर इसमें १ भाग दारील कीतोन देते हैं द्विनोष यौगिक बड़ी आसानीसे मिलता है।

कउ३
उ३क ओक कउ३
उ३क क<—कउ३ उनोओ३
कउ३ ——>

कउ३
उ३कओक नो ओ२
कउ३
क<—कउ३
उ३क कउ३
नो ओ२

इस तरहसे बनाई हुई कीतोन कस्तूरी का द्रवांक १३६°श होता है। यह बड़ी आसानीसे मद्य उवलक बानजावीन इत्यादिमें घुल जाती है। पैट्रोलियम उवलकमें कम घुलनशील है। इसमें कस्तूरीकी सी तीव्र सुगन्ध होती है।

अज्ञान विध्वंसक व्यवसाय

(ले० श्रीमोहनलाल शर्मा)
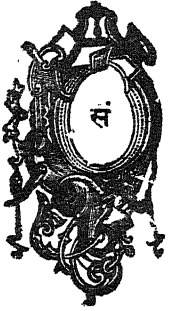
संसारमें कदाचित ही किसी और वस्तु का इतिहास इतना आश्चर्यजनक और मनोरञ्जक होगा जितना कि कागजका हम लोग जो कि इस कागजके युगमें पैदा हुए हैं कठिनतासे सोच सकते हैं कि हमारे पूर्वज कागजके बिना किस प्रकार अपना काम चलाते रहें होंगे। पानीके बिना जो कि प्रकृतिका अद्वितीय दान है सर्व सृष्टिके नाशका भय है परन्तु कागजके बिना जो कि मनुष्यकी बनाई हुई वस्तु है सभ्यताका एकाएक लोप हो जायगा। हमें इतनी वस्तुओंके लेख रखनेकी आवश्यकता पड़ती है कि कागजका जो कि मनुष्य ही की बनाई हुई वस्तु है उपयोग अनिवार्य है। कोई भी और प्राकृतिक वस्तु इसके स्थानमें इतनी बहुतायतसे और सुगमतासे उपयोगमें लाई नहीं जा सकती है। हम जब इस बातका विचार करते हैं कि मनुष्य पुराने जमानेमें जब कि कागजका आविष्कार नहीं हुआ था आप बिक्रीकी रसीदें एक मिट्टीके पके हुए टुकड़े पर लिखकर देते थे तो हमारे आश्चर्यकी सीमा नहीं रहती। मनुष्यको ईश्वरने वह मानसिक शक्ति प्रदानकी है कि जिससे उसमें और जानवरोंमें भिन्नता की बोध होता है। इसी मानसिक शक्तिकी प्रेरणासे मनुष्यको कागज बनानेकी सूझी और अन्तमें बहुत परिश्रमके पश्चात् कागज बना ही डाला—आजकल कागज हमारे करीब करीब हरएक काममें इस्तेमाल होता है। यदि आज कागज पृथ्वीपरसे उठ जाय तो हम लोगोंको उससे भी अधिक कठिनता उठानी पड़ेगी जितनी कि हमारे पूर्वज बिना कागजके उठाते थे क्योंकि हम लोग आजकलके कागजसे इतने आदी हो रहे हैं कि उसके बिना हमारा काम चलना कठिन ही नहीं किन्तु असंम्भव सा हो गया है। इस वस्तुका जो कि इतनी लाभदायक है किस प्रकार आविष्कार हुआ और आजकल किस प्रकार बनाई जाती है हरएक मनुष्यको जानना परम आवश्यक है।

यह लिखना अनुचित न होगा कि कागजके आविष्कारके पूर्व सब काम भोजपत्रपर होता था जो कि एक प्रकारके पेड़की छाल होती थी। भोजपत्र इतनी बहुतायतसे प्राप्त नहीं होता था कि वह मनुष्यके कार्य्योंको सुगमतासे निवारण कर सके। इसलिए मनुष्यको एक ऐसी वस्तुको ढूंढ़ निकालनेकी आवश्यकता हुई जो भोजपत्रके स्थानमें सुगमतासे काममें लाई जासके। सबसे पहिले चीन देशके वासियों ने रेशमके सूतसे कागज बनाया। चीन और अरबमें जब युद्ध छिड़ा तो अरबवाले कुछ चीनी दस्तकारोंको अपने देशमें ले गये और इस तरह अरबमें कागज व्यवसायका जन्म हुआ। वहांसे धीरे धीरे युरोपमें भी इसका प्रचार हो गया। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यद्यपि उस समय कागजका प्रचार होने लग गया था किन्तु यह हाथसे बनाया जाता था और रेशम जैसी महँगी वस्तुसे बनता था इसलिए यह बहुत महँगा था और हरएक मनुष्य इसको सुगमतासे नहीं पा सकता था। कागज पुराने चिथड़ों, फटे पुराने कपड़ों, घास, बांस, कीमती लकड़ी आदि से बनाया जाता है। सबके पहिले चिथड़े इत्यादि एक प्रकारके दांतवाली मशीनसे फाड़े और टुकड़े किए जाते हैं बादमें यह एक मशीनमें झाड़े जाते हैं जिससे कि धूल इत्यादि अलग हो जाती हैं। यह प्रथा दोहराई जाती है इसके बाद ये टुकड़े पानी और सोडामें भिगो दिये जाते हैं जिससे कि रहा सहा मैल फूल जाता है और मैल कई बार धोकर दूर किया जाता है। इन चिथड़ोंका बहुत सा रंग मैलके साथ उड़ जाता है किन्तु फिर भी बहुतसा पक्का रंग रह जाता है जो कि एक प्रकारकी गैससे जो कि हरिन् कहलाती है उड़ा दिया जाता है। जब यह चिथड़ेके टुकड़े बाहर निकलते हैं तो सफेदीमें मक्खन जीनको भी शर्माते हैं। फिर यह एक घूमनेवाली ... लमें बहुत गर्म पानी जिसमें कुछ रासायनिक पदार्थ मिला

दिया जाता है डाले जाते हैं और थोड़ी देर बादमें एक लेप सा बन जाता है।

यह लेप फिर गाढ़ा किया जाता है यह गाढ़ा किया हुआ लेप एक बहुत महीन तारके एक सांचे पर पतली झिल्ली की शकलमें फैला दिया जाता है। यह तारका घाल इतना महीन होता है कि लेप तो उसमें से नीचे निकल नहीं पटता किन्तु पानी नीचे निकल जाता है। बहुत सा गर्म पानी भाप की शकलमें उड़ जाता है। यह जाली धीरे धीरे हिलती रहती है। जिससे कि लेप के कण सामानान्तर रूपमें एकत्रित होजाते हैं जिससे कि कागज अधिक मजबूत होजाता है। फिर यह दो बेलनोंके बीचमें होकर निकाला जाता है। यह बेलन पोले होते हैं और इनके भीतर भापकी धारा बहती रहती है। इन बेलनोंके बीचमें निकलने पर यह केवल कागज के रूपमें प्रकट होता है। और वाटर मार्क भी इसी गर्म अवस्थामें छापे जाते हैं। यह कागज फलालैनके तहोंके बीचमें दबाया जाता है जिससे की बेलनोंकी खींचसे न फट जाये तो यह कागज इस अवस्थामें मोटा और खुरदरा होता है इस लिए कई बेलनोंके बीचमें होकर निकाला जाता है जिससे कि कागज पतला और चिकना हो जाय। पीला यानी बादामी कागज जो कि सफेद कागजसे सस्ता होता है एक प्रकार की घाससे बनाया जाता है। घासके बड़े २ गठेड़ पहिले काट कर भिगोये जाते हैं और उबलते हुए पानीमें जिसमें कुछ रसायन इत्यादि पड़े रहते हैं डाले जाते हैं जिससे कि यह लेपके रूपमें आजाता है। इस लेपसे बादामी कागज उसी रीतिसे तैयार किया जाता है जिस प्रकार सफेद कागज किया जाता है। कागजकी माँग संसारमें बहुत है और दिनों दिन बढ़ती ही जारही है। क्योंकि करीब करीब हर एक चीज कागजकी बनने लग गई है। जापानमें तो यहां तक कि कागजके रूमाल और कपड़े भी इस्तेमालमें लाए जाते हैं। यह नहीं कहा जा सकता है कि आने वाली शताब्दी में कागज किस किस रूपमें लाया जायगा और इसकी वजहसे सभ्यता पर क्या असर होगा।

विषोंसे सावधानी

(ले० 'विज्ञानी')

मनुष्य जीवनके संचालनमें आहार विहार का संयमित रखना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। शारीरिक प्रक्रियाओं में जहां हमारा भोजन शरीरोपयुक्त मज्जा, अस्थि, रुधिर आदि पदार्थोंमें परिणत होता रहता है वहीं इस भोजनका कुछ अंश विषैले द्रव्योंका भी जन्मदाता होता है। ये विकृत पदार्थ पसीने, मल मूत्र, आदि साधनो द्वारा बराबर शरीरसे निकलते रहते हैं। जिगरमें भी बहुतसे विषों का नाश होजाता है। विषोंको इस प्रकार दूर करनेके यदि ये साधन प्राणियों के साथ न होते तो सबका जीवन ही सन्देह मय हो जाता। साधारणतः जितनी मृत्यु होती हैं वे इसी कारण कि हमारे शरीरमें किसी न किसी प्रकारका विष फैल जाता है जिसकी विद्यमानतामें शरीरकी समस्त प्रक्रियायें अकस्मात् बन्द हो जाती हैं।

इन बातोंपर ध्यान रखते हुए यह बात आवश्यक प्रतीत होती है कि ऐसी विधियोंका प्रचार किया जावे जिससे शरीरमें उत्पन्न होने वाले विष शीघ्र ही दूर हो जाया करें। सबसे पहला साधन जलका प्रयोग है। जो व्यक्ति आवश्यकतासे कम जल पीते हैं वे एक प्रकारसे अपने शरीर को विषोंका संग्रहालय बनाना चाहते हैं। बहुतसे विष जलमें घुल जाते हैं और मूत्र त्याग एवं पसीनेके द्वारा ये विष बाहर निकल सकते हैं। कम पानी पीने वाले व्यक्तियोंका मूत्र भारी होता है। इसका घनत्व १.०२५ से १.०३० तक होता है। ऐसी अवस्थामें अंतड़ियोंमें विष एकत्रित होजाता है और स्वास्थ्य पर हानिकर प्रभाव पड़ता है।

इसके अतिरिक्त बहुतसे ऐसे भी व्यक्ति हैं जो सामान्यतः आवश्यकतासे कहीं अधिक जल पीते हैं

दस-दस, बीस बीस, लोटे जल पी जाना भी शरीरके लिये उपयोगी नहीं है। इससे पेट, हृदय एवं अन्य शारीरिक अङ्गों पर अनावश्यक बोझा पड़ता है। जिन व्यक्तियों को दिल या किडनी की बीमारी हो उन्हें बहुत अधिक जल न पीना चाहिये।

जलकी कितनी मात्रा मनुष्य को पीनी चाहिये, यह कहना कठिन है। प्रत्येक देश और प्रत्येक ऋतुमें इसका परिमाण बदलता रहता है। सबसे अच्छा नियम यही है कि जब प्यास प्रतीत हो तभी पानी पीना चाहिये! पर बहुत से व्यक्ति ऐसे भी हैं जिन्होंने अनियमित पानी पीनेके कारण अपना स्वभाव बिगाड़ रक्खा है और उनको यही पता नहीं चलता कि कब वास्तविक प्यास लगी है। कभी कभी उन्हें पिपासाभास हो जाता है। साधारणतः मनुष्यको ६-८ गिलास पानी प्रति दिवस पीना चाहिये। दो गिलास के लगभग प्रातःकालके भोजनमें दो गिलास सायंकाल के भोजनमें दो गिलास दोपहरमें और दो गिलास अन्य अवसरों पर। हां, उन ऋतुओंमें जब पसीना अधिक निकलता हो, अधिक जलका पान किया जा सकता है।

मल मूत्रके ठीक त्याग न होनेसे अनेक विष फैल जाते हैं। अंतड़ियोंमें दूषित एवं विकृत भोजन जमा होकर सड़ने लगता है। ऐसी अवस्थामें व्यक्तियोंके सिरमें पीड़ा होने लगती है। उचित भोजन की अनुपयुक्त मात्राके सेवन करने से बदहजमी होजाती है। बहुत दिनों तक बदहजमी का बना रहना अत्यन्त हानिकर है। इसके अनेक रोग होजाने की सम्भावता है।

आवश्यकता से अधिक प्रोटीन-युक्त पदार्थके सेवनसे शरीर की अंतड़ियोंमें विष फैल जाता है। जो मनुष्य अधिक अण्डे, मांस अथवा मछली खाते हैं उनके शरीरमें विकार शीघ्र उत्पन्न होजाते हैं। प्रोटीन पदार्थ शरीरनिर्माणके लिये आवश्यक अवश्य हैं पर यदि इनका आवश्यकतासे अधिक उपयोग किया जायगा तो ये भयंकर विषोंमें परिणत होजायंगे। मांसाहारियों को भी यह आवश्यक है कि वे मांस को खानेसे पूर्व भली प्रकार पका लें। अन्यथा मांसमें स्थित कीटाणु शरीरमें जाकर भोज्य पदार्थों को सड़ा देंगे। विष्ठाकी गन्ध द्वारा भी हम जान सकते हैं कि जो भोजन हमने किया है वह कितना उपयोगी है। यदि भोजनमें आवश्यकतासे अधिक प्रोटीन न हो और यदि भोजन भली प्रकार चबाया गया हो तो विष्ठामें अधिक दुर्गंध न होगी। अधिक प्रोटीनका व्यवहार करनेसे विष्ठा अधिक दुर्गंधमय होगा।

आहार-पदार्थों के अतिरिक्त उठने बैठनेके नियमों पर भी विषका संचय एवं निराकरण निर्भर है। जो व्यक्ति सीधातन कर बैठते हैं कड़े बिस्तरों पर लेटते हैं और सीधी तरह चलते हैं उनके शरीरमें रुधिरका प्रवाह भली प्रकार होता रहता है। पर गद्देदार बिछौने पर और गुलगुली आराम कुर्सियों और कोचों पर विहार करने से, कमर झुकाकर बैठने उठनेसे अनेक रोग हो जाते हैं। सिरमें चक्कर आना अथवा पीड़ा होना, बदहजमी हो जाना हाथ और पैर का ठंडा रहना सब इसी कारण होता है। प्रयोग करके देखा गया है कि बहुत से इन रोगोंसे ग्रसित व्यक्तियोंके उठने बैठनेकी विधियोंको नियमित कर देने से उन्हें बहुत कुछ लाभ हुआ है।

बहुतसे व्यक्ति अनेक प्रकारके विषों का सेवन करते हैं। अफीम, कोकेन, निकोटीन, मद्य, केफीन, हरल, सिरकनीलिद आदि पदार्थ ऐसे हैं जो भयङ्कर विष हैं। इनसे तो सर्वथाही दूर रहना चाहिये। शराब, तम्बाकू, गाँजा, भांग, ताड़ी, आदिका पीना शरीर पर अत्याचार करना है। सोडावाटर और शरबतके नामसे बहुतसे द्रव भी प्रचलित है जो विषमय होते हैं। चाय और कहवा में भी विषैला पदार्थ है। रंगदार मिठाइयां भी हानिकारक होती हैं व्यापारिक भोज्य पदार्थों में कभी कभी अत्यन्त दूषित वस्तुएं मिला दी जाती हैं। बहुतसे लोग चाय आवश्यकतासे कहीं अधिक पीते हैं। थोड़ी मात्रामें यदि चाय पी जाय तो अधिक हानि न पहुँचायगी पर चाय पीनेकी चाट पड़ जाना अवश्य हानिकर है।

वैज्ञानिक प्रयोगोंने यह सिद्ध कर दिया है कि लोगोंका यह कहना कि मद्यपानसे मनुष्यमें कार्य्य करने की शक्ति बढ़ जाती है, सर्वथा भ्रममूलक है। इसके पान करने से स्नायुतन्तुओं में मूर्छना आजाने के कारण मनुष्य कुछ देर थकावट का अनुभव नहीं करता है पर शराबसे बल एवं शक्तिकी वृद्धि होना असम्भव है। मद्यपान द्वारा थकावट दूर करना अपने शरीरको धोखा देना है। इससे मनुष्यकी संवेदन-शक्ति क्षीण हो जाती है। भोजनके समय मद्यपान करना तो और भी अधिक हानिकर है। जो व्यक्ति मद्यपान करते हैं उनपर रोगोंका आक्रमण शीघ्र होता है रुधिरमें स्थित श्वेत-कण मद्य द्वारा निश्चेष्ट हो जाते हैं जिससे शरीरको हानि पहुंचती है। इंगलैण्ड और अमरीकाकी बीमा-कम्पनी वालोंका कहना है कि मद्यपानसे मनुष्यकी आयु भी कम हो जाती हैं। मद्यपान करने वालोंकी सन्तान दुर्बल होती हैं। डा० स्टोकर्ड ने इस विषयमें अनेक प्रयोग किये हैं।

तम्बाकू, सिगरेट आदिके पानसे भी अनेक हानियां होती हैं। इसका प्रभाव शरीर पर धीरे धीरे पड़ता है। येल और एमहर्स्टके विद्यालयमें इस बातकी परीक्षाकी गई है कि जो विद्यार्थी सिगरेट नहीं पीते हैं उनकी शारीरिक अवस्था और कार्य्य-शक्ति सिगरेट पीने वालोंकी अपेक्षा अधिक है। पशुओं पर प्रयोग करके डा० राथने सिद्ध किया है कि तम्बाकूसे शारीरिक क्षति होने लगती है।

शरीरकी त्वचा द्वारा अथवा प्राण-श्वास द्वारा बहुतसे विष शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं। जुकाम भी विशिष्ट कीटाणुओंके नाकद्वारा प्रविष्ट होनेके कारण होता है अतः ऐसी जगहसे मनुष्यको दूर रहना चाहिये जहां जुकामके रोगी विद्यमान हों। बदहजमी होनेपर जुकाम उत्पन्न करनेवाले कीटाणु और भी अधिक सम हो जाते हैं। नाकमें उँगली देना उचित नहीं है। रूमाल से नाक साफ करनी चाहिये और ये रूमाल बराबर बदलते रहना चाहिये। इन्हें साबुनसे भली प्रकार धोना चाहिये। प्रत्येक स्थान पर थूक देना या छिनक देना अत्यन्त हानिकारक है। इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिये। किसी दूसरेके मुंहके सामने छींकना या खांसना भी अत्यन्त हानिकारक हैं।

साधारण नियमोंहलंघनके कारण भी अनेक रोग हो जाते हैं। बरसाती पानीके जमा हो जानेके कारण मच्छर, और अन्य रोग कीटाणु शीघ्रही अपना प्रकोप दिखाने लगते हैं। इस कारण तरह तरहके बुखार आने लगते हैं, भारतवर्षके ग्राममें कच्चे तालाब, पोखर आदि रोगोंकी जड़ हैं। इन तालाबोंसे कपड़े धोनेका काम लिया जाता है। इन्हींसे लोग शौच-क्रिया करते हैं। इन्हींमें नहाते हैं और कभी कभी इसी जलको पीते भी हैं। ऐसा करना कितना हानिकर है, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं हैं। छोटी छोटी बातोंका भी परिणाम भयंकर हो सकता है। इसलिये सावधानीसे जीवन व्यतीत करना चाहिये।
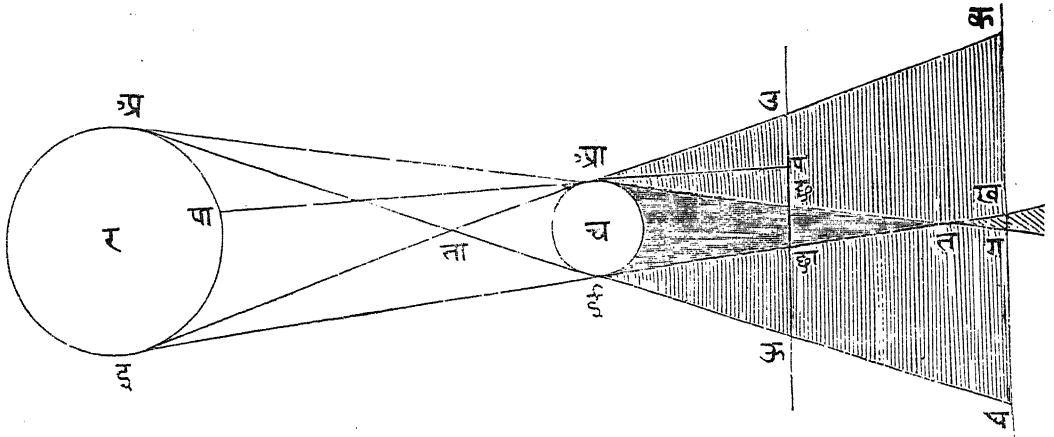
च = गोल वस्तु , उ ऊ = परदा, छ छा = पूर्ण च्छाय

(देखो पृष्ठ २०१)
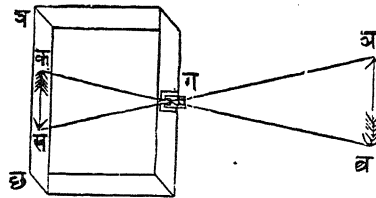
बिन्दु-छिद्र केमरा

(देखो पृष्ठ २०१)

बानजाविक अम्ल

(Aromatic acid)

(ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी)

साधारण मज्जिकाम्लोंका वर्णन पहले दिया जा चुका है। अब यहाँ बानजाविकाम्लोंका उल्लेख किया जावेगा जिस प्रकार मज्जिक मद्योंके ओषदीकरणसे मद्यानार्द्र और फिर मद्यानार्द्र से अम्ल प्राप्त होते हैं उसी प्रकार बानजाविक मद्य, मद्यानार्द्र और अम्लोंका भी सम्बन्ध है। इन अम्लोंमें एक या अधिक कर्बोषिल मूल बानजाविक केन्द्रमें अथवा पार्श्वश्रेणीमें या दोनोंमें हो सकते हैं। बानजाविक अम्ल मज्जिकाम्लोंके समान धातु लवण और मद्यील सम्मेल बनाते हैं। इन अम्लों पर स्फुर हरिद के प्रभावसे बानजाविक हरिद बन सकते हैं और स्फुर पंचौषिद द्वारा ये बानजाविक अनार्द्रिदमें परिणत किये जासकते हैं। इन गुणोंमें ये मज्जिकाम्लोंके समान हैं।

क$_{६}$उ$_{५}$क ओ ओ उ बानजाविकाम्ल }
कउ$_{३}$ क ओ ओ उ सिरकाम्ल }

क$_{६}$उ$_{५}$ क ओ ओ सै-सैन्धक बानजावेत }
कउ$_{३}$ क ओ ओ सै ,, सिरकेत }

क$_{६}$उ$_{५}$ क ओ ओ क$_{२}$उ$_{५}$ ज्वलील बानजावेत }
कउ$_{३}$क ओ ओ क$_{२}$उ$_{५}$ ज्वलील सिरकेत }

क$_{६}$उ$_{५}$ क ओ ह बानजावील हरिद }
क उ$_{३}$ क ओ ह सिरकील हरिद }

(क$_{६}$ उ$_{५}$ क ओ)$_{२}$ओ बानजाविक अनार्द्रिद }
(कउ$_{३}$ क ओ)$_{२}$ओ सिरकिक अनार्द्रिद }

बानजाविकाम्ल मज्जिकाम्लों की अपेक्षा जल में कम घुलनशील होते हैं, क्योंकि उनमें कर्बनकी सापेक्षतः मात्रा अधिक होती है। ये उड़नशील भी नहीं होते और बहुधा ठोस रवेदार होते हैं। बानजावीन, टोलवीन आदि उदकर्बनोंके समान बानजाविकाम्ल हरिन्, अरुणिन्, नोषिकाम्ल, गन्धकाम्ल के साथ क्रमशः हरो बानजाविकाम्ल, अरुणो बानजाविकाम्ल नोषोबानजाविकाम्ल और गन्धो बानजाविकाम्ल देते हैं।

क$_{६}$उ$_{५}$क ओ ओ उ बानजाविकाम्ल {
+ ह$_{२}$ → हक$_{६}$उ$_{४}$ कओओउ हरो बानजाविकाम्ल
+ उनोओ$_{३}$ → नोओ$_{२}$क$_{६}$उ$_{४}$ कओओउ नोषो बानजाविकाम्ल
+ उ$_{२}$गओ$_{४}$ → गओ$_{३}$उ क$_{६}$उ$_{४}$कओओउ गन्धोबानजाविकाम्ल

हम यहां कुछ मुख्य अम्लोंका वर्णन देंगे, निम्न सारिणीमें इन अम्लोंके द्रवांक आदि दिये जाते हैं।

अम्ल	सूत्र	द्रवांक	विश्लेषणांक
बानजाविकाम्ल	क$_{६}$उ$_{५}$कओ ओउ	१२१°श	०.००६०
द्विमील सिरकाम्ल	क$_{६}$उ$_{५}$कउ$_{२}$कओ ओउ	७६°	०.००५५६
पू० टोलिविकाम्ल	कउ$_{३}$क$_{६}$उ$_{४}$कओ ओउ	१०५°	०.०१२०
उदालचीनिकाम्ल	क$_{६}$उ$_{५}$कउ$_{२}$कउ$_{२}$कओ ओउ	४६°	०.००२२७
विटपिकाम्ल (पूर्व)	क$_{६}$उ$_{४}$(ओउ) कओ ओउ	१५५°	०.१०२

अम्ल	सूत्र	द्रवांक	विश्लेषणांक
बादामिकाम्ल	क$_{६}$उ$_{५}$कउ(ओउ)कओ ओउ	११८°	०.०४२
नाशिकाम्ल	क$_{६}$उ$_{५}$कउ(कउ$_{२}$ओउ)$_{२}$ कओ ओउ	११७°	०.००७५
दालचीनिकाम्ल	क$_{६}$उ$_{५}$कउ:कउ कओ ओउ	१३३°	०.००३५५
थलिकाम्ल	क$_{६}$उ$_{४}$ (कओ ओउ)$_{२}$	२१३°	०.१२१

बानजाविकाम्ल (Benzoic acid)

क$_{६}$उ$_{५}$ क ओओउ

सुमात्रा और जावामें उत्पन्न होने वाले विशेष पेड़के गोंदको जिसका नाम बानजोइन गोंद है गरम करनेसे बानजाविकाम्ल प्राप्त होता है। सं० १८८६ वि० में लीबिग और व्हूलरने इसकी अन्तर-रचनाकी सर्वप्रथम परीक्षाकी थी। घोड़े आदि वनस्पति-आहारी पशुओंके मूत्रमें अश्वमूत्रिकाम्ल होता है उससे भी बानजाविकाम्ल प्राप्त होता है।

सैण्डमायर की प्रक्रियासे द्वयजीव बानजावीन हरिद और ताम्र श्यामिद के प्रयोगसे श्याम-बानजावीन क$_{६}$उ$_{५}$कनो, बनाया जा सकता है जैसा कि पहले कहा जा चुका है। श्याम बानजावीन के उद्विश्लेषणसे भी बानजाविकाम्ल मिल सकता है :—

क$_{६}$उ$_{५}$कनो + २उ$_{२}$ओ = क$_{६}$उ$_{५}$कओओउ + नोउ$_{३}$
बानजाविकाम्ल
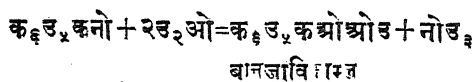
टोल्वीन, बानजील मद्य, बानजावमद्यानार्द्र, सिरकोदिव्योल आदिको नोषिकाम्ल या पांशुज परमांगनेत द्वारा ओषदीकृत करनेसे भी बानजाविकाम्ल मिलता है। सम्पूर्ण पार्श्व श्रेणी का ओषदीकरण होकर कर्बोषिल मूल स्थापित हो जाता है।

क$_{६}$उ$_{५}$कउ$_{३}$ + ३ओ = क$_{६}$उ$_{५}$कओओउ + उ$_{२}$ ओ

इसी प्रकार नाषो टोल्वीन के ओषदीकरणसे नोष-बानजाविकाम्ल मिलता है और हरो-टोल्वीनके ओषदीकरणसे हरो-बानजाविकाम्ल मिलता है।

नो ओ$_{२}$क$_{६}$उ$_{४}$कउ$_{३}$ + नो ओ$_{२}$ = क$_{६}$उ$_{४}$कओ ओउ
नोष बानजाविकाम्ल
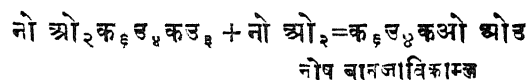
फ्रीडिल क्राफटकी प्रक्रियासे भी यह बन सकता है। बानजावीन और कर्बनीलहरिद, कओ ह$_{२}$ को स्फटहरिदकी विद्यमानतामें प्रभावित करनेसे बानजील हरिद मिलता है जो जलके संसर्गसे बानजाविकाम्ल में परिणत हो जाता है:—

क$_{६}$उ$_{६}$ + क ओह$_{२}$ (+ स्फह$_{३}$)
= क$_{६}$उ$_{५}$कओ ह + उह
बानजीलहरिद
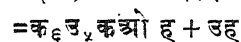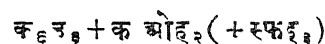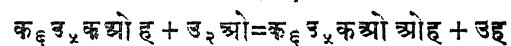
क$_{६}$उ$_{५}$कओ ह + उ$_{२}$ओ = क$_{६}$उ$_{५}$कओ ओह + उह
बानजाविकाम्ल

सैन्धक बानजावीन गन्धोनेतको सैन्धक पिपीलेत के साथ गरम करनेसे सैन्धक बानजावेत मिलता है। इसमें अम्ल डालनेसे बानजाविकाम्ल मिल जावेगा।

क$_{६}$उ$_{५}$गओ$_{३}$सै + उकओ ओ सै
= क$_{६}$उ$_{५}$कओ ओ सै + सै उगओ$_{३}$
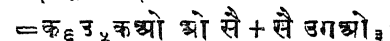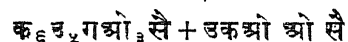
व्यापारिक मात्रामें बानजावोत्रिहरिद, क$_{६}$उ$_{५}$-क ह$_{३}$ को चूनेके साथ गरम करके खटिक बानजावेत बनाते हैं। इसमें गन्धकाम्ल की उपयुक्त मात्रा डालने से बानजाविकाम्ल मिल जाता है।

२क६उ५क ह६ + ४खओ
=(क६उ५कओ ओ)२ख + ३खह२
खटिकबानजावेत

बानजाविकाम्ल श्वेत रवेदार पदार्थ होता है जिसका द्रवांक १२१° है और क्वथनांक २५०° है। यह भाप में उड़नशील है। इसको सूंघनेसे छींक आती है। यह ठंडे पानीमें अनघुल है पर गरम पानी में घुलनशील है। मद्य और ज्वलक में भी घुल जाता है। इसके खटिक लवणके लम्बे सूच्याकार रवे होते हैं। सैन्धक बानजावेतके घोलमें लोह हरिद डालने से भूरा अवक्षेप प्राप्त होगा।

बानजाविकाम्ल और ज्वलील या दारील मद्यके मिश्रणको शुष्क उदहरिकाम्लके साथ उबालनेसे दारील या ज्वलील बानजावेत नामक सम्मेल मिलते हैं। रजत बानजावेत और दारील-या ज्वलील नैलिदके प्रभावसे भी ये मिल सकते हैं।

क६उ५कओ ओर + क२उ५नै
=क६उ५कओ ओ क२उ५ + रनै
ज्वलील बानजावेत

ज्वलील बानजावेतका क्वथनांक २१३°श और दारील बानजावेतका १९९°श है।

बानजावीलहरिद—(benzoic chloride)—क६उ५ कओ ह—बानजाविकाम्ल पर स्फुर त्रिहरिद या पंचहरिद का प्रभाव डालनेसे यह बनता है।

क६उ५कओ ओउ + स्फुह५
=क६उ५कओ ह + स्फु ओ३ + उह
बानजावील हरिद

यह नीरंग द्रव है जिसका क्वथनांक १९८°श है नम वायुमें इसमें धुआं निकलने लगता है। यह जल के संसर्गसे बानजाविकाम्ल, मद्यके संसर्गसे बानजाविक सम्मेल और अमोनियाके संसर्गसे बानजावामिद देता है।

बानाजाविक अनाद्रिद—(benzoic anhydride)—(क६उ५ कओ)२ ओ—सिरकिक अनाद्रिद के समान यह बानजावील हरिद और शुष्क सैन्धक बानजावेतके मिश्रणको गरम करके बनाया जा सकता है।

क६उ५क ओह + सै ओ ओक क६उ५
=क६उ५कओ. ओ कओ क६ उ५
बानजाविक अनाद्रिद

यह रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक ४२°श है। बानजावील हरिदके समान यह भी मद्य, द्व्योल आदि से संयुक्त हो सकता है।

बानजावामिद—(benzamide) क६उ५ कओ-नोउ२—बानजावील हरिदमें अमोनिया या अमोनियम कर्बनेत डालनेसे यह मिल सकता है यह ठंडे पानीमें अनघुल और गरम पानीमें घुलनशील है।

क६उ५कओ ह + २नोउ३=क६उ५कओ नोउ२ + नोउ४ ह
बानजावामिद

अमोनियम बानजावेतको बन्द नलीमें गरम करने से भी यह मिल सकता है—

क६उ५कओ ओनोउ४=क६उ५कओ नोउ२ + उ२ओ

यह नीरंग रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक १२८°श है।

अंगार नीलिकाम्ल—(anthranilic acid) पू० अमिनो बानजाविकाम्ल—क६उ४ (नोउ२) कओ-ओउ—यह बहुधा नफथलीनसे बनाया जाता है जिसका वर्णन आगे दिया जावेगा इसका उपयोग कृत्रिम नीलके व्यापार में बहुत होता है।

नफथलीन —ओ२→ थलिकअनाद्रिद (—कओ, —कओ >ओ) —नोउ३→

नफथलीन थलिकअनाद्रिद

—कओनोउ₂
—कओओउ → नोउ₂
कओ ओउ
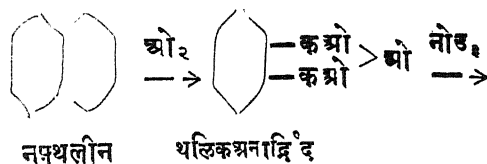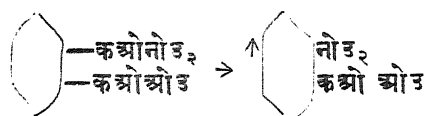
अंगार नीलिकाम्ल

अन्तिम प्रक्रिया हाफमेनकी विधि द्वारा होती है। अरुणिन् और पांशुज उदौषिद्का इसमें उपयोग होता है।

शर्करिन् (Saccharin)—गन्धो-बानजाबो-इमिद्-क$_6$ उ$_4$ <कओ / गओ$_2$> नोउ-यह टोल्वीनसे बनाया जाता है। टोल्वीनको गन्धकाम्ल द्वारा पूर्व-टोल्वीन गन्धोनिकाम्लमें परिणत करते हैं और फिर गन्धोनिकाम्ल से गन्धोहरिद् और गन्धोनामिद् बनाते हैं। तत्पश्चात् इसका ओषदीकरण करके बानजाविकाम्लका पू-गन्धोनामिद बनाते हैं जिसमें से जलका एक अणु पृथक् हो जाता है और शर्करिन् मिल जाता है।

कउ$_3$ → कउ$_3$ गओ$_2$ओउ → कउ$_3$ गओ$_2$ह

टोल्वीन

→ कउ$_3$ गओ$_2$नोउ$_2$

टोल्वीन गन्धोनामिद

→ कओओउ गओ$_2$नोउ$_2$ → क ओ गओ$_2$ >—नोउ
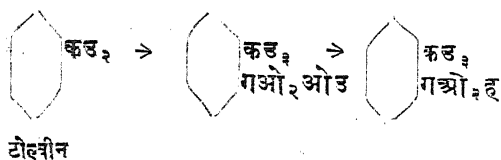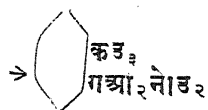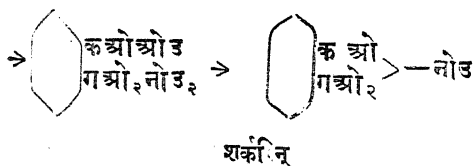
शर्करिन्

यह नीरंग रवेदार पदार्थ है। जलमें घोलने पर अत्यन्त मीठा घोल प्राप्त होता है। यह गन्नेकी शक्कर से ३०० गुना अधिक मीठा होता है। मधुमेह रोगमें रोगीको शक्कर खाना हानिकर है अतः मिठासके लिये इसका उपयोग किया जा सकता है।

टोल्विकाम्ल (Toluic acid)—दारील बानजिकाम्ल—कउ$_3$क$_6$उ$_4$कओओउ—यह पूर्व, मध्य, और पर-तीनों रूपका हो सकता। यह तीनों—पू, म. और प-वलीनोंको सावधानीसे ओषदीकृत करके बनाये जा सकते हैं—

कउ$_3$ → कउ$_3$
कउ$_3$ कओओउ
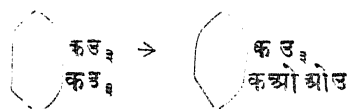
पू. टोल्विकाम्ल

पूर्व अम्लका द्रवांक १०३°, मध्य-का ११०° और पर-टोल्विकाम्लका १८० है। इनके ओषदीकरणसे तदनुकूल थालिकाम्ल मिलेंगे—
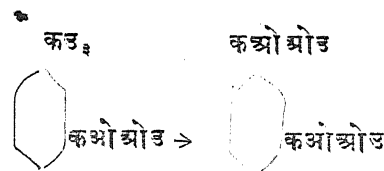
म. टोल्विकाम्ल सम-थलिकाम्ल

विटपिकाम्ल (Salicylic acid)

क$_6$उ$_4$ (ओउ) कओओउ

यह उदौष बानजाविकाम्ल है। उदौषील मूल होनेके कारण इसमें दिव्यीलके गुणभी विद्यमान हैं। इसके दारील सम्मेलमें बड़ी मनोमोहक सुगन्ध होती है जिससे 'विण्टरग्रीनका तैल' कहते हैं। यह तैल कनाडा और अमरीकाके संयुक्त राज्यके एक विशेष पौधेसे निकाला जाता है। इस तैलका उद-विश्लेषण करनेसे विटपिकाम्ल मुक्त हो जाता है।

कोल्बेने विटपिकाम्लका संश्लेषण एक विचित्र विधिसे किया है। इस विधिमें शुष्क सैन्धक दिव्येत

बन्द बर्तनमें दबाव पर १२०° से १३०° तापक्रम तक गरम किया जाता है। पहले सैन्धक दिव्यील कर्बनेत बनता है—

क$_6$उ$_5$ओसै + कओ$_2$ = क$_6$उ$_5$ओ.कओ.ओसै
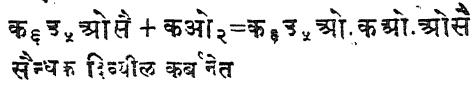
सैन्धक दिव्यील कर्बनेत

इसमें उच्च तापक्रम कुछ आन्तरिक परिवर्तन होता है और यह सैन्धक विटपेतमें परिणत हो जाता है।

[diagram: बेंजीन वलय — ओ | कओ.ओसै, उ → ओउ, कओओसै]

सैन्धक विटपेत
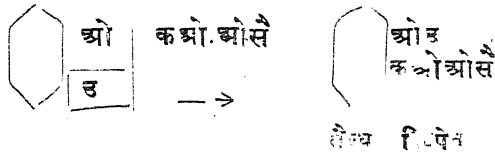
इसमें अम्ल डालनेसे विटपिकाम्ल मुक्त हो जाता है। यदि सैन्धक दिव्येलके स्थानमें पांशुज दिव्येलक कर्बन द्विओषिदके साथ गरम किया जाय तो पर-उदौष बानजावेत मिलेगा, न कि पूर्व-उदौष बानजावेत।

दिव्योल, कर्बन चतुर्हरिद और सैन्धक्षारके संसर्गसे भी विटपिकाम्ल मिल सकता है।

क$_6$उ$_5$ओउ + कह$_4$ + ६ सैओउ

= क$_6$उ$_4$ < ओसै, कओओसै + ४सैह + ३उ$_2$ओ
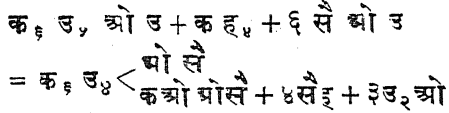
इसके सैन्धक लवणमें उदहरिकाम्लकी उपयुक्त मात्रा डालनेसे विटपिकाम्ल मिलेगा।

विटपिकाम्ल नीरंग रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक १५५° है। यह ठंडे पानीमें अनघुल है पर गरम पानीमें शीघ्र घुल जाता है। इसके शिथिल घोलमें लोहिकहरिदका शिथिल घोल डालनेसे बैंजनी रंग मिलेगा। मध्य-और पर-उदौष बानजाविकाम्ल इस प्रकारका रंग नहीं देते हैं। सैन्धक चूनाके साथ गरम करने पर विटपिकाम्लमें से कर्बनद्विओषिद निकल जाता है और दिव्योल बन जाता है—

क$_6$उ$_4$(ओउ) कओ ओउ

= क$_6$उ$_5$ओउ + कओ$_2$
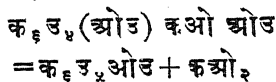
इसके दिव्यील सम्मेल क$_6$उ$_4$ (ओउ) कओ ओ क$_6$उ$_5$को विटपोल कहते हैं, रोग-कीटाणुओं के विनाश के लिये इसका उपयोग किया जाता है। स्फुरहरिद या कर्बनीलहरिदकी विद्यमानतामें विटपिकाम्ल और दिव्योलको प्रभावित करनेसे विटपोल मिलता है।

क$_6$उ$_4$(ओउ) कओ ओउ + क$_6$उ$_5$ओउ

= क$_6$उ$_4$(ओउ)कओ ओ क$_6$उ$_5$ + उ$_2$ओ

विटपोल
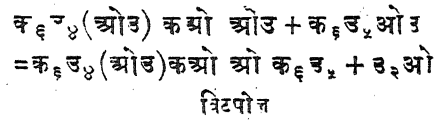
ज्वर-दूर करनेमें भी इसका उपयोग किया जाता है। इसका सिरकील यौगिक जिसे पौधिन (aspirin) कहते हैं इस काम के लिये विशेष उपयुक्त है—

क$_6$उ$_4$ < ओ कओ कउ$_3$, कओ ओउ

पौधिन
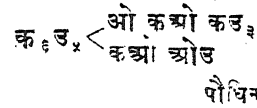
सौंफिकाम्ल—(anisic acid)-प-दारौष बानजाविकाम्ल कउ$_3$ ओ क$_6$उ$_4$ कओ ओउ—यह सौंफउत्प्लो (a[illegible]) के ओषदीकरण से प्राप्त होता है

सौंफज्वलोल सौंफिकाम्ल
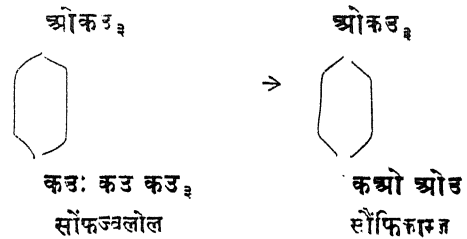
यह दारील विटपेत का समरूपी है।

प्रति कत्थिकाम्ल—Protocatechuic acid-क$_6$उ$_3$(ओउ)$_2$ कओ ओउ—यह अनेक प्रकारकी रालों, चारोंदों, चर्म-पदार्थों और पीले रंगोंमें पाया जाता है। गरम करने पर यह कत्थोलमें परिणत हो जाता है। कर्बनद्विओषिद का एक अणु निकल जाता है।

प्रति कत्थिकाम्ल कत्थोल
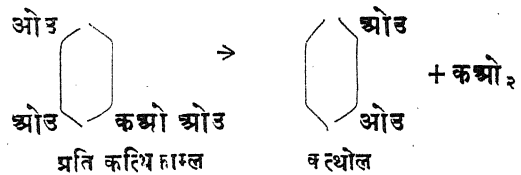
माजूफलिकाम्ल—(gallic acid)—१, २, ३, ५—त्रिउदौष बानजाविकाम्ल—क$_6$उ$_2$ (ओउ)$_3$

कश्रो ओउ—यह नीरंग सूच्याकार रवों का होता है। और कुछ चर्म पदार्थों में पाया जाता है। माजूफलसे भी यह मिलता है इसको गरम करनेसे कर्बनद्विओषिद का एक अणु निकल जाता है और प्रभ-माजूफलोल रह जाता है। लोहिक हरिदके साथ यह नीला रंग और पांशुजश्यामिदके घोलके साथ लाल रंग देता है।

माजूफलिकाम्ल का उपयोग नीली और श्याम-नील (ब्ल्यू-ब्लैक) रोशनाईके बनानेमें किया जाता है। यह लोहस गन्धेतके साथ पीत-भूरा रंग देता है जो हवामें काला पड़ जाता है। यदि इसमें थोड़ा सा भी मुक्त गन्धकाम्ल हो तो यह प्रक्रिया नहीं होती है। साधारण कागज पर लिखनेसे यह मुक्त अम्ल कागज के क्षार द्वारा शिथिल हो जाता है और रोशनाई शीघ्रही काली पड़ जाती है। इसमें थोड़ा सा नील-रंग डाल देते हैं जिससे रोशनाईमें कुछ नीला पन भी आ जाता है। इस प्रकार ब्ल्यू ब्लैक रोशनाईमें चार चीजें मुख्यतः होती हैं।

(१) माजूफलिकम्ल
(२) लोहस गन्धेत
(३) थोड़ा सा हल्का गन्धकाल
(४) नील-रंग

कुनिकाम्ल—(Quinic acid)—$क_6 उ_7 (ओउ)_4$ कश्रो ओउ—इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। सिंकोना छालमें यह पाया है। यह षष्ठ-उद-बानजाविकाम्ल का उदौष यौगिक है—

कुनिकाम्ल
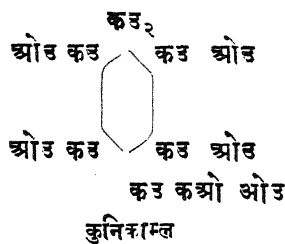
पार्श्व श्रेणीके कर्बोषिलिकाम्ल

बादामिकाम्ल—(mandelic acid)—दिव्यील उदौष सिरकाम्ल—$क_6 उ_5$ कउ (ओउ) कश्रो ओउ—बादामके कड़वे तैलमें बानजाव-मद्यानार्द्र होता है जिससे यह अम्ल तैयार किया जाता है। इसी लिये इसका नाम बादामिकाम्ल रखा गया है। कड़वे बादामोंमें स्थित अमिगडेलिन नामक द्राक्षोसिदको उदहरिकाम्ल द्वारा प्रभावित करके यह तैयार किया गया था। बानजाव मद्यानार्द्रको उदश्यामिकाम्ल द्वारा बादामिक नोषिल नामक श्याम उदिन में परिणत करते हैं। इस नोषिलके उदविश्लेषणसे बादामिकाम्ल मिलता है।

$क_6 उ_5$ कउ ओ + उकनो = $क_6 उ_5$ कउ (ओउ) कनो
↓ $उ_2$ओ
= $क_6 उ_5$ कउ (ओउ) कश्रो ओउ
बादामिकाम्ल

इसमें एक असमसंगतिककर्बन परमाणु है। दुग्धिकाम्लके समान यह दक्षिण भ्रामक यौगिक देता है इसका द्रवांक १३३ श है। यह ६ भाग जलमें १ भाग घुलनशील है।

दिव्यील सिरकाम्ल (ethyl acetic acid) $क_6 उ_5$ कउ$_2$ कश्रोओउ-बानजील हरिदको पांशुज श्यामिदके जल-मद्यिक घोलके साथ उबालनेसे बानजील श्यामिद मिलता है जिसके उदविश्लेषणसे दिव्यील सिरकाम्ल प्राप्त होता है:—

$क_6 उ_5$ कउ$_2$ ओउ + उकनो = $क_6 उ_5$ कउ$_2$ कनो
बानजील मद्य ↓
$क_6 उ_5$ कउ$_2$ कश्रोओउ
दिव्यील सिरकाम्ल

यह नीरंग रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक ७६° और क्वथनांक २६२° श इसके ओषदीकरणसे बानजाविकाम्ल मिलता है।

उद दालचीनिकाम्ल (hydrocinnamic. acid)—दिव्यील अम्रोनिकाम्ल-$क_6 उ_5$ कउ$_2$ कश्रो ओउ—सैन्धक-पारदमिश्रण द्वारा दालचीनिकाम्लका अवकरण करनेसे यह प्राप्त होता है।

$क_6 उ_5$ कउ:कउ कश्रोओउ + $उ_2$ =
दालचीनिकाम्ल

$=क_६उ_५कउ_२कउ_२$ कओओउ
उदद्दालचीनिकाम्ल

अश्वमूत्रिकाम्ल (hippuric acid)—बानजामिनो सिरकाम्ल-$क_६उ_५$कओनोउ. $कउ_२$ कओओउ—यह घोड़ोंके मूत्रमें रहता है। बानजाविक अनाद्रिद और मधुन (glycine) के संसर्गसे बनाया जा सकता है। बानजावील हरिद और मधुनसे भी मिल सकता है—

$क_६उ_५$कओह + $नोउ_२कउ_२$कओओउ
मधुन
$=क_६उ_५$ कओ नोउ $कउ_२$कओओउ
अश्वमूत्रिकाम्ल

यह नीरंग रवेदार पदार्थ है। ठंडे पानीमें अनुघुल है पर गरम पानीमें शीघ्र घुल जाता है। उद विश्लेषण करने पर बानजाविकाम्ल और मधुन (अमिनो सिरकाम्ल देता है। गरम करने पर विभाजित हो जाता है।

दालचीनिकाम्ल (cinnamic acid)—$क_६उ_५$कउकउकओओउ-यह परकिन-प्रक्रियासे बनाया जा सकता है। प्रक्रियामें बानजावमद्यानाद्रं और सैन्धक सिरकेत और सिरकिक अनाद्रिदके मिश्रणको १८०°श तापक्रम पर कई घंटे तक गरम करते हैं। मद्यानाद्रं और मज्जिकाम्लमें निम्नप्रकार संयोग होता है:—

$क_६उ_५$ कउओ + $उ_२$कउ कओओसै
बानजावमद्यानाद्रं सैन्धक सिरकेत

↓

$क_६उ_५$कउ: कउकओओसै + $उ_२$ओ
सैन्धकदालचीनेत

प्रक्रियामें जनित जल सिरकिक अनाद्रिंदको सिरकाम्लमें परिणत कर देता है और यह सिरकाम्ल सैन्धकदालचीनेतके साथ दालचीनिकाकाम्ल और सैन्धक सिरकेत देता है।

$(कउ_३कओओ)_२ओ + उ_२ओ = २\ कउ_३$ओओउ
$क_६उ_५$कउ कउ कओओसै + $कउ_३$ कओओउ

$= क_६उ_५$कउ: कउकओओउ + $कउ_३$कओओसै
दालचीनिकाम्ल

इसके नीरंग रवोंका द्रवांक १३३° है। अवकरण करने पर यह दालचीनिकाम्लमें और ओषदीकरण द्वारा बानजाव मद्यानाद्रं और बानजाविकाम्लमें परिणत हो जाता है। उद अरुणिकाम्लके साथ यह दिव्यील-ख-अरुणो-अप्रोनिकाम्ल देता है। अरुणिन्के साथ दिव्यीउ-द्वि अरुणो अप्रोनिकाम्ल देता है।

$क_६उ_५$ कउरु. $कउ_२$ कओओउ
दिव्यील-ख-अरुणो अप्रोनिकाम्ल

$क_६उ_६$ कउरु. कउरु कओओउ
दिव्यील-कख-द्विअरुणो अप्रोनिकाम्ल

कूमेरिकाम्ल—(coumaric acid)—उदौष दालचीनिकाम्ल—ओउ$क_६उ_४$ कउ: कउकओओउ—यह विटपिक मद्यानाद्रं सैन्धक सिरकेत और सिरक मद्यानाद्रं द्वारा परकिन प्रक्रियासे बनाया जा सकता है। कूमेरिकाम्लको सिरकमद्यानाद्रंके साथ प्रभावित करनेसे **कूमेरिन** नामक पदार्थ मिलता है जो टोंक्विन छीमियोंमें पाया जाता है। कूमेरिन मद्य, ज्वल और गरम पानीमें घुलनशील है।

$$क_६उ_४ \begin{cases} ओउ \\ कउ:कउ.कओओउ \end{cases} \rightarrow क_६उ_४ \begin{cases} ओ\text{-}कओ \\ | \\ कउ:कउ \end{cases}$$
कूमेरिकाम्ल कूमेरिन

इसका द्रवांक ६७° और क्वथनांक २९०° है।

द्विभस्मिकाम्ल

तीन द्वि-भस्मिक अम्ल अधिक प्रसिद्ध हैं—
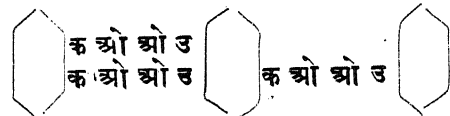
थलिकाम्ल समथलिकाम्ल परथलिकाम्ल

ये अम्ल थालिकाम्ल आदिके समान हैं।

थलिकाम्ल (Phthalic acid)—बानजावीन-पू द्विकर्बोषिलिकाम्ल—$क_6 उ_4 (क ओ ओ उ)_2$—इसका उपयोग फ्लोरोसीन, द्विव्यीलथलीन, इओसीन आदि रंगोंके बनानेमें किया जाता है। नीलके व्यवसाय में अङ्गार नीलिकाम्लमें परिणत करके इसका उपयोग करते हैं। नफ्थलीनको पारद या पारद गन्धेतकी विद्यमानतामें धूम्रगन्धकाम्लके साथ ओषदीकरण करनेसे यह प्राप्त होता है। गरमी पाकर यह उड़नशील थलिक अनाद्रिदमें परिणत हो जाता है। इसके नीरंग सूच्याकार रवोंका द्रवांक १२८° है।
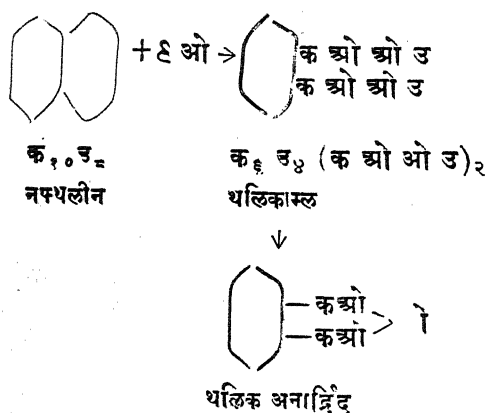
थलिक अनाद्रिदसे अङ्गार नीलिकाम्ल बनानेकी की विधि पहले लिखी जा चुकी है। थलिक अनाद्रिद अमोनियाके साथ थलिइमिद और स्फुर पंचहरिदके साथ थलील हरिद देता है।

—कओ >नोउ   —कओह
—कओ   —कओह

थलि-इमिद   थलील हरिद
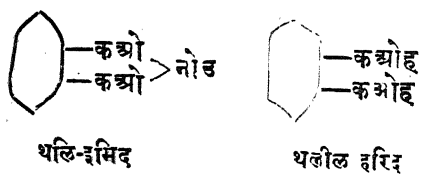
थलिक अनाद्रिद, द्विव्योल, और गन्धकाम्ल के साथ गरम करनेसे द्विव्योल थलीन (phenolphthalein) मिलता है, जिसका घोल अम्लोंके साथ नीरंग रहता है पर क्षारोंके साथ लाल रंग देता है। रेशोनोल, थलिक अनाद्रिद और तीव्र गन्धकाम्ल अथवा दस्तहरिदका मिश्रण गरम करनेसे फ्लोरोसीन रंग प्राप्त होता है जो अरुणिनके संसर्गसे इओसिन रंगमें परिणत किया जा सकता है।
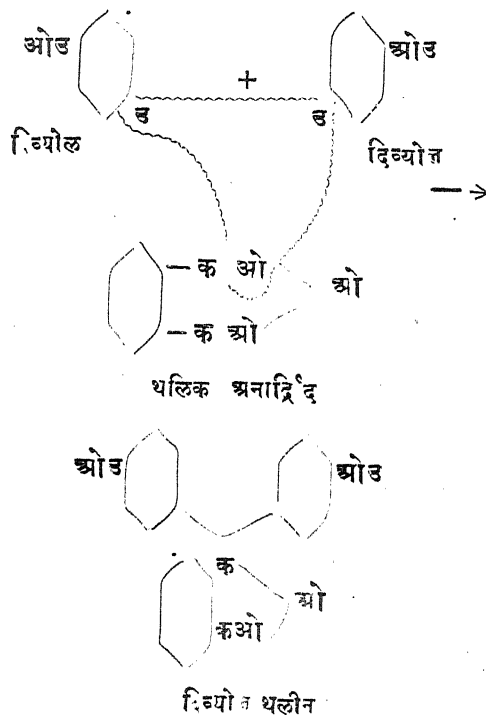
इस प्रकार फ्लोरोसीन निम्न प्रकार चित्रित किया जा सकता है—
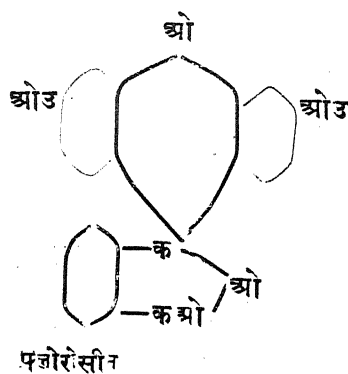
वैज्ञानिक परिमाण

१०४. कार्बनिक यौगिक

(गताङ्क से आगे)

[लेखक—श्रीसत्यप्रकाश एम. एस-सी.]

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व ग्राम/घ. शम.	द्रवांक °श	क्वथनांक °श
केलील मद्य शाक्तिक	amyl (act)	,,	८८·१	·८२५/0°	द्रव	१२९
,, द्वि—	,, (Sec.)	,,	,,	·८२५/0°	,,	११८·५/७२३
,, तृ—	,, (tert.)	,,	,,	·८१४/१५°	−१२°	१०२·५
केलील सिरकेत ख	Amylacetate	क उ$_{३}$कओ$_{२}$क$_{५}$ उ$_{११}$	१३०·१	·८७९/२०°	द्रव	१४८
खजूरिकाम्ल ग	Palmitic acid	क$_{१५}$उ$_{३१}$कओ$_{२}$उ	२५६·३	·८४६/७·६°	६२·६	२७८/१००
गन्ध नीलिकाम्ल	Sulphanilic (p)	नोउ$_{२}$क$_{६}$उ$_{४}$ गउ$_{२}$उ.२उ$_{२}$ओ	२०९·२	...	जल जाता है	...
गन्धको-मूत्रिया	Thic-urea	क ग (नो उ$_{२}$)$_{२}$	७६·१२	१४२	१८०	...
गन्धकोश्यामिकाम्ल	Thio cyanic Ac.	उ क नो ग	५९·०९	..	−१२·५	२०० विभा०
गन्धोनल घ	Sulphonal	(क उ$_{३}$)$_{२}$ क (गओ$_{२}$क$_{२}$उ$_{५}$)$_{२}$	२२८·२	—	१२५	३०० विभा०
चतुर् ब्रमण ज्व-लीलिन	Tetrabromo ethylene	क र$_{२}$ क र$_{२}$	३४३·८	...	५३	...

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व ग्राम/घ. शम.	द्रवांक °श	क्वथनांक °श
चरपरिकाम्ल	Acrylic Ac.	क उ$_{२}$:क उ क ओ$_{२}$ उ	७२·०३	१·०६२/११६°	१०	१४०
चर्बिकाम्ल	Stearic Ac.	क$_{१७}$उ$_{३५}$कओ$_{२}$उ	२८४ ३	·८४३/८०°	६९·३	२९१/१००
चर्बिन क	Stearine	(क$_{१८}$उ$_{३५}$ ओ$_{२}$)$_{३}$क$_{३}$उ$_{५}$	८९०·९	·९२४/६५°	...	...
छिद्रोज अ	Cellulose	(क$_{६}$उ$_{१०}$ओ$_{५}$)$_{क}$	(१६२·१)$_{क}$	१ ५२५	...	...
जैतूनिकाम्ल	Oleic Acid	क$_{८}$उ$_{१७}$. कउ: क उ क$_{७}$उ$_{१४}$ कओ$_{२}$ उ	२८२·३	·८९१/१२°	१४	२८६/१००
ज्वलक	Ether	(क$_{२}$ उ$_{५}$)$_{२}$ओ	७४·०८	·७१८/१७°	−११७	३४ ६
ज्वलील अम्रोनेत	Ethyl propionate	क$_{२}$ उ$_{५}$ क ओ$_{२}$- क$_{२}$ उ$_{५}$	१०२·१	·८९६/१६°	...	९९·०
” अमिन	” amine	क$_{२}$ उ$_{५}$ नो उ$_{२}$	४५·०७	·६९९/८°	−८५	१८·७
” अरुणिद	” bromide	क$_{२}$ उ$_{५}$ रु	१०८.९६	१ ४५/१५°	−११६	३८·४
” इमलेत (द)	” tartrate (d)	क$_{४}$ उ$_{४}$ ओ$_{६}$ (क$_{२}$ उ$_{५}$)$_{२}$	२०६·१	१·२०६/२०°	...	२८०
” गन्धिद	” Sulphide	(क$_{२}$ उ$_{५}$)$_{२}$ ग	९०·१५	·८३७/२०°	द्रव	९२·६
” नव नीतेत	” butyrate	क$_{३}$उ$_{७}$कओ$_{२}$- क$_{२}$ उ$_{५}$	११६·१	·८९८/१८°	...	१२०°
” नैलिद	” iodid	क$_{२}$ उ$_{५}$ नै	१५६·०	१ ९४४/१४°	द्रव	७२·३

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
ज्वलीलपारद् वेधन	Et. mercaptan	क उ$_5$ ग उ	६२·११	·८३९/२०°	–२२	३६·२
" पिपीलेत	" formate	उकओ$_2$क$_2$उ$_5$	७४·०५	·९३८/०°	...	५४·३
" बलिकेत	" valeriate	क$_4$ उ$_9$ क ओ$_2$ क$_2$ उ$_5$	१३०·१	·८७६/२०°	..	१४४·४
" बानजावेत	" benzoate	क$_6$ उ$_5$ क ओ$_2$ क$_2$ उ$_5$	१५०·१	१·०५/१६°	...	२११·२
" मद्य	" alcohol	क$_2$ उ$_5$ ओ उ	४६·०५	·७९३७/१५°	–११२·३	७८·३
" विटपेत	" salicylate	क$_6$ उ$_4$ (ओउ) कओ$_2$क$_2$ उ$_5$	१६६·१	१·१८४/२०°	...	२३१·५
" श्यामिद	" cyanide	क$_2$ उ$_5$ क नो	५५·०५	·७९४/७°	–१०३	९७
" समनवनीतेत	" Isobutyrate	(कउ$_3$)कउ–कओ$_2$क$_2$उ$_5$	११६·१	·८९०/०°	...	११०·१
" सिरकेत	" acetate	कउ$_3$कओ$_2$क$_2$उ$_5$	८८·०६	·९०३/१८°·५	–८३·८	७७·१
" सिरको सिरकेत	" aceto-acetate	कउ$_3$कओकउ$_2$ कओओक$_2$ ओ$_5$	१३०·१	१·०८/२०°	< –८०	१८१
" हरिद	" chloride	क$_2$ उ$_5$ ह	६४·५०	·९२१/०° वा २·३११	द्रव	१२·५
ज्वलीलिदिन हरिद	Ethylidene-chloride	कउ$_3$कउह$_2$	९८·९३	१·१८६/१२°	द्रव	५९·९

पदार्थ	अंग्रेज़ी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
उवलीलिन	Ethylene	क उ₂: क उ₂	२८·०३	{ द्रव ·६१ वा ·९७८४ }	−१६९	१०२·७
,, अरुणिद	,, bromid	(क उ₂ रु)₂	१८७·९	२·१९/११°	९·५	१३१ ६
,, ओषिद	,, oxide	< (क उ₂)₂ओ	४४·०३	·८९७/०°	द्रव	१३·५/७४६
,, हरिद	,, chloride	(कउ₂ ह)₂	९८·९३	१·२८/०°	−४०	८३·७
ज्वलेन	Ethane	क₂ उ₆	३०·०५	{ द्रव ·४४६/०° वा १·०३६ }	−१७१·४	−८५·४/ ७४९
ट						
टोल्वीदिन (पू)	Toluidine (o)	कउ₃क₆उ₄नोउ₂	१०७·१	·९९९/२०°	द्रव	१९७
,, (प)	,, (p)	,,	,,	१·०४६/–	४५	१९८
टोल्वीन	Toluene	क₆ उ₅ क उ₃	९२·०६	·८६६/२०°	−९७	१११
त						
तटीथलिकाम्ल (प)	Terephthalic Ac. (p)	क₆ उ₄ (क ओ₂ उ)₂	१६६·०	..	..	ऊर्ध्वपा
ताम्बूलिन (उ)	Nicotine (L)	क₁₀ उ₁₄ नो₂	१६२·२	१·०१/२०°	विभा. २५०°	२४६·७/ ७४५
तारपीन	Turpentine	क₁₀ उ₁₆	१३६·१	·८६५/१५°	...	१५९
तारपीनोल	Terpenol	क₁₀ उ₁₈ ओ	१५४ १	...	७०	...
तारपीन्योल	Terpineol	क₁₀ उ₁₇ ओ उ	१५४·१	·९३६/२०°	३५	२१८
त्रिज्वलील अमिन	Triethyl amine	(क₂ उ₅)₃नो	१०१·२	·७३५/१५°	द्रव	८९

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
त्रिज्वलीलसंचीणिन	,, arsine	(क२ उ५)३ च	१६२·१	१·१५/१७°	द्रव	{१४० ७३६ विभा}
,, स्फुरिन	,,phosphine	(क२ उ५)३ स्फ	११८·१	·८१५/१५°	द्रव	१२७/७४४
त्रिदारबानीन	Mesitylene	१:३:५,–क६उ३(कउ३)३	१२०·१	·८६९/१०°	...	१६४·५
त्रिदारील अमिन	Trimethyl-amine	(कउ३)३ नो	५९·०८	·६७३/०°	...	३·५
,, कार्बेनोल	,, carbinol	(कउ३)३कओउ	७४·०८	·७८६/२०°	२५	८२·९
,, विशद	,, bismuth	(कउ३)३ वि	२५३·१	२·३०/१८°	...	११०
,, संचीणिन	,, arsine	(कउ३)३च	१२०·०	..	...	< १००
,, स्फुरिन	,, phosphine	(कउ३)३स्फु	७६·०७	> १	द्रव	४१
त्रिनोषोबानजावीन (स)	Trinitro-benzene (s)	१: ३: ५ क६उ३–(नो ओ२)३	२१३·१	...	१२१·२	विभ्म
त्रिहरसिरकाम्ल	Trichlor-acetic acid	क ह३ क ओ२उ	१६३·४	१·६३६१°	५२·३	१९५
थलिकाम्ल (पू)	Phthalic acid (o)	क६उ४(कओ२उ)२	१६६·१	१·५९	१८०–२००	...
थलिक अनाद्रिद	Phthalic-anhydride	क६उ४(कओ)२ ओ	१४८·०	१·५३/८°	१३८	२८४
दक्षिणिन	Dextrin	क१२उ२०ओ१०	३२४·२	१·०४	...	...
दस्त ज्वलील	Zinc ethyl	द (कउ३)२	१२३·५	१·१८२/१८°	–२८	११८

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
दस्त दारील	Zinc methyl	द (कउ$_3$)$_2$	९५·४२	१·३८६/१०°	−४०	४६
द्राक्षोज (द)	Glucose d	क$_6$ उ$_{12}$ ओ$_6$ + उ$_2$ ओ	१९८·१	१·५४–१·५७	१४६	...
दारीलअम्रोनेत	Methyl propionate	क$_2$ उ$_5$ क ओ$_2$ क उ$_3$	८८·०६	·९३७/०°	..	७९·७
" अमिन	" amine	क उ$_3$ नो उ$_2$	३१·०८	·६९९/−११° वा १·०८	वायव्य	−६·७/७५६
" गन्धिद	" Sulphide	(क उ)$_2$ ग	६२·१२	·८४५/२१°	द्रव	३८
" ज्वलक	" ether	(क उ$_3$)$_2$ ओ	४६·०५	वा १·६२	वायव्य	−२३·६
" ज्वलील ज्वलक	" ethylether	क उ$_3$ ओ क$_2$ उ$_5$	६०·०६	·७२५/०°	—	१०·८
" टंकेत	" borate	(कउ$_3$)$_3$टंओ$_3$	१०४·१	·९४/०°	...	६५
" नैलिद	" iodide	क उ$_3$ नै	१४२·०	२·२८५/१५°	द्रव	४२·३
" नोषित	" nitrite	क उ$_3$ नो ओ$_2$	६१·०३	·९९१/१५°	...	−१२
" नोषेत	" nitrate	क उ$_3$ नो ओ$_3$	७७·०३	१·२१७/१५°	द्रव	६५ विभा०
" पारद वेधन	" mercaptan	क उ$_3$ ग उ	४८·०९	...	..	५·८/७५२
" पिपीलेत		उकओ$_2$कउ$_3$	६०·०३	·९८६/११°	...	३१·९
" मद्य	" formate	क उ$_3$ओउ	३२·०३	·७९६/१५°	−९·४९	६४·७
" विट पेत	" alcohol	क$_6$उ$_4$ (ओउ) कओ$_2$कउ$_3$	१५२·१	१·१८२/१५	−३०	२२४

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
दारील समनवनीतेत	me. isobutyrate	(कउ$_3$)$_2$कउकओ$_2$ क.उ$_3$	१०२.१	.९१२ ०°	...	९२ ३
" सिरकेत	" acetate	कउ कओ$_2$ कउ$_3$	७४.०५	.९४१/१४°	−१०१ २	५७ १
" स्फुरिन	" Phosphine	(कउ$_3$)$_3$ स्फु उ$_3$	४८ ०४	...	वायव्य	−१४
" हरिद	" Chloride	क उ$_3$ ह	५०.८४	.९२०/१८° वा १ ७३	...	−२४.१
दारीलिन अरुणिद	Methylene-bromide	क उ$_2$ रु$_2$	१७३ ९	२ ४९३	...	९८.५
दारेन	Methane	क$_1$ उ$_4$	१६.०३	द्रव .४१६/−१६४	−१८४	−१६४
दालचीनिकअम्ल	Cinnamic acid	क$_6$उ कउ:कउ कओओउ	१४८ १	१.२४७	१३३	३००
" मद्यानार्द्र	" aldehyde	क$_6$उ$_5$कउ: कउकउओ	१३२ १	१.०५/२४°	−७ ५	...
दिव्यील उदाजीविन	Phenyl hydrazine	क$_6$ उ$_5$ नोउनो उ$_2$	१०८ १	१.१/२३°	२३	२३३
" श्यामिद	" cyanide	क$_6$ उ$_5$ क नो	१०३.१	१.००८/१७°	−१७	१९०
" सिर काम्ल	" acetic acid	क$_6$ उ$_5$ क उ$_2$ क ओ$_2$ उ	१३६ १	१ २३	७६.५	२६५
दिव्योल	Phenol	क उ$_5$ ओ उ	९४.०५	१.०६/३३°	४२ ७	१८१ ५

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
दुग्धस्योज	Galactose	$क_६ उ_{१२} ओ_६$	१८०·१	...	१६३	...
दुग्धोज	Lactose	$क_{१२} उ_{२२} ओ_{११} + उ_२ ओ$	३६०·२	१·५२५/२०°	२०३ विभा	विभा
दुग्धिकाम्ल	Lactic acid	$कउ_३ कउओउ कओ_२उ$	९०·०५	१·२४८/१५°	...	८३/१ सम.
देवदारम	Furfural	$क_४उ_३ओकओउ$.–	९६·०३	१·१५९/२०°	द्रव	१६१
द्विज्वलील अमिन	Diethyl amine	$(क_२उ_५)_२नो उ$	७३·१३	·७०६/२०°	–४०	५५·५
” नीलिन	„ aniline	$(क_२उ_५)_२नोक_६उ_५$	१४९·२	·९४/१°	द्रव	२१३·५
” सिरकोन	„ acetone	$(क_२ उ_५)_२कओ$	८६·०८	·८३/०°	...	१०३
द्विदारील अमिन	Dimethyl-amine	$(कउ_३)_२ नोउ$	४५·०७	·६८६/–६°	द्रव	८ से ९
” इमलेव	Dimethyl-tartrate	$(कउ_३)_२क_४उ_४ओ_६$	१७८·१	१·३४१/१५°	४८	२८०
द्विदिव्यील	Diphenyl	$क_६उ_५.क_६उ_५$	१५४·१	१·१६	७०·५	२५५
” ” अमिन	” amine	$(क_६उ_५)_२ नोउ$	१६९·१	१·१५९	५४	३१०
द्विनोषोबानजावीन (म)	Dinitro-benzene (m)	$क_६उ_४(नोओ_२)_२$	१६८·१	१·३७	९१	२९७
द्विसिरकील	Diacetyl	$कउ_३कओ कओ.कउ_३$	८६·०५	·९७३	...	८७·७
द्विहर सिरकाम्ल	Dichloracetic Acid	$ह_२कउकओ_२उ$	१२८·९	१·५२२/१५°	–४	१९०

पदार्थ	अंग्रेज़ी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
न						
नफ्थलिन	Naphthalene	क$_{10}$ उ$_8$	१२८·१	१·१५२/१५°	८०	२१८·१
नफ्थील अमिन (क)	Naphthyl-amine 'a	क$_{10}$ उ$_7$ नो उ	१४३·१	...	५०	३००
नफ्थोल (क)	Naphthol 'a	क$_{10}$ उ$_7$ ओ उ	१४४·१	१·२२४/४°	९५	२७९
नवनीतिकाम्ल (सा)	Butyric acid (n)	क$_3$ उ$_7$ कओ$_2$ उ	८८·०६	·९६/१९°	-८	१६२·३
,, (स)	,, -iso	(क उ$_3$)$_2$ कउ कओ$_2$ उ	८८·०६	·९५०/२०°	७९	१५५
नवनीतीलकर्बिनोल (तृ)	Butylcarbinol (tert.)	(क उ$_3$)$_3$ क क उ$_2$ ओ उ	८८·१	·८१२/२०°	५२	११३
,, ज्वलक	Butyl ether	(क$_4$ उ$_9$)$_2$ ओ	१३०·१	·७७/२०	...	१४१
,, मद्य (सा)	Butyl alcohol (n)	क$_4$ उ$_9$ ओ उ	७४·०८	·८१/२०°	द्रव	११७·५
,, ,, (द्वि)	,, -sec.	क उ$_3$ क उ ओ उ क$_2$ उ$_5$	,,	·८१९/२२	...	९९·८
,, हरिद	,, chloride	क$_4$ उ$_9$ ह	९२·५३	·८८७/२०°	द्रव	७८
नीबूइकाम्ल	Citricacid	(कउ$_2$कओ$_2$उ)$_2$ क(ओउ) कओ$_2$ उ + उ$_2$ ओ	१९२·१	१·५४	१५३	विभा.

पदार्थ	अंग्रेज़ी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व ग्राम/घ. शम.	द्रवांक °श	क्वथनांक °श
नील	indigo	$क_{१६}उ_{१०}नो_२ओ_२$	२६२·२	१ ३५	...	ऊर्ध्वगा. १५६°
नीलिन	Aniline	$क_६ उ_५ नो उ_२$	९३ ०७	१ ०२२/१५°	–८	१८३·९
नैलो पिपील	Iodoform	$क उ_३ नै$	३९३ ८	२·२५/२५°	११९	ऊर्ध्वगा· और विभा
नोषो ज्वलेन	Nitroethane	$क_२ उ_५ नो ओ_२$	७५·०८	१·०५६	१९४-१९६	११४·४
" दारेन	" methane	$कउ_३ नो ओ_२$	६१·०७	१·१४४/१५°	द्रव	१०१·७
" बानज़ावीन	" benzene	$क_६ उ_५ नो ओ_२$	१२३·१	१ १८७/१४°	३ ६	२०९·४/७४५
प						
पंचदारीलिन	Pentamethylene	$(क उ_२)_५$	७०·०८	·७५१/२०°	...	५०·६
" " द्विअमिन	" " diamine	$नो उ_२(कउ_२)_५ –नो उ_२$	१०२ २	·९१७/०°	...	१७८
पंचेन	Pentane	$क_५ उ_{१२}$	७२·१	·६३४/१५°	द्रव	३६°·२
परमद्यानार्द्र	Paraldehyde	$(क उ_३क उ ओ)_३$	१३२ १	·९९४/२०°	१०५	१२४
पर माजूफलोल	Pyrogallol	$१: २: ३: क_६ उ_३ (ओ उ)_३$	१२६ १	१ ४६/४०°	१३३	२९३
पारद दारील	Mercury methyl	$(क उ_३)_२ पा$	२३०·०	३·०७	द्रव	९६
पिपीलिकाम्ल	Formic Acid	उ क ओ ओ उ	४६ ०२	१ २२/२०°	८ ६	१००·८

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
पिपील मद्यानार्द्र	Formaldehyde	उ क उ ओ	३० ०२	·८१५/२०°	..	-२१
पिरीदीन	Pyridine	क५ उ५ नो	७९ ०८	·९८५/१५°	द्रव	११७
पौधजिन (उ)	Asparagin (l)	क२ उ३ नो उ२ कओ२उकओ-नो उ२	१३२ १	१·५५/४°	विभा.	विभा
प्रबलिकाम्ल	Picric Acid	१: २: ४: ६ क६ उ२(ओउ) (नो ओ२)३	२२९·१	१·८१३	१२२·५	विस्फु
प्रभद्राक्षिनोल	Phloroglucinol	१: ३: ५, क६उ३ (ओउ)३ २उ२ओ	१६२ १	..	२१८ अनाद्रिद	ऊर्ध्वपा
प्रभोल	Pyrrol	(क उ)४ >नो उ	६७ ०८	·९६७/२१°	द्रव	१३१
प्लव बानजावीन	Fluorbenzene	क६ उ५ प्ल	९६ ०४	१·०२४/२०°	४०°	८५·२
ब बलिकाम्ल (सा)	Valeric Acid (n	क४ उ९ क ओ२उ	१०२ १	·९४३/२०°	-५८·५	१८६·४
बानजावमद्यानार्द्र	Benzaldehyde	क६ उ५ क उ ओ	१०६ १	१·०५/१५°	१३°·५	१७९·५
बानजाविकाम्ल	Benzoic acid	क६ उ५ क ओ२ उ	१२२ ०	१·२०/२१°	१२१·४	२४९·२
बानजावान	Benzene	क६ उ६	७८ ०५	·८७९/२०°	५·४	८०·२
बानजीलमद्य	Benzyl alcohol	क६उ५क उ२ओउ	१०८ १	१·०४३/२०°	द्रव	२०६·५

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
बानजोइलहरिद	Benzoyl chloride	$क_६ उ_५ क ओ ह$	१०४५	१·२१२ २०°	−१	१९८/७४९
बानजावोदिव्योन	Benzophenone	$क_६ उ_५ कओक_६ उ_५$	१८२·१	१·०९८/५०°	४८	३०६
बेरील ज्वलील	Berylluim-ethyl	$बे (क_२ उ_५)_२$	६७ १८	...	..	१८७
बोर्निओल (अ)	Borneol (i)	$क_{१०} उ_{१७} ओ उ$	१५४ १	१·०१	२१०	ऊर्ध्वपा
म						
मंजेष्ठिन	Alizarine	$क_६ उ_४ (कओ_२)_२ क_६ उ_२ (ओ उ)_२$	२४०·१	...	२९०	४३०
मधुओकोल (मधुन)	Glycocoll	$क उ_२ नो उ_२ क ओ_२ उ$	७५·०८	१·१६१	२३४	...
मधुओल	Glycol	$(क उ_२ ओ उ)_२$	६२·०५	१.१२५/२५°	−१७·४	१९७·४
मधुओलिकाम्ल	Glycollic acid	$क उ_२ ओ उ — क ओ_२ उ$	७६ ०३	...	७८	विभा
मधुकाष्ठ	Glyoxol	$(कउओ)_२$	५८ ०२	...	...	विभा १६०
मधुकाष्ठिकाम्ल	Glyoxalic-acid	$क उ ओ कओ_२ उ + उ_२ ओ$	९२·०३	चासनी	...	भाप से
मधुरिन	Glycrine	$कउ_२ ओउ क उ· ओ उ क उ_२ ओ उ$	९२·०६	१·२६/२०°	१७	२९०
उगजीरिन	Pseudo cumene	$१: २: ४ क_६ उ_३ (क उ_३)_३$	१२०·१	·८७९ २०°	...	१६९·८

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व ग्राम, घ शम.	द्रवांक श	क्वथनांक श
मूत्रिया	Urea	(नो उ)$_{२}$ क ओ	६० ११	१.३२	१३२	विभा
य						
यवोज्	Maltose	क$_{१२}$ उ$_{२२}$ ओ$_{११}$ + उ$_{२}$ओ	३६० २	१.५४/१७	...	...
यूकेलिप्टोल	Eucalyptol	क$_{१०}$ उ$_{१८}$ ओ	१५४ १	·९२७/२०	–१	१७६
र						
रालिकाम्ल	Succinic acid	(क ओ$_{२}$ उ)$_{२}$ (क उ$_{२}$)$_{२}$	११८ ०	१·५५	१८५	२३५
रोशीललवण(द)	Rochelle Salt d	पांसै क$_{४}$ उ$_{४}$ ओ$_{६}$	...	...	...	...
व						
वंग चतुर्दारील	Sntetramethyl	वं (कउ$_{३}$)$_{४}$	१७९ १	१·३१४	...	७८
वनीन - पू-	Xylene (o)	क$_{६}$ उ$_{४}$(कउ$_{३}$)$_{२}$	१०६·१	·७५६/१४°	–२८	१४२
" - म-	" (m)	"	"	·८७८/०°	–५४	१३९·८
" - प	" (p)	"	"	·८६२/२०°	१५	१३८
विटपिकाम्ल	Salicylic acid	ओ उ क$_{६}$ उ$_{४}$ क ओ$_{२}$ उ	१३८ ०	१.४८/४	१५८	ऊर्ध्वपा
विशद त्रिज्वलील	Bismuth tri ethyl	वि (क$_{२}$ उ$_{५}$)$_{३}$	२९५·१	२·३/१८	...	२०७

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
श						
शर्करा-(गन्ना)	Sugar-cane	क उ$_{१२}$ओ	३४२ २	१·५८८ २०°	...	१६०
शर्करिन	Saccharine	क$_{६}$ उ$_{४}$ (क ओ ग ओ > नो उ	१८३·१	...	२२०° विभा	...
श्यामजन	Cyanogen	क$_{२}$ नो$_{२}$	५२ ०२	द्रव ·८६६ /१७२° वा १·८०६	−३५	−२०·७
श्यामिकाम्ल	Cyanic acid	उ क नो ओ	४३ ०२	१·१४, ०	द्रव	विभा०
ष						
षष्ठेन	Hexane	क$_{६}$ उ$_{१४}$	८६·१२	·६५८, २१°	द्रव	६९
,-द्विसम अमील	„ di iso-propyl	[(क उ$_{३}$)$_{२}$कउ]$_{२}$	८६·१२	·६६८, १७°	„	५८·१
स						
सप्तेन	Heptane	क$_{७}$ उ$_{१६}$	१००·१	·६६८, १५°	..	९८ ४
सम अमीलअमिन	Iso propyl amine	(कउ$_{३}$)$_{२}$कउ नोउ	५९·११	·६९०, १८°	द्रव	३१·५/७४३
„ „ मद्य	„ „ alcohol	(कउ$_{३}$)$_{२}$ उ क (ओ उ)	६०·०६	·७८९, २०°	„	८२·८
„ „ श्यामिद	„ „ cyanid	(क उ$_{३}$)$_{२}$ क उ क नो	६९·०७	...	„	१०७-१०८
„ „ सिरकेत	„ „ acetate	क उ$_{३}$क ओ$_{२}$क उ (क उ$_{३}$)$_{२}$	१०२·१	·९१७	...	९०—९३

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
सम कुनोलिन	Iso quinolin:	क$_{६}$उ$_{४}$क$_{३}$उ नो	१२९·१	१·०९८ २०°	२४·६	२४०
समकेलील मद्य	Iso amyl alcohol	(क उ$_{३}$)$_{२}$क उ (कउ$_{२}$)$_{२}$ओउ	८८·१	·८१ २०°	-१३४	१२९·७
,, ,, सिरकेत	,, acetate	क उ$_{३}$ क ओ$_{२}$ क$_{५}$उ$_{११}$	१३०·१	·८७६ १५°	—	१४०
समनवीनीति काम्ल	Isobutyric acid	(कउ$_{३}$)$_{२}$ क उ क ओ$_{२}$ उ	८८·०६	·९४९ २०°	-७९	१५५·५
सम नवनीतील अमिन	Iso butyl amine	(क उ$_{३}$)$_{२}$ क उ कउ$_{२}$नोउ$_{२}$	७३·१३	·७३६/१५°	—	६८
,, ,, मद्य	,, alcohol	(क उ$_{३}$ $_{२}$ क उ कउ$_{२}$ ओ उ	७४·०८	·८००/१८°	द्रव	१०८४
सम नवनीतेन	Iso butane	कउ$_{३}$ $_{२}$क उकउ$_{३}$	५८ ०८	—	—	११६·३
सम पंचेन	Iso pentane	(कउ$_{३}$)$_{२}$क उ- क उ$_{२}$ क उ$_{३}$	७२ १०	·६२८/१४°	—	२७९
सम वलिकाम्ल	Isovaleric acid	कउ$_{३}$)$_{२}$क उ- कउ$_{२}$कओ$_{२}$उ	१०२·१	·९६१/२०°	-५१	१७६·३
सिरकमद्यानार्द	Acetaldehyde	क उ$_{३}$क उ ओ	४४ ०३	·७८८/१६°	-१२०	२०·८
सिरकाम्ल	Acetic acid	क उ$_{२}$क ओ$_{२}$उ	६०·०३	१·०५/२०°	१६७	११८·५
सिरकीलिन	Acetylene	क$_{२}$ उ$_{२}$	२६·०२	·४६/-७° वा ·९१	-८१·५/ ८९५	-८५

पदार्थ	अंग्रेजी नाम	सूत्र	अणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक
सिरकोन	Acetone	क उ$_3$कओ कउ$_3$	५८.०५	·७९७ १५°	–९५	५६·५
सिरको सिरकिक सम्मेल	Acetocetic-ester	कउ$_3$कओकउ$_2$ कओ$_2$क$_2$उ$_5$	१३०·१	१·०२८ २०°	–८०	१८१
सेविकाम्ल (अ)	Malic acid i	कओ$_2$उ·कउओउ कउ$_2$कओ$_2$उ	१३४·०	१·६० २०°	१३०-१	--
सेवोनिकाम्ल	Malonic acid	कउ$_2$ (कओ$_2$उ)$_2$	१०४·०	—	१३२	विभा
सैन्धक ज्वलील	Sodium ethyl	सै क$_2$ उ$_5$	५२·०४	—	—	--
सौंकोल	Anisol	क$_6$उ$_5$ओकउ$_3$	१०८.१	·९९ २५°	-३७.८	१५५
स्लिरिवन (प)	Cymene (p.	कउ$_3$ क$_6$ उ$_4$ क उ$_3$	१३४ १२	·८५२/२५°	द्रव	१७५
ह						
हरल उदेत	Chloralhydrate	क ह$_3$ क उ (ओ उ)$_2$	१६५.४	१.९	–५७	९७.५
हर सिरकाम्ल	Chloracetic acid	ह क उ$_2$कओउ$_2$	९४·४८	१·३९ ७५°	६३°	१८६°
हरो पिपील	Chloroform	क उ ह$_3$	११९.४	१·५२६/०°	–७०	६१.२
हरो बानजावीन	Chloro-benzene	क$_6$ उ$_5$ ह	११२.५	१.११८/१०°	–४०	१३२

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Yijnana, the Hindi Organ of the Yernacular Scientific Society Allahabad

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफेसर ब्रजराज,

एम० ए०, बी० एस-सी०, एल० एल० बी०

श्रीयुत सत्यप्रकाश,

विशारद एम० एस-सी

भाग २७

मेष-कन्या १९८५

प्रकाशक

विज्ञान परिषत्‌ प्रयाग ।

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

औद्योगिक रसायन

गणित

जीव-विज्ञान

दर्शन शास्त्र

भौतिक शास्त्र

रसायन शास्त्र

बनस्पति शास्त्र

मिश्रित

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

- मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
- स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम-बी., बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० ... बी० के मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

- भाग १ ... ... २॥)
- भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ॥)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रायग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१६३ Reg. No. A.708

भाग २८ Vol. 28. तुला १६८५ संख्या १ No. 1

अक्टूबर १६२८

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] **विज्ञान-परिषत्, प्रयाग** [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २८ } तुला संवत् १९८५ { संख्या १

घोल

[लेखक—श्री वा० वि० भागवत (शिवाजी क्लब)]

दि पानीमें लवण मिलाया जाय, ते वह तुरन्त ही अदृश्य हो जाता है। फिर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पानी का नमक कहां गया? आंखोंसे देख कर आप यह नहीं कह सकते कि लवण पानीमें है लेकिन थोड़ा सा पानी चखते ही आपको उसमें लवण का स्वाद मालूम हो जायगा। इस प्रकारके पानी लवण संयोगको घोल कहते हैं।

एक ग्लास भर पानी लीजिये और उसमें लवण मिलाते चले जाइये कुछ देरमें आपको यह मालूम हो जायगा कि अधिक लवण पानीमें अदृश्य नहीं होता, लेकिन नीचे बैठ जाता है। जैसे पेट भरा हुआ आदमी फिर अधिक नहीं खा सकता वैसा ही हाल अब पानी का हुआ है। पानीमें और नमक नहीं मिलाया जा सकता। इस स्थितिमें घोलको संपृक्त घोल (Saturated solution) कहते हैं।

अब उसी घोलको थोड़ा गरम करो, और पानी की तरफ ध्यान दो। आपकी दृष्टिमें यह आगया कि और भी नमक पानीमें चला जा रहा है। जैसे जैसे पानी अधिक गरम होगा वैसा वैसा उसमें अधिक लवण मिश्रित हो जायगा। इस से हम यह कह सकते हैं कि जैसे जैसे तापक्रम बढ़ता है वैसे वैसे मिश्रित पदार्थ अधिक अधिक घुलता जाता है।

यह देखा गया है कि मिश्रित पदार्थ अदृश्य हो जाता है और जिसमें वह मिलाया गया वह पदार्थ दृश्य ही रहता है अतः मिश्रित पदार्थको घुलनशील (Solute) और दूसरेको घोलक (Solvent) कहेंगे।

जो गरम घोल तयार किया है उसमें कुछ न गिर सके ऐसी तरहसे ढाक दो। उसके बाद उसे धीरे धीरे ठंडा करो। कुछ देरसे आप उसी तापक्रम

पर आ जावेंगे कि जिससे आपने गरम करना शुरू किया था। आप यह जान सकते हैं कि घोलमें अब इस तापक्रम पर संपृक्त घोलकी आवश्यकतासे अधिक नमक है। वह अधिक लवण नीचे बैठ जाना चाहिये; लेकिन देखिये, वह लवण नीचे बैठा है। आप अब उसमें लवण का बहुत ही छोटा टुकड़ा छोड़ दीजिये। तुरन्त ही जो लवण संपृक्त घोलसे अधिक था वह बैठ जायगा ऐसे मिश्रणको परिसंपृक्त घोल (Super saturated solution) कहते हैं। आप यह प्रश्न उपस्थित करेंगे कि परिसंपृक्त घोल क्यों तैयार हुआ। जो लवण अधिक था वह नीचे क्यों नहीं बैठ गया? वैसे ही नमकका छोटा सा टुकड़ा डालते ही वह नीचे कैसे चला आया? आपकी शङ्का यथोचित है उसके समाधानके लिये एक दृष्टांत देता हूँ। किसी आदमीको एक गांवसे दूसरे गांव जाना है। वह यदि पैदल गया तो उसे वहां पहुँचनेमें बहुत देर लगेगी। वह यदि घोड़ेके ऊपर सवार होके निकला तो तुरन्त ही पहुँच जायगा। इसी तरह जो लवण पानीमें अधिक था वह नीचे आना चाहता था लेकिन उसको कुछ वाहन (Nuclei) न मिलनेसे वह जल्द न आ सका शायद बहुत देरमें वह नीचे बैठ जाता। लेकिन नमकका एक टुकड़ा डालते ही उसको वाहन मिल गया और नमक के छोटे छोटे परमाणु उस पर इकट्ठे होकर सब लवण नीचे चला आया। इस तरह उस घोलकी परिसंपृक्तता नष्ट हो गयी।

इन सब बातोंसे घोल, संपृक्त घोल और परिसंपृक्त घोलका भेद मालूम हो गया। यदि कोई मिश्रण दिया जाय तो उसमें घुलनशील वस्तु (Solute) मिलानेसे वह घुल जाय तो वह मिश्रण केवल घोल है। यदि अदृश्य न हो तो वह संपृक्त घोल है। यदि मिश्रणसे घुलनशील वस्तु नीचे बैठने लगे तो वह परिसंपृक्त घोल है। इस तरह कोई मिश्रण घोल है या संपृक्त घोल या परिसंपृक्त घोल है यह समझा जा सकता है।

घोलके कई प्रकार होते हैं। कुछ भेद नीचे लिखे जाते हैं:—

(१) ठोस पदार्थों में ठोस पदार्थ मिलाकर.
(२) द्रव पदार्थों में द्रव पदार्थ मिलाकर.
(३) वाष्परूप पदार्थोंमें वाष्परूप पदार्थ मिलाकर
(४) द्रव पदार्थों में ठोस पदार्थ मिलाकर.
(५) द्रव पदार्थों में वाष्परूप पदार्थ मिलाकर
(६) ठोस पदार्थों में वाष्परूप पदार्थ मिलाकर

इन सब घोलोंका हम क्रमशः अब वर्णन देंगे।

(१) ठोस पदार्थों में ठोस पदार्थ मिलाकर।

इस प्रकारके घोलका ज्ञान प्राथमिक स्थितिमें समझना कठिन होनेसे इसका किसी दूसरे लेखमें वर्णन देंगे।

(२) द्रव पदार्थोंमें द्रव पदार्थ मिलाकर।

पानी और दूधका संयोग इस प्रकारसे होता है। पानी और मद्यसे इसी प्रकारका घोल तैयार होता है। लेकिन इस प्रकारके घोलपर उष्णताका क्या परिणाम होता है, इसमें घोलक (Solute) का कौनसा? और घोल्य (Solvant) कौनसा यह सब बातें स्रवण प्रक्रिया (distillation) का अध्ययन करते वक्त पूर्णतासे विचार करेंगे पूर्व इतना ही द्रवघोलके विषयमें काफी है।

(३) वायव्य पदार्थोंमें वायव्य पदार्थ मिलाकर।

कोई भी वायु किसी भी वायुके साथ एक रूप हो जाता है। याने सब तरहके वायु आपसमें मिलजाकर वायु घोल बनाते हैं। यह भी देखा गया है कि एक वायुका कितना भी अंश दूसरे वायुके कितने भी अंश में मिल जा सकता है। और इस घोलका इकट्ठा दबाव (pressure) घोलके विभागोंके पृथक दबावके योगके बराबर होता है। इसको डाल्टनका पृथक् दबावका नियम कहते हैं।

जो 'अ' और 'ब' ऐसे दो वायव्य हों और अ का पृथक् दबाव 'आ' हो और 'ब' का 'ई' हो, और अ, ब के घोलका दबाव 'उ' हो तो डाल्टनके 'पृथक्दबावके' नियमसे

उ = आ + ई.

(४) द्रव पदार्थोंमें ठोस पदार्थ मिलाकर

नमक और पानीका जो उदाहरण प्रथम दिया है उसका अन्तर्भाव इसी प्रकारसे होता है। इस प्रकार में द्रव पदार्थको घोल्य (Solvant) और ठोस पदार्थको घोलक (Solute) समझते हैं। घोलका एक निश्चित परिमाण हरएक घोल्यके वास्ते हरएक तापक्रम पर निश्चित है। इससे ज्यादा घोलक घोल्यमें नहीं मिल सकता। इस परिमाणको घुलनशीलता (Solubility) कहते हैं। साधरणतः १०० ग्राम घोल्यमें जितना घोलक मिल जाता है, उसे घुलनशीलता कहते हैं। यह घुलनशीलता तापक्रम बढ़ानेसे बढ़ती जाती है। किसी घोलकमें यह बहुत बढ़ता है। किसीमें कम बढ़ाता है।

कुछ कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जिनकी घुलनशीलता तापक्रम बढ़ानेसे कम होती है लेकिन ऐसे पदार्थ बहुत ही थोड़े हैं। खटिक नीबूरत गरम जलमें ठंडेकी अपेक्षा ज्यादा घुल जाता है। सैन्धक गन्धेतके विषयमें, यह घुलनशीलता ३३° तक बढ़ती है और फिर कम होती जाती है इसका कारण यह है कि ३३ के नीचे उसमें पानीके १० जलाणु मिले हुये रहते हैं और यह जलाणु ३३° के ऊपर निकल जाता है और दूर पानी निकल गये हुये सैन्धक गन्धेत की घुलनशीलता कम है। किसी भी ठोस पदार्थ की घुलनशीलता उसके परमाणुकी सूक्ष्मता पर अवलंबित रहती हैं। पदार्थ जितना सूक्ष्म हो उतनी ही उसकी घुलनशीलता बढ़ती जाती है। और गन्धेत पानीमें बहुत ही कम घुलता है लेकिन उसकी घुलनशीलता सूक्ष्म स्थितिमें बड़े परमाणुसे अधिक रहती है।

(५)—द्रव पदार्थोंमें वायुरूप पदार्थ मिलाकर।

जैसे ठोस पदार्थ द्रव पदार्थों में मिल जाते हैं वैसे ही वायु-पदार्थ द्रव-पदार्थोंसे संमिलित हो सकते हैं। ओषजन (oxygen) उद्जन, कर्बनद्विओषिद और अनेक वायव्य पदार्थ घुलनशील हैं। ओषजनकी घुलनशीलता पर ही जलचरोंका जीवन अवलंबित है। सब प्राणियोंके जीवनके लिये ओषजनकी आवश्यकता है। ओषजन रहित स्थानमें कोई भी प्राणी जिन्दा नहीं रह सकता। जलचर यह ओषजन पानीसे लेते हैं। इससे पानीमें ओषजन घुला होता है यह बात सिद्ध है क्योंकि यह भी देखा गया है कि जब पानी उबाला जाता है तो उसमेंसे ओषजन बाहर निकलता है और ऐसे उबले हुये पानीमें ओषजन न होनेसे जलचर मर जाते हैं, वायव्योंकी घुलनशीलता दो बातों पर अवलम्बित होती है। एक तापक्रम और दूसरा बाह्यदबाव। हिमजनके सिवाय जल-वायव्यों की घुलनशीलता तापक्रम बढ़ानेसे कम हो जाती है, लेकिन हमने यह देखा है कि ठोस पदार्थोंके विषयमें वह बढ़ती है। यही ठोस और वायु घोलमें भेद है। हिमजन वायुके विषयमें कुछ देर तक यह घुलनशीलता तापक्रमके साथ बढ़ती है लेकिन फिर वह कम होने लगती है। वायव्योंके विषयमें बाह्यदबाव का भी ध्यान देना जरूर है। जैसा जैसा दबाव बढ़ता जाता है वैसी वैसी घुलनशीलता बढ़ती जाती है। यदि घुली वायुका आयतन बाह्यदबाव जितना हो तो हम यह कह सकते है कि कितना भी बाह्य दबाव हो निश्चित तापक्रम पर वायव्यका निश्चित आयतन द्रव पदार्थमें घुलेगा। इसको हेनरीका सिद्धान्त कहते हैं। वायव्य पदार्थों की घुलनशीलता घोल्य और घोलकके पारस्परिक रासायनिक स्वभाव पर भी (Chemicul nature) अवलम्बित है। जैसे पानीमें कर्बनद्विओषिदसे अमोनिया अधिक घुलता है।

(६)—ठोस पदार्थोंमें वायव्य पदार्थ मिलाकर—

यह घोलका छठवां और अन्तिम प्रकार है पररौप्यम् या पैलादम् में उद्जन मिल जाता यह इस प्रकारका उदाहरण है यहां इनकी मीमांसा करना उचित नहीं है और यह एक भिन्न ही विषय है इस लिये इसके विषयमें यहां और अधिक कहनेसे कुछ लाभ नहीं हैं।

इस लेखमें घोलका और उनके प्रकारोंका सामान्य उल्लेख किया गया है।

मांसाहारी पौधे

(Insectivorous या Carnivorous plants)

[ले० श्री० एम. के. चटरजी एम. एस-सी.]

यों तो पौधे अपना भोजन अपने आप बना लिया करते हैं और बाहरसे जीवोंसे उत्पन्न हुए द्रव्यों का उपयोग नहीं करते। साधारण रूपमें पौधे अपना भोजन जल; जलमें घुले हुए धातु और वायुसे कर्बन द्विओषिद (क ओ₂) लेकर बना लेते हैं। सूर्य्यका प्रकाश इन पदार्थों से अन्य यौगिक बननेके लिये आवश्यक है और ये वस्तु नाना प्रकारकी शक्करें और माँडमें परिणत हो जाती हैं—साधारण रूपसे निम्नलिखित क्रियासे शक्कर बनती है।

$$\text{कओ}_2 + \text{उ}_2\text{ओ} = \text{कउओउ} + \text{ओ}_2 \ldots\ldots(१)$$

$$\text{कउओउ} = \text{क}_6\text{उ}_{12}\text{ओ}_6 \ldots\ldots(२)$$

पौधोंकी पर्णहरिन (chlorophyll) को भोजन बनाने का कारखाना समझना चाहिये और यह पर्णहरिन जिन पौधोंमें नहीं होती उनको अपने जीविका निर्वाहके हेतु दूसरे पौधों या जीवोंका सहारा लेना पड़ता है। यथा :—

फफूंदी और जीवाणु (Fungi Bacteria) कुछ समयसे ऐसी एक जातिके पौधों पर बहुत ध्यान दिया गया है जोकि अपना भोजन साधारण उपायसे बनाने के अतिरिक्त बाहरी जीवित कार्बनिक वस्तुओंका उपयोग करते हैं और ये जीवित वस्तु-नाना प्रकारके छोटे-छोटे कीड़े मकोड़े हैं। यह निरीक्षण किया गया है कि यह छोटे-छोटे कीड़े मकोड़े पौधोंके लिये अत्यन्त आवश्यक नहीं हैं और इनके न खानेपर यह जीवित रह सकते हैं पर इन कीड़ों मकोड़ोंके मिलनेसे इन पौधोंमें सन्तानोत्पत्तिकी शक्ति बढ़ जाती है और कीड़े मकोड़े के खानेसे वे कहीं अधिक हृष्ट पुष्ट रहते हैं।

पृथिवी पर अनेक प्रकारके माँसाहारी पौधे उगते हैं पर भारतवर्षमें केवल दो प्रकारके पाये जाते हैं एक तो ड्रोसेरा (Drosera) या सनड्यू (Sundew) और दूसरी अरटिकुलेरिया (Urticularia) या ब्लेडरवर्टस लेकिन साधारण प्रकारसे माँसाहारी पौधे निम्नलिखित पांच (५) कक्षाओंमें विभक्त किये गये हैं।

(१) ड्रोसेरेसी—Droseraceae
(२) निपेन्थेसी—Nepenthaceae
(३) सेरासिनियेसी—Saraceniaceae
(४) सिफेलोटेसी—Cephalotaceae
(५) मेटाक्लेमीडी—Metachlamydeae

जिसमें अरटिकुलेरिया, पिंगुइकुला (Pinguicula) और लेन्टिबुलेरियेसी (Lentibulariaceae) आ जाती हैं।

उक्त लिखित कक्षाओंमें से एक को लेकर उनका थोड़ा थोड़ा वर्णन किया जायगा।

१—ड्रोसेरेसी (Droseraceae) इस कक्षाके पौधे सब जगह पाये जाते हैं। भारतवर्षमें भी इनके दो प्रकार के पौधे ऊगते हैं। यह पौधे अकसर दलदलमें उगा करते हैं। यह जमीनसे ज्यादा ऊंचे नहीं होते और छोटे-छोटे आसनकी जमीनसे करीब करीब लगे हुए रहते हैं। इन पौधोंकी पत्तियोंकी संख्या कुछ निश्चित नहीं होती। अकसर दो (२) या छः (६) या अधिकके बीचमें हुआ करती हैं। यह पत्तियां गोलाकार रूपमें होती हैं। कभी कभी यह पत्तियां बिलकुल जमीनसे
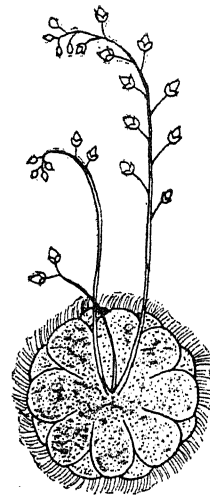
ड्रोसेरा बरमिनाई का पौधा

लगी रहती हैं और ज़मीनके सीध पर होती हैं। साधारणतः यह ज़मीनसे उठी हुई और सीधो खड़ी हुई होती हैं।
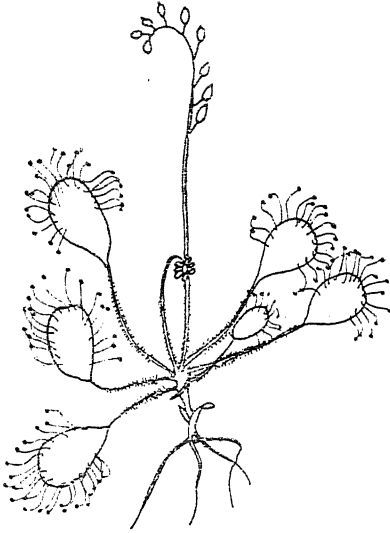
ड्रोसेरा रोटेनडिफोलिया का पौधा

पत्तियां ही केवल कीड़े-मकोड़ेके पकड़नेमें काम आती हैं इसलिये उनका वर्णन करना अधिक आवश्यक है। पत्तियोंके ऊपरी भाग केवल एक प्रकार की छोटी छोटी ग्रन्थियों (glands) से भरे हुए होते हैं और यह महीन महीन डंठल पर सधी हुई रहती हैं। इन डंठलदार ग्रन्थियों की संख्या भिन्न भिन्न पत्तियोंमें भिन्न भिन्न होती है। मामूली तरहसे १३० और २६० के बीचमें होती है। इन ग्रन्थियोंमें गाढ़ा गाढ़ा चिपकता हुआ रस सर्वदा पाया जाता है। सूर्यकी किरणें इन पर पड़नेसे यह चमकती हुई मालूम पड़ती है और इसी लिये इसका नाम सूर्य ओस (सन्ड्यु) पड़गया है। पत्तियोंके बीच वाले ग्रन्थियुक्त डंठल छोटे छोटे होते हैं और सीधे ऊपरकी ओर खड़े रहते हैं लेकिन आस पासके डंठल बड़े बड़े और बाहर की ओर झुके हुए रहते हैं। इसी प्रकारके ग्रन्थियुक्त डंठल पत्तियोंके डंठलमें भी पाये जाते हैं और

ड्रोसेरा बरमनाईका एक पत्ता ऊपर से देखनेसे
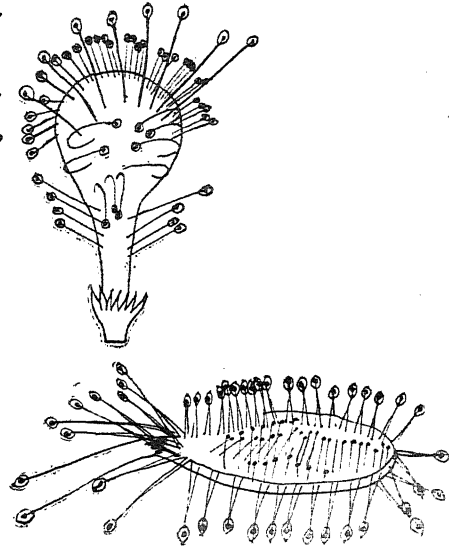
ड्रोसेरा रोटेनडिफोलियाका एक पत्ता तिरछे देखनेसे

ये सबसे बड़े हुआ करते हैं। डंठल देखनेमें पतले पतले रेशों की तरह होते हैं और उनकी चोटी पर गोल गोल सी ग्रन्थियें होती हैं। इन ग्रन्थियोंके कई कार्य हैं यथा :—

रसका छोड़ना छोटे छोटे कीड़े मकोड़ोंका हजम करना और बाहिर से जब कोई कीड़े मकोड़े या नोषजनीय पदार्थ इन पर आकर पड़ता है तो ये ग्रन्थियें कुल पत्तियों पर एक प्रकारकी लहर भी उत्पन्न कर देती हैं।

कीड़े मकोड़े पकड़नेकी क्रिया:—जब कभी छोटे कीड़े पत्तोंके बीच वाली ग्रन्थियों पर आकर बैठते हैं, या यदि कोई मांस का छोटा टुकड़ा इनपर रक्खा जाय तो ये ग्रन्थियें पत्तोंके सब ओर एक प्रकारका प्रवाह या लहर सी फैला देती है जिसके कारण यह सब डंठल उस खाद्यपदार्थकी ओर झुकने लगती है पास वाले डंठलों (filaments) पर सबसे पहले असर पड़ता है उसके बाद उनसे दूर वालों पर और इसी प्रकारसे पत्तेके सारे डंठल उस खाद्य पदार्थको दबा लेते हैं। डंठलके नीचे का हिस्सा केवल झुक सकता है। यह

नीचे वाला हिस्सा इस प्रकारसे बना रहता है कि वह चारों ओर मुड़ सकता है। पत्तोंके बीच वाले डंठल मुड़ नहीं सकते पर इनका काम केवल लहर उत्पन्न करने का है। कीड़े बैठनेके कोई १० सेकेंडके बाद सब डंठल उसकी ओर झुकने लगते हैं और १० मिनिटमें कीड़ेको इस तरह जकड़ लेते हैं कि वह भाग कर फिर उड़ नहीं सकता। जब कभी इन माँसाहारी पौधोंको कई दिन तक माँस या कीड़े खानेको नहीं मिलते तो उनके मिलने पर यह इतने उत्तेजित हो जाते हैं कि डंठलके झुकनेके अतिरिक्त कुल पत्ती मुड़ कर एक कटोरेके समान हो जाती है जिससे कि कीड़े भागकर निकल न जाय। सबसे आश्चर्यकी बात यह है कि इन ग्रन्थियों पर केवल नोषजनीय पदार्थ ही का प्रभाव पड़ता है। जोर का मेह या जोर की आँधीका इन ग्रन्थियों पर बिलकुल असर नहीं होता। और साधारण तरहसे इनके लगने पर भी खड़े रहते हैं। एक पत्ती इस प्रकार तीन-बार एक दिनमें कीड़े पकड़ सकती है उसके बाद उसको कुछ अवसर के लिये विश्वास करनेकी आवश्यकता होती है रसस्राव (secretion) पहले वर्णनकी हुई ग्रन्थियोंमेंसे गाढ़ा और गोंद की तरह चिपकता हुआ रस निकलता है और जब कोई कीड़े इन ग्रन्थियों पर आकर बैठते हैं तो इन ग्रन्थियोंमें से रस निकलना प्रारम्भ हो जाता है और यह देखा गया है कि जब कभी कीड़े पत्तों की बीच वाली ग्रन्थियों पर बैठते हैं तो रस का परिमाण बहुत अधिक हो जाता है। यह रस जीवोंके आमाशयी रस (gastric juice) के प्रकार का होता है और आमाशयी रस की तरह इसमें भी जीवाणु-प्रतिरोधन (antiseptic) शक्ति होती है क्यों कि यह देखा गया है कि जो कीड़े इन पत्तोंसे मारे तेज है उन पर जीवाणु या फफूंदी नहीं लगती। जब कीड़े का सार द्रव्य इस रसमें घुल कर पत्तों और पौधे में समा जाता है तो रसका निकलना आपही आप बन्द हो जाता है और डंठलें फिर ऊपरको उठने लगते हैं। रसका प्रवाह बन्द हो जाना पौधोंके लिये बहुत उपयोगी है। पहली बात तो यह कि इससे रस का वृथा खर्च नहीं होता और दूसरी बात यह है कि कीड़ेका सारांश ले लेने के बाद ये बचे हुए हिस्से जल्दी सूख जाते हैं और जोरकी हवाके झटके के द्वारा उड़ कर पौधेको अनावश्यक भारसे छुटकारा मिल जाता है।

डंठलोंके फिर ऊपर उठ आनेके कुछ अवसरके बाद ग्रन्थियों (glands) में से रस का बहना फिर आरम्भ हो जाता है और पत्तियां दुबारा कीड़े पकड़ने के लिये तैयार हो जाती हैं।

जब कभी कीड़े पत्तियोंको बीच वाली ग्रन्थियों पर बैठते हैं तो ग्रन्थियोंके चिपकीले रसमें चिपक जाते हैं और इसलिये उड़ नहीं सकते। एक बार लिपट जानेके बाद यह कीड़े थोड़ी देरमें दम घुट जानेसे मर जाते हैं; लेकिन यदि कीड़े पत्तियोंके सिरेके भाग पर बैठते हैं, तो पत्तियोंके डंठल इस समय पर बड़े अद्भुत बर्ताव करते हैं। ये डंठलें एकके बाद एक पत्तीके बीचके भागकी ओर उस कीड़ेको गेंदकी भांति लुड़कानेका प्रयत्न करते हैं और इस तरह पत्तियोंके चारों ओरके डंठलोंको स्वाद मिलजाता है कि कोई खाद्य पदार्थ पत्तियों पर आकर पड़ा है और यह बीच की ओर झुकना आरम्भ कर देते हैं। इससे यही जान पड़ता है कि पत्तियोंके बीच का भाग जहाँ पर सबसे अधिक रस निकलता है, कीड़े पकड़ने और मारनेके लिये अति उत्तम स्थान है।

यह अच्छी तरहसे नहीं जाना गया है कि कीड़े इन मांसाहारी पौधेके पत्तों पर किसलिये जाकर बैठते हैं। या तो इन पौधोंकी ग्रन्थियों (glands) का रस कीड़ों के लिये कोई आकर्षक वस्तु है या ये कीड़े केवल थक कर विश्रामके लिये इन पौधों पर बिना जाने बैठते हैं। इस कारण इन पत्तियोंकी उपमा कीड़े पकड़नेके लिये चारा लगाये हुए जालोंसे दी जा सक्ती है और यों भी कहा जा सक्ता है कि पत्तियां केवल इसलिये जाल फैलाये रहती हैं कि यदि कोई कीड़े अचानक उसपर फंस जाय।

इन ग्रन्थियोंमें रसस्रावके अतिरिक्त सोखनेकी भा शक्ति होती है और यह इन कीड़ोंसे आवश्यकीय

वस्तु अपने उपयोगके लिये ले लेती हैं। इस प्रकार उनको जीवन धारणके लिये बाहरसे उपयोगी वस्तु मिल जाती है। ये दलदलमें बड़ी आसानीके साथ उगती हैं और उनको बाहरसे खाद्य पदार्थ मिल जानेसे जड़ोंकी इतनी अधिक आवश्यकता नहीं होती इसलिये इन पौधोंमें जड़ें बड़ी कमजोर और छोटी हैं। पौधे कीड़ोंसे केवल नोषजन (Nitrogen) का उपयोग करते हैं—इनके पत्तोंमें पर्णहरिन (chlorophyll) होती है और यह साधारण रूपसे अपना भोजनभी बना सकते हैं लेकिन ये ऐसी जगह उगते हैं जहाँ वे कीड़ोंके अतिरिक्त और कहींसे नोषजन इनकी आसानीके साथ प्राप्त नहीं कर सकते।

ऊपर दिये हुए वर्णनसे यह ज्ञात होता है कि ड्रोसेरा (Drosera) के पौधे एक प्रकारसे बिलकुल प्राणियोंके समान आहार करते हैं। इनकी मुड़ी हुई पत्तियों की जीवोंके पेटके साथ तुलनाकी जासकती है। इन पत्तियोंकी ग्रन्थियोंसे जो रस निकलता है वह आमाशयी रसके समान है और जिस प्रकार आमाशयी रसमें पेपसिन (pepsin) और उदहरिकाम्ल होते हैं उसी तरह इन पौधोंके रसमें भी एक प्रकार का पाचकद्रव्य (ferment) और अम्ल होती हैं। इन ग्रन्थियोंके रसमें इतना अम्ल रहता है कि ये आसानीके साथ तरुणअस्थि (कार्टीलेज) और छोटी छोटी नरम हड्डियोंको घुला सकती हैं।

पोर्तुगालमें कुछ ऐसे ड्रोसेरा जातीय पौधे घरोंमें मक्खियां मारनेके काममें लाये जाते हैं। भारतवर्षमें ड्रोसेरा कक्षाके दो पौधे पाये जाते हैं, एक तो ड्रोसेरा रोटेन्डिफेलिया (Drosera Rotundifolia) और दूसरा ड्रो: बर्मिनाई (Drosera Burmanii)।

दूसरे प्रकारके माँसाहारी पौधोंका वर्णन दूसरी संख्यामें किया जायगा।

मंजिष्ठा और उसका रासायनिक संगठन

(ले० श्री ब्रजबिहारीलाल दीक्षित बी. एस-सी.)

मंजिष्ठाभी भारतकी महान् गौरवशाली वस्तुओंमेंसे है। कोई सात सहस्र वर्ष हुए होंगे जब यह रङ्ग भारतवर्षमें प्रयोग किया जाता था। बड़ी मात्रामें तैयार करके तमाम महाद्वीपोंमें यह रंग और इस रंगसे रंगे हुए कपड़े भेजे जाते थे। यद्यपि यह रंगभी बाहर के देशवासी मँगाते थे किन्तु वह उसकी क्रियासे पूर्णतः परिचित न होनेसे इसके रंगनेमें इतने सम्पन्न न होते थे जैसे कि भारतवासी जो कि इस कार्यमें चतुर थे और इस एकही रंगसे अनेकानेक भांतिके सुन्दर सुन्दर वस्त्र रंगते थे और बहुधा बड़े लोग वस्त्रोंको रंगा हुआ ही भारतवर्षसे मंगाते थे। विशेषकर यह रंग लोगोंको इस कारण औरभी रोचक मालूम होता था कि अन्य रङ्ग उस समय कहीं भी न थे। केवल दूसरा रङ्ग जो प्रचलित था वह नील था और उसकीभी जन्मभूमि भारत वर्ष ही है किन्तु इससे केवल एक ही रङ्गके वस्त्र रङ्गे जाते थे और फिर नीलवर्ण इतना चित्ताकर्षक भी नहीं है। एक प्रमाण जो कि इसके गौरव को बहुतही प्रभावशाली बनाता है वह यह है कि मिश्र देशकी कब्रमें जो मृत्युजन पाए जाते हैं उनमें जो वस्त्र लपटे हुए हैं वह इसी मंजिष्ठासे रंगे हुए हैं और आधुनिक वैज्ञानिक प्रतिक्रियाओंसे यह सिद्ध होता है कि वह कमसे कम सप्त सहस्त्र वर्ष पुराने हैं इनमेंसे बहुतसे वस्त्र नीलसे भी रङ्गे हैं जो कि भारतके गौरवको और बढ़ाता है और विशेषकर इस कारणसे कि इन दो रङ्गोंके अतिरिक्त उनमें कोई और रङ्ग नहीं पाया जाता है।

मंजिष्ठा तैयार करना प्राकृतिक पदार्थोंसे तो बड़ाही सरल है! केवल उसी नामके पेड़की मूल लेकर

उसको बड़ीही छोटी छोटी खांद लेते हैं और एक ढेर में जमाकर देते हैं ताकि प्रेरक जीवोंसे वह विश्लेषित हो जावे। वृक्षके मूलमें वह द्राक्षोसिद (glucoside) की भांति विद्यमान होता है जिसको रुब्रिथिकाम्ल कहते हैं और जो विभाजन होनेपर द्राक्षोज एवं मंजिष्ठा देता है। इसको विभाजन करनेमें कोई कठिनता नहीं होती केवल उदजन हरिदके संघर्षणसे यह प्रतिक्रिया पूर्णहो जाती है। प्राकृतिक पदार्थ में स्वयमही अनेक प्रेरक जीव होते हैं जो इसक्रियाको पूर्ण गतसे पूर्ण कर सकते हैं। इसके अनन्तर वह मूल जलके साथ घोटी जाती हैं और इस प्रकारसे रङ्गके चूर्ण का जलके साथ उपघोल (suspension) बन जाता है। यह तब निकाल लिया जाता है और फिर छन्नेमें छाननेसे एक प्रकारका महीन कीचड़ सा रह जाता है। यह शुष्क कर लिया जाता है। बहुधा बाजारमें मंजिष्ठा एक गीली वस्तुकी भांति आता है जिसमें बहुधा २० प्रतिशतही असली मंजिष्ठा होता है।

मंजिष्ठा एकही रङ्ग नहीं देता है। विशेष वर्णवेधकों (mordant) से विशेष विशेष रङ्ग देता है जैसे कि

भारम् वर्ण वेधकसे नीला लाल रङ्ग मिलता है।

स्फटकम्	...	गहरालाल
लौहस लौ"	...	बैंजनी
लौहिक लौ"	...	खाकी काला
ताम्र	...	गुलाबी लाल
रागम्	...	नारंगी
सीसम्	...	पीला गुलाबी
इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि

इस प्रकारसे यह उस महान् समुदायके वर्णोंमें से एक है जो कि "बहुवर्णिक" कहलाते हैं क्योंकि वह एक ही होते हुए भी अनेकानेक भाँतिसे कपड़ोंको भिन्न भिन्न हालतोंमें रंगनेके योग्य हैं। दूसरा समुदाय "एकवर्णिक" कहलाता है जो केवल एकही रङ्गका कपड़ा रंगनेके योग्य होते हैं और इसी समुदायमेंसे नीलभी है। मंजिष्ठाकी इस विशेषताको प्रत्यक्ष करनेके निमित्त यह कहा जाता है कि वह आम्लिक वर्ण है और भिन्न भिन्न धातोंके संघर्षणसे भिन्न भिन्न लवण बनावेगा और इन सब लवणोंके रङ्गभी भिन्न भिन्न ही होंगे मंजिष्ठा इतना गहरारङ्ग होता है कि संसार में आजतक कोईभी रङ्ग चाहे प्राकृतिक हो चाहे संश्लेषित पदार्थ (नीलको छोड़कर) इसकी बराबरी रंगनेकी शक्तिमें नहीं कर सकता। यही कारण है कि लोगोंको इसके संगठन जाननेकी उत्सुकता बड़ेही पुराने समयसे हो रही थी और इतने पुराने समयमें जैसे कि १८६८ में ग्रावे, और लाइवरमैनने इसका संगठन ढूंढ़ही निकाला। उन्होंने जब इसको दस्त चूर्णके संयोगसे स्रवण किया तो उसका सब ओषजन जल बनकर निकल गया और एक बहुतही साधारण उदकर्बन मिल गया जो कि कुछ दिनही पीछे कोलतारमें से तैयार किया गया था। यह अंगारिन था। अब यह मालूम करनेके लिये कि यह अंगारिनका कौन सा यौगिक है उन्होंने उसको सिरकीलित किया और इस प्रकारसे पर्किन साहेबके नियमसे उन्होंने उसमें दो उदौषिल मूल 'ओउ' की विद्यमानता प्रमाणित की उसका पूर्ण गुरु $क_{४} उ_{८} ओ_{४}$ होनेसे दो और ओषजन परिमाणुओं का स्थान निकालनेकी आवश्यकता रह गई। उन्होंने विचारा कि यह अंगारकुनोन का यौगिक प्रतीत होता है और इस बात का पूर्ण प्रमाण उनको इस भांति मिल गया कि वह उदौषिलामिनसे द्विओषिम और दिब्यीउदाजिविन से द्विउदाजीवोन देता है और इसी प्रकार अन्य रासायनिक पदार्थों से जो कीतोनोंसे प्रतिक्रिया करते हैं यहां दो वार वही प्रति क्रिया करते हैं और इस प्रकार इसमें २ कीतोनिक समूह की विद्यमानता प्रमाणितकी गई। इस प्रकार यह द्विउदौष अंगार कुनोन प्रमाणित हुआ किन्तु निम्नलिखित अंगारकुनोनमें उदौषिलमूल तो अनेक स्थानोंमें लगाए जा सकते हैं जैसे कि

८७, ८६, ८५, ८४, ८३, ८२ अथवा
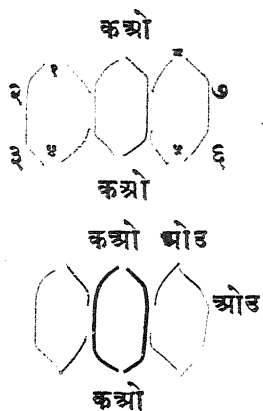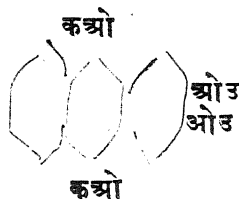
और इस प्रकार से अनेक रूप हो सकते हैं। अब इनमें ठीक कौन सा है यह निकालना है। एक प्रति क्रिया मंजिष्ठा की यह भी है कि जब पां ओउ और कउ$_2$ ओ$_2$ से प्रतिक्रित किया जाता है तो यह दारीलिन उगलक देता है इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि दोनों ओउ समुदाय पड़ोस पड़ोस ही हैं अर्थात् उपस्थानोंमें। इस प्रकार अब दो ही रूप सम्भवतः हो सकते हैं ([१]तथा [२] उपर्युक्त) क्योंकि अन्य सब स्थानोंमें ओ उ रखनेसे जो वस्तु आयेगी वह बिलकुल यही होगी। उसी समयमें बायर साहबने अंगारकुनोन तथा उसके यौगिकोंको संश्लेषित करनेका एक सरल उपाय निकाला था, वह यह था कि स्फट हरिदकी विद्यमानतामें थलिक अनार्द्रिद तथा बानजावीन बड़ीही सरलता से मिलकर जलको निकाल देते हैं और अंगार कुनोन बना देते हैं। इसी प्रकार थलिक अनार्द्रिद और दिब्योल उदौष अंगार कुनोन देते हैं। प्रति क्रिया इस प्रकार है कि
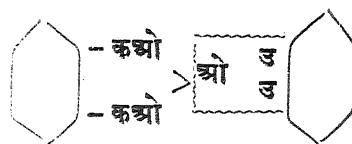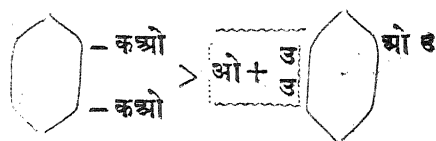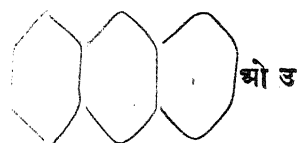
इसी प्रतिक्रियाका लाभ उठाकर ग्रावे इत्यादिने मंजिष्ठा थलिक अनार्द्रिद तथा कत्थोलसे बनाया और प्रतिक्रियाको निम्न रूपसे अङ्कित करके उसका रूप जैसा उपरोक्त [१] में दिखलाया गया है सिद्ध किया—

ओ उ

क$_6$ उ$_4$ <क ओ / क ओ> ओ + उ / उ — ओ उ

↓ कत्थोल
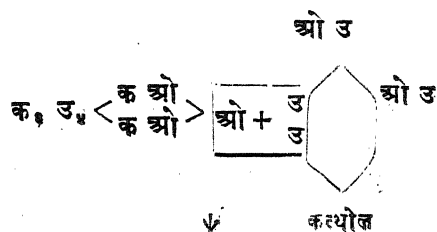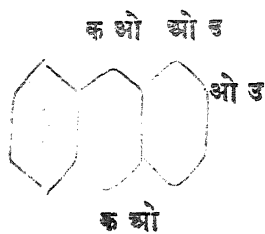
किन्तु यह बात निश्चित् नहीं रही। यही प्रतिक्रिया दूसरी भांतिसे भी हो सकती है जिससे उसका रूप उपरोक्त (२) की तरह सिद्ध होता है इस प्रकार—
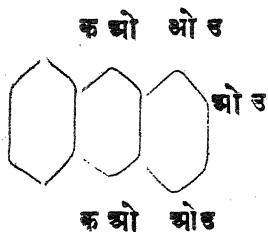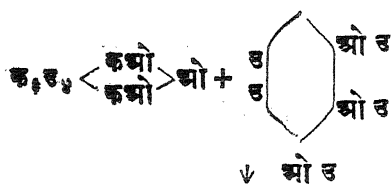
तब उन्होंने इसी बातकी सिद्धि एक नवीन भांतिसे निकालनेकी चेष्टा की। उन्होंने थलिक अनार्द्रिद तथा उदौषद्वि उद-कुनौलका प्रयोग किया और निम्न-लिखित रूपसे परप्यूरिन् प्राप्त की।

और एक और वस्तु कुनिजेरीन थलिक अनार्द्रिद तथा द्विउदौष कुनोलकी प्रतिक्रियासे जो निम्न लिखित है बनाई और दोनों वस्तुओंमें यानी मंजिष्ठा तथा एक और 'ओउ' घुसेड़कर परप्यूरिनका बनना सिद्ध किया इस प्रकार—
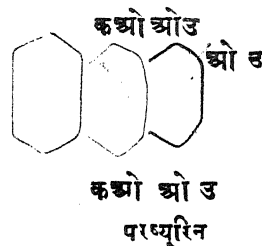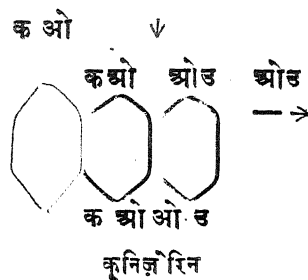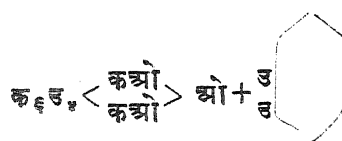
इससे प्रत्यक्षही सिद्ध होता है कि मंजिष्ठाका संगठन उपर्युक्त [१] ही है और [२] नहीं क्योंकि [२] में किसी भांति 'ओउ' घुसेड़कर परप्यूरिन नहीं मिल सकता किन्तु [१] से सरलतासे मिलना सम्भव है।
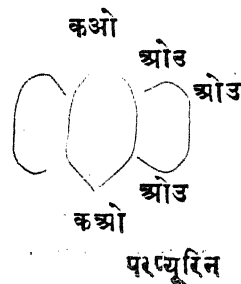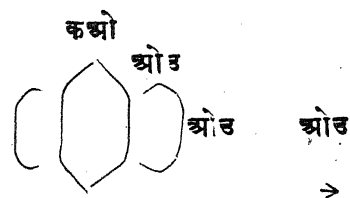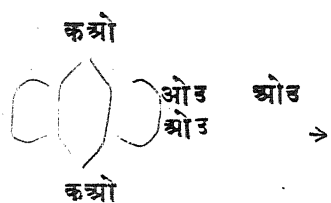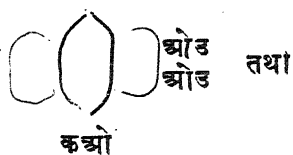
जिनमें से कोई भी परप्यूरिन नहीं हैं।

मंजिष्ठा का रासायनिक संश्लेषण—जब कभी कोई वस्तु प्राकृतिक पदार्थों से तैयार होती है तो कृषक लोग उसका चाहें जितना मूल्य रखते हैं और यदि बाजारमें उसकी मांग अधिक हो जाती है तो उसके मूल्यमें कृषक लोग बेडौल दाम बढ़ा देते हैं। मूल्यको इस प्रकार अधिक देख कर और दूसरे अपनी प्रतिष्ठाको बढ़ानेके अभिप्रायसे प्रयोग शालाओंमें रासायनिक वैज्ञानिक लोग काहिलीसे नहीं बैठ पाते और कोई न कोई विधि उसके संश्लेषणको ढूँढ़ निकालते हैं। जब वस्तु एक बार संश्लेषण हो गई तो सहस्रों मनुष्य उसी कार्य्य पर जुट जाते हैं और इतनी सफलता प्राप्त करते हैं कि वह वस्तुके संश्लेषण का कोई उचित और सस्ता सा प्रयोग हाथ लग ही जाता है। और धीरे धीरे प्राकृतिक वस्तु तैयार होनी बन्द हो जाती है। यही हालत मंजिष्ठाके हालकी हुई कुछ दिनों तक तो संश्लेषित पदार्थ इतना मूल्यवान् बना कि वह प्राकृतिक वस्तुसे न लड़ सका फिर कुछ समय तक मंजिष्ठा का दाम गिरता रहा और फिर इतना गिरा कि फिर न उठ सका और यह सब सस्ते प्रकारसे संश्लेषणके कारण ही है। यद्यपि रसायनिक विचारसे यह बड़ी सफलता की बात हुई किन्तु भारतवर्षके लिए यह अत्यन्त ही दुःख की बात है। कि उसका अत्यन्त ही पुराना और गौरवशाली मंजिष्ठा संसारसे उठ गया और नील जो अभी कुछ कुछ जीवित था है अपने संसारसे चले जानेकी बाट जोह रहा है।

प्रथम संश्लेषण इस भांति हुआः—ग्रावे तथा लायबरमैन ने अंगारिनको पांशुज-पर मांगनेत और गन्धकाम्लसे ओषदीकृत करके अंगार कुनोन तैयार किया इसके फिर अरुणिन्से प्रति क्रित किया और इसके निमित्त उस वस्तुको अरुणिन्के साथ मुंह बन्द नलियोंमें तपाना पड़ता है और अन्तमें द्विअरुणिद् बन जाता है। कई वस्तुओंके मिश्रित पदार्थमें से अब द्विअरुणिद् पदार्थ निकाल लिया जाता है क्योंकि उसकी मात्रा अधिक होती है इसको जब पां ओउसे तपाते हैं तो अरुणिन्के स्थानमें ओउ आ जाता है और यही मंजिष्ठा होता है इस प्रकार
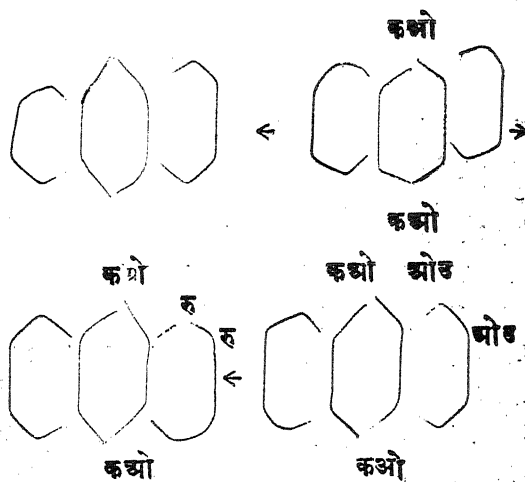
इस संश्लेषण में बहुत थोड़ी सी वस्तु अन्तमें हाथ आती है और फिर सब प्रयोग बड़ा ही मूल्य-

वान् है और प्राकृतिक पदार्थसे लड़नेके बिलकुल ही अयोग्य है विशेष कारण यह है कि

१. प्रथम तो अरुणिन् ही बड़ा मूल्यवान् पदार्थ है।

२. जो अरुणिन् प्रयोगमें लाया जाता है उसकी अर्द्ध मात्रा तो उदअरुणिकाम्ल बन कर निःकृष्ट पदार्थ हो जाती है क्योंकि प्रतिक्रिया स्थापन से होती है।

३. जो भी प्रयोगमें आती है उनसे अनेकानेक पदार्थ बनते हैं जैसे कि अ-अरुणिद् ब-अरुणिद् इत्यादि जिसमें से केवल अ ब-अरुणिद् ही लेना होता है। यद्यपि इसकी मात्रा अधिक होती है किन्तु फिर भी बहुत सी अरुणिन् नष्ट हो जाती है।

४. फिर जो पदार्थ बनता है वह सैन्धकक्षार से तपानेसे कार्य्य नहीं चलता है पांशुजम् प्रयोगमें काल पड़ता है और वह भी साधारण पदार्थ नहीं होता है।

५. अन्तमें बहुत ही थोड़ी सी वस्तु हाथ आती है।

अब उन्होंने किसी दूसरी विधिका विचार किया। वह गन्धकाम्ल से है। अंगारिनसे ओषदीकृत करनेसे उसी प्रकार अंगार कुनोन प्राप्त हुआ। इसको अब ३० प्रतिशत वाष्पित गन्धकाम्लसे प्रति कृत किया। इस प्रकार क-अंगार कुनोन एक गन्धोनिकाम्ल बन गया, किन्तु द्विगन्धोनिकाम्ल न बना। इसअम्लको फिर ७५ प्रतिशत वाष्पित गन्धकाम्लसे प्रतिकृत करने पर द्विगन्धोनिकाम्ल आया और इसको सैन्धकक्षारके साथ तपानेसे मंजिष्ठा मिल गया। उपर्युक्त विधिसे तो अवश्य सस्ता है किन्तु वाष्पित गन्धकाम्ल फिर भी कोई ऐसी साधारण मूल्यकी वस्तु नहीं हैं फिर इसके साथ कार्य्य करनाभी कोई साधारण वस्तु नहीं है क्योंकि यह अति ही दाहक और हानिकारक वस्तुओंमें से हैं। इस कारणसे अब एक गन्धोनिकाम्ल सैन्धकक्षारके साथ तपाया जाने लगा और यहीं पर कुछ ओषदीकृत पदार्थपर पांशुज नोषेत तथा पांशुजहरेत प्रयोग किया गया। इस प्रकारसे—ग ओ$_3$ उ- के स्थानमें तो 'ओ उ' हो ही गया किन्तु ओषदीकृत पदार्थके कारण पड़ोसका उद्जन परमाणु भी ओ उ हो गया और मंजिष्ठा तैयार हो गया। अन्तमें इस प्रकार पदार्थ भी बहुतसा मिल जाता है। किन्तु इसका तपाना भारतापक यन्त्र (autoclave) में करना होता है। मंजिष्ठा बड़ी ही रोचक बैजनी होती है और जलमें घुलनशील नहीं है किन्तु मद्य में घुलनशील है। इससे रंगनेके निमित्त एक बड़ी नांदमें खूब उबलते हुए पानीमें वर्णबेधक पदार्थोंसे प्रति क्रिया किए वस्त्र डाल देते हैं। नांद इनेमिल लोह अथवा गैलवेनाइज्ड लोहकी होनी चाहिए अब थोड़ी सी मंजिष्ठा घोल डाल देते हैं और खूब हिलाते हैं। इस प्रकारसे यद्यपि जलमें घुलनशील नहीं है तो भी किञ्चित मात्र घुलकर न्यून न्यून मात्रामें प्रतिक्रित होकर क्रमशः वस्त्रको खूब रङ्ग देता है। मंजिष्ठा सब रङ्गोंमें अत्यन्तही प्रसिद्ध है। इसी कारण नहीं कि वह किसी समयमें भारतवर्षका गौरव था किन्तु इस कारणभी कि उसमें सबसे अधिक रङ्गकी अनेकानेक बारीकियाँ निकलती हैं और समभारमें रंगनेकी शक्तिमें कोई भी रङ्ग केवल नीलके अतिरिक्त इसकी बराबरी नहीं कर सकता है।

व्यापारिक मंजिष्ठामें यद्यपि अधिक मात्रामें वही वस्तु होती है जिसका कि परिचय ऊपर दिया जा चुका है किन्तु फिर भी कुछ न कुछ मात्रामें बहुत सी अन्य वस्तुएं भी होती है जैसे कि परप्यूरिन्, फ्लैवोप्यूरिन और अन्थ्राप्यूरिन और यह भी प्रयोगशालाओंमें संश्लेषण द्वारा निर्माणित करली गई हैं इनके रूप यह हैं—

परप्यूरिन

अन्थ्रापरप्यूरिन
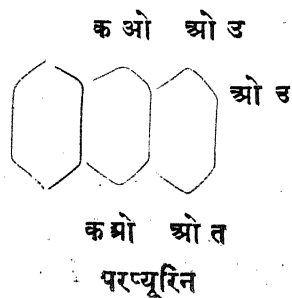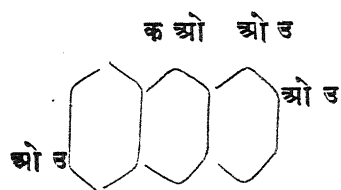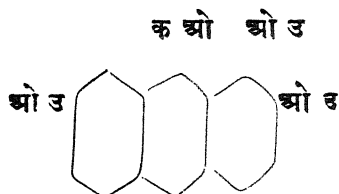
फ्लेवो परप्यूरिन

यह सब वस्तुएं मंजिष्ठाको टंकको विद्यमानतामें गन्धकाम्ल से ओषदीकृत करनेसे तैयार किए जा सकते हैं। टंकाम्लको आर्द्र रहित करनेसे ट$_2$ओ$_3$ बनता है और यही प्रयोग किया जा सकता है किन्तु यह प्रति क्रिया में भाग नहीं लेता केवल प्रेरक का कार्य्य करता है। ओषदीकृत पदार्थ तो केवल गन्धकाम्ल है जो अधिक तापक्रम पर इस प्रकार विभाजित होता है—उ$_2$ ग ओ$_4$=उ$_2$ ओ+गओ$_2$+ओ और यही मुक्त ओषजन पूरा कार्य्य कर्ता बनता है। तीनों वस्तुएं तैयार करनेमें क्रमशः अधिक अधिक क्लिष्ट होती जाती हैं। परप्यूरिनमें तो तीव्र गन्धकाम्ल से कार्य्य चल जता है किन्तु अन्थ्रापरप्यूरिनके लिए ३०% वाष्पित गन्धकाम्ल का प्रयोग करना पड़ता है और फ्लैवो परप्यूरिनके निमित्त ५०% प्रतिशत वाष्पित गन्धकाम्ल की आवश्यकता होती है इस प्रकार सहस्त्रों रंग मंजिष्ठाके ही कारण आधुनिक रसायनसे निकल आए हैं और उनके नाम भी मंजिष्ठा ही पर रख दिए गए हैं उन सब का रासायनिक संगठन व व्यापरिक निर्माण तो यहां नहीं हो सकता किन्तु कुछ नाम दिए जा सकते हैं जिनसे उनकी विभिन्नता तथा आधुनिक रसायनके कार्य्यका अनुमान कुछ कुछ हो सके जैसे कि
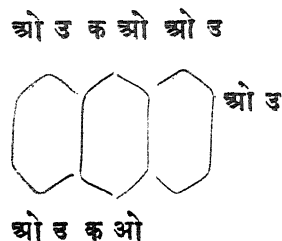
मंजिष्ठा बोरद् (Alizarin Bordeaux)
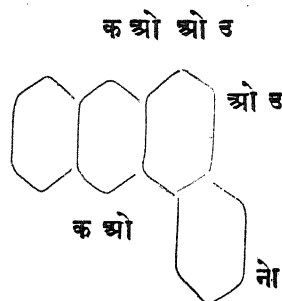
मंजिष्ठा नील (Alizarin blue)

क ओ ओ उ

ओ उ

अ उ

क ओ
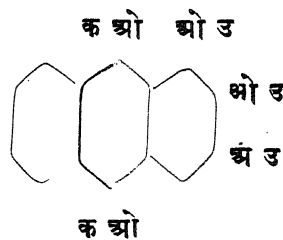
मंजिष्ठा पीत (Alizarin yellow)

इत्यादि इत्यादि इत्यादि

रेडियो (वखेर)

[ले०—श्री गोविन्दराम तोरनीवाल एम एस सी०]

[विज्ञान भाग २६ संख्या ५, ६ में इसी नामके लेखमें चित्र नं० १ इस प्रकार होना चाहिये]
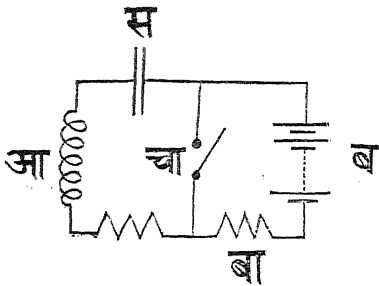
मैं पूर्व अंकमें बहुत ही संक्षिप्त रूपसे बता चुका हूं कि किस प्रकार समान झोटों वाली धारा उत्पन्न की जाती है; और किस प्रकार इस धारा पर माइक्रोफोनीय धारा आरूढ़ करायी जाती है। अब आज मैं इस प्रकारकी आरूढ़ित धारा (modulated current) को पकड़नेकी कुछ विधियां सविस्तार वर्णन करूंगा।

रेडियो प्रेषक यंत्र द्वारा भेजे हुए समाचारोंके पकड़नेका कार्य कई प्रकारकी वस्तुओंसे लिया जा सकता है, इनमें से कुछके नाम नीचे दिये जाते हैं।

१ चुम्बकीय सूचक (Magnetic Detector)
२ कोहिरर (Coherer)
३ रवा (Crystal)
४ बिजलीके कपाट (Thermionic Valve)

इन चारोंमेंसे ऊपरके दो तो आज-कल बिलकुल ही नहीं, तीसराभी बहुत कम काममें आता है। बिजलीके कपाटसे ही आज-कल सबसे ज्यादा काम लिया जाता है।

एक अच्छे प्रबल समाचार प्रेषक यंत्रके प्रायः २५ मीलकी दूरी तक रवे हीसे काम चल जाता है परन्तु टेली फोन द्वारा ही समाचार सुने जा सकते हैं। यदि १०-२० आदमी एक साथ सुनना चाहें तो इतनी कम दूरी पर भी बिजलीके कपाटकी आवश्यकता होजाती है, जिससे कि जोरसे बोलने वाले (Loud speakers) काममें लाये जा सकें।

प्रायः रेडियो ग्राहक यंत्रों में लगा हुआ रवा चित्र नं० १ में दिये हुये रूप का होता है।
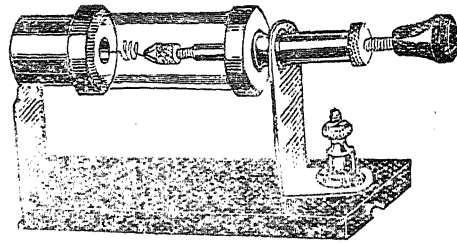
चित्र नं० १

इस चित्रमें बायें हाथकी तरफ एक नकलम् (Nickel) धातुका प्याला है जिसमें वुडकी संकर (Wood's alloy) की सहायतासे रवा बैठा दिया जाता है।

दाहिनी तरफको एक दस्तेसे जुड़ा हुआ एक सर्पल (Spiral) है जो रवेके किसी एक छोटेसे कणके साथ सटा रहता है। दस्तेकी सहायतासे सर्पलका दूसरा सिरा रवेके किसी कण से सटा दिया जा सकता है।

रवेसे समाचार पकड़नेके सिद्धान्त—हम आपको पहिले वाले लेखमें आरूढित धाराका रूप बतला चुके हैं। इसको ध्यान पूर्वक देखनेसे ज्ञात होगा कि इस धाराकी औसत मात्रा शून्य है। और यहभी हम आप को बतला चुके हैं कि धारा बहुत ऊंची झूलन संख्या (High Frequency) की होती है। टेलीफोनका परदा (Diaphragm) इस ऊंची संख्या वाली धाराका साथ नहीं दे सकता है। इसलिये या तो हम इस धाराको जिसकी औसत शून्य है किसी गर्म तार वाले धारामापक (Hot wire ammeter or milliammeter) द्वारा मापें या फिर इसको किसी ऐसे रूपमें बदलें कि टेलीफोन या सीधा धारा-

मापक यंत्रों द्वारा काम लिया जा सके। परन्तु आने वाली धारा इतनी दुर्बल होती है कि इसका पहिले तरीकेसे मापना बहुत कठिन होता है। इसलिये अब यह आवश्यक मालूम होता है कि इस धाराको ऐसी धारामें परिणत करें कि जिसकी औसत शून्य न हो। इस कार्यके लिये किसी ऐसी वस्तुकी आवश्यकता होती है कि जिसकी बाधा बिजलीकी दिशापर निर्भर हो, और दुर्बल धाराको थोड़ा सबलकर सके। प्रकृति (nature) में कुछ एसी चीजें मिलती हैं। यह रवेके रूपमें पायी जाती है। इनमेंसे कुछ रवों (Crystal) के नाम नीचे दिये हुए हैं।

१ कारबोरंडम—शै क, (Carborundum) (SiC)
२ जिंकाइट—द ओ, (Zincite, ZnO)
३ गैलेना —सी ग, (Galena) PbS
४ पाईरोलुसाइट—मा ओ२ (Pyrolusite) MnO_2

चित्र नं० २ में 'र' एक रवा है 'ध' एक धारा मापक यंत्र है और 'प' एक अवस्था मापक यंत्र
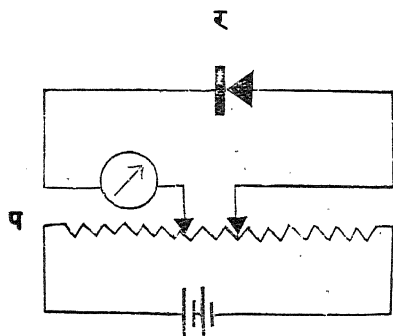
चित्र नं० २

(potentiometer) है, जिसकी सहायतासे हम कोई अवस्था भेद रवेके दोनों सिरों पर लगा सकते हैं। अब अगर हम हरएक अवस्था पर धारा मापक यंत्र द्वारा रवेमें बहने वाली धारा मापकर अवस्था और धाराका सम्बन्ध बताने वाला वक्र खींचे तो स्पष्ट मालूम होगा कि रवेकी बाधा सदा एक सी नहीं रहती है और धारा की दिशाके साथ बदल जाती है।

चित्र नं० ३ में इस प्रकारके कई वक्र दिखलाये गये हैं। इस चित्रमें १०१ और २०२ दो रेखायें कार-

चित्र नं० ३
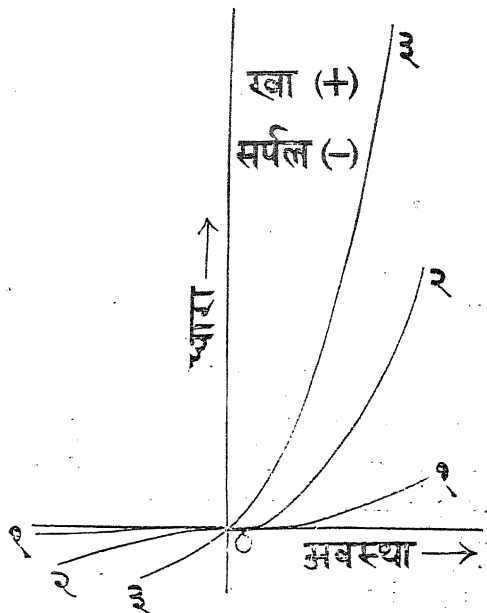
बोरंडम रवेके लिये हैं और सर्पलका दूसरा सिरा रवे के दो भिन्न भिन्न कणों पर लगानेसे मिले हैं। ३०३ वक्र जिंकाईट रवेसे प्राप्त हुआ है। कारबोरंडम रवेके साथ प्रायः इस्पातका सर्पल होता है। दूसरे रवोंके साथ सोना चाँदी, तांबा वगैराके सर्पल होते हैं।

चित्र नं० ४ में चित्र नं० ३ के किसी एक वक्रका एक बड़ा रूप बतलाया गया है। सीधे हाथकी तरफ वाले चित्रमें अवस्था मापक यंत्र द्वारा रवेके दोनों सिरोंके बीच 'सछ' के बराबर अवस्था भेद उत्पन्न कर देते हैं, जिससे कि हम वक्रके मोड़पर आजाते हैं। इस समय 'ख छ' धारा रवेमें होकर बहती है और वक्र के 'ख' बिन्दू पर आ जाते हैं। यदि अब 'छ' के दोनों तरफ उलटी सीधी धारा जनक यंत्र 'ज' की सहायता से समान भेद रवेके दोनों सिरोंपर उत्पन्न करते हैं, तो जब अवस्थाभेद 'स च' के बराबर होती है तो धारा अंतर 'कफ' के बराबर होता है, परन्तु जब अवस्था भेद 'सज' है (जछ = छच) तो धारा अंतर
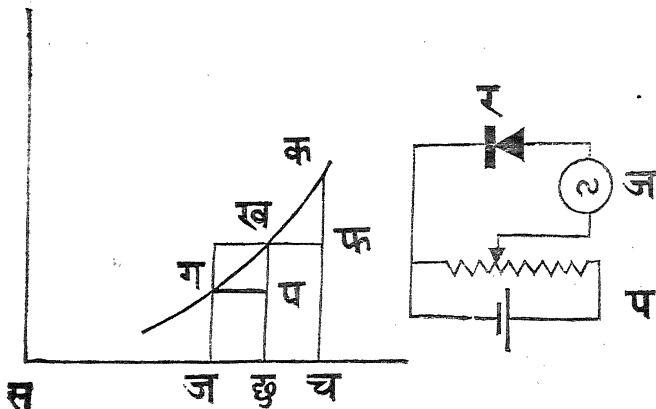
चित्र नं० ४

'ख प' होता है। चित्रसे स्पष्ट है कि 'ख प' 'क फ' के बराबर नहीं है। इसलिये 'ज' के एक पूरे चक्रमें हमको ऐसी धारा मिलती है जिसकी औसत शून्य नहीं है।

धारा की मात्रा (कफ—खप) है। और यह एक सीधी धारा मापक यंत्र द्वारा मापी जा सकती है। इस धाराको हम शोधित (Rectified) धारा कहेंगे। इस तरह हम रवे की सहायतासे उल्टी सीधी धारा जनक यंत्र से भी ऐसी धारा प्राप्त कर सकते हैं कि जिसकी औसत शून्य नहीं है और जिस को माप हम एक सीधी धारा मापक द्वारा भी कर सकते हैं। रवे की इस स्वभाविकता को हम 'रेडियो' द्वारा समाचार पकड़ने के काममें लाते हैं। इसी लिये हम रवेको या दूसरी किसी वस्तु को भी जिससे ऐसा काम लिया जा सके शोधक (Rectified) कहेंगे।

चित्र नं० ४ से यह भी स्पष्ट विदित होता है कि शोधित धाराकी मात्रा वक्रके ढलाव पर और रवेकी अवस्था भेदकी मात्रा पर निर्भर है। इसलिये हमको सर्पलका दूसरा सिरा रवेके एक ऐसे कण पर लगाना चाहिये कि रवेके स्वभाविक वक्र का ढलाव अधिक हो। आगे चलकर हम आपको बतलायेंगे कि

औसत शोधित धारा$=\frac{अ^2}{४}\times\frac{ता^2 ध}{ता अ^2}$ यहां पर 'अ' आने वाली अवस्था भेद मात्रा हैं। और $\frac{१}{\frac{ता^2 ध}{ता अ^2}}$ वक्रके ढलाव के बदलने की चाल है।

चित्र नं० ५ में हम आपको एक ग्राहक यंत्रका चक्र देते हैं।
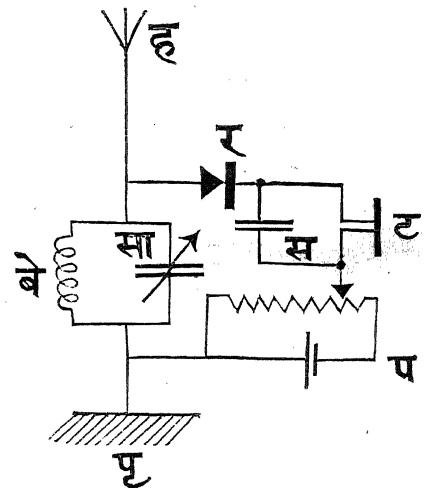
चित्र नं० ५

ह = आकाशी तार।
र = रवा।
बे = स्वावेशबेठन।
पृ = पृथ्वी।
प = अवस्था मापक यंत्र
स = विद्युत संग्राहक।
ट = टेलीफोन।
सा = बदलती हुई समाई

सा की अनुपस्थितिमें इस प्रकार के ग्राहक यंत्र द्वारा समाचार बहुत धीमें धीमें सुनाई पड़ते हैं। और स्थान स्थानके समाचार पकड़ने में बड़ी कठिनाई होती है। यही नहीं कभी कभी दो स्थानोंके समाचार एक साथ ही सुनाई पड़ते हैं। इससे समाचारोंमें अस्प-

ठना आ जाती है। इसलिये सा के होनेसे हम, क्यों- (कि सा की मात्रा सहज ही बदली जा सकती है) आने वाली अवस्थाकी संख्या को $\frac{१}{२\pi\sqrt{बे \times सा}}$ के बराबर कर सकते हैं तो गणितसे साफ मालूम होता है कि 'बे सा' चक्रकी रुकावट (Impedance) आने वाली संख्याके लिये जितनी अधिक हो सकती है होती है और रवे पर अवस्थाभेद अधिक होता है। इस प्रकार हमको समाचार पहिले से अब प्रबल मिलते हैं। स्थान स्थानके समाचारभी 'सा' की समायी बढ़ाने घटानेसे आसानीसे मिल जाते हैं।

हम आपको पूर्व लेखमें बता चुके हैं कि घटती हुई झूलन धारा और आरूढ़ित धारामें विशेष अंतर नहीं है। दोनोंका रूप प्रायः एकही सा होता है।
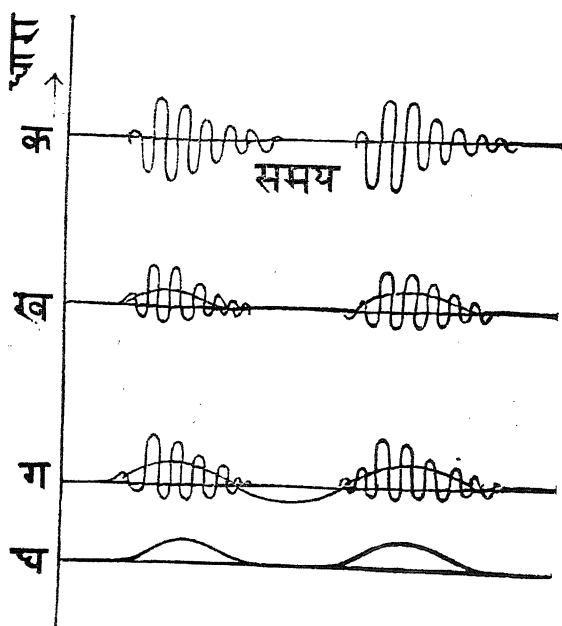
चित्र नं० ६ में 'क' एक बाहिरसे आने वाली ऊंची संख्या वाली घटती हुई झूलन धाराका चित्र है। 'ख' वक्र विद्युत संग्राहक 'स' की अवस्था भेद बताता है। 'ग' शोधित धारा का चित्र है। और 'घ' टेलीफोनमें बहनेवाली धारा है। जब आनेवाली झूलन अवस्था रवे के दोनों सिरों पर लगाई जाती है तो चित्र नं० ५ में बहने वाली धारा का वक्र 'ग' (चित्र नं० ६) से विदित होता है। इसमें बीचवाली रेखा शोधित धाराकी मात्रा बतलाती है। यह धारा विद्युत संग्राहक 'स' में अवस्था भेद उत्पन्न करती है (रेखा 'ख' चित्र नं० ६) इसका फल यह होता है कि 'स' जब विद्युन्मय हो जाता है, तो टेलीफोनमें से होकर धारा बहने लगती है (रेखा घ चित्र नं० ६)। 'स' की रुकावट ऊंची संख्या वाली धाराके लिये 'ट' की रुकावटसे कम होती है। इस लिये ऊंची संख्या वाली धारा 'स' में से होकर बह जाती है। जब आने वाली अवस्था बहुत दुर्बल हो जाती है तो 'स' विद्युन्मय होनेसे रवे में उलटी दिशामें धारा बहाने लगती है (चित्र नं० ६ रेखा 'ग' का समयके अक्ष के नीचे वाली रेखा)

समयके अक्ष (axis) और 'ग' वक्रके ऊपर वाले हिस्सेके बीचके क्षेत्र को अगर हम धन क्षेत्र मानें और नीचेवाले को ऋण, तो टेलीफोनमें बहने वाली धारा ('घ' वक्र चित्र नं० ६) धन और ऋण क्षेत्र का अंतर है।

रवे के स्वाभाविक वक्रका $\frac{ता\ अ}{ता\ ध}\left(\frac{१}{ढलाव}\right)$ प्रायः १,००,००० ओह्म होता है, और हम पहिले कहचुके हैं कि शोधित धारा $= \frac{अ^२}{४}\frac{ता^२धा}{ता\ अ^२}$। इस लिये $\frac{ता^२धा}{ता\ अ^२}$ की मात्रा बढ़ानेके लिये टैलीफोनकी रुकावट रवेकी रुकावटसे अधिक होनी आवश्यक है।

रोञन किरणोंकी उत्पत्ति और उनकी उपयोगिता

(ले० श्रीत्रिवेणीलाल श्रीवास्तव-आर. एस. भार्गव.बी.एस.सी.)

इस विषयके इतिहासको देखें तो आश्चर्य होता है कि लगभग ४० वर्षके ही समयमें इसमें इतने आविष्कार होगये हैं कि वैज्ञानिक क्षेत्रमें यह एक बहुतही गहन विषय समझा जाता है। पतली हवा या गैसों मेंसे बिजलीके प्रवाहसे जो घटनायें होती हैं उनके समझने के लिये १८६४ ई० में विज्ञानवेत्ता उद्योग कर रहे थे। उनके उद्योगमें उनका मुख्य प्रयोग निम्नलिखित है।

प्रयोग :—

एक मोटी कांचकी नली लो जो दोनों तरफसे खुली हुई हो। यह इतनी लम्बी न हो कि संभाली न जाय इसके एक मुंहके पास जैसा कि चित्रमें दिखलाया है छोटी सी नली 'म' होना आवश्यक है।
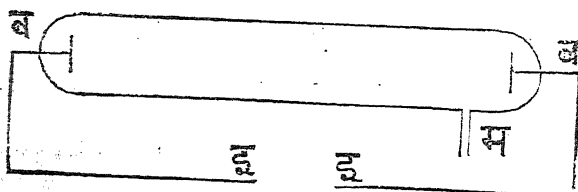
नलीके भीतर दोनों मुहोंमें से बिजलोद रखकर दोनों मुहबन्द कर दीजिए फिर छोटी नलीके मुँहसे हवा निकाल कर वह गैस भर दीजिए जिस पर प्रयोग करना हो। इस प्रकारकी नलीको गैस नली कहते हैं। इस गैस नलीके दोनों बिजलौदको आवेश बैठनके उपचक्रसे दो तार द्वारा जोड़ दीजिये। 'म' का पम्पसे सम्बन्ध कर दीजिये ताकि धीरे धीरे उसकी गैस निकलती जावे और नलीके अन्दर दबाव कम होता जाय। आवेश बैठनके अन्दर विद्युत् धारा जब प्रवाह करती है और नलीमें दबाव पारेके एक शतांश मीटरके बराबर होता है तो धनोदसे ऋणोद तक एक प्रकाश दिखाई देता है। जो धनात्मक कहलाता है इस प्रकाश का रङ्ग नलीकी गैस पर निर्भर है।

गैस	रंग
हवा	लाल
उद्जन	नीला या लाल
नोषजन	लाल
कर्बन द्विओषिद	सफेद

अगर हम गैस निकाल लें और दबाव कम करते जावें तो धनात्मकस्थंबक प्रकाशमय और श्याम पुटोंमें विभक्त हो जाता है। अगर हम ऋणोदसे धनोद को चलें तो पहले प्रकाश दिखाई देगा जिसको ऋणोद प्रकाश कहते हैं। इस ऋणात्मक प्रकाश और विभक्त धनात्मकस्थंबके पहिले पुटके बीचमें एक श्याम पुट होता है जिसका ज्ञान पहिले फरेडे नामक विज्ञान वेत्ताको हुआ और उसीके नाम पर इसको फैरेडे श्याम पुट कहते हैं।

यदि गैस और भी निकालते जावें तो थोड़ी देरमें यह ऋणात्मक प्रकाश भी दो भागोंमें विभक्त हो जाता है जिनके बीचमें एक और श्याम पुट दिखाई देता है। ऋणोदसे मिले हुये प्रकाशको ऋणोद प्रकाश कहते हैं और दूसरे प्रकाशको ऋणात्मक प्रकाश कहते हैं इनके बीचके श्याम पुटका ज्ञान क्रुक्स नामी विज्ञान वेत्ताको हुआ था और उन्हींके नाम पर क्रुक्स श्याम पुट कहलाता है। नलीके इस समयका दृश्य नीचेके चित्रमें दिखाया है।

१
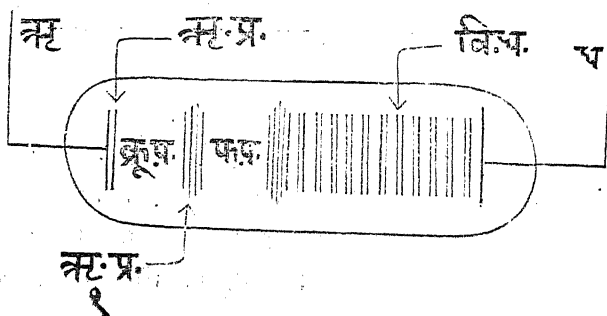
ऋ=ऋणोद । ऋ० प्र०=ऋणोद प्रकाश
क=क्रुक्स श्याम पुट । ऋ,० प्र०=ऋणात्मक प्रकाश
फ=फेरेडे श्याम पुट । वि० ध०=विभक्त धनात्मक
ध=धनोद

यदि हम नलीमें दबाव और भी कम करते चले जावें तो क्रुक्स श्याम पुट धनोद की ओर बढ़ता जाता है और थोड़ी देरमें लगभग तमाम नलीमें फैल जाता है । नलीका कांच इस समय दमकने लगता है इस दमकका रङ्ग भिन्न भिन्न प्रकारके कांच पर निर्भर है । यदि नली मामूली कांचकी बनी है तो यह रङ्ग हरियाला पीला होगा इस दशामें नलीसे रोञ्जन रश्मियें सर्वत्र बिखरने लगती हैं ।

१८६५ ई० में रोञ्जन जरमनीमें बर्टजवर्ग के विश्वविद्यालयमें इस प्रयोगका कर रहे थे रोञ्जन कदके लम्बे और अति सुन्दर थे इनकी दाढ़ी अधिक लम्बी थी जिसके कारण इनका चेहरा बड़ा रोब दाब का मालूम होता था। इनको चित्र खैचनेका बड़ा शौक था। प्रति दिन दोपहरको वह कुछ न कुछ चित्र अवश्य खैंचा करते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि उन्होंने चित्र पटके बक्स को जिसमें पट लगा हुआ था उसी मेज पर जिस पर वह अपना प्रयोग कर रहे थे रखा हुआ छोड़ दिया और जिस पुस्तकको पढ़ रहे थे उसमें चाबी बतौर चिन्हके रखकर उस पुस्तक को चाबी सहित चित्र पटके बक्सके ऊपर रखकर कार्य्य वश बाहर चले गये। गैस नलीमें इस समय विद्युत् धारा का प्रवाह हो रहा था और रोञ्जन कमरे के बाहर अपना काम कर रहे थे कुछ समय पश्चात् जब लौट कर आये तो उस पुस्तकको उठाकर साधारणतः फिर पढ़ने लगे। उनको इस बातका कुछ भी ज्ञान न था कि आज दोपहरको उन्हें ऐसी समस्याका सामना करना है जिसके हल करनेसे वैज्ञानिक क्षेत्रमें एक ऐसा आविष्कार होगा जिसके कारण रोञ्जनका नाम इस संसारमें सर्वदाके लिये अमर हो जायगा।

प्रयोग समाप्त करनेके पश्चात् सरल भावसे चित्र के स्लाइड को उठा कर रोञ्जन चित्र खैंचनेके लिये लगभग ११ बजे दिनको चले गये। उस चित्र परके चित्रको उभारनेके पश्चात् उन्होंने देखा कि पट पर एक कुञ्जीका चित्र और बना हुआ है। इस चित्रको देखकर रोञ्जन थोड़ी देर तक सोचते रहे कि मैंने तो एक और ही दृश्यका चित्र खैंचा था जहाँ पर कुञ्जीका नामभी न था यह कुञ्जी आई तो कहाँसे । विधिपूर्वक देखनेसे उसे ज्ञात हुआ कि यह कुञ्जी तो उसके कमरेकी कुञ्जीसे मिलती है। बहुत सोचनेके बाद उसको याद आया कि पुस्तकके बीचमें कुञ्जी रखकर वे पुस्तकको स्लाइडके ऊपर रख गये थे। उनको यह शंका हुई कि उसी समय किसी अद्भुत प्रकारसे इस कुञ्जीका चित्र पट पर आया है। लेकिन यह विश्वास करने योग्य न था क्योंकि पट चारों ओरसे लकड़ीके बक्समें ढका था किसी प्रकार वहाँ तक कोई प्रकाश नहीं पहुँच सकता था। यह बातें सोच सोचकर रोञ्जन बड़े पेंचमें पड़ गये। परन्तु वह घबराये नहीं और खड़े होकर बड़े गम्भीर भावसे इस समस्या पर विचार करने लगे । उनको यह दृढ़ विश्वास हो गया कि हो न हो किसी प्रकारकी किरणें उस नलीमेंसे उस समय निकल रही थीं जो लकड़ीमेंसे पार हो सकती हैं। और उन्हींके द्वारा कुञ्जीका चित्र पट पर स्रवित हुआ है। इस विचारको निश्चय करनेके लिये इन्होंने उसी प्रकार चित्र पटके बक्स (स्लाइड) में पट रखकर और पुस्तकमें कुंजी रखकर उस पुस्तकको चित्र पटके बक्स (स्लाइड) पर रख दिया और अपना वही प्रयोग आरम्भ कर दिया। लगभग दो तीन घंटेके बाद उस चित्रके स्लाइडको ले जाकर उन्होंने बड़ी सावधानी से पटको निकाला और चित्रको उभारा। उभारनेके बाद पटको देखकर तुरन्त उछल पड़े कुंजीका चित्र उसमें उपस्थित था यह देखकर बड़ी जोरसे बोल उठे कि नलीमें कुछ रश्मियां ऐसी निकल रही हैं जो लकड़ीमें से पार हो जाती हैं। इन रश्मियोंका अधिक ज्ञान न होनेके कारण रोञ्जनने इनका नाम एक्स रश्मियें रक्खा लेकिन इन रश्मियोंको आविष्कारकके नामपर रोञ्जन रश्मियें भी कहते हैं।

रोञ्जनने इस बातको निश्चय करनेके लिये कि ये रश्मियां लकड़ी जैसी वस्तुमेंसे जो सूर्यके प्रकाशके लिये अपार दर्शक है पार होकर निकल जाती हैं यह प्रयोग किया। उसने अपनी गैस नलीको चारों ओरसे एक और अपार दर्शक वस्तुसे ढक दिया। इससे पहिले रोञ्जनको यह भी ज्ञान हो गया था कि (Barium platino cyanide plate) भार परराप्य श्यामिद पट जिस समय रोञ्जन रश्मियोंके सन्मुख रक्खा जाय तो वह चमकने लगता है अब उन्होंने चारों ओरसे ढकी हुई गैस नलीके सामने भार परराप्य श्यामिद पट को रक्खा तो उनको यह प्रगट हुआ कि पट उसी समान चमक रहा था जैसा कि वह रोञ्जन रश्मियोंके आगे रक्खा हो। इससे इस बातकी पुष्टि होती है कि जो वस्तु सूर्यके प्रकाश के लिये अपार दर्शक है वह इन रश्मियोंके लिये पार दर्शक हैं।

इस आविष्कारने विज्ञान क्षेत्रमें एक बिलकुल ही नये विषयका पहिला चिन्ह दिखलाया। इस चिन्हको देखकर विज्ञान वेत्ताओंने अपनी अपनी प्रयोगशालाओं में इन रश्मियोंका गुण जाननेके लिये प्रयोग करने आरम्भ कर दिये और थोड़ेही समयमें उनको यह ज्ञान हुआ कि रोञ्जन रश्मियें चुम्बक या विद्युत् क्षेत्रमें होकर निकलें तो यह किसी तरफको नहीं झुकती हैं। इससे इस परिणामको पहुँचते हैं कि इनमें ऋणोद रश्मियोंके समान विद्युन्मय कण नहीं होते जो चुम्बक या विद्युतक्षेत्रमें अपने पथको छोड़कर किसी तरफ झुक जावें।

ग्रैन्डीज़ और डार्नने यह बतलाया कि इन रोञ्जन रश्मियोंका हमारे दृष्टि पटलपर यह प्रभाव पड़ता है कि सारा पटल प्रकाशित हो जाता है जिससे हमारे नेत्रोंको बड़ी हानि पहुँचती है। अगर इन रश्मियोंकी तरफ थोड़ीभी देर देखा जाय तो नेत्र नष्ट होनेका भय है।

उस समय इन रश्मियोंके वारेमें यह विचारथे कि वह प्रकाशकी किरणोंके समान आवर्जित और परावर्तित नहीं होती है। इतना अवश्य मालूम हो गया था कि यदि ये किसी वस्तु पर टकरावें तो सर्वत्र बिखर जाती हैं। और यदि किसी वस्तुमेंसे यह पार होवे तो यह अंशतः शोषित होती हैं। यदि रश्मियें ऐसी वस्तुमें पार हों जिनका परमाणु भार अधिक हो तो अधिक शोषित होती हैं। अब इस विषयके संबन्धमें प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि रोञ्जन रश्मियें भी प्रकाश किरणोंकी तरह आवर्जित और परावर्तित होती हैं। इन विषयोंके वारेमें हम इस समय कुछ अधिक न लिखेंगे बल्कि इन रश्मियोंके एक मुख्य गुणके बारेमें कुछ लिखेंगे। साधारण अवस्थामें गैस विद्युत वाहक नहीं होते अर्थात् अगर आप एक विद्युद्दर्शक लें और उसे भरें तो उसमें विद्युत मात्रा अधिक समय तक बनी रहेगी जिसका प्रमाण यह है कि विद्युतदर्शककी पत्तियां एक दूसरेसे उतनीही अलग रहेंगी इससे हम इस परिणामको पहुँचते हैं कि हवा जो विद्युत दर्शकमें है विद्युतवाहक नहीं है यदि होती तो विद्युत्धारा पत्तियोंसे विद्युत दर्शककी दीवालोंमें प्रवाह होने लगता और थोड़ेही समयमें उसकी पत्तियां एक दूसरेसे मिल जातीं। इस प्रयोगसे यह नहीं समझना चाहिए कि विद्युत दर्शक उसी दशामें छोड़ दिया जाय तो पत्तियां सर्वदा अलग रहेंगी बल्कि विद्युतदर्शककी मात्रा धीरे धीरे निकलती जावेगी और एक या दो घंटेमें पत्तियाँ फिर एक दूसरेसे मिल जावेंगी। यदि विद्युत दर्शककी हवामें होकर रोञ्जन रश्मियें जावें तो उसकी बिजली थोड़े ही समयमें बिलकुल जाती रहेगी। इसका कारण यह है कि विद्युत् दर्शककी हवा जो पहिले वाहक न थी रोञ्जन रश्मियोंके जानेके कारण विद्युत वाहक हो गई इसको अच्छी प्रकार समझनेके लिये हमको निम्न-लिखित प्रयोग पर विचार करना चाहिये।

प्रयोगः—

इस प्रयोगमें 'व०' एक विद्युन्मय दर्शक है जिसके बायें हाथ की ओर एक नली लगी हुई है जिसको रबर की नली द्वारा एक वायु पम्प से सम्ब-

न्ध है। सीधे हाथकी ओर एक और नली है जो एक पतली कांचकी नलीसे जुड़ी हुई है जिसका दूसरा
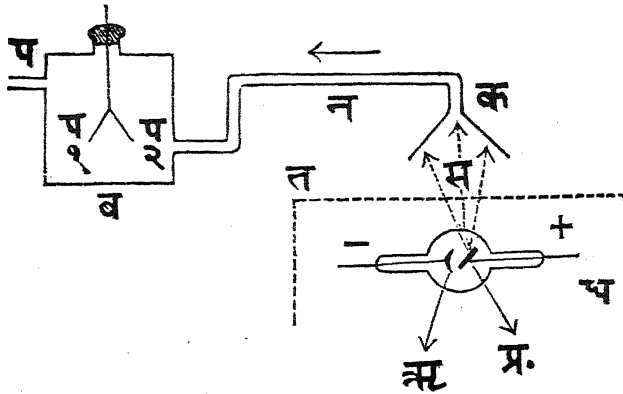
सिरा 'क' एक कोपसे मिला हुआ है 'र' एक रोञ्जन लम्प है जिसमें (ऋ) नतोदर ऋणोद है जिससे ऋणोद्य रश्मियां चल कर प्रति ऋणोद से टकराती हैं और उनके टकरानेसे रोञ्जन रश्मियें सर्वत्र फैलने लगती हैं चित्रमें ये किरणें टूटी हुई रेखासे दिखलायी गई हैं। ये रोञ्जन नली चारो ओर से 'त' सीसे के बक्ससे ढकी हुई है इसकी ये उपयोगिता है कि रोञ्जन रश्मियें सीधी विद्युन्मय दर्शक तक नहीं पहुँच सकती हैं इस बक्समें 'स' एक सुराख है जिसमें होकर रोञ्जन रश्मियें कीपतकके पहुँचती हैं।

यदि हम रोञ्जन लम्पमें विद्युत धाराका प्रवाह नहीं करते हैं तो विद्युन्मय दर्शक की पत्तियां एक समान एक दूसरेसे अलग रहती हैं। वायु पम्प जिसका हमने विद्युनमय दर्शकके बाईं ओर सम्बन्ध किया है चलनेसे विद्युन्मय दर्शकके बक्समें वायुकी धारा बहने लगती है। हवा कीपमें से अन्दर जाती है और बांए हाथ वाली नलीसे बाहर निकल जाती है। यदि रञ्जन लेम्पसे विद्युत्धाराका प्रवाह किया जाय तो प्रति ऋणोद्यसे रोञ्जन रश्मियें निकल कर कीपकी हवासे टकराती हैं। साधारणतः हवाके अणु या परमाणु विद्युत् हीन होते हैं परन्तु रोञ्जन रश्मियेंके टकरानेसे वे दो भागोंमें बिभक्त हो जाते हैं उनमेंसे एक ऋणात्मक और दूसरा धनात्मक पाया जाता है। पहिलेको ऋण यवन और दूसरेको धनयवन कहते हैं। ऋण यवन विद्युन मयदर्शकके धनोदको ओर और धनयवन ऋणोदकी ओर दौड़ते हैं। जिस समय ये यवन अपनी प्रति बिजलोदसे टकराते हैं तो स्वयम् विद्युत् हीन हो जाते हैं और बिजलोदकी बिजलीकी मात्रा को भी कम कर देते हैं साधारण अथवा विद्युतहीन परमाणुका ऋण यवन और धन यवनमें विभक्त होनेको 'यापन' कहते हैं।

नफ्थलीन, अङ्गारिन, पिरीदिन, और कुनोलिन

(Naphthalene, anthracene, pyridine and quinoline)

(ले० श्री सत्यप्रकाश, एम. एस-सी)

नफ्थलीन—क१०उ८

बानजावीन यौगिकोंका उल्लेख गत अध्यायोंमें किया जा चुका है। अब नफ्थलीन यौगिकोंका वर्णन यहाँ दिया जावेगा। नफ्थलीनमें दो बानजावीन केन्द्र इस प्रकार एक दूसरेसे संयुक्त कर दिये गये हैं कि दो कर्बन परमाणु दोनों केन्द्रोंमें उपयुक्त होते हैं—
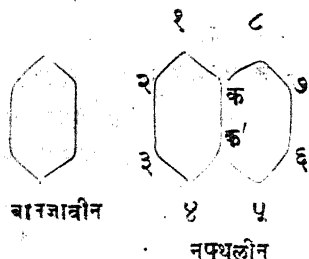
इस प्रकार नफ्थलीन में १० कर्बन परमाणु हैं। १, २, ३, ४, ५, ६, ७, और ८ स्थानके कर्बन परमाणु एक एक उदजनसे संयुक्त हैं पर क, क' के कर्बन परमाणुओंके साथ कोई उदजन नहीं है। इस प्रकार इसमें ८ उदजन परमाणु हैं। नफ्थलीनका सूत्र क१० उ८ है। इसको निम्न प्रकार चित्रित करते हैं।
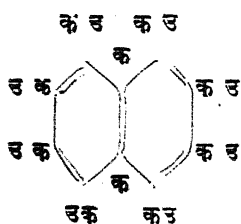
बानजावीनका उल्लेख करते हुए कहा जा चुका कि कालतारका स्रवण करनेसे मध्य तैलमें नफ्थलीन पाया जाता है। इस मध्य तैलमेंसे कुछ नफ्थलीन कुछ समय पश्चात् रवाकार पृथक् हो जाता है। फिर इसमेंसे दिव्योल यौगिक अलग करके स्रवण करते हैं जिससे पहले स्रवित होनेवाले तैल पदार्थ अलग कर लिये जाते हैं। तत्पश्चात् नफ्थलीन स्रवित होता है। यह अशुद्ध होता है अतः कुछ गन्धकाम्ल द्वारा अशुद्धियोंको घुलनशील गन्धोनिकाम्ल बनाकर पृथक् कर देते हैं। तत्पश्चात् नफ्थलीनका ऊर्ध्वपतन या वाष्पस्रवण कर लेते हैं। इसके पत्राकार रवोंका द्रवांक ७९° और क्वथनांक २१८ है।

नफ्थलीन उड़नशील पदार्थ है जो धुएंदार ज्वाला से जलता है अतः कोलगैसकी दीप्ति शक्ति बढ़ानेके लिये इसका उपयोग किया जाता है। यह कीटाणु-नाशक भी है अतः इसका उपयोग बहुत किया जाता है। यदि रेशम आदिके कपड़ोंमें, कागजमें, या पुरातन संग्रहालयकी पशुअस्थियोंमें कीड़े लगनेकी सम्भावना हो तो नफ्थलीनकी गोलियां पासमें रखनी चाहिये। प्लेगके दिनोंमें इसकी गोलियां जेबमें रखनी आवश्यक हैं। नफ्थलीनका उपयोग कृत्रिमनीलके बनानेमें बहुत किया जाता है।

बहुतसे गुणोंमें नफ्थलीन बानजावीनके समान है। यह उसके समान हरोयौगिक, नोषयौगिक, गन्धोनिकाम्ल आदि देता है।

क१० उ७ ह हरो-नफ्थलीन	क१० उ७ नो ओ२ नोष-नफ्थलीन
क१० उ६ ह२ द्विहरो नफ्थलीन	क१० उ६ (नो ओ२)२ द्विनोष नफ्थलीन

क१० उ७ ग ओ३ उ
नफ्थलीन गन्धोनिकाम्ल
क१० उ६ (ग ओ३ उ)२
नफ्थली द्विगन्धोनिकाम्ल
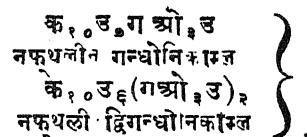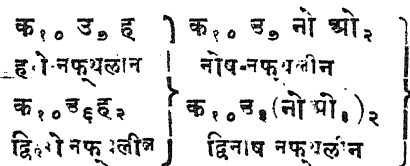
नोषबानजावीनके समान नोष नफ्थलीनके अवकरण करनेसे नफ्थील-अमिन बन सकता है। यह

अमिनो यौगिक नोषिताम्ल द्वारा द्वयजीव यौगिकोंमें परिणत किये जा सकते हैं जिनसे अजीव रंगोंके समान तरह तरहके रंग बन सकते हैं। गन्धोनिकाम्ल दाहकक्षारोंके साथ गलाकर दिव्यौलके समान नफ़्थोल नामक यौगिकोंमें परिणत किये जा सकते हैं।

$$\text{क}_{१०}\text{उ}_{७}\text{ नो ओ}_{२} + ३\,\text{उ}_{२}$$

नोषनफ़्थलीन

$$= \text{क}_{१०}\text{उ}_{७}\text{ नो उ}_{२} + २\,\text{उ}_{२}\text{ ओ}$$

नफ़्थीलामिन

$$\text{क}_{१०}\text{उ}_{७}\text{नोउ}_{२} + \text{उनोओ}_{२} + \text{उ ह}$$

$$= \text{क}_{१०}\text{उ}_{७}\text{नो: नोह} + २\,\text{उ}_{२}\text{ ओ}$$

द्वयजीव नफ़्थलीन

$$\text{क}_{१०}\text{उ}_{७}\text{ ग ओ}_{३}\text{उ} + \text{पां ओ उ}$$

$$= \text{क}_{१०}\text{उ}_{७}\text{ ओ उ} + \text{पां उ ग ओ}_{३}$$
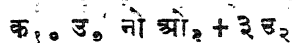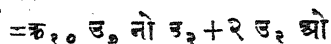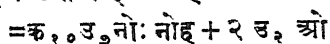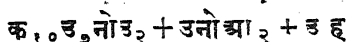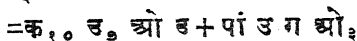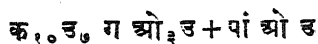
नफ़्थोल

इसी प्रकार नफ्थलीन विशेष अवस्थामें उदजन द्वारा संयुक्त होकर उद-नफ़्थलीन बनता है। वंलील मद्यके घोलमें नफ़्थलीनको सैन्धकम् द्वारा प्रभावित करनेसे चतुर-उद-नफ़्थलीन, $\text{क}_{१०}\text{उ}_{१२}$ बनता है।

हरोपिपीलके घोलमें नफ़्थलीनमें हरिन् प्रवाहित करनेसे नफ़्थलीन-चतुर्हरिद्, $\text{क}_{१०}\text{उ}_{८}\text{ह}_{४}$ बनता है। नफ़्थलीन और पांशुजहरेतके मिश्रणमें उदहरिकाम्ल डालनेसे नफ़्थलीन द्विहरिद $\text{क}_{१०}\text{उ}_{८}\text{ह}_{२}$ बनता है।

नफ़्थलीनका ओषदीकरण—पहले यह कहा जा चुका है कि यदि नफ़्थलीनका पारद गन्धेतकी विद्यमानता में गन्धकाम्ल द्वारा ओषदीकरण करें थलिकाम्ल प्राप्त होता है।

नफ़्थलीन थलिकाम्ल
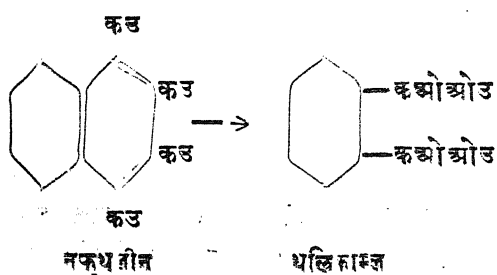
बानजावीनका वर्णन देते हुए कहा जा चुका है कि ओषदीकरण करने पर बानजावीन केन्द्रकी पार्श्व श्रेणियाँ कर्बौषिल मूलमें परिणत हो जाती है। उदाहरणतः, यदि द्विज्वलील बानजावीनका ओषदीकरण किया जाय तो दोनों पार्श्वश्रेणियोंके स्थानमें कर्बौषिल मूल—कओओउ-लग जायगा।
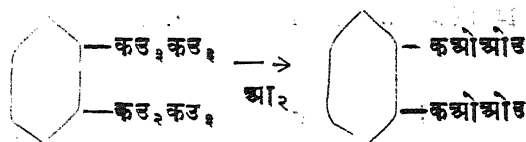
द्विज्वलील बानजावीन

नफ़्थलीनके ओषदीकरणसे जो थलिकाम्ल मिलता है उसमें दो कर्बौषिल मूल हैं। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि नफ़्थलीनकी आंतर-रचनामें एक बानजावीन केन्द्र है और दो पार्श्व-श्रेणियाँ है जिनके सिर आपसमें जोड़ दिये गये हैं—
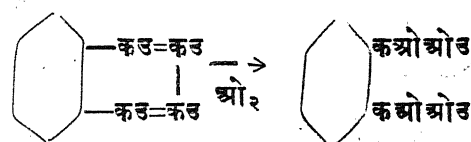
नफ़्थलीन थलिकाम्ल

ये दोनों पार्श्वश्रेणियां ओषदीकरण द्वारा दो कर्बौषिलमूल देती हैं जिनसे थलिकाम्ल प्राप्त होता है।

इसी प्रकार यदि नोष नफ्थलीन $\text{क}_{१०}\text{उ}_{७}\text{ नोओ}_{२}$ का ओषदीकरण किया जाय तो नोष थलिकाम्ल $(\text{कओ ओउ})_{२}\text{ क}_{६}\text{ उ}_{३}\text{ (नोओ}_{२})$ प्राप्त होता है। ग्रेबे ने एक विचित्र बात देखी कि यदि नोष-नफ्थलीन का अवकरण करके नफ्थीलामिन, $\text{क}_{१०}\text{उ}_{७}\text{ नोउ}_{२}$ बनाया जाय और फिर पूर्वानुसार ओषदीकरण किया जाय तो अमिनोथलिकाम्ल नहीं मिलता है, केवल थलिकाम्ल ही मिलता है। इसका क्या कारण है? ग्रैबेने इसका समाधान इस प्रकार किया कि नफ़्थलीन में दो बानजावीन केन्द्र हैं। इनमेंसे किसी एक का

ओषदीकरण हो सकता है जिस समय नोष नफ्थलीन का ओषदीकरण किया गया था उस समय उस बानजावीन केन्द्र का ओषदीकरण हो गया था जिसमें नोषो-मूल, नोओ$_2$ नहीं था। पर अवकरण करके जब अमिनो नफथलीन का ओषदीकरण किया गया तो उस केन्द्र का ओषदीकरण हुआ है जिसमें अमिनो मूल, नोउ$_2$ है। इस प्रकार ग्रैबेने भली प्रकार दिखा दिया कि नफ्थलीन में दो बानजावीन केन्द्र हैं—
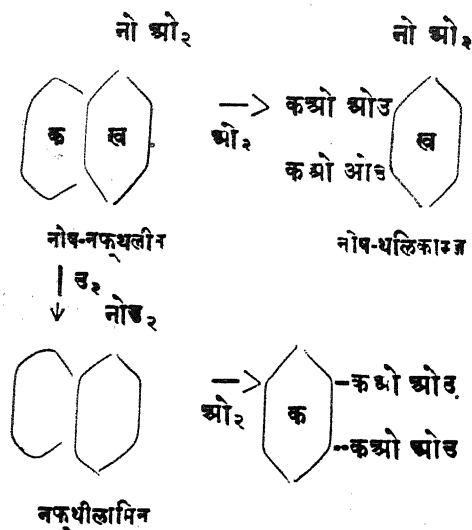
इस प्रकार एक अवस्था में तो (क) बानजावीन केन्द्रने पार्श्वश्रेणीका काम किया है और उसका ओषदीकरण हो गया है और दूसरी अवस्था में (ख) केन्द्र पार्श्वश्रेणी बनकर ओषदीकृत हो गया है।

फिटिग की संश्लेषण विधि—ऊपर दिये हुए प्रयोगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नफ्थलीन में दो बानजावीन केन्द्र हैं। इसकी आंतर रचना पर फिटिग की संश्लेषण विधिसे भी कुछ प्रकाश पड़ सकता है। फिटिगने दिव्यील समकटुकाम्लको गरम करके नफ्थोल बनाया। दिव्यील समकटुकाम्ल परकिन की प्रक्रियासे बानजाव मद्यानार्द्र और रालिकाम्ल द्वारा निम्न प्रकार बन सकता हैः—

कओ ओउ
|
क$_6$ उ$_5$ कउओ + कउ$_2$ कउ$_2$ कओ ओउ
रालिकाम्ल
कओ ओउ
|
—> क$_6$ उ$_5$ कउः क — कउ$_2$ कओ ओउ
↓
क$_6$ उ$_5$ कउः कउ कउ$_2$ कओ ओउ + कओ$_2$
दिव्यील समकटुकाम्ल
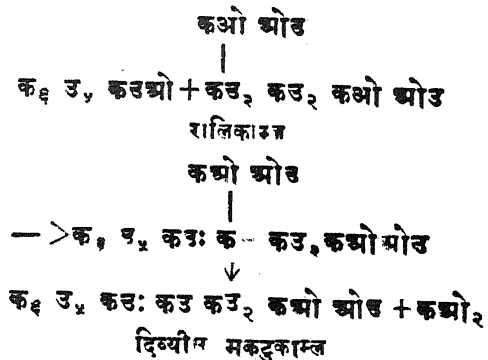
दिव्यीलसमकटुकाम्लसे नफ्थोल निम्न प्रकार बना:—
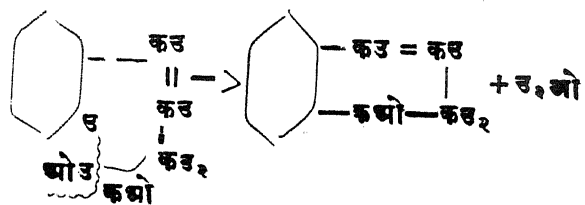
दिव्यील समकटुकाम्ल

नफ्थोल

नफ्थलीनके यौगिकों की समरूपता—नफ्थलीनको निम्न प्रकार चित्रित करनेसे पता चलता है कि चार-कर्बन परमाणुओंके उदजन (१, ४, ५, ८) बीचके
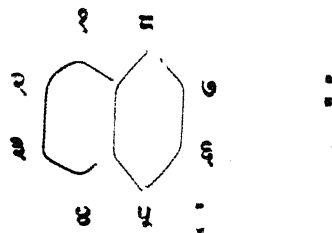
कर्बन परमाणुओंसे १ कर्बन परमाणुके अन्तर पर हैं, २ ३, ६, और ७ के उदजन दोनों केन्द्रोंके

बीचके कर्बन परमाणुओंसे २ कर्बन-परमाणुओंके अन्तर पर हैं अतः यदि नफ्थलीनमें कोई एक मूल स्थापित किया जाय तो दो प्रकारके यौगिक मिलेंगे। एक प्रकारके यौगिकमें यह नवीन मूल १, ४, ५ अथवा ८ वाले कर्बन परमाणु से संयुक्त होगा और दूसरेमें २, ३, ६ या ७ वाले कर्बन से। दो प्रकारके उदौष नफ्थलीन (या नफ्थोल) निम्न प्रकार होंगे—

क-नफ्थोल नफ्थोल ख-नफ्थोल
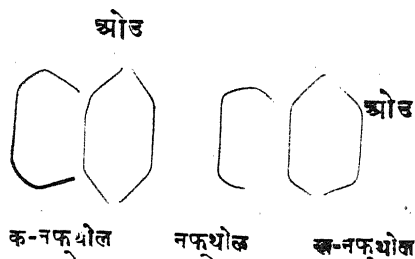
इन दोनों प्रकारके नफ्थोलोंके गुण भिन्न भिन्न होंगे। यदि मूल १, ४, ५, या ८ के कर्बनसे संयुक्त हो तो प्राप्त यौगिकको क- यौगिक कहते हैं, और यदि २, ३, ६, या ७ से संयुक्त हो तो ख-यौगिक कहलायेगा। क-नफ्थीलामिन और ख-नफ्थीलामिन निम्न प्रकार सूचित किये जा सकेंगे:—

क-नफ्थीलामिन ख-नफ्थीलामिन
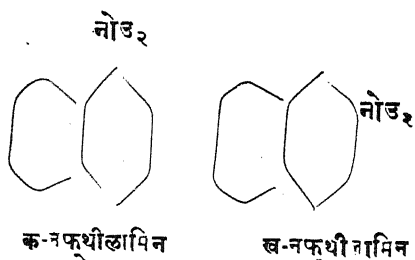
इसी प्रकार दो एक-हर-नफ्थलीन $क_{१०} उ_{७} ह$, होते हैं।

यदि दो उदौषमूल या दो अमिनो, नोषो या कोई दो मूल स्थापित किये जायं तो ये नफ्थलीन के निम्न युग्मों के कर्बन परमाणुओंसे संयुक्त हो सकते हैं—

१:२, १:३, १:४, १:५, १:६, १:७, १:८, २:३, २:६, २:७,

बस ये ही दस भिन्न भिन्न युग्म बन सकते हैं। अन्य युग्म इन्हींके अन्तर्गत आ जावेंगे क्योंकि—

२:४ = १:३; २:५ = १:६, २:८ = १:७ इत्यादि

अतः दस प्रकारके द्विउदौष नफ्थलीन, द्विहर नफ्थलीन, द्विनोष नफ्थलीन आदि हो सकते हैं। नफ्थलीनमें यदि दो मूल १ और ८ स्थान पर हों तो उन्हें शिखरी (Peri) कहते हैं। यह बानजावीनके पूर्वयौगिकोंके समान समझे जा सकते हैं।

शिखरी-नफ्थलीन-द्विकर्बोषिलिकाम्ल निम्न है:—
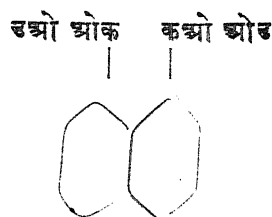
क-हरो नफ्थलीन—$क_{१०} उ_{७} ह$—उबलते हुए नफ्थलीन में हरिन् प्रवाहित करनेसे यह बनता है। नफ्थलीन-क-गन्धोनिकहरिदको स्फुर पंचहरिदके साथ गरम करनेसे भी बन सकता है:—

$क_{१०} उ_{७} गओ_{२} ह + स्फुह_{५} = क_{१०} उ_{७} ह + स्फुओह_{३} + गओह_{२}$

यह नीरंग द्रव है जिसका क्वथनांक २६३°श है।

ख-हरो नफ्थलीन—यह सीधा नहीं बन सकता है ख-नफ्थीलामिन का द्वयजीवकरण करके सेण्डमायर की प्रक्रियासे यह बनाया जा सकता है।

$क_{१०}उ_{७}नोउ_{२} \rightarrow क_{१०}उ_{७}नो: नोह \rightarrow क_{१०}उ_{७}ह$

ख-नफ्थीलामिन ख-द्वयजीवनफ्थलीन ख-नफ्थलीनहरिद हरिद

ख-नफथोल पर स्फुर पंचहरिदके प्रभावसे भी यह बन सकता है, यह ठोस है। इसका द्रवांक ५६° है और क्वथनांक २६५° है।

क-नोष नफ्थलीन—$क_{१०}उ_{७}नोओ_{२}$—नफ्थलीनके नोषकरणसे यह प्राप्त होता है। इसके सूच्याकार पीले रवोंका द्रवांक ६१° है। इसका फिर नोषकरण

करनेसे १:५, १:८, द्विनोष नफ़्थलीन और कई त्रिनोष और चतुर्नोष नफ़्थलीन मिलते हैं।

ख-नोष नफ़्थलीन—यह ख-नफ़्थीलामिनका द्व्यजीवकरण करके प्राप्त पदार्थको ताम्रस ओषिदकी विद्यमानतामें सैन्धक नोषित का प्रभाव डालनेसे प्राप्त होता है। इसके पीले सूच्याकार रवोंका द्रवांक ७९° है।

क$_{१०}$उ$_{७}$नो:नोह + उनोओ$_{२}$=क$_{१०}$उ$_{७}$नो:नोनोओ$_{२}$
=क$_{१०}$उ$_{७}$नोओ$_{२}$
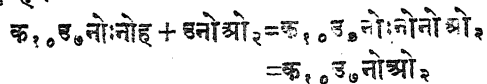
क-नफ़्थीलामिन—क$_{१०}$ उ$_{७}$ नो उ$_{२}$—क-नोष नफ़्थलीनके अवकरणसे यह प्राप्त हो सकता है। क-नफ़्थोल और अमोनियाको दस्तहरिद या खटिक हरिदकी विद्यमानतामें गरम करनेसे भी यह मिल सकता है—

क$_{१०}$उ$_{७}$ओउ + नोउ$_{३}$=क$_{१०}$उ$_{८}$नोउ$_{२}$ + उ$_{२}$ओ
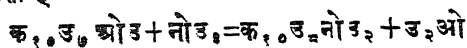
यह नीरंग रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक ५०°श और क्वथनांक ३००° है।

ख-नफ़्थीलामिन—यह ख-नफ़्थोलको अमोनिया और दस्तहरिदके द्विगुण यौगिकके साथ गरम करनेसे मिल सकता है। ख-नफ़्थोल पर अमोनियम उदौषिद और गन्धितके प्रभावसे भी यह मिल सकता है। प्रक्रियामें पहलेतो नफ़्थलीन अमोनियम गन्धित बनता है पर बादको यह नफ़्थलीन अमोनियम गन्धित अमोनिया के साथ नफ़्थीलामिन दे देता है।

क$_{१०}$उ$_{७}$ओउ + (नोउ$_{४}$)$_{२}$ गओ$_{४}$=क$_{१०}$उ$_{७}$(नोउ$_{४}$) गओ$_{४}$ + नोउ$_{२}$ ओउ
नफ़्थोल
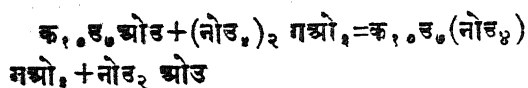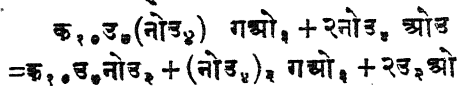
क$_{१०}$उ$_{७}$(नोउ$_{४}$) गओ$_{४}$ + २नोउ$_{३}$ ओउ
=क$_{१०}$उ$_{७}$नोउ$_{२}$ + (नोउ$_{४}$)$_{२}$ गओ$_{४}$ + २उ$_{२}$ओ
नफ़्थीलामिन

इसके रवोंका द्रवांक ११२° और क्वथनांक २९४°श है। इसमें कोई गन्ध नहीं होती है। क-नफ़्थीलामिनकी अपेक्षा अधिक स्थायी है।

क-और-ख-नफ़्थलीन गन्धोनिकाम्ल—क$_{१०}$ उ$_{७}$-गओ$_{३}$उ--नफ़्थलीन और गन्धकाम्लके प्रभावसे दोनों क-और-ख-गन्धोनिकाम्ल प्राप्त होते हैं। ८०°श तापक्रमके निकट क-यौगिककी मात्रा अधिक रहती है पर उच्चतापक्रम (१६०°) पर ख-यौगिककी मात्रा अधिक होती है। ये दोनों घुलनशील पदार्थ हैं और इनके लवण भी घुलनशील होते हैं। पांशुजक्षारके साथ गलानेसे ये नफ़्थोल देते हैं। पांशुजश्यामिदके साथ स्रवित करनेसे ये श्यामिद देते हैं। स्फुर पंचहरिद द्वारा ये गन्धोनिक हरिद, क$_{१०}$ उ$_{७}$ गओ$_{२}$ ह में परिणत हो जाते हैं।

१-४-नफ़्थीलामिन गन्धोनिकाम्ल—अजीव रंगके बनानेमें व्यवहृत होता है। क-नफ़्थीलामिन गन्धेतको शून्यमें १३०° तक गरम करनेसे यह प्राप्त होता है। इसे गन्धनीलिकाम्लके समान समझना चाहिये। इसे नफगन्धोनिकाम्ल (Naphthionic acid) भी कहते हैं।

नोउ$_{२}$

गओ$_{३}$उ
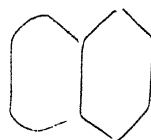
नफगन्धोनिकाम्ल

क-नफ़्थोल (α-naphthol)—क$_{१०}$उ$_{७}$ओउ—क-और ख-नफ़्थोल दिव्योलोंके समान हैं। नफ़्थलीन एक-गन्धोनिकाम्लको सैन्धकक्षारके साथ गलानेसे यह प्राप्त हो सकता है। क नफ़्थीलामिनका द्व्यजीवकरण करके भी यह बनाया जा सकता है। दिव्यीलसम कटुकाम्ल द्वारा संश्लेषण करनेकी विधिका उल्लेख पहले किया जा चुका है। यह जलमें अनघुल है। यह उड़नशील है और इसमें दिव्योलिक गन्ध होती है। यह लोहिक हरिदके साथ द्वि नफ़्थोलका बैंजनी अवक्षेप देता है:—

ओउ क$_{१०}$उ$_{६}$क$_{१०}$उ$_{६}$ ओउ
द्वि नफ़्थोल
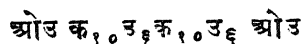
नोषसाम्लके साथ यह क-और ख-नोषोसो क-नफ्थोल देता है जिसे नफ्थाकुनोनोषिम (Naphthaquinoneoxime) भी कह सकते हैं।
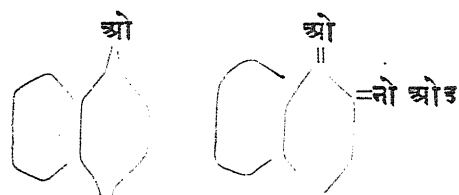
क-नोषोसो क-नफ्थोल   ख-नोषोसो क-नफ्थोल

ख-नफ्थोल (β naphthol) क$_{१०}$उ$_{७}$ ओउ—यह ख-नफ्थलीन गन्धोनिकाम्लको सैन्धकक्षारके साथ गलानेसे मिल सकता है। इसके पत्राकार रवोंका द्रवांक १२२° और क्वथनांक २८६° है। लोहिक हरिदके साथ यह हरा रंग देता है।

क-नफ्थाकुनोन (naphthaquinone) क$_{१०}$ उ$_{६}$ ओ$_{२}$—यह बानजोकुनोनके समान है। क-नफ्थीलामिन, १·४ द्वि-अमिनो या द्वि-उदौष-नफ्थलीन या १:४ अमिनो नफ्थोल आदिके ओषदीकरणसे प्राप्त होता है। इसके पीत पत्राकार रवे होते हैं जो १००° पर ऊर्ध्व पतित होने लगते हैं।

ख-नफ्थाकुनोन—यह ख-अमिनो क-नफ्थोलको लोहिक हरिद द्वारा ओषदीकृत करके बनाया जा सकता है। इसके लाल सूच्याकार रवे होते हैं।
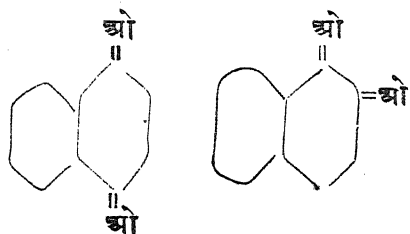
क-नफ्थाकुनोन   ख-नफ्थाकुनोन

इन दोनों पर उदौषिलामिनकी प्रक्रिया करनेसे वे दोनों यौगिक मिलते हैं जो क-नफ्थोल पर नोषसाम्ल द्वारा मिले थे, अर्थात् क नोषोसो क-नफ्थोल और ख-नोषोसो क-नफ्थोल। इन्हें क-और ख-नफ्थाकुनोनोषिम भी माना जा सकता है।

ऐसी नफ्थीन (acenaphthene)—क$_{१२}$उ$_{१०}$—यह कोलतारमें पाया जाता है और ओषदीकरण करने से नफ्थलिकाम्ल देता है।
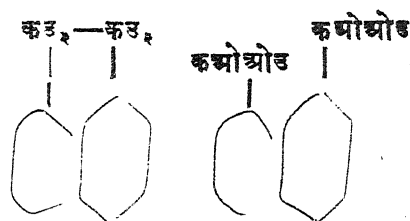
ऐसीनफ्थीन   नफ्थलिकाम्ल

अंगारिन (Anthracene)

क$_{१४}$ उ$_{१०}$

कोलतारके अन्तिम स्रवित भागमें अंगारिन पाया जाता है। इसके साथ साथ इसमें द्विव्यांगारिन (phenanthracene) और कर्बाजीवोल (carbazol) भी मिला होता है। इस मिश्रणमें पांशुजक्षार डालने से पांशुज कर्बाजीवोल बन जाता है और ऐसी अवस्थामें स्रवण करनेसे केवल अंगारिन और द्विव्यांगारिन् ही स्रवित होता है। इन दोनोंके मिश्रणको यदि कर्बन द्विगन्धिदमें घोला जाय तो इसमें द्विव्यांगारिन घुल जायगा और कम घुलनशील अंगारिन अलग रह जायगा। इस प्रकार शुद्ध अंगारिन मिल सकता है।

बानजावीन आदि घोलकोंसे शुद्ध अंगारिनका स्फटिकीकरण किया जा सकता है। इसके नीरंग पत्राकार रवोंका द्रवांक २१३° और क्वथनांक ३५१° है। प्रबलिकाम्लके साथ यह लाल यौगिक देता है जिसका द्रवांक १३८° है।

अंगारिनको हैमसिरकाम्लमें घोल कर रागिकाम्ल द्वारा ओषदीकृत करनेसे अंगार कुनोन प्राप्त होता है।
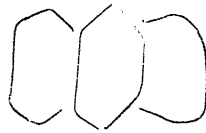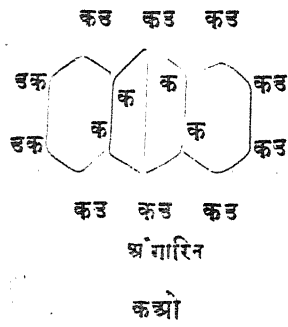
अंगारिनके गुण नफथलीनके समान हैं। गन्धकाम्ल द्वारा यह अंगारिन-एक-गन्धोनिकाम्ल और द्वि-गन्धोनिकाम्ल देता है। सैन्धक पारद मेल द्वारा यह अंगारिन उदिद क$_{१२}$ उ$_{१४}$ देता है।

कउ
क$_६$उ$_४$ < | > क$_६$उ$_४$
कउ
↓ अंगारिन
कउ$_२$
क$_६$उ$_४$ < > क$_६$उ$_४$
कउ$_२$
अंगारिन उदिद
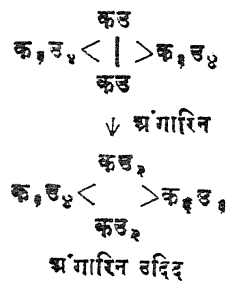
अंगारिनको कर्बन द्विगन्धिदमें घोल कर हरिन् प्रवाहित करने से अंगारिन द्विहरिद, क$_{१४}$ उ$_{१०}$ ह$_२$ नामक युक्त-यौगिक प्राप्त होता है पर यदि इस द्विहरिद पर पांशुजक्षारकी प्रक्रिया की जाय तो स्थापित-यौगिक-एक-हर-अंगारिन क$_{१४}$उ$_९$ह प्राप्त होगा।

क$_{१४}$उ$_{१०}$ह$_२$ + पांओउ
= क$_{१४}$उ$_९$ह + पांह + उ$_२$ओ
एकहर अंगारिन
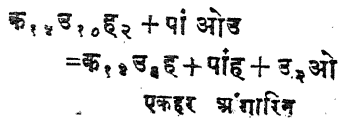
१००°श पर हरिन् और अंगारिनके प्रभावसे द्विहर अंगारिन क$_{१४}$उ$_८$ह$_२$ मिलता है। दोनों हर-अंगारिन पीले रवे दार पदार्थ हैं और ओषदीकरण पर अंगार कुनोन देते हैं। एक-हर-अंगारिन् का द्रवांक १०३° और द्विहर अंगारिन का २०९° है।

साधारण विधिसे नोषकरण करनेसे अंगारिन नोष-यौगिक नहीं देता है प्रत्युत नोषिकाम्ल द्वारा अंगार कुनोन में परिणत हो जाता है।

अंगारिन का संश्लेषण—स्फट हरिद की विद्यमानतामें बानजावीन पर सिरकीलिन अरुणिद, क$_२$ उ$_२$ रु$_२$ की प्रक्रियासे अंगारिन बनता है:—

रु.कउ.रु
क$_६$उ$_६$ + | + क$_६$उ$_६$
रुकउरु
कउ
= क$_६$उ$_४$ < | > क$_६$उ$_४$ + ४उरु
कउ
अंगारिन
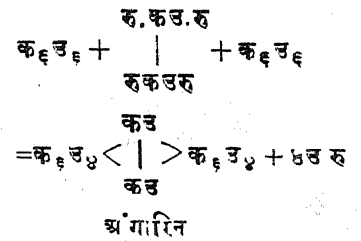
पू-टोलवील दिव्यील कीतोन को दस्त-चूर्णके साथ गरम करके भी यह मिल सकता है।

कउ$_३$
क$_६$उ$_४$ < क$_६$उ$_५$
कओ
पू-टोलवील दिव्यील कीतोन
कउ
= क$_६$उ$_४$ < | > क$_६$उ$_४$
कउ
अंगारिन
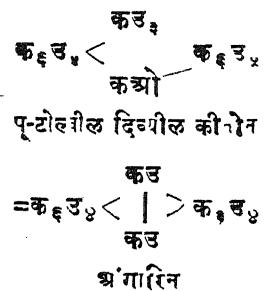
अंगारिन उदिद—क$_{१४}$उ$_{१२}$—यह बानजीलहरिद पर स्फट हरिदके प्रभावसे निम्न प्रकार बनता है।

क उ$_२$ ह
क$_६$उ$_५$ / + क$_६$ उ$_५$
क उ$_२$ ह /
बानजील हरिद

$$=\text{क उ}_४<\begin{matrix}\text{क उ}_२\\ \text{क उ}_२\end{matrix}>\text{क}_६\ \text{उ}_४+२\ \text{उ ह}$$
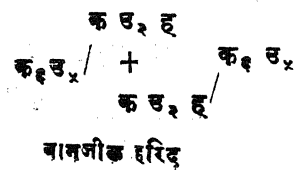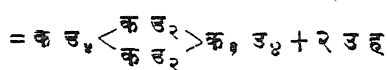
अंगारिन उदिद

इसके ओषदीकरणसे अंगारिन मिल सकताहै।

अंगारकुनोन(anthraquinone)-$\text{क}_{१४}\text{उ}_८\text{ओ}_२$—यह अंगारिनके ओषदीकरणसे मिलता है जैसा कि पहले कहा जा चुका है। पू. बानजावील बानजाविकाम्लको स्फुर पंचौषिद द्वारा प्रभावित करकेभी मिल सकता है—

$$\text{क}_६\text{उ}_४<\begin{matrix}\text{क ओ}\\ \text{कओओउ}\end{matrix}\!\!>\text{क}_६\ \text{उ}_५$$

पू. बानजावील बानजाविकाम्ल

$$=\text{क}_६\ \text{उ}_४<\begin{matrix}\text{क ओ}\\ \text{क ओ}\end{matrix}>\text{क}_६\ \text{उ}_४+२\ \text{उ ह}$$
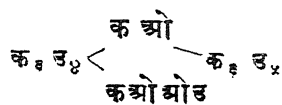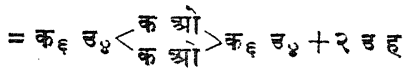
अंगारकुनोन

अंगारउदिद, अंगारिन, और अंगारकुनोन इस प्रकार चित्रित किये जा सकते हैं:—
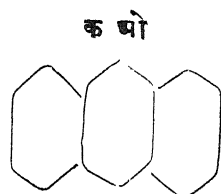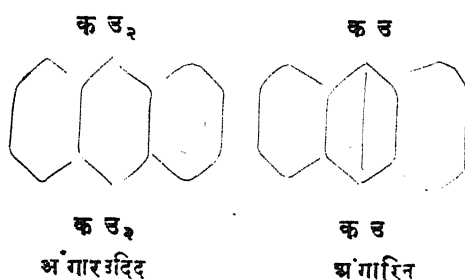
मंजिष्ठिन (Alizarine)—द्विउदौष अंगार कुनोन $\text{क}_{१४}\ \text{उ}_६\ \text{ओ}_२\ (\text{ओ उ})_२$—मंजिष्ठा (मंजीठ) से जो रंग निकलता है उसे मंजिष्ठिन कहते हैं। मंजिष्ठामें यह द्राक्ष शर्कराके संयुक्त पाया जाता है। भिन्न भिन्न वेधकोंके (mordant) उपयोग करनेसे यह रुईके वस्त्रों पर भिन्न भिन्न रंग देता है। इसको दस्त चूर्णके साथ गरम करनेसे अंगारिन प्राप्त होता है।

$$\text{क}_{१४}\text{उ}_६\text{ओ}_२(\text{ओ उ})_२+५\ \text{उ}_२\text{ओ}+५\ \text{द}$$
$$=\text{क}_{१४}\text{उ}_{१०}+५\ \text{द ओ}+४\ \text{उ}_२\text{ओ}$$
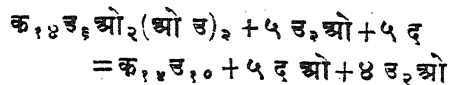
मंजिष्ठिनको निम्न प्रकारसे सूचित किया जाता है—
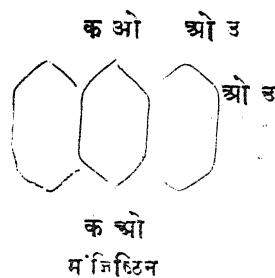
मंजिष्ठिन

द्वि-अरुणो अंगार कुनोन या अंगार कुनोन-ख गन्धोनिकाम्लको पांशुजहरेतकी विद्यमानतामें पांशुज क्षारके साथ गलानेसे यह बनाया जा सकता है।

$$\text{क}_६\ \text{उ}_४<\begin{matrix}\text{क ओ}\\ \text{क ओ}\end{matrix}>\text{क}_६\text{उ}_३\text{ग ओ}_३\text{पां}+\text{पां ओ उ}+\text{ओ}$$
$$\downarrow$$
$$\text{क}_६\text{उ}_४<\begin{matrix}\text{क ओ}\\ \text{क ओ}\end{matrix}>\text{क}_६\text{उ}_२\ (\text{ओउ})_२+\text{पां}_२\text{ग ओ}_३$$
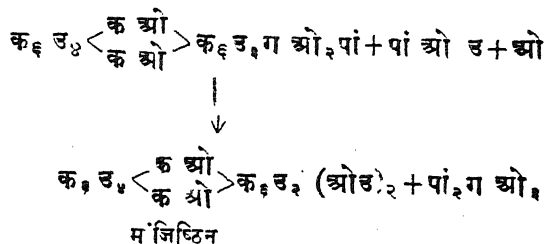
मंजिष्ठिन

इन सबसे मंजिष्ठिनका अंगार कुनोनसे सम्बन्ध स्पष्ट है। इसमें दो उदौषील है। मंजिष्ठिनके लाल रङ्ग के सूच्याकार रवे होते हैं जिनका द्रवांक २८९° है।

भिन्नचक्री यौगिक

(heterocyclic compounds)

अब तक जिन यौगिकोंका वर्णन किया गया है उनके चाक्रिक केन्द्रमें केवल कर्बन परमाणु थे और ये

कर्बन परमाणु पार्श्व श्रेणीके रूपमें उदजन, गन्धक, नोषजन, ओषजन आदि तत्वोंसे संयुक्त थे। कुछ यौगिक ऐसे भी होते हैं जिनके चक्रमें कर्बनके अतिरिक्त नोषजन, गन्धक या ओषजन भी होता है।

उक—कउ	उक—कउ	उक—कउ
‖ ‖	‖ ‖	‖ ‖
कउ कउ	उक कउ	उक कउ
V	V	V
ओ	ग	नो उ
देवदारेन	गन्ध-दिव्यीन	प्रभोल
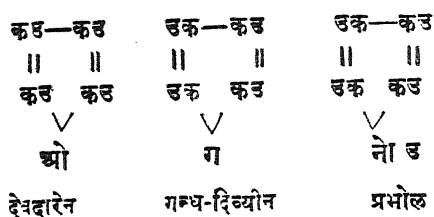
देवदारेन, क$_4$ उ$_4$ओ, (furfurane), गन्धदिव्यीन, क$_4$उ$_4$ग (thiophene) और प्रभोल, क$_4$उ$_4$ नोउ, (pyrrol) इसी प्रकारके यौगिक हैं। इनके चक्रमें ५ अणु हैं—चार कर्बनके और एक ओषजन, गन्धक, या नोषजन का। प्रत्येक कर्बन और नोषजनके साथ एक एक उदजन है पर ओषजन या गन्धकके साथ एक भी उदजन नहीं है क्योंकि ये द्विशक्तिक हैं।

पिरीदिन, कुनोलिन और समकुनोलिन भी इसी प्रकारके भिन्न चक्री यौगिक (heterocyclic) हैं—
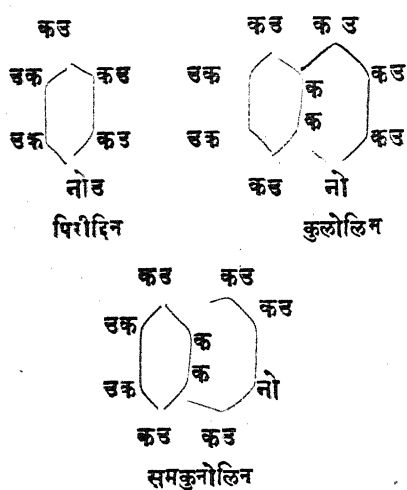
पिरीदिन (pyridine) क$_5$उ$_5$ नो, बानजावीनके समान है, भेद यह है कि बानजावीनके एक कउ-के स्थानमें इसमें -नो- परमाणु है। यही भेद कुनोलिन (quinoline) नफथलीनमें है। समकुनोलिन (isoquinoline) और कुनोलिनमें केवल नोषजन परमाणु की स्थितिका भेद है। अंगारिनके समान चरपरिन (acridine) को समझना चाहिये,

चरपरिन
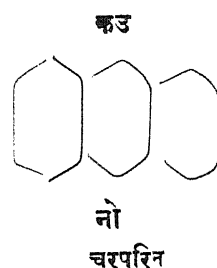
इनमेंसे कुछका सूक्ष्म वर्णन यहां दिया जायगा।

देवदारेन—क$_4$उ$_4$ ओ· furfurane)यह नीरंग स्निग्ध द्रव है जिसका क्वथनांक ३२°श है। इसमें हरोपिपीलकी सी गन्ध होती है। शर्करा को चूनेके साथ स्रवण करके यह बनाया जा सकता है। गोंदोज आदि पंचोज शर्कराओं को तीव्र उदहरिकाम्ल द्वारा स्रवित करने से देवदारोल अर्थात् क-देवदार मद्यानार्द्र, क$_4$उ$_3$ ओ. कउओ प्राप्त होता है। क-दारील देवदारेन (क्व० ६५°), द्विदारील-देवदारेन (क्व० ९४°) भी बनाये गये हैं।

गन्धदिव्यीन—क$_4$उ$_4$ग (thiophene)—यह कोलतारमें पाया जाता है और साधारण बानजावीनमें लगभग ०.५% सदा विद्यमानता रहता है। इसका क्वथनांक ८४° है। इसमें तीव्र गन्धकाम्ल डालनेसे इसका घुलनशील गन्धोनिकाम्ल क$_4$ उ$_3$ ग (गओ$_3$उ) बन जाता है यह गन्धोनिकाम्ल पांशुजक्षार के साथ गलाने पर दिव्योलके समान यौगिक नहीं देता है।

प्रभोल—क$_4$उ$_4$नोउ (Pyrrole)—यह कोलतार और अस्थि-तैलमें पाया जाता है। इसका क्वथनांक १३१° है। इसमें भी हरो पिपीलकी सो गन्ध होती है

शालिमिद को दस्तचूर्णके साथ स्रवण करके यह बनाया जा सकता है।

कउ$_2$—कओ
| >नोउ →
कउ$_2$—कओ

शालिमिद

कउ=क(ओउ)
| >नोउ
कउ=क(ओउ)

↓२उ$_2$

कउ=कउ
| >नोउ + २उ$_2$ओ
कउ=कउ
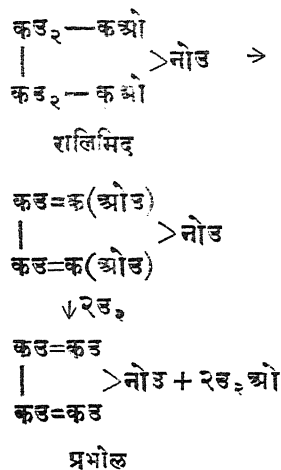
प्रभोल

प्रभोल और पांशुजम्के संसर्गसे नो-पांशुज-प्रभोल क$_4$उ$_4$ नो पां [नो का तात्पर्य यह है कि पांशुजम् परमाणु नोषजनसे संयुक्त हुआ] देता है।

कउ=कउ
| >नो पां
कउ=कउ

नो-पांशुजप्रभोल
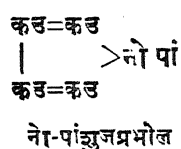
देवदारेन, प्रभोल, और गन्धदिव्यीन ये तीनों यौगिक विगोंदिकाम्ल (mucic acid) कओओउ· (कउ ओउ)$_4$ कओ ओउ से बनाये जा सकते हैं विगोंदिकाम्ल दुग्धश्योज-(galactose) के ओषदीकरणसे मिलता है। विगोंदिकाम्ल स्रवण करने पर पहले तो उष्म विगोंदिकाम्ल जो देवदारेन-क-कर्बोषिलिकाम्ल है मिलता है, जो और गरम करने पर देवदारेनमें परिणत हो जाता है। उष्म-विगोंदिकाम्लके अमोनियम लवणको गरम करने पर प्रभोल मिलता है। विगोंदिकाम्ल को भार गन्धिदके साथ गरम करने से गन्धदिव्यीन मिलता है।

कउ(ओउ)—उ क उ (ओउ)- द ओ ओ उ
|
कउ (ओउ)-उ क ओउ—कओ ओउ

विगोंदिकाम्ल

↓—३उ$_2$ओ—कओ$_2$

कउ=कउ
| >ओ
कउ=क (कओओउ)

उष्म विगोंदिकाम्ल

↓

कउ=कउ
| >ओ + कओ$_2$
कउ=कउ

देवदारेन

पिरीदिन (pyridine)

क$_5$उ$_5$नो
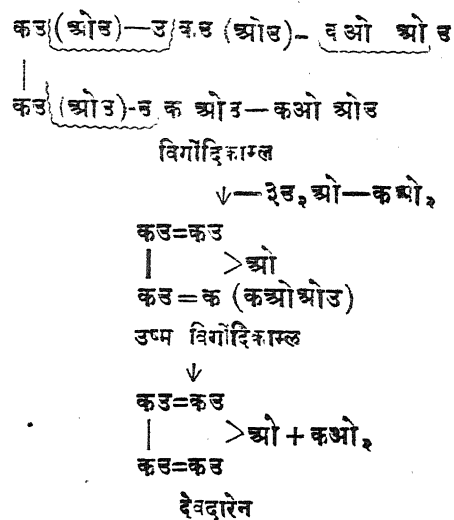
कोलतारको स्रवण करनेसे जो हलका तैल प्राप्त होता है उसमें यह पाया जाता है। अस्थितैलमें भी यह विद्यमान रहता है। पिरीदिन और इसके अन्य यौगिक हलके गन्धकाम्लमें घुल जाते हैं अतः कोलतारके हलके तैलमें गन्धकाम्ल डालकर ये पृथक् कर लिये जाते हैं। पिरीदिन विशिष्ट गन्धयुक्त द्रव है जिसका क्वथनांक ११५° है।

पिरीदिन अनेक गुणोंमें बानजावीनके समान है।

(१) यह बानजावीनसे भी अधिक स्थायी है क्योंकि यह गन्धकाम्ल नोषिकाम्ल एवं लवणजन तत्वोंके साथ आसानीसे स्थापित यौगिकपिरीदिन-गन्धोनिकाम्ल, नोषो-पिरीदिन आदि नहीं देता है। गन्धोनिकाम्ल अति उच्च तापक्रम पर ही प्राप्त हो सकते हैं। नोष पिरीदिन और नैल पिरीदिन पाये ही नहीं जाते हैं। पिरीदिन और इसके कर्बोषिलिकाम्ल पर ओषदकारक रसोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(२) पिरीदिनके यौगिक जैसे दारील पिरीदिन क$_5$ उ$_4$नो (क उ$_3$)—बानजावीन यौगिक, टोल्वीन आदिके समान मिलते जुलते हैं। ओषदीकरण करने पर पाश्वश्रेणी, दारील, ज्वलील आदि मूल कर्बो-

षिलिकाम्लमें परिणत हो जाते हैं। इन कर्बोषिलिकाम्लों को चूनेके साथ स्रवण करनेसे पिरीदिन उसी प्रकार प्राप्त होता है जैसे बानजाविकाम्ल चूनेके साथ स्रवित करने पर बानजावीन देता है।

(३) पिरीदिनसे कई समरूपी यौगिक बन सकते हैं। इसके किसी एक उदजनको स्थापित करनेसे तीन प्रकारके यौगिक मिलेंगे—

क-पिकोलिन ख-पिकोलिन ग-पिकोलिन
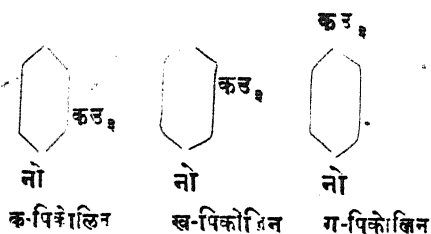
क-पिकोलिनका क्वथनांक १२९° है, ख-पिकोलिन का १४२° और ग-पिकोलिनका १४२°—१४४° है। तीनों पिकोलिन ओषदीकरण द्वारा तीन कर्बोषिलि-काम्ल देते हैं—

क-पिकोलिनसे पिकोलिनिकाम्ल मिलता है— द्रवांक १३५°श।
ख- " ताम्बुलिनिकाम्ल (nicotinic)— द्रवांक २३१°श
ग- " सम तम्बुलिनिकाम्ल-द्रवांक ३०९°श

(४) बानजावीनके अवकरणसे षष्ठ उद बानजावीन मिलता है। इसी प्रकार पिरीदिनके अवकरणसे षष्ठ उद पिरीदिन जिसे मिर्चीदिन कहते हैं प्राप्त होता है। मिर्चीदिन (piperidine)-$क_5 उ_{10}$नो. विचित्र गन्धका नीरङ्ग द्रव है। इसकी गन्ध मिर्चके समान होती है। इसमें तीव्र क्षारीय गुण हैं और यह रवेदार लवण देता है। यह जल और मद्यमें घुलनशील है। इसका क्वथनांक १०६° है। मिर्चीदिन द्वितीय अमिन है। इसका वह उदजन जो नोषजनसे संयुक्त है मद्यील अथवा अम्डील मूलों द्वारा स्थापित किया जा सकता है।
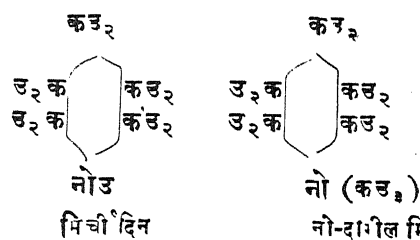
मिर्चीदिन नो-दारील मिर्चीदिन

नो-दारील मिर्चीदिन पर दारील नैलिदकी प्रक्रिया करनेसे चतुर अमोनियम यौगिकके समान द्विदारील मिर्चीदीनियम नैलिद मिलता है।
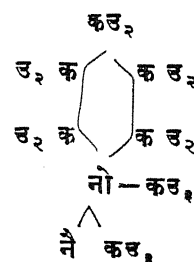
द्विदारील मिर्चीदीनियम नैलिद

५—पिरीदिनमें तीव्र क्षारीय गुण हैं। इस बातमें यह बनजावीन और उसके यौगिकों से भिन्न है। यह जलमें शीघ्र-घुलनशील है। पिरीदिन उदहरिद पर-रौप्यिक हरिद, $पह_4$ के साथ द्विगुण यौगिक देता है—

$(क_5 उ_5 नो)_2 उ_2 पह_6$

पिरीदिन दारील नैलिदके साथ दारील-पिरीदोनियम नैलिद, देता है—

पिरीदिन उदहरिकाम्लके साथ क्षारोंके समान उद-हरिद, $क_5 उ_5$ नो उ ह देता है।

पिरीदिनका संश्लेषण—(१) पंचदारीलिन द्विअमिन उदहरिद को गरम करनेसे मिर्चीदिन प्राप्त होता है। तीव्र गन्धकाम्लके साथ ३००°श तक गरम करने से

मिर्चीदिन का ओषदीकरण हो जाता है और पिरीदिन प्राप्त होता है :—

```
        कउ₂—कउ₂ नोउ₂ उह
कउ₂ <
        कउ₂—कउ₂ नोउ₂
    पंच दार्गलिन द्विअमिन उदहरिद
              |
              ↓
        कउ₂—कउ₂
कउ₂ <              >नोउ + नोउ₄ह
        कउ₂—कउ₂
              मिर्चीदिन
        / कउ = कउ
       कउ         |
       ||         नो
       कउ — कउ=
              |
              ↓
              पिरीदिन
```
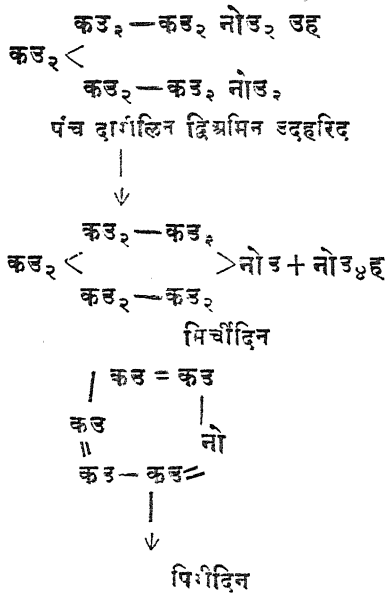
(२) इसी प्रकार हर-केलील-अमिनके जलीय घोलको गरम करनेसे मिर्चीदिन प्राप्त होता है जिसके ओषदीकरणसे पिरीदिन मिल सकता है—

```
        कउ₂—कउ₂नोउ₂
कउ₂ <                     →
        कउ₂—कउ₂ह
        हर-केलील अमिन

        कउ₂—कउ₂
कउ₂ <              >नोउ उह
        कउ₂—कउ₂
        मिर्चीदिन उदहरिद
```
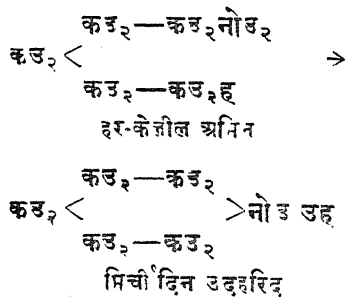
कुनोलिन (Quinoline)

कुनिन, स्ट्रिकनिन आदि क्षारोदोंको पांशुजक्षार के साथ स्रवित करनेसे कुनोलिन प्राप्त होता है। यह कोलतार और अस्थि तैलमें भी विद्यमान है। यह पिरीदिन की सी गन्धका नीरंग द्रव है पर यह पानीमें घुलनशील नहीं है। इसका क्वथनांक २३६°श है। यह रासायनिक गुणोंमें पिरीदिनके समान है। यह भी तृतीय अमिनके समान प्रबल क्षार है और अम्लोंके साथ लवण देता है। कुनोलिन लवणके घोलमें पांशुजरागेत डालनेसे कुनोलिन उद्रागेत (क$_9$ उ$_7$ नो)$_2$ उ$_2$ रा ओ$_4$ का पीला अवक्षेप मिलता है।

इसके बनानेकी विधियोंमें स्क्रौप-विधि अधिक प्रसिद्ध है। इस विधिमें नीलिन्, मधुरोल, तीव्रगन्धकाम्ल और नोष-बानजावीनके मिश्रणको गरम करते हैं। प्रक्रिया अत्यन्त उग्रतासे आरम्भ होती है। इसके पश्चात् कुनोलिनका बाष्प स्रवण कर लिया जाता है।

प्रक्रिया इस प्रकार है कि मधुरोल चरपरोलिन (acrolein) में पहले परिणत होता है—

कउ$_2$ओ उ. क उ ओ उ. क उ$_2$ओ उ
मधुरोल

=क उ$_2$: क उ ओ + २ उ$_2$ ओ
चरपरोलिन
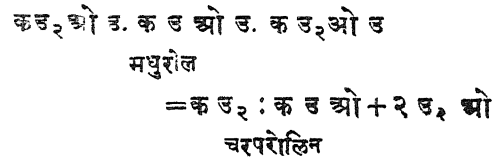
चरपरोलिन नीलिन्के साथ चरपरील नीलिन् देता है—

क$_6$उ$_5$नो उ$_2$ + ओ उ क. क उः क उ$_2$

=क$_6$उ$_5$नोः क उ क उः क उ$_2$ + उ$_2$ओ
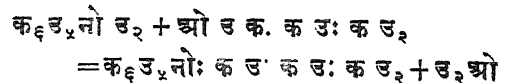
यह चरपरील नीलिन् नोषबानजावीन द्वारा ओषदीकृत होकर कुनोलिन दे देता है।

```
                 उ कउ
                  ||
 ⬡      उ        कउ
                  |          + ओ = ⬡⬡ + उ₂ओ
       नो = कउ
                                 नो
                              कुनोलिन
```
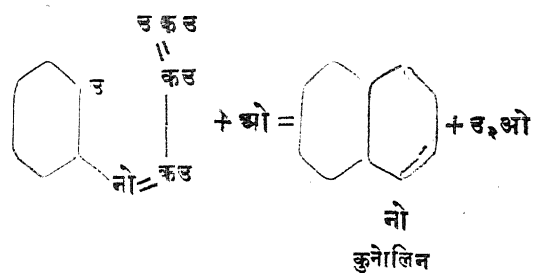
कुनोलिनमें एक बानजावीन चक्र है और दूसरा पिरीदीन चक्र। पांशुज पर मांगनेत द्वारा ओषदीकृत करने पर बानजावीन चक्र नष्ट हो जाता है और कुनोलिनिकाम्ल प्राप्त होता है।

—क ओ ओ उ

—क ओ ओ उ

नो
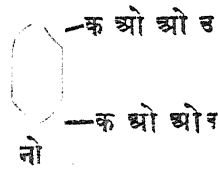
कुनोलिनिकाम्ल

समकुनोलिन—$क_९$ $उ_७$नो-(isoquinoline) यह कुनोलिनका समरूपी है।

यह नीरंग रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक २१° और क्वथनांक २३७° है। गुणोंमें यह कुनोलिनके समान है और कई क्षारोदोंमें पाया जाता है। ओषदीकरण द्वारा यह थलिकाम्ल और सिंकोमरोनिकाम्लमें परिणत हो जाता है—
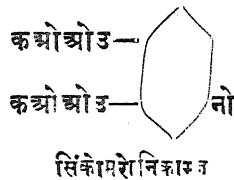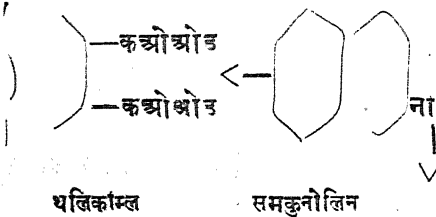
एक अवस्थामें बानजावीन चक्र नष्ट हो जाता है और दूसरीमें पिरीदीन चक्र।

वैज्ञानिकीय

बड़वानल या जलके अन्दर जलनेवाले विस्फुटक (Under-waterexplosive)--आजकल तो लगभग सभी लोग उद्जन परौषिदके नामसे परिचित होंगे। इस पदार्थके दो भाग कल्पित किये जा सकते हैं। एक सिर रूपी ओषिद और दूसरा तना रूपी उद्जन। यदि किसी दूसरे कार्बनिक यौगिक का तना अलग करके इस ओषिद सिरसे लगा दिया जाय तो एक कार्बनिक परौषिदकी उत्पत्तिका बोध हो सकता है। प्रकृतिमें बहुतसी वस्तुएं परौषिदके रूपमें हैं। अलसी का तेल या तारपीन हवामें खुले रहने पर सूख कर एक कड़ी छाल गैसोलिन (gasoline) बना देता है। यह छाल भी परौषिद ही होती है। एक प्रकारसे वारनिश इत्यादि बनानेके व्यवसाय तैलोंके इसी गुण पर निर्भर हैं। पतझड़के समय पत्तियोंका पीला पड़ जाना भी परौषिद बन जानेके कारण ही होता है।

इस बातका ध्यान रखते हुए कि बहुतसे विस्फुटक भीग जानेसे निरर्थक हो जाते हैं। पानीके अन्दर काम करनेवाले विस्फुटकोंकी खोज अवश्य बड़ी अद्भुत बात जान पड़ती है।

शान्तिके समय तो ऐसे विस्फुटक भलेही लाभदायक मालूम होते हों परन्तु लड़ाईके अवसरोंपर तो बड़े भयंकर अस्त्र हैं।

परन्तु बड़े हर्षकी बात है कि जिन वस्तुओंसे यह विस्फुटक तैयार होते हैं उन्हींसे जहरीली गैसोंका असर मिटानेवाले अनेक वायव्य बनाये जा सकते हैं।

कृत्रिम रबर

जर्मनी की यल. सी. फार्बिन्डस्ट्री (L. C. Farbenidustrie) के डाइरेक्टर बाष साहेबने प्रकाशित किया है कि कोयलेसे कृत्रिम गैसोलिनकी तैयारी अब व्यवसाइक रूपसे परिपूर्ण हो गई है और कृत्रिम गैसोलिनसे रबर बनाना कोई कठिन काम नहीं हैं उनका मत है कि कृत्रिम रबरका व्यापार कृत्रिम गैसोलिनके व्यवसायसे कहीं अधिक लाभदायक होगा महायुद्धके पहिलेसे ही गैसोलिनसे रबर बनानेका उपाय सोचा जा रहा था। अभी तक यह कार्य्य समाप्त नहीं हुआ है परन्तु बहुत जल्दी ही सफलता प्राप्त करनेकी सम्भावना है। सालके अन्त तक १००,००० टन गैसोलिन हो जाती है।

इसी कम्पनीके उदाहरणसे अमरीकाके संयुक्त-राज्यमें भी इस व्यवसायके संचालन करनेका प्रयत्न हो रहा है।

—जटाशंकर मिश्र, बी. एस-सी.

उदयास्ताधिकार नामक नवां अध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[१ श्लोक—सूर्यके निकट आ जानेके कारण ग्रहों और नक्षत्रोंके अदृश्य होनेका विचार। २-३ श्लोक—ग्रहोंके उदय और अस्त होनेकी दिशा। ४-५ श्लोक—ग्रहोंका कालांश जाननेकी रीति। ६-६ श्लोक—ग्रहोंके परम कालांश १०-११ श्लोक—यह जाननेकी रीतिकि किसी इष्टकालमें उदय या अस्त होनेको कितने दिन शेष हैं या बीत गये हैं। १२-१५ श्लोक—किस तारेका क्या परमकालांश है। १६-१७ श्लोक—तारे के दृश्य या लोप होनेके दिनको जाननेकी रीति। १८ श्लोक उन तारोंके नाम जो कभी अदृश्य नहीं होते।]

इस अध्यायमें यह बतलाया गया है कि ग्रहों और तारों का उदय और अस्त कब होता है और कैसे जाना जाता है। यहां उदय और अस्तके अर्थ साधारण उदय और अस्तके अर्थोंसे भिन्न है। साधारणतः जब सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि पूर्व क्षितिजके ऊपर आ जाते हैं तब इनका उदय समझा जाता है और जब ये पच्छिम क्षितिजके नीचे चले जाते हैं तब इनका अस्त समझा जाता है। यह पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण होता है जिसे पुराने आचार्य प्रवह गति कहते थे। इसके सिवा जब गृह चन्द्रमा या तारे सूर्यके बहुत पास हो जाते हैं जिससे वे सूर्योदयके लगभग पूर्व क्षितिजके ऊपर आते हैं और सूर्यास्तके लगभग पच्छिम क्षितिजके नीचे चले जाते हैं तब भी वे अस्त कहे जाते हैं। ऐसी दशामें वे सूर्यके तीव्र प्रकाशके कारण देखे नहीं जा सकते। जिस समय वे सूर्यके निकट आने के कारण अदृश्य हो जाते हैं उस समय से वे अस्त समझे जाते हैं और जिस समय वे सूर्यसे इतनी दूर हो जाते हैं कि सूर्योदयके कुछ पहले या सूर्यास्तके कुछ पीछे देख पड़ने लगते हैं उस समय उनका उदय समझा जाता है। इस अधिकारमें इसी प्रकारके उदय अस्तकी बातें बतलायी गयी हैं। पाश्चात्य ज्योतिषी इसको (heliacal rising and setting) कहते हैं।

अध्यायका प्रयोजन—

अथोदयस्तामयथोः परिज्ञानं प्रकीर्त्यते।
दिवाकरकराक्रान्त मूर्तीनामल्पतेजसाम् ॥१॥

अनुवाद—(१) सूर्यके प्रकाशसे आक्रान्त होनेके कारण अथवा दब जानेके कारण अल्प प्रकाश वाले पिंडोंका जो उदय अस्त होता है उसके जाननेकी रीति बतलायी जाती है।

विज्ञान भाषा—इसकी व्याख्या ऊपरकी जा चुकी है।

उदय और अस्त की दिशा—

सूर्यादभ्यधिकाः पश्चादस्तं जीव कुजार्कजाः।
ऊनाः प्रागुदयं यान्ति शुक्रज्ञौवक्रिणौ तथा ॥२॥
ऊनाः विवस्वतः प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञ भार्गवाः।
व्रजन्त्यभ्यधिकाः पश्चादुदयं शीघ्रयायिनः ॥३॥

अनुवाद—(२) जब गुरु, मंगल और शनि भोगांश सूर्यके भोगांशसे कुछ अधिक होते हैं तब इनका पच्छिममें अस्त होता है और जब इनके भोगांश सूर्यके भोगांशसे कुछ कम होते हैं

तब इनका पूर्वमें उदय होता है। इसी प्रकार वक्री शुक्र और बुधका भी उदय अस्त होता है, अर्थात् जब वक्री शुक्र और बुधके भोगांश सूर्यके भोगांशसे अधिक होते हैं तब इनका पच्छिममें अस्त और कम होते हैं तब पूर्वमें उदय होता है। (३) चन्द्रमा, (मागर्गी) बुध और शुक्रके भोगांश जब सूर्यके भोगांशसे कम होते हैं तब ये पूर्वमें अस्त होते हैं और जब ये तीव्र गतिके कारण सूर्यसे कुछ आगे बढ़ जाते हैं तब पच्छिममें उदय होते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकोंमें संक्षेपमें यह बतलाया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा, मंगल बुध इत्यादिके भोगांशोंसे अथवा स्पष्ट स्थानोंसे मोटी रीतिसे कैसे जाना जा सकता है कि कौन ग्रह किस दिशामें उदय या अस्त होगा। इस कामके लिए ग्रहोंके दो भाग कर दिये गये हैं। एक भागमें गुरु, मंगल और शनि हैं जिनकी गति सूर्यकी गतिसे मंद है और दूसरे भागमें बुध, शुक्र और चन्द्रमा हैं जिनकी गति सूर्यकी गतिसे तीव्र हैं। इनमें भी बुध और शुक्रकी गतियोंमें विशेषता होनेके कारण कुछ भिन्नता है।

गुरु, मङ्गल और शनिकी अपेक्षा सूर्य अधिक चलता है इसलिए सूर्य ही गुरु मङ्गल और शनिकी ओर बढ़ता हुआ देख पड़ता है। जब सूर्य इनके इतना निकट पहुँच जाता है कि ये अदृश्य हो जाते हैं तब सूर्यके भोगांशसे इनका भोगांश अधिक रहता है क्योंकि भोगांश की नाप पच्छिमसे पूरबकी ओर होती है। अदृश्य होनेके पहले ये तीनों ग्रह सूर्यास्तके पीछे पच्छिम क्षितिजके पासही देख पड़ते हैं और वहीं गोधूली प्रकाशकी तीव्रताके कारण अदृश्य हो जाते हैं इसलिए कहा जाता है कि ये तीन ग्रह पच्छिममें अस्त होते हैं। कुछ दिनमें जब सूर्य इनसे आगे बढ़ जाता है और इनका भोगांश सूर्यके भोगांशसे कम हो जाता है तब ये फिर पूर्वमें सूर्योदयके कुछ पहले दिखलाई पड़ने लगते हैं। इसलिए कहा जाता है कि पूर्वमें इनका उदय होता है।

जब वक्री बुध और शुक्रके भोगांश सूर्यके भोगांशसे अधिक होते हैं तब ये सूर्यास्तके उपरान्त पच्छिम क्षितिजमें देख पड़ते हैं और वहीं अदृश्य हो जाते हैं। कुछ दिनमें ये ग्रह अपनी वक्रगतिके कारण सूर्यकी दूसरी ओर बहुत शीघ्र चले जाते हैं और इनके भोगांश सूर्यके भोगांशसे कम हो जाते हैं ऐसी दशामें ये सूर्योदयके पहले पूर्व क्षितिजमें फिर दीखने लगते हैं। इसलिए कहा जाता है कि वक्री बुध और शुक्र भी पच्छिममें अस्त और पूर्वमें उदय होते हैं।

परन्तु चन्द्रमा तथा मार्गी बुध और शुक्रकी गति सूर्यकी गतिसे अधिक होती है इसलिए जब ये सूर्यकी ओर बढ़ते हुए उसके पास इतना पहुँच जाते हैं कि अदृश्य हो जाते हैं तब इनके भोगांश सूर्यके भोगांशसे कम होते हैं और ये पूर्व क्षितिजमें ही सूर्योदयके पहले अदृश्य होते हैं इसलिए कहा जाता है कि ये पूर्वमें अस्त होते हैं। जब ये सूर्यके आगे बढ़ जाते हैं तब इनके भोगांश सूर्यके भोगांशसे अधिक हो जाते हैं और सूर्यास्तके उपरान्त पच्छिम क्षितिजमें दीखने लगते हैं इसलिए कहा जाता है कि चन्द्रमा और मार्गी बुध और शुक्र पच्छिममें उदय होते हैं।

काळांश जाननेकी रीति—

सूर्यास्त कालिकौ पाश्चात् प्राच्यामुदयकालिकौ ।
दिवा चार्क ग्रहौ कुर्याद् दृक्कर्माथ ग्रहस्यतु ॥ ४॥
ततो लग्नान्तर प्राणाः कालांशाः षष्टिभाजितः।
प्रतीच्यां षड्भयुतयोस्त द्वल्लग्नान्तरासवः ॥५॥

अनुवाद—(४) यदि पच्छिममें किसी ग्रहके उदय या अस्त होनेका समय जानना हो तो अनुमानसे जाने हुए दिनके सूर्यास्त कालके सूर्य और ग्रहको स्पष्ट करे और पूरबमें किसी ग्रहके उदय या अस्त होनेका समय जानना हो तो उस दिनके सूर्योदयकालके सूर्य और ग्रहको स्पष्ट करे तथा ग्रहका दृक्कर्म संस्कार करे। (५) दृक्कर्म संस्कृत ग्रह और सूर्यके उदय लग्नोंके असुओंका अन्तर निकाले और इसको ६० से भाग दे तो ग्रहका पूर्वमें उदय या अस्त सम्बन्धी कालांश ज्ञात होता है। यदि ग्रहका पच्छिममें उदय या अस्त सम्बन्धी कालांश जानना हो तो सूर्य और ग्रहके भोगांशमें ६ राशि जोड़नेसे जो आवे उनके लग्नोंके असुओंके अन्तरको ६० से भाग देकर कालांश जानना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—सूर्यके उदय होनेके जितने समय पहले कोई ग्रह पूर्व क्षितिजमें आता है अर्थात उदय होता है उस समय को उस ग्रहका कालान्तर कहते हैं। लग्न कालकी गणना सूक्ष्मता के लिए असुओंमेंकी जाती हैं औरविषुवद-वृत्तकी एक कला का उदय एक असुमें होता है। इसलिए ६० कलाका उदय ६० असुओंमें होता है। परन्तु ६० कला एक अंशके समान है। इस लिए सूर्य और ग्रहके उदयकालोंके अन्तरको जो प्रायः असुओंमें होता है और जिसे ५ वें श्लोकमें लग्नान्तर प्राण या लग्नान्तरासु कहा गया है ६० से भाग देनेपर जो आता है उसको अंशोंमें समझ लेना चाहिए। इसीको ग्रहका कालांश कहते हैं।

पृष्ठ ८४६ में बतलाया गया है कि यह जाननेके लिए कि ग्रह किस समय क्षितिजमें लग्न होता है इसके स्पष्ट भोगांशमें आक्ष और आयन दृक्कर्म संस्कार करना चाहिए क्योंकि स्पष्टाधिकारके अनुसार ग्रहका जो भोगांश आता है उससे तो केवल यह मालूम होता है कि ग्रह अपनी कक्षामें कहां है। परन्तु ग्रहकी कक्षा क्रान्तिवृत्तसे भिन्न होती है इसलिए जिस समय ग्रहका क्रान्तिवृत्तवाला विन्दु क्षितिज पर आता है उस समय ग्रहका बिम्ब क्षितिज पर नहीं वरन् यह अपने शरके अनुसार कुछ आगे या पीछे उदय होता है (देखो चित्र १०७, १०८) जिसका ज्ञान दृक्कर्म संस्कारसे ही होता है। इसी लिए चौथे श्लोकमें पहले दृक्कर्म संस्कार करनेको कहागया है। दृक्कर्म संस्कार करने पर जब ग्रहके क्षितिज पर आनेका समय ठीक ठीक ज्ञात हो जाय तभी यह जाना जा सकता है कि सूर्योदयसे कितना पहले वह ग्रह पूर्व क्षितिजमें लग्न होता है।

परन्तु जब गृहका उदय या अस्त पच्छिममें होता है तब सूर्यास्तकालिक सूर्य और ग्रह का स्पष्ट किया जाता है क्योंकि तब यह जाननेकी आवश्यकता पड़ती है कि सूर्यास्तसे कितने समय पीछे ग्रहका अस्त होता है। इस कामके लिए भी ग्रहमें

दृक्कम संस्कारकी आवश्यकता पड़ती है जैसा कि उदय लग्न के समयकी जाती है। अब दृक्कर्म संस्कृत ग्रह अथवा भास्कराचार्यजी के शब्दोंमें दृग्ग्रह और सूर्यके अस्तलग्नासुओं का अन्तर जानना चाहिए अर्थात् यह देखना चाहिए कि जिस समय सूर्य अस्त होता है उस समयसे कितने असु उपरन्त इष्ट ग्रह का बिम्ब पच्छिम क्षितिज पर आता है। इन असुओं को ६० भाग देने पर अस्त समयके कालांश अथवा अस्तांशका ज्ञान हो जाता है। परन्तु ५ वें श्लोकके उत्तरार्धमें बतलाया गया है कि अस्तकालिक सूर्य और दृग्ग्रहके भोगांशोंमें ६ राशि या १८० अंश जोड़कर दोनोंके लग्नासुओंका अन्तर निकाले। इसका कारण यह है कि जिससमय सूर्य अस्त होता रहता है उस समय पूर्व क्षितिजमें क्रान्ति वृत्तका वह विन्दु लग्न होता है जो सूर्यमें १८० अंश आगे रहता है। इसी प्रकार जब दृग्ग्रह अस्त होता रहता है तब भी पूर्व क्षितिजमें वह विन्दु लग्न रहता है जो दृग्ग्रहसे १८० अंश आगे है। इसलिये यदि यह मालूम हो जाय कि सूर्य और दृग्ग्रहके अस्तकालोंमें पूर्व क्षितिजके लग्नोंके उदयासुओंमें क्या अन्तर होता है तो भी अस्तांश या कालांशका ज्ञान हो सकता है।

ग्रहोंके परम कालांश—

एकादशामरेज्यस्य तिथि संख्यार्कजस्य च ।
अस्तांशा भूमिपुत्रस्य दशसप्ताधिकास्ततः ॥६॥
पश्चादस्तमयोऽष्टाभिरुदयः प्राङ् महत्तया ।
प्रागस्तमुदयः पश्चादल्पत्वाद्दशभिर्भृगो ॥ ७ ॥
एवं बुधो द्वादशभिश्चतुर्दशभिरंशकैः ।
वक्री शीघ्रगतिश्चार्कात्करोत्यस्तमयोदयौ ॥८॥
एभ्योऽधिकैः कालभागैर्दृश्या न्यूनैरदर्शनाः ।
भवन्ति लोके खचराभानुभाग्रस्तमूर्तयः ॥ ९ ॥

अनुवाद—(६) गुरुका परमकालांश ११, शनिका १५ और मङ्गलका १७ है। (७) शुक्रका बिम्ब बड़ा देख पड़नेके कारण पच्छिममें अस्त होनेका और पूर्वमें उदय होनेका परम कालांश ८ है परन्तु बिम्ब देख पड़नेके कारण इसके कारण इसके पूर्व-अस्त होनेका और पच्छिममें उदय होनेका परमकालांश १० है। (८) इसी प्रकार वक्री और शीघ्र गति वाला बुध जब सूर्यसे १२ कालांश पर रहता है तब पच्छिममें उसका अस्त और पूर्वमें उदय होता है। परन्तु इसका पूर्वमें अस्त होने और पच्छिममें उदय होनेका कालांश १४ है। (९) सूर्यके प्रकाशसे ग्रस्त होनेके कारण अथवा दब जानेके कारण यदि किसी ग्रहका किसी समयका कालांश उसके परमकालांशसे अधिक हुआ तो उस समय वह ग्रह देख पड़ता है और कम हुआ तो नहीं देख पड़ता।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें ग्रहोंके कालांशोंकी वह सीमा बतलायी गयी है जिससे अधिक होनेपर ग्रह देख पड़ते हैं और कम होने पर नहीं देख पड़ते। इसलिए इस सीमाको परमकालांश कहा जा सकता है। प्रत्येक ग्रहका परम कालांश भिन्न है इसका कारण यह है कि जिस ग्रहका बिम्ब बड़ा होता है वह सूर्यके पास होनेपर भी सुगमता पूर्वक देखा जा सकता

है और जिसका बिम्ब छोटा होता है वह कुछ कठिनाईसे देखा जा सकता है। दूरके ग्रहोंमें बृहस्पतिका बिम्ब सबसे बड़ा है इसलिए इसका परम कालांश ११ माना गया है अर्थात् यदि सूर्योदयसे ११ अंश या ११० पल या ४४ मिनट पहले बृहस्पति उदय हो अथवा सूर्यास्तसे इतना ही समय पीछे अस्त हो तो यह प्रातःकाल या सायङ्कालके संधि प्रकाश में भी देखा जा सकता है। इसलिए जब बृहस्पतिका कालांश घटते घटते ११ हो जाता है तब यह पच्छिम क्षितिजमें अस्त हो जाता है। इसमें बाद जब इसका कालांश घटते घटते शून्य हो जाता है तब यह सूर्यके साथ उदय या अस्त होता है। इस समयसे कालांश बढ़ने इसका लगता है और जब तक ११ अंश नहीं होता तब तक यह अदृश्य रहता है क्योंकि सूर्यके तीव्र यह देखा नहीं प्रकाशमेंजा सकता इसीका साधारण बोल चाल में गुरु-अदित्य अथवा 'गुरु-बादिक' भी कहते हैं। यह अवधि साधारणतः १ महीनेकी होती है। इस अवधिमें हिन्दू लोग विवाह, मुंडन इत्यादि कोई शुभ काम नहीं करते।

शनिका बिम्ब गुरुके बिम्बसे छोटा और मङ्गलके बिम्बसे बड़ा होता है इस लिए शनिका परमकालांश १५ और मङ्गलका १७ माना गया है। परन्तु शुभ कामोंमें इनके उदय अस्तका विचार नहीं किया जाता है।

शुक्रके परमकालांश ८ और १० माने गये हैं इसका कारण यह है कि जब शुक्र वक्री होकर पच्छिममें अस्त होता है और पूर्वमें उदय होता है तब पृथ्वीसे इसका अन्तर बहुत कम रहता है क्योंकि यह सूर्य और पृथ्वीके बीचमें रहता है (देखो स्पष्टधिकार पृष्ठ १५१—१५४) निकट रहनेसे इसका बिम्ब बहुत बड़ा देख पड़ता है इसलिए यह संधि प्रकाशमें बहुत देर तक देखा जा सकता है। इसकी सीमा ८ कालांश ३२ मिनट या ८० पलकी मानी गयी है अर्थात् जब सूर्यास्त के उपरन्त ३२ मिनट से भी कम समयमें शुक्र अस्त होता है तब नहीं देख पड़ता और कहा जाता है कि शुक्र पच्छिममें अस्त हो गया। इसके बाद जब शुक्र सूर्योदयसे ३२ मिनट पहले उदय होने लगता है तब यह फिर देख पड़ने लगता है और कहा जाता है कि पूर्वमें शुक्र उदय हो गया। यह अवधि एक सप्ताहसे अधिक नहीं होती क्योंकि जब शुक्र वक्री रहता है तब शुक्र और सूर्यका अन्तर दोनोंकी गतियोंके योगके समान प्रतिदिन घटता या बढ़ता है इसलिए शुक्र बहुत जल्द सूर्य पीछे चला जाता है।

परन्तु जब शुक्र पूर्वमें अस्त होता है और पच्छिममें उदय होता है तब इसका परम कालांश १० होता है क्योंकि इस समय यह पृथ्वीसे बहुत दूर सूर्यकी दूसरी ओर रहता है देखो चित्र २१, २२। दूर रहने से शुक्र का बिम्ब छोटा देख पड़ता है इसलिए यह संध्याप्रकाशमें उतनी देर तक नहीं देखपड़ता जितनी देर तक वक्री होनेपर देख पड़ता है। जब यह पूर्वमें अस्त होता है तब मार्गी रहता है अर्थात् इसकी गति उसी ओरको होती है जिस ओरको सूर्य चलता हुआ देख पड़ता है इस लिए इन दोनोंका अन्तर दोनोंकी गतियोंके अन्तरके समान प्रति दिन घटता या बढता है। इसलिए शुक्रके अस्त होनेकी यह अवधि दो महीनेके लगभग की होती है।

जब तक शुक्र अस्त रहता है तब तकभी हिन्दुओंमें विवाह, मुण्डन इत्यादि कोई शुभ काम नहीं किये जाते।

शुक्रकी तरह बुध भी जब वक्री रहता है तब पृथ्वीके निकट रहनेके कारण बड़ा देख पड़ता है और इसका परम कालांश १२ होता है। परन्तु जब यह पृथ्वीसे बहुत दूर सूर्यकी दूसरी ओर रहता है। तब छोटा देख पड़ता है और इसका परम कालांश १४ होता है।

बुधके अस्त होनेका विचार विवाह, मुण्डन इत्यादिमें नहीं किया जाता।

यहां तक तो यह बतलाया गया कि सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार ग्रहोंके उदय और अस्त होनेकी गणना किस प्रकार की जाती है और इनके परम कालांश क्या हैं। अब यहाँ दो प्रश्न उपस्थित होते हैं एक तो यह कि क्या कालांश जाननेकी यह रीति शुद्ध है दूसरे यह कि क्या ये परमकालांश ठीक हैं। इसका उत्तर देना इसलिए सुगम है कि इसकी जांच इन ग्रहोंके प्रत्यक्ष दर्शन की जा सकती है। क्योंकि इनके उदय अस्तकी परिभाषा ही ऐसी है कि जब तक ये सूर्यके निकट होनेके कारण बिना किसी यंत्रकी सहायताके देखे न जा सकें तभी तक इनको अस्त समझना चाहिये अन्यथा उदय। इस कसौटी पर कसनेसे तो यही सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त अथवा अन्य किसी भारतीय*ज्योतिष सिद्धान्तके आधार पर निकाले हुए उदय या अस्तकालोंमें तो कभी कभी दस दस पन्द्रह पन्द्रह दिनका अन्तर पड़ जाता है। प्रकट यह है कि कालांश की शुद्ध शुद्ध गणना तभी संभव है जब ग्रहोंका स्पष्ट भोगांश और शर बिलकुल शुद्ध हों। परन्तु भारतीय सिद्धान्तोंके आधार पर जाने गये भोगांश और शर ठीक नहीं होते जैसा कि पिछले अध्यायोंके अनेक स्थानोंमें बतलाया जा चुका है। उदाहरणके लिये (पूर्णिमान्त) चैत्र कृष्ण ११ भौमवार सम्वत् १९८३ वि० तदनुसार २९ मार्च सन् १९२७ की मध्य रात्रि कालके ५ तारा ग्रहोंके विरयनभाग ६ पंचांगोंके अनुसार दिये जाते हैं जिनसे यह भी पता लगेगा कि ग्रहोंकी गणनामें हमारे यहां भिन्न भिन्न मतों के अनुसार कितना भेद पड़ता है :—

क्रमशः

*आचार्य केतकरका ज्योतिर्गणित भारतीय ज्योतिष सिद्धान्तके आधार पर नहीं बनाया गया है वरन् पाश्चात्य सिद्धान्तोंके आधार पर बनाया गया है जिनमें अर्वाचीन अविष्कारोंकी भी सहायता ली गयी है।

१०५. लघुरिक्थ फल

[ले० श्री सत्यप्रकाश]

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१०	००००	००४३	००८६	०१२८	०१७०						४	९	१३	१७	२१	२६	३०	३४	३८
						०२१२	०२५३	०२९४	०३३४	०३७४	४	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६
११	०४१४	०४५३	०४९२	०५३१	०५६९						४	८	१२	१५	१९	२३	२७	३१	३५
						०६०७	०६४५	०६८२	०७१९	०७५५	४	७	११	१५	१९	२२	२६	३०	३३
१२	०७९२	०८२८	०८६४	०८९९	०९३४						३	७	११	१४	१८	२१	२५	२८	३२
						०९६९	१००४	१०३८	१०७२	११०६	३	७	१०	१४	१७	२०	२४	२७	३१
१३	११३९	११७३	१२०६	१२३९	१२७१						३	७	१०	१३	१६	२०	२३	२६	३०
						१३०३	१३३५	१३६७	१३९९	१४३०	३	७	१०	१३	१६	१९	२२	२५	२९
१४	१४६१	१४९२	१५२३	१५५३	१५८४						३	६	९	१२	१५	१९	२२	२५	२८
						१६१४	१६४४	१६७३	१७०३	१७३२	३	६	९	१२	१५	१७	२०	२३	२६
१५	१७६१	१७९०	१८१८	१८४७	१८७५						३	६	९	११	१४	१७	२०	२३	२१
						१९०३	१९३१	१९५९	१९८७	२०१४	३	६	८	११	१४	१७	१९	२२	२५
१६	२०४१	२०६८	२०९५	२१२२	२१४८						३	५	८	११	१४	१६	१९	२२	२४
						२१७५	२२०१	२२२७	२२५३	२२७९	३	५	८	१०	१३	१६	१८	२१	२३
१७	२३०४	२३३०	२३५५	२३८०	२४०५						३	५	८	१०	१३	१५	१८	२०	२३
						२४३०	२४५५	२४८०	२५०४	२५२९	२	५	७	१०	१२	१५	१७	२०	२२
१८	२५५३	२५७७	२६०१	२६२५	२६४८						२	५	७	९	१२	१४	१६	१९	२१
						२६७२	२६९५	२७१८	२७४२	२७६५	२	५	७	९	११	१४	१६	१८	२१
१९	२७८८	२८१०	२८३३	२८५६	२८७८						२	४	७	९	११	१३	१६	१८	२०
						२९००	२९२३	२९४५	२९६७	२९८९	२	४	६	८	११	१३	१५	१७	१९
२०	३०१०	३०३२	३०५४	३०७५	३०९६	३११८	३१३९	३१६०	३१८१	३२०१	२	४	६	८	११	१३	१५	१७	१९
२१	३२२२	३२४३	३२६३	३२८४	३३०४	३३२४	३३४५	३३६५	३३८५	३४०४	२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८
२२	३४२४	३४४४	३४६४	३४८३	३५०२	३५२२	३५४१	३५६०	३५७९	३५९८	२	४	६	८	१०	१२	१४	१५	१७
२३	३६१७	३६३६	३६५५	३६७४	३६९२	३७११	३७२९	३७४७	३७६६	३७८४	२	४	६	७	९	११	१३	१५	१७
२४	३८०२	३८२०	३८३८	३८५६	३८७४	३८९२	३९०९	३९२७	३९४५	३९६२	२	४	५	७	९	११	१२	१४	१६
२५	३९७९	३९९७	४०१४	४०३१	४०४८	४०६५	४०८२	४०९९	४११६	४१३३	२	३	५	७	९	१०	१२	१४	१५
२६	४१५०	४१६६	४१८३	४२००	४२१६	४२३२	४२४९	४२६५	४२८१	४२९८	२	३	५	७	८	१०	११	१३	१५
२७	४१३४	४३३०	४३४६	४३६२	४३७८	४३९३	४४०९	४४२५	४४४०	४४५६	२	३	५	६	८	९	११	१३	१४
२८	४४७२	४४८७	४५०२	४५१८	४५३३	४५४८	४५६४	४५७९	४५९४	४६०९	२	३	५	६	८	९	११	१२	१४
२९	४६२४	४६३९	४६५४	४६६९	४६८३	४६९८	४७१३	४७२८	४७४२	४७५७	१	३	४	६	७	९	१०	१२	१३

लघुरिक्थ फल

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९
३०	४७७१	४७८६	४८००	४८१४	४८२९	४८४३	४८५७	४८७१	४८८६	४९००	१	३	४	६	७	९	१०	११	१३
३१	४९१४	४९२८	४९४२	४९५५	४९६९	४९८३	४९९७	५०११	५०२४	५०३८	१	३	४	६	७	८	१०	११	१२
३२	५०५१	५०६५	५०७९	५०९२	५१०५	५११९	५१३२	५१४५	५१५९	५१७२	१	३	४	५	७	८	९	११	१२
३३	५१८५	५१९८	५२११	५२२४	५२३७	५२५०	५२६३	५२७६	५२८९	५३०२	१	३	४	५	६	८	९	१०	१२
३४	५३१५	५३२८	५३४०	५३५३	५३६६	५३७८	५३९१	५४०३	५४१६	५४२८	१	३	४	५	६	८	९	१०	११
३५	५४४१	५४५३	५४६५	५४७८	५४९०	५५०२	५५१४	५५२७	५५३९	५५५१	१	२	४	५	६	७	९	१०	११
३६	५५६३	५५७५	५५८७	५५९९	५६११	५६२३	५६३५	५६४७	५६५८	५६७०	१	२	४	५	६	७	८	१०	११
३७	५६८२	५६९४	५७०५	५७१७	५७२९	५७४०	५७५२	५७६३	५७७५	५७८६	१	२	३	५	६	७	८	९	१०
३८	५७९८	५८०९	५८२१	५८३२	५८४३	५८५५	५८६६	५८७७	५८८८	५८९९	१	२	३	५	६	७	८	९	१०
३९	५९११	५९२२	५९३३	५९४४	५९५५	५९६६	५९७७	५९८८	५९९९	६०१०	१	२	३	४	५	७	८	९	१०
४०	६०२१	६०३१	६०४२	६०५३	६०६४	६०७५	६०८५	६०९६	६१०७	६११७	१	२	३	४	५	६	८	९	१०
४१	६१२८	६१३८	६१४९	६१६०	६१७०	६१८०	६१९१	६२०१	६२१२	६२२२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
४२	६२३२	६२४३	६२५३	६२६३	६२७४	६२८४	६२९४	६३०४	६३१४	६३२५	१	२	३	४	५	६	७	८	९
४३	६३३५	६३४५	६३५५	६३६५	६३७५	६३८५	६३९५	६४०५	६४१५	६४२५	१	२	३	४	५	६	७	८	९
४४	६४३५	६४४४	६४५४	६४७४	६४६४	६४८४	६४९३	६५०३	६५१३	६५२२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
४५	६५३२	६५४२	६५५१	६५६१	६५६१	६५८०	६५९०	६५९९	६६०९	६६१८	१	२	३	४	५	६	७	८	९
४६	६६२८	६६३७	६६४६	६६६५	६६५६	६६७५	६६८४	६६९३	६७०२	६७१२	१	२	३	४	५	६	७	७	८
४७	६७२१	६७३०	६७३९	६७४९	६७५८	६७६७	६७७६	६७८५	६७९४	६८०३	१	२	३	४	५	५	६	७	८
४८	६८१२	६८२१	६८३०	६८३९	६८४८	६८५७	६८६६	६८७५	६८८४	६८९३	१	२	३	४	४	५	६	७	८
४९	६९०२	६९११	६९२०	६९२८	६९३७	६९४६	६९५५	६९६४	६९७२	६९८१	१	२	३	४	४	५	६	७	८

लघुरिक्थ फल

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९
५०	६९९०	६९९८	७००७	७०१६	७०२४	७०३३	७०४२	७०५०	६०५९	७०६७	१	२	३	३	४	५	६	७	८
५१	७०७६	७०८४	७०९३	७१०१	७११०	७११८	७१२६	७१३५	७१४३	७१५२	१	२	३	३	४	५	६	७	८
५२	७१६०	७१६८	७१७७	७१८५	७१९३	७२०२	७२१०	७२१८	७२२६	७२३५	१	२	२	३	४	५	६	७	७
५३	७२४३	७२५१	७२५९	७२६७	७२७५	७२८४	७२९२	७३००	७३०८	७३१६	१	२	२	३	४	५	६	६	७
५४	७३२४	७३३२	७३४०	७३४८	७३५६	७३६४	७३७२	७३८०	७३८८	७३९६	१	२	२	३	४	५	६	६	७
५५	७४०४	७४१२	७४१९	७४२७	७४३५	७४४३	७४५१	७४५९	७४६६	७४७४	१	२	२	३	४	५	५	६	७
५६	७४८२	७४९०	७४९७	७५०५	७५१३	७५२०	७५२८	७५३६	७५४३	७५५१	१	२	२	३	४	५	५	६	७
५७	७५५९	७५६६	७५७४	७५८२	७५८९	७५९७	५६०४	७६१२	७६१९	७६२७	१	२	२	३	४	५	५	६	७
५८	७६३४	७६४२	७६४९	७६५७	७६६४	७६७२	७६७९	७६८६	७६९४	७७०१	१	१	२	३	४	४	५	६	७
५९	७७०९	७७१६	७७२३	७७३१	७७३८	७७४५	७८५२	७७६०	७७६७	७७७४	१	१	२	३	४	४	५	६	७
६०	७७८२	७७८९	७७९६	७८०३	७८१०	७८१८	७८२५	७८३२	७८३९	७८४६	१	१	२	३	४	४	५	६	६
६१	७८५३	७८६०	७८६८	७८७५	७८८२	७८८९	७८९६	७९०३	७९१०	७९१७	१	१	२	३	४	४	५	६	६
६२	७९२४	७९३१	७९३८	७९४५	७९५२	७९५९	७९६६	७९७३	७९८०	७९८७	१	१	२	३	४	४	५	६	६
६३	७९९३	८०००	८००७	८०१४	८०२१	८०२८	८०३५	८०४१	८०४८	८०५५	१	१	२	३	३	४	५	५	६
६४	८०६२	८०६९	८०७५	८०८२	८०८९	८०९६	८१०२	८१०९	८११६	८१२२	१	१	२	३	३	४	५	५	६
६५	८१२९	८१३६	८१४२	८१४९	८१५६	८१६२	८१६९	८१७६	८१८२	८१८९	१	१	२	३	३	४	५	५	६
६६	८१९५	८२०२	८२०९	८२१५	८२२२	८२२८	८२३५	८२४१	८२४८	८२५४	१	१	२	३	३	४	५	५	६
६७	८२६१	८२६७	८२७४	८२८०	८२८७	८२९३	८२९९	८३०६	८३१२	७३१९	१	१	२	३	३	४	५	५	६
६८	८३२५	८३३१	८३३८	८३४४	८३५१	८३५७	८३६३	८३७०	८३८६	८३८२	१	१	२	३	३	४	४	५	६
६९	८३८८	८३९५	८४०१	८४०७	८४१४	८४२०	८४२६	८४३२	८४३९	८४४५	१	१	२	३	३	४	४	५	६

लघुरिक्थ फल

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१ २ ३	४ ५ ३	७ ८ ९
७०	८४५१	८४५७	८४६३	८४७०	८४७६	८४८२	८४८८	८४९४	८५००	८५०६	१ १ २	२ ३ ४	४ ५ ६
७१	८५१३	८५१९	८५२५	८५३१	८५३७	८५४३	८५४९	८५५५	८५६१	८५६७	१ १ २	२ ३ ४	४ ५ ५
७२	८५७३	८५७९	८५८५	८५९१	८५९७	८६०३	८६०९	८६१५	८६२१	८६२७	१ १ २	२ ३ ४	४ ५ ५
७३	८६३३	८६३९	८६४५	८६५१	८६५७	८६६३	८६६९	८६७५	८६८१	८६८६	१ १ २	२ ३ ४	४ ५ ५
७४	८६९२	८६९८	८७०४	८७१०	८७१६	८७२२	८७२७	८७३३	८७३९	८७४५	१ १ २	२ ३ ३	४ ५ ५
७५	८७५१	८७५६	८७६२	८७६८	८७७४	८७७९	८७८५	८७९१	८७९७	८८०२	१ १ २	२ ३ ३	४ ५ ५
७६	८८०८	८८१४	८८२०	८८२५	८८३१	८८७३	८८४२	८८४८	८८५४	८८५९	१ १ २	२ ३ ३	४ ५ ५
७७	८८६५	८८७१	८८७६	८८८२	८८८८	८८९३	८८९९	८९०४	८९१०	९८१५	१ १ २	२ ३ ३	४ ४ ५
७८	८९२१	८९२७	८९३२	८९३८	८९४३	८९४९	८९५४	८९६०	८९६५	८९७१	१ १ २	२ ३ ३	४ ४ ५
७९	८९७६	८९८२	८९८७	८९९३	८९९८	९००४	९००९	९०१५	९०२०	९०२५	१ १ २	२ ३ ३	४ ४ ५
८०	९०३१	९०३६	९०४२	९०४७	९०५३	०९८५	९०६३	९०६९	९०७४	९०७९	१ १ २	२ ३ ३	४ ४ ५
८१	९०८५	९०९०	९०९६	९१०१	९१०६	९११२	९११७	९१२२	९१२८	९१३३	१ १ २	२ ३ ३	४ ४ ५
८२	९१३८	९१४३	९१४९	९१५४	९१५९	९१६५	९१७०	९१७५	९१८०	९१८६	१ १ २	२ ३ ३	४ ४ ५
८३	९१९१	९१९६	९२०१	९२०६	९२१२	९२१७	९२२२	९२२७	९२३२	९२३८	१ १ २	२ ३ ३	४ ४ ५
८४	९२४३	९२४८	९२५३	९२५८	९२६३	९२६९	९२७४	९२७९	९२८४	९२८९	१ १ २	२ ३ ३	४ ४ ५
८५	९२९४	९२९९	९३०४	९३०९	९३१५	९३२०	९३२५	९३३०	९३३५	९३४०	१ १ २	२ ३ ३	४ ४ ४
८६	९३४५	९३५०	९३५५	९३६०	९३६५	९३७०	९३७५	९३८०	९३८५	९३९०	१ १ २	२ ३ ३	४ ४ ५
८७	९३९५	९४००	९४०५	९४१०	९४१५	९४२०	९४२५	९४३०	९४३५	९४४०	० १ १	२ २ ३	३ ४ ४
८८	९४४५	९४५०	९४५५	९४६०	९४६५	९४६९	९४७४	९४७९	९४८४	९४८९	० १ १	२ २ ३	३ ४ ४
८९	९४९४	९४९९	९५०४	९५०९	९५१३	९५१८	९५२३	९४८४	९५३३	९५३८	० १ १	२ २ ३	३ ४ ४

लघुरिक्थ फल

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९
९०	९५४२	९५४७	९५५२	९५५७	९५६२	९५६६	९५७१	९५७६	९५८१	९५८६	०	१	१	२	२	३	३	४	४
९१	९५९०	९५९५	९६००	९६०५	९६०९	९६१४	९६१९	९६२४	९६२८	९६३३	०	१	१	२	२	३	३	४	४
९२	९६३८	९६४३	९६४७	९६५२	९६५७	९६६१	९६६६	९६७१	९६७५	९६८०	०	१	१	२	२	३	३	४	४
९३	९६८५	९६८९	९६९४	९६९९	९७०३	९७०८	९७१३	९७१७	९७२२	९७२७	०	१	१	२	२	३	३	४	४
९४	९७३१	९७३६	९७४१	९७४५	९७५०	९७५४	९७५९	९७६३	९७६८	९७७३	०	१	१	२	२	३	३	४	४
९५	९७७७	९७८२	९७८६	९७९१	९७९५	९८००	९८०५	९८०९	९८१४	९८१८	०	१	१	२	२	३	३	४	४
९६	९८२३	९८२७	९८३२	९८३६	९८४१	९८४५	९८५०	९८५४	९८५९	९८६३	०	१	१	२	२	३	३	४	४
९७	९८६८	९८७२	९८७७	९८८१	९८८६	९८९०	९८९४	९८९९	९९०३	९९०८	०	१	१	२	२	३	३	४	४
९८	९९१२	९९१७	९९२१	९९२६	९९३०	९९३४	९९३९	९९४३	९९४८	९९५२	०	१	१	२	२	३	३	४	४
९९	९९५६	९९६१	९९६५	९९६९	९९७४	९९७८	९९८३	९९८७	९९९१	९९९६	०	१	१	२	२	३	३	३	४

ज्या-सारिणी (Natural Sines)

अंश	०′ ०°·०	६′ ०°·१	१२′ ०°·२	१८′ ०°·३	२४′ ०°·४	३०′ ०°·५	३६′ ०°·६	४२′ ०°·७	४८′ ०°·८	५४′ ०°·९	औसत अन्तर				
											१	२	३	४	५
०	·००००	००१७	००३५	००५२	००७०	००८७	०१०५	०१२२	०१४०	०१५७	३	६	९	१२	१५
१	·०१७५	०१९२	०२०९	०२२७	०२४४	०२६२	०२७९	०२९७	०३१४	०३३२	३	६	९	१२	१५
२	·०३४९	०३६६	०३८४	०४०१	०४१९	०४३६	०४५४	०४७१	०४८८	०५०६	३	६	९	१२	१५
३	·०५२३	०५४१	०५५८	०५७६	०५९३	०६१०	०६२८	०६४५	०६६३	०६८०	३	६	९	१२	१५
४	·०६९८	०७१५	०७३२	०७५०	०७६७	०७८५	०८०२	०८१९	०८३७	०८५४	३	६	९	१२	१५

ज्या-सारिणी

	०′ ०°·०	६′ ०°·१	१२′ ०°·२	१८′ ०°·३	२४′ ०°·४	३०′ ०°·५	३६′ ०°·६	४२′ ०°·७	४८′ ०°·८	५४′ ०°·९	औसत अन्तर १	२	३	४	५
५	·०८७२	०८८९	०९०६	०९२४	०९४१	०९५८	०९७६	०९९३	१०११	१०२८	३	६	९	१२	१४
६	·१०४५	१०६३	१०८०	१०९७	१११५	११३२	११४९	११६७	११८४	१२०१	३	६	९	१२	१४
७	·१२१९	१२३६	१२५३	१२७१	१२८८	१३०५	१३२३	१३४०	१३५७	१३७४	३	६	९	१२	१४
८	·१३९२	१४०९	१४२६	१४४४	१४६१	१४७८	१४९५	१५१३	१५३०	१५४७	३	६	९	१२	१४
९	·१५६४	१५८२	१५९९	१६१६	१६३३	१६५०	१६६८	१६८५	१७०२	१७१९	३	६	९	१२	१४
१०	·१७३६	१७५४	१७७१	१७८८	१८०५	१८२२	१८४०	१८५७	१८७४	१८९१	३	६	९	१२	१४
११	·१९०८	१९२५	१९४२	१९५९	१९७७	१९९४	२०११	२०२८	२०४५	२०६२	३	६	९	११	१४
१२	·२०७९	२०९६	२११३	२१३०	२१४७	२१६४	२१८१	२१९८	२२१५	२२३२	३	६	९	११	१४
१३	·२२५०	२२६७	२२८४	२३००	२३१७	२३३४	२३५१	२३६८	२३८५	२४०२	३	६	८	११	१४
१४	·२४१९	२४३६	२४५३	२४७०	२४८७	२५०४	२५२१	२५३८	२५५४	२५७१	३	६	८	११	१४
१५	·२५८८	२६०५	२६२२	२६३९	२६५६	२६७२	२६८९	२७०६	२७२३	२७४०	३	६	८	११	१४
१६	·२७५६	२७७३	२७९०	२८०७	२८२३	२८४०	२८५७	२८७४	२८९०	२९०७	३	६	८	११	१४
१७	·२९२४	२९४०	२९५७	२९७४	२९९०	३००७	३०२४	३०४०	३०५७	३०७४	३	६	८	११	१४
१८	·३०९०	३१०७	३१२३	३१४०	३१५६	३१७३	३१९०	३२०६	३२२३	३२३९	३	६	८	११	१४
१९	·३२५६	३२७२	३२८९	३३०५	३३२२	३३३८	३३५५	३३७१	३३८७	३४०४	३	५	८	११	१४
२०	·३४२०	३४३७	३४५३	३४६९	३४८६	३५०२	३५१८	३५३५	३५५१	३५६७	३	५	८	११	१४
२१	·३५८४	३६००	३६१६	३६३३	३६४९	३६६५	३६८१	३६९७	३७१४	३७३०	३	५	८	११	१४
२२	·३७४६	३७६२	३७७८	३७९५	३८११	३८२७	३८४३	३८५९	३८७५	३८९१	३	५	८	११	१४
२३	·३९०७	३९२३	३९३९	३९५५	३९७१	३९८७	४००३	४०१९	४०३५	४०५१	३	५	८	११	१४
२४	·४०६७	४०८३	४०९९	४११५	४१३१	४१४७	४१६३	४१७९	४१९५	४२१०	३	५	८	११	१३

ज्या-सारिणी

	०′ ०°.०	६′ ०°.१	१२′ ०°.०	१८′ ०°.३	२४′ ०°.४	३०′ ०°.५	३६′ ०°.६	४२′ ०°.७	४८′ ०°.८	५४′ ०°.९	औसत अन्तर १	२	३	४	५
२५	·४२२६	४२४२	४२५८	४२७४	४२८९	४३०५	४३२१	४३३७	४३५२	४३६८	३	५	८	११	१३
२६	·४३८४	४३९९	४४१५	४४३१	४४४६	४४६२	४४७८	४४९३	४५०९	४५२४	३	५	८	१०	१३
२७	·४५४०	४५५५	४५७१	४५८६	४६०२	४६१७	४६३३	४६४८	४६६४	४६७९	३	५	८	१०	१३
२८	४६९५	४७१०	४७२६	४७४१	४७५६	४७७२	४७८७	४८०२	४८१८	४८३३	३	५	८	१०	१३
२९	·४८४८	४८६३	४८७९	४८९४	४९०९	४९२४	४९३९	४९५५	४९७०	४९८५	३	५	८	१०	१३
३०	·५०००	५०१५	५०३०	५०४५	५०६०	५०७५	५०९०	५१०५	५१२०	५१३५	३	५	८	१०	१३
३१	५१५०	५१६५	५१८०	५१९५	५२१०	५२२५	५२४०	५२५५	५२७०	५२८४	२	५	७	१०	१२
३२	५२९९	५३१४	५३२९	५३४४	५३५८	५३७३	५३८८	५४०२	५४१७	५४३२	२	५	७	१०	१२
३३	·५४४६	५४६१	५४७६	५४९०	५५०५	५५१९	५५३४	५५४८	५५६३	५५७७	२	५	७	१०	१२
३४	·५५९२	५६०६	५६२१	५६३५	५६५०	५६६४	५६७८	५६९३	५७०७	५७२१	२	५	७	१०	१२
३५	·५७३६	५७५०	५७६४	५७७९	५७९३	५८०७	५८२१	५८३५	५८५०	५८६४	२	५	७	१०	१२
३६	५८७८	५८९२	५९०६	५९२०	५९३४	५९४८	५९६२	५९७६	५९९०	६००४	२	५	७	९	१२
३७	·६०१८	६०३२	६०४६	६०६०	६०७४	६०८८	६१०१	६११५	६१२९	६१४३	२	५	७	९	१२
३८	·६१५७	६१७०	६१८४	६१९८	६२११	६२२५	६२३९	६२५२	६२६६	६२८०	२	५	७	९	११
३९	·६२९३	६३०७	६३२०	६३३४	६३४७	६३६१	६३७४	६३८८	६४०१	६४१४	२	४	७	९	११
४०	·६४२८	६४४१	६४५५	६४६८	६४८१	६४९४	६५०८	६५२१	६५३४	६५४७	२	४	७	९	११
४१	·६५६१	६५७४	६५८७	६६००	६६१३	६६२६	६६३९	६६५२	६६६५	६६७८	२	४	७	९	११
४२	·६६९१	६७०४	६७१७	६७३०	६७४३	६७५६	६७६९	६७८२	६७९५	६८०७	२	४	६	९	११
४३	·६८२०	६८३३	६८४५	६८५८	६८७१	६८८४	६८९६	६९०९	६९२१	६९३४	२	४	६	८	११
४४	·६९४७	६९५९	६९७२	६९८४	६९९७	७००९	७०२२	७०३४	७०४६	७०५९	२	४	६	८	१०

ज्या-सारिणी

	० ०°·०	६′ ०°·१	१२′ ०°·२	१८′ ०°·३	२४′ ४°·४	३०′ ०°·५	३६′ ०°·६	४२′ ०°·७	४८′ ०°·८	५४′ ०°·९	औसत अन्तर १	२	३	४	५
४५	७०७१	७०८३	७०९६	७१०८	७१२०	७१३३	७१४५	७१५७	७१६९	७१८१	२	४	६	८	१०
४६	७१९३	७२०६	७२१८	७२३०	७२४२	७२५४	७२६६	७२७८	७२९०	७३०२	२	४	६	८	१०
४७	७३१४	७३२५	७३३७	७३४९	७३६१	७३७३	७३८५	७३९६	७४०८	७४२०	२	४	६	८	१०
४८	७४३१	७४४३	७४५५	७४६६	७४७८	७४९०	७५०१	७५१३	७५२४	७५३६	२	४	६	८	१०
४९	७५४७	७५५८	७५७०	७५८१	७५९३	७६०४	७६१५	७६२७	७६३८	७६४९	२	४	६	८	९
५०	७६६०	७६७२	७६८३	७६९४	७७०५	७७१६	७७२७	७७३८	७७४९	७७६०	२	४	६	७	९
५१	७७७१	७७८२	७७९३	७८०४	७८१५	७८२६	७८३७	७८४८	७८५९	७८६९	२	४	५	७	९
५२	७८८०	७८९१	७९०२	७९१२	७९२३	७९३४	७९४४	७९५५	७९६५	७९७६	२	४	५	७	९
५३	७९८६	७९९७	८००७	८०१८	८०२८	८०३९	८०४९	८०५९	८०७०	८०८०	२	३	५	७	९
५४	८०९०	८१००	८१११	८१२१	८१३१	८१४१	८१५१	८१६१	८१७१	८१८१	२	३	५	७	८
५५	८१९२	८२०२	८२११	८२२१	८२३१	८२४१	८२५१	८२६१	८२७१	८२८१	२	३	५	७	८
५६	८२९०	८३००	८३१०	८३२०	८३२९	८३३९	८३४८	८३५८	८३६८	८३७७	२	३	५	६	८
५७	८३८७	८३९६	८४०६	८४१५	८४२५	८४३४	८४४३	८४५३	८४६२	८४७१	२	३	५	६	८
५८	८४८०	८४९०	८४९९	८५०८	८५१७	८५२६	८५३६	८५४५	८५५४	८५६३	२	३	५	६	८
५९	८५७२	८५८१	८५९०	८५९९	८६०७	८६१६	८६२५	८६३४	८६४३	८६५२	१	३	४	६	७
६०	८६६०	८६६९	८६७८	८६८६	८६९५	८७०४	८७१२	८७२१	८७२९	८७३८	१	३	४	६	७
६१	८७४६	८७५५	८७६३	८७७१	८७८०	८७८८	८७९६	८८०५	८८१३	८८२१	१	३	४	६	७
६२	८८२९	८८३८	८८४६	८८५४	८८६२	८८७०	८८७८	८८८६	८८९४	८९०२	१	३	४	५	७
६३	८९१०	८९१८	८९२६	८९३४	८९४२	८९४९	८९५७	८९६५	८९७३	८९८०	१	३	४	५	६
६४	८९८८	८९९६	९००३	९०११	९०१[illegible]	[illegible]०२६	९०३३	९०४१	९०४८	९०५६	१	३	४	५	६

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफ़्ताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥
७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद
मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० श्र० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)
६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)
९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... =)
१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)
११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)
१४—ज्वर निदान और शुश्रषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)
१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० ... बी०के मित्र, एल. एम. एस. ... ... =)॥
१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)
१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.
भाग १ ... ... २॥।)
भाग २ ... ... ४)
चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)
भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)
वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥।=)
वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)
गृह-शिल्प— ... ... ॥
खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्द-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces an Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१६४ Reg. No. A.708

भाग २८
Vol. 28.

वृश्चिक १६८५

नवम्बर १६२८

संख्या २
No. 2

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग २८ | वृश्चिक संवत् १९८५ | संख्या २

वार्निश

(ले० श्री जटाशङ्कर मिश्र, बी. एस-सी.)

वार्निश एक प्रकारका द्रव पदार्थ है जो सूखनेपर सख्त चमकदार और पारदर्शक बन कर सामानको गर्द और गन्दगी से बचाता है।

एक वार्निश वह होती है जो घोलकके वाष्पीभूत होनेके कारण सूख जाती है, दूसरी वह जो वायुमंडलसे ओषजन ग्रहण करके कड़ी हो जाती है। पहली श्रेणीकी वार्निशमें बहुधा स्पिरिट (मद्य) का उपयोग किया जाता है; दूसरीमें अलसीके तैलमें घोल बनाया जाता है। स्पिरिट वाली वार्निश तो बहुत ही सरलता से बन जाती है, यदि एक दो गैलन वाले मिट्टीके बर्तनमें एक गैलन स्पिरिट और डेढ़ या दो सेर शैलाक (लाख) के बारीक कतरे धीरे धीरे डाल कर रात भर पड़े रहने दिये जावें तो सुबह तक लगभग सब लाख घुल जाती है। दूसरे दिन घण्टे घण्टे पर उसे लकड़ी की डंडी से चलाया करें तो शाम तक सब घुल कर तय्यार हो जाती है। शैलाक लाख में ४,५% मोम रहता है जिसके कारण वार्निश कुछ धुंधुली रह जाती है परन्तु रंगाई साफ आती है। शैलाक को प्रायः क्षारीय घोलमें घोल कर हरिन् की सहायतासे नीरंग कर लेते हैं। इस सफेद शैलाक के घोल बनानेमें टारने की विशेष आवश्यकता है।

डमरराल (Damar) तथा सन्दराई राल (sandarae resin) को तारपीनके तैलमें घोल कर इसी प्रकारकी अनेक वार्निश बनाते हैं। इसके निमित्त भापसे गर्म किये हुए बर्तनोंकी आवश्यकता होती है तारपीनमें सस्ती पैट्रोलियम वैञ्जाइन मिलाकर भी काममें लाते हैं।

पाइरोक्सिलिन (Pyroxylin) वारनिशें कई प्रकारके छिद्रोज् नोषेतों (cellulose nitrates)

और केलील सिरकेतसे बनाई जाती हैं। केलील सिरकेतको सस्ते बानजावोल इत्यादिसे हलका कर लेते हैं। यह बार्निशें बहुत कड़ी हो जाती हैं इसलिये अंडी, अलसी या बिनौले का तैल भी मिला लिया जाता है। तेल वाली बार्निश बनानेके लिए भी कम सामानकी आवश्यकता पड़ती है। तांबेका एक बड़ा हौज़ होता है जिसकी ऊंचाई ३६ इंच और व्यास ३०-३६ इंच होता है। इसके ऊपर एक ढीला ढाला सा ढक्कन होता है जिसके मध्य भागमें एक बेलनाकार या चिमनीकी भाँति छेद होता है। चिमनीकी ऊँचाई ८ इञ्च और व्यास ५ इञ्च होता है। ढक्कनमें एक और छेद चालकके लिए बना रहता है। किसी-किसी यंत्रमें तो कीप रखनेके लिये भी एक छेद होता है। इस हौजको लोहेकी छोटी सी नीची चार पहियेकी गाड़ी के सहारे भट्टी तक पहुँचाते हैं। भट्टी जमीनमें गड्ढे की तरह होती है। उसके ऊपर लोहेके छड़ लगे रहते हैं, पास ही में धूएं और भाप इत्यादि निकलनेके हेतु एक चिमनी बनी रहती है। भट्टीका ईंधन प्रायः कोक (कोयला) होता है जो अच्छी तरह जलता है और ज्यादा ज्वाला न देनेके कारण हौजके भापको आग लगनेसे बचाता है। चालक (stirrer) कड़े फ़ौलाद (steel) का बना हुआ होता है। इसकी लम्बाई ५—६ फीटहोती है उसमें लकड़ी का दस्ता लगा रहता है।

बार्निश बनानेकी विधि भी सरल है। हौज़में ५०......६० सेर रेजिन या राल डाल देते हैं और उसको भट्टीमें पहुँचा देते हैं। राल पिघलते समय बहुत झाग देती है इसी कारण बर्तन लम्बा चौड़ा रखनेकी आवश्यकता पड़ती है। कुछ लोग तापमापक से कुल राल गल जानेका पता लगाते हैं और कुछ चालकसे ही स्पर्श करलेते हैं कि अब कोई बड़ा टुकड़ा तो नहीं रह गया है। सब राल गल जानेके पश्चात् गर्म गर्म तेल हौज़में डाला जाता है। कुछ कुछ लोग हौज़ को आग परसे उतार कर उसमें तेल डालते हैं और कुछ लोग वैसे ही डाल देते हैं। अब तेल रालके साथ पकाया जाता है। इस क्रियामें तापमापकका भी प्रयोग किया जाता है। इस बातका पता लगानेके लिए कि तेल और राल भली भाँति मिल गये हैं या नहीं, मिश्रणकी एक बूंद कांचके ऊपर रक्खी जाती है। यदि ठंडा होने पर वह धुंधली पड़ जाय तो यह सिद्ध होता है कि अभी मिश्रण अच्छी तरह पका नहीं है। मिश्रणको अच्छी तरह पक जाने पर भी थोड़ा और गर्म किया करते हैं। जितना ही उसको अधिक गर्मजाय उतना ही वह और गाढ़ा होता जाता है और ठंडा होनेपर उसे पतला करके बार्निश बनानेके लिये उतनी ही अधिक तारपीनके तैलकी आवश्यकता पड़ती है।

हौज़को अच्छी तरह ठंडा हो लेनेपर दूसरे कमरेमें ले जाते हैं जो कि भट्टी वाले कमरेसे दूर पर होता है वहां स्पिरिट, तारपीन या बैञ्जाइन (या दोनों) का मापित परिमाण धीरे-धीरे मिश्रणको टारते हुए उसमें मिलाया जाता है।

बार्निश लगभग एक कलाद्र (colloid) घोल है। यदि पकाये हुए मिश्रणमें एकदम बैञ्जाइन डाल दिया जाय तो वह फूलकर एक झिल्लीदार पदार्थ बन जाता है और अधिक घोलकमें फिर नहीं घुलता, परन्तु पहिले थोड़ासे तारपीनका प्रयोग करलेनेसे बैञ्जाइन सुगमतासे उसे घोल कर पतली बार्निश बना दे सकता है। बार्निशमें कुछ ऐसी भी वस्तुए मिलाई जाती हैं जो उसे जलदी सुखा देती हैं। शोषक प्रायः सीसम् और मांगनीजके यौगिक होते हैं। कहीं कहीं शोषक तारपीनके साथ ही गर्म बार्निशमें डाल देते हैं और कुछ लोग ठंडा होने परमिलाते हैं।

बार्निशमें तेल जितना ही अधिक मात्रामें मिलाया जाय उतने ही अधिक समय तक वह खराब नहीं होता है परन्तु देरमें सूखती है। तैल की मात्रा कम रहनेसे बार्निश कड़ी, चमदार और शीघ्र सूखने वाली होती है। सामान (furniture) पर लगाई जाने वाली बार्निश कड़ी, चमकदार और न चिपकने वाली होनी चाहिये। इस प्रकारकी बार्निश ५० सेर राल और १०—१५ गैलन तेलसे तैयार हो सकती है। मकानके अन्दरके समान रंगनेके लिये १५—२० गैलन तेल मिलाना चाहिये और बाहर हवामें खुली

रहने वाली चीजोंके लिये २०—३० गैलन तैल लाभकारी होगा। ३० गैलनवाली वार्निशको पतला करनेके लिये ३२ गैलन तारपीन या अन्य द्रवकी आवश्यकता होती है और १० गैलन तैल वालीको २५ गैलनकी। घर्षण वार्निश (Rubbing varnish) के लिये केवल ६—१२ ही गैलन तैलकी आवश्यकता होती है। ५ या ६ दिनमें वह वार्निश सूख कर एक बहुत पतली परन्तु कड़ी तह जमा देती है। इसके ऊपर दूसरी वार्निश लगानेसे पहिले उसको रगड़ कर खुरखुरा बना देते हैं जिससे दूसरी तह अच्छी जमें।

सस्ती वार्निशें रोजिनसे बनाई जाती हैं। रोजिन कोई प्राकृतिक पदार्थ नहीं है। बाजारू तारपीनके स्रवणके उपरान्त जो तलछट भभकेमें रह जाता है वही रोजिन है। इसकी आम्लिकता को मिटानेके लिये ५-६ % चूनेकी आवश्यकता होती है। रोजिनकी वार्निश उपयुक्त विधिसे ही बनाई जाती है, केवल शोषक अधिक मात्रामें मिलाये जाते हैं। यह वार्निश मुलायम और कम दिनों तक चलने वाली होती है और प्रायः अच्छी वार्निशोंमें मिलावट (adultration) के ही काम आती है। चीनका लकड़ीका तैल (China woodoil) या टंग (tung) के आधारपर बनाई हुई रोजिनकी वार्निशें अति शीघ्र सूखती हैं और प्रायः स्वयं सेवनकी जाती हैं पीली वार्निशके लिये पीले रेजिनका उपयोग करना चाहिये। पीले रेजिन मुलायम होते हैं इसी कारण और गहरे रंगके रेजिन कौरी-रेजिन काममें लाये जाते हैं। इनसे तैयारकी हुई वार्निश भिन्न भिन्न लकड़ियों पर भिन्न भिन्न रंग जमाती हैं। जनजीबार नामक कुछ पीले रेजिनभी अच्छे होते हैं।

वार्निश ओषदीकरणकी क्रियासे सूखती है। ओषदीकरणकी मात्रा तापक्रमके साथ साथ बढ़ती है। इसी विचारसे बहुतसी वार्निशें ऐसी बनाई गई हैं जो लकड़ी तथा धातुके सामान पर लगाकर एकदम भट्टीमें सुखाई जाती हैं। इन वार्निशोंमें एस्फल्टमका उपयोग किया जाता है और तेल विशेष मात्रामें मिलाया जाता है। धातुके सामान प्रायः ४००°—५००° फ पर सुखाये जाते हैं इन वार्निशोंमें शोषक नहीं मिलाये जाते। और वार्निशोंके लिये कुछ द्रव शोषक भी तैयार किये गये हैं। यह शोषक सीसम् या मांगनीज के लिनओलेत रेजीनेत हैं जिनमें तेलका भी अंश रहता है। इनकी क्रिया उत्प्रेरण प्रक्रिया है। ये वायु मण्डलसे ओषजन ले लेकर वार्निशको देते जाते हैं। नकलम् और कोबल्टम् से भी शोषक बने हैं परन्तु वे उपर्युक्त शोषकोंसे किसी प्रकार अच्छे नहीं हैं। शोषकका अधिक मात्रामें प्रयोग करना हानिकारक है। अधिक सूख जानेसे वार्निश जल्दी उचट जाती है।

पशु तंतु

(ले० श्री० ब्रजबिहारी लाल दीक्षित बी. एस सी)
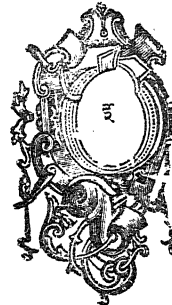
इस वस्तुके वस्त्रोंका भी भारतवर्षमें बहुत प्रचार है और यह वस्त्र अत्यन्त ही पवित्र समझे जाते हैं। यहां तक कि बहुतसे मनुष्य (विशेषकर गुर्जरदेश वासी) तो सदैव एक वस्त्र भोजनके निमित्त रेशमका ही रखते हैं और उसे केवल भोजनके ही समय पहिनते हैं। साधारणतः भी जो मनुष्य रुईके वस्त्रों को पहिन कर भोजन करनेमें दोष समझते हैं रेशम तथा ऊनके वस्त्रोंको पहिन कर भोजन करना दूषित नहीं समझते। इस प्रकारके पदार्थोंमें विशेष कर रेशम और ऊन ही हैं और थोड़ा बहुत हाल दोनोंका यहां दिया जावेगा। यह दोनों अवश्य ही नोषजनिक पदार्थ होते हैं और विशेष कर प्रत्यभिन पदार्थसे, जिसमें गन्धक भी होता है, बनते हैं। ये या तो बड़े ही कड़े कोष्ठस्वरूपोंसे बनाते हैं अथवा कोष्ठके समूहोंको एकही बन्धनमें लपेटनेसे बनते हैं या ये रेशमके अनेक कीड़े मकोड़ों तथा कुछ पौधोंके बहिष्कृत किये हुए द्रवसे जमकर बने हुए ठोस पदार्थके तार होते हैं। यह क्षारोंसे बड़ी ही सुगमतासे नष्ट हो जाते हैं किन्तु अम्लोंका प्रभाव भली भांति सहन करने

के योग्य होते हैं। वनस्पति तन्तुओंकी अपेक्षा यह शुष्क तापसे बड़ी ही सरलतासे निःकृष्ट हो जाते हैं।

क्षोम कृमि (रेशमका कीड़ा) जिनको आधुनिक वनस्पति विज्ञानकी प्रणालीके अनुसार अंगरजीमें बामबिक्स मोरी कहते हैं रेशमतैयार करते हैं। इन कृमियोंकेशरीरके दोनों ओरएक एक ग्रन्थि होती है जो कि अत्यन्त ही बारीक नलियों द्वारा हृदयमें एक नन्हें छिद्रसे आधारित होती है। यह प्रतीत होता है कि इन दोनों ग्रन्थियों मेंसे प्रत्येक ग्रन्थि दो प्रकार का द्रव्य वहिष्कृत करती हैं, एक तो फिब्राइन, क$_{१५}$उ$_{२३}$नो$_{५}$ओ$_{६}$ जिससे तागका $\frac{१}{२}$ से $\frac{२}{३}$ तक भाग बनता है। दूसरी वस्तु सैरीसिन, क$_{१५}$उ$_{२५}$नो$_{५}$ओ$_{८}$ जिससे तागका $\frac{१}{३}$ से $\frac{१}{२}$ भाग तक बना होता है। यह वस्तु 'क्षोम घी' भी कहलाती है। देखनेमें पीली होती है और उबलते हुए जलमें बड़ी सरलतासे घुल जाती है, साबुनके गरम हलके घोल तथा क्षारके हलके घोलोंमें भी अत्यन्त घुलनशील होती है। इससे रेशमका वहिः भाग बनता है। नन्हीं नलियोंमें से निकल कर द्रव्य ज्यों ही वायुके संसर्गमें आता है शीघ्र हा ठोस बन जाता है और शीघ्र ही गोंदीले सैरीसिनसे चिपक जाता है। इसी कारणसे रेशमका ताग अनुवीक्षण यंत्रमें निस्स्वरूप (Structureless) दो पृथक् पृथक्तागोंका बना दीखता है। इस प्रकार बहिष्कृत करके कृमि रेशमकी एक पिंडी बनाते जाते हैं। प्रत्येक पिंडमें ४०० से १५०० गज़ तक रेशमका ताग होता है। साधारणत: तागेका व्यास $\frac{१}{१००}$ इंच तथा बहुधा उससे भी कम होता है।

अब रेशमके कीड़ोंकी कृषि किस प्रकार होती है कि जिससे इतनी अधिक मात्रामें रेशम उपलब्ध किया जा सके? वह इस प्रकार है कि इन कृमियोंके असंख्य अण्डे सम-तप्तशालाओं (Incubators) में भर दिए जाते है और उनका तापक्रम शनैः शनैः १८°शसे लेकर२५°श तक बढ़ाया जाता है। क्रमशः इन अण्डोंके फूटनेसे बच्चे निकल आते हैं जो रेशमके कीड़े (catarpiller) कहलाते हैं। उनकी भक्षण शक्ति इस दशामें अत्यन्तही विकट होती है। नित्य-प्रति शहतूतकी पत्तियोंका भोजन बड़े चावसे करते हैं और प्रायः तीस दिवसके अनन्तर ३ इंचके लगभग लम्बे और अत्यन्त ही मोटे हो जाते हैं। इस समयमें वहप्रत्येक चतुर्थ तथा पंचम दिवस अपनी चमड़ी बदलते रहते हैं। अब वह कुछ कुछ आलसी हो जाते हैं और पत्तियों से रेंगकर शाखाओं पर जा पहुँचते हैं। और वहां वह रेशमकी कताई प्रारम्भ करते हैं। ऐसा वह प्रायः तीन दिन तक करते हैं। तत्पश्चात् वह कृमि यमदेवके हवाले कर दिये जाते हैं और इस क्रियाके निमित्त या तो भट्टीमें ६०°—७०°श के तापक्रमपर तीन घंटे तक भूननेकी, अथवा केवल जलवाष्पसे उनको कोई १५-२० मिनट तक प्रवाहित करनेकी शरण लेनी पड़ती है। अब पिंडियां छांट ली जाती है और रेशमकी सुन्दर सुन्दर गड्डी बनाई जाती हैं। यह पूर्णतः मशीन वा हाथका काम (Mechanical) है और अत्यन्तही बुद्धिमताकी आवश्यकता रखता है। पिंडियां ६०°श परतप्त जलमें भिगोयी जाती हैं। इस प्रकार गोंद नर्म पड़ जाता है। तदनन्तर कार्य्यकर्त्ता अनेक तागोंके स्वाधीन सिरोंको हस्तगत करके उनको एक नन्हीं सी कूचा परसे निकाल कर एक यन्त्रद्वारा अगेट तथा चीना मिट्टीके बने हुए कीलोंमेंसे निकालता है। इस प्रकार वह तार ऐंठ जाते हैं और बिनावटके कार्य्यके निमित्त काफी मोटे हो जाते हैं। ऐसे दो ताग लगभग एकही चर्खी पर लपेटे जाते हैं और वह एक दूसरे परसे होकर निकाले जाते हैं ताकि एक दूसरेको रगड़ते मांजते जावें और इस प्रकार ग्रन्थियां, अशुद्धियां और मिट्टीके कण दूर हो जाते हैं। तागों की ऐंठ भी निकल जाती है और उनके वहिः भागका गोंद नर्म पड़कर इकमिल हो जाता है और तागे चिपटकर एक समपूर्ण डोरे बना देते हैं। यह कच्चा रेशम बन गया। इस प्रक्रियामें हानि बहुत होती है और बहुतसा रेशम निःकृष्ट हो जाता है। अनेक तार तो बाहरही से टूटे और खराब होते हैं फिर अनेक लपटे कृमि अधमरी अवस्थामें भी जीवनाशासे प्रेरित होकर बाहर जानेका निष्फल उद्योग करते हैं और इस

प्रयत्नमें वे बहुतसे तागोंको काट डालते हैं। कच्चे रेशमको कातकर कता हुआ सूत बनाया जाता है।

कच्चा सूत अत्यन्तही जलाकर्षक होता है और ३०°/॰ प्रतिशत जल अपने भारसे अभिशोषन कर लेने भी-पूर्णतः शुष्क ही प्रतीत होगा। इस कारण से रेशमके क्रय विक्रयके समय उसमें जल की मात्रा मालूम करलेने की प्रथा पड़ गई है। यह जलमापक क्रिया कहलाती है और बड़ी ही बुद्धिमत्तासे विश्वसनीय प्रयोगशालाओंमें करवानी चाहिए। प्रत्येक गिंडेमें से कुछ भाग लेकर उसको विशेष प्रकारके यंत्रमें तप्त वायुके प्रवाहमें ११० श तक शुष्क करनेके अनन्तर तथा उससे प्रथम उसका भार निकालनेसे जलकी मात्रा निकल आती है। शुष्क तब तक करना उचित है जब तक कि भार स्थिर (constant) न हो जावे। अनेक ऐसीही परीक्षाएं की जाती हैं और उन सबकी औसत (Average) मात्रा निकाल ली जाती है। शुष्क रेशम का जो भार आता है उसमें राजनीत्यनुसार जो जलकी मात्रा होनी चाहिए अर्थात् ११ प्रतिशत उसमें जोड़ कर उस बेलन में कच्चे रेशम का भारअंकित कर दिया जाता है।

कच्चे रेशममें २५ प्रतिशत ही तो सैरीसिन (Se ricine) होता है और अन्य सब शुद्ध फिब्रोइन (Fil roine) होता है जो अत्यन्तही खुरखुरा होता है और कठोर तथा मोटा प्रतीत होता है। इसी कारण वस्त्र तथा सूत बनाए जानेसे प्रथम उसमें एक क्रिया की जाती है जो स्वच्छकरण विधि कहलाती है। इस विधि का अभिप्राय यह होता है कि यथा सम्भव गोंदीला पदार्थ इच्छित पदार्थोंकी आवश्यकतानुसार तागोंमें से निकल जावे। काष्ठ कटोरों पर रेशमके लच्छे भेद दिए जाते है और फिर उसमें ६५°श तक तप्त साबुन-घोल डालते हैं। साबुन-घोल मर्सिलीज साबुन तथा नर्म साबुन को रेशमके भागसे ३० प्रतिशत डालने से बनता है। यह विशेष कर चूने इत्यादिसे रहित होना चाहिए। यह बर्तन लगभग एक डेढ़ घण्टे तक इसी तापक्रम पर रहता है और रेशम हाथसे पुनः पुनः लौटा पौटा जाता है। इस समय रेशम फूल जाता है और चिपकने लगता है। अन्त में सैरीसिन (sericine) घुल जाता है और रेशम चमकदार और मुलायम होजाता है। इसे उबालना न चाहिये क्योंकि उससे रेशम उलझ जावेगा। और सैरीसिन का पीतवर्ण उस पर स्थिर हो जावेगा। इसके अतिरिक्त रेशम अधिक उबालने से विवर्ण भी हो जाता है। अत्यन्त बारीक कार्य्यके निमित्त दो तीन स्नानागार-साबुन प्रयोग में आते हैं और कच्चा रेशम प्रथम उसमें डाला जाता है जो अधिक प्रयोग में आचुका है और यहाँ रेशम कुछ कुछ स्वच्छ हो जाता है और निःकृष्ट द्रव्य सैरासिन का अत्यन्त संप्रक्त घोल बन जाता है। यह निकाल कर रेशमके रंगने में समय स्नानागार बनानेमें प्रयोग आती है। कुछ सैरासिन यहां भी घुल जाता है और गोंद नर्म पड़ कर कुछ दूर भी हो जाता है। वह लच्छे फिर क्रमशः एक से दूसरे बर्त्तन में ले जाते हैं और अन्तमें उस बर्त्तनमें से जो कि अत्यन्त शीघ्र ही तैयार हुआ है निकाल लिए जाते हैं। इस प्रकार मुलायम श्वेत रेशम तैयार हुआ। इसको सैंधक कर्बनतके गुनगुने हलके घोलमें फटकार कर स्वच्छ जल से साफ कर लेते हैं। वह रेशम जो कि श्वेतवर्ण काही विक्रय किया जाने का है अथवा बहुत ही हलका रंगे जाने का है एक बार और स्वच्छकरण विधिकी शरण जाता है। इस समय सब लच्छोंको स्थान स्थान पर एक फीते से बांध कर एक कपड़े की थैली में बन्द कर देते हैं। इसको साबुनके १५°/॰ प्रतिशत घोलमें २—३ घण्टे तक उबालते हैं और इस प्रकार तमाम गोंदीले पदार्थ निकल जाते हैं किन्तु रेशम का २०-३० प्रतिशत भार घट जाता है। इस हानिको कम करनेके निमित्त बहुधा कच्चे रेशमको हल्के साबुन-घोल से धोते हैं यहां तक कि सब चार्विक तथा गोंदीले पदार्थ दूर हो जाते हैं। फिर इसे तुरन्तही धो लिया जाता है और कभी कभी गन्धक द्वि ओषिद के प्रवाहसे उसको वर्ण हीन भी कर देते हैं। इस प्रकार अकरू रेशम तैयार होता है। यह स्पर्श करनेमें तो कठोरप्रतीत होता है किन्तु २-४ प्रतिशत भारकी

हानि होती है। यह बहुधा काला रेशम तथा मखमल की गद्दी बनाने में प्रयोग किया जाता है।

कच्चे रेशमको रंगने के निमित्त परिपाक्य करने की दूसरी विधि यह है कि सेरीसिन का अधिक भाग तागों पर ही रहने दिया जाता है। लच्छे प्रथम साबुन घोलमें (१० प्रतिशत) चार पाँच घड़ियों तक २५°-३५°श पर भिगोया जाता है इस प्रकार ताग फूल कर नर्म हो जाते हैं। तत्पश्चात् वर्ण विनाशके निमित्त वह ½ घड़ी तक अत्यन्त हल्के अम्लराज (Aqua Regia) के घोलमें डुबोकर गन्धकाम्लमें किञ्चित मात्र नोषकाम्लके घोलमें धोये जाते हैं। इस प्रकार वर्ण विनाश रेशम गन्धक द्विओषिदके प्रवाहमें प्रभावित किया जाता है; यहाँ तक कि श्वेत हो जावे। फिर इनको लगभग १½—२ घण्टे तक पांशुज उद्जन इमलेत (cream Tartar) या मगनीस गन्धेतमें पूर्ण प्रकारसे धोते हैं यहाँ तक कि वर्ण विनाशन क्रियामें जो कठोरता आ गई थी वह दूर हो जाती है। इस प्रकार उपलब्ध पदार्थको "चर्मि रेशम"—कहते हैं। इसमें केवल रेशम का ६—८% भारकी ही हानि होती है वरन् यह तप्त रेशम से निर्बल होता है।

संयुक्त खनिज अम्लों—उद्हरिकाम्ल—में रेशम पूर्ण घुलनशील है परन्तु अत्यन्त ही हल्के घोल रेशममें अधिशोषित हो जाते हैं और इस प्रकार से रेशमकी चमक भी बढ़ जाती है और रेशममें एक अनोखे प्रकारका विशिष्ट स्पर्श गुण आ जाता है और दबाये जाने पर एक विशिष्ट स्वर भी निकलता है जिसको 'रेशमिक गायन' कहते हैं। यह गुण रेशम को हल्के गन्धकाम्ल, इमलिकाम्ल तथा काष्ठिकाम्ल (Oxalic Acid) इत्यादिके घोलोंमें भिगोकर बिन धोये ही रंग देनेसे आ जाता है। क्षार उदौषिदके संपृक्त घोलमें रेशमको शीघ्र ही नाश करदेते है परन्तु शीतमें यह साधारण संपृक्त घोलमें भी उसपर कुछ हानि कारक प्रभाव नहीं डालते ये और प्रायः रेशम तथा सूत मिश्रित पदार्थों पर सुकुड़न पड़नेसे बचानेके निमित्त प्रयोग किये जाते हैं। अमोनिया (फित्रोइन) पर कोई रसायनिक प्रतिक्रिया नहीं करती वरन सरीसिन को पूर्णतः घुला देती है। क्षार कर्बनेत सैन्धक उदौषिद से कम हानिकारक होते हैं किन्तु प्रतिक्रिया अत्यन्त ही शिथिल होती है। टंक भी फित्रोइन को बिना ही हानिके घुला लेता है परन्तु साबुन-घोलके समान इसमें कच्चे रेशममेंसे गोंदीला पदार्थ निकालनेकी शक्ति नहीं होती। चूनेके जलसे रेशम फूल जाता है और अधिक भंजन शील तथा भद्दा पड़ जाता है। हरिन भी और आषदीकृत पदार्थोंकी भांति साधारण संपृक्त घोलमें रेशमको निःकृष्ट कर देता है। जब रेशम धात्वीय लवणोंके साथ जलमें डुबाया जाता है तो वह उनको, विशेषकर, लोहम्, स्फटम् सीसम्, ताम्रम् तथा वंगम्के लवणों को अधिशोषित करके उनके धातु अवक्षेप बना लेता है। यह अवक्षेप अन्तरीय तथा बहिः दोनों भागोंमें बन जाते हैं और अनघुल होनेके कारण धोये नहीं जा सकते। इसी प्रतिक्रिया पर रेशमकी भारण क्रिया (weighting and loading) निर्भर है।

उपर्युक्त विधिके अनुसार कृषित रेशमके अतिरिक्त अनेक अन्य प्रकारके भी रेशम होते हैं जो स्वतः ही पृथ्वी पर उगते हैं और कुछ कुछ व्यापारिक लाभके भी होते हैं। इनमेंसे सबसे अधिक प्रसिद्ध टसरी रेशम है। यह भारत वर्ष तथा चीनमें कृमी जीवोंसे जिनको एन्थोरिआ मिलिटा तथा एन्थोरिआ पर्नियाइ (Anthoroea Myllita and Arthoroea pernyi) कहते हैं उपलब्ध किया जाता है। इसका ताग मोटा और चपटा होता है और प्रत्येक ताग अनेक तगियोंके योगसे बना होता है और साधारण रेशमसे अधिक कठोर तथा खुरखुरा होता है। उसका रासायनिक संगठन भी कुछ भिन्न भिन्न होता है क्योंकि इसमें नोषजन तथा कर्बन कुछ कम और ओषजन अधिक होता है। अम्ल तथा क्षारोंका प्रभाव अधिक सहनकर सकता है और सो ही वर्ण नाशक रसोंका भी। उसके वर्ण नाशन तथा रंगनेमें अधिक क्लिष्टता पड़ती है और प्रायः यह ऐसे वस्त्रों की पृष्ठिमें प्रयोग किया जाता है जैसे कि मखमल,

द्वारा तथा प्रतुकरणित सीलोंकी खालें। इसके अनन्तर मूंगा रेशम जो एन्थोरिआ असामा (A. Assama) से और अर्क रेशम जोकि अटेकस (Attacus Ricini) से उपलब्ध किया जाता है, पाये जाते हैं। दोनों भारत वर्षीय पदार्थ हैं। यमन रेशम जापानके अटेकस यामा नाई (Attacus yamanai) से जापानसागरके चारों ओर उपलब्ध होता है। एक अनोखे प्रकारका रेशम सागर रेशम होता है जो कि भूमध्यसागरमें पैदा होने वाले घोंघोंसे निकाला जाता है। इसका तागभूरा और अत्यन्तही नर्म होता है। इसपर अम्लों तथा चारोंका भी रासायनिक प्रभाव अत्यन्त ही न्यून होता है।

अब पाठकगणोंकी सरलताके निमित्त तथा उनको यौगिक ज्ञान देनेके अर्थ कृमिक पिंडीवाले तथा कच्चे रेशमका रासायनिक संगठन एक सारिणी रूपमें निम्नांकित किया जाता है।

कृमिक पिंडी		कच्चा रेशम		
			श्वेत	पीतरेशम
जल	६८·२°/॰	फिब्रोइन	५४·०४°/॰	५३·३७°/॰
रेशम	१४·३°/॰	जिलाटीन	१६·०८°/॰	२०·६६°/॰
टूटन फूटन	·७°/॰	घी	२५·४७°/॰	२४·४३°/॰
क्राइसालिस	१६·८°/॰	मोम	१·११°/॰	१·३९°/॰
(chrysalis)		वर्ण पदार्थ	——	·०५°/॰
		गोंदीले तथा चार्विक पदार्थ	·३०°/॰	·१०°/॰

रेशमके विषयमें इतना अंकित करनेके बाद पशु तंतुओं में सम्मिलित अन्य पदार्थोंका भी कुछ हाल जानना उचितही होगा क्योंकि अन्तमें दोनोंका वर्णना शन वर्णवेचन इत्यादि इकट्ठे पढ़नेमें सरलता रहेगी। इनमेंसे ऊनही अधिक प्रसिद्ध है और यद्यपि रेशम ने अपनी प्राचीन प्रसिद्धता खोदी है और प्राकृतिकके स्थानमें पचास प्रतिशत से भी अधिक कृत्रिम रेशम प्रयोगमें आता है, ऊन ने अपनी प्रसिद्धता अत्यन्त ही जटिल रक्खी है। यह अभी लेशमात्रभी अप्राकृतिक पदार्थोंसे उपलब्ध नहीं होता है। इसके वस्त्र गरम भी अधिक होते हैं और अन्य वस्त्र गरम न होनेके कारण तमाम पृथ्वी पर इसका प्रयोग अधिक मात्रामें होता है और उसके उठ जानेकी सम्भावना प्रतीत नहीं होती।

साधारणतः तो ऊन शब्द केवल एडक (भेड़) के केशोंके लिए ही विशेष रूपमें प्रयोग किया जाता है किन्तु थोड़े दिनोंसे अनेक बकरों तथा और ऐसे पशुओं के केश जो लंबे तथा सुन्दर होते हैं, इसीमें सम्मिलित कर लिए गए हैं और वस्त्र बनानेके निमित्त प्रयोग किये जाते हैं, विशेष कर अलपका तथा काश्मीरी मोहेर के। असली ऊन केशोंसे अनेक भौतिक आकृतियों ही में भिन्न होती है। इसके ताग एठे गुंठेसे और अगणित नन्हे नन्हे सिकुड़नेसे झंपे रहते हैं। ऊनकी प्रकृति पर भेड़के भोजन, लालन पालन, तथा उसकी जाति का विशेष प्रभाव पड़ता है। भेड़के भोजनोत्पादनकी पृथ्वीकी विशेषता तथा उसकीजलवायुका भीइसपर बहुत प्रभाव पड़ता है। इन्हीं बातोंके

अनुसार तागे छोटे, लहरदार तथा अत्यन्त ही सूक्ष्म हो सकते हैं, अथवा लांबे खुरखुरे तथा सीधे भी हो सकते हैं। उनकी लम्बाई १ इंच से लेकर १० इंच तक भिन्न भिन्न होती है और कभी कभी तो काश्मीरी तथा मोहेर बकरोंमें १६ और २० इंच तक भी बढ़ जाती है। किसी एक जानवर की कटी हुई समस्त ऊन को एड़कोर्णा (Fleecse) कहते हैं और उसमें से भिन्न भिन्न प्रकार की ऊनें हाथसे पृथक् पृथक् कर ली जाती हैं। गर्दन तथा स्कंध पर की ऊन बड़ी ही लम्बी सूक्ष्म और देखनेमें सुन्दर होती है। बहुत लम्बी तथा सुन्दर ऊन रेशम की सी मुलायम तथा चमकदार मालूम होती है, यह 'कांति ऊन' कहलाती है। अंगोरा बकरोंसे उपलब्ध, तथा दक्षिणी अफ्रीकाके बकरोंसे प्राप्त लामा अलपका इत्यादि इसी प्रकारकी ऊनमें सम्मिलित हैं और बड़ी ही सूक्ष्म, मुलायम, और चमकदार होनेके कारण अधिक मूल्यवान् होती हैं। बहुधा भेड़ोंकी चमड़िया चूने अथवा सैन्धक गन्धितमें भिगोदी जाती हैं। कुछ समयमें ये ढीली पड़ जाती हैं और ऊन खींच कर निकाल ली जाती है। वह बड़ी ही निःकृष्ट होती है और 'खैंचित ऊन" कहलाती है। ऊन भी बड़ी ही जल प्रेमी होती है। अत्यन्त ही शुष्क जलवायुमें भी ८—१२ प्रतिशत, और वर्षा ऋतुमें तो ५० प्रतिशत तथा उससे भी अधिक जल अधिशोषण कर लेती है। साधारणतः उसमें १८—१५% जल होता है और जल की इसी मात्रा तक जल रखने की आज्ञा आधुनिक राजनीति की नियमावली भी देती है, और विशेष प्रकारकी प्रयोग शालाओंमें उसी विधिसे निकाली जाती है जो रेशमके विषयमें ऊपरांकित है। शुष्क करने पर तापक्रम १०५—११०°श से अधिक न होना चाहिए, क्योंकि वह हानिकारक होता है। १००°श पर ही ऊन किंचित मात्र द्रव हो जाती है और इस समय जिस स्वरूपमें परिणत कर दी जावे वही स्वरूप सदाके लिए स्थायी रह जावेगा।

ऊन का प्रत्येक ताग, जैसा कि ऊपरांकित किया गया है, अपने समस्त शरीर पर अगणित नन्हे नन्हे सिहुँनेसे कंपित रहता है और इनका झुकाव एक ही ओर होता है। बहुधा वह इस प्रकार प्रबंधित होते हैं जैसे कि खपैलमें उसके ठीकरे। उनका बहिःभाग प्रायः खुला रहता है। जब कुछ समानान्तर तागे एक दूसरे पर रगड़े जाते हैं तो यह सिहुने एक दूसरे में फँस जाते हैं। इस प्रकार फेल्टकी गद्दी बन जाती है। तागों का अन्तः भाग नन्हे नन्हे कोष्टों का बना होता है जो गिल्ली स्वरूप होतेहैं। किसी किसी प्रकार की ऊन में एक मध्य भाग भी होता है। इस भागके कोष्ट भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं और बहुत अनेक प्रकारके वर्णोंसे भरे होते हैं और ऊन भी इसी कारण वर्णमय प्रतीत होती है। इस प्रकार की ऊनें बहुधा कठोर तथा अधिक भंजनशील होती हैं और अपने गुणोंमें अधिकतार केशोंके समान होती है। मूल्यवान् ऊनोंमें कोई ऐसा भाग नहीं होता है। अन्तः भाग तथा उसके कोष्टोंमें वर्णाकर्षक शक्ति विशेष प्रकारकी होती है। इसके विपरीत सिहुनोंमें लेशमात्र भी नहीं होती। वर्ण कुंडीमें जो अनेक अम्ल तथा क्षार डाले जाते हैं उनका यही प्रभाव होता है कि उनसे सिहुँने उठ जाते हैं और वर्ण अन्तः भाग तक पहुँचने में समर्थ होता है। निर्जीव तथा निःकृष्ट ताग इसी कारण नहीं रँगे जा सकते कि उनमें एक परत इन्हीं सिहुनों का होता है जो किसी प्रकार भी नहीं हिलते और वर्णको अन्तः भाग तक नहीं पहुँचने देते। उनकी केवल सुन्दर फेल्ट ही बन सकती है। उनकी कांति भी बड़ी ही मलीन होती है।

ऊनका रासायनिक व्यवसायतथा उसका रासायनिक संगठन वैज्ञानिकोंको भली भांति परिचित नहीं है। उसमें अधिकतर केरेटिन तो अवश्य होता है यह पदार्थ एक कठोर प्रत्यमिन (Hard Proteins) में से है और सींग खुर तथा नाखून इत्यादि का बहु भाग बनाता है, परन्तु इसका भी व्यवसाय सदा एक सा ही नहीं रहता भिन्न भिन्न प्रकारकी ऊनोंमें यह भी भिन्न भिन्न होता है प्रायः उसका व्यवसाय इस प्रकार है कर्बन ४६·२५%, नोषजन १५·८६%, उद्जन ७·५६%, ओषजन २३·६६%, गन्धक ३·६६%,

इसमें सबसे अधिक गौरवशाली पदार्थ गन्धक ही है। इस कारण से इसके रंगनेमें इतनी कठिनता होती है। ऊनकी राख उसके भारसे १% से भी न्यून ही होनी चाहिए और जब १२०° श के तापक्रम तक अधिक वाष्पभारमें तपाई जाती है तो अति भंजनशील हो जाती है, संपृक्त अम्लोंको ऊन पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं होती, कुछ अधिशोषन अवश्य हो जाते हैं और सरलतासे धोकर नहीं निकाले जा सकते। ऊन और कपासके मिश्रित वस्त्र केवल संपृक्त गन्धकाम्ल तथा उदहरिकाम्लसे प्रतिक्रिया करके ११०° श पर शुष्क करनेसे शुद्ध किए जा सकते हैं। कपास तो जल जाती है और फिर झाड़नेपर गर्द की भांति झड़ जावेगी और शुद्ध ऊन अपरिवर्त्तित रूपमें रह जावेगी। यही प्रतिक्रिया वस्त्रोंपर शुष्क उदजन हरिद् वायुकी धारा प्रवाहित करनेसे भी हो जावेगी। क्षारोंका प्रभाव ऊनपर बड़ा बलिष्ट होता है। विशेषकर कटुक क्षार तथा चूना तो महा हानिकारक होता है। क्षार कर्बनेत बहुतही कम हानिकारक होते हैं और उनके हलके घोल स्वच्छ-करण क्रियामें प्रयोग किए जाते हैं। अमोनियाी तथा अमोनियम कर्बनेतका प्रभाव न्यूनतम हानिकारक होता है और अतः ये स्वच्छकरणार्थ महा उपयोगी हैं इस विधेमें, साबुन, टंक तथा सैन्धक स्फुरेतभी अधिक प्रयोग किया जाता है। संपृक्त दशामें औषदीकृत पदार्थ तागोंको नर्म कर देते हैं। इसी कारण से वर्णवेधनमें पांशुज द्विरागेतका अधिक प्रयोग होता है परन्तु मात्रा अधिक न होनी पावे। शुष्क हरिन्‌का कुछ प्रभाव नहीं होता वरन् जलवाष्पसे मिश्रित हरिन् ऊनको नर्म कर देती है और इसकी थोड़ीसी मात्रा भी ऊनमें अनेक वर्णोंमें मिश्रणकी शक्ति पैदाकर देती है। है। उपहरसाम्लसे ऊन पीली पड़ जाती है इस कारण वर्ण वनाशन चूर्ण ऊनके वर्ण विनाशनार्थ प्रयोग नहीं किया जा सकता। जब ऊन अनेक धात्वीय लवणोंके साथ उबाली जाती है तो वह अधिकोंको अधिशोषण कर लेती है और रंगनेसे प्रथम ऊनमें यही क्रिया की जाती है। रासायनिक प्रतिक्रिया तो पूर्णतः स्पष्ट नहीं है परन्तु यह तो स्पष्ट ही है ऊनके किसी व्यवसायिक भाग और धात्वीय लवणका योग अवश्य होता है। ऊनमें वर्ण स्थापनकी अधिक शक्ति होती है और उसके वर्ण सूत तथा रेशमसे अधिक स्थाई होते हैं।

अब ऊनके स्वच्छकरण विधिकी बात आई। इसमें मलमूत्र इत्यादि उसके भारके ३०% से ७५% तक होते हैं और बहुधा ऊनमें चर्बी, पसीना तथा गर्द के मिश्रण होते हैं। चर्बी तो अधिकतर चार्विक तथा मोम पदार्थोंका मिश्रण होती है जिससे अनेक ठोस मद्य, जैतूनिकाम्ल तथा चर्विकाम्लके लवण होते हैं। वह ज्वलक, वानजावीन तथा कर्बनद्विगन्धिदमें घुलनशील होते हैं। यह क्षारोंसे साबुनीकृत तो नहीं होते किन्तु साबुनके घोलमें उपघोल स्वरूप होकर दूर अवश्य किए जा सकते हैं। पसीना जलमें घुलनशील है और उसमें बहुधा जैतूनिकाम्ल, चर्विकाम्ल सिरकाम्ल इत्यादिके पांशुज लवण, गन्धेत, हरिद्, स्फुरेत तथा अनेक नोषजनिक पदार्थ मिले रहते हैं। स्वच्छकरणकी साधारण विधिमें तो किसी सस्ते साबुन का प्रयोग किया जाता है जिसमें सैन्धक कर्बनेतभी मिला रहता है। एक स्वच्छकारक यंत्रमें बहुधा तीन बर्त्तन होते हैं और यह तर ऊपर लगे रहते हैं। जल का प्रवाह इस प्रकार प्रबन्धित होता है कि जल तो ऊपरसे नीचेके बर्त्तनमें जाता है और ऊन नीचेसे ऊपरकी ओर जाती है और अपने मार्गमें बड़े बड़े बेलनोंमें होकर जाती है जिससे स्वयम् ही निचुड़भी जाती है यह साबुनके घोलसे भरे रहते हैं और तापक्रम यद्यपि ३५ श से ४०° श तक उचित रहता है बहुधा इससे अधिकही रक्खा जाता है। पहिले ऊन सबसे नीचेके बर्त्तनमें जिसमें मलसे भरा हुआ जल होता है धुलती है। यद्यपि जल मैला होता है तथापि ऊनमें अधिक मैल होनेके कारण वह कुछ स्वच्छ अवश्य हो जाती है। इसी प्रकार वह दूसरे बर्त्तनमें और अन्तमें तीसरे बर्त्तनमें जहां बहुतही स्वच्छ जल रहता है धुलकर पूर्णतः स्वच्छ हो जाती है। ऊनकी चर्बी तथा पसीनेके चार्विक पदार्थोंका तो साबुन बनकर घुल

जाता है दूसरे पदार्थ भी उपघोलमें आ जाते हैं और गर्द नीचे बैठ जाती हैं। यह कीचड़ निकाल कर या तो शुष्क करके जलाकर इसमेंसे पांशुनम् उपलब्ध कर लिया जाता है जो १% से ८% तक विद्यमान होता है अथवा गर्द बैठ जानेके बाद स्वच्छ घोलमें गन्धकाम्ल डालकर चार्विक अम्लोंको उपलब्ध कर लेते हैं और उनसे कलों तथा चमड़े किर्मिति चिकनाने वाले तैल बनाते हैं। बहुधा ऊनकी चर्बी तथा पसीना पृथक् पृथक भी उपलब्ध किया जाता है। इसके निमित्त चर्बी इत्यादितो प्रथमही उड़नशील (Volatile) द्रव्योंमें घोल कर निकाल लिए जाते हैं और फिर पसीना पानीमें धो लिया जाता है। स्वच्छ ऊन अधिक कठोर और भजनशील होती है और तैल डालकर चिकनानेकी आवश्यकता होती है। इस अर्थ जैतूनका तैल अधिक उपयोगी होता है किन्तु अनेकानेक वस्तुएं आजकल प्रयोगमें आती हैं परन्तु रंगनेसे प्रथम यह पदार्थ स्वच्छ करणविधिसे निकालने पड़ते हैं।

बहुधा ऊनमें अनेक कूड़ा तथा वनस्पति (Vegetable) तंतुभी मिले होते हैं। इससे शुद्ध करनेके निमित्त वह स्फुरहरिदके घोलमें २५-३० मिनट भिगोकर निचोड़ कर शीघ्रही एक गर्म स्थानमें स्थापितकी जाती है। विभाजनसे जो उदजनहरिद निकलता है वह वनस्पति पदार्थोंको राखकर डालता है और ऊनके कूटे जाने पर उसमेंसे झड़ जाता है। ऊनको सूत तथा अन्य ऐसे पदार्थसे शुद्ध करनेके निमित्त यही क्रिया कम्बल इत्यादि मिश्रण पदार्थों पर भी की जाती है और उनसे उपलब्ध ऊन निःकृष्ट नवीन ऊन मिश्रणसे सस्ते पदार्थ बनानेमें प्रयोगकी जाती है।

इस प्रकारसे ऊन तथा रेशम प्राकृतिक पदार्थों से उपलब्ध होकर स्वच्छ करके बिननेके निमित्त तैयार किये जाते हैं। किन्तु सब प्राकृतिक पदार्थों में न्यूनान्यून वर्ण अवश्य विद्यमान होता है जो कितना भी न्यून होने पर भी वह श्वेत वर्ण वस्त्रमें नहीं आने देता जिससे मनुष्यको विशेष आकर्षण है। इस कारण वह रंग वर्ण विनाशन करकेही वस्त्रकी पूरी स्वच्छता होती है। यह क्रिया रंगनेके साथ साथ भली भाँति अंकित की जावेगी।

———

चमक (Fluorescence) फ्लोरेसन्स्

[ले० श्री० विष्णु गणेश नामजोशी बी० एस-सी०]

जब किसी पदार्थ पर प्रकाशके किरण पड़ते हैं तब उनकी तीन अवस्थाएँ हो सकती हैं: (१) कुछ किरण परावर्तित होते हैं, (२) कुछ किरण ताप उत्पन्न करते हैं, और (३) कुछ किरण पदार्थ के अन्दर जाकर प्रकाश तरंगोंके रूपमें दूसरी ओरसे निकलते हैं। स्टोक्स (Stokes) का सिद्धान्त (सन् १८५२) कहता है कि इन तरंगोंका समय (Period) शोषित हुई तरंगोंके समयसे ज्यादा होता है। परंतु ऐसा सिद्ध किया गया है कि हरएक विषयमें यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। उदाहरण यह है कि पराकासनी (Ultra-violet) किरण कुनिन गधेतको नीले रंगकी चमक देती है, जिसकी लहर लंबाई शोषित (absorbed) किरणसे अधिक होती है। परन्तु फ्लोरेसीन (fluorescein), इओसीन (eosine) इत्यादिके घोल छोटी लहर लम्बाईके किरण देते हैं। और वायुरूप नैलिन् (iodine का आदान (absorption) और चमक रश्मि-चित्र (spectrum) एक सा होता है।

यदि यह परिणाम प्रकाशके उद्गमस्थानको दूर करने पर बंद हो जाय तो इस चमत्कारको चमक (फ्लोरेसन्स्) कहते हैं और यदि यह परिणाम प्रकाशके उद्गमस्थानको दूर करनेपरभी कुछ देर तक बना रहे तो इसको दमक (phosphorescence) कहते हैं। यह दोनों आपसमें मिल जा सकते हैं और

बक्वेरेल (Becquerel) ने अपने दमक सूचक यंत्र (phosphoroscope) द्वारा बतलाया है कि उनको अलग अलग नहीं कर सकते हैं।

ठोस, द्रव और वायव्य रूप इन तीनों प्रकार के पदार्थोंमें चमक का चमत्कार दृश्यमान होता है। फ्लोरस्पार और पिनाकम् लवण प्रकाशके प्रभावसे स्वयं प्रकाशित (self-luminous) होते हैं। पैराफिन तैल और कुनोलीन का आम्ल घोल नीले रंग का प्रकाश देते हैं। फ्लोरोसिन का घोल हरा प्रकाश देता है और इओसिन और पर्ण हरिन् (Chlorophyl) लालप्रकाश देते हैं गैस रूपमें नैलिन, सैन्धकम्, अंगरिन, नील इत्यादि पदार्थ भी चमकदार होते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि चमकका होना पदार्थ के किसी विशेष भौतिक रूप पर निर्भर नहीं है और यह चमक किसी भी रंगकी हो सकती है यह ठीक है कि सामान्यतः चमक का दान-रश्मिचित्र रश्मि-चित्रके दृश्य-विभाग में ही होता है।

यह दान (emission) प्रकाश पहले पहल रंगदार ही पाया गया था परन्तु स्टाकने बहुतसे बानजाविक उदाहरण द्वारा बतलाया है कि यह प्रकाश पराकासनी विभागमें भी दृश्यमान हो सकता है और सम्भव है यह परालाल विभागमें भी दिखाई पड़ेगा। किसी भी पदार्थ में चमक उत्पन्न करनेके लिये एक निश्चत लहर लम्बाई की आवश्यकता होती है और इस चमक द्वारा निकली हुई दान किरणों की लहर-लम्बाई की सीमा भी निश्चित ही होती है। दान किरणोंकी लहर लम्बाई पूर्व किरणों की लहर लम्बाई की अपेक्षा कम होती है। जितनी किरणें चमक उत्पन्न करनेवाले घोलपर पड़ती हैं उनमेंसे कुछ किरणोंका ही शोषण होता है, सबका नहीं। कुनिनके घोल द्वारा यह बात स्पष्ट है। कुनिनके घोलके पृष्ठ पर प्रकाशकी किरण डालकर देखनेसे पता चलेगा कि सिर्फ घोलके पृष्ठ भागपर ही नीला रंग है। इस जगह पर यह चमक उत्पन्न करनेवाली लहरें प्रकाशमेंसे खींच ली जाती है क्योंकि शेष किरणे फिर इसी घोलके दूसरे तलपर डालनेसे चमक उत्पन्न नहीं कर सकती हैं। परन्तु यदि इसके बदलेमें इओसिनका घोल रखा जावे तो हरी चमक दिखाई देगी। इसका कारण यह है कि हरी चमक उत्पन्न करनेवाली किरण पहिले घोलमें शोषित नहीं होती हैं।

घोलकके गुणोंका भी चमक पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। इसके प्रभावसे चमक बढ़ सकती है, कम हो सकती है और चाहें तो नष्टभी हो सकती हैं। फ्लोरोसिन क्षार घोलमें बहुत तेजीसे चमकती है, दारील मद्यके घोल में कम चमकती है. पिरीदीनमें इससेभी कम सिर कोनमें बिलकुलही नहीं चमकती।

पृ. अमिनो दालचिनीक सम्मेल् लिम्पोइनके घोलमें कासनी रंगको चमक देती है, बानजावीनके घोलमें नीली और उत्तलील मद्यमें हरी चमक देता है। घोलके हलके या गाढ़े पनसे भी चमककी तेजी कम या अधिक हो सकती है॥ घोलक (solvent) के इस विचित्र प्रभावका अभी तक पूरा पूरा समाधान नहीं हुआ है।

ऐसा कहा गया है कि प्रकाशके शोषणका एक रीतिसे—जिसे अनुनाद (Resonance) के समान कहसकते हैं—(valency electron) सयोगशक्तिक विद्युत् कणके स्पंदनसे (vibrations,) सम्बन्ध है एक विशेष लहर लम्बाईकी किरण चमक उत्पन्न करनेवाले पदार्थों द्वारा अपनेसे सर्वथा भिन्न लहर लम्बाई की किरणोंको किस प्रकार उत्पन्न करती हैं, इसका उत्तर देना कठिन है। इसके अतिरिक्त दमक (phosphorescence) चमकका विशिष्ठ रूपही है इस बातको मानते हुए यह असम्भव ही है कि चमक-की तुलना अनुनाद (resonance) से की जाय क्योंकि दमकमें विद्युत् कणोंका स्पन्दन प्रकाशके उगमस्थानके दूर करनेपरभी कुछ देर तक, कभी कभी कुछ घंटे तकभी बना रहता हैं। यह अधिक उचित प्रतीत होता है, जैसा कि वीडेमन (Wiedemann) का विचार है कि शोषित किरणके प्रभावसे अणुके

आन्तरिक संगठनमें ही कुछ अस्थायी रासायनिक परिवर्त्तन हो जाता है।

विद्युत्कण-वादसे यह बतलाया जाता है कि शोषित किरणसे जो जोरदार लहरें उत्पन्न होती हैं वे एक प्रकारके परमाणुमेंसे एक विद्युत् कण निकाल कर दूसरे परमाणुको दे सकती हैं। इससे जो नयी रचना (arrangement) बनती है, वह पहलीकी अपेक्षा स्थायी (stable) हो सकती है और फिर किसी दूसरे पदार्थमें परिणत होनेलगती है। अथवा यदि यह अस्थायी हुई हो तो पूर्वावस्थामें लौटने का यत्न करती है।

इस परिवर्तनके कारण ही विशेष प्रकाश लहरें उत्पन्न होती हैं। यदि यह परिवर्त्तन अति शीघ्र हो तो चमकका दृश्य दिखाई पड़ेगा और यदि धीरे हो तो दमक-दृश्य दिखाई पड़ेगा। यह कल्पना कर सकते हैं कि तापक्रम बढ़नेसे यह परिवर्तन और भी अधिक शीघ्र होगा, और ऐसे बहुतसे उदाहरण मिलते हैं जिससे तापक्रम बढ़ानेसे दमक पदार्थों की दमक बढ़ती है जैसे कि खटिक गन्धितमें होती है; और ऐसा भी देखा गया है कि बहुतसे यौगिकोंमें—खिरको दिव्योन, बानजोदिव्योन, द्विदिव्यील इत्यादि - साधारण तापक्रम पर चमक नहीं दिखाई देती। लेकिन उनका तापक्रम द्रवीभूत वायुके तापक्रम तक (— ८०°) पहुँचाया जाय तो वे चमकदार प्रतीत होते हैं। यह संभव है कि तापक्रमके अन्तरके साथ साथ यह दृश्य ताप ग्रहण या ताप विसर्जन (exotherm) और (endothermic) परिवर्तन पर निर्भर हो।

चमक और संगठन (Structure) का संबंध

अब हमें यह देखना है कि चमक और चमकीले पदार्थोंके संगठनमें कुछ संबन्ध है या नहीं। विशिष्ठ शोषण (absorption) और चमकके स्वभावकी साम्यतासे ऐसा संबन्ध होना बहुत संभव प्रतीत होता है। और है भी ऐसाही, इसमें कुछ संदेह नहीं।

शोषण समूहके समान चमक भी वर्ण चित्र समूह देता है। यह बात बानजाविक पदार्थोंमें विशेष प्रतीत होती है। इससे स्पष्ट है कि चमक और संगठन में अवश्य कुछ संबन्ध है।

ऐसे पदार्थोंकी सूची काफमन् (Kauffmann) ने दी है। इसमें एक असामान्य (extraordinary) प्रकारके यौगिक हैं। इसमें समचक्री एवं भिन्नचक्री यौगिकोंसे बने हुए मिश्रित यौगिक हैं (homo और hetr -cyclic complexes) जिनमें कुछ निश्चित विशिष्ठ समूह होते हैं।

इसके बारेमें बहुतसे सिद्धान्त, स्थिति वाद (statical) और गतिवाद (dynamical) केअनुसार प्रस्तुत किये गये हैं। इनमेंसे कोईभी सिद्धान्त पूर्णत: विश्वासनीय नहीं माना जा सकता है तो भी इनसे उक्त समस्या पर समुचित प्रकाश पड़ता है।

आर. मायर (R. meyer) का पक्ष

चमक का संगठन से सम्बन्ध ज्ञात करने का प्रयत्न सबसे पहिले लीबरमन (Liebermann) ने किया उसके बाद यह विषय आर. मायर (R. Meyer) ने अपने हाथ में लिया। उनका कहना है कि चमकदार पदार्थों के अणुमें कुछ विशिष्ट समूह होते हैं। इसीसे चमक का चमत्कार दिखाई पड़ता है। इन समूहोंको चमकसूचक (fluorophore) कहते हैं निम्न प्रकारके चक्रों की उपस्थितिमें पदार्थमें चमक उत्पन्न होती हैं—
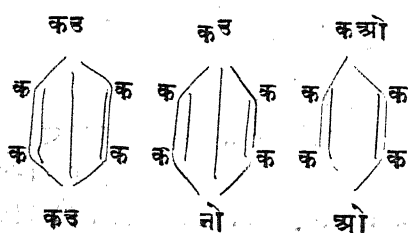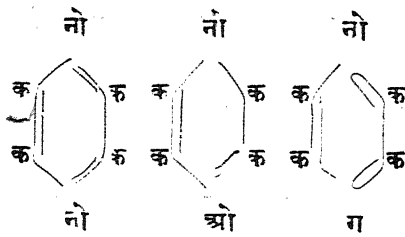
यह समूह अंगारिन (acridine) पाइरोन (pyrones) अजीविन (azines) ओषाजीविन (oxazines) और गन्धकाजीविन (thiazines) में होते हैं। सिर्फ चमक-सूचक का अस्तित्व ही चमक देनेके लिये काफी नहीं है। उसके साथ कुछ भारी परमाणुओंका होना भी जरूरी है। इनकी रचना कैसी होती है यह नीचे दिये उदाहरणों से मालूम होगा।

फ्लोरिसिन

फ्लोरेन

दिव्यील थलीन
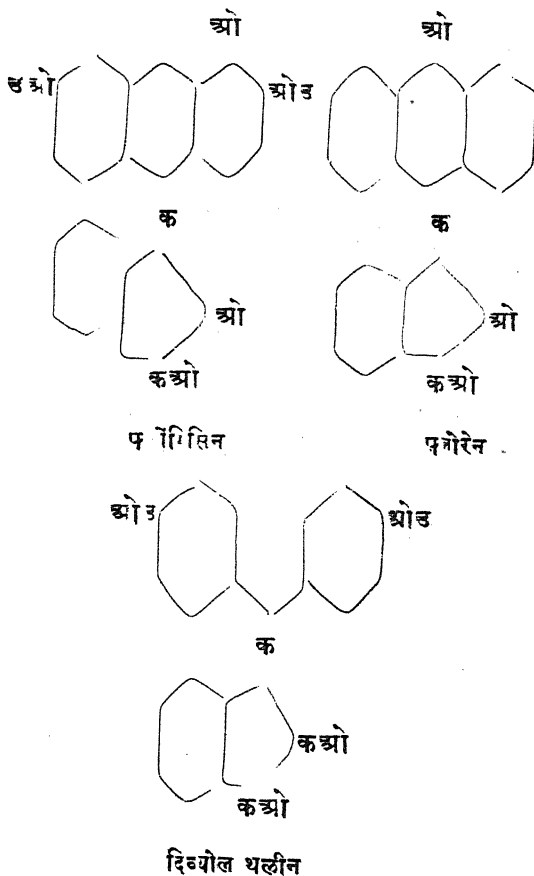
तीव्र गन्धकाम्लमें द्विदिव्यील पायरोन (pyronedi phenyl) का घोल और नफथलिक अनाद्रिद भी इसी कारणसे चमक देते हैं।

द्वि दिव्यील पायरोन

नफ्थलिक अनाद्रिद
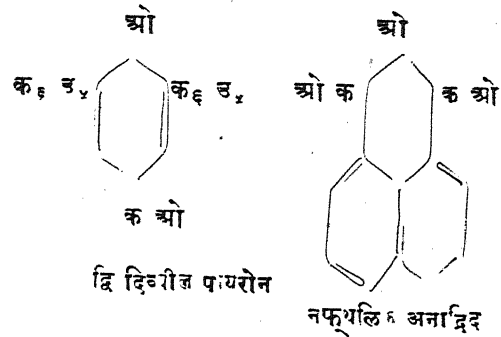
वीट (witt) के रंगके रंगसूचक (क्रोमोफोर) वादसे इस बातकी साम्यता दिखाई देती है। रंग-सूचकके समान चमक सूचक (fluorophore) भी अकेले इन चमत्कारके लिये उत्तरदायी नहीं होते हैं। सिर्फ दूसरे समूहकी सहायतासेही ये चमक उत्पन्न कर सकते हैं।

चमक सूचकके साथ आनेवाले केन्द्रोंमेंके स्थापित समूहोंके गुण धर्म (nature) और उनके स्थान पर चमक बहुतकुछ निर्भर है। इसी कारण यह वाद कुछ जटिल हो गया है। फ्लोरेनकी चमक उसमें के दो बानजावीन केन्द्रोंके पायरोन-ओषजनके मध्य-स्थानमें (meta position) दो उदोष समूह डालनेसे बहुत कम हो जाती है, और पर-स्थानमें (paraposition) डालनेसे तो बिलकुलही नष्ट हो जाती है। हरिन् परमाणु, नोषो और दारील समूहभी मध्य और पर-स्थानमें चमक कम कर देते हैं या बिलकुल नष्ट कर देते हैं। इसके अलावा यह भी है कि चमक के लिये चमक-सूचकका होना जरूरी (essential) नहीं। द्वि दिव्यीलमें कम चमक है, पर-द्वि दिव्यील बानजावीनमें चमक है। इस मत में कई बातोंकी कमी है।

(क्रमशः)

समालोचना

ऋग्वेदालोचन—ले० श्री० पं० नरदेवशास्त्री, वेद-तीर्थ, प्रकाशक सत्यव्रत शर्मा, शान्ति प्रेस, आगरा। पृ० स० ३०८+२६, मूल्य ११।)। छपाई, कागज उत्तम।

प्रस्तुत पुस्तकमें शास्त्रीजी ने ऋग्वेदके विषयमें अपने विचार उपस्थित किये हैं। प्रारम्भमें वेदोंके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न सिद्धान्तों एवं पक्षोंका विवेचन किया गया है। आप अपने श्रद्धेय गुरु सत्यव्रत सामश्रमीजीकी पद्धतिका अवलम्बन करते हुए वेदोंको केवल भारतखण्डके लिये ही उपयुक्त एवं पौरुषेय मानते प्रतीत होते हैं। ऐतिहासिक तथा याज्ञिक पक्ष के भी आप अनुगामी हैं। ऋग्वेदालोचनमें आदि मूल आर्य्यों के निवासस्थानके विषयमें भी आपने पाश्चात्य मत, तिलक मत तथा बाबू अविनाशचन्द्र दासके पक्ष का उल्लेख किया है। इस सम्बन्धमें वैदिक उषा, इन्द्रवृत्रासुर युद्ध, आदिके चित्र तिलकजी के ग्रन्थोंसे उद्धृत कर दिये हैं। पुनश्च सामाश्रमी पक्ष को मानते हुये 'हिम पृष्ठके दक्षिण भागमें स्थित सुवास्तुप्रदेश' को ही शास्त्री जी आदि आर्य्यावास मानते हैं। अस्तु, यह विवादास्पद विषय है और इसका समाधान भी कभी नहीं होने का है।

शाखाओंके विषयमें भी इस पुस्तकमें विवेचनीय वार्त्ताओंका समावेश किया गया है। बालखिल्य ऋचाओंका सम्बन्ध मूल ऋग्वेदसे है या नहीं इसके सम्बन्धमें ग्रन्थकर्त्ता ने अपनी कोई सम्मति नहीं दी। हाँ, यदि सामाश्रमीजी की सम्मतिको शास्त्रीजी की सम्मति माना जाय तो बालखिल्य और ऋग्वेद दोनोंको पृथक् ही समझना चाहिये। यज्ञोंका वर्णन इस पुस्तककी उपयोगी विशेषता है। ऋग्वेद कालीन पशु, पक्षी, वृक्षादिका वर्णन मैकडानल्डके संस्कृत साहित्यके आधार पर लिखा गया है। अच्छा होता यदि आर्य्योंके सांघिक धर्म लिखते समय शास्त्री जी दास बाबूके 'ऋग्वैदिक कल्चर' ग्रन्थको भी देख लेते।

पुस्तकके दूसरे प्रकाशमें कुछ ऋग्वेद-सूक्तोंका सार्थ संग्रह है। अर्थ एवं संकलन अति सामान्य हैं। यदि मैक्समूलर द्वारा सम्पादित ऋग्वेद संकलनके समान यह कार्य्य किया जाता तो अधिक लाभदायक होता। इसमें सन्देह नहीं कि ऋग्वेदालोचन ग्रन्थके लिखनेमें बड़ा परिश्रम किया गया है पर इस बातका अवश्य खेद है कि लेखकने पाश्चात्य आचार्य्योंके ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं किया है। मैकडानल्डका 'हिस्टरी आफ संस्कृत लिटरेचर' ग्रन्थ अब बहुत पुराना हो गया है और पाश्चात्य साहित्यमें पाश्चात्य आचार्य्यों की दृष्टिमें भी अब यह अधिक मान्य नहीं समझा जाता है इसके लिये पृथक् परिशिष्ट लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। लेखकको पाश्चात्य मतका केवल सैकण्ड हैण्ड उड़ता हुआ ज्ञान है।

यह होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता है कि पुस्तक उपयोगी नहीं है। हिन्दीमें अभी इस प्रकारकी पुस्तक हैं ही नहीं अतः शास्त्रीजी का श्रम सर्वथा अभिनन्दनीय है। पुस्तककी भाषामें कहीं कहीं पंडिताऊपन अवश्य है जैसे 'तो' के स्थान पर 'तौ' लिखना इत्यादि। आशा है कि यह दोष द्वितीय सस्करणमें दूर कर दिया जावेगा। हम शास्त्रीजी को उनके ऋग्वेदलोचनके लिये बधाई देते हैं।

सत्यप्रकाश

संगीत और विज्ञान

(ले० श्री० सदानन्द जोशी)

ह लेख वैज्ञानिकोंसे संगीतकी उन्नतिमें भाग लेनेका अनुरोध करनेके उद्देश्य से लिखा जाता है। अधिकांश पाठक आरम्भही में यह कहेंगे कि भला संगीत और विज्ञानका क्या सम्बन्ध हो सकता है ? संगीतके पक्षमें अधिकसे अधिक यही कहा जा सकता है कि यह मनोरञ्जनका एक अच्छा साधन है। आशा है कि इस लेख मालाको आद्योपांत पढ़कर उनकी यह शङ्का निवृत्त हो जायगी। विषय बहुत गम्भीर और विस्तीर्ण है। इसलिए यहां दिग्दर्शन मात्र किया जायगा। लेखमें यह दिखलानेका यत्न किया जायगा कि मनुष्यके जीवन तथा समाजके भिन्न भिन्न भागों में संगीतका कितना प्रबल प्रभाव पड़ता है और वैज्ञानिक लोग इस प्रभावको किस प्रकार लाभदायक बना सकते हैं। पहले हम धर्मको लेंगे जो भारतवासियोंके लिए सर्वोपरि है।

धर्म और संगीत

धर्म और संगीतका प्राचीन कालमें घनिष्ट सम्बन्ध था और अब भी कुछ कुछ विद्यमान है। याज्ञवल्क्यने तो संगीतको मोक्ष तकका सरल उपाय बतलाया है और कहा है कि यदि संगीतज्ञ किसी कारण मोक्ष न प्राप्त कर सके तब भी वह रुद्रका अनुचर होकर उसीके साथ सुख भोग करता है* यह वाक्य किसी संगीत ग्रन्थकार का नहीं, किन्तु एक योगिराजका है और यति प्रकरणमें कहा गया है। यह वाक्य अतिशयोक्ति सा जान पड़ता है किन्तु टीकाकारने इसको भली भांति समझा दिया है। टीकाका तात्पर्य यह है कि संगीतज्ञ को गायन और वादनके समय चित्तको इस बातके लिए एकाग्र करना पड़ता है कि कहीं ताल और स्वरमें भूल न हो जाय। चित्तकी एकाग्रता सिद्ध हो गई तो योग सिद्ध हो गया क्योंकि योग शास्त्रमें लिखा है "योगश्चित्त वृत्तिनिरोधः"। भारतवर्षही में नहीं किन्तु पाश्चात्य देशों में भी संगीतको आध्यात्मिक उन्नतिके साधनोंमें विशेष महत्व दिया गया है। प्लेटो (Plato) ने संगीतको आत्मा और व्यायामको शरीरकी उन्नतिके लिए आवश्यक बतलाया है** यह सभी को विदित है कि भगवान नारदसे लेकर आधुनिक कालके भक्त शिरोमणि चैतन्य, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, रामकृष्ण परमहंस प्रभृति संगीतके बड़े प्रेमी और इस विद्यामें बड़े प्रवीण थे। संगीतके द्वारा चित्तकी एकाग्रताका साधन होना यह मनोविज्ञानका एक विचारणीय और अनुसंधेय विषय है।

* वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति।
गीतज्ञो यदि योगेन न प्राप्नोति परमं पदम्।
रुद्रस्यानुचरोभूत्वा तेनैव सह मोदते॥

शिक्षा और संगीत

पाश्चात्य देशोंमे शिक्षा विभाग संगीतके प्रचारमें विशेष रूपसे सहायता दिया करते हैं क्योंकि अधिकारी वर्गने अनुभव किया है कि संगीतके द्वारा शिक्षणमें बहुत सहायता मिलती है। इसीलिए कई विश्वविद्यालयोंमें संगीतकी शिक्षाका प्रबन्ध करनेके लिए शिक्षकोंकी विशेष समितियां बनाई गई हैं और विद्यार्थियोंको बैचलर, मास्टर और डाक्टर आफ म्यूजिककी उपाधियां दी जाती हैं। कुछ समय हुआ इङ्गलैण्डकी शिक्षा समिति (Board of Education) ने एक कमिटी इस विषयपर विचार करनेके लिए नियुक्तकी थी कि संगीतके द्वारा शिक्षाका प्रचार किस प्रकार किया जा सकता है। कमिटीने बहुत कुछ अनुसन्धानके उपरान्त एक रिपोर्ट लिखी। उसने यह निर्णय किया कि "यदि संगीत ठीक प्रकार-

** Music for the soul and gymnastics for the body.

से सिखाया जाय तो वह शिक्षाके लिए अत्यन्त लाभदायक हो सकता है। साधारण शिक्षाक्रममें भाषा और साहित्यको रखनेके पक्षमें जितनी युक्तियां काममें लाई जा सकती हैं उतनी ही प्रबलताके साथ संगीतके विषयमें भी काममें लाई जा सकती हैं"*

इस वाक्यमें "ठीक प्रकारसे" (rightly undertaken) ये शब्द बड़े महत्वके हैं। संगीत किस प्रकारका और किस रीतिसे सिखाया जाय, इसका निर्णय हमारे स्कूल कालेजोंके वे ही अध्यापक कर सकते हैं जो शिक्षा विज्ञानके साथ साथ संगीत का यथेष्ट ज्ञान रखते हों किन्तु ऐसे शिक्षक विरले ही मिलेंगे। ऐसे शिक्षक तभी मिलेंगे जब स्कूल कालेजों में और ट्रेनिंग कालेजोंमें संगीतकी शिक्षा दी जाय। संगीतमें यथेष्ट सुधार तभी संभव हो सकता है जब हमारे अध्यापक और मनोविज्ञानके विशेषज्ञ स्वयं संगीत सीखकर उसकी उन्नति की ओर ध्यान देंगे।

आयुर्वेद और संगीत

प्राचीन संगीत शास्त्रमें इस विषय पर बहुत कुछ लिखा गया है कि भिन्न भिन्न स्वरोंका शरीरके भिन्न भिन्न अवयवों पर क्या प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ भरतने लिखा है कि प्रातःकालमें रिषभ और पंचम का प्रयोग न करना चाहिए क्योंकि इस कालमें इनके अधिक और निरन्तर प्रयोगसे मृत्युतक हो सकती है। प्रातःकालमें पंचमके प्रयोगसे दंतविकार उत्पन्न हो जाते हैं।*

वर्त्तमान कालमें जो संगीतके सर्वश्रेष्ठ आचार्य हैं उनका भी कहना है कि उनके स्वर उतने शुद्ध नहीं हैं जितना कि चाहिए। इस पर भी अनेक संगीतके प्रेमियों का अनुभव है कि भिन्न भिन्न राग रागिनियों से शारीरिक क्रियाओं तथा मानसिक भावोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके प्रभाव पड़ते हैं। उदाहरणार्थ, किसी रागसे हृदय की गति तीव्र होती हुई जान पड़ती है और किसीसे मन्द यदि आयुर्वेद और संगीत शास्त्रके ज्ञानका संयोग हो तो प्रत्यक्ष है कि संगीतके द्वारा अनेक रोगोंके निवारणकी विधि निकल आवे।

(क्रमशः)

* The study of music, rightly undertaken, can be of the greatest educational value. All the arguments which can be used for the inclusion of language and literature in our ordinary scheme of education may be used with equal force in the case of music.

* प्रभ ते सुरतो नित्यः ऋषभः पंचमोपि च,
जनयेत् प्रयन ह्युषा पञ्चत्वं पंचमोऽपि च।
पंचमस्य विशेषोऽयं कथितः पूर्व सूरिभिः
प्रगे प्रगीतो जन येद्दन्तस्य विपर्ययम्।

ताऊन

इटासाटो और यर्सिन ने १८६४ में हाँग-काँग के आक्रमण-संचारमें ताऊनकी छड़को साथ साथ निकाला। उन्होंने इस छड़को ताऊनके बहुतसे रागियों से निकालकर दर्शाया और शुद्ध कृषि का अन्तःक्षेपण करके रोगशील प्राणियोंमें रोग उत्पन्न करके अपनी खोजका समर्थन किया। ताऊनके संचार आक्रमणके पहिले कुछ प्राणियोंमें जैसे चूहे और मूषकोंमें अधिक मृत्यु होती पाई जाती है। इन मृत प्राणियोंके शरीरमें से भी किटासाटो और यर्सिन यही छड़ निकाल सके।

ताऊन की छड़की रचना—जो छड़ें कि रुग्ग ग्रन्थियों अर्थात् गिल्टीयोंमें पाई जाती हैं छोटी छोटी अण्डकार छड़ें होती हैं। लम्बाईमें वे मुक्काज्वर छड़से कुछ छोटी होती हैं और मोटाई उनकी लगभग वही होती है, परन्तु आकार में कुछ भिन्नता भी पाई जाती है। उनके अन्त गोल होते हैं। बीचका भाग बिना रंगा छूट जा सकता है और फिर अन्तोंके रङ्ग जानेके कारण जो विशेषता दृष्टिगोचर होती है उसे 'द्विध्रुवरंजन' कह सकते हैं। तन्तुओंसे बनाई पत्तोंमें छड़ें अकेली कोषोंके बीचमें बिखरी पाई जा सकती हैं अथवा जोड़े भी देखे जा सकते हैं। तरल कृषियोंमें जैसे जूषमें यह छड़ें मुख्यशः शृंखलाओंमें उगती हैं कि जिनके कारण छड़ शृंखला बनजाती है। नई आगर कृषियोंमें छड़ोंके आकारोंमें बहुत भिन्नता पाई जा सकती है और ध्रुवीय रंजन इतना स्पष्ट नहीं होता और कभी कभी बहुत लम्बे रूपभी उपस्थित पाये जा सकते हैं। कुछ दिनों पश्चात् बिगड़े रूप दिखलाई देने लगते हैं विशेषतः यदि आगर सूखा हो परन्तु यदि आगरमें २से ५°/० तक नमक छोड़ दिया जाय तो बिगड़े रूप और भी शीघ्र बनेंगे इस माध्यम पर बिगड़े रूप बहुत बहुत आकार और रूपके पाये जायेंगे कुछ छड़ें गोल, अण्डाकार अथवा दंताकार पा जायेंगी। यदि आगरमें २°/० नमक मिला दिया जाय तो छड़ोंमें कुछ बड़ापन आ जाता है। कभी कभी तन्तुओंमें उनके चारों ओर बिना रंगा आवरण दृष्टि गोचर हो सकता है परन्तु ऐसी अवस्था देखा जाना साधारण नहीं है। इन छड़ोंमें बीज नहीं बनते और उनमें गति नहीं होती। यह छड़ भास्मिक आनीलिनीय रंगोंसे अच्छी तरह रंगी जा सकती है और ग्रामकी विधिमें उनपर रंग नहीं चढ़ता।

कृषि रुग्ण ग्रन्थियों इत्यादि से यह छड़ साधारण माध्यमों पर सरलतासे उगाई जा सकती है। शरीरके तापक्रमपर यह छड़ सबसे अधिक अच्छी तरह उगती है परन्तु १८°श तक नीचे तापक्रमोंपर उसका उगना नहीं बन्द होता है। आगर और रक्तीय तोय (सीरम) पर सफेद गोल, कुछ पारदर्शन, चिकनी और चमकती टिकियों के सदृश संघ उगते हैं। जब उन्हें तालसे देखा जाता है तो उनके किनारे तरंगीय पाये जाते हैं। आगर पर ढाल कृषियोंमें उसी प्रकारकी एक रेखा बन जाती है। इस रेखाके किनारेपर कुछ पृथक् संघ भी पाई जा सकती हैं। जब आगर कृषियें साधारण तापक्रम पर रखी जाती है तो कुछ संघ अधिक वृद्धि पा जा सकते हैं और अधिक अपारदर्शिन् भी पाये जा सकते हैं और इस कारण ऐसा प्रतीत होने लगता है कि कृषि शुद्ध नहीं है। पाचयोन सरेसिन (जिलेटिन) की छिद्र कृषिमें सुइके मार्ग पर एक सफेद रेखा बन जाती है जो कि छोटी छोटी गोल संघोंकी बनी होती है। सरेसिनके पृष्ठ पर एक पतली पारदर्शिन् परत बन जाती है। परत छिद्रकी समीपता में ही सीमा बद्ध रहती है परन्तु कभी कभी वह नलीकी दीवार तक फैल जा सकती है। कभी कभी पृष्ठ पर कुछभी नहीं उगता माध्यममें कोई तरलता नहीं आती। जूषमें सुराहीके पेंदे और भीत पर कुछ जमावट जम जाती है जो कि विन्दुशृंखलाकी जमावटसे बहुत कुछ मिलती है। यदि तैल अथवा पिघला घी भी जूष पर छोड़ दिया जाय तो कृषि उगनेकी एक विशेष विधि देखनेमें आ सकती है। कृषि घी अथवा तैलके नीचेसे आरम्भ होती हैं और वहां उसके धागे लटकते दिखाई देने लगते हैं। यह धागे बहुत कोमल होते हैं और सुराहीको थोड़ाभी हिलाने पर टूट जाते हैं। इन धागोंका बनना देखने के लिये कृषिको स्थिर रखना चाहिये। कृषिके उगनेकी यह विधि इस छड़का कोई नितान्त विशेष लक्षण नहीं गिना जा सकता यद्यपि यह एक महत्व पूर्ण लक्षण अवश्य है परन्तु अभाग्यवश यह लक्षण छड़की सब नस्लोंमें नहीं पाया जाता है और उसही नस्लमें भी प्रत्येक समय उतनी ही सरलतासे लटकते धागे नहीं बनते हैं। छड़ ओषजनके बाहुल्यमें ही अधिकतम श्रेष्ठता से उगती है और यदि वायु बिलकुल न रहने दी जाय तो कृषिका उगना भी लगभग बन्द हो जाता है।

इस छड़की सहन शक्ति अन्य बीज नाने बन वाली छड़ोंके बराबर ही होती है अर्थात् ५८ श पर एक घंटा रखनेसे यह छड़ मर जाती है इसके विमुख ठंडके प्रति इस छड़में बहुत सहन शक्ति पाई जाती है। यह छड़ हिमांकसे कई अंश नीचे तापक्रमोंपर भी रखने पर जीवित रहती देखी गई है। सुखानेके परीक्षणोंके फलोंमें कुछ भिन्नता पाई जा सकती है। छड़ ६-८ दिन सुखाये जाने से मर जाती है परन्तु कभी कभी अधिक समय तक भी जीवित पाई जा सकती है। ३-४ घंटे तक धूप दिखानेसे भी यह छड़ मर जाती है। अन्तिम फल परीक्षणोंका यह निकलता है कि प्राणियोंके शरीरके बाहिर प्राकृतिक अवस्थामें यह छड़ बहुत समय तक जीवित रह सकती है।

रोगमें रचना परिवर्त्तन और शरीरमें छड़ोंका वितरण—यह रोग कई प्रकारोंमें पाया जाता है। गिल्टीवाला फुफ्फुसीय और जीवाणुमय रक्तीय। गिल्टी वाले प्रकारमें मुख्य लक्षण यह है कि लसीका ग्रन्थियाँ रुग्ण पाई जाती हैं। तीव्र प्रदाहके कारण वे बहुत फूली हुई पाई जाती हैं, उनमें रक्त स्राव पाया जाता है और यदि रोगी बहुत समय तक जीवित रहे तो लसीका ग्रन्थियोंमें तन्तु मरण भी पाया जा सकता है। ग्रन्थियोंको घेरे हुए जो सम्बन्धक तन्तु रहती है उसमें भी प्रदाह और तन्तु मरण पाया जा सकता है। इस प्रकार गिल्टी प्रदाहके कारण मिली हुई ग्रन्थियोंसे बनी होती है। वास्तविक पीप पड़ना पाया जाना असाधारण है। साधारणतः ग्रन्थियोंके एक समूह पर पहिले प्रभाव पड़ता है कि जिसे प्राथमिक गिल्टी कहा जा सकता है। अधिकांश रोगियों में जंघाके सामनेके ऊपरी भाग अथवा बगल की ग्रन्थियोंमें ही पहिले गिल्टी उठती है और फिर अन्य समूहोंमें भी प्रदाह आरम्भ हो जाता है परन्तु उनमें उतना अधिक प्रदाह नहीं पाया जाता। प्लीहा भी बहुत बढ़ जाती है और गुरदे यकृत् और अन्य अवयवोंकी कोषोमें धुंधली सूजन पाइ जा सकती है। फुफ्फुस यकृत और प्लीहामें भी रक्त स्राव और तन्तु मरण पाये जा सकते हैं। सूजी हुई ग्रन्थियोंमें छड़े बहुत अधिक संख्यामें पाई जाती है और कभी कभी उनकी संख्या इतनी अधिक होती है कि उनकी खुरचनसे बनाई परत बिलकुल शुद्ध कृषि जान पड़ती है। आरम्भिक अवस्थाकी काटोंमें लसीकाके मार्ग बिलकुल छड़ोंसे भरे दिखाई देते हैं। लसीका तन्तुके बीच बीचमें भी छड़ें उगती हुई दिखाई दे सकती हैं। कुछ समय पश्चात् जब ग्रन्थियोंकी रचना बिलकुल मिटने लगती है तो छड़े और कोषे विरूपतासे मिली हुई पाई जाती हैं। परन्तु कुछ और अधिक समय पश्चात् धीरे धीरे छड़ोंका मिलना बिल्कुल बन्द होने लगता है और जब तन्तु मरण बहुत बढ़ जाय तो छड़ोंका मिलना असम्भव हो जा सकता है। प्लीहामें छड़े बहुत अधिक संख्या में पाई जा सकती हैं अथवा उनकी संख्या बहुत कम हो सकती है। यह बात निदान के विचारसे ध्यान देने योग्य है। उपक्षतियों में भी बहुत सी छड़ें उपस्थित रह सकती हैं।

ताऊनके फुफ्फुसीय प्रकारको ताऊनी फुफ्फुसप्रदाह कह सकते हैं। फुफ्फुसप्रदाह वायुप्रणालिका प्रदाहवाले प्रकार का होता है परन्तु ठोस हुए भागोंके मिलनेसे ठोसपनके बड़े बड़े विस्तृत क्षेत्र बन जा सकते हैं और प्रादाहिक क्रियामें रक्त स्रावभी बहुत पाया जा सकता है और टेंटुएकी शाखाओंके समीप पाई जाने वाली ग्रन्थियोंमें प्रादाहिक सूजन उपस्थित हो सकती है।

रोगीका बलगम झागदार और कुछ रक्त मिला होता है और उसमें छड़े बहुत संख्यामें पाई जा सकती हैं परन्तु कभी कभी खांसी और बलगम अनुपस्थित भी रह सकते हैं। फुफ्फुसीय प्रकारकी ताऊन लगभग सदाही प्राणघातक सिद्ध होती है और इससे छूत भी बहुत ही शीघ्र लगती है। छड़ मय रक्तीय प्रकारमें प्राथमिक गिल्टी तो अनुपस्थित रहती है परन्तु शरीर भरकी गिल्टियें कुछ कुछ बढ़ी हुई पाई जाती हैं। ताऊनकी यह प्रकार भी बड़ी प्राणघातक होती है। गिल्टी वाली प्रकार भी अन्तावस्थाओंमें

छड़मय रक्तीय रूप धारण करले सकती है वास्तवमें सब तरहकी बीचवाली प्रकार भी पाई जाती हैं।

एक अन्तिम प्रकार का भी वर्णन किया गया है कि जिसमें अन्नधारक की ग्रन्थियों भी रुग्ण पाई जाती है। परन्तु इस प्रकारका मिलना बहुत असाधारण होता है यहां तक कि कुछ बहुत अधिक अनुभव प्राप्त निरीक्षकोंको भी उसके पाये जानेके विषयमें सन्देह है। सब प्रकारोंमें छड़ें रक्तमें भी उपस्थित होती हैं और कभी कभी अणुवीक्षणीय जांच द्वारा देखी भी जा सकती हैं मुख्यतः बहुत भीषण और शीघ्रतासे मर जाने वाले रोगियोंके रक्तमें मृत्युसे कुछ ही पहिले। यदि रक्तकी कृषि उगाकर जांचकी जाय तो अधिक अवसरों पर छड़ मिलनेकी आशा की जा सकती है। कृषि बोनेके लिये किसी शिरामें से ५ घ. श. मी. रक्त निकाल लिया जाता है और वह जूष की सुराहियोंमें बो दिया जाता है। भिन्न खोज करनेवालोंके परीक्षणोंसे यह अनुमान किया गया है कि लगभग ५०% रोगियोंके रक्तमें इस प्रकार छड़ोंकी उपस्थिति दर्शाई जा सकती है। कुछ छड़मय रक्तीय प्रकारके रोगियोंमें छड़ मृत्युसे दो तीन दिन पहिले भी रक्तमें भी पाई जा सकती है।

ऊपर वर्णन की हुई प्रकार साधारणतः कड़ी ताऊन में सम्मिलित करली जाती हैं परन्तु कुछ हलकी प्रकार भी पाई जाती है जिन्हें छोटी ताऊन कहा जा सकता है। छोटी ताऊनके रोगियोंमें गिल्टियोंके किसी समूहका फूलना कुछ ज्वर और ग्लानि इत्यादि पाये जा सकते हैं अथवा रोग और भी कम हो सकता है। हलकी और कड़ी ताऊनोंके बीचमें भिन्न तीव्रताओंका रोग भी पाया जा सकता है।

रोगोत्पादनके परीक्षण—चूहे, मूषक, गिनीशूकर, शशक इत्यादि प्राणियोंमें परीक्षण रूपसे रोग उत्पन्न किया जा सकता है। मूषक इस कामके लिये सबसे अधिक उपयुक्त प्राणी पाये जायंगे। अधःत्वच् अन्तः क्षेपणके पश्चात् छड़ चढ़ाये जानेके स्थानपर स्थानिक जलसंचय पाया जायगा। इसके पश्चात् सम्बन्धित लसीका ग्रन्थियोंमें भी प्रदाह पाया जा सकता है और फिर छड़ शरीर भरमें फैल जाती है। लसीका ग्रन्थियोंमें मानुषी रोगके समान ही परिवर्त्तन पाये जाते हैं परन्तु मृत्यु होने तक भी परिवर्तन उतनी ही बढ़ी हुई अवस्था तक नहीं पहुँच पाते हैं। अधःत्वच् अन्तः क्षेपणके पश्चात् मूषक १ से २ दिनमें मर जाते हैं। गिनी शूकर और चूहे २ से ५ दिनमें मरते हैं और शशक ४ से ७ दिनमें। मृत्युके पश्चात् गिल्टियोंके बढ़नेके अतिरिक्त मुख्य परिवर्तन भीतरी अवयवोंमें अधिक रक्तमयता और कभी कभी रक्तस्राव पाया जाना और बढ़ी हुई प्लीहा पाया जाना है। छड़ें लसीका ग्रन्थियों और प्लीहामें बहुत संख्यामें पाई जाती हैं और कुछ कम संख्यामें रक्तमें भी। आँखकी बाह्य झिल्ली और नासिकाकी श्लेष्मल कलामें भी छड़ रगड़कर रोगलक्षण उत्पन्न किये जा सकते हैं और रोग उत्पन्न करनेकी इस विधिमें सफलता उस समय विशेष रूपसे होती है कि जब ताऊनकी छड़ोंके साथ साथ अन्य तीव्र जीवाणु भी उत्पन्न हों जैसे कि बलगममें फुफ्फुस विन्दु। शुद्धकृषि अथवा रुग्ण प्राणियोंके अवयवोंका खिलाकर भी रोग उत्पन्न किया जा सकता है। इस परीक्षणमें छड़ अधिकतर मुँह और कंठ की श्लेष्मल कलाओं द्वाराही प्रवेश पाती हुई जान पड़ती है, पाचन नली द्वारा तो बहुतही कम छड़ोंका प्रवेश होता जान पड़ता है। बन्दरभी बहुत प्रभावशील पाये जाते हैं और यदि एक तिनके द्वारा उन की त्वचामें छड़ें चढ़ाई जावें तो छड़ चढ़ाये जाने के स्थानपर कुछ भी प्रभाव न होते हुए भी उस भागसे सम्बन्धित ग्रन्थियोंमें प्रदाह आरम्भ हो जा सकता है। इस परीक्षणसे मनुष्य की त्वचा द्वारा रोग प्रवेश विधि पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

ताऊन फैलनेके मार्ग और विधियां—

ताऊनकी छड़ें त्वचा उपस्थित दरार खरोंट अथवा अन्य क्षति द्वारा शरीरमें प्रवेश कर सकती हैं और ऐसी और ऐसी अवस्थामें प्रवेश स्थान पर भी प्रभाव प्रकट होना आवश्यक नहीं है।

प्रवेश स्थान उससे सम्बन्धित लसीका ग्रन्थियोंमें प्रदाह आरंभ होनेसे प्रकट होता है क्योंकि अधिकतर प्राथमिक गिल्टी उन्हीं ग्रन्थियों में बनती है जो कि प्रवेश स्थानसे सम्बन्धित पाई जाती हैं। प्राथमिक गिल्टी अधिकतर जंघाके सामनेवाले ऊपरी भाग मेंही पाई जाती है। त्वचासे रोग फैलने की अन्तिम साक्षी उन अवसरों में देखी जा सकती है कि जिनमें शवों कीजाँच करते समय रोगरक्षा की क्षतिमें से प्रवेश करता पाया गया है, प्रवेश स्थान पर क्षति बहुधा बहुत ही छोटी थी और स्थानीय प्रतिक्रिया अनुपस्थित थी। अब यह सिद्ध हो गया समझना चाहिये कि यह रोग दूषित देहिका (एक प्रकार का पिस्सू) के काटनेसे फैलता है। यह पहिले ही दर्शाया जा चुका था कि देहिका यदि ताऊनसे रुग्ण प्राणियोंको काटे तो उसके आमाशयमें रोग छड़ें बहुत समय तक पाई जाती रहती हैं और सीमाँड इत्यादि कुछ निरीक्षक दूषित देहिका से कटवाकर स्वस्थ प्राणियोंमें ताऊनउत्पन्न करनेके प्रयत्नोंमें सफल भी हुए परन्तु अधिकांश निरीक्षकोंको इन परीक्षणोंमें निष्फलता हुई तथापि अन्तमें भारतीय राजसचिव की एडवाइजरी समितिने स्पष्टतः रोग फैलनेकी इस विधिका महत्त्व दर्शाया। क्रम बद्ध परीक्षणों द्वारा समिति ने यह दर्शाया कि एक ही पिंजड़ेमें स्वस्थ और ताऊनी चूहा रखने पर स्वस्थ चूहोंको केवल उसी समय ताऊन हुई जब कि देहिका उपस्थित थी। यदि देहिका न रहने दी जाँय तो वही वायवीय सुभीता रहनेपर भी स्वस्थ चूहोंमें रोग नहीं फैल सकता। रोग उस समय भी उत्पन्न किया जा सका कि जब ताऊनके चूहों की देहिका स्वस्थ चूहोंपर छोड़दी गई। इस प्रकार के परीक्षणोंमें लगभग ५० °/० सफलता होती पाई गई। जब ताऊनी गिनीशूकर स्वस्थ गिनी शूकरोंके साथ रखे गये और देहिका अनुस्थित थी तो रोग बहुतही कम गिनी शूकरोंमें फैला परन्तु जब देहिका बहुत संख्यामें उपस्थित थी तो लगभग प्रत्येक गिनी शूकरको ताऊन हो गया। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि केवल स्पर्शका रोग फैलानेमें कितना कम भाग होता है। जिन घरोंमें ताऊन फैली हुई थी वहाँके चूहोंकी देहिकासे स्वस्थ प्राणियोंको कटाकर रोग उत्पन्न किया जा सका। जब प्राणी ताऊनके घरोंमें रखे गये परन्तु देहिकाके काटनेसे उनकी रक्षा की गई तो उनको ताऊन नहीं हुई परन्तु यदि देहिकायें पिंजड़ेमें घुस सकी तो प्राणियोंको ताऊन हो गई।

समितिके किए कुछ परीक्षण नीचे दिये जाते हैं। कुछ झोंपड़े तैयार किये गये थे कि जिनकी केवल छत की रचनामें ही भेद था। दो झोपड़ोंकी छत साधारण देशी खपरैलोंकी बनाई गई थी कि जिनमें चूहे रह सकते हैं। दो झोपड़ोंमें चपटी खपरैलोंकी छत लगाई गई थी कि जिनमें चूहे रह सकते थे परन्तु अच्छी तरह नहीं घूम सकते थे। झोपड़ोंके तीसरे जोड़ेमें छत टीनकी लगाई गई थी। छतोंके नीचे एक जालीका परदा लगायागया। इस जालीके छिद्र इतने छोटे थे कि उनमें से चूहे अथवा चूहोंका मल तो नीचे नहीं गिर सकता था परन्तु पिस्सू नीचे गिर सकते थे झोपड़ोंको इतने दिन छोड़ दिया गया कि जिससे उनकी छतोंमें चूहे आ जांय। फिर उन झोपड़ोंमें कुछ स्वस्थ और कुछ रोगसे दूषित किये हुए गिनी शूकर छोड़ दिये गये। पहिले दो झोपड़ोंमें कि जिनमें देहिकाओंकी पहुँच थी स्वस्थ गिनी शूकरों को भी ताऊन हो गया परन्तु तीसरे जोड़ेमें स्वस्थ गिनी शूकरोंको रोग न हुआ। सब झोपड़ोंमें हो स्वस्थ गिनी शूकर रोगी गिनी शूकर और उनके मल मूत्रसे उतनेही स्पर्शमें आ सकते थे। झोपड़ोंके तीसरे जोड़ेमें जबतक देहिकाओंका प्रवेश न हुआ तब तक स्वस्थ गिनी शूकर बचे रहे परन्तु जैसे ही देहिकाओंका प्रवेश होने दिया गिनी शूकरोंमें रोग फैलना आरम्भ हुआ। और भी बहुतसे परीक्षण किये गये एक परीक्षणमें स्वस्थ गिनी शूकर एक पिंजड़ेमें ८ फीट की ऊँचाई पर रखे गये। फर्श पर दूषित देहिकायें और देहिका चिमटे प्राणी घूम रहे थे। पिंजड़ेमें बन्द गिनी-शूकरोंमें रोग फैल गया। जब पिंजड़ा इतनी ऊपर लटकाया गया कि उस तक देहिका न

फुदक कर पहुँच सकें तो पिञ्जड़ेमें बन्द प्राणियोंमें रोग न फैल सका। एक ऐसे झोंपड़ोंमें कि जिसमें कुछ गिनी-शूकर ताऊनसे मरे थे दो बन्दर रखे गये एक बन्दरके पिञ्जड़ेमें कुछ चिपकना द्रव्य देहिकाकी फुदकनकी उँचाईसे अधिक ऊँचाई तक लगा दिया गया। दूसरे पिञ्जड़ेमें रक्षाका कोई उपाय न किया गया। पहिले पिञ्जड़े में बन्दर स्वस्थ रहा दूसरे पिञ्जड़े के बन्दरको ताऊन हो गई।

समितिके अन्य परीक्षणोंसे यह भी ज्ञात हुआ कि यदि ताऊनकी छड़ें मकानोंके फर्श पर डाल दी जायँ तो वे बहुत ही शीघ्र मर जाती हैं। जिस फर्श को ताऊनकी छड़ोंसे अच्छी तरह गन्दा कर दिया गया था ८ घण्टे पश्चात् उस फर्शसे दूषित द्रव्य लेकर रोग नहीं उत्पन्न किया जा सका।

इन सब परीक्षणोंमें हिन्दुस्थानमें पाई जाने वाली चूहोंकी साधारण देहिका काममें लाई गई थी, परन्तु यह भी दर्शाया जा चुका था कि यह देहिका मनुष्य. को भी काटती है। नवीन निरीक्षणोंसे ज्ञात होता है कि प्रकृतिमें ताऊन अधिकतर देहिकाओं द्वारा ही फैलती है। प्रकृतिमें केवल एक और विधि ताऊनको फैलाती हुई पाई जाती है वह विधि स्वस्थ चूहोंसे रोगी चूहोंके मृत शरीरोंका खाया जाना है कि जिनमें ताऊनकी छड़े बहुत संख्यामें उपस्थित हों। इन सब परीक्षणोंसे ऐसा ज्ञात होता है कि केवल स्पर्शसे, स्पर्श कितना भी समीप हो, ताऊन नहीं हो सकती। अन्तिम फल यह निकलता है कि गिल्टीवाली ताऊन त्वचाकी क्षतियोंमें से धूल अथवा अन्य द्रव्यों द्वारा ताऊनकी छूत बहुत कम अवसरोंमें फैलती है और ताऊन फैलने का साधारण मार्ग देहिका द्वारा है।

समितिके पिछले कार्यसे फैलाव-आक्रमणके कारण समझनेमें बहुत सहायता मिलती है। समितिने दर्शाया कि मनुष्यमें ताऊनका फैलाव आक्रमण चूहों-में ताऊनके फैलाव-आक्रमणपर निर्भर है और इस विषयमें कुछ और भी बातें समिति ने बतलाई। बम्बईमें ताऊन दो प्रकारके चूहोंमें फैलती हैं, एक तो काले घरके चूहेमें और दूसरे नालियोंके भूरे चूहेमें पहली प्रकारका चूहाही अधिकतर घरमें पाया जाता है इसलिये रोग मनुष्योंमें अधिकतर उससे ही फैलता है। नालोंके चूहेमें देहिकायें बहुत चिमटी रहती हैं इसलिये मौसिमसे मौसिम तक रोगको बना रखनेमें भाग नालोंके चूहेंका अधिक रहता है। वर्ष दो भागों में विभाजित किया जा सकता है एक तो दिसम्बरसे मई तक दूसरा जूनसे नवम्बर तक। दिसम्बरसे मई तक वाले भागको प्राणी-रोग-संचारकाल कह सकते हैं क्योंकि इस समय चूहोंमें ताऊन फैलती है। जूनसे नवम्बर तक चूहोंमें ताऊन कम रहती है क्योंकि उनके शरीर पर देहिकायें बहुत कम होती हैं विशेषतः घरके चूहोंमें। कुछ गांवोंमें तो केवल काला चूहा ही पाया जाता है और इस कारण प्राणिरोग संचार कालके अन्तमें रोग बिलकुल बन्द हो जा सकता है और इसी कारण दूसरे मौसिममें फिर रोग आरम्भ उसी समय होता है जब रोग बाहिरसे फिर आये, बाहिर से आया रोग पहिले नालोंके चूहोंमें फैलता है फिर घरके चूहोंमें और अन्तमें मनुष्योंमें फैलता है। रोग प्राणियों और मनुष्यों दोनोंमें ही देहिकाओं द्वारा फैलता है और प्राणी-आक्रमण संचार और मानुषी आक्रमण संचारमें १०—१४ दिन का अन्तर रहता है। नालोंके चूहोंमें घरके चूहोंकी अपेक्षा रोग अधिक फैलता है। यह भी दर्शाया गया है कि देहिका के आमाशयमें ताऊनकी छड़ोंकी संख्या बढ़ती है और उनके मलमें भी जीवित छड़ पाई जा सकती है। ताऊन से आक्रमणित जगहसे एकत्रित की हुई अधिकांश देहिकाओंमें जीवित ताऊनकी छड़ें पाई जाती हैं। एक बार ताऊनसे दूषित रक्त पीनेके पश्चात् देहिकामें दो सप्ताह तक रोग फैलानेकी शक्ति उपस्थित रह सकती है। ८० श से अधिक तापक्रम बढ़ जाने पर रोग फैलनेमें कमी हो जानेके कारणोंमें एक यह भी है कि उच्च तापक्रमों पर देहिकाओंमें ताऊनकी छड़े अधिक शीघ्रतासे गायब होती हैं। इसी प्रकार परीक्षणोंमें भी नीचेवाले तापक्रमों पर देहिकाओं द्वारा रोग फैलानेमें अधिक सफलता होती

है। मार्टिन ने यह दर्शाया कि काटते समय देहिकाके पेटमें से दूषित रक्त उगल देनेके कारणही ताऊनकी छड़ें स्वस्थ शरीरमें प्रवेश करते हैं क्योंकि कभी कभी देहिकाके पूर्वीय आमाशयका छिद्र ताऊन की छड़ोंसे बन्द हो जाता है। परन्तु त्वचाके देहिकाके मलद्वारा गन्दी होनेसे छड़ोंके शरीरमें प्रवेश करनेकी असम्भावना नहीं सिद्ध की जा सकती।

रोग संचारके बन्द होनेके विषयमें लिस्टनने कुछ चित्ताकर्षक बातोंकी खोज की है। उसने यह दर्शाया है कि यदि भिन्न नगरोंके चूहोंकी परीक्षा की जाय तो यह ज्ञात होता है कि भिन्न नगरोंके चूहोंमें ताऊन की छड़ोंके प्रति प्रभावशीलता एक समान नहीं होती। ताऊनके प्रति अधिकतम अभय उन नगरोंके चूहोंमें पाया जाता है कि जहां बहुत ताऊन पड़ चुकी हो। इस आपेक्षिक अभयका कारण यह प्रतीत होता है कि नगरमें ताऊनके आक्रमणके पश्चात् केवल वे ही चूहे बचते हैं कि जिनमें ताऊनके प्रति अधिक प्रतिरोध शक्ति होती है। यह अभय उनकी वंशपरम्पराके साथ साथ भी चलता रह सकता है। इस प्रकार चूहोंमें ताऊनका घटना अधिक प्रभावशील चूहोंके मर जाने पर निर्भर है।

प्राथमिक ताऊनी फुप्फुसप्रदाहमें, रचना परिवर्तन और लक्षणोंके विचारसे छड़ें सांस द्वारा श्वास पथों में पहुँचती हुई जान पड़ती है। इसकारण ताऊनी फुप्फुस प्रदाह स्वस्थ मनुष्योंमें इसी रूपमें बहुत शीघ्रतासे फैलता जान पड़ता है। ताऊनी फुप्फुसप्रदाह के छोटे छोटे संचार-आक्रमण समय समय पर फैलते रहते हैं परन्तु १९११ में मंचूरियामें ताऊनी फुप्फुसप्रदाह बहुत फैल गया कि जिसके कारण ६ महीनेमें ५०,००० मनुष्य मृत्युके ग्रास बन गये। इस आक्रमण संचारमें रोग मनुष्यसे मनुष्यको फैला और चूहोंका रोगके फैलावमें कोई भाग नहीं पाया गया ताऊनी फुप्फुस प्रदाह पहिले पहिले गिल्टीवाले रोगियोंमें एक पेचके रूपमें आरम्भ होता है क्योंकि दोनों रूपोंमें पाई गई छड़ोंकी तीव्रताओंमें कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता।

विष, अभय इत्यादि:—

अन्य उन जीवाणुओंके सदृश जो कि तन्तुओंपर विस्तृत आक्रमण करते हैं ताऊन की छड़के विष भी अन्तर्कोशीय होते हैं। प्राणियोंमें मरी कृषियोंके अन्तःक्षेपणसे विषैले प्रभाव उत्पन्न हो जाते हैं। मृत्युके पश्चात् आमाशयकी श्लेष्मल कैलामें रक्तस्राव पाये जाते हैं, यकृत्में तन्तु मरणके क्षेत्र और छड़ चढ़ाये जानेके स्थान पर तन्तुमरण भी पाये जा जा सकते हैं। ताऊनी विषमें तापके प्रति बहुत सहन शक्ति होती है क्योंकि ६५° श परएक घंटे तक रखनेसे विषैले द्रव्य पर कोई प्रभाव नहीं होता। मृत कृषियों के अन्तःक्षेपणसे जीवित तीव्र छड़ोंके प्रति कुछ अभय उत्पन्न किया जा सकता है और अभीत प्राणीका तोय मूषक इत्यादि छोटे प्राणियोंको अभीत बना सकता है। इनही सिद्धान्तों पर रोग प्रतिरोधक टीका और तोयीय चिकित्सा भी निर्भर हैं। ताऊन की छड़की कृषिसे पृथक् किया छनित बहुत विषैला नहीं होता और न उसमें अभय उत्पन्न करनेकी शक्ति ही रहती है।

१. रोग प्रतिरोधक टीका—हफकीनकी विधि—रोग प्रतिरोधक द्रव तैयार करनेके लिये जूषकी सुराहियोंमें कृषि उगाई जाती है। जूष पर एक तैल की परत भी छोड़ लेते हैं। हिन्दुस्थानमें जूष बकरे के मांसको १४०°श पर उदहरिक अम्ल द्वारा पचाकर और फिर उसे सैन्धक उदेतसे समस्वभाव करके बनाया जाता है। इस प्रकारकी कृषिमें कृषिके धागे लटकने लगते हैं और सुराहियें थोड़े थोड़े दिन पश्चात हिला ली जाती हैं कि जिससे नये धागे और बन जाँय। सुराहियाँ २५°श पर रखी जाती हैं और कृषि ६ सप्ताह तक उगने दी जाती है। इतने समयके अन्तमें सुराहीको एक घन्टे ६५°श पर रखकर उसके द्रवको पवित्र कर लेते हैं। फिर उसमें ५°/₀ कार्बोलिक अम्ल छोड़ लेते हैं। सुराहीको अच्छी तरह हिलाया जाता है कि जिससे तलछट अच्छी तरहसे मिल जाय। फिर द्रवको छोटी पवित्र शीशियों में विभाजित कर लेते हैं। प्रतिरोधक द्रव्यमें इस

प्रकार छड़ोंके मृत शरीर और घुलित विष दोनों ही उपस्थित रहते हैं। द्रव नियत मात्रामें अधःत्वच् अन्तः क्षेपण द्वारा दिया जाता है। सधारणतः एकही अन्तः क्षेपण दियाजाता है और कभी कभी दो। दो अन्तः क्षेपण देनेमें कोई विशेष लाभ नहीं प्रतीत होता एकही ताऊनसे आक्रमणित स्थान पर कुछको टीका लगाकर और कुछ को बिना टीकेके छोड़कर ताऊनके टीकेके लाभ दर्शाये जा चुके हैं। टीका लगानेके लाभ बिल कुल स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि टीकेसे ताऊनके प्रति नितान्त रक्षणकी शक्ति नहीं है तद्यपि टीके लगे मनुष्योंमें ताऊन होती भी है तो मृत्यु बहुत कम रोगियोंको होती है। टीके लगनेके कुछ दिन पश्चात् ही अभय उत्पन्न होता है और अभय कुछ महीनों तक जारी रहता है। पञ्जाबमें १६०२-३ में टीके लगे वालोंमें १·४°/० को ही ताऊन हुई। बिना टीके लगेवालोंमें ७·७ °/० को टीके लगे रोगियोंमें मृत्यु संख्या २३·६°/० थी और बिना टीके लगे रोगियोंमें ६०·१°/०। यह संख्यायें उन गाँवोंसे ली गई हैं कि जिनमें १०°/० को टीका लगा था।

ताऊन-नाशक तोय—यर्सिन और लसटिगके ताऊन नाशक तोय चिकित्साके लिये भी काममें लाये जा चुके हैं। यर्सिनका तोय घोड़ेमें मृत ताऊन छड़ों-की बढ़ती हुआ मात्राओंका अन्तःक्षेपण करके बनाया जाता है। आरम्भमें मृत छड़ोंका घोड़ेमें अधः त्वच् अन्तःक्षेपण किया जाता है और फिर मृत छड़ों का शिरान्तर्गत अन्तःक्षेपण किया जाता है। अन्तमें जीवित छड़ोंका शिरान्तर्गत अन्तःक्षेपण किया जाता है। कुछ समयके पश्चात् रक्त निकाल लिया जाता है और तोय साधारण रीतिसे पृथक् करके रख लिया जाता है। लसटिगका तोय बनानेमें ताऊनकी छड़ोंसे निकाले एक द्रव्यके घोड़ेमें बढ़ती हुई मात्रामें अन्तः क्षेपण किये जाते हैं। आगर की कृषिके पृष्ठसे कृषि खुरच ली जाती है और उसे १°/० पांशुज उदेतके घोलमें मिला और घुला लेते हैं। फिर घोलको उद्-हरिक अम्ल द्वारा कुछ आम्लिक बनाते हैं कि जिससे बहुतसा तलछट गिर जाता है। इस तलछटको छनने कागजपर एकत्रित करके सुखा लेते हैं। उपयोग के लिये इसे सैन्धव द्विकर्बनेतके के हल्के घोलमें घुला लेते हैं और फिर उसका अन्तःक्षेपण कर देते हैं। घोड़ेसे तोय साधारण रीतिसे निकाल लेते हैं। इन दोनोंके उपयोगसे जान तो यही पड़ता है कि ताऊनमें इनमें से किसीसे भी बहुत लाभ की आशा नहीं रखनी चाहिये परन्तु कुछ अवसरों पर ये तोय स्पष्टतः लाभदायक सिद्ध होते पाये जाते हैं। हिन्दुस्तानी कमीशनकी रायमें यर्सिन और लसटिग दोनोंके तोयों से रोगियोंको कुछ लाभ होता है परन्तु प्राणियोंके रोगमें यर्सिनके तोयसे तो लाभ होता हुआ प्रतीत हुआ परन्तु लसटिगके तोयसे कोई लाभ होता न जान पड़ा।

तोयीय निदान—ताऊनके रोगियोंके तोयमें विशेष संश्लेषक द्रव्य पाये जा सकते हैं जैसे कि अभीत प्राणियोंके तोयमें पाये जाते हैं। परन्तु संश्लेषक शक्ति रोगियोंके तोयमें सदाही नहीं उपस्थित रहती है तोयमें संश्लेषक शक्ति बहुत तीव्र नहीं होती है और दूसरी कठिनता यह होती है कि छड़ोंमें समूहोंमें एक-त्रित होनेकी ओर पहिलेसे ही कुछ झुकाव रहता है। इसलिये अणुवीक्षणीय विधिकी अपेक्षा तलछटीय विधि अधिक उपयुक्त पाई जाती है। ७५°/० नमकके घोलमें आगर कृषि का दोलन बना लिया जाता है। बड़े छिछड़े निकाल दिये जाते हैं और ऊपरका दोलन उपयोग में लाया जाता है। जर्मन ताऊन समितिके कथनानुसार सबसे अधिक सन्तोषजनक प्रतिक्रिया १:१० - १:५० तनूकृतों साथ देखी जाती है। संश्लेषण शक्ति रोगके लगभग एक सप्ताह पश्चात् पाई जाने लगती हैं और लगभग छटे सप्ताहके अन्त तक बढ़ती है फिर कम होने लगती है। संश्लेषण शक्ति उन रोगियोंमें सबसे अधिक पाई जाती है कि जिनमें रोगका आरम्भ बहुत तीव्र होता है और रोग शीघ्र अच्छा होने लगता है। उन तीव्र रोगके रोगियोंमें संश्लेषण शक्ति कम उत्पन्न होती है कि जिनकी अन्तमें मृत्यु हो जाती है। अतीव्र रोगमें यह शक्ति बिल्कुल अनुपस्थित रह सकती है। यदि

यह विधि सावधानीसे काममें लाई जाय तो कुछ अवस्थाओंमें बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती है। परन्तु उससे बहुत अधिक सहायता की आशा न रखना चाहिये।

निदान—जब गिल्टी उपस्थित हो तो उसमें एक सुई डालकर कुछ रस निकाल लिया जा सकता है। फिर द्रवकी अणुवीक्षणीय जांचकी जाती है और फिर आगार पर कृषि बोली जाती है। फिर इस छड़की रचना और कृषि लक्षणोंकी खोज करना चाहिये। यद्यपि तैलसे ढके जूषमें धागे प्रत्येक ताऊनी छड़में नहीं बनते तब भी कृषि लक्षणोंमें नमकीन आगर पर बिगड़े रूपोंका बनना और जूषमें धागोंका बनना अधिक विशेष लक्षण समझे जा सकते हैं। रोगोत्पादक शक्तिकी भी जांच करना चाहिये। इस कामके लिये सबसे अधिक उपयुक्त प्राणी गिनी शूकर है और उसमें छड़ोंका अधस्त्वच् अन्तःक्षेपण कर दिया जाता है। अधिकांश रोगियोंमें केवल अणुवीक्षणीय परीक्षा ही निदानके लिये पर्याप्त पाई जायगी क्योंकि ताऊन छड़की रचनाकी कोई अन्य छड़ इतनी बहु संख्यामें लसीका ग्रन्थियोंमें नहीं पाई जाती हैं। यदि कुछ घ. श. मी. रक्त निकालकर साधारण रीतियोंसे उसकी कृषि की जाय तो बहुतसे ताऊनके रोगियोंसे ताऊनकी छड़ निकाली जा सकती है। पहिले प्रथम ताऊनका संदेह न होने पर पूरा निश्चय करके ही निदान देना चाहिये।

जब कभी ताऊनी फुफुसप्रदाहका संदेह हो तो बलगमको अणुवीक्षणीय परीक्षणके अतिरिक्त कृषि लक्षणोंकी जाँच करना चाहिये और प्राणियोंमें भी बलगम घुसानेका प्रभाव देखना चाहिये। गिनी शूकरमें अधस्त्वच् अन्तःक्षेपण करना चाहिये और चूहेमें की नासिकाकी श्लेष्मल कलामें बलगम रगड़ दिया जा सकता है। फुफुसप्रदाहमें केवल बलगम अणुवीक्षणीय जांच पर ही निदान न देना चाहिये क्योंकि बलगममें ताऊनी छड़ोंके सदृश अन्य छड़ें भी पाई जा सकती है।

द्रवके द्रवमें घोल

(Liquid-Liquid Solutions.)

[श्री रा० वि० भागवत, बी. एस-सी. शिवाजी कालेज]
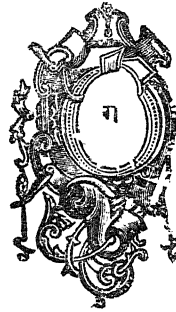
गत लेखमें घोलके विषयमें चर्चा करते समय द्रव घोलके बारेमें हमने थोड़ा बहुत कहा ही है। इस लेखांशमें उसकी विस्तृत चर्चा उपस्थित करना जरूरी है।

द्रव घोल द्रव पदार्थोंके सम्मेलनसे बनते हैं। हमको यह अच्छी तरहसे मालूम है कि दूध पानीमें मिल जाता है। वैसे ही मद्य (alcohol) और पानीका परिपूर्ण संयोग हो सकता है। इस प्रकारके संयोगसे ही द्रव घोल तैयार किये जाते हैं।

कुछ द्रव पदार्थ परस्परमें प्रत्येक परिमाणमें मिल सकते हैं, जैसे मद्य और पानी। कुछ पदार्थोंके सम्मेलनसे घोल नहीं बनता। जैसे कि पारा (mercury) और पानी। यदि पानीमें ज्वलक (ईथर) मिलाया जाय तो वह कुछ थोड़े ही परिमाणमें पानीसे मिलता है। ऐसे आंशिक-मिलनको आंशिक घोलकता (partial miscibility) कहते हैं। जो द्रव पदार्थ परस्परमें संपूर्णतासे सम्मिलित होते हैं उनमें घोल्य और घोलक (Solvant and solute) कौन है यह कहना कठिन है। इसका उत्तर यही है कि जिस पदार्थका परिमाण ज्यादा हो उसको घोलक समझा जाय और दूसरेको घोल्य कहना चाहिये।

जब ज्वलकको हम पानीके साथ हिलाते हैं तब तुरन्त ही उसके दो विभाग होते हैं। नीचेके विभागमें ज्वलक पानीमें घुला हुआ रहता है और ऊपरके विभागमें पानी ज्वलकमें मिला हुआ रहता है ये दोनों ही घोल संपृक्त घोल रहते हैं। यदि अ और ब दो द्रव पदार्थ हों (जैसे नीलिन् और पानी) और यह दो पदार्थ अंशतः घुलनशील (partially miscible) हों तो जैसे जैसे तापक्रम बढ़ता जाता

है वैसे वैसे एक की दूसरेमें घुलनशीलता (Solubility) बढ़ती जाती है और इसी कारणसे एक विभाग दूसरे विभागके अधिक निकट आता जाता है। दोनों विभागोंका परस्पर भिन्नत्व नष्ट होकर अन्तमें एक विशेष तापक्रम पर दोनों विभाग एक हो जाते हैं, और इस वक्त एक दूसरेमें प्रत्येक परिमाणमें मिल जाते हैं। नीलिन् और पानीकी बात इसी प्रकारकी है। यह नीचे दिये हुए चित्रसे अच्छी तरहसे मालूम होगा।
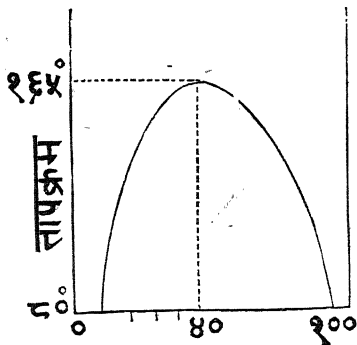
प्रतिशत नीलिन्

यह भी देखा गया है कि जैसे जैसे तापक्रम बढ़ता है वैसे वैसे अंशतः घुलनशील घोलके दोनों विभागोंकी घुलनशीलता कम हो जाती है। यह बात परमद्यानार्द्र (paraldehyde) और पानीके विषयमें देखी गयी है। दुग्धोन (लक्टोन्स) के बारेमें दोनों विभागोंकी परस्पर घुलनशीलता कुछ देर तक प्रथम कम होती जाती है और फिर वह बढ़ने लगती है।

जब किसी भी द्रव पदार्थोंमें उससे भिन्न कोई वस्तु मिलाई जाय तो इसका क्वथनांक Boiling point) बदलता है। यदि यह वस्तु भी द्रव रूप ही हो तो वस्तुके गुणानुसार क्वथनांक बढ़ता है या कम होता है। जब घोलके दोनों विभाग द्रवरूप रहते हैं यानी जब द्रव घोलके विषयमें हम विचार करते हैं तब ऐसा मालूम होता है कि एक दूसरेका वाष्प दबाव (vapour pressure) कम करता है और जब इन दोनोंके वाष्प दबावका योग बाह्य वायु दबावके बराबर हो जाता है तब घोल उबलने (Boil) लगता है क्योंकि जिस तापक्रम पर वाष्प दबाव वायु दबावके बराबर होता है उसीको उस घोलका क्वथनांक कहते हैं। यदि दारीलमद्य (methyl alcohol) और पानीका घोल लें तो यह घोल उसी तापक्रम पर उबलेगा जब दारीलमद्यका वाष्पदबाव और पानीके वाष्प दबावका जोड़ बाह्य वायु दबावके बराबर होगा। यह अच्छी तरहसे समझ लेना चाहिये कि इस घोलके क्वथनांक पर यदि दारीलमद्य और पानीका वाष्प दबाव अलग अलग स्थितिमें (घोल स्थितिमें नहीं) मालूम किया जाय तो वह घोल स्थितिमें के उसी तापक्रम वाले दबावसे अधिक रहता है क्योंकि घोल स्थितिमें एक द्रव पदार्थ दूसरे द्रव पदार्थका वाष्प दबाव कम करने की कोशिश करता है। यदि दारीलमद्य और पानीका कुछ आण्विक परिमाणमें घोल तैयार किया जाय और उसको उबलने दिया जाय तो उस घोलमें दोनोंका परिमाण (composition) बदलता चला जायगा। क्योंकि जो पदार्थ जल्दी वाष्पीभूत (vapourise) होता है वह अधिक परिमाणमें वाष्पीभूत होगा और इसी कारण उसका अधिक अंश घोलसे निकल जायगा। पूर्वोक्त उदाहरणमें दारीलमद्य जल्दी वाष्पीभूत होता है तो जैसा जैसा वाष्प परिवर्तन या स्रवण (distillation) बढ़ता जायगा वैसा वैसा उसका ज्यादा अंश वाष्पीभूत होता जायगा इसी कारणसे उनके वाष्प दबावका परिमाण कम होता जाता है और क्वथनांक बढ़ता चला जाता है क्योंकि उबलनेको दोनोंके वाष्प दबावका जोड़ वायु दबावके बराबर होना आवश्यक है। इसी तरहसे दारीलमद्य पानीसे अलग किया जा सकता है क्योंकि ज्यों ज्यों वाष्प-परिवर्तन बढ़ता जाता है क्वथनांक बढ़ते बढ़ते १००° पर आता है। यही पानीका क्वथनांक है। दारीलमद्यका क्वथनांक केवल ६६°श है। यदि घोलमें अधिक दारीलमद्य है तो उसको पानीसे अलग करना कठिन है क्योंकि यद्यपि पानीका शुद्ध स्थितिमें वाष्प दबाव बहुत होता है तो भी जब दारीलमद्य बहुत अधिक

होनेसे उसका वाष्प दबाव द्वारीलमद्य अपने अस्तित्व से बहुत कम कर देता है। और जैसा जैसा वाष्प परिवर्तन होता जाता है वैसा वैसा पानीका अंश कम होता है और द्वारीलमद्यका बढ़ता चला जाता है। इसी कारणसे पानी को द्वारीलमद्यसे अलग करना और भी कठिन हो जाता है।

कुछ द्रव घोल ऊपर बनाए हुये घोलमें दूसरी प्रकारका बर्ताव करते हैं। जब ऐसे घोलका वाष्प परिवर्तन किया जाता है तब इसके दो विभाग अलग नहीं किये जा सकते किन्तु एक विभाग, और दूसरा स्थिर (constant) क्वथनांकका मिश्रण ऐसे दो भाग होते हैं। यह मिश्रण स्थिर क्वथनांक पर उबलता है, और इसी कारणसे जब उसका स्रवण किया जाता है तब इसके दोनों विभाग अलग नहीं होते, और इसी सबबसे घोलके दोनों विभागों-का परिमाण घोलमें और उसके वाष्पमें एकही होता है। स्थिर क्वथनांक मिश्रणसे अधिक रहता है या कम रहता है। अग्नीलमद्य (propyl alcohol) और पानीके बारेमें जब पानीके २५ और मद्यके ७५ भाग होते हैं तब इन मिश्रणका वाष्प दबाव दूसरे किसी भी मिश्रणसे अधिक होनेसे जब इनके मिश्रणका स्रवण किया जाता है तब वाष्पीभूत हिस्सेमें अग्नीलमद्य और पानी बताये हुये विभागमें रहते हैं। इन मिश्रणका क्वथनांक दूसरे किसी भी मिश्रणसे कम होता है क्योंकि इसका वाष्पदबाव सबसे अधिक है। यही बात नीचेके चित्रमें आड़ी रेखा पर मिश्रणांश और खड़ी पर तापक्रम बताकर समझायी है। और इस मिश्रणके वाष्पमें इसके विभागोंका अंश भी बताया है। जब मिश्रण और इसकी भाप दोनोंमें उनके विभागोंका अंश एक ही होता है, तब स्थिर क्वथनांक मिश्रण तैयार होने लगता है।

यदि जिस मिश्रणका हम स्रवण करना चाहते हैं इसका परिमाण ८० हिस्से अग्नील मद्य और २० हिस्से पानी हो तो उनके स्रवणमें वाष्पीभूत घोलका परिमाण कम रहेगा यानी अग्नील-मद्यका परिमाण कम हो जायगा इससे यह मालूम हो सकता है कि जब अग्नीलमद्य और पानीके घोलका

प्रतिशत अग्नील मद्य
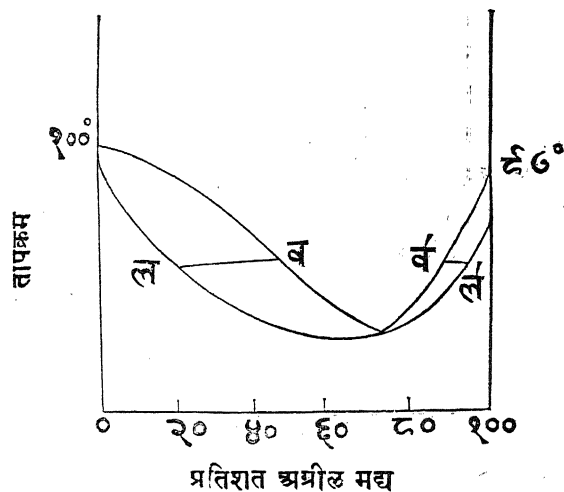
परिमाण ७५ भाग पर हो तो स्रवणसे कुछ लाभ नहीं क्योंकि, वाष्पीभूत घोलमें मद्यका अंश ७५ से अधिक नहीं हो सकता और इसलिये अग्नीलमद्य का वाष्प परिवर्तनसे अधिक संपृक्त घोल नहीं बन सकता है।

पिपीलिकाम्ल (formic acid) और पानीके घोलमें जब परिमाण ७५ अंश अम्लका और २५ पानीका रहता है तब इस घोलका वाष्प दबाव सबसे कम होनेके कारणसे और इसीलिये इसका क्वथनांक दूसरे परिमाणके किसी भी घोलसे अधिक होनेसे जब पिपीलिकाम्ल और पानीका किसी भी परिमाणके घोलका वाष्प परिवर्तन किया जाय तो पीछे रहे हुए घोलका परिमाण ऊपर दिये हुये परिमाणके निकट आने लगता है।

ऊपर बताये हुए स्थिर-क्वथनांक घोलको कुछ बरस पहिले एक-रासायनिक यौगिक समझते थे क्योंकि इनका परिमाण यौगिकोंके समान स्रवण करनेसे बदलता नहीं था। नोषिकाम्ल और पानीका ६८ भाग अम्ल और ३२ भाग पानी इस परिमाणका घोल स्थिर क्वथनांक पर (१२६ श पर) उबलता है। यही बात उदहरिकाम्ल २०.२ भाग और पानी ७९.८ भाग घोलके विषयमें भी कही जा सकती है। वह

घोल ११०°श पर उबलता है, यह बात अब सिद्ध की गयी है कि ऐसे स्थिर क्वथनांक पर उबलनेवाले घोल, यौगिक होते हैं यह बात नहीं हैं। जब ऐसे घोलके ऊपरका वायु दबाव (atomospheric pressure) कम या अधिक होता है तब उनका परिमाण भाग बदलता है, ऐसी बात यौगिकोंके विषयमें नहीं होती है।

अभी तक हमने ऐसे घोलके बाष्प परिवर्तनका विचार किया कि जिसमें दोनों भी भाग किसी परिमाणमें मिल सकते हैं। अब हम अंशतः घुलनशील पदार्थोंके घोल स्रवणके संबन्धमें विचार करेंगे।

जब अंशतः घोलका स्रवण किया जाता हैं तब, जब तक ऐसे घोलके दोनों भाग एकके ऊपर एक ऐसे रहते हैं और एक विभाग नष्ट नहीं होता तब तक बाष्पीभूत पदार्थका परिमाण स्थित रहता है यानी बदलता नहीं है। जब एक भाग नष्ट हो जाता है तब रहा हुआ घोल प्रथम विभागमें बताये हुए घोलके समान ही होनेके कारणसे उसीके समान स्रवित होता है। दोनों विभाग एक दूसरेमें प्रविष्ट होनेसे इन दोनोंका बाष्प दबाव एक ही होना चाहिये और इसीलिये उनका क्वथांक एक रहता है और बाष्पीभूत भागका परिमाण स्थिर होता है क्योंकि बाष्प परिवर्तनसे इन दोनों भागोंका परस्पर परिमाण ही केवल कम होता है।

जब दो द्रव पदार्थोंके परस्परमें मिलाये जानेसे घोल तैयार नहीं होता अर्थात् जब उनका मिश्रण तैयार होता है तब ऐसे मिश्रणका क्वथनांक दोनोंभी विभागके पृथक् पृथक् बाष्प दबावपर अवलंबित होता है। इन दोनोंके बाष्प दबावकी जोड़ जब बाह्य दबाव के बराबर होगा तब यह मिश्रण उबलने लगेगा। इस प्रकार यह बात ध्यानमें रखनी आवश्यक है, कि एक का बाष्प दबाव अपने अस्तित्वसे दूसरेके दबावको कम या अधिक नहीं कर सकता अर्थात् उनका बाष्प दबाव मिश्रणमें और विभक्त स्थितिमें एकही रहता है। इससे यह बात सिद्ध है कि ऐसे मिश्रणका क्वथनांक उसके किसी भी विभागके क्वथनांकसे कम रहेगा। बाष्प स्रवण (steam distillation) का तत्व यही है। यदि एक द्रव पदार्थका क्वथनांक अधिक हो तो भी वह पानीके भापके साथ स्रवित होता है क्योंकि, जब उसका विभक्त स्थितिमें होता है तब उसी अकेलेका बाष्प दबाव रहता है लेकिन पानीके साथ उसका भी बाष्प दबाव होता है और पानीका भी बाष्प दबाव होता है। इन दोनोंका जोड़ किसीभी तापक्रमपर उसी तापक्रम परके अकेले के बाष्प दबावसे अधिक रहता है इसीलिये क्वथनांक कम होता है। नोषबानजावीनका बाष्प स्रवण (steam distillation) इसी सिद्धान्त पर निर्भर है।

टंकम् और स्फटम्

[Boron and Aluminium.]

(ले० श्री सत्यप्रकाश एम. एस-सी)

आवर्त संविभागके तृतीय समूहमें टंकम्, स्फटम्, स्कन्दम्, गालम्, यित्रम्, नीलम्, और थैलम् तत्व हैं। इनमें से टंकम्, स्फटम्, गालम, और थैलम् मुख्य हैं। इन तत्वोंके परमाणु-भार आदि भौतिक गुण नीचे की सारिणीमें दिये जाते हैं—

इस सारिणी को देखनेसे पता चलेगा कि तत्वोंका ज्यों-ज्यों परमाणुभार बढ़ता जाता है घनत्वमें भी वृद्धि होती जाती है पर आपेक्षिकताप कम होता जाता है। गालम् तत्व दस्तब्लैण्डी और बौक्साइट खनिजोंमें पाया जाता है। यह २९.७५° पर ही गलने लगता है अतः यही ग्रीष्म ऋतुमें पारदके समान द्रव तत्व माना जा सकता है।

तत्व	संकेत		परमाणुभार	घनत्व	द्रवांक	कथनांक	आपेक्षिकताप
टङ्कम्	ट	B	१०.९	२.५?	२०००°-२५००°	—	.३०७
स्फटम्	स्फ	Al	२७.१	२.६५	६५७°	१८००	.२१९
गालम्	गा	Ga	७०.१	५.९५	३०.२	—	.०७९
थैलम्	थै	Tl	२०४.०	११.३	१९९०	—	.०२८

खनिज

टंकम् - टंकम्में तृतीय समूहके अन्य समूहों की अपेक्षा आम्ल-गुण अधिक हैं। शैलम्के समान इसके अम्ल-लवणों को टंकेत (borate) कहते हैं। सुहागा या बोरेक्स, $सै_2 ट_4 ओ_7$. १०$उ_2$ ओ में से टंकम् तत्व प्राप्त किया जाता है। इस सुहागासे ही बहुधा अन्य लवण तैयार किये जाते हैं। सुहागा मुख्यतः केलीफोर्नियांकी बोरेक्स झीलसे प्राप्त होता है। निम्न खनिजोंसे भी तैयार किया जा सकता है :—

कोलीमेनाइट—$ख_2 ट_6 ओ_{11}$.५ $उ_2$ ओ—एशिया माइनर और अमरीका में।

बोरेसाइट—२ $म_3 ट_8 ओ_{15}$. $मह_2$—स्टैसफर्ट में

स्फटम्—यह तत्व बहुत विस्तारसे पाया जाता है। पृथ्वीके पृष्ठ तलमें ७.३ प्रतिशतके लगभग यह शैलेत रूपमें मिलता है। फेलसपार, टूरमेलिन, माइका आदि खनिजोंमें यह विद्यमान रहता है। मिट्टीमें यह $स्फ_2 ओ_3$. २ शै ओ$_2$ २ $उ_2$ ओ रूपमें रहता है। बोक्साइट, $स्फ_2 ओ_3$; कोरण्डम् $स्फ_2 ओ_3$; फेलसपार, पां स्फ $शै_3 ओ_8$, केओलिन $स्फ_2 ओ_3$ २ $शै ओ_2$ २ $उ_2$ ओ, क्राओलाइट, $सै_3$ स्फ $प्ल_6$ इसके मुख्य खनिज हैं।

उपलब्धि

टंकम्—यह बहुधा टंकिकाम्ल (बोरिकाम्ल) से तैयार किया जाता है। टंकिकाम्ल सुहागा और खनिजाम्लके संसर्गसे बनता है। सं० १८५९ वि०में डेवीने टंकिकाम्लका विद्युत् विश्लेषण करके इसे तैयार किया था। इसके अतिरिक्त यदि गरम करके गलाये हुए टङ्किक ओषिद $ट_2 ओ_3$, को पांशुजम्के साथ गरम करें तो भी टङ्कम् तत्व मिल सकता है:—

$$ट_2 ओ_3 + ३पां = २ट + ३ पां_2 ओ$$
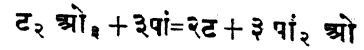
गेलूसक और थेनार्डने इसी विधिका व्यापारिक मात्रामें उपयोग किया। यदि टङ्किक ओषिदके स्थान पर पांशुज-टङ्क-प्लविद, पांटप्ल$_4$, को पांशुजम्के साथ गरम किया जाय तो टङ्कम् और भी अधिक शीघ्र मिल सकता है।

$$पांटप्ल_4 + ३ पां = ट + ४ पांप्ल$$
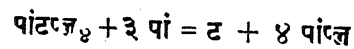
पर सबसे सरल विधि यह है कि टंकिक ओषिद को मग्नीसम् चूर्णके साथ गरम किया जाय:—

$$ट_2ओ_3 + ३म + = २ ट + ३ मओ$$
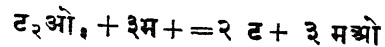
इस प्रकार प्राप्त पदार्थमें हलका उदहरिकाम्ल (१ : २) डालनेसे टङ्कम् अनघुल रह जायगा और घुलनशील मगनीसम् हरिद छानकर अलग कर लिया जा सकता है।

स्फटम्—मिट्टीसे स्फट-धातु प्राप्त करनेकी कोई विधि अबतक ज्ञात नहीं हुई है। बहुधा बोक्साइट से ही स्फटम् प्राप्त किया जाता है। इस विधिके लिये यह आवश्यक है कि स्वच्छतम स्फट-ओषिद प्राप्त

किया जाय। बौक्साइटमें लोह आदि की अशुद्धियां होती हैं। इसके लिये दो विधियां हैं :—

(अ) जर्मन विधि—बौक्साइटको सैन्धक कर्बनेत के साथ गरम करके इसे सैन्धक स्फटेत, सै स्फओ₂ में परिणत कर लेते हैं।

स्फ₂ ओ₃ + २ सै ओउ = २ सै स्फओ₂ + उ₂ ओ

फिर इस सैन्धक-स्फुरतके घोलमें कर्बन द्विओषिद प्रवाहित करके स्फट-उदौषिद को अवक्षेपित कर लेते हैं :—

२ सै स्फ ओ₂ + क ओ₂ + ३उ₂ ओ
= सै₂ कओ₃ + २स्फ (ओउ)₃

स्फट उदौषिद को तप्त करनेसे शुद्ध स्फट ओषिद, स्फ₂ ओ₃, मिल जाता है।

(आ) बायर विधि—८० पौण्ड दबावके अन्दर बौक्साइट को सैन्धक उदौषिद क्षार द्वारा संचालित करते हैं। इस प्रकार सैन्धक स्फटेत मिल जाता है और अनघुल लोह ओषिद अलग हो जाता है। इस घोलमें अवक्षेपित स्फट ओषिद डालते हैं जिसमें सम्पूर्ण स्फट ओषिद श्वेत सूक्ष्म चूर्णके रूपमें अवक्षेपित हो जाता है। इसको गरम करके शुद्ध स्फट ओषिद प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार प्राप्त स्फट ओषिद को विद्युत् भट्टीमें गरम करके विद्युत् विश्लेषण करते हैं। विद्युत भट्टी का चित्र नीचे दिया जाता है।
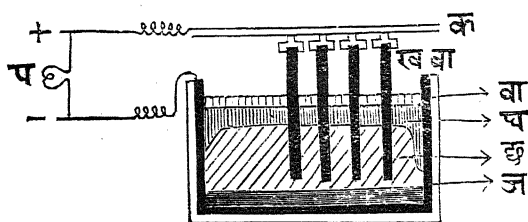
क=कर्बन धनोद
ख=कर्बन-तह
बा=ढलवा लोह का पात्र
घ=जमे हुए स्फट ओषिद की पपड़ी
छ=पिघला हुआ स्फट ओषिद
ज=पिघली हुई स्फट-धातु
प=नियमित करने के लिये कम वोलटेजकी लम्प

विद्युत् विश्लेषणके लिये स्फट ओषिदको लोहेके बर्तनमें रखते हैं। यह बर्तन ऋणोदका काम देता है। धनोद कर्बनकी छड़ोंके होते हैं। स्फट ओषिदकी बाधाके कारण बड़ी गरमी पैदा होती है जिससे स्फट ओषिद गल जाता है। इसके उपरान्त विद्युत विश्लेषण प्रक्रिया आरम्भ होती है। स्फट धातु नीचे तहमें बैठ जाती है और ओषजन धनोद पर जाकर कर्बन एकोषिदमें परिणत हो जाता है और बाहर उड़ जाता है। यदि स्फट ओषिदके साथ थोड़ा सा क्रायोलाइट भी मिला दिया जाय तो पिघलने में आसानी होती है।

धातुओंके गुण

टंकम्—इसके द्रवांक घनत्व आदि पूर्व सारिणी में दिये जा चुके हैं। टंकम् साधारण तापक्रमपर वायुसे प्रभावित नहीं होता है पर ७००° तक गरम करनेसे यह ओषिद एवं वायुका नोषजन ग्रहण करके टंक नोषिद, टनो, में परिणत हो जाता है। उपर्युक्त विधियोंसे प्राप्त टंकम् चूर्ण रूपमें होता है। रवादार बनानेके लिये इसे स्फटम् धातुके साथ गलाते हैं। मिश्रणको ठंडा करनेपर गले हुए स्फटम्के पृष्ठतल पर टंकम्के रवे पृथक् होने लगते हैं जिन्हें अलग कर लिया जाता है। बालूके साथ टंकम्को गरम करने से शैलम् पृथक् हो जाता है।—

३ शै ओ₂ + ४ट = २ट₂ ओ₃ + ३शै

स्फटम्—यह नीलापन लिए हुए श्वेत धातु है। इसका पृष्ठतल वायुमें अप्रभावित बना रहता है क्योंकि ऊपर ओषिदकी एक पतली तह बन जाती है। स्फटम्-पत्र या छीलन foil or filings) को पारदिक हरिदके घोलमें डालनेसे स्फट के ऊपर बुदबुदे दिखाई पड़ेंगे और स्फट-पारद मेल बन जायगा।

शुद्ध जलका स्फटम् पर कम प्रभाव पड़ता है पर खारी जल द्वारा स्फटम् में छिद्र हो जाते हैं। शुद्ध स्फटम् पर हलके एवं तीव्र नोषिकाम्लका कुछ भी प्रभाव नहीं होता है। हलके गन्धकाम्लका भी कुछ असर नहीं होता पर तीव्र गन्धकाम्ल द्वारा गरम करने पर गन्धक द्विओषिद निकलने लगता है—

२ स्फ + ६उ२ ग ओ४ = स्फ२ (ग ओ४)३
+ ६उ२ओ + ३गओ२
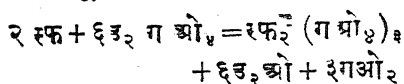
क्षारोंके घोलमें स्फटम् शीघ्र घुल जाता है और स्फटेत (aluminate) बन जाते हैं।

२स्फ + २सै ओउ + २उ२ओ
= २सै स्फ ओ२ + ३उ२
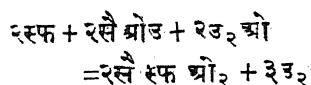
घोलमें इन स्फटेतोंका उदविश्लेषण होने पर स्फट उदौषिद अवक्षेपित हो जाता है—

सै स्फ ओ२ + २उ२ओ = सै ओउ + स्फ (ओउ)३

यदि स्फटम् और लोह ओषिदके मिश्रणको घरिया में मगनीसम् तार द्वारा जलाया जाय तो इतना ताप जनित होता है कि अवकृत लोहा पिघल जाता है :—

लो२ओ३ + २स्फ = स्फ२ओ३ + २लो
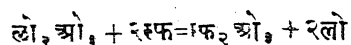
इस विधिका उपयोग गोल्डस्मिथ की तप्त-विधि (thermit process में धातु ओषिदोंके अवकरण करनेके लिये किया जाता है। लोहेके टूटे बर्तनोंके जोड़नेमें भी इसका उपयोग होता है।

स्फटम्के बहुतसे धातु संकरोंका भी उपयोग किया जाता है। हलके होनेके कारण वायुयान, मोटर-कार, आदि में इसका उपयोग किया जाता है। मुख्य धातु संकर ये हैं —

मगनेलियम — ९०-९८% स्फट + १०—२% मगनीसम्

डेरेलुमिन—९४·४ स्फट + ०·९५ मगनीसम् + ४·५ तांबा + ०·७६ मांगनीज़—इसका वायुयान में में उपयोग होता है।

स्फटकांसा—९० ताँबा + १० स्फट
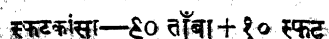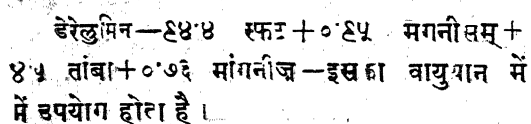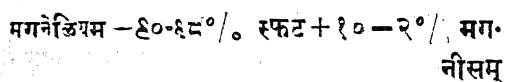
टंकम्के ओषिद और अम्ल

टंकम् ओषिद, ट२ ओ३, यह टंकिकाम्लको रक्त तप्त करनेसे प्राप्त होता है। टंकम्को वायुमें जलाने पर भी यह बन सकता है। यह श्वेत चूर्ण है और श्वेतताप पर ही उड़नशील है। जलके संसर्गसे यह टंकिकाम्लमें परिणत हो जाता है।

टंकिकाम्ल – बोरिक एसिड — उ३टओ३ – बोरेक्स यानी सुहागाको उदहरिकाम्ल आदि खनिजाम्लोंसे प्रभावित करनेसे यह प्राप्त होता है। ठंडे पानीमें यह कम घुलनशील है पर गरम जलमें भली प्रकार घुल जाता है। इसका घोल आँखोंके धोने में बहुत उपयुक्त होता है।

सै२ट४ओ७ + २उह + ५उ२ओ
= ४उ३टओ३ + २सैह
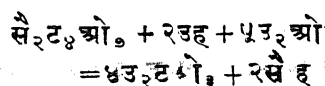
टसकेनीके ज्वालामुखी प्रदेशोंमें विशेष करके भापके फव्वारे निकलते रहते हैं जिन्हें सफियोनी (Suffioni) कहते हैं। इन फव्वारोंमें भाप, नोषजन, अमोनिया और टंकिकाम्लका थोड़ासा अंश होता है। ऐसा अनुमान है कि टंक नोषिद, टनो, पर परितप्त भापका प्रभाव पड़नेसे टंकिकाम्ल बन जाता है, और उड़नशील होनेके कारण यह अम्ल फव्वारेमें पहुँच जाता है। टसकेनीमें टंकिकाम्ल-का बहुत व्यवसाय होता है। दो तीन सफियोनीके चारों ओर बड़े बड़े हौज़ बना देते हैं। यहां भापको पानी द्वारा द्रवीभूत करते हैं। इस प्रकार टंकिकाम्ल-का हलका घोल मिलता है। इस घोलको उन्हीं फव्वारोंकी गरमीसे तपाकर गाढ़ा कर लेते हैं। विशेषता यही है कि किसी प्रकारका बाहरी ईंधन खर्च नहीं करना पड़ता है। इस गाढ़े द्रवको फिर दूसरे हौज़में भेजते हैं। वहाँ यह और गाढ़ा हो जाता है। पर्वतीय स्थलोंमें ये हौज़ ढालपर एक दूसरेके नीचे बनाये गये हैं और नालियों द्वारा एकका द्रव दूसरे हौज़में आसानीसे भर दिया जाता है इस प्रकार कई हौज़ोंमें गरम होनेके बाद, जब घोलमें लगभग २

प्रतिशत टंकिकाम्ल हो जाता है, सीसा-सातुके कड़ाहों में द्रवको भापद्वारा गरम करते हैं। टंकिकाम्लके रवे पृथक् होने लगते हैं जिन्हें अलग करके सुखा लेते हैं।

टंकिकाम्लके लवण—टंकेत—टंकिकाम्ल स्फुरिकाम्लके समान निर्बल अम्ल है। लिटमस-द्योतक पत्र या घोलपर इसका उतना ही प्रभाव होता है जितना कर्बनिकाम्ल का। नारंगी द्रवील (मिथाइल आरेंज) पर इसका असर नहीं होता है। यह तीन प्रकारके अम्लोंके लवण देता है :—

पूर्व टंकिकाम्ल—orthoboric acid—$उ_3 ट ओ_3$

मध्य टंकिकाम्ल—meta boric—उ ट ओ$_2$

उष्म टंकिकाम्ल—pyroboric—$उ_2$ $ट_4$ $ओ_7$

उष्म टंकिकाम्लके लवण अधिक प्रसिद्ध हैं। साधारण टंकिकाम्ल पूर्व टंकिकाम्ल है। इसके रवे मुलायम, चिकने और रेशमसे चमकने वाले होते हैं। १००° श तक गरम करनेसे पूर्व टंकिकाम्ल जल त्याग करके मध्य टंकिकाम्लमें परिणत हो जाता है

$$उ_3 ट ओ_3 = उ ट ओ_2 + उ_2 ओ$$

पूर्व टंकिकाम्लको १४०° श तक गरम करनेसे उष्म टंकिकाम्ल मिलता है।

$$४ उ_3 ट ओ_3 = उ_2 ट_4 ओ_7 + ५ उ_2 ओ$$

यदि रक्त तप्त किया जाय तो टंकिक ओषिद, $ट_2$ $ओ_3$, मिल जायगा।

पूर्व टंकेत—मगनीस टंकेत, $म_3$ $(टओ_3)_2$, और ज्वलील टंकेत ट (ओ $क_2$ $उ_5$)$_3$ मुख्य हैं।

उष्म टंकेत—पूर्व टंकिकाम्लमें सैन्धक कर्बनेत या सैन्धक उदौषिद डालनेसे उष्म टंकेत बनता है, न कि पूर्व टंकेत। इसको ही सुहागा या बोरेक्स, $सै_2$ $ट_4$ $ओ_7$, कहते हैं।

$$४ उ_3 ट ओ_3 + सै_2 कओ_3 = सै_2 ट_4 ओ_7 + कओ_2 + ६ उ_2 ओ$$

तिब्बत आदि स्थानोंमें सुहागाके रवे पाये जाते हैं। इनमें स्फटिकी करणके १० जलाणु होते हैं। इन रवों को गरम करने पर जलाणु निकल जाते हैं और सुहागा फूल जाता है। और अधिक गरम करने पर यह पिघल कर अनार्द्र हो जाता है। इसे अब सुहागा-कांच, (borax glass) कहते हैं। अनेक धातुओंके ओषिद इस कांचमें घुल जाते हैं और घुलकर अलग अलग विशिष्ट रंग देते हैं। इन रंगोंको देखकर अनेक धातुओंकी पहिचानकी जा सकती है। एक कांचकी नली लो, जिसमें परौष्म् तार लगा हो। इस तारके सिरेको जरासा मोड़ लो। तारमें अब थोड़ा सा सुहागा लो और बुन्सन दग्धक पर गरम करो। सुहागा पिघलने लगेगा। रक्त तप्त होने पर परौष्म् तारके सिरेपर कांचकी एक पारदर्शक घुंडी दिखाई पड़ेगी। ताम्र, कोबल्ट, मांगनीज आदिके लवण इस घुंडीसे छुआओ और गरम करो। अब देखो कि सुहागाकी घुंडीमें कैसा रंग है। कोबल्ट नीला रंग देता है, मांगनीज हरा। घुंडियोंमें धातुओंके मध्य टंकेत बनते हैं।

$$सै_2 ट_4 ओ_7 + ताओ = ता (टओ_2)_2 + २ सै टओ_2$$

मध्य टंकेत—धातु लवणोंके घोलमें सुहागाका घोल डालनेसे मध्य टंकेत अवक्षेपित होते हैं। भारहरिदसे भार मध्य टंकेत निम्न प्रकार मिलता है—

$$सै_2 ट_4 ओ_7 + भह_2 + उ_2 ओ = भ (ट ओ_2)_2 + २सै ह + २ उ ट ओ_2$$

सुहागाको सैन्धक कर्बनेतके साथ गलानेसे भी सैन्धक मध्य टंकेत प्राप्त होता है।

$$सै_2 ट_4 ओ_7 + सै_2 क ओ_3 = ४ सै ट ओ_2 + कओ_2$$

टंकेत और टंकिकाम्लकी पहिचान—१. टंकिकाम्लमें या टंकेतको उदहरिकाम्ल द्वारा आम्ल बनाकर घोलमें हल्दीसे रंगा हुआ कागज डुबाया जाय तो यह कागज सूखने पर लाल पड़ जायगा।

२. सुहागामें थोड़ा सा ज्वलील मद्य मिलाओ। फिर इसमें थोड़ासे तीव्र गन्धकाम्ल भी मिलादो। अच्छी तरह हिलाकर मद्यको दग्धककी ज्वालासे जला दो। टंकेत या सुहागाकी विद्यमानतामें घोलकी ज्वालामें हरा रंग दिखाई पड़ेगा। यह हरी ज्वाला ज्वलील टंकेतकी ज्वाला है।

टंकम्के अन्य यौगिक

टंकिक उदिद् (hydride) —टंकिक ओषिद्, $ट_2 ओ_3$, और मगनीसम् चूर्णके समभार लेकर गरम करनेसे मगनीस टंकिद् बनता है। यह टंकिद् अम्लोंके संसर्गसे विचित्र गन्धकी एक गैस देता है जो हरी ज्वालासे जलती है। रैमजेका विचार है कि इसमें कई तरहके टंकिक उदिद् हैं।

टंकिक प्लविद्, $टप्ल_3$, टंकम् प्लविन गैसमें जल उठता है और टंक प्लविद् बन जाता है। फ्लोरस्पार (खटिक प्लविद्), टंकिक ओषिद्, और तीव्र गन्धकाम्लको भभकेमें गरम करनेसे भी यह मिल सकता है—

$ट_2 ओ_3 + ३ ख प्लु_2 + ३ उ_2 ग ओ_4$

$= २ ट प्ल_3 + ३ ख ग ओ_4 + ३ उ_2 ओ$
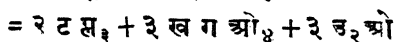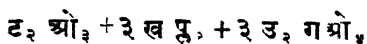
यह प्लविद् गैस है और पारदके ऊपर संचित की जा सकती है। नम वायुमें यह धुंआदार हो जाती है।

टंकिक हरिद्, $ट ह_3$—टंकम् चूर्णको हरिन्में जलानेसे यह मिलता है। टंकिक ओषिद् और कोयलेके मिश्रणको तपाकर हरिन् प्रवाहित करनेसे भी यह मिल सकता है:—

$ट_2ओ_3 + ३ क + ३ ह_2 = २ ट ह_3 + ३ क ओ$
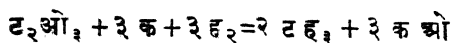
यह द्रव है और जलके संसर्गसे उद्विश्लेषित हो जाता है—

$ट ह_3 + ३ उ_2 ओ = उ_3 ट ओ_3 + ३ उ ह$
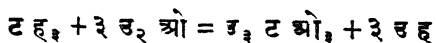
टंकनोषिद्, ट नो—टंकम्को नोषजनमें तप्त करनेसे टंकनोषिद् बनता है।

सुहागाको अमोनियम हरिदके साथ गरम करनेसे भी नोषिद् प्राप्त हो सकता है—

$सै_2ट_4ओ_7 + ४ नोउ_4ह$

$= ४ ट नो + २ सै ह + २ उ ह + ३ उ_2 ओ$
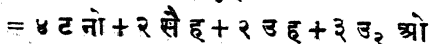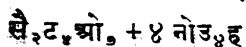
यह श्वेत पदार्थ है जो गलाया नहीं जा सकता है। क्षार, अम्ल और हरिन् द्वारा रक्तताप पर भी प्रभावित नहीं होता है।

स्फटम् के यौगिक

स्फट ओषिद, $स्फ_2 ओ_3$—कोरण्डम् खनिजमें यह पाया जाता है। अनेक रंग विरंगे रत्न इस कोरण्डमकी जातिके पाये जाते हैं—

ओरियंटल टोपाज पीला होता है, नीलम (सैफाइर) नीला होता है। इसका नीला रंग कोबल्टम्, रागम्, और टिटेनम्के ओषिदोंके कारण होता है। लाल या रूबी राग-ओषिदके कारण लाल होता है। ओरियंटल एमीथीस्ट मांगनीजके कारण बैंजनी होता है।

कृत्रिम लाल (रूबी) स्फट ओषिद् और राग ओषिद (२.५%) से बनाया जाता है। दोनों के मिश्रणको ओष उद्जन ज्वालाके मध्य भागमें होकर गिराते हैं। पिघले हुए पदार्थको स्फट ओषिद्के छड़ पर रोक लेते हैं। यहां यह रवेदार बन जाता है और छड़ परसे इसे अलग काट लेते हैं। कृत्रिम नीलम (सैफाइर) में १.५% लोहिक ओषिद, $लो_3 ओ_4$ और ०.५% $टि ओ_2$, स्फट ओषिदमें मिलाया जाता है।

जब किसी स्फटलवण (फिटकरी) आदिमें अमोनिया या सैन्धक क्षार डाला जाता है तो श्वेत झिल्लीदार अवक्षेप प्राप्त होता है। यह स्फट उदौषिद, स्फ (ओउ)$_3$ का अवक्षेप है। इसको रक्ततप्त करनेसे स्फट ओषिद, $स्फ_2ओ_3$ प्राप्त होता है। साधारणतः यह ओषिद खनिजाम्लोंमें घुलनशील है पर यदि अति उच्च तापक्रम तक गरम किया गया है तो यह अम्लोंमें अनघुल हो जाता है। ऐसी अवस्थामें यह दाहक सैन्धकक्षार अथवा पांशुज अर्ध गन्धेत द्वारा गलाकर सैन्धक या पांशुज स्फटेतमें परिणत होकर ही घोल बन सकता है।

प्रकृतिमें बहुतसे स्फटेत पाये जाते हैं यथा मगनीस स्फटेत, स्पाइनल, म $स्फ_2 ओ_4$। स्फट ओषिद और कोबल्ट नोषेतको धौंकनीसे गरम करनेसे कोबल्ट स्फटेत, को $स्फ_2ओ_4$, नामक नीला पदार्थ मिलता है जिसे थेनार्ड नील (Thenard's blue) कहते हैं।

स्फट हरिद, $स्फ_2ह_6$—स्फटम् को उदहरिकाम्ल गैसमें गरम करनेसे अनार्द्र स्फटहरिद प्राप्त होता है।

$$२स्फ + ६उह = स्फ_२ह_६ + ३उ_२$$

स्फट ओषिद् और कर्बनके मिश्रणको हरिन्के प्रवाहमें गरम करनेसे भी मिल सकता है:—

$$स्फ_२ ओ_३ + ३ह_२ + ३क = स्फ_२ह_६ + ३कओ$$

अनार्द्र स्फटहरिद श्वेत रवेदार पदार्थ है। १८३° श पर बिना पिघले ही इसका ऊर्ध्व पातन हो जाता है। यह बड़ी जल्दी पसीज कर रवेदार श्वेत स्फह_३·६ उ_२ओ में परिणत हो जाता है। जलमें यह उद्-विश्लेषित हो जाता है—

$$स्फ ह_३ + ३ उ_२ ओ = स्फ(ओउ)_३ + ३उह$$

स्फट अरुणिद, स्फ रु_३ (द्रवांक ९३°) और नैलिद, स्फनै_३ (द्रवांक १८५°) भी स्फटम् और लवणजन तत्वोंके संयोगसे बनाये जा सकते हैं। स्फटम्को उद्प्ल विकाम्लकी अधिक मात्रामें घोलनेसे स्फट-प्लविद, स्फप्ल_३ भी बनाया जा सकता है।

स्फट गन्धेत – स्फ_२(गओ_४)_३—स्फटओषिद्को गरम तीव्र गन्धकाम्लमें घोलकर ठंडा करनेसे स्फट गन्धेतके रवे प्राप्त हो सकते हैं। रवोंमें १८ जलाणु होते हैं। गरम करनेसे श्वेत अनार्द्र स्फट गन्धेत मिल जाता है। केओलिन (मिट्टी) को तीव्र गन्धकाम्ल के साथ गरम करके भी यह बनाया जा सकता है। यह श्वेत घुलनशील पदार्थ है।

फिटकरी (Alums)—वस्तुतः अमोनियम गन्धेत और स्फट गन्धेतके द्विगुण लवणको फिटकरी नाम दिया गया था।

फिटकरी—(नोउ_४)_२गओ_४ स्फ_२(गओ_४)_३२४उ_२ओ

इसके अष्टतलीय रवे होते हैं। इसी प्रकार पांशुज फिटकरी (potash alum) पां_२ ग ओ_४, स्फ_२ (गओ_४)_३ २४ उ_२ ओ, भी प्रसिद्ध है। अमोनियम-फिटकरी शेल-एलम से बनाई जाती है। इस पदार्थ में स्फट शैलेतके साथ साथ लोह गन्धिद, लो ग_२, भी रहता है। इसे वायुमें भूंजते हैं। ऐसा करनेसे यह स्फट गन्धेतमें परिणत हो जाता है। इसे क घोलर सुखा लेते हैं और इसमें अमोनियम गन्धेत छोड़कर फिर स्फटिकीकरण करनेसे अमोनिया-फिटकरीके रवे प्राप्त होते हैं।

पांशुज-फिटकरी एलुनाइट पत्थर, पां_२ गओ_४, स्फ_२ (गओ_३)_३ ४ स्फ (ओउ)_३, को वायुमें भूंजनेसे प्राप्त होती है।

इन दो फिटकरियोंके अतिरिक्त राग-फिटकरी (क्रोम-एलम) पां_२ गओ_४ रा_२ (गओ_४)_३ २४ उ_२ ओ और लोह फिटकरी पां_२ गओ_४ लो_२ (गओ_४)_३. २४ उ_२ओ, भी प्रसिद्ध हैं। वस्त्रोंके रंगनेमें ये बंधकों (mordant) के काममें उपयुक्त होता है।

स्फट-नोषेत - स्फ (नोओ_३)_३ ६ उ_२ ओ—स्फट गन्धेत और सीस नोषेत के घोलको मिला कर छानने और वाष्पीभूत करनेसे यह प्राप्त होता है। यह श्वेत रवेदार पदार्थ हैं। इसको गरम करनेसे स्फट ओषिद मिलता है—

स्फट नोषिद—स्फनो—स्फटम् को नोषजनमें ७४० तक गरम करने से स्फट नोषिद, स्फनो, प्राप्त होता है। बौक्साइट और कर्बन के मिश्रणको नोषजन के प्रवाहमें गरम करनेसे भी यह मिल सकता है।

$$स्फ_२ ओ_३ + ३ क + नो_२ = २स्फ नो + ३ कओ$$

यह पीला या मटमैला रवेदार पदार्थ है। गरम हल्के क्षारके प्रभावसे यह अमोनिया देने लगता है।

$$२ स्फनो + ३ उ_२ ओ = स्फ_२ ओ_३ + २ नोउ_३$$

सर्पेक विधिमें अमोनिया बनानेमें इस विधिका उपयोग किया जाता है।

स्फट-गन्धिद—स्फ_२ग_३—स्फटम् और गन्धकके संयोगसे यह बन सकता है। स्फट ओषिद और कर्बन के मिश्रण पर गन्धक की वाष्प प्रवाहित करने से भी मिल सकता है। जलके संसर्गसे इसका पूर्णतः विश्लेषण हो जाता है—

$$स्फ_२ ग_३ + ६ उ_२ ओ = २ स्फ (ओउ)_३ + ३ उ_२ ग$$

स्फट स्फुरेत—स्फ स्फुओ_४, स्फट-लवणके घोलमें सैन्धक स्फुरेतका घोल डालनेसे स्फट स्फुरेत का श्वेत

अवक्षेप प्राप्त होता है। यह दाहक क्षारों एवं खनिजाम्लोंमें घुलनशील है पर अमोनियामें अनघुल है।

अल्ट्रामेरीन—ये रंगदार पदार्थ हैं और पेंट, (रंग), वार्निश आदिके काममें व्यवहृत होते हैं—

(१) श्वेत अल्ट्रा मेरीन—१०० भाग केओलिन मिट्टी, ७० भाग सैन्धक राख, ८० भाग गन्धक और १४ भाग रेज़िन (राल) को बन्द घरिया में रक्ततप्त करनेसे प्राप्त होती है।

(२) हरी अल्ट्रामेरीन -यदि उपर्युक्त मिश्रण गरम करते समय घरियामें वायु प्रवाहित होती रहे तो हरी अल्ट्रामेरीन मिलेगी।

(३) नीली अल्ट्रामेरीन—यदि श्वेत अल्ट्रामेरीनमें गन्धक चूर्ण मिलाकर वायु प्रवाहमें गरम किया जाय तो नीली मिलेगी।

(४) बैंजनी और लाल अल्ट्रामेरीन—नीली अल्ट्रामेरीनको हरिन्, नोषक ओषिद या उदजन-हरिदके प्रवाहमें गरम करनेसे बैंजनी और लाल अल्ट्रामेरीन मिलती हैं।

इन पदार्थों पर क्षारोंका प्रभाव नहीं पड़ता।

थैलम् (Thallium)

संवत् १९१८ वि० में क्रूक्सने इसका अन्वेषण किया था। यह रश्मि चित्रमें हरे रंगकी रेखा देता है। क्रूकेसाइट खनिज में यह सीसम्, ताम्र और रजतसे संयुक्त १७% पाया जाता है। दूसरा खनिज लोरएडाइट, थै क्ष ग$_2$, है। खनिजको अम्लराजमें घोलकर उदजन गन्धिद प्रवाहित करनेसे थैलस गन्धिदका अवक्षेप मिलता है। फिर इसे थेलस नैलिद, थै नै, में परिणत करके दस्तम् और हलके गन्धकाम्ल द्वारा अवकृत करते हैं। इस प्रकार थैलम् धातु प्राप्त हो जाती है। यह नरम मटमैला धातु है। यह उदहरिकाम्लमें कठिनतासे घुलती है। थैलस हरिद, थै ह, अनघुल है।

थैलम्के थैलस और थैलिक दो प्रकारके लवण होते हैं। गन्धकाम्लके संयोगसे थैलम् थैलस गन्धेत, थै$_2$ ग ओ$_4$, देता है। थैलिक ओषिदको हलके गन्धकाम्लमें घोलनेसे थैलिक गन्धेत, थै$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$-७ उ$_2$ ओ, प्राप्त होता है। थैलस गन्धेतके घोलमें उदहरिकाम्ल डालनेसे थैलस हरिद, थै ह, का अवक्षेप मिलता है। इस हरिदको जलमें छितराकर हरिन् गैस प्रवाहित करनेसे थैलिक हरिद, थै ह$_3$ ४ उ$_2$ ओ, मिलेगा। थैलस गन्धेतके घोलको भार-उदौषिदसे प्रभावित करनेसे थैलस उदौषिद, थै (ओ उ)$_2$ मिलता है। इसमें अरुणिन् और क्षार डालनेसे थैलिक उदौषिद, थै (ओ उ)$_3$ मिलेगा। इन उदौषिदोंको तप्त करनेसे क्रमशः थैलस और थैलिक ओषिद, थै$_2$ ओ, और थै$_2$ ओ$_3$, मिलेंगे।

	मंगल			बुध			गुरु			शुक्र			शनि		
	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क
विश्व पंचांग[1]	१	२५	३८	१०	२१	०	१०	२६	५०	०	१८	३६	७	६	२६
भारतभूषण पंचांग[2]	१	२५	४०	१०	१६	३०	१०	२४	३६	०	१६	३८	७	१४	११
गणेशदत्त शर्मा का पंचांग[3]	१	२५	४०	१०	१६	३०	१०	२४	३६	०	१६	३८	७	१४	११
नवलकिशोर प्रेस का पंचांग[4]	१	२६	५२	१०	२१	४७	१०	२४	४४	०	१५	४८	७	१४	१८
विक्रम विजय पंचांग[5]	१	२५	४०	१०	१७	५८	१०	२२	४२	०	१६	३७	७	१४	२०
ज्योतिर्गणित के अनुसार[6]	१	२६	५३	१०	२२	२०	१०	२३	५४	०	१५	३५	७	१४	४६

प्रत्येक ग्रहके भोगांशोंकी तुलना करनेसे यह प्रकट हो जाता है कि शुद्ध सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार निकाले हुए भोगांश ज्योतिर्गणित अथवा दृग्गणितसे निकाले हुए भोगांशों से बहुत भिन्न है। गुरु और शनिके भोगांश तो पांच पांच छः छः अंश भिन्न हैं इसके प्रतिकूल मकरंद सारणीके अनुसार जाने हुए भोगांश दृग्गणितसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इसलिए

१—शुद्ध सूर्यसिद्धान्तके अनुसार बनाया हुआ काशीके हिन्दू विश्वविद्यालयसे प्रकाशित तथा प० मदनमोहन मालवीय, ज्योतिषाचार्य पं० रामयत्न ओझा, पं० रामव्यास पाण्डेय, पं० पूर्णचन्द्र त्रिपाठी इत्यादि द्वारा सम्पादित

२—मकरंद सारणीके अनुसार बनाया हुआ काशीके ज्योतिषाचार्य पं० रामनिहोर द्विवेदी तथा श्री रामानन्द मिश्र द्वारा विरचित तथा पं० रामयत्न ओझा द्वारा अनुमोदित ?

३—यह भी मकरंद सारणीके अनुसार बनाया गया और पं० बलदेव मिश्रात्मज पं० गणेशदत्त शर्मा द्वारा सम्पादित।

४—पं० रामप्रसाद सिद्धान्तीके पुत्र श्री पं० श्यामबिहारी द्वारा बनाया गया।

५—सूर्यसिद्धान्त संस्कृतं मकरंदीयम् काश्यपदत्तीयं दृग्गणितैक्य विष रलंकृतम् जबलपुरीय पं० श्री लक्ष्मीप्रसाद विद्याभूषण विरचितम्

६—आचार्य वेंकटेश बापू केतकरके ज्योतिर्गणितके अनुसार लेखक द्वारा गणना किया हुआ परन्तु अयनांश २२ अंश ४१ कला मानकर, इसलिये दृग्गणितके अनुसार शुद्ध है केवल अश्विनीका आदि विन्दु सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार स्थिर किया गया है।

ग्रहोंके उदय अस्तका विचार सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार कदापि ठीक नहीं हो सकता। इसके सिवा यह तो दिखलाया ही जा चुका है कि दृक्कर्म संस्कारकी रीति भी स्थूल है। इसलिए यह सिद्ध है कि उदय अस्तका विचार करनेके लिए हमको दृग्गणित सिद्ध मूलाङ्कोंसे ही काम लेना चाहिये और इसके लिए या तो ज्योतिर्गणितसे काम लिया जाय जो पाश्चात्य ज्योतिषसिद्धान्तके आधारपर बनाया गया है अथवा नया स्वतन्त्र सिद्धान्त तैयार किया जाय, क्योंकि नाविक पंचांगोंके आधार पर ग्रहोंका उदय अस्त जानकर अपने धार्मिक कृत्यों, मुण्डन, विवाह इत्यादिका निश्चय करना उचित नहीं जान पड़ता।

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि ग्रहोंका उदय अस्त जाननेके लिए कालांश जाननेकी प्राचीन रीतिमें ही स्थूलता है। अब यह बतला देना भी आवश्यक है कि ग्रहोंके परम कालांशके परिमाणमें भी आजकल कितना मतभेद है। उदाहरणके लिये हम इसी वर्षके गुरु और शुक्रके उदय अस्तके कालोंको लेकर अगले पृष्ठ पर दिखलाते हैं कि किसने कितना परमकालांश माना है।

इस कोष्ठकसे यह स्पष्ट है कि काशीके दोनों पंचांगोंके अनुसार शुक्रास्त और शुक्रोदयके दिन एक है परन्तु गुरुके अस्तकालके दिनमें एक दिनका अन्तर है। इसी प्रकार औंधके शास्त्रशुद्ध ऐक्यवर्द्धक पंचांग, बागलकोट के केतकी पंचाग और पूनाके चित्रशाला पंचाग में शुक्र तथा गुरुके उदय और अस्त के दिन एक हैं। इससे जान पड़ता है कि काशीके पंचागवालों

स्थान	पंचांग का विवरण	शुक्रास्तकाल	शुक्रोदयकाल	गुरु का अस्तकाल	गुरुकाउदय-काल
काशी	बालकृष्ण शास्त्री का	ज्येष्ठ शुक्ल १०, ८५ २६ मई १९२८ ई०	अधिक श्रावण शु० १३, ८५; ३० जुलाई २८	चैत्र शुक्ल ३, ८५ विक्रमी २४ मार्च १९२८ई०	वैशाख शुक्ल ८, ८५ वि० २७ अप्रल १९२८ई०
,,	विश्वपंचांग काशी विश्व विद्यालयका	ज्येष्ठ शुक्ल १०, २६ मई	अ० श्रा० शु० १३; ३० जुलाई	चैत्र शुक्ल २, २३ मार्च	वैशाख शु० ८, २७ अप्रैल
लखनऊ	रामप्रसाद सिद्धान्तीका नवल किशोर प्रेसका	ज्येष्ठ शुक्ल २, २१ मई	अ० श्रा० कृ० ३, ४ अगस्त	चैत्र शुक्ल ४, २५ मार्च	वैशाख शु० ७, २६ अप्रैल
औंध	शास्त्रशुद्ध ऐक्य वर्द्धक पंचांग	श्रा० कृ० ३,६ जून*	अ० श्रा० शु० ११, २८ जुलाई	चैत्र शुक्ल ३, २४ मार्च	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल
बागल-कोट	केतकी पंचांग	,, ,,	,, ,,	??	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल

*यहाँ कृष्ण पक्ष पूर्णिमान्त गणनाके अनुसार लिखा गया है, अमान्त गणनासे यह ज्येष्ठ कृष्ण है जो महाराष्ट्र प्रान्तमें प्रचलित है।

स्थान	पंचांग का विवरण	शुक्रास्तकाल	शुक्रोदयकाल	गुरुका अस्तकाल	गुरुका उदय काल
पूना	चित्रशाला पंचांग	आ० कृ० ३, ६ जून	अ० आ० शु० ११, २८ जुलाई	चैत्र शुक्ल ३, २४ मार्च	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल
"	पंचांग प्रवर्तक कमेटी का	ज्ये० शु० १३, १ जून	आ० शु० १५, १ अगस्त	" "	वैशाख शु० ३, २२ अप्रैल
"	शंकर शास्त्रीका	ज्ये० शु० १४, २ जून	अ० आ० शु० ९, २६ जुलाई	" २, २३ मार्च	वैशाख शु० ४, २३ अप्रैल
मुंबई	बालकृष्ण तुकारामका	" १५,३ जून	अ० आ० शु० ११, २८ जुलाई	" १, २२ "	वैशाख शु० २, २२ अप्रैल
"	गुजराती पत्रालय न्यूस प्रेसमें चैत्री पंचांग	" ३, २२ मई	अ० आ० कृ० ३, ४ अगस्त	" ४, २५ "	वैशाख शु० ६, २५ अप्रैल

ने इन ग्रहोंके परम कालांश एक मतसे कुछ माना है और महाराष्ट्रके तीन पंचांगवालोंने एक मत होकर कुछ माना है। काशी के विश्वपंचांगसे यह सिद्ध होता है कि इसमें ग्रहोंका उदय अस्त १९२८ ई० के नाविक पंचांगके आधार पर स्थिर किया गया है। केतकी पचांग ज्योतिर्गणितके अनुसार बनाया गया है जो अर्वाचीन ज्योतिष सिद्धान्तसे मिलता जुलता है इसलिए यह सहज ही जाना जा सकता है कि आचार्य केतकर तथा इनके अनुयाइयोंने गुरु और शुक्रके परमकालांश क्या माना है।

अब हम १९२८ ई० के नाविक पंचांगसे शुक्रके उदय और अस्त कालके दिनके सूर्य और शुक्रके विषुवांश और क्रान्तिसे परमकालांश जानने की रीति लिखते हैं:—

तारीख	सूर्यका विषुवांश	सूर्यकी क्रान्ति	शुक्रका विषुवांश	शुक्रकी क्रान्ति
	घंटा मिनट सेकंड	अंश कला विकला	घंटा मिनट सेकंड	अंश कला विकला
२९ मई	४ २४ १६.५९	२१ ३७ ३७.६	३ ४७ २.६७	१९ १२ १९.४
३०जुलाई	८ ३७ ४६.८६	१८ ३१ ८.८	९ ११ ३७.२६	१७ ३७ ९.१
६ जून	४ ५७ ३.३२	२२ ३९ ३८.२	४ २७ ५४.५९	२१ २० १८.७
२८जुलाई	८ २९ ५७.३८	१८ ५९ ३२.९	९ १ ३९.९	१८ १८ ६.५

२९ मई को सूर्यकी क्रान्ति २१ अंश ३७ कला ३७.६ विकला अथवा २१ ३८′ है और शुक्रकी क्रान्ति १९ अंश १२ कला १९.४ विकला अथवा १९°१२′ है। यह जाननेके लिए कि सूर्य और शुक्र किस समय क्षितिज पर आवेंगे पहले इनके चरकाल जानना आवश्यक है (देखो चित्र ६० पृष्ठ ४५५-५६)। काशीका अक्षांश २५°२०′ है।

उदयकालिक सूर्यकी चरज्या = स्परे २१°३८′ × स्परे २५°२०′
= ·३९६६ × ·४७३७
= ·१८७९

∴ चरांश = १०°५०′

∴ चरकाल = ४३ मिनट २० सेकंड

सूर्यकी क्रान्ति उत्तर है इसलिए सूर्यके विषुवांशसे यह चरकाल घटाने पर यह ज्ञात होगा कि सूर्योदयके समय विषुवद्द वृत्तका कौनसा विन्दु पूर्वमें लग्न है (देखो चित्र ६०)

	घं०	मि०	से०
सूर्यका विषुवांश	४	२४	१७
चरकाल		४३	२०
अन्तर	३	४०	५७

इसलिए सूर्योदयकालमें विषुवद्वृत्तका वह विन्दु पूर्वमें लग्न है जो वसंत सम्पातसे ३ घन्टा ४० मि० ५७ सेकंड या ३ घन्टा ४१ मिनट आगे है।

उदयकालिक शुक्रकी चरज्या = स्परे १९°१२′ × स्परे २५°२०′
= ·३४८२ × ४७३७
= ·१६४९

∴ चरांश = ९°३०′

∴ चरकाल = ३८ मिनट

	घं०	मि०
शुक्रका विषुवांश	३	४७
चरकाल		३८
अंतर	३	९

इसलिए शुक्र जिस समय पूर्व क्षितिजपर आवेगा उस समय विषुवद्द वृत्तका वह विन्दु पूर्वमें लग्न होगा जो वसंत सम्पातसे ३ घन्टा ९ मिनट आगे है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्यके लग्नकालमें विषुवद्वृत्त-का ३ घन्टा ४१ मिनट लग्न था इसलिए सूर्य और शुक्रके लग्नकालोमें ३ घन्टा ४१ मिनट—३ घन्टा ९ मिनट=३२ मिनट का अन्तर होगा। इसलिए विश्वपंचांगके अनुसार पूर्वमें अस्त होनेके समय शुक्रका परमकाल ३२ मिनट और परम-कालांश ८ है। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि नाविक पंचांगके जो विषुवांश ऊपरके कोष्टकमें दिये गये हैं वे ग्रीनिच के २९ मईके मध्यम मध्याह्न कालके हैं जो काशीके साढ़े पांच बजे संध्याके लगभगके हैं। यथार्थमें इस दिनके काशीके सूर्योदय कालके विषुवांशों और क्रान्तियोंसे काम लेना चाहिए परन्तु शुक्र और सूर्यकी गतियोंमें बहुत थोड़ा अन्तर है इसलिए इन दोनोंका सापेक्ष अन्तर प्रातःकाल भी प्रायः उतना ही समझ लेनेमें कोई हर्ज नहीं है जितना सायंकालके लिए समझा गया है।

दूसरी बात और भी विचार करनेकी है। त्रिप्रश्नाधिकारमें बतलाया गया है कि वातावरणके कारण प्रकाशमें वर्तन हो

आता है जिससे सूर्य यथार्थ उदयकालसे दो ढाई मिनट पहले ही देख पड़ने लगता है (देखो पृष्ठ ५४७)। इसलिए ऊपरकी गणनासे शुक्रका जो परमकाल ३२ मिनट होता है वह यथार्थमें ३० ही मिनट या उससे भी आधा मिनट कम ठहरता है।

अब देखना चाहिए कि ६ जूनको शुक्रका कालांश क्या है। इसके लिए प्रातःकालके विषुवांश और क्रान्तिसे काम लिया जायगा क्योंकि इससे अधिक शुद्धता होगी। यहां सेकंड और विकलाओंकी गणना नहीं की जायगी।

पूना की	सूर्य				शुक्र			
	विषुवांश		क्रान्ति		विषुवांश		क्रान्ति	
	घंटा	मिनट	अंश	कला	घटा	मिनट	अंश	कला
५ जूनकी संध्यामें	४	५३	२२	३३	४	२३	२१	६
६ जूनकी संध्यामें	४	५७	२२	४०	४	२८	२१	२०
६ जूनके सूर्योदयकालमें	४	५५	२२	३६	४	२५.५	२१	१३

पूनाका अक्षांश १८°३०′।

∴ पूना में सूर्यकी चरज्या = स्परे १८°३०′ × स्परे २२°३६
= '३३४६ × '४१६३
= .१३९३

∴ चरांश = ८°

∴ चरकाल = ३२ मिनट

इसलिये सूर्योदयकालमें विषुवद्वृत्तीय लग्न = ४ घन्टा ५५ मिनट—३२ मिनट = ४ घन्टा २३ मिनट

शुक्रकी चरज्या = स्परे १८°३०′ × स्परे २१°१३′
= '३३४६ × '३८८२
= '१२९९

∴ चरांश = ७° २८′

∴ चरकाल = ३० मिनटके लगभग

इसलिए जिस समय शुक्र क्षितिजस्थ होगा उस समय विषुवद् वृत्तीय लग्न होगा

४ घन्टा २५॥ मिनट—३० मिनट = ३ घन्टा ५५॥ मिनट

परन्तु सूर्योदय कालमें विषुवद्वृत्तीय लग्न = ४ घन्टा २३ मिनट

इसलिए चित्रशाला पंचांग या केतकी पंचांगके अनुसार शुक्रका परमकाल हुआ

४ घन्टा २३ मिनट—३ घन्टा ५५॥ मिनट = २७॥ मिनट

यदि इससे २॥ मिनट घटा दिया जाय, क्योंकि वर्तनके कारण सूर्योदय गणनाकालसे २ या ढाई मिनट पहले ही होता है, तो शुक्रका परमकाल २५ मिनट ही होता है जो सवा ६ अंशके समान हुआ।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि दृश्य गणनासे भी शुक्रोदयकाल और शुक्रास्तकालमें बड़ी भिन्नता पड़ जाती है क्योंकि कोई परमकालांश कुछ मानता है और कोई कुछ। इसलिए इस बातकी बड़ी अवश्यकता है कि भारतवर्ष भरके ज्योतिषी मिलकर इस बातका निश्चय अवश्य करें कि किस ग्रहका

परम कालांश क्या माना जाय नहीं तो पंचांगोंकी यह धांधली कभी बंद नहीं हो सकती।

अब अधिक उदाहरण देकर विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है। शुक्रके परमकालांशके सम्बन्धमें आचार्य बेंकटेश बापू केतकरने अपने ज्योतिर्गणितके पृष्ठ ३३३ में जो लिखा है वह ज्योंका त्यों यहां दे दिया जाता है:—

वातावरणे निर्मले सति हेमन्ततौ पश्चिमे कालांशान्तरे शुक्रो दृश्यते। प्रयत्ने कृते सार्धपञ्चमिते कालांशान्तरेऽपि द्रष्टुं शक्यते। परमस्मिन्प्रसङ्गे तत्तेजोहानिर्नियती जायते यत्केवलाः सूक्ष्मचक्षुषा ज्योतिर्विद एव तं द्रक्ष्यन्ति।

बाल्य और वृद्धकाल

यह स्पष्ट है कि वातावरण सदैव निर्मल नहीं रहता। गरमीके दिनोंमें तो धूल इतनी रहती है कि क्षितिजके ऊपर सूर्य भी कुछ दूर तक नहीं देख पड़ता इस लिए ऐसी दशामें शुक्र या गुरु को देखना बड़ा कठिन होता है। दूसरी बात यह है कि देखने वाले की दृष्टि की मंदी और तीव्रतासे भी ग्रहोंके देखनेमें दो तीन दिनका अंतर हो सकता है। इन सब कारणों से ग्रहोंके उदय या अस्त होनेके दिनसे दो तीन या चार दिन आगे पीछे तक वे अदृश्य हो सकते हैं। जान पड़ता है इसी कारण पुराने आचार्योंने गुरु और शुक्रके बाल वृद्धकाल का विचार किया है परन्तु इसमें भी एक मत नहीं है जैसा कि मुहूर्त चिंतामणिमें लिखा है:—

पुरःपश्चाद्भृगोर्बाल्यं त्रिदशाहं च वार्धकम्
पक्षं पंच दिनं ते द्वे गुरोः पक्षमुदाहृते ॥२७॥

ते दशाह द्वयेऽप्रोक्त कैश्चित्सप्तदिनं परैः।
त्र्यहं स्वाल्पयिकेऽप्यन्यैर्ध्यहं च त्र्यहं विधोः ॥२८॥

गुरु और शुक्रके बाल्यकाल और वृद्धकालमें भी बहुतसे शुभकर्मोका वैसे ही निषेध है जैसे इनके अस्तकाल में

उदय या अस्त का विचार कालांश से होना चाहिए या नतांश से?

इस सम्बन्धमें एक बात और भी विचार करनेके योग्य है। ग्रहोंके उदय अस्तके विषयमें अब तक जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट हो गया है कि जब ग्रह सूर्यके इतना पास आजाते हैं कि प्रातः या सायंकालके संधिप्रकाश (twilight) के कारण देख नहीं पड़ते तभी कहा जाता है कि वे अस्त होगये। परन्तु सन्धिप्रकाश की तीव्रता और सीमा सब ऋतुओं और स्थान में एक सी नहीं रहती। इस बातका कोई भी अनुभव कर सकता है कि हमारे यहाँ जाड़ेके दिनोंमें संधिप्रकाश की सीमा बढ़ जाती है और गरमीके दिनोंमें घट जाती है। इसका कारण यह है कि संधिप्रकाश का सम्बन्ध क्षितिजके नीचे गये हुए सूर्यके नतांशसे होता है। जो सूर्यकी क्रान्ति और इष्ट स्थानके अक्षांश पर आश्रित है (देखो पृष्ठ ४५६ सूत्र १)। अनुभवसे सिद्ध हुआ है कि जब तक सूर्य क्षितिजके नीचे १८ अंश से अधिक नहीं होता तब तक इसके प्रकाशका कुछ न कुछ अंश वातावरणके द्वारा लौटकर भूतलपर आता रहता है। सूर्यके अस्तकालसे लेकर उस समय तक जब तक वह क्षितिजके नीचे १८ अंशसे अधिक नहीं जाता जो मन्द प्रकाश मिलता है उसीको सन्धि प्रकाश कहते हैं।

* संस्कार प्रकरण

† देखो मुहूर्त चिंतामणि शुभाशुभ प्रकरण श्लोक ४६,४७

ज्या-सारिणी

	०′ ०°.०	६′ ०°.१	१२′ ०°.२	१८′ ०°.३	२४′ ०°.४	३०. ०°.५	३६′ ०°.६	४२′ ०°.७	४८′ ०°.८	५४′ ०°.९	औसत अन्तर १	२	३	४	५
६५	·९०६३	९०७०	९०७८	९०८५	९०९२	९१००	९१०७	९११४	९१२१	९१२८	१	२	४	५	६
६६	·९१३५	९१४३	९१५०	९१५७	९१६४	९१७१	९१७८	९१८४	९१९१	९१९८	१	२	३	५	६
६७	·९२०५	९२१२	९२१९	९२२५	९२३२	९२३९	९२४५	९२५२	९२५९	९२६५	१	२	३	४	६
६८	·९२७२	९२७८	९२८५	९२९१	९२९८	९३०४	९३११	९३१७	९३२३	९३३०	१	२	३	४	५
६९	·९३३६	९३४२	९३४८	९३५४	९३६१	९३६७	९३७३	९३७९	९३८५	९३९१	१	२	३	४	५
७०	·९३९७	९४०३	९४०९	९४१५	९४२१	९४२६	९४३२	९४३८	९४४४	९४४९	१	२	३	४	५
७१	·९४५५	९४६१	९४६६	९४७२	९४७८	९४८३	९४८९	९४९४	९५००	९५०५	१	२	३	४	५
७२	·९५११	९५१६	९५२१	९५२७	९५३२	९५३७	९५४२	९५४८	९५५३	९५५८	१	२	३	३	४
७३	·९५६३	९५६८	९५७३	९५७८	९५८३	९५८८	९५९३	९५९८	९६०३	९६०८	१	२	२	३	४
७४	·९६१३	९६१७	९६२२	९६२७	९६३२	९६३६	९६४१	९६४६	९६५०	९६५५	१	२	२	३	४
७५	·९६५९	९६६४	९६६८	९६७३	९६७७	९६८१	९६८६	९६९०	९६९४	९६९९	१	१	२	३	४
७६	·९७०३	९७०७	९७११	९७१५	९७२०	९७२४	९७२८	९७३२	९७३६	९७४०	१	१	२	३	३
७७	·९७४४	९७४८	९७५१	९७५५	९७५९	९७६३	९७६७	९७७०	९७७४	९७७८	१	१	२	३	३
७८	·९७८१	९७८५	९७८९	९७९२	९७९६	९७९९	९८०३	९८०६	९८१०	९८१३	१	१	२	२	३
७९	·९८१६	९८२०	९८२३	९८२६	९८२९	९८३३	९८३६	९८३९	९८४२	९८४५	१	१	२	२	३
८०	·९८४८	९८५१	९८५४	९८५७	९८६०	९८६३	९८६६	९८६९	९८७१	९८७४	०	१	१	२	२
८१	·९८७७	९८८०	९८८२	९८८५	९८८८	९८९०	९८९३	९८९५	९८९८	९९००	०	१	१	२	२
८२	·९९०३	९९०५	९९०७	९९१०	९९१२	९९१४	९९१७	९९१९	९९२१	९९२३	०	१	१	२	२
८३	·९९२५	९९२८	९९३०	९९३२	९९३४	९९३६	९९३८	९९४०	९९४२	९९४३	०	१	१	१	२
८४	·९९४५	९९४७	९९४९	९९५१	९९५२	९९५४	९९५६	९९५७	९९५९	९९६०	०	१	१	१	२

ज्या-सारिणी

	०′ ०°.०	६′ ०°.१	१२′ ०°.२	१८′ ०°.३	२४′ ०°.४	३०′ ०°.५	३६′ ०°.६	४२′ ०°.७	४८′ ०°.८	५४′ ०°.९	औसत अन्तर १	२	३	४	५
८५	·९९६२	९९६३	९९६५	९९६६	९९६८	९९६९	९९७१	९९७२	९९७३	९९७४	०	०	१	१	१
८६	·९९७६	९९७७	९९७८	९९७९	९९८०	९९८१	९९८२	९९८३	९९८४	९९८५	०	०	१	१	१
८७	·९९८६	९९८७	९९८८	९९८९	९९९०	९९९०	९९९१	९९९२	९९९३	९९९४	०	०	०	१	१
८८	·९९९४	९९९५	९९९५	९९९६	९९९६	९९९७	९९९७	९९९७	९९९८	९९९८	०	०	०	०	०
८९	·९९९८	९९९९	९९९९	९९९९	९९९९	१·०००	१·०००	१·०००	१·०००	१·०००	०	०	०	०	०
९०	१·०००														

स्पर्श-सारिणी (Tangents)

	०′ ०°.०	६′ ०°.१	१२′ ०°.२	१८′ ०°.३	२४′ ०°.४	३०′ ०°.५	३६′ ०°.६	४२′ ०°.७	४८′ ०°.८	५४′ ०°.९	औसत अन्तर १	२	३	४	५
०	·००००	००१७	००३५	००५२	०२७०	००८७	०१०५	०१२२	०१४०	०१५७	३	६	९	१२	१५
१	·०१७५	०१९२	०२०९	०२२७	०२४४	०२६२	०२७९	०२९७	०३१४	०३३२	३	६	९	१२	१५
२	·०३४९	०३६७	०३८४	०४०२	०४१९	०४३७	०४५४	०४७२	०४८९	०५०७	३	६	९	१२	१५
३	·०५२४	०५४२	०५५९	०५७७	०५९४	०६१२	०६२९	०६४७	०६६४	०६८२	३	६	९	१२	१५
४	·०६९९	०७१७	०७३४	०७५२	०७६९	०७८७	०८०५	०८२२	०८४०	०८५७	३	६	९	१२	१५
५	·०८७५	०८९२	०९१०	०९२८	०९४५	०९६३	०९८१	०९९८	१०१६	१०३	३	६	९	१२	१५
६	·१०५१	१०६९	१०८६	११०४	११२२	११३९	११५७	११७५	११९२	१२१०	३	६	९	१२	१५
७	·१२२८	१२४६	१२६३	१२८१	१२९९	१३१७	१३३४	१३५२	१३७०	१३८८	३	६	९	१२	१५
८	·१४०५	१४२३	१४४१	१४५९	१४७७	१४९५	१५१२	१५३०	१५४८	१५६६	३	६	९	१२	१५

स्पर्श-सारिणी

	०′ ०°.०	६′ ०°.१	१२′ ०°.२	१८′ ०°.३	२४′ ०°.४	३०′ ०°.५	३६′ ०°.६	४२′ ०°.७	४८′ ०°.८	५४′ ०.९	औसत १	२	३	अन्तर ४	५
९	·१५८४	६०२१	६२०१	१६३८	१६५५	१६७३	१६९१	१७०९	१७२७	१७४५	३	६	९		
१०	·१७६३	१७८१	१७९९	१८१७	१८३५	१८५३	१८७१	१८९०	१९०८	१९२६	३	६	९	१२	१५
११	·१९४४	१९६२	१९८०	१९९८	२०१६	२०३५	२०५३	२०७१	२०८९	२१०७	३	६	९	१२	१५
१२	·२१२६	२१४४	२१६२	२१८०	२१९९	२२१७	२२३५	२२५४	२२७२	२२९०	३	६	९	१२	१५
१३	·२३०९	२३२७	२३४५	२३६४	२३८२	२४०१	२४१९	२४३८	२४५६	२४७५	३	६	९	१२	१५
१४	·२४९३	२५१२	२५३०	२५४९	२५६८	२५८६	२६०५	२६२३	२६४२	२६६१	३	६	९	१२	१६
१५	·२६७९	२६९८	२७१७	२७३७	२७५४	२७७३	२७९२	२८११	२८३०	२८४९	३	६	९	१३	१६
१६	·२८६७	२८८६	२९०५	२९२४	२९४३	२९६२	२९८१	३०००	३०१९	३०३८	३	६	९	१३	१६
१७	·३०५७	३०७६	३०९६	३११५	३१३४	३१५३	३१७२	३१९१	३२११	३२३०	३	६	१०	१३	१६
१८	·३२४९	३२६९	३२८८	३३०७	३३२७	३३४६	३३६५	३३८५	३४०४	३४२४	३	६	१०	१३	१६
१९	·३४४३	३४६३	३४८२	३५०२	३५२२	३५४१	३५६१	३५८१	३६००	३६२०	३	७	१०	१३	१६
२०	·३६४०	३६५९	३६७९	३६९९	३७१९	३७३९	३७५९	३७७९	३७९९	३८१९	३	७	१०	१३	१७
२१	·३८३९	३८५९	३८७९	३८९९	३९१९	३९३९	३९५९	३९७९	४०००	४०२०	३	७	१०	१३	१७
२२	·४०४०	४०६१	४०८१	४१०१	४१२२	४१४२	४१६३	४१८३	४२०४	४२२४	३	७	१०	१४	१७
२३	·४२४५	४२६५	४२८६	४३०७	४३२७	४३४८	९४३६	४३९०	४४११	४४३१	३	७	१०	१४	१७
२४	·४४५२	४४७३	४४९४	४५१५	४५३६	४५५७	४५७८	४५९९	४६२१	४६४२	४	७	११	१४	१८
२५	·४६६३	४६८४	४७०६	४७२७	४७४८	४७७०	४७९१	४८१३	४८३४	४८५६	४	७	११	१४	१८
२६	·४८७७	४८९९	४९२१	४९४२	४९६४	४९८६	५००८	५०२९	५०५१	५०७३	४	७	११	१५	१८
२७	·५०९५	५११७	५१३९	५१६१	५१८४	५२०६	५२२८	५२५०	५२७२	५२९५	४	७	११	१५	१८
२८	·५३१७	५३४०	५३६२	५३८४	५४०७	५४३०	५४५२	५४७५	५४९८	५५२०	४	८	११	१५	१९

स्पर्श-सारिणी

	०′ ०°.०	६′ ०°.१	१२′ ०°.२	१८′ ०°.३	२४′ ०°.४	३०′ ०°.५	३६′ ०°.६	४२′ ०°.७	४८′ ०°.८	५४′ ०°.९	औसत			अन्तर	
											१	२	३	४	५
२९	·५५४३	५५६६	५५८९	५६१२	५६३५	५६५८	५६८१	५७०४	५७२७	५७५०	४	८	१२	१५	१९
३०	·५७७४	५७९७	५८२०	५८४४	५८६७	५८९०	५९१४	५९३८	५९६१	५९८५	४	८	१२	१६	२०
३१	·६००९	६०३२	६०५६	६०८०	६१०४	६१२८	६१५२	६१७६	६२००	६२२४	४	८	१२	१६	२०
३२	·६२४९	६२७३	६२९७	६३२२	६३४६	६३७१	६३९५	६४२०	६४४५	६४६९	४	८	१२	१६	२०
३३	·६४९४	६५१९	६५४४	६५६९	६५९४	६६१९	६६४४	६६६९	६६९४	६७२०	४	८	१३	१७	२१
३४	·६७४५	६७७१	६७९६	६८२२	६८४७	६८७३	६८९९	६९२४	६९५०	६९७६	४	९	१३	१७	२१
३५	·७००२	७०२८	७०५४	७०८०	७१०७	७१३३	७१५९	७१८६	७२१२	७२३९	४	९	१३	१८	२२
३६	·७२६५	७२९२	७३१९	७३४६	७३७३	७४००	७४२७	७४५४	७४८१	७५०८	५	९	१४	१८	२३
३७	·७५३६	७५६३	७५९०	७६१८	७६४६	७६७३	७७०१	७७२९	७७५७	७७८५	५	९	१४	१८	२३
३८	·७८१३	७८४१	७८६९	७८९८	७९२६	७९५४	७९८३	८०१२	८०४०	८०६९	५	९	१४	१९	२४
३९	·८०९८	८१२७	८१५६	८१८५	८२१४	८२४३	८२७३	८३०२	८३३२	८३६१	५	१०	१५	२०	२४
४०	·८३९१	८४२१	८४५१	८४८१	८५११	८५४१	८५७१	८६०१	८६३२	८६६२	५	१०	१५	२०	२५
४१	·८६९३	८७२४	८७५४	८७८५	८८१६	८८४७	८८७८	८९१०	८९४१	८९७२	५	१०	१६	२१	२६
४२	·९००४	९०३६	९०६७	९०९९	९१३१	९१६३	९१९५	९२२८	९२६०	९२९३	५	११	१६	२१	२७
४३	·९३२५	९३५८	९३९	९४२४	९४५७	९४९०	९५२३	९५५६	९५९०	९६२३	६	११	१७	२२	२८
४४	·९६५७	९६९१	९७२५	९७५९	९७९३	९८२७	९८६१	९८९६	९९३०	९९६५	६	११	१७	२३	२९
४५	१·००००	००३५	००७०	०१०५	०१४१	०१७६	०२१२	०२४७	०२८३	०३१९	६	१२	१८	२४	३०
४६	१·०३५५	०३९२	०४२८	०४६५	०५०१	०५३८	०५७५	०६१२	०६४९	०६८६	६	१२	१८	२५	३१
४७	१·०७२४	०७६१	०७९९	०८३७	०८७५	०९१३	०९५१	०९९०	१०२८	१०६७	६	१३	१९	२५	३२
४८	१·११०६	११४५	११८४	१२२४	१२६३	१३०३	१३४३	१३८३	१४२३	१४६३	७	१३	२०	२७	३३

स्पर्श-सारिणी

	०′ ०°.०	६′ ०°.१	१२′ ०°.२	१८′ ०°.३	२४′ ०°.४	३०′ ०°.५	३६′ ०°.६	४२′ ०°.७	४८′ ०°.८	५४′ ०°.९	औसत १	२	३	अन्तर ४	५
४९	१·१५०४	१५४४	१५८५	१६२६	१६६७	१७०८	१७५०	१७९२	१८३३	१८७५	७	१४	२१	२८	३४
५०	१·१९१८	१९६०	२००२	२०४५	२०८८	२१३१	२१७४	२२१८	२२६१	२३०५	७	१४	२२	२९	३६
५१	१·२३४९	२३९३	२४३७	२४८२	२५२७	२५७२	२६१७	२६६२	२७०८	२७५३	८	१५	२३	३०	३८
५२	१·२७९९	२८४६	२८९२	२९३८	२९८५	३०३२	३०७९	३१२७	३१७५	३२२२	८	१६	२४	३१	३९
५३	१·३२७०	३३१९	३३६७	३४ ६	३४६५	३५१४	३५६४	३६१३	३६६३	३७१३	८	१६	२५	३३	४१
५४	१·३७६४	३८१४	३८६५	३९१६	३९६८	४०१९	४०७१	४१२४	४१७६	४२२९	९	१७	२६	३४	४३
५५	१·४२८१	४३३५	४३८८	४४४२	४४९६	४५५०	४६०५	४६५९	४७१५	४७७०	९	१८	२७	३६	४५
५६	१·४८२६	४८८२	४९३८	४९९४	५०५१	५१०८	५१६६	५२२४	५२८२	५३४०	१०	१९	२९	३८	४८
५७	१·५३९९	५४५८	५५१७	५५७७	५६३७	५६९७	५७५७	५८१८	५८८०	५९४१	१०	२०	३०	४०	५०
५८	१·६००३	६०६६	६१२८	६१९१	६२५५	६३१९	६३८३	६४४७	६५१२	६५७७	११	२१	३२	४३	५३
५९	१·६६४३	६७०९	६७७५	६८४२	६९०९	६९७७	७०४५	७११३	७१८२	७२५१	११	२३	३४	४५	५६
६०	१·७३२१	७३९१	७४६१	७५३२	७६०३	७६७५	७७४७	७८२०	७८९३	७९६६	१२	२४	३६	४८	६०
६१	१·८०४०	८११५	८१९०	८२६५	८३४१	८४१८	८४९५	८५७२	८६५०	८७२८	१३	२६	३८	५१	६४
६२	१·८८०७	८८८७	८९६७	९०४७	९१२८	९२१०	९२९२	९३७५	९४५८	९५४२	१४	२७	४१	५५	६८
६३	१·९६२६	९७११	९७९७	९८८३	९९७०	२·००५७	२·०१४५	२·०२३३	२·०३२३	२·०४१३	१५	२९	४४	५८	७३
६४	२·०५०३	०५९४	०६८६	०७७८	०८७२	०९६५	१०६०	११५५	१२५१	१३४८	१६	३१	४७	६३	७८
६५	२·१४४५	१५४३	१६४२	१७४२	१८४२	१९४३	२०४५	२१४८	२२५१	२३५५	१७	३४	५१	६८	८५
६६	२·२४६०	२५६६	२६७३	२७८१	२८८९	२९९८	३१०९	३२२०	३३३२	३४४५	१८	३७	५५	७३	९२
६७	२·३५५९	३६७३	३७८९	३९०६	४०२३	४१४२	४२६२	४३८३	४५०४	४६२७	२०	४०	६०	७९	९९
६८	२·४७५१	४८७६	५००२	५१२९	५२५७	५३८६	५५१७	५६४९	५७८२	५९१६	२२	४३	६५	८७	१०८

स्पर्श-सारिणी

	०′ ०°·०	६′ ०°·१	१२′ ०°·२	१८′ ०°·३	२४′ ०°·४	३०′ ०°·५	३६′ ०°·६	४२′ ०°·७	४८′ ०°·८	५४′ ०°·९	औसत अन्तर १	२	३	४	५
६९	२·६०५१	६१८७	६३२५	६४६४	६६०५	६७४६	६८८९	७०३४	७१७९	७३२६	२४	४७	७१	९५	११९
७०	२·७४७५	७६२५	७७७६	७९२९	८०८३	८२३९	८३९७	८५५६	८७१६	८८७८	२६	५२	७८	१०४	१३१
७१	२·९०४२	९२०८	९३७५	९५४४	९७१४	९८८७	३·००६१	३·०२३७	३·०४१५	३·०५९५	२९	५८	८७	११६	१४५
७२	३·०७७७	०९६१	११४७	१३३४	१५२४	१७१६	१९१०	२१०६	२३०५	२५०६	३२	६४	९६	१२९	१६१
७३	३·२७०९	२९१४	३१२२	३३३२	३५४४	३७५९	३९७७	४१९७	४४२०	४६४६	३६	७२	१०८	१४४	१८०
७४	३·४८७४	५१०५	५३३९	५५७६	५८१६	६०५९	६३०५	६५५४	६८०६	७०६२	४१	८१	१२२	१६३	२०४
७५	३·७३२१	७५८३	७८४८	८११८	८३९१	८६६७	८९४७	९२३२	९५२०	९८१२	४६	९३	१३९	१८६	२३२
७६	४·०१०८	०४०८	०७१३	१०२२	१३३५	१६५३	१९७६	२३०३	२६३५	२९७२	५३	१०७	१६०	२१३	२६७
७७	४·३३१५	३६६२	४०१५	४३७४	४७३९	५१०७	५४८३	५८६४	६२५२	६६४६					
७८	४·७०४६	७४५३	७८६७	८२८८	८७१६	९१५२	९५९४	५·००४५	५·०५०४	५·०९७०					
७९	५·१४४६	१९२९	२४२२	२९२४	३४३५	३९५५	४४८६	५०२६	५५७८	६१४०					
८०	५·६७१३	७२९७	७८९४	८५०२	९१२४	९७५८	६·०४०५	६·१०६६	६·१७४२	६·२४३२					
८१	६·३१३८	३८५९	४५९६	५३५०	६१२२	६९१२	७७२०	८५४८	९३९५	७·०२६४					
८२	७·११५४	२०६३	३००२	३९६२	४९४७	५९५८	६९९६	८०६२	९१५८	८·०२८५					
८३	८·१४४३	२६३६	३८६३	५१२६	६४२७	७७६९	९१५२	९·०५७९	९·२०५२	९·३५७२					
८४	९·५१४४	९·६६७७	९·९८४५	१०·०२	१०·२०	१०·३९	१०·५८	१०·७८	१०·९९	११·२०					
८५	११·४३	११·६६	११·९१	१२·१६	१२·४३	१२·७१	१३·००	१३·३०	१३·६२	१३·९५					
८६	१४·३०	१४·६७	१५·०६	१५·४६	१५·८९	१६·३५	१६·८३	१७·३४	१७·८९	१८·४६					
८७	१९·०८	१९·७४	२०·४५	२१·२०	२२·०२	२२·९०	२३·८६	२४·९०	२६·०३	२७·२७					
८८	२८·६४	३०·१४	३१·८२	३३·६९	३५·८०	३८·१९	४०·९२	४४·०७	४७·७४	५२·०८					
८९	५७·२९	६३·६६	७१·६२	८१·८५	९५·४९	११४·६	१४३·२	१९१·०	२८६·५	५७३·०					
९०	∞														

इसके बाद औसत अन्तर की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

मैण्डलीफ़ का आवर्त्त संविभाग

खंड		समूह ०	समूह १	समूह २	समूह ३	समूह ४	समूह ५	समूह ६	समूह ७	समूह ८
उच्चतम ओषिद उच्चतम उदिद			र$_2$ ओ र उ	र ओ र उ$_2$	र$_2$ ओ$_3$ र उ$_3$	र ओ$_2$ र उ$_4$	र$_2$ ओ$_5$ र उ$_3$	र ओ$_3$ र उ$_2$	र$_2$ ओ$_7$ र उ	र ओ$_4$ —
प्रथम लघु खंड		हि २ ४.०	उ १ १.००८ शो ३ ६.९४	बे ४ ९.१	टं ५ १०.९	क ६ १२.००	नो ७ १४.०१	ओ ८ १६.००	प्ल ९ १९.०	
द्वितीय लघु खंड		नू १० २०.२	सै ११ २३.००	म १२ २४.३२	स्फ १३ २७.१	शै १४ २८.३	स्फु १५ ३१.०४	ग १६ ३२.००	ह १७ ३५.४६	
प्रथम दीर्घ खंड	समश्रेणी	ल १८ ३९.९	पां १९ ३९.१	ख २० ४०.०७	स्क २१ ४४.१	टि २२ ४८.१	व २३ ५१.०	रा २४ ५२	मा २५ ५४.९३	लो २६ को २७ न २८ ५५.८४ ५८.९७ ५८.६८
	विषमश्रेणी		ता २९ ६३.५७	द ३० ६५.३७	गा ३१ ७०.१	ज ३२ ७२.५	न्त ३३ ७४.९६	श ३४ ७९.२	रु ३५ ७९.९२	
द्वितीय दीर्घ खंड	समश्रेणी	गु ३६ ८२.९२	ला ३७ ८५.४५	स्त ३८ ८७.६३	य ३९ ८९.३३	जि ४० ९०.६	कौ ४१ ९३.१	सु ४२ ९६.०	मै ४३ ?	थे ४४ रू ४५ पै ४६ १०१.७ १०२.९ १०६.७
	विषमश्रेणी		र ४७ १०७.८८	सं ४८ ११२.४	नी ४९ ११४.८	व ५० ११८.७	आ ५१ १२०.२	थ ५२ १२७.५	नै ५३ १२६.९२	
तृतीय दीर्घ खंड	समश्रेणी	अ ५४ १३०.२	वो ५५ १३२.८१	भ ५६ १३७.३७	ली ५७ १३९.०	सृ ५८ १४०.२५				
	विषमश्रेणी			दुष्प्राप्य	तत्व ५९	से लु ७१	तक			
चतुर्थ दीर्घ खंड	समश्रेणी					हे ७२ ?	त ७३ १८१.५	वु ७४ १८४.०	रै ७५ ?	वा ७६ इ ७७ प ७८ १९०.९ १९३.१ १९५.२
	विषमश्रेणी		स्व ७९ १९७.२	पा ८० २००.६	थै ८१ २०४.०	सी ८२ २०७.२	वि ८३ २०८.०	—	—	
पञ्चम दीर्घ खंड		८६ ?	८७ ?	र ८८ २२६	८९ ?	थो ९० २३२.१५	पिक० ९१ ?	पि ९२ २३८.४		

र = उसी समूह का कोई तत्व

शक्कर

(ले० श्री देशदीपक जी)

शक्कर एक ऐसी वस्तु है कि जो संसार-के भोजनमें एक बहुत प्रतिष्ठित स्थान रखती है इसी लिये यह एक बहुत बड़ी व्यापारिक वस्तु हो गई है। यह वस्तु गन्नेमें १६% के करीब रहती है और अधिकतर इसीसे निकाली भी जाती है। वैसे जरमनीमें यह चुकन्दरसे भी निकाली जाती है। पेड़ पौधोंकी जड़ों इत्यादिमें भी यह कुछ अंशमें विद्यमान रहती है।

शक्कर भी कई प्रकारकी होती है। इसके मुख्य भाग हैं, गन्नेकी शक्कर (cane sugar) दुग्ध शक्कर (Milk Sugar) अंगूर शक्कर (Grape Sugar)। सबसे अधिक अच्छी सस्ती और काममें आनेवाली गन्ने ही की होती है। हम इसीका वर्णन करेंगे।

इसका रासायनिक संगठन क$_{१२}$ उ$_{२२}$ ओ$_{११}$ है। इसके देखनेसे यह स्पष्ट है कि इसमें उदजन व ओषजन जलके परिमाणमें हैं। इसको आजकल मशीनोंकी संख्यामें बनाते हैं। प्रथम तो गन्नेसे रस निकालते हैं। इस रससे गुड़ बनाते हैं। गुड़ भी काफी संख्या में काममें लाया जाता है इस गुड़से शक्कर निम्न-लिखित तरीकेसे बनती है:—

एक बड़ेसे हौजमें इस गुड़को पानीमें घोलते हैं। यह हौज लोहेका बना होता है और स्टीमसे गरम किया जाता है। घोलमें चूना मिलाकर उसे उबालते हैं। चूना गुड़के कार्बनिक अम्लोंको नष्ट कर देता है और एक अनघुल लवण बनाता है इस उबली हुई द्रव्यको दबाव द्वारा एक प्रकारके टैंकोंमें चढ़ा दिया जाता है। वहां चूना फेनके रूपमें अलग हो जाता है। फिर इसे छानते हैं। छना हुआ द्रव्य उबालकर गाढ़ा किया जाता है और फिर बड़े बड़े शून्यक नलिकाओं (Vacuum pipes) में डालकर सुखाया जाता है। फिर भी थोड़ा सा पानी रहता है। इसको पहले तो घूमते हुये बरतनोंमें डालकर निकाल देते हैं। अब खांड़ की तरह हो जाती है। इसे फिर बिलकुल सुखा देते हैं। इस सूखी हुईको लेकर चक्कियों (Grinders) में पीसते हैं। वहां इसका रंग सफेद हो जाता है और उस कमरेमें उड़ती फिरती है। इसी को बोरोंमें भर कर भेजते हैं।

शक्कर एक मीठी वस्तु है। १६० पर यह पिघल जाती है। इसमें रवे होते हैं और रवेदार शक्कर उसीका नाम है। अधिक गरम करनेसे शक्कर गोंद के समान हो जाती है। शक्कर द्राक्षोज (Glucose) और फलोज (Fructose) को मिल कर बनाई जा सकती है। हलके गंधकाम्लके प्रभावसे यह ऊपर लिखे भागोंमें विभाजित हो जाती है। इस क्रियाको विपर्यय क्रिया (Inversion) कहते हैं। तीव्र गन्धकाम्ल शक्करको छार कर देता है और सब एकदमसे भकभका उठता है और कर्बनद्विओषिद व गंधक द्विओषिद निकलते हैं। उदहरिकाम्ल भी शक्करको विभाजित करता है और उत्तरिकाम्ल (levulinic acid) बनाता है।

नोषिकाम्लभी इस पर असर करता है और दोनोंके संबन्धसे कष्ठिकाम्ल (Oxalic acid) बनता है।

चुकन्दरसे शक्कर कैसे बनती है और इन दोनोंमें क्या भेद है इत्यादि आगामी लेखमें लिखेंगे।

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

मध्यमाधिकार ... ... ॥=)

स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)

त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० बी०के मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

भाग १ ... ... २॥)

भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces an Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१६५ Reg. No. A.708

भाग २८ Vol. 28. धन १६८५ संख्या ३ No. 3

दिसम्बर १६२८

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २८ | धन संवत् १९८५ | संख्या ३

प्रकाशका परावर्तन

[ले० श्री सतीशचन्द्र सकसेना बी० एस-सी०]

यदि हम एक रबर की गेंदको फेंककर किसी दीवारसे मारें तो वह गेंद दीवारसे टकराकर फिर पीछे लौटती है। इसी प्रकार प्रकाशकी किरणें जब ऐसी सतहपर पड़ती हैं जहां दो माध्यम (medium) मिलते हों तो कुछ किरणें सतहसे टकराकर फिर उसी पहिले माध्यममें लौट आती हैं जिसमें होकर वह गई थीं। जैसे कि यदि प्रकाशकी किरणें हवामेंसे जाकर पानीकी सतहपर गिरें तो कुछ किरणें पानीकी सतहसे टकराकर फिर हवामें ही लौट आवेंगी। इसीको प्रकाशका परावर्तन कहते हैं। यह किरणें पहले माध्यममें जिस दिशामें लौटेंगी वह दिशा परावर्तनके नियम (laws of reflection) अनुसार मालूमकी जा सकती है। यदि प्रकाशकी किरणें किसी चीज़ या सतहपर पड़कर इधर उधर हर दिशामें फैल जावें अथवा परावर्तन नियम बद्ध न हों तो उसको प्रकाशका फैलना अथवा प्रकीर्ण (diffusion) कहेंगे। प्रकाशके फैलनेसे ही चीज़ें दिखलायी पड़ती हैं।

एक अंधेरे कमरेमें हमको कोई चीज़ उदाहरणार्थ मेज़ कुरसी इत्यादि नहीं दिखाई देतीं। परन्तु जब उसी अंधेरेमें एक जलती हुई मोम बत्ती या दीपक लाया जावे तो सब चीज़ें दिखाई देने लगती हैं। बात यह है कि किसी चीज़के देखनेके लिए यह आवश्यक है कि उस चीज़से प्रकाशकी किरणें चलकर हमारे नेत्रों तक पहुँचे। मोमबत्ती या दीपक तो स्वयं ही प्रकाशकी किरणें इधर-उधर फेंकते हैं अथवा स्वयम् दीप्त वस्तु (self lum-

inous) हैं। इनसे चली हुई किरणें हमारे नेत्रों तक पहुँचती हैं जिससे हमको उनका अनुभव होता है और हम उनको देख पाते हैं परन्तु जो चीज़ें स्वयम् दीप्त नहीं हैं (non-luminous) उनको कैसे देख पाते हैं इसका सरल उत्तर यह है कि मोमबत्ती या दीपकके प्रकाशकी किरणें इनपर पड़ती हैं तो उनसे टकराकर हर दिशामें फैल जाती हैं अथवा वे वस्तुएं प्रकाशको फैला देती हैं और यह फैली हुई किरणें हर दिशासे हमारे नेत्रोंपर पड़ती हैं इसलिये हम इन चीज़ोंको हर दिशासे देख लेते हैं। यदि किसी दिशासे किरणें न आवें तो उस दिशासे हम उसे नहीं देख सकते।

एक अंधेरे कमरेमें सूर्यकी किरणें बारी-बारीसे आईने पर, एक टीनके टुकड़ेपर, एक सफ़ेद पट्ठे पर, और एक काले पट्ठेपर डालिये। आईने से प्रकाशका एक बड़ा धब्बा (spot) दीवार पर आ जायगा और आईनेकी सतह आसानीसे दिखाई नहीं देगी। टीनके टुकड़ेसे भी प्रकाशका एक धब्बा दीवार पर आ जावेगा परन्तु उसकी सतह कमरेके हर स्थानसे आईने की अपेक्षा ज़्यादा दिखाई देगी। सफ़ेद पट्ठेसे कोई धब्बा नहीं मिलेगा मगर उसकी सतह कमरेके हर स्थानसे ख़ूब अच्छी तरह चमकती हुई दिखलायी देगी और काले पट्ठे से प्रकाशका परावर्तन बहुत कम होगा। आईने और चिकने किए हुए धातुके टुकड़ोंसे प्रकाशका परावर्तन नियम बद्ध (regular) होता है। इसलिये उनको सुपरावर्तक (good reflectors) कहते हैं। पट्ठेके टुकड़ोंसे अनियमित (irregular) परावर्तन होता है। प्रकाश की किरणें फैल जाती हैं और इस तरह पर कमरेके हर स्थानमें प्रकीर्ण (diffused) किरणें नेत्रोंपर पड़ती हैं। इसी भाँति पेड़ मकान इत्यादि प्रकाशको फैला देते हैं और इसीलिए हमको प्रकाश पड़नेसे दिखाई पड़ने लगते हैं। काली चीजें प्रकाशकी किरणोंको बहुत कुछ सोख लेती हैं और इसीलिए काली दिखाई देती हैं क्योंकि उन सबसे प्रकाश न तो फैलता है और न परावर्तित होता है। उनको कुपरावर्तक (bad reflectors) कहते हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो प्रकाशकी सब किरणें सोख ले और बिलकुल परावर्तित न करे अथवा जिसको हम बिलकुल काला कह सकें (There is nothing perfectly black) यदि ऐसी हो भी तो उसको हम देख नहीं सकते क्योंकि उससे प्रकाश बिलकुल हमारे नेत्रोंको नहीं मिल सकेगा। वायु मण्डलमें धूलके बहुत छोटे छोटे कण होनेके कारण हम सूर्यकी किरणोंको देख सकते हैं। यह कण सूर्यकी किरणोंको फैला देते हैं जो हमारे नेत्रों तक पहुँचती हैं यदि यह कण वायु मण्डलमें न होते तो सूर्यकी किरणें हमको न सूझतीं क्योंकि प्रकाश तो स्वयम् दिखाई नहीं दे सकता (Light is in itself invisible) निम्नलिखित प्रयोग द्वारा यह बात प्रमाणित हो जायगी।

एक अंधेरे कमरेमें एक 'सूराख द्वारा सूर्यकी किरणें अन्दर आने दीजिये और इन किरणोंके समूहके रास्तेमें एक काँच का गिलास रख दीजिये ताकि किरणें गिलासके अन्दर जायँ। देखिये चित्र नं० १।'
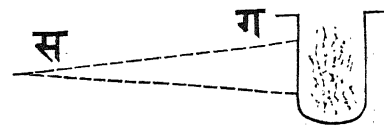
चित्र नं० १

'स' सूराखसे निकल कर सूर्यकी किरणें 'ग' शीशे के गिलासपर पड़ रही हैं और उसमें होकर गुज़र रही हैं। अब देखनेसे गिलासमें प्रकाश बहुत कम मालूम होगा और गिलासके भीतर किरणोंका रास्ता नहीं दिखाई देगा। यदि गिलासमें एक सुलगते हुए काग़ज़का टुकड़ा डाल दें और गिलास को एक शीशेकी पटसे ढक दें तो जैसे जैसे गिलासके भीतर धुआँ बढ़ता जायगा गिलासमें प्रकाशकी तेजी बढ़ती जायगी और किरणों का रास्ता दिखाई देने लगेगा कारण यह है कि धुएं के कण प्रकाशको फैला देते हैं और फैली हुई

किरणें हमारे नेत्रों तक पहुँचती है इसलिये रास्ता दिखाई देने लग जाता है अब पट को गिलासके ऊपरसे हटा लीजिये धुआँ उड़ने लगेगा और प्रकाश गिलासमें कम होने लगेगा यदि गिलास में स्रवित (distilled) पानी भरदें तो प्रकाशकी किरणोंका समूह बिलकुल दिखाई नहीं देगा परन्तु पानीमें थोड़ासा दूध मिला देनेसे समूह भली भाँति दिखाई देने लगता है कारण यह है कि दूधमें बहुतसे भिन्न भिन्न पदार्थोंके नन्हे कण लटके रहते हैं जो प्रकाशको फैला देते हैं। किसी द्रव्यमें लटके हुए कण देखनेका यह बहुत अच्छी रीति है। जब किसी अंधेरे कमरेमें सूर्य की किरणें किसी सूराख द्वारा आती हैं तो यह हर किसीका अनुभव होगा कि प्रकाश की किरणोंमें धूलके कण ऊपर नीचे जाते हुए दिखाई देते हैं यहा कण प्रकाशकी किरणों को फैलाते हैं जिसकी वजहसे हमको किरणें सीधी रेखामें जाती हुई मालूम होत हैं।

हमको चन्द्रमासे प्रकाश परावर्तन होनेके कारण मिलता है। सूर्यका प्रकाश चन्द्रमापर पड़ता है और उसकी सतहसे परावर्तित होकर हमारी पृथ्वीतक आता है चन्द्रमा सूर्यकी भाँति दीप्त (self-luminous body) नहीं है जो अपने आप हमको प्रकाश दे सके वह हमारी पृथ्वी ही के समान है इसी प्रकार अन्य ग्रहों पर रहनेवाले लोग हमारी पृथ्वीसेभी उसी प्रकार प्रकाश पाते हैं जिस तरह हम चन्द्रमासे और हमारी पृथ्वी भी चन्द्रमाकी भांति चमकती है।

आईनेमें देखनेसे या पानीमें झांकनेसे हमको अपना मुंह दिखाई देता है। किसी नदीके किनारे यदि पेड़ हों तो नदीके भीतरभी वैसेही पेड़ उलटे दिखाई देते हैं यह सब बातें प्रकाशके परावर्तन ही के कारण हैं एक सादा शीशेके टुकड़ेमें देखनेसे मुंह भली भांति दिखाई नहीं देता परन्तु उसके पीछे यदि हम पारे और टीनका (amalgam) मिश्रण लगा दें तो फिर मुंह खूब अच्छी तरह दिखाई देने लगता है। कारण यह है कि मिश्रण (amalgam) पीछे लगा देनेसे शीशेका परावर्तन बल (reflecting power) बढ़ जाता है। आईनेके पीछे यही मिश्रण लगा रहता है।

परावर्तनके नियम (Laws of reflection)

एक अंधेरे कमरेमें सूरजकी किरणें एक सूराख में होकर आने दीजिये और उन किरणोंकी राहमें एक चपटा दर्पण (plane mirror) रख दीजिये तो सूरजकी कुछ किरणें उस दर्पणसे परावर्तित होकर फिर पीछे लौटेंगी।
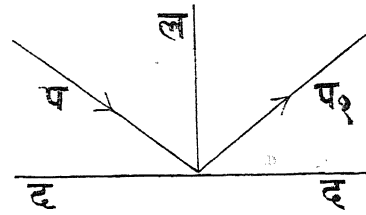
चित्र नं० (२)

चित्र नं० (२) में मान लीजिये द द एक चपटा दर्पण (plane mirror) है प सूरजकी कोई एक किरण है जो दर्पणकी ओर आरही है और दर्पणसे टकराती है और परावर्तित होकर प१ की दिशामें लौटती है तो प किरणको (incident ray) पतित किरण कहेंगे। और प१ को परावर्तित किरण (reflected ray) कहेंगे। जहाँ पर पतित किरण दर्पणसे टकराती है वहाँ पर ल एक ऐसी सीधी लकीर खींचिये जो द द से ९०° का कोण बनाती हो अथवा जो द द से समकोण बनावे तो ल को लम्ब (normal) कहेंगे। उस तलको जिसमें पतित किरण (incident ray) और लम्ब, हैं पतनतल कहते हैं। और उस तलको जिसमें परावर्तित किरण और लम्ब हैं परावर्तन तल (plane of reflection) कहते हैं ∠ प ल कोण को पतन कोण और ∠ प१ ल कोणको परावर्तन कोण (angle of reflection) कहते हैं।

परावर्तनके दो नियम हैं:—

(१) प्रथम यह कि पतित किरण (incident ray) परावर्तित किरण (reflected ray) और लम्ब (normal) सदैव एक ही तल (plane) में रहेंगे।

(२) दूसरा नियम यह है कि पतन कोण (angle of incidence) हमेशा परावर्तन कोण (angle of reflection) के बराबर होगा।

यह दोनों नियम निम्न लिखित प्रयोगसे सिद्ध हो जाते हैं:—

एक चपटे और चिकने तख्तेपर एक सफ़ेद काग़ज़ लगाइये और उस पर एक चपटा दर्पण अ आ (चित्र नं० ३) रख दीजिये।
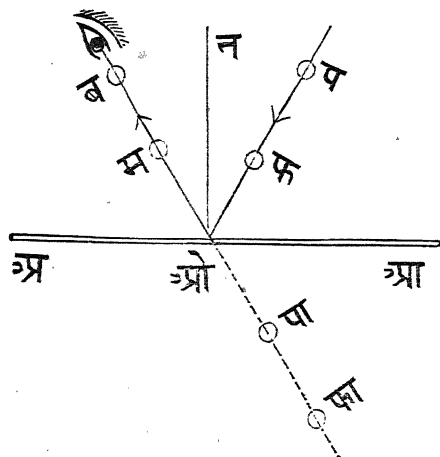
अब दो पिनें प और फ दर्पण के सामने सीधी गाड़िए प और फ में होकर जो लकीर खींची जावेगी वह पतित किरण (incident ray) की दिशा बतलायगी। अब चूंकि यह किरण दर्पणके 'ओ' बिन्दु पर पड़ कर परावर्तित हो जायगी इस लिए यह किरण पा और फा से जो दर्पणके पीछे दिखाई देंगे आती हुई मालूम होगी दर्पणमें देखते हुए दो पिनें ब और म इस प्रकार गाड़ दीजिये कि ब, म, पा और फा चारों एक ही सीधी लकीर-में मालूम हों तो ब और म परावर्तित किरणकी दिशा बता देंगे। अब कागज़ पर दर्पणकी सीमा खींच लीजिये और प, फ और ब, म में होती हुई लकीरें खींचिए और ओ से जहाँ पतित किरण (incident ray) दर्पणको मिलती है ओ न लम्ब (normal) खींचिए। यह स्पष्ट है कि फ ओ न पतन कोण (angle of incidence) और म ओ न परावर्तन कोण (angle ofr eflection) हैं। इन दोनों कोणोंके नापनेसे मालूम होगा कि वे दोनों कोण आपसमें बराबर हैं। इसी प्रकार और दूसरी पतित किरणें और परावर्तित किरणें खींचनेसे यह बात सिद्ध हो जायगी कि पतन कोण (angle of incidence) और परावर्तनकोण (angle of reflection) सर्वत्र बराबर ही होते हैं। अब चूंकि चारों बिन्दु प, फ, ब और म एक कागज़हीकी चपटी सतह पर हैं इसलिये यह बात भी सिद्ध है कि (incident) पतित किरण, (reflectied ray) परावर्तित किरण और लम्ब (normal) एकही तल में होते हैं जो परावर्तनका पहिला नियम है।

जब एक चपटे दर्पण (plane mirror) के आगे हम अपना मुंह ले जाते हैं तो दर्पणके भीतर हमको अपने मुंहकी तसवीर दिखाई देती है। इस तसवीरको मुंहका बिम्ब (image) कहते हैं। यदि प्रकाशकी किरणें किसी एक बिन्दुसे चलें और फिर नेत्रोंको किसी दूसरे बिन्दुसे आती हुई मालूम हों तो दूसरे बिन्दुको पहिले बिन्दुका बिम्ब कहते हैं। यदि प्रकाश की किरणें वास्तवमें दूसरे बिन्दुमें होकर जाती हों तो दूसरे बिन्दुको पहिलेका (real image) असली बिम्ब कहते हैं। बिंदु छिद्र केमरामें जो बिम्ब बनता है वह असली बिम्ब (real image) है।

यदि प्रकाशकी किरणें दूसरे बिन्दुसे केवल आती हुई मालूम ही होती हों और वास्तवमें उसमें होकर न जाती हों तो दूसरे बिन्दुको पहिलेका दिखावटी बिम्ब (virtual image) कहते हैं।

[शेष फिर]

थ्योद् कपाट

[लेखक—श्री० धर्मनाथ प्रसाद कोहली बी० एस-सी]

आजकल सर्वत्र बेतारके 'तार' ही का नाम सुनाई पड़ता है। अब वह समय नहीं रहा जब केवल आश्चार्य ही नहीं वरन् अविश्वास भी होता था। मानव प्रकृति ही ऐसी है कि कवि अपनी तीक्ष्ण बुद्धि-द्वारा कल्पना क्षेत्रके चाहे जितने चक्कर लगा ले, दार्शनिक अप्रमाणित बातोंको भी ओजपूर्ण भाषामें घटित कर दे, किन्तु कार्य क्षेत्र में आते ही वे लोप हो जाती हैं यहाँ उसी का बोल-बाला है जो प्रत्यक्ष दिखाई देवे, उसी पर विश्वास होता है, और श्रद्धा होती है। प्रति रात्रि सैकड़ों बिजलीके लम्प लाखों नागरिकों तथा करोड़ों मनुष्योंको मार्ग दिखाते हैं। अब ग्राममें भी कोई बिजली का नाम सुन सिर नहीं खुजलाता, भौंचक्का सा नहीं खड़ा होता। किन्तु कितने मनुष्य उसके निर्माण तथा कार्यक्रम पर ध्यान देते हैं। यद्यपि हम बिजली क्या है? इसका उत्तर देने में असमर्थ हों और उस सर्व शक्ति सम्पन्नके सम्मुख अपनी निर्बलताको सहर्ष स्वीकार कर लें, तथापि हम उन्हीं सांसारिक परिवर्त्तन रहित नियमोंको अपने लिये उपयोगी बना सकते हैं। संसार उन्नतिके पथ पर अग्रसर है। इतिहासवेत्ता सदा यही कहेंगे कि रामराज्य बीत गया और वे कालान्तर की तुलनामें ही लगे रहेंगे किन्तु मनुष्य समुदाय ऐसे नैराश्या-वलंबी भावोंसे दूर ही अपनी उन्नति और अपने सुखका उपाय करता ही रहता है।

सन् १६६० ई० में गिल्बर्टने अम्बरको रगड़कर बिजली पैदाकी और अम्बरके यूनानी नाम एलेक्ट्रोन से अंग्रेजी भाषा में एलेक्ट्रीसिटी शब्दका प्रचार किया और पदार्थोंकी एक सूची बनाई जिनको आपसमें रगड़नेसे बिजली पैदा होती है। तबसे अभी ३०० वर्ष भी नहीं व्यतीत हुये हैं। १८ वीं शताब्दिके अन्तमें गलवानी ने जो अनुसन्धान मेंढकों और बिजली पर किये थे वे इतने महत्त्व पूर्ण होंगे कि केवल मेंढक ही नहीं वरन् मनुष्योंके चित्रभी उसके फल स्वरूप सुदूर देशोंमें बातकी बातमें पहुँच जावेंगे इसका किसे ध्यान था लैपलेस और पायसा तथा ऐम्पीयर और फेरेडेने गणित द्वारा जो प्रभाव तथा नियमादि निश्चित किये थे वे इतने दृढ़ हैं कि उन्हींपर निर्धारित मैक्सवेलके नियम क्रान्तिकारी होते हुए भी सत्य ही निकले। सन् १८८८ में हर्ट्ज़ने प्रकाश और बिजलीकी लहरोंमें समानता स्थापित करके विज्ञानमें एक नया युग ही खोल दिया देश देशमें यह बात बिजली की तरह फैल गई और लोग इसमें इतने लिप्त थे कि ७ ही वर्ष में मारकोनी ने पहले पहल 'बेतार' खबर भेज सबको चकित कर दिया। इसी समयसे इस विद्यामें बहुतसे अनुसन्धान तथा अन्वेषण हो रहे हैं। यह तीन भागोंमें विभक्त किए जा सकते हैं प्रथम तो भेजनेके लिए यन्त्र आदि दूसरे भेजने के स्थान तथा पहुँचनेके स्थान पर आकाशी और तीसरे उन बेतारकी लहरों को पकड़नेके लिये प्रबन्ध। इनमें से आजकल भेजना और पाना दोनों ही में थ्योद कपाटका इस्तेमाल बहुतायत से होता है।

थ्योद कपाट नाम धीरे धीरे पड़ा था। यह तो बहुत पहलेही ज्ञात था कि एक गरम (conductor) चालकके चारों तरफकी वायु भा (conducting) चालक हो जाती है। साधारणतया हवामें बिजली उस प्रकार नहीं जाती जैसे धातुओंमें इस कारण यह आश्चर्य जनक प्रतीत होता था। एलस्टर और गीटेल ने १८८२—१८८६ में जो अनुसन्धान किये उनसे पता चला कि यदि एक गरम (conductor) चालकके निकट एक पट रक्खा जावे तो वह ऋण बिजलीसे विद्युन्मय हो जाता हैं। और १८८४ में एडिसन ने देखा कि बिजली की वत्तियों की दीवारें भी विद्युन्मय हो जाती हैं। इस प्रकार १८८६ के लगभग यह पूर्णतया प्रतीत हो गया कि एक गरम तारसे जिसमें बिजली चलती हो ऋण

बिजलीके अणु निकलते हैं। किन्तु इस विषयमें कोई अधिक उन्नति रिचार्डसनके समय तक न हो सकी। क्योंकि हवा की उपस्थिति से इसमें बाधा पड़ती है। रिचार्डसन ने ही (pumps) पम्पों द्वारा शून्य उत्पन्न कर और उसी दशामें प्रयोग कर नियम निकाले। इसी बीचमें फ्लेमिंगने भी इसी विषयपर काम किया (१८९६) थोड़े ही समय के उपरान्त (१८९९ में) सर जे० जे० थामसन ने इनकी समानता ऋणाणुओं से कर दी। रिचार्डसन का नियम समझने के लिए हमको (Electron Theory) ऋणाणुवाद के बारेमें कुछ जानना आवश्यक है।

आधुनिक मतके अनुसार प्रत्येक पदार्थ परमाणुओं (Atoms) से मिलकर बना है। प्रत्येक परमाणु (Atom) में धन तथा ऋण बिजलियां हैं किसीमें कम किसीमें अधिक। सबसे छोटी मात्रा जो अभीतक मिली है (यदि एहरेनहेफ्टके प्रयोग को निर्मूल समझें) और जो मिलिकनके प्रसिद्ध तथा प्रतिभायुक्त अनुसन्धानों का फल है "ऋणाणु" के नामसे आभूषित की गयी है। प्रत्येक पदार्थमें ये ऋणाणु होते हैं जो बड़े वेगसे इधर उधर चलते रहते हैं। परमाणुओंमें इनके अलावा धन बिजली भी होता है जिसके चारों ओर ये ऋणाणु घूमा करते हैं बिजली तारमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक अति शीघ्र पहुँच जाती है इसका क्या कारण है? इसके लिये बहुत सी कल्पनाएं होती रही हैं कोई भी सिद्धान्त हो उसे इन दो बातों को समझाना पड़ेगा। (१) धातुओं की तीव्र (conduction) चालकता तथा (२) गैसोंकी कम चालकता (conduction) इसके लिये "स्वाधीन" ऋणाणुओंकी उपस्थिति मान ली गई है। प्रत्येक ऋणाणु धनयवन के चारों ओर जाता हुआ उससे बंधा रहता है। जब दो परमाणु आपसमें टकराते हैं तो कभी कभी कोई ऋणाणु इस बन्धन से 'मुक्त' हो जाते हैं धातुमें परमाणुओंके टकरानेकी सम्भावना बहुत है इस लिए उसमें बहुतसे स्वाधीन ऋणाणु होते हैं किन्तु गैसमें इसके विपरीत। अब यह भी मान लिया जाता है कि चालकता (conduction) इन्हीं ऋणाणुओंके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक जानेको कहते हैं जहाँ अधिक ऋणाणु होंगे वहीं (current) धाराप्रबल होगी। इस लिये उसी बिजली चलाने वाली शक्तिसे धातुओंमें धारा गैसोंसे अधिक होती है।

रिचार्डसन ने १९०१ ई० में यह मान लिया कि धातुओंमें ऋणाणुओंको सतहसे बाहर जानेसे रोकने की सामर्थ्य होती है और ये वेग से इधर उधर घूमा करते हैं। जब हम तारको गरम करते हैं तब इनकी चाल तेज हो जाती है और ये रोकनेवाली शक्ति को पराजय कर धातुके बाहर आ जाते हैं। ज्यों ज्यों तार गरम होता जाता है त्यों त्यों अधिकाधिक ऋणाणु बाहर आते हैं। किन्तु ये आपसमें एक दूसरे को पास आने से हटाते हैं इस कारण जब बहुतसे ऋणाणु बाहर आ जावेंगे तब ये और अधिक न निकलने देंगे। इसी कारण पहले तो इनकी संख्या बढ़ती जाती है परन्तु एक स्थितिमें केवल तापक्रम बढ़ानेसे ही इनकी संख्या नहीं बढ़ती। तारके चारों ओरकी हवाका प्रभाव हानिकर होता है इसलिए शून्य नलीमें प्रयोग किया जाता है। रिचार्डसन ने ऋणाणुओंकी निकलनेकी तुलना जलके भाप बननेसे दी है जिस प्रकार जल कणोंकी संख्या जो भाप बनते हैं $\text{सं} = \text{अ}\sqrt{\text{त}}\,\text{इ}^{-\frac{\text{ग}}{\text{२त}}}$ जहाँ ग=गुप्तताप और त=तापक्रम केलविन माप। उसी प्रकार ऋणाणुओंकी संख्या $= \text{आ}\sqrt{\text{त}}\,\text{इ}^{-\frac{\text{ब}}{\text{२त}}}$ क्योंकि जब ऋणाणु धातुके बाहर जावेगा तो उसे काम तो करना ही पड़ेगा और 'ब' का इसीसे सम्बन्ध है। इससे यह प्रत्यक्ष है कि संख्या तापक्रमके बढ़नेसे बढ़ेगी और 'ब' के घटनेसे भी बढ़ेगी ब प्रत्येक पदार्थ पर निर्भर है इसलिए अधिक ऋणाणुओंको बाहर निकलनेके लिए उन पदार्थोंका प्रयोग करते हैं जिनमेंसे बाहर जानेके लिए बहुत सामर्थ्यकी आवश्यकता न हो। अनुभवसे देखा गया है कि खटिकम् अथवा स्त्रंशम से लिपटा

हुआ परहण्यम (platinum) इसके लिए सर्वोत्तम है। थोड़े ही तापक्रम पर इसमें से बहुत से ऋणाणु निकल आते हैं। वुलफ्रामम (Tungsten) पर थोरम (Thorium) का लेप करके उसका भी प्रयोग होता है। वुलफ्रामम (Tungsten) और परहण्यम (Platinum) बहुत तापक्रम पर पिघलते हैं इसलिए वे अधिक उपयुक्त हैं।

फिर लैंगमूरने इस विषय पर अन्वेषण करना प्रारम्भ किया और उसने सम्प्रिक्त धारा (Saturation current) का ठीक ठीक आशय समझाया। यदि हम (filament) तन्तुको एक शून्य नलीमें रक्खें और उसके समीप एक धन विजलोद हो जिस पर कोई भी वोल्टन लगा सकते हों और यदि हम उसका दूसरा सिरा (Terminal, Filament) तन्तुसे मिला देवें तो ऋणाणु धनोदकी ओर जावेंगे। यदि यह बिजलोद ऋण हो तो ऋणाणु वहाँ तक नहीं जा सकते। अब यह मान लिया जावे कि बिजलोद धन है तो ऋणाणुओंके चलनेसे धारा चलेगी। जितने अधिक ऋणाणु धन बिजलोद तक पहुँचेंगे इतनीही अधिक धारा होगी। तो हम धाराकी प्रबलतासे ऋणाणुओंकी संख्याका पता लगा सकते हैं लैंगमूरने इसीको नापा और उन्होंने यह दिखाया कि यदि तन्तुका तापक्रम बढ़ाया जावे तो यह धारा भी किसी हद तक

धनोद अवस्था भेद
चित्र १

बढ़ती है फिर नहीं। इसीको सम्प्रिक्त धारा (saturation current) कहते हैं। यदि हम धनोद के वोल्टनको बढ़ाते चले जावें तो अधिक ऋणाणु वहाँ तक जावेंगे और फिर तापक्रम बढ़ानेसे धारा बढ़ेगी किन्तु फिर किसी एक तापक्रम पर इसका बढ़ना रुक जावेगा तो हम देखते हैं कि यह सम्प्रिक्त धारा धनोदके वोल्टन पर निर्भर है। लैंगमूरने इसका एक नियम निकाला, सम्प्रिक्त धारा = अ व$^{\frac{3}{2}}$ (Saturation current=A $E^{\frac{3}{2}}$) अ = स्थिर संख्या और व=वोल्टन (A=constant and E=anode voltage) इसका पालन उसी समय तक होता है जब कि नलीमें शून्य हो नहीं तो ऋणाणुओंके धक्केसे अन्य कण भी यापित हो जाते हैं। तन्तुको गरम करनेके लिए विद्युद्धाराका प्रयोग किया गया था, और अब भी किया जाता हैं। जितनी अधिक धारा तन्तु (filament) में होगी तापक्रम उतना ही अधिक होगा। तो अब तन्तुधारा (filament current) और धनोद धारा (anode current) का सम्बन्ध चित्रसे मालुम हो जावेगा। यह तो रिचार्डसनके नियमके अनुसार है।

तन्तु धारा चित्र २

अब हम तन्तु धारा (Filament current) को विना बदले हुये, धनोदके वोल्टनको बदलते हैं। तब भी धारा कुछ दूर तक बढ़ती है फिर उसकी वृद्धि न्यूनातिन्यून हो जाती है। यह भी सम्प्रिक्त धारा (saturation current) है। इसका कारण सरल ही है। एक तापक्रम पर तन्तु (filament) से गिने हुए ही ऋणाणु प्रति सेकन्ड निकल सकते हैं अधिक नहीं। यदि वे सब धनोद तक चले जावें तब धनोदका वोल्टन बढ़ानेसे धारामें वृद्धि नहीं हो सकती है। वास्तवमें तो इसीको सम्प्रिक्त धारा (saturation current) कहना चाहिये किन्तु

रिचार्डसनका अन्वेषण बहुत पहले हुआ था जब लोग इन सब कारणोंसे अनभिज्ञ थे, और उसी समय उसका नाम पड़ गया था।

यह प्रत्यक्ष ही हो गया होगा कि धनोद्को हम ऋण अवस्था पर रखें (Negative potential) तो धारा कभी नहीं बहेगी क्योंकि ऋणाणु ऋणोद् तक पहुँचेंगे ही नहीं। इसी गुण पर निर्धारित कर फ्लेमिंगने उल्टी सीधी धाराको एक दिशा में करनेके लिये इस द्विओद कपाटका प्रयोग किया झूलनधाराओं (oscillatory 'currents') को शुद्ध (rectify) करनेके लिए इसके पहले भी दूसरी युक्तियोंका प्रयोग किया जाता था।

प्रकाशकी लहरें हमारे नेत्रोंपर प्रभाव डालती हैं उनकी लहर लम्बाई (wavelength) से बहुत बड़ी लहरोंका असर नेत्रों पर कुछ भी नहीं पड़ता इन लम्बी आकाश (ether) लहरोंको खोजनेके लिए दूसरे प्रबन्ध करने पड़ते हैं। पहले कोहिरर, चुम्बकीय सूचक, रवा सूचक (coherers, magnetic and crystal detectors) आदिका प्रयोग बहुतायतसे होता था, किन्तु १९०४ ई० में फ्लेमिङ्गने इस कपाटको पेटेन्ट कराकर इसको प्रयोगमें लाना प्रारम्भ कर दिया। इसके होते ही लोगोंकी दृष्टि इस ओर आकर्षित हुई और इस पर बहुतसे अनुसन्धान हुये। १९०७ ई० में डी फोरेस्टने ३ओद कपाट पेटेन्ट कराया और उसकी उपयोगिता दर्शाते हुए यह दिखला दिया कि उसका प्रयोग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

इसमें तन्तु (filament) और धनोद्के बीचमें एक जाली रख दी है जिससे इसका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया—सूचकता झूलनधारा उत्पत्ति (detecttion, oscillation generation) और वृद्धि (amplification) सबमें इसका प्रयोग हो सकता है। पहले हम इसका वर्णन करेंगे और इसके गुण दोषों तथा बनावट आदि पर विचार करनेके उपरान्त, ऊपर लिखे हुये क्षेत्रोंमें इसका प्रयोग समझावेंगे।

एक शून्य नलीमें एक तन्तु (filament) के चारों ओर जाली रहती है और उसके चारों ओर धनोद्।
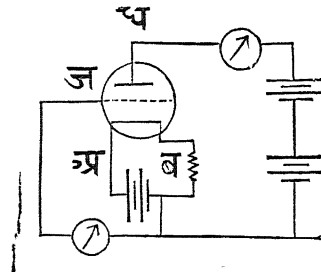
चित्र ३

चित्रमें इन्हें हम इस प्रकार दिखाते हैं "अ" और "ब" तंतु (filament) के सिरे (terminals) हैं, 'ज' जाली है। तथा ध धनोद है। जालीसे बड़ा भारी लाभ यह है कि कपाट पर हमारा वश बढ़ गया अब हम केवल धनोद्की अवस्था (potential) को ही नहीं वरन् जालीकी अवस्था (potential) को भी बदल सकते हैं। यदि जाली तन्तु (filament) के अपेक्षा ऋण (negative) हो तो ऋणाणु उसकी ओर जाते समय एक विपरीत शक्तिका अनुभव करेंगे। यदि वह धन (positive) है तो यह शक्ति सहायक होगी। अब, पहले जालीको समान अवस्था (voltage) पर होने दो और धनोद्को धन (positive) पर; और जो विद्युद्-धारा धनोद् चक्रमें बहती हो उसे नाप लो। अब जालीको ऋण अवस्था (Negative potential) पर करो, (और किसीमें बिना अन्तर किये हुये), तो धनोद्की धारा कम हो जावेगी यदि फिर हम जालीको धन (positive) करें तो धाराकी वृद्धि होगी। और इसका कारण भी सरलता पूर्वक ऊपर बतानेका प्रयत्न किया गया है। यदि हम जालीकी अवस्था और धनोद् धाराको लेकर चित्र खींचे तो हमको एक (ख) जैसा चित्र मिलता है यदि धनोद की अवस्था (potential) बढ़ा देवें तो धारा प्रत्येक स्थान पर बढ़ जाती है और (क) के समान चित्र हो जाता है।
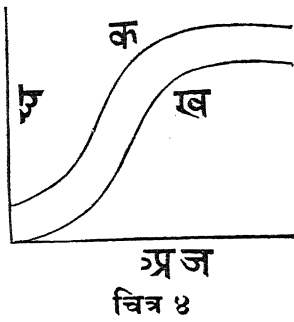
चित्र ४

हम जालीके चक्कर (circuit) में भी धारा नाप सकते हैं, और जालीकी अवस्थाके साथ उसके बदलनेका कर्म इस चित्रमें दिया है प्रथम तो जैसे जैसे अवस्था (potential) बढ़ती है धाराभी बढ़ती है 'उ' से 'क' तक और उसके साथ खींचनेकी शक्तिभी जिससे ऋणाणुओंको वेग बढ़ जाता है। जब ये अति वेग पूर्ण ऋणाणु जालीसे टकराते हैं तो उसमेंसे भी ऋणाणु निकलते हैं जो धनोदकी ओर चले जाते हैं। और इस कारण धारा कम होने लगती है (क से ख तक) किन्तु यदि हम जाली
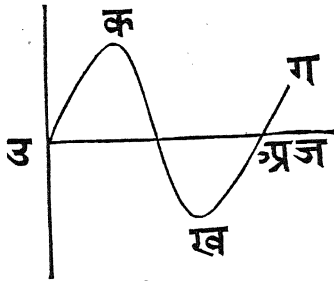
चित्र ५

को धनोदसे भी अधिक धन (positive) बना देवें तो ऋणाणु फिर नहीं निकलेंगे और धारामें फिर वृद्धि होगी। इस मनोरञ्जक गुणका प्रयोग भूलन चक्कर (oscillation) में किया भी जाता है।

अब हम धनोद धारा और अवस्था (potential) में सम्बन्ध स्थापित करेंगे, किसी भी (Insulated conductor) रोधित चालक पर बिजलीकी मात्रा =समाई × वोल्टन (capacity × voltage) किन्तु यह उसी समय सत्य है जब हम और सब चालकों को शून्य अवस्था (zero potential) पर समझें।

यदि तोन चालक (conductors) हों तो यह साबित हो सकता है कि एक किसी पर बिजलीकी मात्रा=$स_{११} व_१ + स_{१२} व_२ + स_{१३} व_३$ ($Q=C_{AA} V_A + C_{AB} V_B + C_{AC} V_C$) जहाँ पर $स_{११}$ समाई हुई और $स_{१२}$ तथा $स_{१३}$ उत्पादन गुणक (cofficients of induction) हैं इसी प्रकार दूसरे पर मात्रा=$स_{२१} व_१ + स_{२२} व_२ + स_{२३} व_३$। परस्पर उत्पादनके गुणक तो (cofficients of mutual inductance) बराबरही होंगे इसलिए $स_{१२} = स_{२१}$ ड्योद कपाटमें अवस्था तन्तुकी अपेक्षा नापी जाती है इसलिए तन्तुकी अवस्था शून्य मानलें अथवा $व_१=०$ तो

तन्तु पर बिजलीकी मात्रा=$स_{१२} व_२ + स_{१३} व_३$ और धारा ध=फ (मात्रा)=फ ($स_{१२} व_२ + स_{१३} व_३$) यदि हम धनोदकी अवस्थाको $अ_ध$ कहें और जालीकी २ो $अ_ज$ और $स_{१२}$ को तन्तु जाली और $स_{१३}$ को धनोद तन्तु उत्पादन गुणक माने तब, $ध = फ\left(\frac{स_{१२}}{स_{१३}} अ_ज + अ_ध\right) = फ (ब\, अ_ज + अ_ध)$ ब को वृद्धि गुणक कहते हैं। लैंगमूरने अपने अन्वेषणके अनुसार तथा अनुभवसे ध=स्थिर संख्या $(ब\, अ_ज + अ_ध)^न$ न = $\frac{३}{२}$...२ कर दिया, किन्तु चित्रमें यह सीधी रेखाके लिये ही सत्य है, और इसमें बहुत सी त्रुटियाँ हैं प्रथम तो इसमें ओदों-के किनारेका प्रभाव पड़ता है दूसरे विद्युद्धारा द्वारा गरम किए तन्तु (filament) पर अवस्था बदलती रहती है। तीसरे ऋणाणोंमें सबका वेग बराबर नहीं होता। इन सब कारणोंके अतिरिक्त तन्तुका तापक्रम बदलता रहता है। तब भी ध = फ ($ब\, अ_ज + अ_ध$) $I=f(uE_G + E_A)$ ही बहुत करके माना जाता है।

यहाँ पर हम देखते हैं कि यदि जालीकी अवस्था एक वोल्ट (volt) बढ़ा दें तो धारा पर उसका प्रभाव उतना ही पड़ेगा जितना धनोदके ब वोल्ट बढ़ानेसे। इसीसे हम इसे वृद्धि गुणक (amplification factor) कहते हैं यदि धनोदको न बदलें

तो जालीकी अवस्था बदलनेसे ही कपाट अपने वशमें पूर्णतया रहता है। वृद्धि (amplification) जिसका व्योरा आगे दिया जावेगा इसी पर निर्भर है।

पकड़में यह और सबसे अच्छा है क्योंकि कोहिररको (coherer) थपथपाना पड़ता है। रासायनिक सूचकों (electrolytic detectors) में चालकता (conductivity) ही बदल जाती है क्योंकि ओदोंपर यवनोंकी (Ionic films) झिल्ली बदलती रहती है। रवा सूचक यद्यपि बहुत सस्ते और काफी (crystal detectors) सूचकताबाले हैं तथापि वे शीघ्रही बेमेल हो जाते हैं। और चुम्बकीय सूचक (magnetic detectors) के प्रयोग करनेमें इतनी सरलता नहीं पड़ती जितनी त्र्योद कपाटों (Triode valves) के। प्रयोगमें ये बहुत तीव्र सूचक हैं शीघ्रही कार्यके लिए प्रस्तुत हो जाते हैं, तडित (electric sparks) और हवाई गड़बड़ (atmospherics) का असर कम होता है, और सदाकामके समय तैयार रहते हैं। और फिर हम इन्हें झोटोंके उत्पन्न करने, पकड़ने और बढ़ाने (generation, detection and amplification) सबहीमें काममें ला सकते हैं किन्तु इनका दाम अधिक होता है, और इनकी 'आयु' निश्चित रहती है, इनसे काम लेते समय बड़ी सावधानी चाहिये। तन्तु (filament) में बहुत अधिक धारा (current) नहीं जानी चाहिए।

इनके बनानेके लिए शून्य पैदा करनेका समुचित प्रबन्ध होना आवश्यक है। तन्तु (filament) आदि कैसे होने चाहिये यह तो पहिले ही लिख दिया गया है। शून्यकी आवश्यकता बहुत है। क्योंकि यदि कपाटमें गैस हुई तो ऋणाणुकी टक्करसे गैसोंके अणु यापित हो जावेंगे और धन यवन (positive ions) तन्तु (filament) पर टकरावेंगे जिससे या तो वे ही घिसेंगे नहीं तो उनके लेप छूट जावेंगे। और फिर इस यापन (Ionisation) का कुछ ठीक नहीं कभी कितना हो कभी कितना, इस कारणसे यदि शून्य पर्याप्त न हुआ तो उन्हीं स्थितियों (conditions) में कपाटका सदा एकही व्यवहार रखना अति कठिन ही नहीं दुस्तर होगा। और कपाटकी सारी उपयोगिता चली जावेगी। एक-ग्राहक कपाटमें वृद्धिके लिए दबाव केवल 10^{-5}, 10^{-6} सहस्रांश मीटर पारेका होना चाहिए जनक कपाटके लिए इससे भी अधिक शून्यकी आवश्यकता होती है। प्रयोगके उपरान्तही कभी कभी तन्तुमें से गैस निकलती है जो हानिकर हो सकती है, इसलिए एक उड़नशील धातु कपाटमें रख दी जाती है और कपाटको बन्द करनेके उपरान्त उसे गरम करते हैं जिससे धातु कपाटकी शीशेकी नलीके चारों ओर छा जाता है और कपाट चाँदीका चमकता हुआ दिखाई देता है।

देश और काल

[ले० श्री० सुरेशचन्द्र देव, एम० एस-सी]

उपक्रमणिका

इस जगत्में किसी तरहके पर्यवेक्षणके लिये हमेशा दो सत्ताओंकी जरूरत पड़ती है—एक जो कि उसका कर्त्ता है, अर्थात् जो पर्यवेक्षक है और दूसरा जो कि उस पर्यवेक्षक का आधार है, अर्थात् जिसका पर्यवेक्षण किया जाता है।

हम लोग जो कुछ देखते हैं वह केवल उस वस्तु पर ही निर्भर नहीं रहता है प्रत्युत हमारी अपनी स्थिति' गति और अन्य व्यक्तिजन अवस्थाओंका प्रभाव भी उस दृश्य पर अपना असर डालता है। कभी अभ्यासही से, कभी कल्पना द्वारा हम पर्यवेक्षणमें से अपने निजके भागको निकाल देना चाहते हैं, और इस तरहसे बाह्य जगत्का ऐसा एक उपचयित चित्र गठन करनेकी चेष्टा करते हैं जो कि सबके लिये समान हो। जैसे समुद्रमें चक्रवाल रेखाके निकट एक क्षुद्र विन्दु को एक विशाल जहाज कह कर कहते हैं, रेलगाड़ी कमरे में बैठ कर खेतमें वृक्षोंको ४० मील प्रति घण्टा गतिसे भागते हुए पाने पर भी वे स्थिर हैं ऐसा कहते हैं। या नक्षत्रों

को इस पृथ्वीके चारों तरफ घूमते हुये पाने पर भी यह सिद्धान्त स्थिर करते हैं कि पृथ्वी ही घूमती है और ऐसा कह कर जगत् का एक ऐसा दृश्य गठन करते हैं जो कि किसी अन्य ग्रह में रहने वाले जीव की दृष्टिमें भी ठीक ही हो।

अतएव अपने ज्ञान को एक साधारण भित्ति पर लाने के लिये सबसे पहले हमको व्यक्तिगत भिन्न भिन्न भूमियों का परिहार करके एक आदर्श पर्यवेक्षक के बनाने की आवश्यकता होती है। ऐसा करने से जगत् का जो चित्र पाया जाता है यह मत समझो कि वह निरपेक्षिक हो गया क्योंकि इसमेंसे हम लोग पर्यवेक्षकके भाग को तो निकाल ही नहीं सके। उसको और विशेष करके हमने निर्दिष्ट किया है।

पर्यवेक्षक की जो जो अवस्थायें उसके पर्यवेक्षण पर प्रभाव डालती हैं उनमें उसकी स्थिति, गति और नापने का मान दण्ड प्रधान हैं। बाकी जो कुछ है उन सबका हम वैज्ञानिक यन्त्रों के व्यवहार द्वारा परिहार कर सकते हैं। किन्तु पूर्वोक्त तीन विषय—स्थिति, गति, और आकार यन्त्रोंका भी है इसीलिये उनका इन यन्त्रोंके व्यवहार द्वारा परिहार नहीं कर सकते। इसी कारणसे इन तीनका प्रभाव हमारे समस्त पर्यवेक्षणके फलके सहित मिला हुआ रहता है। वैज्ञानिक यन्त्र और हमारा शरीर इन दोनों में कोई मौलिक fundamental) भेद नहीं है क्योंकि उभयत: बहिर्जगत् में हमारा परिचय केवल जड़मय स्थूल पथसे ही निष्पन्न होता है।

हमारे निकट जो जगत् प्रकाश मान है उस पर पूर्वोक्त ये तीन विषय—अर्थात् स्थिति, गति और मान दण्डका विशेष प्रभाव पड़ता है। क्या हम लोग जगत्का ऐसा एक कोई दृश्य गठन कर सकते हैं जो कि सब अवस्थानों, सब गतियों और सब प्रकारके आकारोंके संश्लेषणसे निष्पन्न हुआ हो? यह बात तो ठीक है कि अवस्थानका संश्लेषण हम करते हैं। हमारी दो आंखे हैं जिन्होंने बाल्यावस्था ही से हमारे मस्तिष्क में यह बात प्रविष्ट कर दी है कि जगत् को एकसे अधिक स्थानसे देखना चाहिये। इससे हमने ठोस (solid) आकार का अनुभव करना सीखा है। इससे हम लोग उन तीन व्याप्तिमानों (dimension) के जगत्को एक ऐसे प्रत्यक्ष रूपसे पाते हैं जो कि केवल दो व्याप्तिमानों (dimension) के दृश्योंसे कभी अनुभव में नहीं आ सकता है तीन व्याप्तिमानों के जगत्को हम लोग कल्पना द्वारा नहीं निकालते हैं, परन्तु उसको हम लोग प्रत्यक्ष करते हैं। लेकिन विभिन्न गतिओंके संश्लेषण (synthesise) करनेका कोई उपाय हममें नहीं है। अगर हमारे दोनों नेत्र ऐसे होते कि एक दूसरेके सम्पर्कमें आपेक्षिक गति सम्पन्न हो सकती तो कदाचित् हममें ऐसा कोई गुण पैदा हो जाता जिसमें हम यह संश्लेशण (synthesis) आप ही आप कर लेते। हम लोग चार व्याप्तिमानों (dimension) का एक ऐसा ठोस रूप (solid relief) अनुभव कर सकते जो कि सकल प्रकार की गतियोंको संश्लेषण करनेसे बनता है। और इसके उपरान्त अगर हमारे नेत्रोंके आकार विभिन्न होते तो चींटीसे हाथी तककी दृष्टियों द्वारा अनुभूत समस्त विषयोंको संयुक्त कर देनेमें अवश्य सफल होते।

अब तक जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि जगत्का एक व्यक्ति रहित (impersonal) चित्र गठन करनेके लिये जो जो गुण और इन्द्रिय हममें रहनी आवश्यक हैं, वह हमें प्राप्त नहीं हैं। इसका हम सदा अनुभव करते हैं, और इसलिये ही हम लोग अपनी स्थूल इन्द्रियों द्वारा परिचित जगत्के अतिरिक्त प्रकृति का कोई एक रूप गठन करनेमें संकोच नहीं करते हैं, ऐसे जगतकी तो हम कदाचित् धारणा कर लेंगे, परन्तु मस्तिष्कसे उसका एक चित्र बनाना असम्भव होगा। हमारी स्थूल इन्द्रियोंके निकटकी अपेक्षासे जगत्का जो रूप प्रकाशमान है उससे ही केवल प्रकृतिके ज्ञानको सीमाबद्ध कर रखना युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता है; क्योंकि जैसा सर ओलीवरलाज साहब कहते हैं कि हमारे जीवन संग्राममें (struggle for existence) ही हमारी

इन्द्रियां अभिव्यक्त हुई हैं—जगत् रहस्य पर दार्शनिक विचार करनेके कार्य द्वारा नहीं।

एक चमत्कृत परीक्षा

हमारे अनुभवोंपर पर्यवेक्षककी अवस्थाओंका जो प्रभाव है उसको यहां पर और अधिक सूक्ष्म रूपसे विश्लेषण (analyse) न करके एक अति चमत्कृत परीक्षा का वर्णन करते हैं। क्योंकि देश और काल की जो कुछ मीमांसा की गई है उन सबका मूल है यही परीक्षा। समझानेके लिये हम एक अति साधारण दृष्टान्तसे इसको आरम्भ करेंगे।

कल्पना करो कि एक बहती हुई नदी है। नदी ५०० गज चौड़ी है। समस्या यह है कि एक किनारेसे दूसरे किनारे तक जाकर लौट आनेमें या ५०० गज पहले नदीकी धाराके विपरीत जाकर फिर धाराके साथ अपनी जगह पर लौट आनेमें समय अधिक लगता है। मान लिया जाय कि धाराकी गति है मिनिटमें ३० गज और पैरनेवाला पैरता है मिनिटमें ५० गजके हिसाब से।

धाराके प्रवाह के साथ जब जाता है तब पैरनेवाले की गति होगी ८० गज मिनिटमें। जब उल्टा जाता है तब होगी २० गज। जानेमें लगेगा ५००/८० = ६१/४ मिनिट, लौटनेमें लगेगा ५००/२०=२५ मिनिट, कुल जाने आनेमें २५+६१/४ मिनिट।

इस पारसे दूसरे पार जानेके समय यह सब पैरने वालोंही को पता है कि अगर वे ठीक सीधा पार करने जावें तो धारा उनको खींचकर बहा ले जाकर दूर भेज देगी। इसीलिये वह धाराके दूसरी तरफ दूसरे किनारे परके एक ऐसे स्थानपर दृष्टि रखकर चलेगा कि जिस समयमें वह पार पहुँचता है धारा भी उस स्थानसे उसको नीचे बढ़ाकर जहांसे उसने पैरना शुरू किया था ठीक उसके उल्टे किनारे पर पहुँचा देगी। यह बहुत आसानीसे निकाला जा सकता है कि अगर पैरनेवालेकी गति ५० गज मिनिटमें, धाराकी ३० गज, और इस पारसे उस पार ५०० गजका फासला हो तो पैरने वाला इस पारमें एक ऐसे स्थान को देखकर चलेगा जिसका फासला जहांसे वह चला था वहांसे ६२५ गज का है। उसकी गति है ५० गज मिनिटमें; इसलिये पार करनेमें उसको लगेगा ६२५/५० = १२१/२ मिनिट। लौटनेमें भी और १२१/२ मिनिट—दोनों मिला कर जाने आनेमें २५ मिनिट। धाराके उल्टा और साथ जब चला था तब उसको लगा था ३११/४ मिनिट।

अतएव धाराके उल्टा और साथ जानेके समय, आरपार करनेके समयसे ३११/४ : २५ इस निष्पत्ति से बड़ा है।

इस अङ्कसे यह साफ मालूम होगा कि फल धारा और पैरने वाले दोनों की गति पर निर्भर है।

जो प्रसिद्ध परीक्षा १८८७ ई० में अनुष्ठित की गयी थी उसमें तैरने वाला था प्रकाश तरङ्ग (wave of light)। प्रकाश ईथरमें तरङ्ग रूपसे एक सैकण्डमें १८६००० मील गतिसे जाता है। ईथर, दरियाके पानीकी तरह परीक्षागार (laboratory) के भीतर से बह रहा था। प्रकाश तरङ्गको ऐसे एक दर्पणसे प्रतिबिम्बित (reflected) किया गया कि आधा एक दिशामें गया और आधा उसके समकोणमें दूसरी दिशामें गया। कुछ दूर जाकर दोनों रश्मियों को अन्य दो दर्पणोंसे अपने ही रास्ते पर लौटा दिया गया है, जिससे कि वे जहांसे चली वहीं पर लौट जायं। ऐसा करने से यह फल हुआ कि रश्मिका एक भाग तो ईथर को धाराके साथ चलने पाया, दूसरा उसको काट कर—जैसा कि हमारे तैरने वालेने किया था—चला। अब हमारे पैरने वालेके हिसाबके अनुसार प्रकाश रश्मिको दो विभिन्न दिशाओंमें चलने पर समयका भेद होना चाहिये। हिसाबके मुताबिक जो भेद पाया जाता है उसको परीक्षासे पानेके लिये एक अति विचित्र उपाय निकाला गया। यह उपाय ऐसा सूक्ष्म था कि हिसाबसे जितना मिलता था उसके दस भागका एक भाग भी यन्त्र द्वारा पकड़ा जा सकता था। यह अभिनव उपाय क्या था उसका वर्णन इस लेखका उद्देश्य नहीं; इसके उपरान्त उसके लिये

प्रकाश विज्ञानके संघट्ट (interference) नामक एक सिद्धान्तके विचार करनेकी आवश्यकता आ पड़ेगी जिससे कि मूल वक्तव्यको छोड़कर दूर निकल जाने की आशङ्का है। इसी कारणसे हम उस चमत्कार उद्भावन को छोड़कर परीक्षाके फलको लेकर आगे चलेंगे।

परीक्षाका फल

जब यह परीक्षा समाप्त हुई तब मिकेलसन और मोरली नामक दो वैज्ञानिकों को जो इसका सम्पादन कर रहे थे—यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि पूर्वोक्त दोनों प्रकाश तरङ्गें जो कि दो विभिन्न दिशाओंमें ईथरको तैरकर गयी थीं, एक ही साथ लौट आयीं। उन दोनों वैज्ञानिकोंने परीक्षामें जितने जितने सम्भवनीय कारण हो सकते थे सबको सोच कर परिहार करके परीक्षाको दोहराया। परन्तु उनके परीक्षा फलमें कोई अन्तर न हुआ। दोनों तरङ्गें एक ही साथ प्रत्येक बार लौट आयीं।

इस परीक्षाके फलकी विचित्रता की तुलना शब्द तरङ्ग द्वारा वैसा ही प्रयोग करके की जा सकती है। उससे मिलाने पर (compare) प्रकाश जिस प्रकार ईथर में तरङ्ग रूपमें प्रवाहित होता है, शब्द भी उसी तरह वायुमें चलता है। शब्दको लेकर ठीक प्रकाशके समान अगर किसी तरहकी परीक्षाकी जाय तो जो तरङ्ग, धारा (current) की दिशा में चलती है उसके लौटनेमें विलम्ब होजाता है, प्रयोगसे इस प्रकारका फल मिलता है। अब समस्या यह है कि प्रकाश क्यों इस तरह विचित्र रूपसे आचरण करता है ?

ऐसा क्यों होता है।

प्रयोगमें इस विचित्र फलके प्रकट होनेकी सबसे सीधी और सरल व्याख्या यही होगी कि यन्त्रका जो अङ्ग ईथर धारा (current) की दिशामें रहता था वह आपही आप छोटा हो जाता था। परीक्षामें प्रकाश तरङ्गके भ्रमणका पथ कठिन और स्थूल वस्तुसे निर्दिष्ट था। अब परीक्षाके फलकी व्याख्याके लिये हमको यह कल्पना करनी पड़ती है कि चाहें जिस दिशामें रक्खें ईथर तरङ्गकी अपेक्षासे, आपही आप सङ्कुचित हो जायगा। यह सङ्कोचन सब प्रकारकी जड़ वस्तुओंके लिये एकसा है—क्योंकि काष्ठ, प्रस्तर, धातु पदार्थ इत्यादि—विभिन्न वस्तुसे उस यन्त्र का निर्माण करने पर भी फल एकही रूप पाया गया। हम पहले देख चुके हैं कि जो विलम्ब मिलना उचित है वह ईथर धारा और प्रकाश तरङ्गके वेगकी निष्पत्ति (ratio) पर निर्भर है। यह विलम्ब स्थिर रहता है क्योंकि इसको हम लोगोंने निकाला था गणित द्वारा ही—एक ऐसे शास्त्रके द्वारा जिसमें भ्रान्तिकी कोई सम्भावना नहीं है। अब जब देखते हैं कि परीक्षामें वह विलम्ब प्रकट नहीं होता है तो यह कहना उचित है कि जो संकोचन इसका पूरण (compensate) करता है, और जिसके कारणसे दो दिशाओंकी दो प्रकाश तरङ्ग एक ही साथ लौट आती हैं, वह भी गणित ही की तरह भ्रान्तिरहित है। संकोचनकी इस कल्पनामें परीक्षाके इस विचित्र फल की जो व्याख्या की गयी इसको लोरन्ट्स साहबने पहले गणित इत्यादि द्वारा स्पष्टतः प्रदर्शित किया था। इसी लिये इसका नाम लोरन्ट्स संकोचन (Lorent's contraction) दिया गया है।

संकोचन पर लोरेन्ट्स साहब का कार्य।

विज्ञानकी वर्त्तमान अवस्थामें इतना सबको अवश्य मालूम है कि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ विद्युत्-अणुओंसे बना हुआ है। इसीलिये जिस संहति बल (cohesive force) से जड़ पदार्थका आकार स्थिर रहता है, उसका भी मूल कारण विद्युत् ही है। वैज्ञानिक लोग यह भी मानते हैं कि ईथर विद्युत् शक्तिका आधार स्वरूप है, और विद्युत्का जितना व्यापार होता है। लोरेन्ट्स साहबका कथन है कि अगर ईथर—अर्थात् यह विद्युन्मय माध्यम (Electrical medium) जब जड़ पदार्थोंके कणोंकी बगलसे बहता है, तो, जो वैद्युतिक संहति बल (cohesive force) उन कणोंको

अपने स्थान पर धारण करके पदार्थको कठिन आकार देता है, वह इस वैद्युतिक माध्यमकी धाराके प्रभावसे बचकर नहीं रह सकता। इसी लिये जब कभी इस धाराका परिवर्त्तन होता है—साथ साथ संहति बल (cohesive force) परिवर्त्तित होकर धाराकी अपेक्षासे अपनेको ठीक (re-adjust) कर लेता है। संहति बलका अपनेको यह ठीक कर लेना ही धारा की दिशामें जड़ पदार्थ के संकोचनके रूपसे प्रकट होता है।

मिकेलसन और मौरलीकी परीक्षा ईथरके भीतर हमारी गतिको निर्धारित करनेके कार्यमें विफल हुई, कारण जिस कार्य (effect) का [अर्थात् एक दिशाकी प्रकाश तरङ्ग का दूसरी दिशाकी तरङ्गसे विलम्ब करके आना] वे लोग अनुसन्धान कर रहे थे, उनके यन्त्र जिस पदार्थसे निर्मित्त हुए थे उसके आप ही आप संकोचनसे वह पूरित (compensation) हो जाता था। अन्य अनेक प्रकारकी परीक्षायें भी अनुष्ठितकी गई किन्तु सबही में किसी न किसी जगह वह स्वयं संकोचन उपस्थित परीक्षाको विफल कर देता था। अब हम लोग यह पूर्ण रूपसे विश्वास करते हैं कि प्रकृतिमें कुछ ऐसा रहस्य है जो कि निश्चित रूप से इस परिपूरण को सम्पादन कर देता है—जिससे कि ईथरके भीतरसे हमारी गति का निकालना कभी सम्भव नहीं होगा। चाहे हम ईथर में स्थिर होकर रहें, या चाहें प्रकाश की गति के निकटवर्त्ती किसी गति से इसके भीतर से चलें किसी अवस्थामें भी हमारी परीक्षा में ईथर के भीतरसे अपनी गति को पानेमें सहायता न मिलेगी।

आपेक्षिक वादकी प्रथम प्रतिज्ञा

ऊपर यह जो स्वीकरण किया गया है उसको आपेक्षिक वाद (Relativity theoy) की प्रथम प्रतिज्ञा (hypothesis) कहते हैं; वह यह है—किसी तरह की किसी परीक्षा से ईथर की अपेक्षासे समरूप गति का मिलना असम्भव है। (It is impossible by any experiment to detect uniform motion relative to the ether.)

क्रमशः

प्रकाशकी प्रकृति

[ले० श्री राजेन्द्र बिहारीलाल, बी. एस-सी]
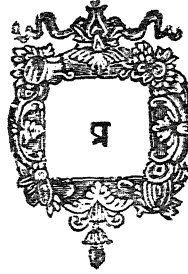
प्रकाशके चमत्कार बहुत ही अद्भुत और मनोरंजक हैं, दिनमें सूरज निकलता है और संसारको सफ़ेद रोशनीसे भर देता है। रातमें चन्द्रमाकी धीमी सुनहरी रोशनी बहुत प्रिय मालूम होती है। बच्चे चांदकी ओर देखते हैं और मग्न होते हैं। रामचन्द्रजीकी वह बाललीला सबने पढ़ी होगी जब वह चन्द्र खिलौना लेनेके लिये बहुत देर तक मचलते रहे। अन्तमें उनके हाथमें एक दर्पण देकर उनको चांदके बिम्बही से बहलाया गया। सूर्यके उदय और अस्त होनेके समय आसमान जो दिन भर नीला रहता है लाल हो जाता है। वर्षाके बाद आकाशमें इन्द्र धनुष अपनी मनोहर छटा दिखाता है। रेगिस्तानमें यात्रा करनेवाले दिनमें अक्सर देखते हैं कि उनके सामने एक झील दिल लुभानेवाले जलसे भरी है। परन्तु पास जाने पर केवल रेता ही रेता मिलता है और सब भ्रम मालूम पड़ता है। यह और इनके अतिरिक्त ऐसेही बहुतसे चमत्कारोंसे मनुष्यका सदाही से और भली भांति परिचय है। मनुष्यकी बुद्धि सदाहीसे इस प्रश्नके हल करनेकी खोजमें रही है कि प्रकाश क्या है?

प्लैटो और अरस्तूका विचार था कि प्रकाश केवल आंख ही का एक गुण है। जिस प्रकार झींगुर, या दूसरे बहुतसे जानवरोंके मुंहपर दो लम्बे बाल निकले रहते हैं जिनके द्वारा वह कुछ दूर ही से सामनेकी चीज़ोंको छूकर अपने मार्गकी

दिशा जान सकते हैं, इसी तरह नेत्रोंसे भी कुछ अदृश्य पता लगानेवाली चीजें निकला करती हैं जो आँखको सामनेकी चीज़ोंके रंग रूपका ज्ञान या पता देती हैं। यह विचार बिल्कुल ग़लत है इसके साबित करनेकी कोई अधिक आवश्यकता नहीं क्योंकि यह सबही जानते हैं कि प्रकाशकी सूचना नेत्रोंके सिवा और बहुतसे यन्त्रों द्वारा भी मिल सकती हैं। चित्रपट केवल प्रकाशका पता ही नहीं लगा लेती है बल्कि उसका एक स्थायी लेखा भी बना देतो है। और यहही नहीं, प्रकाश चित्रण द्वारा हम प्रकाशके उन भागोंका भी पता लगा सकते हैं जो आँखको तो दिखाई ही नहीं देते। आँख हो या न हो आँख देख सके या न देख सके, इसपर प्रकाशका होना या न होना बिल्कुल निर्भर नहीं।

खोज करनेवालोंके मनमें हमेशासे यह प्रश्न उठते रहे हैं कि प्रकाश क्या वस्तु है? सूरजसे जो प्रकाश हम चिरकाल हीसे पाते चले आए हैं वह आकाश मण्डलमें होकर हमारे समीप तक कैसे पहुँचता है? यूनानवालोंने जो उत्तर दिया बहुत ही सरल और स्वाभाविक है। उन्होंने कहा कि सूर्य्य और ताप और ज्योतिके तमाम विकीर्णक नन्हें नन्हें कणोंको चारों ओर फेंकते रहते हैं। जब यह कण खाल या आंखसे टकराते हैं तो हममें गर्मी या रोशनीका बोध पैदा करते हैं। न्यूटन का भी यही मत था। उसने कहा कि प्रकाश छोटे छोटे कणोंका एक समूह है जो बहुत तेज़ीसे चल रहे हैं। यह कण चमकीले पदार्थोंसे इसी तरह निकलते हैं जैसे बन्दूकसे गोलियां जबतक यह कण मण्डलमें चलते रहते हैं उनका मार्ग सीधी रेखा ही होता है जैसा कि एक चलाई हुई गोली काभी ऐसी दशामें होगा। जब वह किसी पदार्थके बहुत निकट पहुँच जाते हैं तो उनका पथ कुछ बदल जाता है। भिन्न भिन्न रंगके प्रकाशके कण भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं।

न्यूटनके मतके विरुद्ध हौलेण्डके भौतज्ञ क्रिस्चन हाइगन्सने एक और सिद्धान्त निकाला। उसने कहा कि शब्दकी भांति प्रकाशभी लहर है और एक स्थान पर लहरों हीके रूपमें चलता है। यदि हम किसी तालाबमें एक ढेला फेंकें तो देखेंगे कि जहां ढेला पानीमें गिरता है वहांसे लहरें उठ कर पानीकी सतह पर चारों ओर फैल जाती हैं। यह लहरें गोल हलकोंके रूपमें आगे बढ़ती दिखाई देती हैं। ज्यों ज्यों वह अपने उत्पत्ति स्थानसे दूर चलती जाती हैं उनका जोरभी कम होता जाता है यहां तक कि कुछ दूर जाने पर वह दिखाईही नहीं देतीं। लहरोंके साथ हमको पानीभी चलता जान पड़ता है। परन्तु वास्तवमें पानी नहीं बल्कि सामर्थ्य लहरोंके साथ जाती है। पानीके कण अपनीही जगह पर रह कर केवल ऊपर नीचे झूला करते हैं। यदि लहरोंके साथ पानीभी चारों ओर फैल जाता तो जहां ढेला पानीमें गिरा था वहां पर एक बड़ा गडढाहो जाता। परन्तु ऐसा देखनेमें कभी नहीं आता। इससे वह सिद्ध हुआ कि लहरें हमारे ढेलेसे सामर्थ्य लेकर उसको चारों ओर फैला देती है जिसके कारण पानीके कण ऊपर नीचे हिलने लगते हैं। पानीके कणोंके उठने और गिरने ही से सतहपर एक तरङ्ग रूपी गड़बड़ चलती हुई दिखाई देती है। पानीके ऊपर नीचे हिलने ही से तरङ्गें उठती हैं। पानीके एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जानेको धारा कहते हैं
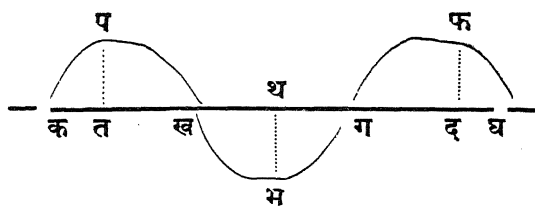
चित्र १

यह एक लहरका चित्र है। 'क ख ग घ' पानीकी समतल सतह है। किसी क्षण पर लहरका आकार 'क प भ फ' है। 'त' पर पानीके कण ऊपर उठ

गये हैं, 'थ' पर नीचे गिरे हैं। उस अधिकसे अधिक दूरीको जहां तक पानीके कण अपनी साधारण स्थितिसे हिलकर जा सकते हैं लहरका झोटा (amplitude) कहते हैं। चित्रमें 'त प', 'भ थ', 'द फ' लहरके झोटे (amplitude) के बराबर हैं। 'प' और 'फ' पर कण एकही कलामें हैं। दोनों पर कण ऊपरकी ओर अधिकसे अधिक हटाव (displacement) पाये हुए हैं और नीचे गिरने वाले हैं। इसी प्रकार 'क' और 'ग' पर, 'ख' और 'घ' परभी कण एकही कला में हैं। 'क' और 'ग', या 'प' और 'फ' के बीचके फ़ासलेको लहरकी लम्बाई कहते हैं। 'प' और 'भ' पर, या 'क' और 'ख' पर कण विषम कला (opposite phase) में हैं और उनमें अर्द्ध-लहर लम्बाईकी दूरी है।

आवाज़भी 'लहरोंहीके रूपमें चलती है न कि बन्दूककी गोलीके रूपमें। साधारण बात चीतमें शब्दकी लहरोंका माध्यम हवा है। हाइगन्सका मत था कि प्रकाश और तापकी शक्तिभी लहरोंहीके रूपमें चलती है। परन्तु इन तरंगोंके लिये माध्यम क्या है? सूरजसे रोशनी वायु द्वारा नहीं आती क्योंकि पृथ्वीसे कुछ ऊंचाई परतो वायु मिलतीही नहीं। हाइगन्सने कहा कि प्रकाश-तरंगें एक माध्यम में चलती हैं जो विश्वमें फैला हुआ है। इस कल्पित अथवा फ़र्ज़ी माध्यमका नाम लोगोंने आकाश (ether) रक्खा। यह आकाश केवल भू-मण्डल या हवाहीमें नहीं बल्कि तमाम ठोस और द्रव पदार्थोंके भीतरभी घुसा हुआ है। अर्थात् सर्वव्यापी है। पानी और कांचमें प्रकाश इनही लहरोंके रूपमें चलता है।

अच्छा, अगर प्रकाशको हाइगंसके मतानुसार तरंगही मान लिया जाय तो आवाज या पानीकी लहरोंकी तरह प्रकाशकी लहरोंको भी उन रोकोंके किनारों पर मुड़ जाना चाहिये जो उनके मार्गमें हों। यह तो सभी जानते हैं कि अगर हमारे सामने कोई दीवारहो तो उसके पीछेसे आनेवाली आवाज़ हम खूब सुन सकते हैं, परन्तु किसी अपारदर्शक (opaque) पर्देके पीछेसे आने वाली रोशनीको देख नहीं सकते। शब्द और प्रकाश दोनोंकी किरणें अपने उत्पत्ति स्थानसे सीधी रेखाओंमें चलती हैं। परन्तु आवाज़की किरणें तो दीवारके किनारे पर पहुँच कर अपने सीधे मार्गसे मुड़ जाती हैं और चारों ओर फैल जाती हैं। मगर प्रकाशकी किरणें पर्देके किनारों पर मुड़कर फैलती नहीं। इसी कारण पर्देके पीछे रक्खी हुई रोशनी दिखाई नहीं दे सकती। न्यूटनने कहा कि यदि प्रकाशभी शब्दकी भांति लहरोंके रूपमें चलता है तो प्रकाश और शब्दके स्वभावमें यह भेद क्यों है? कुछ इस कठिनाईके कारणभी न्यूटनने लहर-सिद्धान्तको स्वीकार नहीं किया।

जिस सिद्धान्त में न्यूटनके नामकी मोहर लग गई उसे असत्य समझना तो दूर रहा वैज्ञानिक शंकाकी दृष्टिसेभी देखनेको तैयार न हुए। परिणाम यह हुआ कि बहुत दिनों तक कण सिद्धान्त (corpuscular theory) ही का डंका बजता रहा और हाइगंसकी कुछ सुनवाई न हुई। न्यूटनके सिद्धान्तको आंख मीच कर सत्य मान लेनेसे विज्ञानकी उन्नतिको कितनी हानि पहुँची उसका ठीक ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता। मगर खैर। उन्नीसवीं शताब्दीके शुरू होतेही कुछ ऐसी बातें देखनेमें आने लगीं जिनकी व्याख्या कण सिद्धान्त (corpuscular theory) के आधार पर नहीं की जा सकती परन्तु तरंग-सिद्धान्त द्वारा सरलतासे समझमें आ जाती हैं। धीरे धीरे लोगोंकी श्रद्धा कण सिद्धान्त (corpusular theory) में घटने लगी, यहां तक कि उन्नीसवीं शताब्दीके समाप्त होते होते उस सिद्धान्तको मानने वाले बहुत थोड़े रह गये और ऐसा जान पड़ने लगा कि तरंग सिद्धान्त का सदाके लिये सिक्का जम गया। हम इस लेखमें उन्हीं नई बातोंका वर्णन करेंगे जिन्होंने वैज्ञानिकों के विचारमें इतना परिवर्तन कर दिया।

(१) संघट्ट (Interference) प्रकाशकी दो किरणें जो लगभग एक ही ओरसे आ रही है कहीं

कहीं एक दूसरेके प्रभावको मिटाकर बजाय उजाले के अंधेरा कर देती हैं। यदि प्रकाश नन्हें नन्हें कणों के रूपमें रहता हो तो एक ही ओरसे आनेवाले दो कण टकराकर भला किस प्रकार एक दूसरेको रोक सकते हैं? यह समझमें नहीं आता कि यदि प्रकाश कण है तो प्रकाशके प्रकाशसे मिल जानेसे अँधेरा कैसे हो जाता है। हां यदि प्रकाश आकाश रूपी समुद्रमें तरङ्ग है तो दो तरङ्गोंके संघट्ट के मिलजानेसे ऐसा अवश्य हो सकता है। क्योंकि जहां भी एक तरङ्गका ऊंचान (crest) दूसरी तरङ्गके निचान(trough)के ऊपर पड़ेगा वहां माध्यमके कण बिल्कुल शान्त ही रहेंगे। और जिस स्थान पर दो उंचान (crest) या दो निचान (trough) मिल जायगे वहां पर दोनों लहरोंके झोटों का योग फल (resultant amplitude) हो जायगा। यदि हम दो ढेले वज़न और नापमें एक से लें और उनको पानीके किसी तालावमें जहां तक हो सके एक ही बलसे पास पास फेंके तो लहरोंके संघट्ट (Interference) को देख सकते हैं। पानी की सतहके उस भागमें जहां दोनों लहरें साथ साथ चल रही हैं पानीके कुछ भाग शान्त हैं और कुछ साधारणसे अधिक ज़ोरसे हिल रहे हैं। प्रकाश और शब्दकी लहरोंके साथ भी ऐसा ही होता है। जहां माध्यमके कण नहीं हिलते वहां अंधेरा या ख़ामोशी रहती है।

प्रकाशकी दो किरणोंका संघट्ट (interference) दिखानेके लिये डाक्टर यङ्ग ने बहुत सरल प्रयोग निकाला। एक अंधेरे कमरेमें एक लम्बा छिद्र ल है जिसमें होकर सूर्य्य प्रकाश कमरेमें आता है। लम्बे छेदसे चलकर प्रकाश दो बिन्दु-छिद्रों या लम्बे-छिद्रों क, ख, में होकर गुज़रता है जो परस्पर बहुत निकट हैं। 'प' एक पर्दा है। उस पर पहुँच कर दोनों छिद्रों से आती हुई लहरें टकरावेंगी (overlap) और चमकीले इन्द्र धनुषकेसे रंगवाले पट्टोंकी एक कतार दिखाई देगी। यदि बजाय सूर्य प्रकाशके जिसमें जिसमें कई रंग हैं एक रंगी प्रकाश जैसा सैन्धकम्
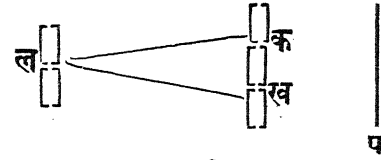
चित्र २

लौसे निकलता है पहले छेदमें होकर जाने दें तो पर्दे पर चमकीली और धुँधली लकीरोंकी एक पंक्ति दिखाई देगी।

प्रकाशके तरंग सिद्धान्तसे यह संघट्ट लकीरें (interference lines) तुरन्त समझमें आजाती हैं। 'प' के बीचमें किसी विन्दु (point) की दूरी 'क' और 'ख' से बराबर है और दो प्रकाश तरंगें जो 'प' पर एक ही समय पहुँचती हैं बिलकुल एक ही दिशामें होती हैं और एक दूसरेके असरको बढ़ा देती हैं। इस कारण 'प' पर एक चमकीली लकीर रहती है। परन्तु 'प' से थोड़ीही दूर चलकर हम ऐसे विन्दु (point) पर आजाते हैं जिसकी 'क' और 'ख' से दूरीमें अर्द्ध-लहर-लम्बाईका अन्तर है। क्योंकि इन लहरोंका झोटा (amplitude) एक ही है और उनमें आधी लहर लम्बाईका भेद है, अर्थात् वह विषमकला (opposite phase) में हैं, इसलिए वे एक दूसरेके प्रभावको काटकर अन्धेरा कर देती हैं न कि उजाला।

यदि किसी बर्तनमें पानी भरकर उसकी सतह पर तेलकी एक पतली तह फैलादें तो तेलकी झिल्ली को परावर्तित प्रकाशसे देखनेसे इन्द्र धनुषकेसे रङ्ग दिखाई देते हैं। यह पट्टे भी तेलके ऊपर और नीचेकी सतहोंसे परावर्तित प्रकाश लहरोंके संघट्ट के कारण बनते हैं। इसी प्रकार साबुनके बुलबुलों में जो भांति भांतिके रंग दिखाई देते हैं उनके भी कारण संघट्ट ही है।

(२) वर्तनः—दूसरी बात प्रयोग द्वारा यह मालूम हुई कि किसी अत्यन्त ही नन्हे छेदमें होकर निकलनेके उपरान्त प्रकाश किरनें अपने पथकी सींधी रेखाको छोड़कर इधर उधर मुड़ जाती हैं।

इस कारण यदि क (चित्र ३) प्रकाशका एक उत्पत्ति स्थान है ख एक अपारदर्शक पर्दा है जिसमें छ एक छोटासा गोल छेद है तो हम देखेंगे कि 'ख' के आगे रक्खे हुए एक पर्दे ग पर बीचमें एक गोल चमकीला चिन्ह (patch) होगा और इसके चारों ओर क्रमशः (alternately) धुँधले और चमकीले घेरे होंगे प्रकाशके सीधी रेखाओंमें चलनेके नियमके अनुसार तो पर्दे पर केवल बीचमें छिद्रके किनारे कासा एक प्रकाशमय जोत-चिन्ह होना चाहिए। उसके चारों ओर

चित्र ३

धुंधले और चमकीले घेरे क्यों बनते हैं? इस प्रयोग से यह बात सिद्ध हो गई कि प्रकाश सदा सीधी रेखाओंमें नहीं चलता।

संगीत और विज्ञान

(२)

[ले० श्री सत्यानन्द जोशी]

पिछले अङ्कमें संगीतका व्यक्तिगत प्रभाव दिखलाया जा चुका है। इस अङ्कमें उसके सामाजिक तथा राजनैतिक प्रभावका दिग्दर्शन कराया जायगा।

प्रत्येक देशका जातीय संगीत उन प्रबल बन्धनोंमें से एक बन्धन होता है जो उस देशके निवासियोंको एक सूत्रमें बांधते हैं, एक आकांक्षासे प्रेरित करते हैं और एक लक्ष्यकी ओर ले जाते हैं। उपयुक्त और सामयिक गीतोंसे देशका इतिहास बदला जा सकता है। यह कथन एक संगीतोन्मत्त की निर्मूल कल्पना और अतिशयोक्ति नहीं है। इसके समर्थनमें इतिहाससे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इंगलिस्तानके इतिहासको लीजिये। क्रूसेडर्स (crusaders) ने कितने व्यापक धार्मिक और राजनैतिक परिवर्तन किये इनको इतिहासज्ञ लोग भली भाँति जानते हैं। एक इतिहासकारने लिखा है कि क्रूसेडर्स को उत्साहित और उत्तेजित करने वाले मुख्यतः उनके गीत ही थे। लार्ड व्हार्टन ने "Lille burlers" नामका एक गीत बनाया जिसका अमित प्रभाव पड़ा। डाक्टर पर्सीने लिखा है कि इस गीतका प्रभाव इतना प्रबल था कि डिमौस्थेनीज़ और सिसेरोके व्याख्यानोंका भी वैसा प्रभाव कभी नहीं पड़ता था। सन् १६८८में जो बड़ी राज्य क्रांति (Great Revolution) हुई वह एक बहुत बड़े अंशमें इसी गीतके कारण हुई। जिस समय चार्ल्स प्रथमका सिंहासन डांवाडोल हो रहा था उस समय किसीने उसके पक्षमें एक गीत बनाया जिसके आरंभिक शब्द ये थे "when the king enjoyes his own again" यह गीत इतना आकर्षक निकला कि इसका बातही बातमें प्रचार हो गया और लोग चार्लसके झंडेकी ओर आने लगे। इसी गीतने उसके पक्षके लोगोंके उत्साहको स्थिर रक्खा और उसके पुत्रको राज्य दिलानेमें सहायता दी।

संगीतका राष्ट्रकी संस्थाओंके ऊपर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है यह प्लेटोने अपनी "रिपब्लिक" में भली भाँति दिखाया है, उसके कथनका सार यह है:—"एक नये प्रकारके संगीतके प्रचारसे बचना चाहिए क्योंकि (यदि वह बुरा निकला तो) उससे सारे राष्ट्रको हानि पहुँच सकती है। कारण यह है कि संगीतके रूपमें उलट फेर होनेसे राज-

नैतिक संस्थाओंमें भी उलट फेर होना अनिवार्य हैं *

भारतवर्षमें प्राचीनकालमें संगीतको कितना महत्व दिया जाता था यह पिछले लेखमें दिखलाया जा चुका है। फिर एक समय ऐसा भी आया जो सौभाग्यसे अब बीत रहा है—कि संगीत सभ्य समाज और कुटुम्बोंसे वहिष्कृत किया जाने लगा। इसका कारण यही था कि अनेक शताब्दियों तक देशमें प्रायः दिव्य प्राचीन संगीतका लोप हो गया। यह विद्या अशिक्षित और व्यसनी लोगोंके हाथमें चली गयी। ध्रुपद, धम्मार इत्यादि नष्ट भ्रष्ट हो गये। उनके स्थानमें अश्लील और विषय वासनाजनक ख्याल, ठुमरी, ग़ज़ल इत्यादि का प्रचार होने लगा। इनका व्यक्तिगत तथा सामाजिक प्रभाव भयंकर रूपमें प्रकट होने लगा। इसीसे सभ्य समाज इस विद्याका तिरस्कार करने लगा। ऐसे समयमें श्रीमान् पंडित विष्णु नारायण भारतखंडे, पंडित विष्णु दिगम्बर प्रभृतिने उच्च कोटिके संगीत का प्रचार करके फिरसे उसकी ओर सभ्य और शिक्षित समाजकी रुचि उत्पन्न करना आरम्भ किया। इन्होंने अनेक भक्ति सम्पन्न उत्तम पदों को राग रागिनियोंमें बांधा। इससे अब ऐसे पर्याप्त स्वर लिपिबद्ध गीत प्रस्तुत हैं जो बालकों और बालिकाओं को भली भांति सिखलाये जा सकते हैं। किन्तु इन महानुभावोंकी पुस्तकोंमें भी एक बड़ा अंश ऐसे गीतों का है जो श्रुतिमनोहर तो हैं किन्तु उनके शब्द और भाव इतने दूषित हैं कि बालक, बालिकाओं तथा स्त्रियोंके बीच गाये जाने योग्य नहीं है। इस समय ऐसे गीतों को बनानेकी आवश्यकता है जिनके प्रभावसे धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियां और दोष दूर हों और लोगों में उत्साह, स्वार्थ त्याग, वीरता, आदि गुण उत्पन्न हों। ऐसे गीत तभी बन सकते हैं जब राजनैतिक और सामाजिक दशाओं और आवश्यकताओं का ज्ञान रखने वाले विद्वान लोग, जिनमें कविताकी शक्ति हो, संगीत सीखें और फिर देशकालके अनुरूप उत्तम उत्तम पदोंकी रचना करके उनको राग रागनियोंमें बद्ध करें।

संगीतके अन्य प्रकारके प्रभाव

संगीतके प्रभावके विषयमें नाना प्रकारकी कथाएं प्रचलित हैं। यह कथा प्रायः सभीने सुनी है कि दीपक रागसे अग्नि प्रज्वलित होती थी। कहा जाता है कि एक बार सम्राट् अकबरने नायक गोपालको दीपक राग गानेकी आज्ञा दी। नायकने जलमें प्रवेश किया और दीपक राग गाना आरंभ किया। गाते गाते पानी गरम होता गया यहां तक कि खौलने लगा और नायकके शरीरसे अग्नि ज्वाला निकल गयी और वह भस्म हो गया। इसके विपरीत, कहा जाता है कि मेघ मल्लार गानेसे पानी बरस जाता था। सुनते हैं कि एक बार बंगालमें अनावृष्टिके कारण धानकी फ़सल सूखने लगी। यह देखकर एक गायिकाने मेघ मल्लार गया। धीरे धीरे बादल घिर आये और इतना पानी बरसा कि उस भागमें धानकी फ़सल फिरसे हरी भरी हो गई। ऐसी बहुत सी कथाओंका सर डब्ल्यु ओस्ली ने उल्लेख किया है। इसी प्रकारकी बहुत सी कथाएं तानसेनकी अलौकिक शक्तिके विषयमें भी प्रचलित हैं। कहा जाता है कि एक बार अकबर ने तानसेन से दिनके समय रातकी रागिनी गानेके के लिए कहा। इसका प्रभाव यह हुआ कि जहां तक उनकी आवाज़ सुनाई दी अंधेरा हो गया।

इन सब कथाओंको प्रायः लोग कल्पित समझते हैं। किन्तु इन्हें सहसा नितान्त निर्मूल समझ लेना उचित नहीं है। इस विज्ञानके युगमें संसारमें इनसे भी अधिक विचित्र घटनाएं नित्य प्रति होती रहती

*The introduction of a new kind of music must be shunned as imperilling the whole state, since styles of music are never disturbed without affecting the most important political institutions."

हैं। साधारण लोग उनका तत्व नहीं समझते इस पर भी जब वे उन्हें प्रत्यक्ष देखते हैं तो उनके अस्तित्वको अस्वीकार नहीं कर सकते। इस सम्बन्धमें एक और बात विचार करनेकी है। वह यह कि अब प्राचीन संगीत लुप्त प्रायः हो गया है। इसलिए वर्तमान संगीतके प्रभावकी प्राचीन संगीत के प्रभावसे तुलना नहीं की जा सकती। यदि मान लिया जाय कि जिस प्रकार भारतवर्षकी अनेक प्राचीन विद्याओं और कलाओंका लोप हो गया है उसी प्रकार वायरलेस विद्याका भी किसी समय में लोप हो जाय तो क्या उस समयके लोग इस कथा पर अविश्वास प्रकट न करेंगे कि प्राचीनकालमें एक सेकंडमें योरोपका गाना बजाना बिना तारके भारतवर्षमें घर बैठे सुननेमें आया करता था! संगीतके प्रभावका जो इन दो लेखोंमें दिग्दर्शन कराया गया है आशा है उससे विज्ञानके पाठक इस बातको स्वीकार कर लेंगे कि संगीत सीखनेमें और अपने बाल बच्चोंको सिखाने में तथा इस विद्याकी उन्नतिके लिए खोज और प्रयोग (experiment) करनेमें समय तथा द्रव्य व्यय करना निरर्थक नहीं है।

———

लोहा

(ले० श्री लक्ष्मणसिंह भाटिया एम.एस-सी)

हा, संसारकी सब वस्तुओंमें पत्थरको छोड़ कर सबसे प्राचीन है। सबसे प्रथम मनुष्य पत्थरसे ही अपना काम निकालते थे। वह समय इतिहासमें पत्थरका समय (stone age) कहा गया है। इस समयके उपरान्त लोहाका प्रयोग होने लगा। वर्तमानकालमें तो लोहका प्रयोग इतना बढ़ गया है कि संसारकी प्रायः सब वस्तुओंके बनानेमें लोहसे सहायता मिलती है वह या तो मूलरूपमें या मशीन रूपमें सहायता पहुँचाता है।

संसारकी सब धातुओंमें लोहा ही सबसे अधिक मात्रामें प्राप्त होता है। इसके खनिज सबसे अधिक भूभागमें विस्तृत हैं। साधारणतया यह यौगिक रूपमें ही पाया जाता है, थोड़ा छोटे छोटे टुकड़ोंके रूपमें चट्टानोंके बीचमें भी पाया जाता है, इसी हेतु इसका एक नाम आयुर्वेदमें अश्मसार भी है। आकाशसे गिरे हुये उल्काओंमें भी अन्य धातुओंके साथमें लोहा पाया जाता है। ऐसे लोहेको प्राचीन समयमें आचार्य वज्र नामसे अभिधान करते थे।

साधारणतः लोह ओषजनके यौगिक रूपमें पाया जाता है, ऐसे ओषजनके अनेक यौगिक हैं जिनमें लोह और ओषजनकी मात्रा भिन्न भिन्न होती है। एक ऐसे ही प्राकृतिक यौगिकको चुम्बक पत्थर (कान्तपाषाण) कहते हैं क्योंकि इसमें चुम्बकत्व धर्म है अर्थात् यह दूसरे लोहेके टुकड़ेको अपनी ओर खींचता है। यह कर्बनद्विओषिदके साथ मिल कर लोह कर्बनेत बनाता है जो प्रचुर परिमाणमें प्रकृतिमें पाया जाता है। हमारा चिरपरिचित असाधुओंको भी साधु दिखलाने वाला गैरिक भी लोह ओषिद है। लोहका दूसरा यौगिक लोह माक्षिक (आयरन पाइराइट्स) भी है जिसको आयुर्वेद वाले रौप्यमाक्षिक के नामसे पुकारते हैं, इसमें लोह व गन्धक का योग रहता है।

अधिक समय हुआ जबसे भारतवर्षमें इन यौगिकोंसे लोह निकालने की कला अच्छी प्रकार प्रचलित थी। लोहेके ऐसे अनेक नमूने इस समय भी विद्यमान हैं जिनसे स्पष्ट विदित होता है कि लोह निर्माणकलामें इस देशके निवासी आजकलके पाश्चात्य कारीगरोंसे भी निपुण थे। उदाहरणके लिये दिल्लीका लोह स्तम्भ उपस्थित किया जा सकता है जो पृथ्वीराजके राज्यकालसे आजतक ऐसा ही खड़ा अपने कारीगरके सुकृत्यका परिचय दे रहा है। उस पर मोर्चा नहीं लगता है, इस बातका पता लगानेके लिये अनेक आधुनिक लोह-विज्ञ प्रयत्न

कर रहे हैं पर इस दुर्भेद्य भारतीय विज्ञानका पता लगानेमें वे अब तक समर्थ नहीं हो सके हैं।

आयुर्वेद रस शास्त्रियोंने भी शरीरमें लोहका बल पहुचाने के लिये पार्थिव लौहके अनेक प्रयोग कर ग्रहणी, कामला, पांडु, जीर्ण ज्वर, यकृत, प्लीहा आदि रोगोंपर अनेक उत्तम योगोंका आविष्कार कर डाला है जिनके सेवनसे असंख्य प्राणी आज भी लाभ उठा रहे हैं। आयुर्वेदिक ग्रंथोंमें चार प्रकारके लोहका विधान मिलता है जिससे कि वह लोग भस्म तयार करके रोगी को सेवनके हेतु देते थे, लोहकी अनेक-भेद कल्पना भी पायी जाती है इस हेतु उनकी प्राप्तिका संकेत, परीक्षा और उपयोग भी बतला देना आवश्यक है। निम्नलिखित अवतरणों पर पाठक विचार करें।

प्राप्ति संकेत

मुन्डं वर्तुलं भूमौ पर्वतेषु च जायते।
गजवल्यादि तीक्ष्ण स्यात् कांतं चुम्बकसंभवम्।
बज्रं तु विंशति विध तानिम्युर्दमानंगकम्॥
(आयुर्वेद प्रकाश)

मुंडात्काटाह पात्रादि जायते तीक्ष्ण लोहतः॥
(रसकाम धेनु)

व्यवहारोपयोग

खड्गादि शास्त्र भेदाः स्युः कांतं लोहं तु दुर्लभम्।
मुंडाच्छतगुणं तीक्ष्णं तीक्ष्णात्कान्तं शताधिकम्॥
तस्मात्मुंड परित्यज्य, तीक्ष्ण वा कान्तमुत्तमम्।
किन्तु बज्रस्य खड्गादिरुपयोगः सखावह॥
सिद्धानांपढपिदय।

परीक्षण

कासीसामल कल्काक्ति लोहेऽ दृश्यतेस्पुटम्।
तीक्ष्ण लोहम् तटादृष्टं माराण्यात्तमं विदुः॥
क्षमा भृच्छिखरा काराण्य गात्र्यमनेन मर्दिते।
लोहे स्युर्यत्र सूक्ष्माणि तत्सारमपि ब्यपिटं॥

उक्त श्लोकोंके विचारनेसे यह समझनेमें कुछ कठिनाई नहीं रहती कि आजकल जो ढलवा लोहा (कास्ट आयरन) वर्तन आदि बनानेके काममें आता है वही प्राचीन मुण्ड लोह हैं और सम्भवतः "मुंडात्कटाह पात्रादि" के कटाह शब्दसे ही कास्ट शब्दकी उत्पत्ति हुई हो। इसी प्रकार तीक्ष्ण शब्दसे स्टील शब्द बना हो जिसका शस्त्रादिके लिये पूरा प्रयोग होता है।

लोहेमें जितनी कम अशुद्धियां मिलेंगी उतना ही वह उत्तम होगा। साधारणतः लोहकी अशुद्धियां कर्बन (कोयला) सिलीकन (रेत) सल्फर (गन्धक) स्फुर (फास्फोरस) तथा मांगनीज हैं। ये जितनी अल्प मात्रा में रहेगी उतना ही लोह उत्तम स्टील गिना जावेगा। नीचे लिखे कोष्टक से स्वेडन और भारतीय लोहे के विश्लेषण का निरीक्षण किया जा सकता है।

	स्वेडन कास्ट आयरन	भारतीय कास्ट आयरन
कर्बन—	४.३६ फी सदी	०.६६ फी सदी
शैलम्, सिलीकन	०.६५ " "	१.११३ " "
गन्धक—	ट्रेस नाममात्र)	०.००५ " "
स्फुर—	०.०१६ फी सदी	०.०२८ " "
मांगनीज—	२.६८ " "	०.०१३ " "
लोह—	९१.६६ " "	६८.१८१ " "

स्वेडनका लोहा बहुत अच्छा गिना जाता है पर हमारे प्राचीन लोहमें उससे कितना अधिक लोहांश था यह इस कोष्टक से स्पष्ट है।

स्वीडिस स्टील

कर्बन	·१००	फी सदी
शैलम्	·००८	" "
गन्धक	·००५	" "
स्फुर	·०२८	" "

मांगनीज ·१६० " "
लोह ६६.६६६ " "

इण्डियन स्टील (फिनिशुवार)

कर्बन—·०३ फी सदी
शैलम्—·०१ " "
गन्धक—नाममात्र
स्फुर—·०१३ फी सदी
मांगनीज – शून्य (बिलकुल नहीं)
लोह—९९.९४७ फी सदी

टर्नर साहब ने अपनी पुस्तक में, जिसमें कि उन्होंने धातुओंको उनके खनिज उत्पत्तियोंसे निकालने की रीति बतलाई है यह स्पष्ट लिखा है कि भारतीय लोहके नमूने अङ्गरेजी तथा स्वेडिश लोहसे सर्वथा उत्तम है परन्तु यह खेदकी बात है कि ऐसा लोहा निर्माण करनेवाली जाति आज एक कीलके लिये विदेशियोंका मुंह ताक रही है और उसके रोगियों के लिये भी उत्तम लोह भस्म नहीं मिलती जिसकी आयुर्वेदिक दवाइयों में अत्यन्त आवश्यकता है। आधुनिक ग्रंथों के देखने से पता चलता है कि यूनानी लोग बिजली द्वारा गिरे हुये (उल्का पात द्वारा एकत्रित किये हुये) लोह की प्रशंसा करते थे वे उसको बहुत उत्तम मान कर व्यवहार में लाते थे। इस प्रकार लोहेका शस्त्र और औषधि दोनोंमें प्रयोग होनेका उल्लेख है। यह बात रसकामधेनु नामक आयुर्वेद ग्रंथ में १९३-१९५ पृष्ट तक बहुत स्पष्ट रूपमें लिखी हुई है। आजकल इतना अधिक पतन हो गया है जिसके कारण कुछ भी असम्भव नहीं हैं। आशा है कि देश के हितचिन्तक इधर खोज करनेके हेतु प्रयत्न करेंगे।

जब मैं अबकी बार बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपाधि वितरण अवसर पर बनारस गया था तो मुझे आयुर्वेदिक विभाग के म्यूजियम देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहांपर मैंने कई खनिज तलवारोंके खण्ड, मक कम्पनी का बना लोह चूर्ण, कान्त पाषाण (Load stone) के नमूने देखे। सबसे बड़ा लोहे का खण्ड नेचरल हिस्ट्रीम्यूजियम न्यूपार्कमें रखा है उसका वजन ५० टन हैं। एक टन २७ मन के लगभग होता है इस लोह जातीय खनिजको मीरीमोरिक आयरन कहते हैं। इसके तीन नमूनोंका विश्लेषण इस प्रकार हैं।

लोह	६०.८०%	८६.८३%	७१.२४%
नकलम्	३.२४%	३.८%	२६.६४%
कोबल्टम्	०.२६%	०.७९%	१.६७%
कर्बन	४.८५%	०.३६%	०.३०%

ऊपर लिखी हुई संख्याको देखकर व नकलम् स्टीलके विश्लेषणको देख कर यह पता चलता है कि आजकल सबसे कठिन स्टील नकलम्के योगही से बनता है और युद्ध में इसी इस्पातकी चद्दरें तोपके गोलोंसे रक्षा के हेतु चढ़ाई जाती हैं अतः वज्र नाम इसका सार्थक मालूम होता है। कान्त लोहके लक्षण जो आयुर्वेदकी किताबोंमें बतलाये गये है वह सब लक्षण युक्त नमूने स्वेडनमें मिल सकते हैं ऐसा वहांके लोह शास्त्रज्ञोंसे मालूम हुआ है पर अभी तक संग्रह नहीं हो सके हैं आयुर्वेदमें जो लोह भेद माने गये हैं उसका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिये समय की आवश्यकता है। हिन्दू यूनीवर्सिटीके प्रोफेसर श्रीगोपाल अय्यर हैं जो कि ताता स्टील एण्ड आयरन कम्पनी जमशेद पुर में भी काम कर चुके हैं, आयुर्वेदीय तथा प्राचीन लोहके नमूनों का विश्लेषण कर आधुनिक लोहे के नमूनों के साथ मुकाबला करनेका भार उठानेको तय्यार हैं। राजपूतानेमें शकलीधर (सिकलीगर) नामक एक जाति है जो लोह निर्माण व शस्त्र का कार्य्य प्राचीनकालसे करती आ रही है। राजाओं के सिलेखानोंमें बहुतसे अनेक प्रकारके लोह शस्त्र संग्रहीत हैं। यदि इतिहास प्रेमी इधर ध्यान दें तो बहुतसा ज्ञान प्रकाशित कर सकते हैं।

लोहके भेद

लोह भेद यह हैं—

(१) मुंडलोह ३ भेद मृदु, कुण्ठ, कडार।

(२) तीक्ष्ण लोह ६ भेद खरसार, हृन्नाल, तारा, वह, वाजिर, काल लोह

(३) कांत लोह पांच भेद भ्रामक, चुम्बक, कर्षक, द्रावक, रोमकान्त,

(४) बज्र लोह २० भेद रोहणी, डाहुनी, ग्रंथि, केतकी, कुटीरिका, नील पिण्ड मोरवल्कि, श्वेत, ककोल, कज्जल, मत्सध्वज, त्तित्तिरगभः, क्षुद्र, वंशच्छदाभक, मयूर ग्रीव, रुक्ममयूर, नकुलांगक, कालिमिरश्याम, इनके विशेष लक्षण और परीक्षा रस-रत्न-समुच्चय और रस कामधेनुमें देखें जा सकते हैं।

यहाँ पर इतना लिखना काफी होगा कि आजकल लोह शास्त्रियोंने जिस प्रकार रासायनिक तत्वोंके न्यूनाधिक्यसे लोह जातियोंकी कल्पना कर उसका भिन्न भिन्न कार्य्यमें उपयोग करनेके लिये निर्माण पद्धति निश्चित कर दी है इसी प्रकार संभव है कि हमारे आचार्यगण भी उस कालमें लोहकी उपयोगिता बढ़ानेके हेतु इस प्रकारकी कल्पनामें लगे रहे हों पर खेद है कि आजकल हम लोग उक्त भेदोंके द्रव्य-ज्ञानसे एकदम अनजान हो गये हैं। आशा है कि भारतीय कलाका आश्रय देनेवाले राजा महाराजा व देशहित चिन्तक महानुभाव अपने अपने स्टेट या प्रान्त से प्राचीन लोह निर्माण पद्धति या शस्त्रखण्ड जितने जातिके मिल सकें उनको इकट्ठा कर बनारस विश्व-विद्यालयके आयुर्वेदीय रसायन शालामें भेजनेकी कृपा करेंगे। मुझे विश्वास है कि यह संस्था इस विषयमें बहुत कुछ कार्य्य करनेका प्रयत्न कर रही है। पिछले वर्ष जब मैं वहाँ विश्लेषण किया करता था तो मैंने भी अपने भरसक इस कार्य्यमें सहायता दी थी।

अब मैं पाठकोंकी जानकारीके लिये आजकल जो लोह निर्माण पद्धति प्रचलित है उसको यहाँ लिखकर लेख समाप्त करूँगा—

लोहके यौगिकोंसे लोह निर्माण करनेकी जो २ विधियाँ प्रचलित हैं, उन सबका सिद्धान्त एकही है। लोह यौगिक जब बहुत तप्त किये जाते हैं तब वे लोहके ओषिद बन जाते हैं। ये लोह ओषिद कोयलेके साथ बहुत ऊँचे तापक्रम गरम करनेसे अपना ओषजन पृथक् कर देते हैं जो कोयलेके साथ मिलकर कर्बनके द्विओषिदके रूपमें वायुमें लीन हो जाते हैं और लोह पिघलकर भट्टीके नीचे एकत्रित हो जाता है जिसे नल द्वारा बाहर निकाल कर आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न शकलोंमें ढाल दिया जाता है।

व्यवहारिक रूपमें जब लोह इस प्रकार निर्माण किया जाता है तो अनेक कठिनाइयां पड़ती हैं। प्रथम तो लोह पाषाण शुद्ध नहीं होता और इसके साथ अनेक अशुद्धियाँ मिली होती हैं, दूसरे कोयला भी साधारणतः शुद्ध नहीं होता, इसमें अनेक आव-श्यक पदार्थ मिले रहते हैं। तीसरे भट्टी ऐसी होनी चाहिये जिसमें इतना ऊँचा तापक्रम उत्पन्न किया जा सके जो लोहेको पिघला कर द्रव कर सके। इन सब कठिनाइयों को दूर करनेके लिये बीसवीं शताब्दीके वैज्ञानिकों और इंजिनियरोंने बहुत परिश्रम करके ऐसी विधियां निकाल दी हैं जिससे लोहा पहलेकी अपेक्षा सरलतासे और सस्तेपनसे तयार किया जा सकता है।

लोह युद्ध सामग्री प्रस्तुत करनेका एक बहुत आवश्यकीय द्रव्य है, इसलिये प्रत्येक देशके शासकका कर्तव्य हो गया है कि वे प्रचुर परिमाणमें लोहे बनाने वाले कारखाने कायम रखें। हमारे देशमें ताताकम्पनी एशिया खंडमें लोहेका सबसे बड़ा कारखाना है जहाँ लाखों आदमी काम करते हैं। साधारणतः इन कारखानों के बने लोह शुद्ध नहीं होते। अशुद्धियोंके रहनेसे लोहेका गुण बहुत परिवर्तित हो जाता है। साधारण व्यवसायका सबसे शुद्ध लोहा कोमल होता है। जब इसमें कुछ और चीजे मिला देते हैं तब यह कठोर हो जाता है और उसे इस्पात (स्टील) कहते हैं। अशुद्धियों की मात्रा और अधिक बढ़ा देनेसे ढलवां लोह (काष्ट आयरन) तय्यार होता है। स्टील और काष्ट आयरनकी मध्यवर्त्ति जातिका आकृष्ट लोह

(राट आयरन) कहते हैं। लोहके अनेक भेद आजकल व्यवहारमें आते हैं।

शुद्ध लोह श्वेत चमकीली धातु होती है जिसमें बहुत अधिक पालिश हो सकती है। इसका गुरुत्व ७.८ से ८.१ तक होता है। यह बहुत कठिनाईसे पिघलता हैं किन्तु रक्ततप्त करने (रेडहीट) पर कोमल हो जाता है और तब आसानीसे जोड़ा जा सकता है। साधारणतया कुछ गुण लोहेके समझे जाते हैं पर वस्तुतः वे लोहेमें उसकी अशुद्धियोंके कारणही उत्पन्नही जाते हैं, उदाहरण स्वरूप चुम्बकत्व गुण ही लीजिये यह धर्म शुद्ध लोहेमें अति शीघ्र नष्ट हो जाता है पर इस्पात (स्टील) में यह धर्म चिरकाल तक बना रहता है।

शुद्ध लोहेको बहुत तीव्रताप पर उत्तप्त कर सहसा शीतल करनेसेभी कठोरता व भंजनशीलता उत्पन्न नहीं होती किन्तु इस्पातमें यह गुण इस क्रियासे तत्त्क्षण पैदाहो जाते हैं। सम्भवतः आयुर्वेदमें जो शोधनके लिये तैल, तक्र, गो दुग्ध, आरनाल, कुरत्थीका क्वाथ काममें लाया जाता है उसका प्रयोग इसी गुणके उत्पन्न करनेके निमित्त हो। आजकलके लोह विज्ञभी ऐसे द्रव्योंको लोहमें गुणान्तरोत्पत्तिके लिये व्यवहार करते हैं और उसको क्वेन्चिंग कहते हैं। वाष्परहित वायु का लोहे परकुछभी प्रभाव नहीं है पर आर्द्रवायूसे लोह पर मोर्चा लग जाता है। मोर्चा लगनेके लिये वायुमें कर्बनद्विओषिदका रहना आवश्यक समझा जाता है। हलके नोषिकाम्लमें लोह घुल जाता है, तीव्र (Concentrated) नोषिकाम्लकी लोहे पर कोई क्रिया नज़र नहीं है आती पर ऐसे तेजाबमें थोड़ी देर डुबोकर निकालनेके बाद उसमें एक अद्भुत परिवर्तनहो जाता है जिसके कारण उसपर मोर्चा नहीं लगता है इस परिवर्तनका क्या कारण है इसका अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लग सका है। साधारण अशुद्ध लोहेमें लोहेके अतिरिक्त कर्बन, शैलम् गन्धक और कुछ मांगनीज़का अंशभी पाया जाता है। भिन्न भिन्न जातिके लोहोंमें उक्त द्रव्योंकी मात्रा भिन्न भिन्न पायी जाती है। साधारणतः आधसे सात प्रति शत तक यह अशुद्धियां पाई जाती है, रासायनिक प्रयोगोंके लिये शुद्ध लोहा केमिस्टोंकी दूकान पर प्राप्त हो सकता है। आयरन (लोहा) मनुष्य तथा प्राणी मात्रके रक्तमें पाया जाता है और यह बात देखी गई है कि उसकी बड़ी आवश्यकता है। इस हेतु रासायनिक वैज्ञानिकोंने लोहेको कलाद्रके रूपमें शरीरके अन्दर पहुचानेके लिये उसको तय्यार किया है आयुर्वेदमेंभी पाचिक भस्ममें लोहा है। इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि लोहा संसारकी बहुत उपयोगी वस्तुओंमें से है।

'आरहीनियस का विद्युत् पृथक्करण सिद्धान्त'।

ले० श्री ब० वि० भागवत बी. एस-सी.
(श्री शिवाजी क्लब)

भूमिका

यद्यपि आरहीनियसने अपने विद्युत् पृथक्करण सिद्धांतको सन् १८८५ में प्रथम प्रकट किया था परन्तु इस सिद्धांतको उसने पूर्णताके साथ सन् १८८७ में ही जनता के सामने रक्खा। भौतिक रसायन शास्त्रमें जो बड़े शास्त्रज्ञ हो गये हैं उनमें आरहीनियसका स्थान बहुत उच्च है। उसके 'विद्युत् पृथक्करण सिद्धांत' की गणना प्रथम दर्जेके अन्वेषणोंमें की जाती है। इस सिद्धांतसे और उसकी सर्वतोमुखी उपयोगितासे उसका नाम अजरामर हो गया है। आरहीनियसका सिद्धांत पूर्णताके साथ समझनेके लिये जिन प्रयोगोंके द्वारा उसने अपना सिद्धांत निश्चय किया उनका ज्ञान होना आवश्यक है। यह प्रयोग उसने स्वयं नहीं किये लेकिन दूसरे शास्त्रज्ञोंने वह बातें निकाली थी। आरहीनियसका महत्व इन सब बातोंको संकलित करनेमें है। उसने जिन बातोंका संकलन किया उनमेंसे कुछ निम्न लिखित है:—

(१) क्षारोंका क्षारत्व और अम्लोंका अम्लत्व निकालना।

(२) घोलका निःसरण दबाव और उनकी चालकता।

(३) अवक्षेपण (precipitation)

(४) विद्युत विश्लेषण (electrolysis)

(५) संयुक्त लवणोंका गठन।

सन् १८६० के करीब ओसवाल्डने अम्लोंका अम्लत्व जाननेकी कोशिश की। किस अम्लमें अधिक अम्लत्व है और किसमें कम है यह जानने की तरकीब उसी ने निकाली। इस तरकीबको 'ओस्वाल्डकी प्रसरण विधि, (volume method) कहते हैं। इस तरकीबमें, एक ही क्षारका कितना हिस्सा, एक अम्ल लेता है और कितना दूसरा अम्ल लेता है यह बात 'प्रसरणतासे' मालूमकर के, एक अम्ल दूसरे अम्लसे कितना शक्तिवान है यह समझा जाता है।

जिस समय ओसवाल्डने अपनी 'प्रसरण विधि' निकाली उसी वक्त जे-टामसन ने अपनी 'उष्णता विधि' (thermal method) निकाली।

विलहेल्मीने इसीवक्त 'शर्करा विपर्यय' (sugar inversion) तथा सम्मेल उदविश्लेषण (ester hydrolysis) की सहायतासे क्षारत्व और अम्लत्व जाननेका काम शुरू किया। उसने यह देखा कि 'शर्करा विपर्यय' में कुछ अम्ल मिलाया जाय तो विपर्यय शीघ्र होता है। और इस शीघ्रताका परिमाण अम्लके अम्लत्वके ही ऊपर निर्भर नहीं है प्रत्युत यह परिमाण भिन्न भिन्न अम्लोंके लिये भिन्न भिन्न है। यह देखा गया है कि यदि एक ही शक्ति (concentration) के अम्ल लिये जायँ तो यह शीघ्रता अधिक प्रबल अम्लोंमें अधिक परिमाणमें दिखाई देती है। यही बात सम्मेल उद-विश्लेषण (ester hydrolysis) के विषयमें लगा कर उसने क्षारोंका क्षारत्व निकाला। लेकिन उन सब परिणामोंका वास्तविक कारण क्या है यह उसने नहीं बताया। आरहीनियस ने इसका उत्तर अपने सिद्धान्तसे दिया।

आरहीनियस के 'विद्युत् पृथक्करण' सिद्धांतके पहिले पेफरने, घोलोंके निःसरण दबाव पर काम किया था। उसने यह देखा कि पानीसे, घोलोंका निःसरण दबाव अधिक होता है। इस निःसरण दबावके निकालनेकी तरकीब भी उसने निकाली। इस तरकीबमें उसने त्वचा (membrane) का प्रयोग किया। उसने प्राणिजन्य तथा वनस्पति त्वचायें काममें लाईं। रसायन द्वारा भी उसने ऐसी त्वचाएं तैयार कीं जिसमेंसे पानी तो बाहर निकल जाय, या अंदर चला आय, लेकिन घोल्य पदार्थ (solute) उसमेंसे निकल न सके। जब कोई घोल इस त्वचाके थैलेके अंदर रखकर बाहर पानी रखा जाय तो घोलका निःसरण दबाव अधिक होनेसे पानी अंदर आकर, घोलमेंसे घोल्यका परिमाण भाग कम करना चाहेगा; और अतः उसका निःसरण दबाव कम हो जायगा। पानीका अन्दर आना तब तक बंद न होगा तब तक कि बाहरका और अन्दरका दबाव एक न हो जायगा। और इस वक्त, घोलका स्तंभ (column) बाहरके पानीके पृष्ठ तलसे (Level) जितना बढ़ा हो, उससे निःसरण दबाव निकाला जाता है। इस पद्धतिके द्वारा पेफरने बहुतसे घोलोंका निःसरण दबाव निकाला लेकिन उसके देखनेमें यह आया कि यदि सब घोलोंका परिमाण भाग एक ही हो तो भी सबका निःसरण दबाव एकही नहीं होता। उसने यह देखा कि, कुछ घोलोंका निःसरण दबाव आपसमें मिलता है। और दूसरे घोलोंका निःसरण दबाव इन घोलोंके दुगना, तिगना या इसी प्रकारका है। ऐसा क्यों होता है यह उसके ध्यानमें नहीं आया? यह आरहीनियसकी विशेषता थी कि उसने इसका भी उत्तर अपने सिद्धान्तसे दिया।

रायल्टका क्वथनांक और द्रवांक का कार्य भी आरहीनियसको मालूम था। रायल्टके पहिले

ब्लकडनने इसीके ऊपर काम किया था। उसने यह बतलाया कि घोलोंका क्वथनांक पानीके क्वथनांक से अधिक रहता है, और उनका द्रवांक कम होता है। ब्लकडनका यह कार्य रायल्ट अच्छी तरहसे जानता था। क्वथनांक कितना बढ़ता है और द्रवांक कितना कम होता है यह ब्लकडनने नहीं निकाला। यह देखनेका कार्य रायल्टने किया। रायल्टने जब द्रवांक और क्वथनांक पर काम करना आरम्भ किया उस वक्त उसकी उमर करीब ६० बरसकी थी। इतने बुड्ढेपनमें भी उसका नव उत्साह युवकोंसे अधिक था। रायल्टने घोलों का द्रवांक और क्वथनांक अति कुशलतासे निकाला उसके देखनेमे यह आया कि १००० घन शतांश मीटर पानीमें हर एक घोल्यका (solute) अणुभार घोला जाय और ऐसे घोलोंका द्रवांक और क्वथनांक निकाला जाय, तो उन सबोंका क्वथनांक और द्रवांक एकही रहता है। इसका अर्थ यह कि सबका क्वथनांक ऐसे घोल में एकही परिमाणसे बढ़ता है और द्रवांक एकही परिमाणमें कम होता है। लेकिन उसने ऐसेभी बहुतसे घोल देखे जिनमें यह बढ़ना या कम होना पहिलेके घोलोंसे अधिक था। क़रीब क़रीब यह बढ़ना और कम होना पहिले घोलोंसे दुगना, तिगुना या इसी प्रमाणमें था। इस प्रकारके आश्चर्य कारक बर्ताव करनेवाले घोल पहिले जो पेफरने निःसरण दबाव निकालते वक्त देखे थे वही हैं। और भी एक बात इनमें है कि यह सब विद्युत् विश्लेषणिक (electrolytic) घोल हैं। ऐसी आश्चर्य कारक घटना क्यों होती है यह रायल्टने नहीं सोचा। इसका कारण वह नहीं जान सका। लेकिन दूर-दर्शी आरहीनियसने अपना सिद्धांत इसी रायल्ट के आधार पर दृढ़ कर दिया।

हिटार्फने सन् १८६० में यवनोंकी (ions) भ्रमण संख्या पर (transport number) काम किया। उसने यह बताया, की यद्यपि धनयवनकी और ऋण यवनकी चलनता एक न होगी तोभी वह एक ही परिमाणोंमे और एकही वक्त पैदा होंगे। ऋण यावनिक और धन यावनिक विभागोंका परिमाण भाग शायद बदले या न बदले इससे कुछ तात्पर्य्य नहीं।

सन् १८७८ मे कोल्हराचने घोलोंकी चालकता निकाली। उसने यह बताया कि अनन्त हलके पन (∞dilution) परकी चालकता, धन और ऋण यवनोंकी चालकताका योग करके लिखी जा सकती है। जैसे

$$च\infty = र \; (क + ख)$$

ओसवाल्डने भी बहुतसे निर्बल अम्लोंकी चालकता निकाली थी। जब आरहीनियसमें अपना सिद्धांत प्रगट किया, तब उसकी मददसे उसने अपना हलकापन-सिद्धांत (dilution law) निकाला उसने यह बतलाया कि यदि अब लवणका पृथक्करण होता हो तो।

$$क\,ख \rightleftharpoons क + ख$$

ऐसा लिखा जा सकता है। यदि 'क ख' के म अंशका पृथक्करण होता हो तो (१—म) का पृथक्करण नहीं होता है। यदि घोलका आयतन अ होतो क ख की शक्ति $\frac{१-म}{अ}$ है और क और ख की शक्ति $\frac{म}{अ}$ है। यदि पृथक्करण क्रिया स्थिर स्थितिमें हो

$$\text{तो} \quad ड\left(\frac{१-म}{अ}\right) = ड'\left(\frac{म}{अ}\right)\left(\frac{म}{अ}\right)$$

$$\frac{म^२}{(१-म)\,अ} = \frac{ड}{ड'} = स.$$

आरहीनियस और वाण्टहाफ ने यह बात निकालनेकी कोशिश शुरूकी थी लेकिन उसके पहिलेही ओस्वाल्डने अपना सिद्धांत प्रगट किया।

वाण्टहाफने 'वायुसिद्धान्तों' का घोलोंमें उपयोग किया। उसने यह बताया कि घोल वायुके समान वर्ताव करते हैं। और यदि घोलका निसःरण दबाव 'स' शक्ति पर 'द' हो तो

$$द = र\,त\,स.$$

यहां र यह एक स्थिरांक है और त तापक्रम है। लेकिन उसके देखनेमें यह आया कि यह नियम सब घोलोंमें नहीं लगता, तो कुछ घोल

द = अ. र. त. स. ।

इस नियमसे वर्ताव करते हैं। जहां अ को वाण्टहाफका अवयव कहते हैं। कुछ घोल ऐसा वर्ताव क्यों करते हैं यह उसके ध्यानमें नहीं आया। यह उसको मालूम था कि यह आश्चर्य कारक वर्ताव करनेवाले घोल विद्युत विश्लेषणिक हैं। आरहीनियसने इसका भी उत्तर दिया।

इन सबसे यह बात स्पष्ट होगी कि आरहीनियसको अपना सिद्धांत निर्धारित करनेके लिये 'भूमिका' तैयार मिली। ज्ञानके थोड़े थोड़े परिमाणु एकत्रित होते होते शास्त्रकी प्रगति कैसे होती है इसका यह एक दृश्य है। इस लेखमें, आरहीनियसके सिद्धांतकी चर्चा नहींकी गयी। ओस्वाल्ड, कोलहराच, वाण्टहाफ, पेफर, विलहेल्मी आदिके कार्य कामी परीक्षण नहीं किया गया किन्तु आरहीनियसको अपना सिद्धांत निश्चित करनेके लिये भूमिका कैसी तैयार मिली यह बतलाया गया है। अब इस सिद्धांतसे संकलित हुये दूसरे शास्त्रज्ञोंके कार्यका विवरण पृथक् पृथक् किया जायगा।

फुप्फुस-प्रदाह (न्यूमोनिया)

[ले० श्री रामचन्द्र भार्गव एम-बी. बी. एस.]

भिन्न प्रकारोंका वर्णन

फुप्फुस—प्रदाह नाम बहुतसी ऐसी अवस्थाओंको दिया जाता है कि जिनके कारण भिन्न होते हैं और जिनमें रचना विकारभी भिन्न पाये जाते हैं। परन्तु इन सबको प्रदाह की उपमायें समझना चाहिये कि जिनमें फुप्फुसकी रचनाके कारण प्रदाहका क्रम कुछ भिन्न पाया जाता है। प्रौढोंमें साधारणतः पाई जानेवाली प्रकारको भीषण फुप्फुस-खंड-प्रदाह अथवा भीषण सूत्रिनीय फुप्फुस प्रदाह कह सकते हैं। इसमें प्रदाह अनुबन्धताके कारण फैलता है और या तो फुप्फुसके किसी खंड अथवा अधिकाँश भागमें फैल जा सकता है। इस प्रदाहमें सूत्रिनीय निःस्राव निकलता है। इस प्रदाहमें और साधारण प्रदाहमें यह अन्तर रहता है कि फुप्फुसकी सम्बन्धक तन्तुमें बहुत कम प्रतिक्रिया रहती है और निःस्रवितसे तन्तु बननेकी ओर अधिक झुकाव नहीं रहता। दूसरी प्रकारको भीषण फुप्फुस-उपखंड-प्रदाह अथवा भीषण श्लेष्मल फुप्फुस प्रदाह कह सकते हैं। इसमें प्रदाह छोटी छोटी वायु प्रणालियोंके द्वारा वायु कोष्ठोंमें फैलता है। इस प्रदाहमें सूक्ष्म वायु-प्रणालियोंमें प्रदाह होता है। वायु कोष्टोंकी पृष्ठीय कोषोंकी वृद्धि होने लगती है कि जिसके कारण वहाँकी फुप्फुस तन्तु ठोस हो जाती है। यह पहिले प्रौढोंमें यह अवस्था अधिकतर मिथ्या झिल्ली रोग (डिफ्थीरिया) और मुक्ताज्वर इत्यादि रोगोंके पश्चात् पाई जाती थी। परन्तु जबसे संग्राम ज्वरके आक्रमण बढ़ गये हैं प्रौढों में भी फुप्फुस-उपखंड प्रदाह बहुत पाया जाने लगा है। इसकी प्राणघातकताभी बहुत बढ़ गई है और दूसरी असाधारण बात जो पहिले नहीं पाई जाती थी वह यह है कि यह अवस्था फुप्फुस-कोथ (गेंग्रीन) की प्राथमिक अवस्था सिद्ध होने लगी है। इन दो प्रदाहोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारके प्रदाह भी पाये जा सकते हैं इस प्रकार निःस्रवित सूत्रिनीयके स्थानमें तो पीय, रक्तस्रावीय अथवा पीपमय हो सकता है। मिश्रित श्लेष्मल और सूत्रिनीय प्रदाह भी पाये जा सकते हैं श्लेष्मल प्रदाहमें बहुत श्वेताणु एकत्रीय भवन पाया जा सकता है। रक्तस्रावभी पाये जा सकते हैं।

इन मुख्य प्रकारोंके अतिरिक्त रोगियोंको एक दूसरा समूह भी पाया जाता है जिनको पूयजनीय फुप्फुस प्रदाह कह देते हैं और ये रोग दो मार्गों से फैलता है (१) टेटुए और टेटुआ-शाखाओंमें निःस्राव, रक्त इत्यादि घुस जायँ कि जिनमें पूयजन

जीवाणु बड़ी शीघ्रता से बढ़ते हैं। पहले तो पूयमय सूक्ष्म-वायु-प्रणाली-प्रदाह उत्पन्न हो जाता है और फिर आक्रमण वायु-कोष्ठों और फुप्फुस की सम्बन्धक तन्तुमें भी फैल जाता है। (२) शरीरके अन्य भागों-में उपस्थित पूयजन केन्द्रसे रक्तके द्वारा पूयजन जीवाणु फुप्फुसमें आन पहुँचें। इन पूयजनीय फुप्फुस-प्रदाहमें पूयजन केन्द्रको घेरे हुए लगभग अन्य प्रदाहोंके समान ही परिवर्तन पाये जाते हैं।

फुप्फुस प्रदाहमें इस प्रकार कई प्रकारकी प्रादा-हिक प्रतिक्रियायें देखी जा सकती है। हम आगे चल कर देखेंगे इन सबके कारण जीवाणु ही होते हैं। विशेष ध्यान भीषण सूत्रिनीय फुप्फुस प्रदाह की ओर दिया जायगा परन्तु अन्य प्रकारोंके विषयमें भी आवश्यकतानुसार वर्णन दिया जायगा।

ऐतिहासिक—भीषण फुप्फुस-खण्ड-प्रदाह बहुत समयसे शीत के प्रभावोंमें समझा चला आता रहा है परन्तु यह रोग ऐसी अवस्थामें भी पाया जाता था कि जब ठंड लगनेकी कोई सम्भावना नहीं रहती थी और समय समय पर यह रोग फैलाव-आक्रमणके रूपमें भी फैलता हुआ पाया जाता था। कुछ निरी-क्षकोंको यह भी ज्ञात हो चुका था कि अस्पतालमें इस रोगके रोगियोंके पास वाले रोगियोंको यह रोग होनेकी सम्भावना अधिक रहती थी। इसके अतिरिक्त रोगके अकस्मात् आरम्भ होने और नियत क्रम से भी यही सूचित होता था कि यह रोग भीषण जीवाणिवक ज्वर है। इस रोगके कारणका यह विचार पहिले पहिल १८८२-८३ में फ्रीडलाण्डर ने आरंभ किया था। फ्रीडलाण्डरने फुप्फुसोंमें आवरण-युक्त विन्दु देखे उसने उन्हें पृथक् किया और यह दर्शाया कि उनमें रोगोत्पादक शक्ति रहती है। परन्तु जब यह ज्ञात हुआ कि प्राणियोंमें स्वस्थ मनुष्योंके बलगमके अन्तःक्षेपण करनेसे जीवाणुमय रक्त रोग उत्पन्न हो जाता है कि जिसमें रक्तमें आवरण युक्त विन्दु पाये गये। इस प्रकारसे बलगम द्वारा प्राणियों में जीवाणुमय रक्तका उत्पन्न हो जाना उस समय अच्छी तरह न समझा जा सका क्योंकि उस समय अच्छी तरह ज्ञात न था कि एक ही जीवाणु भिन्न प्रकारके प्राणियोंमें भिन्न प्रभाव उत्पन्न करता है और इसलिये यह सोचा जाने लगा कि फुप्फुस-प्रदाहसे इन जीवाणुओंका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता है। कुछ समय पश्चात् फ्रेंकलने द्विविन्दुओंका वर्णन किया कि जिनकी कृषिमें फ्रीडलाण्डरके द्विविन्दुओं की कृषिमें कुछ अन्तर पाये जाते थे। १८८६ में विश्चेलबोमकी खोजोंसे इस विषय पर और भी अधिक प्रभाव पड़ा। इस निरीक्षकने फुप्फुस प्रदाह के कई प्रकारके १२९ रोगियोंकी खोजके पश्चात् सबसे अधिक पाया जाने वाला जीवाणु द्विविन्दु फुप्फुसी पृथक् किया जो कि फ्रेंकेल वाला जीवाणु जान पड़ता है या और दूसरा जीवाणु उसने छड़ फुप्फुस निकाली कि जो कम अवसरों पर मिलती है।

विशेष अवस्थाओं अन्य जीवाणु जैसे छड़ ताऊन भी फुप्फुस प्रदाह उत्पन्न कर सकती है।

इन सब खोजोंका फल यह हुआ कि जिसे पहिले फ्रेंकेल ने वर्णन किया था और जिसे अब फुप्फुसविन्दु कहते हैं अधिकांश लगभग ८५% फुप्फुस-खण्ड-प्रदाह के रोगियोंमें पाया जाता है।

फुप्फुस विन्दुकी रचना—रुग्ण फुप्फुससे शीशेकी पट्टी पर परत तैयार करो विशेषतः आरम्भीय बहुत अधिक रक्तमय अवस्थासे या रोगीके आरम्भीय मोर्चे-दार बलगम से अथवा फुप्फुस विन्दु फुप्फुसकी काटमें भी देखे जा सकते हैं। परतों अथवा काटोंको ग्राम की विधिसे रंग कर तन्तुओं पर भिन्न रंगत विस्मार्क बादामीसे अथवा झीलनीलसन कार्बोल-फकसिनसे चढ़ाई जा सकती है। यदि कार्बोल फकसिन उपयोग की जाय तो रंग कुछ पल तक ही पड़ा रहने देना चाहिये अथवा गहरा रंग कर फिर मद्यसार द्वारा रंगको इतना हल्का कर लेना चाहिये कि जिससे पट्टी पर थोड़ा रंग चढ़ा दिखता रहे। इस प्रकार आवरण भी स्पष्ट हो जायँगे विशेष विधियों से भी आवरण रंगे जा सकते हैं। इन परतों और काटोंमें और मृत्युके एक दम पश्चात बनाई हुई परतों तक में सड़ानके और अन्य

जीवाणु उपस्थित रह सकते हैं। यही विधियें फुप्फुस प्रदाहके अतिरिक्त अन्य ऐसी क्षतियोंकी खोजके लिये भी उपयोग की जा सकती हैं जिनमें फुप्फुस विन्दु मिलता है। फुप्फुस विन्दु छोटे और अण्डाकार विन्दुके रूप में पाया जाता है। इसका बड़ा व्यास लगभग १ म्यू $\left(\frac{१}{२५०००}\right.$ इंच$\left.\right)$ होता है और विन्दु अधिकतर जोड़ोंमें द्विविन्दु अथवा चारसे १० विन्दुओं की शृखलोंमें भी पाये जाते हैं। अण्डाकार विन्दुके अन्त अधिकतर नुकीले होते हैं। इन विन्दुओंके चारों ओर एक आवरण भी होता है जो कि साधारण विधियोंसे रंगी हुई परतों में विन्दुओंको घेरे हुए विना रंगे मण्डलके समान दिखता है परन्तु कभी कभी कुछ गहरा भी रंग जाता है। आवरण विन्दुके शरीरसे अधिक चौड़ा होता है और उसकी वाहिरी सीमा बहुत स्पष्ट होती है। भास्मिक आनीलिनीय रंगोंसे इस विन्दु पर रंगत बहुत सरलतासे चढ़ती है। ग्राम की विधिमें भी रंग नहीं छुटता है। प्रत्येक क्षति में कुछ भरे हुए विन्दु भी उपस्थित रहते हैं और इन पर से रंगत छूट जाती है।

ऐसाभी हो सकता है कि बलगमकी परतोंमें फुफुप्स विन्दुका आवरण नहीं पहिचाना जा सके और कभी कभी ऐसाही फुप्फुससे अथवा अन्य फुप्फुस-विन्दुसे उत्पन्न किये गये निःस्रावोंसे तैयारकी परतोंमें भी हो सकता है। कभी कभी साधारण विधिवोंसे रंगी परतोंमें आवरण न पहिचान सकनेका कारण यह हो सकता है कि आवरणकी और उस द्रवकी कि जिसको परत पर डाल रखा है दोनोंकी प्राकाशावर्जन शक्ति एक समान रहती है।

फुप्फुस-विन्दु की कृषि—सीधे बलगमसे फुप्फुस विन्दुको पृथक् करके उगाना अधिकतर कठिन और कभी कभी असम्भव पाया जायगा। कृषि माध्यमों पर फुप्फुस-विन्दु बहुत धीरे धीरे उगता है और यदि वह अन्य जीवाणुओंके साथ मिला हुआ हो तो इसकी कृषि उनकी कृषिसे पिछड़ जाती है। शुद्ध कृषि उगानेके लिये शशक अथवा मूषक की त्वचाके नीचे थोड़ा सा बलगम चढ़ा दो। २४-४८ घंटेमें ये प्राणी मर जाते हैं और उनके रक्तमें बहुतसे आवरणयुक्त फुप्फुस विन्दु पाये जायँगे। प्राणीके हृदय के रक्तसे फिर कृषि उगाई जाती है।

मृत्युके पश्चात् रोगियोंके फुप्फुससे भी कृषियां उगाई जा सकती हैं बहुत अधिक रक्तमय भाग अथवा आरम्भिक लाल ठोस क्षेत्रसे कुछ खुर्चन लेकर कुछ आगर अथवा रक्तीय आगर की नलियें बो दी हैं और फिर उन्हें ३७ श पर रखा जाता है। इस विधिसे कभी कभी बलगम से भी कृषि उगाई जा सकती है।

भिन्न प्रकारके फुप्फुस-विन्दुओंकी कृषियोंमें भी कुछ अन्तर होते हैं फुप्फुस-विन्दु सबसे अच्छी तरह रक्तीय अथवा फार्दफरके रक्त आगर पर उगता है। फुप्फुस-विन्दु अधिकतर साधारण आगर अथवा जूषमें भी अच्छी तरह उग आता है परन्तु मधुरित आगर पर इतनी अच्छी तरह नहीं उगता है। रक्तीय आगरकी ढालकृषि पर लगभग पारदर्शिन् पपड़ी उग आती है। पपड़ीके किनारे पर पृथक् उगे हुए संघ भी पाये जा सकते हैं। आगर पर कृषि अधिक अच्छी तरह उगती है परन्तु होती लगभग वैसी ही है। आगरकी डिबियामें संघ बहुत पारदर्शिन् होती हैं परन्तु अणुवीक्षण की कम तीव्र शक्ति से उनके बीचमें बहुतही बारीक बारीक दाने दिखते हैं और उनके किनारे पारदर्शिन् दिखते हैं। ४८ घंटेके पश्चात् संघोंका आकार बड़ा हो जाता है और उनके बीचका भाग अधिक नीचा रह जाता है। ये लक्षण तो पूयजन विन्दु-शृंखलाके समान ही हैं परन्तु कृषि कम प्रबल और अधिक कोमल होती है। २८ श पर सरेसिन(जिलेटिन) की कृषिमें छोटे संघोंकी कतार उग आती है। संघ छोटे ही रह जाते हैं। सरेसिनमें तरलता नहीं आती है। जूषमें जो कि ताजा मांसका बनाया होना चाहिये (शशक का मांस अधिकतम उपयुक्त है) धुंधलापन आ जाता है और कुछ समय पश्चात् यह धुंधलापन तलछटके रूपमें नीचे पैदेमें बैठ जाता है। आलू पर कृषि नहीं उगती है। यदि प्रत्येक चौथे

पाँचवे दिन उपकृषि की जाती रहे तो फुप्फुसविन्दु बहुत समय तक जीवित रखे जा सकते हैं परन्तु अन्त में कृषियें मर ही जाती है। कभी कभी कृषियों की तीव्रता बहुत शीघ्रही कम हो जाती है। प्राणीके शरीरसे निकाले जानेके पश्चात् उनकी रोगोत्पादक शक्ति जाती रह सकती है परन्तु तीव्रता इस प्रकार सदा ही कम नहीं हो जाती है विशेषतः यदि उपकृषियोंके लिये तोयीय (सीरमी) जूष उपयोगमें लाया जाय। शशकके रक्तमें (सूखे हुए तकमें, और शून्यमें सुखाई रखी हुई मूषककी प्लीहामें फुप्फुसकी तीव्रता बहुत समय तक स्थिर रखी जा सकती है। साधारण कृत्रिम माध्यमों पर फुप्फुसविन्दु अधिकतर आवरण रहित द्विविन्दुके रूपमें पाये जाते हैं परन्तु आगर अथवा जूषकी कृषियों से बनाई परतों में छोटी अथवा बड़ी शृंखला पाई जा सकती हैं। कुछ दिनके पश्चात् फुप्फुसविन्दुओं का साधारण आकार तो जाता रहता है और बिगड़े रूप दृष्टिगोचर होने लगते हैं। बिगड़े रूप अधिकतर लम्बे नुकीले छड़ाकार होते हैं क्योंकि ये वृद्धिके पश्चात् विन्दुओंके पृथक् न होने के कारण बनते हैं। साधारणतः फुप्फुस-विन्दु २८°श से नीचे नहीं उगता है परन्तु जब तीव्रता जाती रहती है तो वह २०°श पर भी उग आ सकता है। फुप्फुसविन्दुकी कृषिका अधिकतम उपयुक्त तापक्रम ३७°श होता है और उसकी कृषि उग सकनेके लिये उच्चतम तापक्रम ४२°श होता है। यह वायुकी उपस्थितिमें अच्छी तरह उगता है परन्तु वायुकी अनुपस्थितिमेंभी जीवित रह सकता है। फुप्फुस विन्दुकी कृषिके लिये समस्वभावकी अपेक्षा कुछ क्षारिक माध्यमही अधिकतम उपयुक्त होता है और वह आम्लिक माध्यम पर नहीं उगता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कृत्रिम कृषिमें फुप्फुस-विन्दुमें साधारणतः आवरण नहीं बनता जान पड़ता है परन्तु हिसके कथनानुसार यदि परत बनाते समय कृषिमें कुछ तोय (सीरम) मिला लिया जाय और परतें ताम्रगन्धेतकी विधिसे रँगी जाँय तो आवरण दर्शाया जा सकता है। तोयाय माध्यमोंमें आवरण अधिक बनता जान पड़ता है। यदि शशक और मनुष्यका कुछ तोय ऐसी विधिसे निकाल लिया जाय कि वह पवित्र ही रहे और फिर उसे आधे घंटे तक ५५° श पर रखकर कर कृषि बोदी जाय अथवा आगरके ढाल पर कुछ तोय डालकर कृषि बोदी जाय तो आवरण बनना अधिक सरलतासे दर्शाया जा सकता है।

रक्त आगरकी डिबियाओं पर फुप्फुस-विन्दु रक्ताणुलय नहीं करता हुआ पाया जाता है। फुप्फुस विन्दु गन्नेकी शक्कर, रफीनोज़ और दुग्धशर्करामें परिवर्तन उत्पन्न करता है। फुप्फुस-विन्दुका इन्युलिनमें परिवर्तन उत्पन्न करना भी बहुत महत्व पूर्ण लक्षण है क्योंकि साधारण विन्दु शृंखला इस शर्करामें परिवर्तन नहीं उत्पन्न कर सकती है इन्युलिनके कुछ नमूनोंमें अन्य नमूनोंकी अपेक्षा अधिक शीघ्र परिवर्तन होता जान पड़ता है। अधिकतर यह जांच इन्युलिन मिले हिसके तोयीय जल माध्यमकी सहायतासे की जाती है। इसमें तोयके थक्के बन जाते हैं। परन्तु कुछ निरीक्षकोंने इन्युलिनके जूष के उपयोगसे अधिक सफलता प्राप्त की है। दिव्योलथैलीनको सूचकके स्थानमें उपयोग करके सैन्धव कर्बनेतकी सहायतासे इसमें बने अम्लका अनुमान किया जा सकता है।

फुप्फुस-विन्दु पित्तमें घुलनशील होता है। यह दर्शानेके लिये गोपित्त १२°श पर २० मिनट तक रखा जाता है और फिर उसे छानकर पूरी उगी हुई कृषिमें छोड़ देते हैं पित्त कृषिके लगभग पाँचवे भागके बराबर छोड़ना चाहिये। सैन्धक गोपित्तेतका २% घोल भी इसी प्रकार उपयोग किया जाता है।

फुप्फुस-विन्दुके कभी कभी शृंखलामें उग आने और कभी कभी विन्दु शृंखलामें आवरण बनना पाये जानेसे फुप्फुसविन्दु और विन्दुशृंखलाके सम्बन्धका भी प्रश्न छोड़ दिया है। फुप्फुसविन्दुको पहिचाननेके लिये रचना और अन्य लक्षणोंके जाँचने

की भी आवश्यकता पड़ती है और पित्तमें घुलनशीलता, रक्ताणुलय न उत्पन्न कर सकना और इन्युलिनमें परिवर्तन उत्पन्न कर सकना यह फुप्फुस विन्दु की पहिचाननेमें उपयोग किये जानेवाले मुख्य लक्षणों में हैं। फुप्फुसविन्दु और विन्दु शृंखलाके सम्बन्धके विषयमें यह भी कहा जा सकता है कि रोजेनोंका यह विचार है कि वह विन्दुशृंखलाओंको ऐसे आवरण युक्त विन्दुओंमें परिवर्तित करनेमें सफल हुआ है कि जिनमें फुप्फुस विन्दुके जीवन सम्बन्धी सब लक्षण उपस्थित थे। उन विन्दुओंके समूहकी ओर भी बहुत ध्यान दिया जा चुका है कि जिनके आवरण पर कुछ चिपकता द्रव्य लगा रहता है और जिसके कारण इन विन्दुओंकी कृषियें चिकनी होती है। ऐसे विन्दु मनुष्यकी भिन्न अवस्थाओंमें जैसे फुप्फुस प्रदाह, मस्तिष्कावरण प्रदाह पीप पड़ना इत्यादिमें पाये गये हैं। पहिले पहिल इन विन्दुओंका वर्णन शारमूलर ने किया था। ये विन्दु एक ओर तो फुप्फुस-विन्दुओंसे और दूसरी ओर विन्दुशृंखलासे सम्बन्धित रहते हैं। रांकफेलरके खोजकों की खोजोंसे तो यह ज्ञात होता है ऐसे विन्दु इन उपसमूहोंमें विभाजित किया जाना चाहिये :—

१. फुप्फुस-विन्दु चिपकना—इस विन्दुमें साधारण फुप्फुस-विन्दुसे कम नुकीले होनेकी ओर झुकाव होता है और उसकी सघ बड़ी होती हैं। रक्तीय आगर पर ये विन्दु रक्ताणुलय नहीं उत्पन्न करते हैं। ये विन्दु पित्तमें घुलनशील होता इन्युलिन मिले तोयीय जल माध्यम में यह विन्दु परिवर्तन उत्पन्न कर सकता है और मूषकों और शशकोंके प्रति इसमें बड़ी तीव्र रोगोत्पादक शक्ति होती है। इस विन्दुकी नस्लोंके चढ़ानेसे जो प्रति तोय बनते हैं उनमें केवल इस उपसमूहकी नस्लोंके प्रतिही संश्लेसक शक्ति रहती है और ये अन्य विन्दु शृंखला अथवा फफ्फुस विन्दुओंको संश्लेषित नहीं कर सकते हैं।

(२) विन्दशृंखला चिपकनी—विन्दु गोल होता है, शृंखलाओंमें पाया जाता है, संघ फुप्फुस विन्दु के संघोंकी अपेक्षा कम पारदर्शित होते हैं, अधिकतर इसमें रक्ताणुलयकी शक्ति नहीं होती है, पित्तमें घुलन शील नहीं होता है इन्युलिनमें परिवर्तन नहीं उत्पन्न कर सकता है और मूषकों के प्रति इसमें रोगोत्पादक शक्ति कम होती है। इस प्रकार फुफ्फुसविन्दु चिपकना तो वास्तविक फुप्फुसविन्दु होता ही है और विन्दु शृंखला चिपकनी उसके और वास्तविक विन्दु शृंखलाके बीचका अन्तर भरती जान पड़ती है।

फुप्फुस प्रदाह और अन्य अवस्थाओंमें फुप्फुस विन्दुओंका पाया जाना

फुप्फुस-विन्दु प्रत्येक प्रकारके रोगमें पाया जा सकता है जैसे भीषण सूत्रिनीय फुप्फुस-प्रदाह, सूक्ष्म, वायु प्रणाली-प्रदाह और पूयजनीय फुप्फुस प्रदाहमें फुप्फुस-विन्दु रुग्णभाग भरमें पाये जाते हैं। और विशेषतः वायुकोष्ठोंके भीतर उपस्थित निःस्रावों में। ये विन्दु फुप्फुसावरणीय निःस्राव और परिस्राव और फुप्फुसकी लसीका प्रवाहिनियोंमें पाये जाते हैं। सबसे अधिक संख्यामें ये विन्दु वहाँ पाई जाती हैं कि जहाँ प्रादाहिक क्रिया बहुत नई आरंभ हुई होती है जैसे कि सूत्रिनीय फुप्फुस प्रदाहमें अधिक रक्तमय भागोंमें। अणुवीक्षणीय जांच और कृषिके लिये ऐसे ही भागोंको चुनना चाहिये। जब प्रदाह अच्छा हो रहा होता है तो जीवाणुओं पर रंगत अच्छी तरह नहीं चढ़ता और ग्राम्मकी विधिमें रंग घुटनेकी ओर झुकाव पाया जाने लगता है। यह जीवाणु मरते हुए अथवा मरे हुए समझे जाते हैं। कभी कभी फुप्फुस के ठोस हुए भागोंमें पीप भी पड़ती हुई पाई जाती है और पीप बहुत दूरमें फैली हुई पाई जा सकती है ऐसी अवस्थामें फुप्फुस विन्दुओंके साथ अन्य पूयजन जीणाणु उपस्थित अथवा अनुपस्थित रह सकते हैं। अन्य रोगियोंमें विलेषतः संग्राम-ज्वरके पश्चात् कोथ आरम्भ हो जा सकता है कि जिसके कारण अधिकांश फुप्फुसनाश हो जाता है। जिस फफ्फुसमें कोथ आरंभ हो गया है उसमें बहुतसे प्रकारके जीवाणु पाये जा सकते हैं।

साधारण सूक्ष्म वायु प्रणाली प्रदाहमें भी फ्रेंकेल का फुप्फुस-विन्दु ही पाया जाता है और कभी कभी उसके साथ पूयजन विन्दु भी उपस्थित रहते हैं। मिथ्या झिल्ली रोगके पश्चात् हुए सूक्ष्म-वायु प्रणाली-प्रदाहमें इस रोगकी छड़ और पूयजन विन्दु भी पाये जा सकते हैं। मुक्ताज्वरके पश्चात् हुए फुप्फुस विन्दुके साथ साथ मुक्ताज्वर छड़ और वृहत् अन्त्रीय छड़ भी पाई जा सकती हैं। संग्राम ज्वरीय फुप्फुसप्रदाहमें संग्राम ज्वर छड़ पाई जा सकती हैं। पीपवाले फुप्फुस-प्रदाहोंमें कभी कभी केवल पूयजन विन्दु ही पाये जाते हैं तद्यपि फुप्फुस विन्दु भी उपस्थित रह सकते हैं। अन्य भागोंको भी रुग्णावस्थाओं में फुप्फुस विन्दु पाया जा सकता है। समीपवर्ती भागोंमें आक्रमणके विस्तारसे फुप्फुसावरणमें पीप पड़ना, हृदयावरण प्रदाह, और उरप्रदेशकी और ग्रीवा-प्रदेशकी लसीका ग्रन्थियोंकी सूजन, उत्पन्न हो जा सकते हैं। फुप्फुसावरणकी पीपमें फुप्फुस विन्दु अकेला अथवा पूयजन विन्दुओंके साथ पाया जा सकता है। परन्तु रोग दूर दूरके भागोंमें पहुँच जा सकता है और फुप्फुसविन्दु शरीरके भिन्न भागों— जैसे अधःत्वच तन्तु, परिविस्तृततावरण ये (विशेषतः बच्चोंमें) संधि, वृक्क, यकृत् इत्यादिमें भी पाया जा सकता है। फुप्फुस-विन्दु मध्यकर्ण प्रदाह, व्रणीय अन्तर्हृदयप्रदाह, और मस्तिष्कावरण प्रदाह में भी पाया जा सकता है। शरीरमें शायद ही कोई प्रादाहिक अथवा पीप पड़ने वाली अवस्था पाई जाती है कि जिसमें फुप्फुस-विन्दु कभी न पाया जाता हो। ये अवस्थायें या तो फुप्फुस प्रदाहकी पेचीदगीके रूप में पाई जा सकती हैं अथवा वे प्राथमिक रोग हो सकती हैं। मस्तिष्कावरण प्रदाह में फुप्फुस-विन्दुका पाया जाना अधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि फुप्फुसोंको छोड़ कर यहाँ पर ही फुप्फुसविन्दु सबसे अधिक पाये जाते जान पड़ते हैं। नेट्टर ने बहुतसे रोगियोंकी जाँच कर नीचेकी सारिणी तैयार की कि जससे यह ज्ञात हो जायगा कि फुप्फुसविन्दुओं का प्राथमिक आक्रमण अधिकतर शरीरके किन भागों पर होता है:—

१. प्रौढ़ो में—

फुप्फुस प्रदाह	६५.६५°/॰
सूक्ष्म वायु प्रणाली प्रदाह	१५.८५°/॰
मस्तिष्कावरण प्रदाह	१२.००°/॰
फुप्फुसावरण में पीप पड़ना	८.५३°/॰
कान प्रदाह	२.४४
अन्तर्हृदय प्रदाह	१.२२
यकृत् का फोड़ा	१.२८

(२) ४८ रोगी बच्चोंकी भी जाँचकी गई, २६ में प्राथमिक रोग मध्य कर्ण-प्रदाह था, १८ में सूक्ष्म वायु प्रणाली-प्रदाह, २ में मस्तिष्कावरण प्रदाह, १ में फुप्फुस प्रदाह, १ में फुप्फुसावरण प्रदाह, और १ में हृदयावरण प्रदाह।

इस प्रकार बच्चों में अधिकतर प्राथमिक रोग मध्यकर्ण प्रदाह होता है और नेट्टर का यह विचार है कि फुप्फुसविन्दुओं का प्रवेश अधिकतर नासिका-द्वारा होता है। फुप्फुस प्रदाह जैसी स्थानीय क्षतिके साथ अन्य उपक्षतियों का पाया जाना समझनेके लिये यह जान लेना आवश्यक है कि अधिकांश रोगियोंके रक्तमें से फुप्फुस विन्दु पृथक् किया जा सकता है।

समालोचना

ध्यानसे आत्म चिकित्सा—अनुवादक—श्री व्योमचन्द्र, प्रकाशक आध्यात्मिक अन्वेषण सभा उज्जेन, पृ० सं० ६६, मूल्य ॥) छपाई, कागज़ उत्तम।

यह पुस्तक अर्नेस्ट ई० मंडे की 'स्टडीज़ इन हीलिंग आर क्योर बाई मेडिटेशन' पुस्तकका रूपान्तर है। इसके प्रथम चार ध्यानोंमें अद्वैत प्रदर्शक सूत्रों-'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'सोहं', 'सर्वं षद्यमात्मा'- के अनुभव करनेका विधान दिया गया है। तदुपरान्त यह घोषणाकी गई है कि

स्वास्थ्य जन्मसिद्ध अधिकार है। रोगीको यह आदेश किया गया है कि वह अपने रोगों, दोषों और अपनी दुर्बलताओंको अस्वीकार करे, उसे यह दृढ़ विश्वास रहना चाहिये कि वह नीरोग है, वह अनन्तजीवी है। पुस्तकमें भयकी अपेक्षा प्रेमको महत्ता दी गई है। इसमें सन्देह नहीं कि मानसिक विकारोंके कारण बहुतसे रोग हो जाते हैं, अतः मनको स्वस्थ कर लेनेपर बहुतसे रोगोंका दूर हो जाना संभव है। चाहे रोग दूर न भी हो पर आत्मविश्वाससे रोगजनित दुःख एवं वेदनायें अवश्य दूर हो सकती हैं। यह पुस्तक हृदयग्राही भाषामें लिखी गई है। आध्यात्म प्रेमी इस छोटी पर अमूल्य पुस्तकसे अवश्य लाभ उठा सकते हैं।

प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान—अनुवादक श्री नारायण गोविन्द नावर, प्रकाशक आध्यात्मिक अन्वेषण सभा उज्जैन पृ० सं० ४०, मूल्य ।)। छपाई कागज़ साधारण

डा० रामस्वामीके 'हेल्थकल्चर' नामक पैम्फलेट का यह अनुवाद है। इसमें आहार, उपवास व्यायाम, प्राणायाम, इच्छा शक्ति, विविध प्रकारके स्नान तथा आरोग्यताके साधारण नियमोंका उल्लेख किया गया है। यदि पुस्तकमें निर्दिष्ट दुग्ध स्नान का नाम 'प्रकाश-स्नान' होता, तो अधिक अच्छा होता। इस पुस्तकको अपने उद्देश्यमें अवश्य सफल होना चाहिये।

भारतेन्दु—सचित्र मासिकपत्र, सम्पादक श्री ज्योतिर्प्रसाद निर्मल, प्रकाशक शिक्षासदन कटरा, प्रयाग, वार्षिक मूल्य ५)

इस मासिक पत्रिकाके दो अङ्क निकल चुके हैं। यह पत्रिका 'मनोरमा' के ढङ्गकी ही प्रतीत होती है। निर्मल जी के सदुत्साह एवं प्रयत्नशीलता के कारण हमें यह आशा है कि साहित्यिक पत्रिकाओंमें इसे विशेष गौरव मिलेगा। इसमें श्री कन्नोमल, जी श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्रीमती त्रिपाठी, श्री सुमित्रानन्दन पंत, श्री अयोध्याय सिंह उपाध्याय, श्री किशोरीलाल गोस्वामी आदि धुरंधरोंके लेख एवं रचनायें रहती हैं। हमारी यही आकांक्षा है कि हिन्दी की यह गौरवशालि ी पत्रिका फूले फले।

चिकित्सा चमत्कार—मासिक पत्रिका-संपादक डा० भोलानाथ टंडन। वार्षिक मूल्य २)। पता—१४ मदनमोहन चटर्जी लेन, कलकत्ता।

इस पत्रिकाके नवम्बर २८ का अङ्क हमारे सामने है। इसमें होमयोपैथिक औषधियोंका ही विधान किया गया है। जिन्हें होमयोपैथीमें विश्वास है वे इस पत्रिकासे विशेष लाभ उठा सकते हैं। पत्रिकाका भविष्य अच्छा प्रतीत होता है।

—सत्यप्रकाश

चमक (फ्लोरेसन्स)

(ले० श्री विष्णु गणेश नाम जोशी, बी. एस-सी.

गतांक से आगे

काफमन् (Kauffmann) का वादः—मायरके वादमें काफमन्‌ने सुधार किये। काफमन्‌ने देखा कि मायर्सके चमक सूचकोंमें प्रकाशित होनेका धर्म (property of luminescence) है। इसका मतलब यह है कि यदि वायव्यावस्थामें उन पदार्थों पर टेस्ला (Tesla) किरण फेंके जावे या ठोसावस्थामें उनको बीटा किरणके सामने रखा जावे तो वह प्रकाश देते हैं। यह गुण बहुधा चाक्रिक संगठनोंके साथ सम्बन्धित है परन्तु कभी कभी कर्बनील पदार्थोंमेभी देखनेमे आता है। ऐसे प्रकाशित होने वाले पदार्थको दीप्ति-सूचक (luminophore) कहते हैं। दीप्ति (luminescence) का

गुण चमक में परिवर्तित करनेके लिये दूसरे परमाणु समूहोंका होना भी आवश्यक है, जिनको चमक-जन (fluorogen) कहते हैं। चमक जनमें कर्बोषिल, कर्बनील, श्यामजन और चरपरिकाम्ल (acrylic) के समूह, ज्वलीलिन बन्ध (bond) और आबद्ध (conjugated) ज्वलीलिन बन्ध, बानजावीन चक्र (ring) और पूर्व और पर कुनोनिद चक्र (quinonoid ring), अजीव दारिन (azomethin) और आबद्ध अजीव दारिन चक्र इत्यादि समूह हैं। उदाहरणतः—

अजीवदारिन चक्र

यद्यपि बानजावीन दीप्तिका कारण होता है तोभी वह स्वयं दीप्ति-सूचक नहीं है। उसको रंग-सहायकों (auxochromes) की जरूरत होती है जैसे कि अमिन और उदोषील समूह। ये या तो अकेले प्रयुक्त हो सकते हैं अथवा मद्यील और बानजावील मूलोंके साथ संयुक्त होकर प्रयुक्त होते हैं। अम्लील समूह होनेसे और लवण बनानेसे अमिनो समूहका प्रभाव नष्ट हो जाता है। उदजनके स्थानमें धातु आनेसे उदौषसमूहका प्रभाव नष्ट हो जाता है। दीप्ति-सूचक (luminophore) के मुख्य उदाहरण नीलिन् और कुनोल हैं। यह बड़ी तेजीसे दीप्तमान होते हैं। बानजावीन केन्द्रों (nuclei) की संख्या गुणित होनेसे भी यह परिणाम हो सकता है। इसका उदाहरण द्विदिव्यील है। नफथलीन और अंगारिन (अंथासीन) के समान केन्द्रके घन (compact) समूहमें यह परिणाम और भी बढ़कर होता है। पिरीदिन, चतुर-उद कुनोलीन कर्बोषिलिकाम्ल और ऐसे ही और चाक्रिक दीप्तिमान यौगिक होते हैं।

दीप्ति और चमकका धर्म बानजावीनकी एक विवक्षित अवस्था पर निर्भर रहता है। पृथक पृथक बानजावीन यौगिकोंमें बानजावीन चक्र भिन्न भिन्न अवस्थाओं में होते हैं परंतु फिर भी कुछ निश्चित् सीमायें होती हैं जिनके कारण ऐसे विवक्षित गुण धर्म प्रत्यक्ष होते हैं। इनमेंसे एक आदर्श सीमा डीवार (Dewar) के बानजावीन चित्रसे दृश्यमान होती है। इसमें यह पदार्थ 'ड' स्थितिमें (D-condition) है ऐसा कहा जाता है और इस स्थितिमें (१) इसमें अधिकतम प्रक्रिया करनेकी शक्ति (reactivity,) (२) ओषदीकरण द्वारा कुनोनिद रूप ग्रहण करनेकी अधिकतम सम्भावना (३) अधिकतम अपवादरूप चुम्बकी भ्रामक शक्ति और (४) अधिकतम दीप्ति होती है। यह अवस्था द्विदारील-पर-दिव्यीलिन-द्विअमिनमें विशेषतया प्रकट होती है। और नोषोबानजावीनमें करीबकरीब होती ही नहीं।

यह सीमित (limiting) 'ड' अवस्था डीवार (Dewar) के बानजावीन चित्र में जिसमें एक अस्थिर (mobile) पर-बन्ध (para bond) होता है सूचित की गई है। इसको थीले (Thiele) की आंशिक संयोग शक्ति (partial valency) के वाद के अनुसार इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं:—

डीवार का चित्र थीले का चित्र

दीप्ति-सूचक 'ड' स्थितिमें होते हैं ऐसा मान कर रंग सहायकों (auxochromes) के प्रभाव के सम्बन्ध के अनेक उपयोगी नियम बनाये जा सकते हैं। रंग सहायकोंकी शक्तिके अनुसार अमिनो और उदौष समूह इस स्थितिको उत्पन्न करते हैं। अगर ये मूल एक से अधिक हों और पर-स्थान में हों तो

दोनों आपसमें सहयोग करके प्रभावको बढ़ाते हैं। उदाहरणतः द्विदारीऊ-कुनोलमें सम्पूर्ण उदौष यौगिकों की अपेक्षा सबसे अधिक दीप्ति है। जब रंग सहायक पूर्व या मध्य स्थान में हों तो विरुद्ध परिणाम उत्पन्न करते हैं और इसी कारण से यह नहीं कहा जा सकता है कि कई रंग सहायकों का प्रभाव सर्वदा उनके पृथक् पृथक् प्रभाव का योग होता है। सबसे बलवान दीप्ति-सूचकों में रंग-सहायक 'पर' स्थितिमें होते हैं। इन यौगिकोंमें निर्बल चमक-जन (fluorogens) भी चमक उत्पन्न कर सकते हैं। इस बातसे यह स्पष्ट है कि कुनोल, प-अमिनो दिव्योल (p-amino phenol) और प-दारीलिन द्विअमिन यौगिक क्यों बहुधा चमकदार होते हैं।

ऐसी कल्पना करो कि चमक-जन च दो रंग-सहायकोंमें से एक ($र_1$) के पर स्थान में हैं। दूसरा रंग सहायक ($र_2$) लगानेसे तीनों समूहों से दो प्रकारके यौगिक मिल सकते हैं।
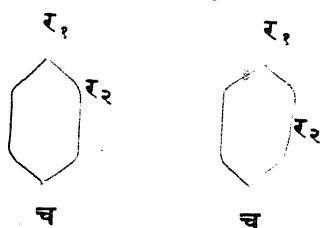
चमक-जन या तो 'ड' स्थितिको उत्पन्न या उसको दबानेकी कोशिश कर सकता है। परन्तु केवल पहिली ही अवस्थामें 'ड' स्थिति उत्पन्न होने पर चमक होना सम्भव है। इन नियमों को काफमन (Kauffmann) ने 'रंग-सहायकोंके विभाजन का सिद्धान्त नाम दिया है। रंग सहायकों के समान ज्वलीलिन-बन्ध भी 'ड' स्थितिको बढ़ाता है। इसीसे, स्टिलबिन (stilbene) और कुमेरिन यौगिक चमकदार होते हैं।

—क उ=क उ—

स्टिलबिन

कुमेरिन्
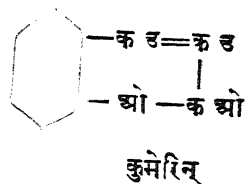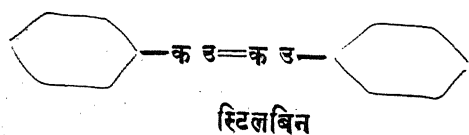
कर्बोषिल समूह जब रंग-सहायकके पर-स्थान में होता है तो उसका उलटा परिणाम होता है अर्थात् वह चमक नहीं देता है। परन्तु वह जब पूर्व-स्थानमें होता है तब चमक देता है। उदाहरणतः अंगार-नीलिकाम्ल चमकदार होता है परन्तु उसका पर-यौगिक चमक-रहित होता है। डीवार के चित्र का समानान्तर द्विगुण-बन्ध दीप्ति एवं चमकका (luminescence) कारण होता है। यह बात कुछ उदपिरीदिन कर्बोषिलिक सम्मेल जैसे द्विउद-कोलीदिन द्विकर्बोषिलिक सम्मेल में दिखाई देती है। इस सम्मेल में एक विशेष तीव्र चमक होती है।
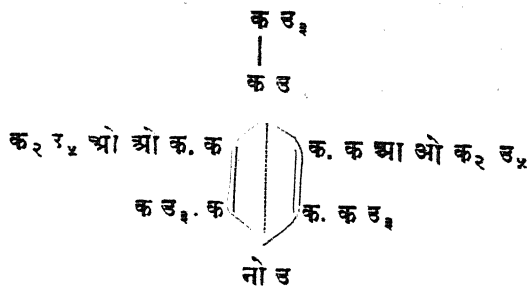
द्विउद्कोलिदिन द्विकर्बोषिलिक सम्मेल

दूसरे उदाहरण रालिको-रालि काम्लिक सम्मेल (succino succinic), उसका इमिद $\triangle^{1,4}$ हरो द्विउद तट-थलिक सम्मेल, चतुर् द्विव्यील प-वनीलिन इत्यादि हैं।

$$\begin{matrix} क_6 उ_5 \\ क_6 उ_5 \end{matrix} > क = \bigcirc = क < \begin{matrix} क_6 उ_5 \\ क_6 उ_5 \end{matrix}$$

चतुर् द्विव्यील प-वनीलिन

इस प्रकार केन्द्रकी 'ड' स्थिति मायर (Meyer) के चमक सूचकोंके समान है।

कुनोन जैसे यौगिक समानान्तर-द्विगुण-बन्ध होने परभी चमक क्यों नहीं देते हैं इसका अभीतक कोई संतोष जनक उत्तर नहीं मिला है। परन्तु यह हो सकता है कि प्रकाश सामर्थ्य (energy) किसी कारणसे चमक तो नहीं, परन्तु रंग देने में काम आती है।

काफमन्ने पार्श्व श्रेणी वाले कुनोल-द्विदारील-उव लकके अनेक यौगिकोंकी परीक्षा करके यह निश्चित करनेका यत्न किया कि पार्श्वश्रेणीमें स्थापन करने पर चमकपर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है। थीले (Thiele) के वादके अनुसार वह यह परिणाम मिलता है कि पार्श्वश्रेणीको दीप्ति-सूचकोंसे जोड़ने वाली आंशिक-संयोग-शक्ति जितनीही अधिक प्रबल होगी पदार्थमें उतनीही अधिक प्रबल चमकभी होगी, यह नीचे दिये हुये उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगा :—
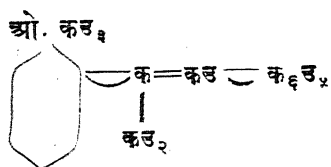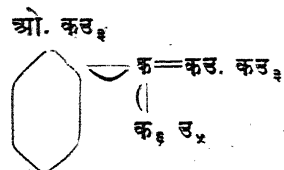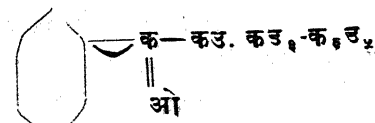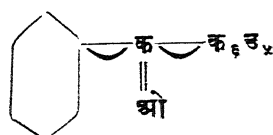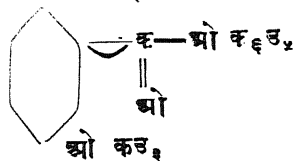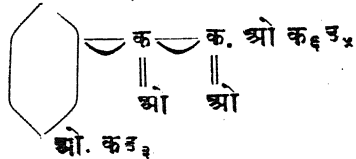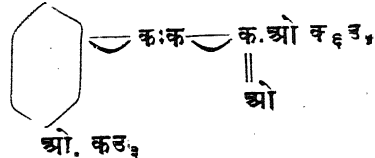
ऊपर दिये हुये विवरणसे ऐसा दिखाई देगा कि यद्यपि बानजावीन चमकका स्थान होता है तथापि चमक सिर्फ दो प्रकारके समूहों-रंग सहायकों और

चमक-जनोंके होनेसे ही होती है और ये समूह भी किसी विशेष स्थानमें होने चाहिये। अणुमें रंग-सहायक समूहके डालनेसे दीप्ति सूचक नियत होता है। तत्पश्चात् चमकजनके डालनेसे चमक दिखाई देती है। कभी कभी चमकजन रंग सहायकका काम करता हुआ दिखाई पड़ता है। इस प्रकार इन दोनोंके काम (functions) बिलकुल अलग अलग निश्चित करना अत्यन्त कठिन है। परंतु ऐसा माना जा सकता है कि दोनोंके कारण बानजावीन केन्द्रमें डीवार द्वारा कल्पित एक विशेष 'ड' स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

जबसे स्टार्कने यह मालूम किया कि बानज़ावीन पराकासनी किरण विभागमें चमक देता है तबसे स्टार्क, मायर (Meyer), ले (Ley) और दूसरे लोगोंने स्थापक समूहोंके महत्व निश्चित् करनेके लिये प्रयोग करने आरम्भ किये। इन प्रयोगों में यह देखनेका यत्न किया गया कि किरण-चित्रके पराकासनी भागमें चमकके स्वभाव (character) और स्थिति (position) में स्थापक समूहोंके डालने से क्या अन्तर हो जाता है। फ्रांन्सेस्कोनी (Francesconi) और बर्घेलिनी (Berghéllini) ने यह बतलाया कि प्रत्येक स्थापक समूह किरण-चित्रको परिवर्तित कर देता है और उसको दृष्ट भाग (visible region) की तरफ सरकाता है। इसी समय चमककी प्रबलता पर भी स्थापकोंका प्रभाव पड़ता है। चमक-सहायक (auxoflore) से प्रबलता बढ़ती है और चमक-रोधकों (bathoflores) से घटती है। चमक सहायकों (auxoflores) में दो रंग सहायक और उनके मज्जील और बानजावील यौगिक होते हैं। मद्यील समूह चमक-सहायक जैसा बर्ताव करते हैं, लेकिन ये चित्र भागकी स्थितिको परिवर्तित नहीं करते हैं। दूसरे चमक-सहायक ओ उ, ओ क $उ_३$, नो $उ_२$, क नो, क ओ ओ उ, क उः क उ, इत्यादि चित्र भाग को दृष्ट (visible) भाग (region) की तरफ खसकाते हैं। चमक रोधकोंमें नोषो समूह होते हैं, जो चमकको बिलकुल नष्ट करते हैं, और वर्णजन, क $उ_३$; क ओ, और नोः नो चमकको कम कर देते हैं। लवण बननेके परिणामकी भी इसी प्रकार परीक्षा की गई है। आदान (absorption) चित्र और चमक का सम्बन्ध निश्चित करनेवाले प्रयोग भी विशेष महत्वके हैं। परन्तु अबतक इससे चमकके चमत्कार पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ा है। स्टार्क का कहना है कि चमक सहायक समूह संयोगशक्तिक विद्युत कणोंको ढीले करते हैं और चमक रोधकोंका परिणाम इससे उलटा है।

हेविट का वाद (Hewitt's theory)

इस विषयमें हेविटका मत भी जान लेना आवश्यक है। बेलीके पट्टी वाले किरण चित्र (Balys banded spectrum) के सिद्धान्तके समान जिसमें अणुके अन्दरकी झूलन गति या विद्युत-कण शक्तिकी कल्पनाकी गई है, यह सिद्धान्त भी है। और बायर (Baeyer) के रंग-वादके समान हेविटका वाद भी गत्यर्थक समरूपता पर निर्भर है।

बहुतसे यौगिक दो प्रकारके रूप ग्रहण कर सकते हैं। इनमेंसे जब एक प्रकारका रूप दूसरे रूपमें और फिर दूसरे प्रकारका रूप पहले रूपमें अति तीव्रतासे परिवर्त्तित होनेका यत्न करता है तो ऐसी अवस्थामें 'चमक' के समान दृश्य प्रकट होते हैं।

यह दोनों रूप अलग अलग झूलन कालके प्रकाश किर बारी बारीसे ग्रहण करते और निकालते हैं। इस क्रिया (operation) की तुलना घड़ीके लंगरसे (pendulum) जो झूलेके समान झूलता रहता है की जा सकती है। इस प्रकार फ्लोरोसीन दो चपल सम रूपोंमें चित्रित किया जा सकता है। एक दुग्धोन (Lactone) रूप है और दूसरा कुनोन (quinone) रूप जिनके बीचमें बारी बारीसे परिवर्त्तन होता रहता है।

(अ$_1$) कओ

(अ$_2$)

(ब)
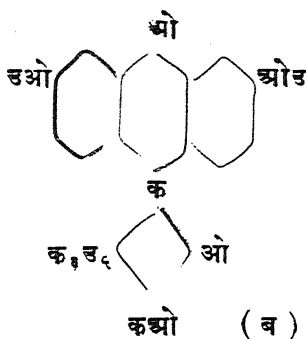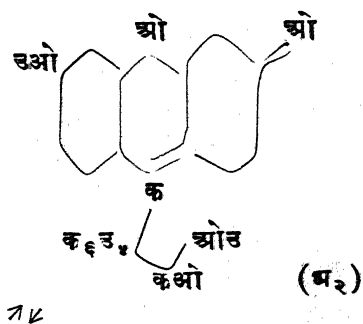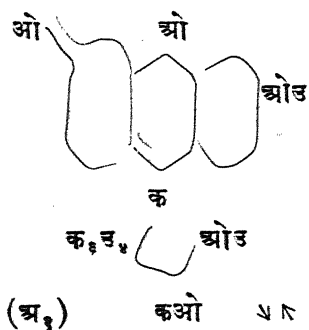
अ$_1$, ब, और अ$_2$ से अवस्थायें बताई गई हैं। हर एक दोलन (swing) अ से चल कर ब स्थितिमें आकर अ$_2$ स्थितिको ग्रहण करता है। फिर वह ब स्थितिमें होकर अ$_1$ स्थितिको वापिस लौटता है। और अ$_1$ ब अ$_2$में सामर्थ्यका (energy) बारीबारीसे दान (emission) और आदान (absorption) होता रहता है। इसमें और साधारण गत्यर्थक समरूपतामें भेद इतना ही है कि चमक देने वाले पदार्थ आरम्भ और अन्तमें एकसा (identical) होते हैं। इसके अतिरिक्त मध्यावस्था के रूपमें अवश्य कोई समसंगतिक (symmetrical) गठन होनी चाहिये, नहीं तो यह आक्षेप होनेकी संभावना है कि सब गत्यर्थक समरूपता वाले पदार्थ क्यों नहीं चमकदार होते हैं क्योंकि वे भी दोनों रूपके बीचमें दोलन (oscillate) करते हैं।

अनेक पदार्थों में उपर्युक्त नियम लगता है-उदाहरणतः अंगारिन्में नीचे दिये हुये रूपोंमें दोलन होना सम्भव है।

अंगारिन
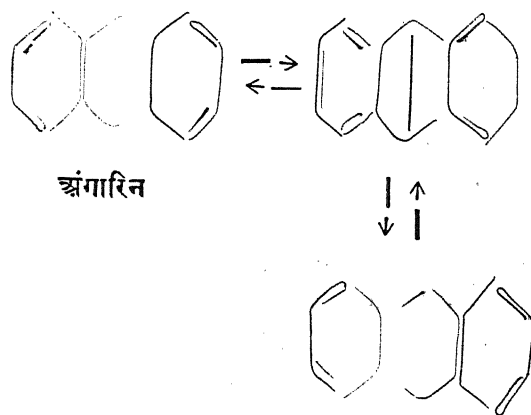
फ्लोरेन जो मद्यके घोलमें चमक नहीं देता है, तीव्र गन्धकाम्ल में घुलाने पर चमकदार प्रतीत होता है।

जब मध्यावस्था का रूप सम संगतिक नहीं होता तो चमक भी उत्पन्न नहीं होती है। असम-संगतिक द्विदारील फ्लोरेसीनमें इसी कारण चमक का अभाव होता है। पर समसंगतिक द्विदारील फ्लोरे-सीनमें चमक होती है:—

चमकदार चमक रहित

द्विदिव्यीळ पाइरोन का तीव्र गन्धकाम्लके घोलमें चमकदार होना इसी तरहके स्पष्ट किया गया है।

इसी तरहसे पीत चरपरिन (acridine-yellow) में तीव्र चमक होती है परन्तु क्रिसनीलिन (chrysaniline) में बहुत ही कम चमक होती है।

पीत-चरप्ररिन

क्रिसनीजिन
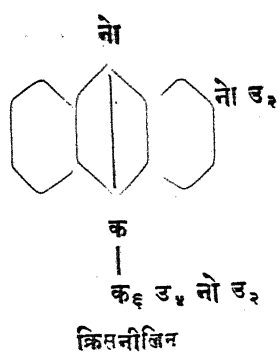
फिनोसैफ्रेनिन उद्हरिद का मद्यिक घोल पीली लाऊ चमक देता है, परन्तु एपोसैफ्रेनिन उद्हरिद जिसमें एक अमिनो मूलका अभाव होता है चमक नहीं देता :—

नो

उ₂नो नो उ₂

नो

क₆ उ₄ ह

फिनो सैफ्रेनिन उद्हरिद
(मध्यावस्था)

एपो सैफ्रेनिन उद्हरिद
(मध्यावस्था)
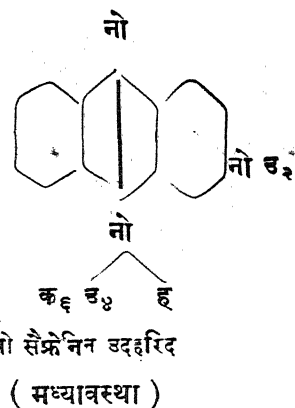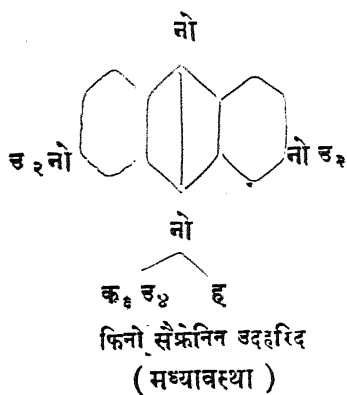
इस वादमें भी बहुतसे दोष हैं। ऐसे भी पदार्थ हैं जो वादकी सारी शर्तों (conditions) की पूर्ति करते हैं लेकिन उनमें चमक नहीं होती है। दिव्योलथलीन, दुग्धोन और कुनोन दोनों रूपमें रहता है और उसकी गठनभी पूर्णतः समसंगतिक है लेकिन इसमें चमक नहीं होती है ; इसका कोई उचित कारण नहीं प्रतीत होता है। यही हालत चतुर्नोष फ्लोरेसीनकी है। और फिर ऐसा भी देखा गया है कि चपल (mobile) उद्जनके स्थान पर दारीलमूल रखकर चपलरूपता बन्द कर देने पर भी पदार्थोंमें चमक बनी रहती है। इस प्रकार इस वादमें भी बहुतसे अपवाद हैं।

सूर्य-सिद्धान्त

(ले० श्री महाबीर प्रसाद श्री वास्तव, बी. एस-सी. एल-टी., विशारद)

गतांक से आगे

इसी प्रकार सूर्यके उदयकालसे पहले जब वह क्षितिजसे १८ अंश नीचे हो जाता है तबसे प्रातःकालिक संधि प्रकाशका आरंभ होता है। यह प्रकट है कि जब सूर्य १८ अंश क्षितिजसे नीचे रहता है तब यह खस्वस्तिकसे ९०+१८=१०८ अंश नीचे होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिस समय सूर्यका पूर्व नतांश १०८ अंश होता है उस समयसे संधिप्रकाशका आरंभ होता है और जिस समय उसका पूर्वनतांश ९० अंश होता है उस समय तक प्रातःकालिक संधिप्रकाश रहता है। इसी प्रकार जब तक सूर्यका पच्छिमनतांश ९० से १०८ रहता है तब तक सायंकालिक संधि प्रकाश रहता है।

पृष्ठ ४२९ के सूत्र (१) में बतलाया गया है कि नतांश और नतकालका क्या सम्बन्ध है और यह अक्षांश और क्रान्ति पर किस प्रकार आश्रित है। इस सूत्र में नतांशकी जगह १०८, तथा इष्ट स्थानके अक्षांश और इष्ट दिनकी सूर्य की क्रान्तिके मान उत्थापित किये जाय तो जो नतकाल आवेगा उससे सूर्यका उदयकालिक या अस्तकालिक नतकाल घटा दिया जाय तो उस दिनके संधिप्रकाशका परिमाण मालूम हो जायगा। उदय या अस्तकालका नतकाल जाननेके लिए नतांश परिमाण ९० अंश ३५ कला लेना पड़ेगा क्योंकि उदय या अस्त होते हुए सूर्य पर किसी ग्रहका प्रत्यक्ष नतांश ९० होता है परन्तु वातावरणके वर्तनके कारण यथार्थ नतांश ३५ कला और बढ़ जाता है (देखो पृष्ट ५४७५२ इसलिये सूर्य का उदय या अस्तकालिक नताश यथार्थ में ९०°३५′ होता है।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि संधिप्रकाश सब ऋतुओं में और सब स्थानों में एक सा नहीं होता इसलिए ग्रहोंके दर्शन और लोपका दिन जाननेके लिए सब स्थानों और सब ऋतुओंके लिए एक ही ग्रहका परम कलांश भिन्न भिन्न मानना पड़ेगा क्यों कि जहाँ संधि प्रकाश देर तक रहेगा वहां उसी परम कलांशसे काम न चलेगा जो थोड़े संधि प्रकाशके लिए काम दे सकता है। इन सब बातोंका विचार करनेसे यही युक्ति युक्त जान पड़ता है कि ग्रहों के लोप और दर्शन का विचार उनके उन्नतांश से किया जाय न कि कालांश से जैसा कि आचार्य केतकर जी लिखते हैं:—

सर्वे ग्रहाः शीघ्रकेन्द्रगत्या सूर्यमुपेत्य कानिचिद्दिनान्यदृश्या भवन्ति। इयं चमत्कृती रवि ग्रहयोरुदयास्तमययोः कालयोरन्तरमाश्रयत इति पूर्वाचार्याणांम मतं न समञ्जसम्। यतः संध्याकरण दीप्तिः सूर्यस्य क्षितिजादधस्तनान्नतांशानुसतिर न च कालांशान्। यत्र देशे ३५° अक्षांशास्तत्र विषुव १७ दिवसे संधि प्रकाशः सूर्यस्योदयास्तकालात्प्राक् पश्चात् १ घ० ४० पल वर्तते। परमयन प्रवृत्ति दिवसे स एव ४ घड़ी ४० पल भवति। एतयोः कालांशाः क्रमेण २२°, २८° भवन्ति। अतएव सिद्धं यदेकैरेव कालांशैर्यद्दर्शनादर्शन गणितं पूर्वाचार्यैः कृतं तदुपपत्ति विरुद्धं स्थूलं चेति। अतो ग्रहाणां लोपदर्शन गणितं तेषामुन्नतांशाश्रयेणैव कार्यम्।

आचार्य केतकरके मतसे शुक्रका उदयास्तकालिक उन्नतांश ६° ४ और गुरुका ११° है। देखो ज्योतिर्गणित पृ० ३५१

उदाहरण—काशीमें सायन मकर संक्रान्ति, सायनमेष संक्राति और सायन कर्क संक्रान्तिके दिन संधि प्रकाशकी अवधि क्या होती है?

काशीका अक्षांश २५° १८

सायन मकर संक्रान्ति तथा सायन कर्क संक्रान्तिके दिन सूर्यकी क्रान्ति २३ २७ (देखो पृष्ठ ४५१) और सायन मेष या तुला संक्रान्तिके दिन सूर्यकी क्रान्ति शून्य होती है।

सायन कर्क संक्रान्तिके का सन्धि प्रकाश जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होती है—

बतलाया गया है कि संधि प्रकाशके आरंभ या अतमें सूर्य का नतांश १०८ होता है इसलिए ४२६ पृष्ठके सूत्र (१) के अनुसार

$$\text{कोज्या नतकाल} = \frac{\text{कोज्या } १०८° - \text{ज्या } २५°१८' \times \text{ज्या } २३°२७'}{\text{कोज्या } २५°१८' \times \text{कोज्या } २३°२७'}$$

$$= \frac{-\text{ज्या } १८° - \text{ज्या } २५°१८' \times \text{ज्या } २३°२७'}{\text{कोज्या } २५°१८' \times \text{कोज्या } २३°२७'}$$

$$= \frac{-·३०९० - ·४२७४ \times ·३९७९}{·९०४१ \times ·९१७५}$$

$$= \frac{-·३०९० - ·१७७१}{·८२९५}$$

$$= \frac{-·४७६१}{·८२९५}$$

$$= -·५७७६$$

यहां कोज्या नतकाल ऋणात्मक है इसलिए नतकालांश ९० अंशसे अधिक है। यदि यह ९० अंशसे अ अंश अधिक हो तो

$$\text{कोज्या नतकाल} = \text{कोज्या } (९० \times अ) = -\text{ज्या } अ$$

$$= -·५७७६$$

$$\therefore अ = ३५°१७'$$

∴ संधि प्रकाशके आरंभ कालका नतकाल

$$= ९०° + ३५°१७' = १२५°१७'$$

पृष्ठ ५४९-५० के अनुसार काशीमें सूर्योदय कालिक नतकाल

$$= १०१°५०' + ४३' = १०२°३३'$$

इसलिए संधिप्रकाश काल $= १२५° १७' - १०२° ३३'$

$= २२° ४४' =$ १ घंटा ३० मि० ५६ सेकंड

सायन मकर संक्रान्तिके दिनका संधिप्रकाश काल—

इस समय सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण होती है इसलिए उपर्युक्त सूत्रमें ऋण चिन्ह धन हो जायगा (देखो पृष्ठ ४३१) और संधिप्रकाशके आरम्भका नतकाल नीचे लिखे समीकरणसे सिद्ध होगा—

$$\text{कोज्या नतकाल} = \frac{-\text{ज्या } १८° + \text{ज्या } २५°१८' \times \text{ज्या } २३°२७'}{\text{कोज्या } २५° १८' \times \text{कोज्या } २३° २७'}$$

$$= \frac{-·३०९० + ·१७०१}{·८२९५}$$

$$= \frac{-·१३८९}{·८२९५}$$

$$= -·१६७५$$

$$\therefore \text{कोज्या नतकाल} = \text{कोज्या } (९० + अ) = -\text{ज्या } अ$$

$$= -·१६७५$$

$$\therefore अ = ९°३८'$$

∴ संधिप्रकाशके आरम्भकाल का नतकाल

= ९०° + ९°३८′ = ९९°३८′

पृष्ठ ५५० के अनुसार सूर्योदय कालिक नतकाल

= ७८° १०′ + ४३′ = ७८°५३′

∴ संधि प्रकाशकाल = ९९°३८′ − ७८°५३′ = २०°४५′

= १ घंटा ३२ मिनट

सायन मेष या तुलासंक्रान्तिके दिन सन्धि प्रकाशकाल—

कोज्या नतकाल = $\frac{\text{कोज्या } १०८°}{\text{कोज्या } २५°१८′}$

= $\frac{-\text{कोज्या } १८°}{·९०४१}$

= $\frac{-·३०९}{·९०४०}$

= − ·३४१८

∴ कोज्या नतकाल = कोज्या (९० + अ) = − ज्या अ

= − ·३४१८

∴ अ = १९°५९′

∴ संधि प्रकाशके आरंभका नतकाल = ९२ + १९°५९′

= १०९°५९′

पृष्ठ ५५१ के अनुसार सूर्योदय का नतकाल ९०°३८′·७ या ९०°३९′ है। इसलिए

संधिप्रकाशकाल = १०९°५९′ − ९०°३९′ = १९° २०′

= १ घंटा १७ मिनट २० सेकंड

इस प्रकार यह सिद्ध है कि किसी स्थान पर संधि प्रकाश काल सब ऋतुओंमें एकसा नहीं होता। ऊपर जो गणनाकी गयी है उसमें सूर्य उस समय क्षितिजपर समझा गया है जिस समय सूर्यका केन्द्र क्षितिज पर आता है परन्तु सूर्यका ऊपरी बिम्ब १ मिनटके लगभग पहलेही क्षितिजको छू लेता है क्योंकि सूर्यका बिम्बार्ध १६ कलाके लगभग होता है। इस कारण संधि प्रकाश काल १ मिनट और कम हो जाता है—

उदयास्तकालके कितने दिन बीते हैं या शेष हैं—

तत्कालांशान्तरकला भुक्त्यन्तर विभाजिताः ।
दिनादितत्फलं लब्धभुक्तियोगेन वक्रिणः ॥१०॥
तल्लग्नासुहते भुक्ती अष्टादश शतीद्धृते ।
स्यातां कालगतीताभ्यां दिनादि गत गम्ययोः ॥११॥

अनुवाद—(१०) ग्रहके इष्टकालिक कालांश और परमकालांश के अंतरको कलाओंमें लिखकर सूर्य और ग्रहकी दैनिककाल गतियोंके अन्तरसे (यदि ग्रह मार्गी हो) और योगसे (यदि ग्रहवक्री हो) भाग देने से जो आता है वह दिनोंकी संख्या है। (११) सूर्य या ग्रह जिस राशिमें हो उसके लग्नासुओंको स्पष्ट दैनिक गतिसे गुणा करके गुणनफलको १८०० से भाग देने पर जो प्राप्त होता है वही ग्रहकी कालगति होती है। सूर्य और ग्रहकी कालगतियों (के अन्तर या योग) से ही उदय या अस्तकालके गत या गम्य दिन जाने जाते हैं।

विज्ञान-भाष्य—यदि किसी दिन यह जानना हो कि किसी ग्रहके उदय या अस्त होनेको कितने दिन हैं या उदय अथवा

अस्त होनेके उपरान्त कितने दिन बीत गये हैं तो उस दिनका ग्रहका कालांश ४-५ श्लोकोंके अनुसार जान लेना चाहिए जिससे यह मालूम हो जाता है कि ग्रह सूर्योदयसे कितने पहले उदय होता है या सूर्यास्तसे कितना पीछे अस्त होता है।

यदि यह कालांश परमकालांशसे अधिक तथा सूर्य का भोगांश ग्रहके भोगांशसे अधिक हुआ—और यह ग्रह मार्गी बुध या शुक्र है तो समझ लेना चहिये कि अभी इसके अस्त होनेमें कुछ दिन शेष है परन्तु यदि यह ग्रह मङ्गल, गुरु या शनि अथवा वक्री बुध या शुक्र है तो समझना चाहिए कि इसके उदय हुए कुछ दिन बीत गये हैं। परन्तु यदि कालांश अधिक तथा सूर्यका भोगांश ग्रहके भोगांशसे कम हुआ और ग्रह मङ्गल, गुरु या शनि अथवा वक्री बुध या शुक्र है तो समझना चाहिए कि अभी इनके अस्त होनेमें कुछ दिन शेष हैं। इसके विपरीत

यदि कालांश परमकालांशसे कम तथा सूर्यका भोगांश ग्रहके भोगांशसे अधिक हुआ—तो समझना चाहिए कि मार्गी बुध या शुक्रके अस्त हुए कुछ दिन बीत गये और मङ्गल, गुरु या शनि तथा वक्री बुध या शुक्रके उदय होनेमें कुछ दिन शेष हैं। परन्तु यदि सूर्य भोगांश भी ग्रहके भोगांशसे कम हुआ तो समझना चाहिए कि मार्गी बुध और शुक्रके उदय होनेमें कुछ दिन शेष हैं मङ्गल, गुरु शनि और वक्री बुध या शुक्रके अस्त हुए कुछ दिन बीत गये हैं। सब दशाओंमें इन दिनोंकी संख्या जाननेके लिए कालांश और परमकालांशका अन्तर निकालना चाहिए और देखना चाहिए कि यह अन्तर कितने दिनमें घट कर शून्य हो जायगा शून्य से बढ़ते बढ़ते इतना हुआ है। ऐसा करनेके लिए इस अन्तरको सूर्य और इष्ट ग्रहकी दैनिक गतियोंके अन्तर सेभाग देना चाहिए यदि ग्रह मार्गी हो परन्तु यदि वक्री हो तो इतनी दैनिक गतियोंको जोड़ लेना चाहिए जैसा कि ग्रहयुत्यधिकारमें बतलाया गया है। परन्तु सूर्य या गहकी दैनिक गति साधारणतः क्रान्तिवृत्तीय होती है और कालांश विषुवद्वृत्तीय होता है इसीलिये क्रान्ति वृत्तीय दैनिक गतियोंको विषुवद्वृत्तीय में बदलने के लिए ११ वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सूर्य या ग्रह जिस राशिमें हो उसके लग्नासुओंको सूर्य या ग्रहकी दैनिक गतिसे गुणा करके १८०० से भाग देना चाहिए क्योंकि राशिके उदय होनेका समय उसके लग्नासुओंके समान होता है इसलिए ग्रहकी जितनी दैनिक गति होती है उसके उदय होनेका समय भी उसी अनुपातसे समझना चाहिए। दैनिक गति छोटी होनेके कारण साधारणतः कलाओं में लिखी जाती है इसीलिए एक राशिको भी १८०० कलाओंमें लिखा जाता है। इससे ग्रहकी जो दैनिक गति आती है वह विषुवद्वृत्तीय हो जाती है इसी लिए इसको कालगति कहा गया है क्योंकि इससे कालका पता सहज ही लग जाता है। बीजगणितकी भाषामें १०-११ श्लोकोंके नियमके इस प्रकार लिखा जा सकता है:—

इष्ट दिनका ग्रहका कालांश* ग्रहका परमकालांश

= कालांशान्तर......(१)

---

*यह अन्तरका चिन्ह है और सूचित करता है कि इसके दहिने बायेंकी संख्याओंमें जो बड़ी हो उससे छोटीको घटाना चाहिये।

किसी ग्रहकी दैनिकका कालगति

$$= \frac{\text{ग्रहकी दैनिक गति} \times \text{ग्रहकी राशि लग्नासु}}{\text{१८००}} \quad \text{......(२)}$$

गत या गम्य दिनोंकी संख्या

$$= \frac{\text{कालांशान्तर}}{\text{सूर्यकी कालगति} \mp \text{ग्रहकी कालगति}} \quad \text{......(३)}$$

यदि ग्रह वक्री हो तो अन्तिम समीकरणमें धनका चिह्न रखना चाहिए नहीं तो दोनोंका अन्तर निकालना चाहिए। यहां ऋणके चिह्नकी जगह अंतरका चिह्न अधिक युक्तियुक्त है क्योंकि किसी ग्रहकी कालगति सूर्यकी कालगतिसे अधिक होती है और किसीकी कम।

ग्रहकी कालगति जाननेका जो नियम दिया गया है वह कुछ स्थूल है इसका कारण यह है कि ग्रहकी गति क्रान्तिवृत्ति पर नहीं होती वरन अपने कक्षावृत्त पर होती है जो क्रान्तिवृत्त से कुछ भिन्न है परन्तु इससे विशेष हानि नहीं है। यदि ग्रहका विषुवांश और कान्ति मालूम करली जांय तो विषुवांश में प्रतिदिनका जो अन्तर होता है वही कालगति होती है। विषुवांश मान लैनेपर ग्रहका कालांशभी सुविधा और शुद्धता पूर्वक जाना जा सकता है क्योंकि फिर दृक्कर्मकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इसलिए मेरी सम्मतिमें ग्रहों या तारोंका उदय अस्त और युतिकी गणना करनेके लिए ग्रहों या तारोंके भोगांशकी जगह विषुवांश के ज्ञानकी अधिक आवश्यकता है जिसकी शुद्ध शुद्ध जानकारी अर्वाचीन ज्योतिष सिद्धान्त और यन्त्रोंकी सहायतासे ही हो सकती है। इस बातके लिए आवश्यकता है कि एक वेधशाला की जहां हमारे ज्योतिषी ग्रहों और तारोंका वेध करके इनके स्थानों और मूलाङ्कोंका ठीक ठीक पता लगा सकें।

तारों के परम कालांश—

स्वात्यगस्त्यमृगव्याध चित्रा ज्येष्ठाः पुनर्वसुः
अभिजिद् ब्रह्महृदयं त्रयोद शभिरंशकैः ॥१२॥
हस्तश्रवण फाल्गुन्यः श्रविष्ठा रोहिणीमघाः।
चतुर्दशांशकै दृश्या विशाखाश्विनि दैवतम् ॥१३॥
कृत्तिकामैत्र मूलानि सार्पं रौद्रर्क्षमेव च।
दृश्यन्ते पञ्चदशभिराषाढा द्वितयं तथा ॥१४॥
भरणीतिष्य सौम्यानि सौक्ष्म्यानि त्रिःसप्तकांशकैः।
शेषाणि सप्तदशभिर्दृश्यादृश्यानि भानितु ॥१५॥

अनुवाद—(१२) स्वाती, अगस्त्य, मृगव्याध या लुब्धक, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित् ब्रह्म हृदय तारोंके परम कालांश १३ हैं। (१३) हस्त, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी धनिष्ठा, रोहिणी, मघा विशाखा और अश्विनीके परम कालांश १४ हैं। (१४) कृत्तिका, अनुराधा, मूल आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़, और उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंके परम कालांश १५ हैं। (१५) सूक्ष्म होनेके कारण भरणी, पुष्य और मृगशिराके परम कालांश २१ हैं। इससे अधिक होनेपरवे दृश्य और कम होने अदृश्य होते हैं। अन्य शेष नक्षत्रोंके परम कालांश १७ हैं।

विज्ञान भाष्य—१५ वें श्लोकमें जिन शेष नक्षत्रोंके लिए संकेत है वे वही हैं जिनकी चर्चा नक्षत्र ग्रहयुत्यधिकारमें हुई है परन्तु जिनके नाम यहां नहीं दिये गये हैं। तारोंके इन कालांशोंसे यह भी प्रकट होता है कि हमारे आचार्योंके मतसे कौन तारा चमकमें किस श्रेणीका है। चमकमें प्रथम श्रेणीके तारे १२ वें श्लोकोंमें दिये गये हैं जिनके कालांश १३ हैं दूसरी श्रेणीमें वे तारे आते हैं जो १३ वें श्लोकमें दिये गये हैं और जिनके कालांश १४ हैं। तीसरी श्रेणीके तारे १४ वें श्लोकमें लिखे गये हैं। जिनके कालांश १५ हैं। इनके सिवा १५ वें श्लोकमें जो तारे आये हैं उनकी श्रेणीका ठीक ठीक पता नहीं लगाया जा सकता।

आजकल चमकके अनुसार तारोंका विभाग बहुतही सूक्ष्म रीतिसे किया जाता है।

अंधेरी रातमें बिना किसी यन्त्रकी सहायताके तेज आँख वाले मनुष्य सारे आकाशमें जितने तारे देख सकते हैं उनकी संख्या ६००० से अधिक नहीं है। इन ६ हजार तारोंको ६ श्रेणियों (magnitudes) में विभक्त किया गया है। इन श्रेणियोंका विभाग इस प्रकार किया गया है कि प्रथम श्रेणीका कोई विशेष तारा छठीं श्रेणीके किसी विशेष तारेसे चमकमें १०० गुना होता है। इससे यह फल निकलता है कि किसी श्रेणीका तारा अपने नीचे वाली श्रेणीके तारसे २.५११६ गुना चमकीला होता है अर्थात् १ली श्रेणीका तारा २री श्रेणीके तारेसे २.५११६ गुना चमकीला होता है, दूसरी श्रेणी वाला तारा तीसरी श्रेणी वाले तारेसे २.५११६ गुना चमकीला होता है परन्तु पहली श्रेणी वाला तारा तीसरी श्रेणी वाले तारेसे २.५११६ × २.५११६=६.३०६६ गुना चमकीला होता है इत्यादि यह तो हुई उन तारोंकी बात जिन्हें तेज आँख वाले बिना किसी यन्त्रकी सहायताके देख सकते हैं। दूरदर्शक यन्त्रसे १५वीं। श्रेणी तकके तारे देखे गये हैं। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि जो तारे एक श्रेणीमें हैं वे भी सब समान चमक के नहीं हैं। पहली श्रेणीमें जो तारे रखे गये हैं उनकी संख्या २० से अधिक नहीं हैं परन्तु इनमें सबसे अधिक चमकीला लुब्धक है। उसके बाद अगस्त्य का नम्बर आता है। इन दोनोंकी चमकमें भी इतना अन्तर है कि कोई भी सहज ही देख सकता है। इसलिए अधिक सूक्ष्म गणना करनेके लिए प्रत्येक श्रेणीमें दस और विभाग किये गये हैं यह तो प्रकट है कि तारेकी चमक जितनी हो अधिक है उसकी श्रेणीकी क्रम संख्या उतनो ही छोटी है इसलिए प्रथम श्रेणीके सबसे चमकीले तारे लुब्धककी श्रेणी ऋणात्मक और १-४ है और इसकी चमक ९-१ मानी गयी है। श्रेणी और चमक का समाया नीचे की सारिणी*से सहज ही समझमें आ सकता है:—

६ठीं श्रेणीके	तारेकी	चमक	=	१	
५वीं	”	”	”	=	२.५ गुनी
४थी	”	”	”	=	६.३ ”
३री	”	”	”	=	१५.८ ”
२री	”	”	”	=	३९.६ ”

*सर नारमन लाकयरके (Elementary Lessons in astronomy) पृष्ठ १० से उद्धृत।

१ली " " " = १०० "

१ली श्रेणीके सबसे चमकीले तारे लुब्धककी चमक } = ४०० "

सूर्यकी चमक = ६४०००००००००००० गुनी

किसी तारोंकी चमक सदैव एकसी नहीं रहती इसलिए पुरानी और नयी पुस्तकों में प्रथम श्रेणीके २० तारोंके क्रममें भी दो चार जगह भिन्नता हो गयी है। इस भिन्नताका कारण यह भी है कि चमक परखनेकी कसौटी भी पहले कुछ स्थूल थी और अब सूक्ष्म हो गयी है। इस बातका पता नीचेकी सारणी† से चलेगा :—

नाम	श्रेणी	चमक	नयीश्रेणी
सूर्य	—२६.५		
पूर्ण चन्द्रमा	—१२.०		
शुक्र	— ३.०	३६.८	
लुब्धक α canis majoris, sirius	— १.४	६.१	– १.५८
अगस्त्य α Arguo, canopus	— ०८	५.२	—·.८६
ब्रह्म हृदय α Aurigae, capella	०.१	२.३	०.२१
स्वाती α Bootis, Arcturus	०.२	२.१	०.२४
and centauri ...	०.२	२.१	०.०६
अभिजित α Lyrae, Vega	०.२	२.१	०.१४
β Orionis, Regel ...	०.३	१.६	०.३४
α Eridani, Acherrar ...	०.४	१.७	०.६०
प्रश्वा α canis minoris, ...	०.५	१.६	०.४८
β centauri	०.७	१.३	०.८६
α orionis, Betelyuese ...	०.६	१.१	परिवर्त
α crucis	०.६	१.१	शील
श्रवण α aquilae, Altair ...	०.६	१.१	०.८६
रोहिणी α tauri, Aldeboran	१.०	१.०	१.०६
चित्रा α Virginis, spica ...	१.१	०.६	१.२१

† देखो The Twentieth Ceutury Atlas of Popular astronomy by Heath, second edition pp. 112

यह १६२६ ई० के Nautical almanac अनुसार है।

नाम	श्रेणी	चमक	नयीश्रेणी
पुनर्वसु α Gernimorum, Pollux	१.२	०.८	१.२१
ज्येष्ठा α scorpii, Antares	१.२	०.८	१.२२
मघा α Leonis, Regulus	१.३	०.८	१.३४
कुम्भज α Piscis Australis, Fomalhout	१.३	०.८	१.२९
α cygni, Deneb ...	१.४	०.७	१.३३

पूर्ण चन्द्रमासे सूर्य ६३१००० गुना चमकीला है। चौथे स्तम्भमें जो नयी श्रेणी दी गयी है उससे प्रकट होता है कि कई तारोंके क्रममें अन्तर पड़ गया है। इसके अनुसार अगस्त्य-के बाद (centauri) और अभिजित आते हैं न कि ब्रह्म हृदय जैसा कि पुरानी श्रेणीमें दिखलाया गया है। इसी प्रकार अन्य तारोंके समन्धमें भी समझ लेना चाहिए।

गतगम्यदिन जाननेकी २ रीति—

अष्टादशशताभ्यस्ता दृश्यांशाः स्वोदयासुभिः ।
विभज्यलब्धाः क्षेत्रांशास्तैर्दृश्यादृश्यताथवा ॥१६॥

अनुवाद—(१६) अथवा दृश्यांश (कालांश) को १८०० से गुणा करके राशिके लग्नासुओंसे भाग देनेसे जो क्षेत्रांश, (भोगांश) आवें उससेभी या अदृश्य दृश्य होनेका दिन जाना जा सकता है।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १० वें और ११ वें श्लोकोंमें बतलाये हुए नियमका विलोम है। वहां कालांशांतर दैनिक काल गतियोंके अन्तरसे भाग देनेको कहा गया है और यह बतलाया गया है कि दैनिक गतिसे दैनिक कालगति कैसे जानी जा सकती है। यहां दैनिक काल गति जाननेकी आव-श्यकता नहीं वरन् कालांशांतर कोही क्रान्ति तृतीय भोगां-शान्तरमें बदलनेके लिए बतलाया गया है। इसलिए इसकी उपपत्ति वही है जो वहां बतलायी गयी है। यदि यह श्लोक ११ वें श्लोकके बाद दिया गया होता तो अधिक उपयुक्त होता क्योंकि इसका सम्बन्ध १५ वें श्लोकसे तो बहुत कम है।

तारोंका उदय अस्त जानना—

प्रागेषामुदयः पश्चादस्तो दृक्कर्म पूर्ववत् ।
गतैष्य दिवसप्राप्तिर्भानुभुक्त्या सदैव हि ॥१७॥

अनुवाद—(१७) तारोंका पूर्वमें उदय और पश्चिममें अस्त होता है। तारोंका आद्य दृक्कर्म संस्कार। पहलेकी तरह करना चाहिए और उदयास्तका गत-गम्य दिन जाननेके लिए सूर्य की ही गति से काम लेना चाहिए।

क्रमशः

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)
—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)
—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)
६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)
९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... =)
१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)
११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)
१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)
१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० ... बी०के मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥
१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १।
१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

भाग १ ... ... २॥)
भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)
भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)
वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)
वैज्ञानिक कोष— ... ... ॥)
गृह-शिल्प— ... ... ।)
खादका उपयोग— ... ... ।)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—पूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces an Central Provinces for use in Schools and Libraries

पूर्ण संख्या—१६६ Reg. No. A.708

भाग २८ Vol. 28. मकर १९८५ संख्या ४ No. 4

जनवरी १९२९

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २८ | मकर संवत् १९८५ | संख्या ४

वनस्पतियोंमें गर्भाधान-क्रिया
तथा
बीज और फल

(ले० श्री पण्डित शङ्कर राव जोशी, डिप्. ए. जी.; एफ-आर. एच. एस.)

फूलकी जननेन्द्रिय पर लिखते समय पुंकेसर और स्त्रीकेसर का वर्णन कर आये हैं। नर और मादा फूलों पर भी बहुत कुछ लिख आये हैं। पराग और कलल पर भी लिखा जा चुका है। अब यहाँ गर्भाधान क्रिया पर लिखा जायगा।

पराग और रज-कण का संयोग होने पर, गर्भाशयमें जितने भी परिवर्त्तन होते हैं, उन पर विस्तार पूर्वक लिखनेके लिए यहाँ स्थान नहीं है। इसलिए संयोगके बाद होने वाले परिवर्त्तनों पर कुछ भी विचार न करके गर्भधारण पर ही विचार किया जायगा। किन्तु इससे पहिले पौधे की सन्तानोत्पत्ति की रीति पर कुछ लिखना अप्रासंगिक न होगा।

इस भूमण्डल पर, क्या प्राणी और क्या वनस्पति, सभी अपने वंश-विस्तार का कार्य करते रहते हैं। मनुष्य को छोड़ कर शेष सब प्राणियों और वनस्पतिके जीवन का एक मात्र उद्देश वंश-विस्तार ही है। वनस्पति का वंश-विस्तार कई प्रकारसे होता है—१ बीजसे, २ तना, शाखा, पत्ता आदिको बोकर और ३ संकरी करण द्वारा। अंतिम दो कृत्रिम उपाय हैं। बीज-द्वारा वंश-विस्तार का तरीका उत्तम है।

पराग-कण और रजोबिन्दु का संयोग होने पर गर्भधारण होता है और तब बीज पैदा होता है।

कीट-पतङ्गादि ही संयोग कराते हैं। यह संयोग दो प्रकार से होता है। जब किसी फूलके पराग-कण उसी फूलके योनिछत्र से संयुक्त होकर गर्भधारणा होती है, तो इस विधिको 'आत्म सेचन' कहते हैं। यदि एक फूल का पराग वायु, जल या कीट-पतङ्गादि द्वारा दूसरे किसी सजातीय पुष्पके योनिछत्र तक पहुँचाया जाता है, तो इस प्रकार की संयोग विधि को 'पर सेचन' कहते हैं।

जिन पौधोंके फूल छोटे, सुगन्धहीन, मधुरहित और आकर्षक नहीं होते हैं; उन्हींमें आत्म-सेचन द्वारा गर्भाधान होता है। फूलोंकी विशेष रचनाके कारण भी आत्म-सेचन आवश्यक हो जाता है। कुछ फूलोंमें पुंकेसर और स्त्रीकेसरकी रचनाके कारण आत्म-सेचनकी क्रिया सम्पन्न हो जाती है। किन्तु वनस्पति-संसारमें अनेक पुष्प ऐसे हैं, जिनमें पर-सेचन होना अनिवार्य्य है। इन फूलोंके अवयवोंकी रचना, फूलके ऋतु पर आने का समय, परागके पकने का समय, आदिकी भिन्नता के कारण आत्म-सेचन असम्भव हो जाता है। उभयेन्द्रिय फूलोंमें भी पर-सेचन द्वारा ही गर्भाधान होता है। कुछ उभयेन्द्रिय पुष्प ऐसे भी हैं जिनमें उसी फूलके परागसे संयोग हो जाने पर भी गर्भधारणा नहीं होती। कुछ पुष्पोंमें आत्म-सेचन असम्भव तो नहीं है किन्तु पर-सेचन लाभदायक पाया गया है।

कीट-पतङ्गादि द्वारा संयोग उन्हीं फूलोंमें होता है, जो रंग विरंगे, खुशबूदार और मधुयुक्त होते हैं इन फूलोंकी रचना ही ऐसी होती है कि कीट-पतङ्ग द्वारा संयोग होनेमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं पहुँचती। मधु-कोष फूलकी तलीमें ऐसे स्थान पर रहता है कि वहाँ तक पहुँचने में कीट-पतङ्गकी देह पर पराग-कण लग जाते हैं या दूसरे फूलों पर से लाया हुआ पराग, रज-पात्र पर जा-लगता है। कीट-पतङ्ग द्वारा गर्भाधान सजातीय पुष्पों में ही होता है। विजातीय पुष्पोंमें यह क्रिया सम्पन्न ही नहीं हो सकती है।

कीट-पतङ्ग द्वारा संयोग

कुछ फूलोंमें स्त्रीकेसर और पुंकेसर जुदे जुदे फूलोंमें होती है। कुछ पौधोंमें नर और मादा फूल भिन्न भिन्न व्यक्तियों पर होते हैं। कुछ पौधोंमें पराग कणके झड़ने के बहुत पहिले या बाद को स्त्रीकेसर ऋतु पर आती है जिससे आत्म-सेचन नहीं हो सकता है। ऐसे फूलोंमें वायु, कीट-पतङ्ग द्वारा ही संयोग होता है।

सूरजमुखी आदि फूलोंमें रेतपात्र पहले पकता है और रजपात्र बादमें। केतकीकी जातिके पौधोंमें पराग कण बहुत बादको छोड़े जाते हैं, और रज-पात्र पहले पक जाता है। भिंडी आदि कुछ पौधोंमें स्त्री केसर लम्बी और नर केसर छोटी होती है। राई, सरसों, आलू, तमाखू, आदिके फूलोंमें स्त्री केसर पहिले ऋतु पर आती है और पुंकेसर बहुत बादमें और इन्हीं कारणोंसे पर-सेचन द्वारा गर्भाधान होता है।

अब यह दिखाया जायगा कि कीट पतंगादि द्वारा संयोग किस प्रकार होता है।

रङ्ग सुगंधि आदिके द्वारा कीट-पतङ्गादि फूलकी ओर आकर्षित होते हैं। मधु और पराग खानेके लिये भी कीट पतङ्गादि फूलों पर जाकर बैठते हैं।

कीड़ेकी देह परके रोएं आदि स्थान ऐसे हैं, जिनमें पराग लग जाती है। शहद और परागके लिए कीड़े फूलके अन्दर घुसते हैं, जिससे उनके शरीरका कोई भाग रेत-पात्रसे छू जाता है और पराग-कण उसपर झड़ जाते हैं। जब कीड़ा दूसरे फल पर जाता है, तो यही पराग उस फूलके रज-पात्र पर लग जानेसे संयोग हो जाता है।

विद्यार्थियोंकी जानकारीके लिए कुछ फूलोंकी संयोग क्रिया पर संक्षेप में विचार करना अप्रासङ्गिक न होगा।

भिण्डी, कपास आदिके फूलोंको देखिये। पुंकेसरोंके मिल जानेसे फूलके बीचमें एक नलीसी नज़र आती है; जिसके बीचमें से स्त्रीकेसर बाहर

निकली रहती है। एक फूल परसे पराग कण लेकर ज्योंही कीड़ा दूसरे फूल पर बैठता है, उसकी देह परके पराग-कण रज-कोषसे चिपट जाते हैं, जिससे संयोग हो जाता है।

पोस्तके फूलमें शहद नहीं होता है; किन्तु पराग बहुत ज्यादा होती है। फूलकी पंखुड़ियाँ नाजुक होती हैं, किन्तु स्त्रीकेसर काफी मजबूत होती है। दूसरे फूलसे पराग लेकर आया हुआ कीड़ा स्त्री-केसर पर बैठ जाता है, जिससे पर आदि पर लगे हुये पराग कण, रज-पात्र पर जा गिरते हैं।

सेम, मटर, चना, मसूर, मूँग आदिके फूल टेढ़े और खुले हुए मुखके समान होते हैं। इनमें दस पुंकेसर होती हैं। एक पुंकेसर स्त्री केसरसे चिपटी रहती है। इसकी जड़में मधु रहता है। शेष नौ स्त्री केसर इस प्रकार जुड़ी रहती हैं कि स्त्री केसर को पूर्णतया ढक लेती हैं। मधुलोभी कीट मधुपानके लिए आगे बढ़ता है। कीड़ेकी देहके वजनके कारण स्त्री केसर आगे निकल कर उसकी देहसे छू जाती है; जिससे संयोग हो जाता है।

करौंदा, गुल फिरंगी आदि फूलोंमें मधुकोष स्त्री केसरकी जड़के पास होता है। रज-कोषके चपटे भाग पर रेत पात्र लटकता रहता है, जिससे पराग-कण रजकोषके चपटे भाग पर पड़ते हैं। कीट-पतङ्गादि—मधुपान करनेके लिए वीर्य-कोषोंके बीचकी जगहमें से अपनी जीभ डालते हैं। ऐसा करनेसे उनकी जीभ पर लगे हुए पराग-कण रज-पात्र पर लग जाते हैं और मधुकोषमें से जीभको निकालने पर जीभ पर पराग-कण लग जाते हैं, यह पराग कण दूसरे पुष्पके रजपात्र पर लगते हैं और संयोग हो जाता है।

पवन द्वारा संयोग

मधु-सुगंध और रंग रहित फूलोंमें पवन द्वारा ही संयोग होता है। ये फूल आकर्षक भी नहीं होते हैं। गेहूँ, जौ, धान, घास आदिके फूल ऐसे ही हैं। इन फूलोंकी पुंकेसर बाहरको लटकी रहती है। फूलोंमें पराग भी बहुत ज्यादा होता है और रज-पात्र बड़ा और रोएँदार होता है। पवनके साथ उड़ने वाले पराग कण सुगमता पूर्वक रज-पात्र पर जा गिरते हैं, जिससे संयोग हो जाता है।

आत्म-सेचन

पौधेमें आत्मसेचन भी भिन्न भिन्न प्रकारसे सम्पन्न होता है। जिन फूलोंमें स्त्री केसर और पुंकेसर एक ही फूलमें रहती हैं और पुंकेसर स्त्री केसरसे लम्बी होती है एवम् साथ ही पकती है, उनमें संयोग सरलता पूर्वक हो जाता है। कुछ फूलोंमें पकने पर रेत-पात्र भीतरकी ओर को झुक जाता है और पका हुआ रज-पात्र, रेत-कोषकी ओर को झुक कर उनसे छू जाता है, जिससे संयोग हो जाता है।

तिल, लाल मिर्च आदिमें स्त्री केसर लम्बी होती है और पुंकेसर छोटी। ऐसे फूल नीचेकी ओरको झुके रहते हैं, जिससे पराग कण रेत-पात्रसे छूटते ही रज कोष पर जा गिरेंगे। सत्यानाशी आदि कुछ फूलोंमें स्त्री केसर नर-केसरसे लम्बी होती है; किन्तु वे नीचेकी ओर को नहीं झुके रहते। इस प्रकारके फूलोंमें दूसरीही रीतिसे संयोग होता है। रेत-पात्रके पक जानेपर पराग कण पँखुड़ियों पर गिर जाते हैं। रातको फूलकी पँखुड़ियाँ सिकुड़ जाती हैं, जिससे पंखुड़ियों पर लगे हुए पराग कणोंका रज-पात्रसे संयोग हो जाता है।

गर्भाधान

रज पात्रके चिपचिपा होनेके कारण पराग कण योनि पात्र पर चिपक जाते हैं। संयोग होने पर रज पात्र द्वारा छोड़े हुए लसदार द्रव पदार्थसे परिपोषित होकर पराग-कणसे एक नलिका निकलती है, जो रज-पात्रकी नलिका रूप डंडीके अंदर प्रवेश करके गर्भाशयकी ओरको बढ़ने लगती है। यह रज-पात्रकी डंडीमें से ही भोजन ग्रहण करती है। गर्भाशयमें पहुँचने पर यह रजोबिन्दुके

रज-कीटाणु से संयुक्त हो जाती है और इसे ही गर्भाधान या गर्भ स्थिति कहते हैं।

कुछ पौधोंमें संयोग होनेके कुछ ही घण्टे बाद गर्भ रह जाता है। किन्तु कई पौधोंमें कई दिन या हफ्ते लग जाते हैं। कुछ फूलोंमें तो संयोग हो जाने के कई हफ्तों बाद गर्भ रहता है। गर्भ रहने का समय पौधेकी जाति पर निर्भर करता है। योनि सूत्रकी लम्बाई का इस पर कुछ भी असर नहीं पड़ता। कार्कस नामक पौधेमें जिसके योनि-सूत्र की लम्बाई चार इंच होती है, ७२ घण्टे के भीतर ही गर्भ रह जाता है। घुइया का योनि सूत्र $\frac{1}{16}$ इंच लम्बा होता है, किन्तु कमसे कम पाँच दिन बाद गर्भ रहता है। आर्चिड नामक पौधेमें संयोग होने के कई हफ्ते और महीनों बाद गर्भ रहता है।

गर्भ रह जाने पर गर्भ-कोषमें परिवर्त्तन होने लगता है और धीरे धीरे उसमें गर्भ-भोज्य इकट्ठा हो जाता है। यह सबका सब गर्भ भोज्य केवल गर्भ की वृद्धिमें ही खर्च नहीं होता है; बीजके अंकुरित होने पर वह प्रारम्भिक पौधेके काममें भी आता है।

एक-पत्रक और बहुतसे द्विदल जातिके पौधोंमें गर्भ बहुत छोटा होता है और वह अलग रहता है यह गर्भ-भोज्यसे ढका रहता है या उसके पास ही स्थित रहता है। कुछ द्विदल-जातिके पौधे ऐसे भी हैं, जिनके बीज-दल गर्भभोज्यकी जगहमें फैल जाते हैं और वे स्वयं भोज्य पदार्थ का स्थान ग्रहण कर लेते हैं।

बीज और फल

गर्भाधान पर विचार करते समय लिख आए हैं कि संयोग होने पर पराग-कणमें का जीवाणु बढ़ कर स्त्री केसरकी डंडीमें होकर बीज मूलसे जा मिलता है; जिससे गर्भाधान हो जाता है। गर्भाधान हो जाने पर बीज कोष्ठके सब भागोंके रूप, रंग और आकारमें परिवर्तन होने लगता है और समय पाकर कलल बीजके और गर्भाशय फलके रूपमें बदल जाते हैं।

बीजमें दो मुख्य भाग होते हैं—१ ऊपरका छिलका और २ मींगी। पके हुए बीजके ऊपर का छिलका कड़ा होता है। कुछ बीजोंमें यह छिलका मींगीसे चिपटा रहता है और कुछमें अलग रहता है।

पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए गर्भाशयकी भीत्तिकाको आच्छादन या छिलका कहते हैं। इस आच्छादनमें तीन तहें होती हैं—१ ऊपरकी तहको बाह्याच्छादन २ बीचकी तहको मध्याच्छादन या फलका गूदा और ३ भीतरकी तहको अन्तराच्छादन कहते हैं। बेरके फलको देखिये—ऊपरका छिलका बाह्याच्छादन है, इसके नीचेका गूदा जो खाया जाता है, मध्याच्छादन है और गुठली अंतराच्छादन है। कई फलोंमें मध्याच्छादनका अभाव रहता है। इन फलोंके छिलकेमें सिर्फ दोही तहें होती हैं—ऊपर का छिलका और मींगी। कुछ फलोंमें ऊपरका छिलका मींगीसे चिपका रहता है और कुछ फलोंमें जुदा रहता है।

बीजकी मींगीमें गर्भ और उसका आहार रहता है। गर्भ-भोज्यके संबंधमें पहिले लिख आये हैं।

फल

गर्भ-कोषमें पराग-कोष और कललके मिलने पर कललही बीज बन जाता है। किन्तु गर्भाशयमें यही परिवर्तन नहीं होता है। गर्भाधानके बाद, गर्भाशयके अलावा फूलके दूसरे भागोंमें भी परिवर्तन होने लगता है और वृद्धि और परिवर्तनके बाद ये फल बन जाते हैं। गर्भनाल बदल कर कड़ा छिलका बन जाता है और पुष्पका आधार फूलकर रसयुत या गूदेदार हो जाता है।

स्त्री केसर और उससे सम्बन्ध रखने वाले बीज-कोष्ठों पर ही, फलकी बनावट निर्भर करती है। यदि स्त्री केसरसे अनेक बीज-कोष्ठोंका सम्बन्ध होता है, तो प्रत्येक बीज-कोष्ठ एक जुदा फल बन जाता है।

नासपातीके फूलका आधार परवर्तित होकर योनि-नलिकाको पूर्ण रूपसे घेर लेता है। अंजीर का फलभी मांसल स्तंभक है जिसमें फूल रहते हैं। स्त्री-पुष्पकी पकी हुई योनि नलिका छोटे छोटे बीजों जैसे रूपमें फलके अंदर मौजूद रहती हैं। अननास और शहतूतमें फूलके अनावश्यक अंग परिवर्तित होकर माँसल हो जाते हैं। अंजीर, अननास, शहतूत आदिमें सारा का सारा पुष्प व्यूह मिलकर संयुक्त-फल बनाता है।

अकसर, गर्भाधानके बाद गर्भाशयको छोड़कर फूल के शेष सब अंग गिर पड़ते हैं। कभी कभी पुटचक्र नहीं गिरता और फलके चारों ओर मौजूद रहता है। गर्भाधान होनेके बाद गर्भाशयमें बहुत कुछ परिवर्तन होते हैं; जिससे कुछ कोष्ठ और कुछ कलल नाम शेष हो जाते हैं और कुछ परिपुष्ट ही नहीं होते।

फलका बाहिरी छिलका कई प्रकारका होता है। सेम, मटर आदिमें यह महीन झिल्ली जैसा होता है। सुपारी, माजूफल आदिमें छिलका कठीला, गूजबेरीमें रसदार और नारंगीमें चमड़े जैसा होता है।

फल दो प्रकारके होते हैं—१ शुष्क (गूदे रहित) २ गूदेदार या माँसल या रसदार। इन दोनोंमेंसे प्रत्येकमें दो दो उपभेद हैं। स्फोटी यानी पकने पर फटने वाले और अस्फोटी अर्थात् न फटनेवाले ये ही दो उपभेद हैं।

जब एक ही फूलके जुदे जुदे कोष्ठ पकने पर मिलकर एक फल बनाते हैं, तो उसको फल-संघ कहते हैं। जब बहुतसे फल एक ही डंडी पर गुच्छे के रूपमें लगे होते हैं, तो उसे फल राशि कहते हैं।

शुष्क और अस्फोटी फल—शुष्क और अस्फोटी फल वे कहाते हैं, जिनकी त्वचा सूखी, कठीली और चरमल होती हैं। इनका वर्णन नीचे दिया जाता है :—

एक बीजकफल छोटे, एक बीजवाले, और अस्फोटी होते हैं। इनकी त्वचा पतली और चरमल होती है। बीज फलके अन्दर स्वतंत्रतासे पड़ा रहता है। यथा गुलाब और स्टाबेरीके एकबीजक। कुछ फूलों पर रोएँ या पर होते हैं, जिनकी सहायता से ये हवामें उड़ते रहते हैं। यथा साल, आक, सूरजमुखी।

पूगी फलकी जातिके फलोंमें एक ही बीज होता है। इसकी त्वचा अस्फोटी, सख्त और सूखी कठीली होती है। त्वचा पर झिल्लीदार आवरण चढ़ा रहता है, जो वृन्त-पत्रसे बना होता है। वे दो तीन बीज-कोष्ठोंके संयुक्त होनेसे बने होते हैं। फलमें एक कोष्ठ और एक बीज रह जाता है। शेष सब कोष्ठ और बीज नाम शेष हो जाते हैं। यथा नारियल, बादाम, सुपारी।

घास और धान्य-वर्गके फल भी इसी भेदमें शामिल हैं। ये भी एकबीजक ही हैं। इसका बीज फलके अन्दर त्वचा या बाह्यावरणसे जुड़ा रहता है। पकने पर बीज ही फल बन जाता है।

गोमा, तुलसी, एलम आदिके फल भी इसी वर्गमें शामिल हैं। एक ही फूलमें कई बीज-कोष्ठ होते हैं; और वे एक दूसरेसे जुड़े हुए होते हैं। किन्तु फलके पकने पर हर एक कोष्ठ फटकर दूसरेसे जुदा हो जाता है। यदि ये कोष्ठ एक ही अक्ष पर लटके रहें, तो फल इस भेदका माना जाता है। यथा कपास, रेंडी।

कुछ फलोंकी मिली हुई गर्भ-नलिकाएँ पकने पर स्वयं फटकर जुदी हो जाती हैं। किन्तु बीज फलसे बाहर नहीं निकलते। इस फलमें ज्यादा बीज होते हैं, जो अस्फोटी हैं—यथा, गाजर।

शुष्क और स्फोटीफल—(१) एक-स्फोटी फल सूखा, कई बीजवाला, फली जैसा होता है। यह एकही संधि या जोड़-रेखाके बल फटता है, यथा—आक और बछनागके फल। (२) सूखे और कई बीजवाले फलको, जो फली कहाता है—उभय स्फोटी कहते हैं। यह फल दोनों किनारोंसे फटता है और बीज छिलकेमें लगे रहते हैं, यथा—सेम,

मूँग, अरहर, भाँग, मटर, लोबिया, ढाक आदि। (३) विन्दु-स्फोटी एक लम्बा फल है, जो उभय-स्फोटी है। इसके बीज छिलकेसे नहीं लगे रहते हैं। फलीके बीजमें एक पतली झिल्ली रहती है; इसी पर बीज लगे रहते हैं। यह दो मिली हुई गर्भ नलिकाओंसे बना होता है। राई, सरसों, शलगम, बंदगोभी, मूली, चौलाई आदिके फल विन्दु-स्फोटी ही हैं। चतुर्दल फूलवाले पौधोंके फल ऐसे ही होते हैं। (४) एक दूसरे प्रकार की फली होती है, जिसके दो बीजोंके बीचमें एक महीन परदा होता है, जिससे फली कई भागोंमें बट जाती है। इमली और चन्दनकी फली इसके उदाहरण हैं। (५) एक या उससे अधिक कोष्ठवाले सूखे और स्फोटी फल डोंड़ा कहे जाते हैं। इन फलोंमें बीज ज्यादा होते हैं। इनके फटनेका तरीकाभी कई प्रकारका होता है। कुछ लम्बाईमें और कुछ चौड़ाईमें फटते हैं और कुछमें छिद्र हो जाते हैं। यथा भिंडी, कपास, गुड़हर, पोस्त आदि। केला और रेड क्लोवरके फलभी इसी भेदके हैं, जो समानान्तर पर फटते हैं और जिनका ऊपरका हिस्सा टोपीकी तरह अलग हो जाता है।

रस या गूदेदार फल

रस या गूदेदार फल प्रायः पकने पर नहीं फटते। ये फल पूरे रसदार या गूदेदार होते हैं। और बीज मुलायम भाग या कड़े छिलकेके अन्दर पाया जाता है। इनको गुठली वाले फल कहते हैं। गुठली वाले फलोंके कुछ भेदों पर यहाँ विचार किया जाता है।

१ आम, बेर, जामुन आदि कुछ फलोंके बीचमें बीज रहता है, जिसके चारों ओर एक कड़ा छिलका रहता है। इस कड़े छिलके वाले बीजको ही गुठली कहते हैं। इस गुठलीके चारों ओर गूदा होता है। इन फलोंमें एकही बीज होता है। इस प्रकारके बीज अस्थिल कहे जाते हैं। अस्थिलमें कभी कभी दो बीज होते हैं। बादाम भी अस्थिल है। इसका मध्याच्छादन सख्त होता है और अंतराच्छादन खाया जाता है। नारियलका मध्याच्छादन रेशेदार होता है। नारियलकी गिरी गर्भ भोज्य है।

२ पोम फल वे कहे जाते हैं, जो कोमल बीज कोष्ठोंके मिल जानेसे और उनपर पुष्पाधारके लिपट जानेसे बनते हैं। सेब, नासपाती, अमरूद आदि इसके उदाहरण हैं।

३ नींबू, नारंगी, खीरा, ककड़ी, फूट, अंगूर आदि फल निरस्थिल कहाते हैं। इनके मध्याच्छादन और अन्तराच्छादन बिलकुल मिले रहते हैं। बीज गूदेमें स्थित रहते हैं। इन फलोंमें छोटे छोटे कई बीज होते हैं। खीरा, ककड़ी, खरबूजा आदि एक गर्भ-कोष्ठ वाले फल हैं; किन्तु गर्भ कोष्ठका जीवन तल तीन भागोंमें विभक्त रहता है। बीज जीवन तलमें लगे रहते हैं।

नारंगी नीबू आदि फल कई बीज-कोष्ठोंके मिल जानेसे बनते हैं। जीवन-तल इन कोष्ठोंके मध्यमें होता है। नारंगीकी फाँकें जीवन तल पर जुड़ी रहती हैं। बीज फाँकोंके अंदर रहते हैं। छुहारा, अंगूर, केला, टमाटर, बैगन आदि एक प्रकारके-निरस्थिलही हैं। इनके बीज गूदेमें लगे रहते हैं। छुहारा गुठली वाला फल नहीं है। कारण कि, बीज परका कड़ा छिलका भीतरके बीजका छिलका है, न कि अन्तराच्छादन। जंगली केलोंमें बीज होते हैं। बगीचेमें बोये जाने वाले केलोंमें नहीं होते। रसभरी, ब्लैक बेरी, चम्पे की कली, मदन मस्तके फल आदि फलसंघके उदाहरण हैं।

शहतूत पर जो छोटे छोटे दाने दिखाई देते हैं, वे जुदे जुदे फलोंकी योनियाँ हैं। पुट ही रसमय हो गया है। अक्ष, अक्षकोणीय फूल और वृत्त-पत्रके मिल जानेसे ही अननास का फल बनता है। कलम द्वारा वंश-विस्तार किया जाता रहा है, जिससे इसके बीज नाम शेष हो गए हैं।

फलकी व्याख्या—ऊपर भिन्न भिन्न प्रकारके फलों पर विचार कर आये हैं किन्तु यह नहीं बत-

लाया गया है कि फल किसे कहते हैं। बोलचाल की भाषा में फल शब्द बहुत ही व्यापक अर्थमें प्रयोग किया जाता है।

संयोग होनेके बाद गर्भ रहते ही मुकुट और पुंकेसर गिर जाते हैं। कभी कभी पुट-पत्र भी गिर जाते हैं। योनि छत्र और डंडी सूख जाती है। गर्भ स्थापन होते ही गर्भाशय बढ़ने लगता है। और काफी जगह मिलने पर बीज भी बढ़ते जाते हैं। पके हुए बीजको ही पौधे का फल कहते हैं। पुष्प योनि-चक्रसे पैदा होने वाले फल ही वास्तव में फल हैं। जिस फलमें ये लक्षण नहीं पाये जायँ; वह फल नहीं कहा जा सकता। जिस फलके बनने में फूलके दूसरे अवयव भी सहायता पहुँचावें, वह झूठा फल या 'गर्भाभास फल' कहा जाता है। अननास, अञ्जीर, सेव, शहतूत आदि झूठे फलके उदाहरण हैं। टमाटर, ककड़ी आदि ही असली फल हैं।

बीज का प्रसार

पौधे अचल हैं। इसलिए प्रकृतिने इनके बीजों को दूर दूर तक फैलानेका उत्तम प्रवन्ध कर दिया है। मातृ पौधेके आसपासकी जमीन पर गिरनेसे प्रकाश आदिकी कमीके कारण बहुत कम बीज उग पाते हैं। यदाकदाचित् दो चार बीज उग भी आते हैं, तो वे पनपने नहीं पाते, क्योंकि जिस जमीन पर ये बीज गिरे हैं, उसमेंके भोजनको मातृ-पौधेकी जड़ों ने ग्रहण कर लिया है। यही कारण है कि काफी खूराक न मिलनेके कारण पौधा शीघ्रही मर जाता है। इसलिये नस्ल और जातिको कायम रखनेके लिये प्रकृति ने पूरा पूरा इन्तजाम कर दिया है। बीज की रचना, आकार और रंगसे इस काम में अच्छी सहायता मिलती है। बीजोंको दूर दूर फैलानेमें वायु, जल और प्राणियोंसे खासी मदद मिलती है।

बीजके बाहरी छिलकेका रंग सफेद, काला, चितकबरा, लाल आदि होता है। बीजोंके छिलके भी झिल्ली जैसे महीन, रोंएँदार, परदार, आदि जुदे जुदे प्रकारके होते हैं। बीजोंका आकार तथा छिलकेकी रचना भी कई प्रकारकी होती है। फलों का स्वाद, रंग आदि भी बीजोंके प्रचारमें सहायक होते हैं।

वायु द्वारा फैलाये जानेवाले बीज

जो बीज बहुत ही हलके और छोटे होते हैं, वे फलके फटते ही पवनसे उड़कर बहुत दूर जा गिरते हैं। बहुतसे बीजों पर पंख जैसे अवयव होते हैं, जिनकी सहायतासे वे हवामें उड़कर बहुत दूर तक फैलजाते हैं। साल, सुरजना, गरजन, सूरजमुखी आदिके बीजोंपर पंख होते हैं। सेमल, आक, कपास आदिके बीजों पर रोंएँ होते हैं जिससे बीज हवाके साथ उड़ कर बहुत दूर जा गिरते हैं। पोस्त, भिंडी, अम्बाड़ी आदिके फल पर डंडीसी होती है, जिससे पवन उनको झकझोर देता है और बीज फैल जाते हैं।

जल द्वारा फैलाये जानेवाले बीज

जलमें पैदा होनेवाले पौधोंके फलोंकी रचना ही ऐसी होती है, जिससे वह पानी पर तैरता रहता है। ये फल पानीके साथ बह कर जनक पौधेसे मीलों दूर जा गिरते हैं। कमल, अंजन आदि इसके उदाहरण हैं।

प्राणी द्वारा फैलाये जाने वाले बीज

प्राणी फल खाते हैं। बहुतसे फलोंके बीज छोटे और कड़े होते हैं, जो गूदेके साथ चबाये नहीं जा सकते हैं। ये बीज विष्ठा, गोबर, बीट आदिके साथ प्राणीकी देहमें से जैसेके तैसे बाहर निकल आते हैं और इस प्रकार बहुत दूर जा गिरते हैं। कई बीजोंको मनुष्य इधर उधर फेंककर फैला देता है।

कुछ बीजों पर हुक, काँटे आदि होते हैं। जब प्राणी पौधोंमें से होकर निकलता है, तो बीज

उसकी देह या कपड़े में चिपट जाते हैं और उनके साथ चले जाते हैं यथा बिच्छू, गाडर लपटी; गोखरू, अपामार्ग, वनरिया घास आदि।

बहुतसे पौधोंके फल इस ढंगसे फटते हैं कि बीज उड़कर आस पास फैल जाते हैं।

तूअर, रोहितघास, चंगेरी, गुञ्जा, उड़िद् आदिके फलोंके फटनेके समय जोरकी आवाज़ होती है, जिससे फल हिल उठता है और बीज दूर जा गिरते हैं। अंडीके फलके फटनेके समय बहुत ज़ोरकी आवाज होती है।

मटर, भिंडी, अरोठा, लोबिया आदिके फल फटने पर फली बलखा जाती है, जिससे बीज बिखर जाते हैं।

कृत्रिम तंतु

(ले० श्री व्रजविहारीलाल दीक्षित बी. एस-सी)

तंतुओंके इस समुदायमें ऐसे तंतु सम्मिलित हैं जो प्राकृतिक पदार्थों-से उपलब्ध नहीं किए जाते हैं अथवा जो प्राकृतिक पदार्थों से ही उनमें इतनी विभिन्नता पैदा करके तैयार किए जाते हैं कि वह एक नवीनही पदार्थ प्रतीत होने लगते हैं। यद्यपि ऐसे तन्तुओंकी अनेक वस्तुएं होती हैं परन्तु विशेषकर कृत्रिम रेशम ने ही ऐसे तन्तुओंकी प्रसिद्धता अपना रक्खी है। प्राकृतिक रेशमतो रेशमके कीड़ों द्वारा उपलब्ध होता है किन्तु कृत्रिम रेशमका उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह केवल रुई ही परिणत स्वरूपमें होती है। रूईको अनेकानेक रसोंमें घोलकर उनमें अन्य रसोंका प्रयोग करके अवक्षेपितकी जानेसे रूई एक ऐसा रूप धारण कर लेती है कि वह बड़ी ही कांतिमय तथा सुन्दर दीख पड़ती है और कुछ भौतिक आकृतियोंमें रेशमसे मिलती है, इसको केवल "अनुकर्णित क्षौम (रेशम)" कहनाही उचित होगा। कृत्रिम क्षौम शब्द ऐसे पदार्थोंके लिये प्रयुक्त करना वास्तवमें अशुद्ध है। अनेक उद्योग छिद्रोजके अतिरिक्त अन्य पदार्थोंसे रेशमको तैयार करनेके किए गए किन्तु कुछ अधिक सफलता प्राप्त होती प्रतीत नहीं होती है।

मारसरी तंतु (mercerised fibres)

सबसे प्रथम जो कृत्रिम तन्तु उपलब्ध किया गया वह मारसरी तन्तु है और इसीसे मारसरी वस्त्र भी बनते हैं। बहुधा देखा गया है कि क्षारोंका छिद्रोज (cellulose) पर कोई प्रभाव नहीं होता। १—२% क्षारोंके घोलसे तो १००°श पर भी कोई प्रभाव प्रतीत नहीं होता है, वरन् उससे तंतु (textile) कुछ घनिष्ट बन्धनमें अवश्य आ जाते हैं और उनमें रंगको स्वतः ही अधिशोषित कर लेनेकी शक्ति आ जाती है जिससे वे बिना ही वर्ण-वेधकोंकी सहायताके और अधिक गहरे रंग जानेमें समर्थ होते हैं। इसी प्रतिक्रियाका उपयोग वस्त्र व्यापारमें किया गया है। यद्यपि यह बात तन्तु व्यवसाय (industry) में अब महत्वकी हो गई है तथापि यह किसी वैज्ञानिक की बड़ी वैज्ञानिक तपस्याका फल नहीं है। दैवयोगसे भाग्यशाली जान मरसर जब सन् १८४४ में संपृक्त सैन्धक उदौषिदको एक वस्त्रके टुकड़ेसे छान रहे थे तो अन्तमें उन्होंने देखा कि वस्त्र चौड़ाई तथा लम्बाई दोनों ओरसे कुछ संकुचित हो गया है और उदौषिदका आपेक्षिक भार १.३० से घटकर १.२६५ रह गया था। स्पष्टतः ही कुछ उदौषिद वस्त्रके साथ रासायनिक प्रतिक्रिया करके उसमें अधिशोषित हो गया। रुईके वस्त्रोंपर क्षारोंके इस प्रभावको मरसरी करण कहते हैं।

इसके अनन्तर मरसर साहेबने इस क्रियाको अनेक प्रकारके वस्त्रोंपर अजमाया। सबका प्रथमतो वर्ण-विनाश किया और फिर उनको स्वच्छ करके सैंधक उदौषिद (२६°—२८°श) के संपृक्त घोलमें उसके क्वथनांकसे कुछ नीचेके ही तापक्रम पर डुबोया। इसमें उसे बड़ी सफलता प्राप्त हुई। क्षारको धोकर दूर कर देनेके बाद एक नवीनही प्रकारका वस्त्र तैयार

हो गया जो अधिक मोटा, अधिक एकसार और पारदर्शक था। प्रत्येक तागा चपटा बेलनकार फीता होनेके स्थानमें अधिक फूल गया था। और उसके अन्दरकी नली बिलकुल ही बन्दसी हो थी। इनकी शक्ति अधिक बढ़ गई थी। तागे पहिले की अपेक्षा अब ५०% और वस्त्र तो ७०% अधिक शक्तिशाली हो गये थे। सम्भवतः यह छिद्रोज (cellulose) के ५—६% भारके बढ़ जानेके कारणसे इतना शक्तिशाली हो जाता है। प्रथमतो छिद्रोज (cellulose) एक ऐसा पदार्थ बनाता है जिसका संकेत क₁₂ उ₂₀ ओ₁₀. सै₂ ओ, होता है; फिर जलसे विश्लेषित होकर यह एक आर्द्र क₁₂ उ₂₀ ओ₁₀ उ₂ ओ बनाता है। यह जल १००° श पर निकल जाता है किन्तु फिर वायुके संसर्गसे अधिशोषित हो जाता है। मारसरी रूईमें वर्णोंके प्रति एक विशेष आकर्षण शक्ति होती है जिससे कि वह बड़ी सरलतासे स्थायी होकर अधिक गहरे और बड़े कांतिमय दीख पड़ते हैं। वर्ण पदार्थों के प्रयोगमें भी अधिक कमी हो जाती है। इसके अनन्तर मरसरीकरणकी एक नईही विधि निकल पड़ी। यह "तनावमें मरसरी करण" की विधि है। वस्त्रलकड़ीकी चौखटोंपर तान दिया जाता है और फिर इसी हालतमें उसे मरसरीकृत करके पूर्णतः जलसे धोकर इसी स्वरूपमें शुष्क भी कर देते हैं। इस प्रकारसे वस्त्रका उल्टा पृष्ठ असाधारणतः कांतिमय तथा चमकदार हो जाता है। इसी प्रकार तागोंके लच्छे भी लकड़ीकी चौखटोंपर तने तने ही सैन्धक उदौषिदमें डुबो दिए जाते हैं। क्रियाके पूर्णहो जाने पर क्षारोंसे भली भाँति धो डाले जाते हैं, और निर्बल अम्लोंके हलके घोलमें डुबो कर शुष्क कर दिए जाते हैं। वनस्पति तन्तुओंका जमा हो जाना, उनका फूलना और उनकी ऐंठका निकल जाना, ये तीनों बातें इन तागोंके कान्तिमय हो जानेके कारण होती हैं। किन्तु इस क्रियामें निर्भंजनशक्ति केवल ३०% ही बढ़ती है और ये तागे साधारणतः मरसरीकृत पदार्थोंसे लचकमें भी घटिया होते हैं। किन्तु इनकी चमक सदाके लिए स्थाई होती है और तन्तु अधिक पारदर्शक होते हैं। सबसे अधिक चमक तब आती है जब कि तनाव अपनी सीमा पर पहुँच जाता है किन्तु उसकी निर्बलता भी बढ़ जाती है। तनावमें मरसरीकृत अच्छे पदार्थ अधिक चमकदार और कांतिमय होते हैं। उन्हें "अनुकरणिन क्षौम" कहते हैं और यद्यपि वह कृत्रिम क्षौमके समान कांतिमय तथा चमकदार नहीं होते तो भी वे उनकी अपेक्षा बल तथा निर्भंजनशक्ति दोनोंमें कहीं अधिक सुन्दर होते हैं।

मारसरी तंतुके पश्चात् कृत्रिम क्षौमको संसारको मुग्ध करनेमें अधिक समय न लगा। इस वस्तुका विचार तो लोगोंको बड़े पुराने समय में ही हो चुका था। सन् १७-४ ई० में एक फ्रांसवासी वैज्ञानिक रूमरने (Reaumur) यह घोषणा की थी कि जिस प्रकार प्राकृतिक क्षौम वायुके संसर्गसे गोंदीले पदार्थों के जम जानेसे बनता है, उसी भांति प्रयोगशालाओं में भी रेशम द्रव गोंद इत्यादिको वायु के संसर्ग तथा अन्य किसी विधिसे जमा कर बना सकते हैं। यद्यपि यह विधि कुछ हास्यप्रद है तथापि पूरी मूर्खता की नहीं। क्षौमके समान वारनिशें तैयार की जाती हैं जो अनेक रसों में न घुलना, महान शीत तथा उष्णताकी सहनशीलता इत्यादि अनेकबातोंमें शुद्ध रेशमसे मिलती हैं। यदि वह केवल कात कर तागेमें परिणत की जा सकें तो बड़ा ही सुन्दर रेशम तैयार हो जावे। प्रयोगमें रेशम केवल तभी से आया जब एण्ड्रीमार्स (Andremars) ने सन् १८५५ ई० में नोष छिद्रोज निकाला और उसको तागोंमें परिणत करके तागेका नाम "कृत्रिम क्षौम" रखा परन्तु संसार में इसका प्रचार तभीसे हुआ जब कि काउंट हिलारी द शारडो (Count Helaire de Chardonnet) ने १८६६ में अपनी वैज्ञानिक कुशलतासे कृत्रिम क्षौम व्यापारिक मात्रा में तैयार करके संसारके बाजारोंमें भेजा। इसके अनन्तर अनेक वैज्ञानिक कृत्रिम क्षौम पर ही जुट गये और उसको अनेकानेक विधियोंसे बनाने लगे किन्तु सब में किसी न किसी वनस्पति तंतुका ही प्रयोग किया जाता है। प्रारंभिक पदार्थ अधिकतर तो रुई ही, पर

कभी कभी काष्ट लुग्दी भी होता है। इन सबको प्राकृतिक क्षौमसे पृथक् करने वाली सबसे बड़ी बात उनमें नोषजनकी अनुपस्थिति है। कृत्रिम क्षौमकी मुख्य मुख्य जातियां यह हैं —

१—शारडोने-कृत्रिम-क्षौम जो कि नोष-छिद्रोजसे तैयार होता है।

२—दास्पसी-कृत्रिम क्षौम जो कि छिद्रोजको अमोनिक ताम्र ओषिद में घोल कर बनता है।

३—स्निग्ध कृत्रिम क्षौम जो कि छिद्रोज को चूने के गन्धको कर्बनेतमें घोलकर बनता है।

४—कांति क्षौम जो कि नोष छिद्रोज को दस्त-हरिद में घोल कर बनता है।

शारडोने कृत्रिम क्षौम

(Chardonnet's Artificial Silk.)

जब छिद्रोजका पांशुज नोषेत और गन्धकाम्ल के मिश्रणमें घोल किया जाता है तो वह नोष छिद्रोज बन जाता है। यह पदार्थ मद्य या ज्वलक (ether) में घुलकर एक पारदर्शक वस्तु कलाद्रिन (collodion) बना देता है। इस में लोहम् तथा दस्तम् का परहरिद और टैनिकाम्ल (Tannic acid) डाल कर ताग खींच लिए जाते हैं। यह ताग नोषाम्लित जलके संसर्गसे ठोस हो जाते हैं और फिर उसी प्रकार प्रयोगमें लाए जासकते हैं जैसे कि प्राकृतिक क्षौम। यदि कलादिनमें कुछ रंग भी डाल दिए जावें तो उन रङ्गोंका कलाद्रिन में उपघोल बन जावेगा औ तागे बनाते समय ये रङ्ग तागोंमें अवक्षेपित हो जावेंगे और इस प्रकार रंगीन तंतु तैयार किए जा सकते हैं।

आधुनिक विधि तो बड़ी ही सरल और विश्वसनीय हो गई है। प्रायः ५ सेर रुई को ३५ लीटर नोषिकाम्ल और गन्धकाम्लके मिश्रणमें (नोषिकाम्ल १५°/॰ और १.५२८ आ० घ० का तथा गन्धकाम्ल ८५ /॰ होना उचित होगा) ६ घंटे भिगोए रखते हैं। तत्पश्चात् द्रवको निकाल कर रुईको जलसे पूर्णतः धोते हैं यहां तक कि पदार्थमें किंचित् मात्र भी अम्ल न रह जावे। जलको फिर अनाद्रक यन्त्रों (Hydraulic presses) से दबा कर निकाल देते हैं। यहां तक कि जल ३६°/॰ से कम ही रह जाता है और फिर उसमेंके प्रति २५ सेरकेलिये एक शत लीटर (litres) मद्य तथा ज्वलक के मिश्रण में घोल छान कर एक बर्तन में भर देते हैं। पुराने रक्खे हुए घोलोंसे रेशम अच्छा बनता है। यह घोल फिर कांचकी सूक्ष्म छिद्रकियों में से, जिनके मुँह अत्यंत ही बारीक होते हैं, (छिद्रकी चौड़ाई १.२ स. म) बड़े ही भारसे निकाला जाता है। इस प्रकार तग्गियोंके स्वरूप में निकलता हुआ द्रव नोषाम्लित जल में से होकर आता है और ठोस तग्गियों में परिणत हो जाता है। अनेक तग्गियां एक एक समूह में एक ही लट्टू पर लपेटी जाती हैं और प्रत्येक समूहसे अन्त में रेशमका एक ताग बनता है। शुष्क करने पर इन तागों में महान् बल, कांति तथा लचक आजाती है। फिर यह तापक भट्टियों में, जिनमें वायु के प्रवाह की कमी न हो, ४५/°श पर शुष्क किया जाता है। समस्त मद्य तथा ज्वलक वाष्पित हो जाता है और रेशम न्यूनतम अग्निशील (inflammable) रह जाता है। परन्तु इसको पूर्ण सुरक्षित तथा पूर्णतः अनाग्नि शील (non-inflammable) बना देनेके निमित्त निर्नोषदीकरणकी आवश्यकता पड़ती है। इसके निमित्त गुच्छे क्षार उपगन्धिद में भिगोए जाते हैं और आधुनिक शारडोने क्षौम प्रायः शुद्ध छिद्रोज ही होता है और यद्यपि यह अत्यन्त निर्बल होता है पर इसकी कांति एवं चमक की बराबरी अब प्राकृतिक क्षौम भी नहीं कर सकता। परंतु इसकी विधिमें कलाद्रिनकी उपलब्धि तथा रेशमको जो एक महान् विस्फुटक पदार्थ है—शुष्क करना महान् भयकारी क्रियायें सम्मिलत हैं। अन्त वाली क्रियाका भय तो इस प्रकार दूर हो गया कि रेशम भीगा हुआ भी मद्य और ज्वलकके मिश्रणमें भली भांति घुलनशील है और अन्तमें भली भांति काता जा सकता है। अन्ततोगत्वा इन बातोंका विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि (अ) क्षौमको पूर्णतः शुष्क करनेकी क्रिया ऐसी तापक भट्टियोंमें होनी चाहिये जिनमें वायु बद्ध ताम्र तथा लोहकी नलकियोंसे संबन्धित कपाट हों जिनके

द्वारा तप्त जल तथा उसकी वाष्प प्रवाहित की जा सके। (आ) अन्त उसी शक्तिके प्रयोग किए जावें जो कि ऊपर अंकित किए गए हैं, अन्यथा सफलता की अधिक आशा नहीं हो सकती। (इ) अर्द्ध शुष्क पदार्थों का धोना अर्थात् पूर्ण शुष्क पदार्थ भयकारी होनेके कारण पुनः २ अर्द्ध शुष्क करके पुनः पुनः धोना, अन्तमें उसे जल मुक्तक यन्त्र (Hydroextractor) द्वारा आर्द्र रहित कर दिया जावे। (ई) इसके पश्चात् क्षौम पदार्थका खटिक हरिद् तथा नोषिकाम्ल से वर्ण विनाश किया जाना चाहिए।

दाश्पसी कृत्रिम क्षौम

(Despeissis artificial silk)

यह रेशम भी अत्युत्तम पदार्थ है। कांति, शक्ति तथा लचक इसकी विशेषताएं हैं। इसको भी एक फ्रांसवासी वैज्ञानिक देश्पेइश्सि (Despeissis) ने सन् १८६० में तैयार किया था। इसमें भी प्रारम्भिक सामान रुई ही है किन्तु लकड़ी, सन, जूट, रामबांस इत्यादि के तन्तुभी प्रयोग किए जा सकते हैं। बड़े बड़े रुईके वस्त्रोंके यन्त्रोंमें जो रुई निःकृष्ट हो जाती है, इसमें भली भांति प्रयोग की जा सकती है और प्रायः देखा गया है कि जितनी ही सुन्दर रुई होगी और जितना छोटा छोटा उसका निःकृष्ट पदार्थ होगा उतना ही वह निःकृष्ट पदार्थ रेशमके कार्य्यमें लाभदायक होगा। इससे रेशम बड़ी सरलतासे तथा स्वच्छ बनेगा। बांसके टुकड़े भी जिनमें पक्त-छिद्रोज (Pecto-celluloses) तथा लग्न-छिद्रोज (Ligno-celluloses) अधिक मात्रामें होते हैं और पत्रोंकी रद्दी भी उद्योग में लाई गई हैं किन्तु उनमें इतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई।

लगभग ३ मन रुई जल वाष्प बद्ध आशयोंमें एक विशेष घोलके १००० लीटरमें कोई चार घण्टे तक उबाली जाती है। यह घोल लगभग ३५ सेर सैन्धक कर्बनेत एवम् १½ मन सैन्धकउदौषिदको शेष पानीमें घोल कर लेने से प्राप्त होता है और उसमें बड़े दबाव में जल वाष्प प्रवाहित की जाती है। चार घण्टे के पश्चात् वाष्प प्रवाह रोककर उसमें जल प्रवाह किया जाता है और फिर दबा कर आशयोंके एक ओर निचोड़ ली जाती है। तत्पश्चात् रुई स्वच्छकयन्त्रमें पहुँचा कर धोकर उदौषिद् द्रवसे पूर्णतः मुक्त कर ली जाती है। धुनकने पर इसका प्रत्येक तन्तु पृथक् पृथक् होजाता है और यह धुनकी हुई रुई ६ मृत्तिकाशयोंमें भर कर उस पर खटिक हरिदका हलका घोल भर देते हैं और समय समय पर चला दिया करते हैं। यहां ६ घण्टेके लगभग रहनेके बाद रुई फिर स्वच्छक यन्त्रोंमें पहुँचाकर रखोंसे मुक्त की जाती है और जलसे धोई जाती है। जल मुक्तक-यन्त्रमें डाल कर इस रुई का जल निचोड़ डालते हैं और शुष्क करके इस रुईको लोहेकी चद्दरोंके सन्दूकोंमें लगभग ३०-३५ सेर भर कर मिश्रण-यन्त्रमें पहुँचाते हैं।

ताम्र ओषिद जब संपृक्त अमोनिया में घुल जाता है तो जो पदार्थ बनता है उसको स्वइज़र-रस (Swetzer's Reagent), अमोनिक-ताम्रोषिद अथवा अमोनिकताम्र कहते हैं। रुईपर इसकी प्रतिक्रिया करने से वह उसमें पूर्णतः घुलकर जिलाटीनवत् अत्यन्त ही गाढ़े द्रवमें परिणत हो जाती है। पूर्ण सफलता प्राप्त करनेके निमित्त यह कार्य एक ऐसे यन्त्रमें किया जाता है जिसका स्वरूप चित्र १ में दर्शाया गया है। एक बड़े आशय अ में ताम्र के टुकड़े भर दिए जाते हैं और अमोनिया स नल के द्वारा अन्दर प्रवेश की जाती है। जब बर्त्तन भर जाता है तो अमोनिया का प्रवाह बन्द करके ब से वायु दो वातावरण के दबाव पर प्रवाहितकी जाती है। यहां तक
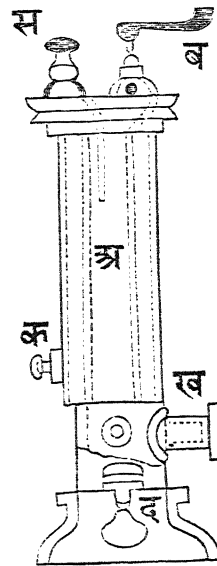
चित्र १

कि आन्तरिक द्रव इच्छित सीमा तक संम्पृक्त हो जाता है जिसकी सूचना एक भार-मापक (Hydrometer) से लगती रहती है। फिर यह द्रव छिद्र द्रों से निकाल कर अंकित नपनोंमें भर लिया जाता है। सारे समयमें तापक्रम ४°—६°श से नीचे ही रहना चाहिए। सारा यन्त्र एक दुहरी चद्दरसे ढका रहता है और इन चद्दरोंका मध्यभाग निष्चालक पदार्थों (Insulating material) से भरा रहता है। समस्त प्रतिक्रिया बहुत शनैः शनैः और लगभग १८ घण्टोंमें होना उचित है यद्यपि समयकी मात्रा सर्वथा निश्चित नहींकी जा सकती है। अंकित नपनोंसे द्रव मिश्रण यन्त्रमें जाता है जिसमें एक स्वयम् चालक यन्त्र ५०-६० चक्र प्रति मिनट करता रहता है। प्रथम यह अमोनिक ताम्रसे भर दिया जाता है और इसमें किञ्चिद्मात्र सैन्धकक्षार डाल दिया जाता है। एक मिनटमें उसके मिश्रण हो लेनेके बाद जब तक चालक बड़े वेगसे घूमता रहता है प्रत्येक १०० लीटर घोलके निमित्त १० सेर रुई डाल दी जाती है। यह लगभग सात घण्टेमें घुल जाती है। बहाव की अब उचित मात्रा द्रवमें आ जानी चाहिए। इसके परीक्षार्थ ४-५ घ. श. म. द्रव कांचकी डाट दार बोतल में भर कर उसे उलटा कर देते हैं। यदि अब द्रव लगातार प्रवाह में बहे तो ठीक है। इसके बूंद बूंद होकर गिरने तथा टूटी धाराओं में बहनेसे क्रिया की अपूर्णता की सूचना मिलती है। ठीक घोल बन चुकनेके बाद द्रव विभाजित होना आरम्भ कर देता है। और यद्यपि जितना भी नीचा तापक्रम इसको पूर्णतया नहीं रोक सकता है, तो भी जहाँ तक हो तापक्रम ४°श से कम ही रखना चाहिए। उससे विभाजन कुछ दिवसों अथवा कुछ घण्टों तकके लिए रुक जाता है। तत्पश्चात् यह द्रव ३-४ छन्नों में छान कर बड़े बड़े आशयों में भर दिया जाता है और यहाँ से नलों द्वारा संकुचित वायु (compressed air) में कातने वाली चक्कियोंमें भेजा जा सकता है। इस बात की बड़ी ही सुध लेनी पड़ती है कि समस्त कपाट बड़ीही जटिलतासे बन्द हों और सब जोड़ बड़े बलिष्ट हों। यदि किसी न किसी कारणसे किसी कपाट अथवा जोड़ पर कोई छिद्र हो गया तो समस्त नल फट जावेगा और उसको ठीक करनेके लिए कोई मनुष्य बिना स्वाँस—वर्धकों (respirators) की सहायता के वहाँ जानेमें समर्थ नहीं हो सकता। इसी कारणसे अनेक स्वाँस वर्धक भी तैयार ही रखने पड़ते हैं अन्यथा समस्त द्रव से ही कभी हाथ न धोना पड़े। द्रवाशयोंसे नलोंमें द्रवको प्रवाहित करने वाली वायुका भार भी सदैव कपाटों द्वारा स्थाई रखना पड़ता है और यह कार्य्य भी विश्वसनीय मनुष्यों पर ही छोड़ना चाहिए जो सदैव अपने स्थान पर जमे रहें और जब तक दूसरा मनुष्य न आ जावे कैसा भी आवश्यक कार्य्य पड़ने पर भी उसे छोड़ कर न जावें। द्रव दो द्रवाशयोंमें जमा रहता है और जब तक एकमें का द्रव नलोंमें जाता है, मिश्रण यन्त्र में से आता हुआ द्रव दूसरे आशयको भरता रहता है। और जब खाली होने वाले आशयमें से आधे से कुछ अधिक द्रव निकल जाता है तो कपाटों का प्रबन्ध इस प्रकार बदल दिया जाता है कि नल में द्रव दूसरे द्रवाशयसे आने लगे और मिश्रण यन्त्रसे आता हुआ द्रव अब खाली वालेमें जमा हो। इस प्रकार कातनेकी क्रियामें विराम नहीं होने पाता।

अब रेशमको कातनेकी आवश्यकता पड़ती है। यह क्रिया बिल्कुल उसी भांति होती है जैसाकि प्राकृतिक क्षौममें क्षौम कृमि करते हैं। द्रव अति सूक्ष्म छिद्रकियों (capillaries) में प्रवाहित किया जाता है और वहाँ से निकलती हुई धाराएं अवक्षेपक पदार्थोंसे अवक्षेपित कर दी जाती हैं। यह पदार्थ या तो अम्लीय (गन्धकाम्ल तथा विट्रियाल के समान करोदक द्रव) या उदौषिक होते हैं (जैसे नीरंग क्षार तथा उनके भस्म)। निरर्थक ताम्र तथा अमोनिया की जो अधिक मात्रा रह जाती है वह कातनेके बाद स्वच्छ करके मुक्त करने पड़ती है। इनका

स्वरूप तथा प्रबन्ध चित्र नं० २ में दर्शाया गया है।
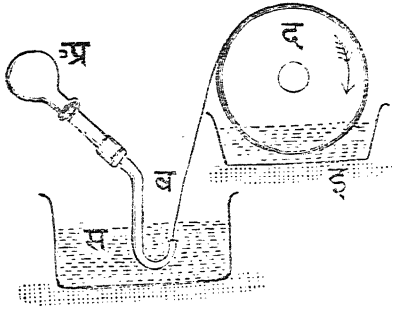
चित्र २

मुख्य नल अ में से होकर द्रव अनेक छोटे छोटे नलों में होकर महान् सूक्ष्म छिद्रकियों ब में प्रवाहित होता है। इस प्रकारकी अनेक छिद्रकियाँ एक वर्त्तनमें रक्खी रहती हैं जो अवक्षेपक द्रव स से भरा हुआ होता है। जो द्रव सूक्ष्म छिद्रकी से बाहर प्रवाहित होता है वह अवक्षेपित होकर एक तागेके स्वरूपमें परिणत हो जाता है। यह तागा खिंचकर एक चक्री द पर तना रहता है और चक्रीके घूमने पर जो ताग बनता जाता है वह उस पर लिपटता जाता है। यह चक्री इस प्रकार घूमती है कि इसका कुछ भाग एक वर्त्तन इ में भरे हुए द्रवमें होकर घूमता है। यह किसी अति हल्के अम्ल का घोल होता है। और इसमें धोने से तागोंका अधिक-मात्रिक ताम्र तथा अमोनिया साफ हो जाता है। और इस अभिप्राय से कि यह सफाई भली भांति हो सके समस्त क्रियाओं में काफी समय दिया जाता है। यदि द्रव स कोई अम्लिक अवक्षेपक है तो तागे ताम्र तथा अमोनम से वहीं मुक्त हो जाते हैं और श्वेत निकल आते हैं। यदि यह द्रव क्षार है तो मुक्ति लेशमात्र भी नहीं होती और इ के किंचिद् मात्रिक अम्लिक द्रवमें घूमनेसे पूर्व तागे एक अन्य अम्लिक द्रवमें धोये जाते हैं। उनमें अविशोषित अम्ल तो केवल जलसे धोनेसे ही दूर हो जाते हैं। ऐसी सैकड़ों नलियां स में डूबी रहती है और इनमें से २०, २० के तागे इकट्ठे ले जाकर एकही चक्री परसे निकालकर लट्टू पर इकट्ठे लिपटते रहते हैं। कुछ मनुष्य इसी कार्य्य पर नियुक्त किए जाते हैं कि जो ताग टूट जाता है और द्रवमें बहता पड़ा रहता है वह एक सूजेसे उठाकर और तागोंमें मिला देते हैं जिनके साथ वह फिर लिपटने लगता है। कांचके लट्टू जिन पर कि रेशम लिपटता रहता है जब रेशमसे परिपूर्ण हो जाते हैं तो खड़े हुए मनुष्य उनको एक ओर उतार लेते हैं और दूसरी ओर खड़े हुए मनुष्य तुरन्त ही खाली लट्टू लगा देते हैं और बिना ही विराम किए कार्य्य चलता रहता है। यह लट्टू गाड़ियोंमें भर कर स्वच्छक शालाओंमें पहुँचाए जाते हैं और वहां लकड़ीके तख्तोंके बने द्रवाशयोंमें इस प्रकार रख दिए जाते हैं कि न्यूनतम स्थान घेरें। वहाँ फिर सिरकाम्ल अथवा पिपीलिकाम्लसे धोए जाते हैं और तागे लगभग सात घंटोंमें अमोनियासे मुक्त हो जाते हैं। स्वच्छकद्रव आशयोंके ऊपरसे जाती हुई नालिओंमें प्रवाहित किया जाता है और इसके छिद्रोंमें से निकलकर बड़े वेगसे लट्टुओं पर गिरता है। समस्त प्रतिक्रियाओंमें जल पूर्णतः स्वच्छ प्रयोग किया जाना चाहिए अन्यथा रेशम सुन्दर न बनेगा। इसके निमित्त या तो प्राकृतिक रूपमें स्रवित जल तैयार किया जावे जो बहुत धीरे धीरे बड़े मूल्यसे बनता है या अप्राकृतिक विधिसे भभके द्वारा स्रवित किया जा सकता है। यह हो तो शीघ्र जाता है परन्तु लगातार देख भालकी आवश्यकता पड़ती है। खटिक कर्बनेतसे रेशम भद्दा पड़ जाता है। इस कारण यह आवश्यक है कि क्षौम-कल कहीं खोलनेसे प्रथम् वहांके पानीका निरीक्षण कर लिया जावे। यदि जल उचित न मिला तो रेशममें बड़ी हानि रहेगी क्योंकि उसके स्वच्छकरणमें अधिक मूल्य लगता है। उपर्युक्त अम्लोंमें धुलनेके बाद लट्टू ५-६ मि० तक साबुनके घोलमें धोकर शुष्क-शालाओंमें भर दिए जाते है जहां वे बड़े वेगसे आते हुये वायुके प्रवाहमें २०-२५ घंटे तक ५०°श पर शुष्क होते रहते हैं। प्रत्येक शुष्क-शालामें कोई ६००० लट्टू चक्रोंमें प्रबन्धित किए जाते हैं। प्रत्येक लट्टू पर औसतसे आधी छटांक रेशम होता है। इस क्रियामें शुष्क

शालाओंमें वायु प्रवाह (ventilation) और शुष्क-वायुके संसर्गमें आनेके लिए जहां तक हो सके अधिक पृष्ठ रखनेका विचार रखना होता है। सबसे पहिले जब रेशम कुछ कुछ द्रव होता है तो बहुत धीरे धीरे शुष्क करना पड़ता है और फिर पानीमें भिगोकर जल्दी जल्दी किया जा सकता है। इसी प्रकार ३-४ बार करने से उसकी दृढ़ता पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है जैसा कि पहिलेसे ही शीघ्र शुष्क कर देनेसे पड़ता है। जिस प्रकार एक बार शुष्क हो चुकने पर तागे घनिष्ट बंधनमें आकर अधिकतार तथा जल सहन करनेमें समर्थ हो जाते हैं, पूर्ण शुष्क हो चुकने पर रेशमको विशेष शालाओंमें क्लेदित होनेके लिए रखना पड़ता हैं। भली भांति क्लेदित हो जानेसे ऐंठने और बिननेकी विधियोंमें सरलता हो जाती है। क्लेद मात्रा स्थाई नहीं की जा सकती क्योंकि यह भिन्न भिन्न कार्य्य-कर्त्ताओं तथा तापक्रमोंके अनुसार विभिन्नित होती हैं। एक विशेष शालामें ईंटोंके ७-८ फीट ऊंचे चबूतरे पर सब लटटू इस प्रकार रख दिए जाते हैं कि उनके बीचमें जल डाला जा सके और वायुका प्रवाह भली भांति हो सके। क्लेदका विशिष्टांक क्लेदमापकसे सूचित होता है। इस क्लेद जलकी विद्यमानता अथवा अनुपस्थितिका प्रभाव क्षौम की कांति तथा उसकी भौतिक आकृतिओं पर बहुत पड़ता है और विशेष विशेष समय पर ऐंठने, बिनने इत्यादि में प्रत्येक प्रयोग शालामें क्लेदनका प्रबन्ध करना पड़ता है। अब लटटू पर रेशम बिननेके लिए तैयार हो गया।

इस व्यापारमें बुद्धिमत्ता, देख रेख तथा ताप-क्रमके प्रबन्धकी बड़ी आवश्यकता रहती है अन्यथा महान् हानि हो सकती है और व्यापार टूट जाने की सम्भावना भी की जा सकती है। साधारण हानिके कारण यह हो सकते हैं (अ) इस बातका पता लगना कि कब छिद्रोज अमोनिक ताम्रमें पूर्णतः घुल गया और कब यह विभाजन प्रारम्भ कर देगा, बड़ा कठिन है और यदि तापक्रम ४ श से अधिक ऊपर उठ गया तो समस्त पदार्थ निकृष्ट हो जावेगा। प्रयोगमें कितनाभी नीचा तापक्रम उसको विभाजनसे बचा नहीं सकता। इसी कारणसे द्रव शीघ्र ही प्रयोगमें आ जाना चाहिए, अन्यथा समस्त द्रवके नाश हो जानेका भय है। (इ) यदि किसी नलमें कोई अपयुक्ति तथा अनुचित कपाटके कारण उसका टपकना, कांचके नलका फटना, भारतीय रबड़ (India rubber) के छल्लोंका खुल जाना अथवा विभाजक नलोंका अशुद्ध प्रयोग, इत्यादि तथा अन्य कोई इसी प्रकारकी त्रुटि पैदा हो गई तो उसके समीप कोई भी श्वास-वर्धकके बिना न जा सकेगा और यदि श्वास वर्धक उपलब्ध नहीं है तो भारी हानि होगी। (उ) तागोंके टूटने की भी हानि होती है और यह सब टूटन फूटन एक निःकृष्ट आशयमें भर देते हैं और अन्तमें उसको जलमें धोकर उसमें से अमोनिक ताम्र पोलउपलब्ध कर लिया जाता है। (क) कातनेकी क्रिया को विराम देनेसे भी कुछ हानि होती है। ऐसे समयमें सूक्ष्म छिद्र नलियां अम्लिक घोलमें से निकाल कर प्रत्येकके अन्तिम भाग पर एक रबर की टोपी लगा देते हैं और द्रवका प्रवाह बन्द कर देते हैं। फिर चलाते समय इन नलियों की वस्तु निकल कर अम्लमें बहने लगती हैं और यह निःकृष्ट पदार्थ बनाती हैं। यही कारण है कि क्षौम-यन्त्र रात दिन सप्ताहों बराबर चलते रहते हैं। टूटा फूटा तथा कटा रेशम आजकल छोटे छोटे व्यापारियों को बेच दिया जाता है जो फिर बिन कर उससे कृत्रिम-क्षौम, नाटककारोंके निमित्त कृत्रिम केश इत्यादि अनेक वस्तु तैयार करते हैं।

स्निग्ध कृत्रिम क्षौम

(Viscose artificial Silk)

इस विधिसे उपलब्धित रेशमका यह नाम एक अत्यन्त ही स्निग्ध द्रवके अनुसार पड़ा है जो रेशमको तैयार करनेसे पहिले बनाना पड़ता है। रुई को १५ °/。 सैन्धक उदौषिदमें घोलसे संसर्गित करते हैं और उसको दाबकर उसमेंसे रुईके भारके त्रिगुण भारसे अधिक उदौषिद घोलको निकाल कर रुईको डाटदार बोतलमें भर देते हैं। प्रारम्भिक पदार्थ

बहुधा काष्ठकी लुग्दी होती है जो कि चार्विक पदार्थों से मुक्त तथा वर्णविहीन इसी भांतिकी जाती है जैसे कि पत्र व्यापारमें। यह कुछ सस्ती पड़ती है और यद्यपि प्रयोगके लिये बिलकुल तैयार ही आती है सुरक्षणार्थ यह जलसे धो ली जाती है। यदि चिकनाहट से भली भांति मुक्त न हो तो उसे $\frac{१}{२}$ घंटेके लगभग १$\frac{१}{२}$—२°/० b३' उदौषिदके घोलमें तप्त करते हैं। (खटिक उदौषिदसे मिश्रित जल कभी प्रयोगमें नहीं लाना चाहिये) और धोकर जल मुक्तक यंत्र से निचोड़ने पर उसमें ४०-५०°/० जल रह जाता है। यह अब रुईके स्थानमें बोतलमें भरा जा सकता है। बोतल में रुईके भारका ४०°/० कर्बनद्विगन्धिद भर देते हैं। कुछ समयके बाद यह (३ घंटे) जलसे ढक दिया जाता है और इसी हालतमें पड़ा रहता है जबतक कि आर्द्रण पूर्ण हो जाता है। भली भांति टारने से एक एकसार पदार्थ तैयार हो जाता है जो अत्यन्त स्निग्ध होता है। इसे स्निग्धी कहते हैं। स्निग्धताके कारण उसमें ६०°/० से अधिक छिद्रोज घोलमें नहीं आ सकता, और बहुधा १०°/० ही होता है। यह स्निग्ध द्रव जब ७०°श पर तप्त वायुके संसर्गमें आता है तो एक सूक्ष्म भिल्लीके स्वरूपमें ठोस बन जाता है और जल डालने पर पृष्टसे छूट कर तागोंमें परिणत होजाता है। इस छिद्रोजके कांतिमय तथा पारदर्शक तागे होते हैं और इसमें प्रारम्भिक वस्तुसे ३०°/० अधिक क्लेदिन जल होता है। उसका सूत्र क$_{६}$उ$_{१०}$ओ$_{५}$ — उ$_{२}$ओ. होता है। किन्तु इनमें के उदौषिल समुदाय अधिक तीव्र होते हैं और शीघ्र ही सिरकीलित किए जा सकते हैं। यद्यपि यह ताग प्रथम् विद्युत लम्पोंके तागोंकाही काम देते थे परन्तु कुछ ही समयके उपरांत उसके इच्छित सूक्ष्म तथा एक सार तागे स्निग्ध द्रवको सूक्ष्म छिद्रकियोंमें से निकाल कर अमोनिक हरिद्के ७-२०°/० प्रतिशत घोलमें प्रवाहित करनेसे बनाये जाने लगे। यह तागे क्रमशः उष्ण अमोनिक हरिद, सैन्धक कर्बनेत, उदजन हरिदके घोलों तथा जलमें से निकाले जाते हैं यह सरलतासे शीघ्र तथा सुन्दर रंगे जा सकते हैं। इनकी चमक बड़ी तीव्र होती है और हरिन् का प्रभाव सहन करनेमें समर्थ होते हैं किन्तु किञ्चिद् मात्र गन्धक होनेके कारण कुछ पीले पड़ जाते हैं। आधुनिक क्षौम सर्वथा श्वेत होता है। अति कार्य कुशल विधिसे तैयार किया हुआ स्टेटिन स्निग्ध क्षौम है। सूक्ष्म छिद्रकियोंसे निकल कर रेशम बिना ऐंठे ही दो लट्टुओं पर लपेट दिया जाता है। फिर यह ऐंठन शालाओंमें ले जाकर रासायनिक पदार्थोंसे भरण करके एक ही क्रियामें ऐंठ कर भान लिए जाते हैं। ४-१$\frac{१}{२}$ सहस्र गज लम्बे लम्बे तागोंके लच्छे बना लिए जाते हैं। यन्त्रका एक साधारण चित्र यहाँ दिया गया है। छोटे २ लट्टू-अ चक्री-ब पर
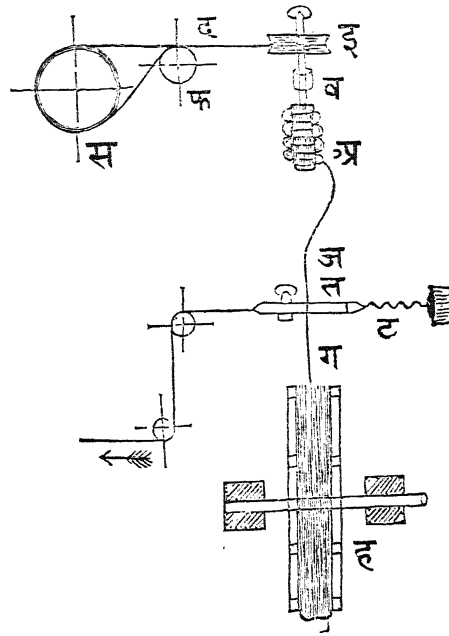
चित्र ३

चढ़ा दिए जाते हैं। यह चक्री स बेलनके द्वारा इ पहिए परसे होकर एक पहिएसे घुमाई जाती है और एक अन्य बेलनसे स्थिति रहती है। लट्टू अ में से ताग ज निकल कर रील ह पर लपटता रहता है। इस समस्त समयमें चक्री ब इस वेगसे घूमती रहती है कि तागेमें इच्छित ऐंठ लग जावे। रेशम

इसी रील पर लपिटा रहता है और यहीं अम्लित जल से धोकर वर्ण रहित तथा शुष्क किया जाता है।

स्निग्धीके अन्य प्रयोग (अ) स्निग्धी की एक विशिष्ट बात यह होती है कि वह अपने भारसे बीसगुना तथा कभी कभी इससेभी अधिक भार किसी धात्वी पदार्थ का धारण कर सकती है। इसी कारण वह अनेक रंगों (paints) में आधारके निमित्त प्रयोग की जाती है। छिद्रोजकी जटिल स्थिति (stability) के कारण यह वायुके प्रभावको भली भांति सहन कर सकती है। पलस्तर पर भी पूर्ण शुष्क न होने पर भी बड़े बलसे चिपक जाती है। सीमेण्ट, फेल्ट तथा लकड़ी इत्यादिमें भी खूब चिपटती है और इसी कारण भारि-पत्र (Bitumen cards) इत्यादिमें भी प्रयोगकी जाती है। इसकी पृष्ठ चिकनी तथा एकसार होती है और थोड़े ही दिनों बाद सैन्धक उदौषिदसे धोकर साफ भी की जा सकती है।

(इ) उपर्युक्त विशिष्टताओंके कारण ही इससे कौशल पत्र (Art paper) भी निर्माण किए जाते हैं। इसकी आधारित पृष्ठ अत्यन्त ही चिकनी तथा असाधारण नर्म होती हैं। मुद्दर लगाने तथा चित्रकारीकी विशेषताएं इसमें आ जाती है।

(उ) यह तंतुओंके आवरण पदार्थकी (Covering material) भांति भी प्रयोगकी जाती है। किञ्चिद्‌भारित तथा शुद्ध स्निग्धी तंतुओंकी पृष्ठि पर एक ऐसा परत लगा देनेमें समर्थ होती है जो जलमें अनघुल होता है और चारों तथा अम्लोंके प्रभावको सहन कर सकता है। अपारदर्शक स्निग्धी जलबद्ध चादरों तथा जिल्दसाजीमें भी प्रयोग की जाती है। इससे उत्पादित पृष्ठ नाम इत्यादिकों की पिच्ची तथा मुद्दर लगानेके लिये अति उपयोगी होती है।

(ए) भारतीय रबरमें बिना ही उसकी आकृतियों को अधिक परिणत किए इसकी मिलावट की जा सकती है। ऐसी रबर जलवायुका प्रभाव भली भांति सहनकरसकती है और अपनी लचक स्थाई रखती है।

(क) चित्रित उभारोंके अर्थ इसके परत अति न्यूनव्ययके तथा सुन्दर रहते हैं. विशेषकर श्वेत उभारोंके लिए इसके कारण यह वस्त्र इत्यादिपर मुद्दर लगानेके स्थान पर प्रयोगकी जाती है।

(ख) बंडल इत्यादिके बांधनेके लिए इसके पट्टे तथा कठोर पत्र अति उपयोगी रहते हैं। इससे स्निग्ध चर्म तथा अनुकरण चर्म भी बनता है।

(ग) बड़ा ही सुन्दर तापरक्षक (insulating) पदार्थ केवल इसको इच्छित स्वरूपमें ठोस करलेने से, चाहे किसी स्वरूपका उत्पादित हो सकता है। ऐसे पदार्थको 'स्निग्धोद' (visc id) कहते हैं।

(घ) अनेकानेक कार्योंके निमित्त इसके पारदर्शक सूक्ष्म पत्र बनाये जाते हैं जैसे साबुन तथा चार्बिक पदार्थोंके निमित्त बंडलपत्र, रंगीन चित्रित गुब्बारे, विद्युत् लैम्पोंके निमित्त मंडल इत्यादि, अनुकर्णित चित्रित कांचकी खिड़कियोंके स्थानमें प्रयोगार्थ पारदर्शक चित्रित पत्र, तथा अनेकानेक भांति के छिद्रोद (celluloid) के स्थानमें प्रयोगार्थ कठोर पदार्थ तैयार किए जाते हैं।

कांति कृत्रिम क्षौम

(Lustre artificial Silk.)

इस भांतिका रेशम छिद्रोजको दस्तद्विहरिदमें घोल कर उसे ठोस करनेसे उत्पादित होता है। यह इस रसमें थोड़ी ही मात्रा तक घुलनशील है। इस कारण इससे उपलब्ध तागे महा सूक्ष्म एवम् निर्बल होते हैं। प्रथम यह क्रिया केवल विद्युत् लम्पोंके तागे बनानेके निमित्त ही प्रयोगमें आती थी। कुछ अधिक संम्पृक्त घोल अधिक तापक्रमसे तैयार हो सकता है। अवश्य ही इस विधिमें छिद्रोज व्यक्कृत (depolymerise) होजाता है किन्तु दस्तद्विहरिद एवम् स्फट त्रिहरिदका मिश्रण घोल प्रयोगमें लानेसे यह परिवर्त्तन बन्द हो जाता है किन्तु इसमें रुई अधिक तापक्रम पर ही घुलनशील है। वस्त्र व्यापारके निमित्त यह तंतु महानिर्बल होते हैं। एक अत्यन्त लाभदायक विधि यह है कि रुईको सैन्धक उदौषिदके संपृक्त

घोलमें डुबोनेसे वह सैन्वक छिद्रोजमें परिगत हो जाती है और अन्त में इसको जलसे उद्विश्लेषित करके दस्त छिद्रिद् के संपृक्त घोलमें घोल लेते हैं। तापक्रम यथा सम्भव नीचा ही रखना उचित है अन्यथा विभाजन प्रारम्भ हो जावेगा और आगेकी सुन्दर कातने तथा अन्य क्रियाओंमें क्लिष्टता पैदा कर देगा। इस प्रकार से उत्पादित रेशम भी कान्ति मय और चिकना होता है।
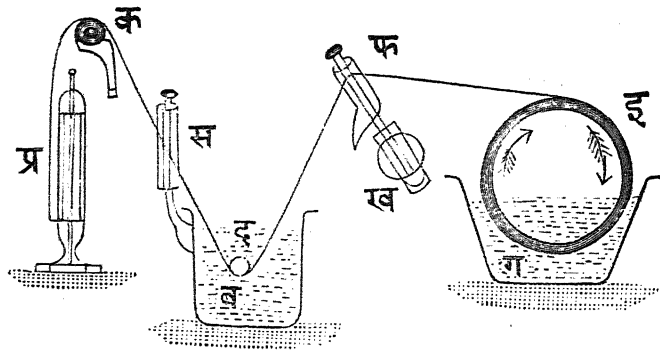
चित्र ४

इतनी तो मुख्य मुख्य विधियाँ चौम उपलब्धि की हुई जो आज कल प्रचलित हैं। अनेकानेक वैज्ञानिकोंने इन विधियोंमें कुछ कुछ परिवर्त्तन करके भिन्न भिन्न प्रकार से कार्य आरम्भ किया और उससे उपलब्ध चौम भी उन्हींके नाम पर चला। इनमेंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध नाम नीचे दिए जावेंगे।

फ्रांस क्षौम—त्रिनोष छिद्रोज और जिलाटीन को सिरकाम्लमें घोल कर जो द्रव मिलता है उसको सूक्ष्म छिद्रकियोंमें से प्रवाहित करनेसे और उसे वायुके संसर्गसे ठोस करने से यह बनता है। तागों को प्रतिक्रिया समाप्त होनेसे पूर्व तीन भिन्न भिन्न घोलोंमें से निकालते हैं। इसके अनन्तर वह एक शाला में जाकर नीचे तापक्रम पर शुष्क होता है। रील-शालामें जाकर उसकी रीलें बनती है फिर उसके पिंडे बना कर जल में छोड़ देते हैं।

सिरेत चौम—(*Serret silk*) इससे भी बड़े ही सुन्दर और विशिष्ट दर्शनीय वस्त्र तैयार होते हैं। असली रेशम के निकृष्ट पदार्थ को पूर्व नियमित ताप पर अम्लों तथा चारोंमें घोलते हैं अन्यथा उसका संगठन परिवर्तित हो जावेगा। प्राप्त घोलको तुरन्त ही जलसे अथवा तापको कम करके शिथिल (neutralise) कर देते हैं और तदनन्तर उसके तागे बना लेते हैं।

क्रांति चौम—चौम अनुकरण की एक नवीनविधि यह है कि रुईके १२०° तथा २००° के नम्बर के तागे पर कृत्रिम चौम द्रव का एक परत लगा देते हैं। इस भांति उनमें भी कृत्रिम चौम कीसी ही चमक, कान्ति इत्यादि आ जाती है। इसका यन्त्र इस प्रकार है—प्र एक सूत का पिंडा है। इससे एक ताग एक चक्री 'स' पर होकर द्रव ब के मध्यस्थ दूसरी चक्री द पर होकर चक्री फ पर होता हुआ इ लट्टू पर पहुँचता है। यह लट्टू ठोस-करण द्रव ग में घूमता रहता है। चक्री फ दो भुजाओं को भारतीय रबड़ की पेटीसे जुड़ कर बनी है। यह खोली और बन्द की जा सकती है और इस भांति परत की मोटाई जो कि डोरी पर जमती है घटाई बढ़ाई जा सकती है। द्रव ब जोकि तागोंमें कान्ति एवम् चमक लाता है छिद्रोज का घोल या कोई वार्निश हो सकता है और ठोस-करण द्रव ग उप-युक्त वर्णनके अनुसार ही होता है।

किंचित् मात्र चौम तन्तु स्निग्धरूपमें द्रव कांचके भी बनाये गए हैं किन्तु व्यापरिक मात्रा पर नहीं। हाल ही में इस विचारकी व्यापरिक सम्भावना भी दृष्टिगोचर हो गई है। नवीन चौमके तागे मानुषिक केशों की आधी मोटाई की काँचकी नलियाँ होंगी। विशेष विशेष रसों के योग से महान् कांतिमय लचक-दार और शक्ति शाली तन्तु उपलब्ध हो सकेंगे। अन्ततोगत्वा यह पदार्थ भारके अनुसार अत्यन्त ही सस्ता रहेगा।

स्त्रिह्नवर्त्त चौम—यह चौम एक ऐसी मशीन से बनता है जो आर. डबल्यू. स्त्रिह्नवर्त्त साहब ने निकाली थी। इस मशीन से तागे स्वतः ही

सूक्ष्म छिद्रकियों से लेकर ठोस करण द्रव में होते हुए ऐंठे जाने वाले स्थान तक चले जाते हैं और पिंडी केवल ऐंठे हुए क्षौम की ही बनती है। मार्ग पर यह कुछ ऐंठ भी जाते हैं इस प्रकार यदि कोई ताग बीचमें टूट जाता है तो वह अन्य तागोंमें फँस कर आगे बढ़ जाता है। इस प्रकार ताग उठा उठा कर रखने वालों का कार्य बहुत कुछ सरल और न्यून रह जाता है। यह क्रिया अधिकतर अमोनिक ताम्र विधि में प्रयोग की जाती है। इस विधिमें यदि रुई किसी तीव्र वर्णविनाशक पदार्थ से ओषदीकृत, अथवा अवकृत पदार्थ से प्रतिकृत कर दी जावे, जैसे कि गन्धित, गन्धसाम्ल, गन्धकाम्ल, सैन्धकक्षारका घोल अथवा सैन्धकक्षार तथा कर्बन द्विगन्धिदका मिश्रण इत्यादि इत्यादि तो रुई बड़ी सरलतासे अधिक मात्रा में और थोड़े ही समयमें अमोनिक ताम्रघोलमें घुल जाती है।

ग्लांजटाफ क्षौम—यह ग्लॉजटाफ साहेबकी परिवर्तित विधिके अनुसार तैयार किया जाता है। इसमें ताम्रकी अधिक मात्रा और अमोनिया की न्यून रहती है और ताम्रको रखने वाली टंकियों की दीवारों को शीतल वायुके प्रभावसे ठंडा रखते हैं। बहुधा तापक्रम ४°—५°श तक ही रहता है और यही तापक्रम तमाम ताम्र नलियों में भी रक्खा जाता है। इस अर्थ नलियां एक दुहरी पर्त्ती के अन्दर बन्द रहती हैं और इस पर्त्तीमें कोई शीतोत्पादक द्रव प्रवाहित किया जाता है। घोल को शीतल रखने में विशेष ध्यान रखना होता है क्योंकि यह ५°श के ऊपर विभाजित हो जाता है। इस प्रकार उपलब्ध कृत्रिम क्षौम पुनः पिपीलिकाम्ल के संपृक्त घोलमें घोलकर काता जा सकता है और इस भांति अत्यन्त ही कांतिमय तथा लचकदार क्षौम उपलब्ध हो सकता है।

कृत्रिम क्षौमके गुण —(Properties of artificial silk.)-अनुवीक्षण यंत्रमें यह तंतु चूर्ण (amorphous) तागे बिना किसी मध्यस्थ नलीके प्रतीत होते हैं। गन्धकाम्ल और नैलिन्के घोलसे छिद्रोजके विशिष्ट नीलवर्ण की परीक्षा प्राप्त होती है। यह अमोनिक ताम्र में तुरन्त ही घुलनशील है। त्रिनोष-छिद्रोजसे उपलब्ध क्षौम गन्धकाम्ल की विद्यमानतामें द्विदिव्यील अमिनसे नीलवर्ण देता है। अमोनिक नकलम् घोल शुद्ध क्षौम को तो घुला लेता है किन्तु कृत्रिम क्षौमको अप्रभावित ही छोड़ देता है। और इस प्रकार से प्राकृतिक क्षौम की मात्रा भारमापण विधिसे भी भली भांति निकाली जा सकती है। मनुष्योंको जब यह ज्ञान हो गया कि प्राकृतिक क्षौमका अन्तः भाग फिब्रोइन और बहिः सेरीसिन बनता है और सेरीसिनको दूर कर देनेसे ही कांति आ जाती है, वैज्ञानिकों ने फिब्रोइनके संश्लेषण करनेका उद्योग किया और उसीके सहारे अप्राकृतिक रूपसे प्राकृतिक क्षौमकी चेष्टा की किन्तु अभी तक सफल न हुई। उन्होंने अंडोंमें से १०० ग्राम अण्डसित (albumen) लेकर उसमें ९९ ग्राम पिपीलिकाम्ल और फिर १ ग्राम मधुरिन डाल कर वाष्पशील किया। इस प्रकारसे जो पारदर्शकझिल्ली मिल गई उसको वे लोग रेशमके तैयार करनेमें प्रयोग करनेकी आयोजना करते हैं। कुछ वैज्ञानिकोंका कथन है कि पशुओंकी अंतड़ियाँ अथवा अन्य झिल्लीवत् शारीरिक भाग प्रयोग करनेसे, जो कि अधिक मात्रामें फिब्रोइन रखते हैं, अनोखे प्रकारके सुन्दर नमूने उपलब्ध हो सकते हैं। प्रथम तो पिपीलिकाम्ल की न्यूनतम मात्राके प्रयोगसे अंतड़ियोंको फुलाते हैं। फूल जाने पर उनमें अधिक मात्रा डालकर पूर्ण घोल करते हैं। कुछ पिपीलिकाम्लके स्थानमें सिरकाम्लके प्रयोगको भला बताते हैं। इस रेशमके तागोंका व्यास प्राकृतिक क्षौमके तागोंके व्यासका $\frac{1}{3}-\frac{1}{4}$ तक विभिन्नित होता है। यदि गोल सूक्ष्म छिद्रकियोंके स्थानमें चौकुंठी सूक्ष्म छिद्रकियां प्रयोग करके चतुर्णकोण क्षौम उपलब्ध किया किया जावे (यद्यपि इसमें अनेक प्रयोगिक क्लिष्टताएं होते हैं) तो रेशम अधिक झंपण-शक्तिका बनता है। यह अधिक चमकसे प्रकाश का परावर्त्तन (Reflect) करता है, और यह उन दोषोंसे भी मुक्त होता है जो कि गोल तागके रेशममें चिनगारी स्वरूप तथा अनमिल परावर्त्तन (Reflection) के कारण पाये जाते हैं।

पहिले पहिलके रेशम तो अधिक निर्बल और निःकृष्ट थे और इसी कारण अपने लक्ष्यमें भी असफल रहे। किन्तु आधुनिक समयके क्षौम विभाजक-रसोंके प्रभावको भली भांति सहन कर सकते हैं और शुद्ध छिद्रोज होनेके कारण उनके जलवायुके प्रभावसे टूट फूट जानेकी सम्भावनायें भी न्यूनतम हो गई हैं। सम्प्रति गृहमें रक्खे रक्खे इस पदार्थका दार्शनिक गुण तुरन्तके कते हुए की अपेक्षा बहुत सुन्दर हो जाता है। यद्यपि थोड़े ही समयसे यह बनना आरम्भ हुआ है, परन्तु इसने संसारके वस्त्र सम्बन्धी सारे क्रय विक्रयका निरोधकर रक्खा है। चोटीसे तलवे तक का वस्त्र मनुष्य कृत्रिम क्षौमका बड़े चावसे न्यून व्यय पर पहिन सकता है। साधारण सामानके अतिरिक्त इससे अनेक अनेक अनोखी वस्तुएं तैयार होती हैं। किसी चौड़े चपटे स्थानपर रुईका एक पतला परत बिछाकर उसपर अमोनिक ताम्रका घोल डाल देते हैं। इस परतकी रुईका घोल बन जाता है फिर उसपर सैन्धक उदौषिदका घोल डालकर रुई को अवक्षेपित कर लेते हैं। इसी स्वरूपमें धो और शुष्क करके एक चादर बिना ही काते ऐंठे बन जाती है। जिस स्थानके वस्त्रकी शक्तिकी विशेष आयोजना नहीं होती उस स्थानमें यह वस्त्र प्रयोग किया जा सकता है, जैसे अस्तर इत्यादि के लिए। फिर स्निग्वीके एक पतले परतको फैलाकर उसके एक ओर अथवा दोनों ही ओर अन्य तंतु बड़ी ही शक्तिके साथ जमाए जा सकते हैं। इस प्रकार अनुकरण चर्म, फेल्ट इत्यादिके बड़े सुन्दर नमूने तैयार होते हैं। यह विशेषकर दीवालों इत्यादिकी सजावटके काममें आते हैं। हाल ही में स्निग्ध लुग्दी तथा छिद्रोज सिरकेतका मिश्रण छिद्रोजकी व्यापारिक उपलब्धि और जलबद्ध तंतुके निर्माणमें सफल हुआ है। इसीके आधार पर अति सुन्दर दृश्य भी वस्त्रों पर बनानेमें बड़ी सफलता मिली है।

अब भिन्न भिन्न प्रकारके क्षौमोंकी आपेक्षिक शक्ति देखिए। यह भिन्न भिन्न विधियों पर इतनी आधारित नहीं होती जितनी कि तापक्रम पर जिसपर वह क्षौम बनाया जाता है और भिन्न भिन्न मनुष्यों की विशेष विशेष क्रियाओं पर। इसका विशेष कारण यह है कि इसका कोई रासायनिक संगठन तो है ही नहीं, भिन्न भिन्न प्रकारोंसे तथा भिन्न भिन्न मनुष्योंसे उपलब्ध क्षौमका रासायनिक व्यवसाय भी कुछ न कुछ विभिन्न होता है। किसीमें कुछ जल अधिक होता है किसीमें कम, किसीमें प्रयोगिक अधिक अधिशोषित होते हैं, किसीमें नहीं। इसी कारण भिन्न भिन्न मनुष्यों द्वारा उपलब्ध क्षौम उन्हींके नामसे प्रचलित हो जाते हैं और वही निम्नांकित सारिणीमें दिखलाए गए हैं। शक्तिके साथ साथ कुछ अन्य भौतिक आकृतियां भी अंकित कर दी गई हैं।

क्षौम व्याख्या	भंजन भार		आपेक्षिक भार	क्लेद	वायु में तन्तु की मोटाई
	शुष्क तन्तु	क्लेदित तन्तु			
प्राकृतिक क्षौम—					
निष्कांतिमय	५३.२	४६.७ }			
अपक्व क्षौम (फ्रांस)...	५०.४	४०.९ }			

क्षौम व्याख्या	भंजन भार		आपेक्षिक भार	क्लेद	वायु में तन्तु की मोटाई
	शुष्क तन्तु	क्लेदित तन्तु			
तापित कांतिमय ”...	२५.५	१३.६			
” ” लाल रंगा और भारित	२०.६	१५.६	१.३६	४.७१°/₀ जल	१५.०० μ
” ” नीलमय काला भारित ११०°/₀	१२.१	८.०			
” ” काला ” १४०°/₀	७.९	७.३			
” ” ” ” ५५०°/₀	२.२	—			
शरडोने क्षौम निष्वर्ण	१४.७	१.७	१.५२	११.११°/₀ ”	२८.८ μ
लेह्नर ”	१७.१	४.३	१.५१	१०.४५°/₀ ”	३५.४ μ
स्त्रिह्नर्स्त ”	१५.९	४.३	१.४६	९.५३°/₀	३३.६ μ
ग्लांजटाफ कृत्रिम क्षौम	१९.२	३.२	१.५०	९.२०°/₀ ”	२९.५ μ
स्निग्धी ” ”	११.४	३.५	...	...	...
नवीन स्निग्धी ” ”	२१.५	—	...	...	...
फिज्मीज क्षौम (Fismies)	—	—	१.५२	१०.९२°/₀ ”	३०.५ μ
वालस्तन ” (Walston)	—	—	१.५३	११.३२°/₀ ”	३०.६ μ
रुई का ताग	११.५	१८.६	...	...	...

टिप्पणी १—भंजन भार किलोग्राम में है। १ स. म. के व्यासके तागोंमें इतने किलोग्राम लटकानेसे वह चीज़ भंजन बिन्दु पर हो जावेगी।

२—μ लम्बाई का न्यून परिमाण है, यह १ स. म. का सहस्रांश होता है।

———

वंगम् और सीसम्

(Tin and Lead)

[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी]

आवर्त्त संविभागके चतुर्थ समूहमें ९ तत्त्व हैं। इनमेंसे दो तत्त्व कर्बन और शैलम् तो अधातु हैं जिनका वर्णन पहले दिया जा चुका है। जर्मनम्, सीसम्, वंगम् आदि शेष ७ तत्त्वोंके भौतिकगुण नीचेकी सारिणीमें दिये जाते हैं।

इस सारिणीको देखनेसे पता चलता है कि तत्वोंका परमाणुभार ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है उनके घनत्वमें भी बहुधा वृद्धि होती जाती है पर आपेक्षिक ताप उत्तरोत्तर कम होता जाता है। इन सात धातु तत्वोंमें वंगम् और सीसम् तत्व ही अधिक विख्यात हैं। अतः इनका ही विशेष वर्णन यहाँ दिया जावेगा। इस चतुर्थ समूहके सब तत्व चतुर्शक्तिक रूपके लवण देते हैं जैसा कि उनके हरिदोंसे पता चल जावेगा।

तत्त्व	संकेत		परमाणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक	आपेक्षिक ताप
टिटेनम्	टि	Ti	४८·१	३·५४	२५००°श	—	·११३
जर्मनम्	ज	Ge	७२·५	५·४७	९५८°	—	·०७४
ज़िरकुनम्	ज़ि	Zr	९०·६	४.१५	१३००	—	·०६६
वंगम्	व	Sn	११८·७	७·२९	२३२	२२७०	·०५५२
हेफनम्	हे	Hf	१७८ (?)	—	—	—	—
सीसम्	सी	Pb	२०७·२	११·३७	३२७	१५२५	·०३०५
थोरम्	थो	Th	२३२·१५	११.३	१६९०	—	·०२८

शैह$_4$—क्वथ० ५६°८श
जह$_4$— ” ८६·°४
वह$_4$— ” ११४·१°
सीह$_4$— —१५°श पर जमता है
कह$_4$—क्वथ० ७६·°७श
टिह$_4$— ” १३६·°४
जिह$_4$— ” ऊर्ध्वं पतित हो जाता है
थोह$_4$—द्रवांक ८२०°

टिटेनम्—इलमेनाइट खनिजमें यह लोह टिटेनेत, लो टि ओ$_3$, के रूपमें पाया जाता है। इसके ओषिद खनिज, टि ओ$_2$, को विद्युत् भट्टीमें कर्बन द्वारा अवकृत करके टिटेनम् धातु प्राप्त हो सकता है। टिटेनम्-चतुर्हरिद, टिह$_4$, नीरंग द्रव है। यह ओषिद और कर्बनके मिश्रणको तप्त करके हरिन् प्रवाहित करके बनाया जाता है।

जर्मनम्—इस तत्वके यौगिक बहुत काम पाये जाते हैं। यह प्रकृतिमें गन्धक और रजतसे संयुक्त पाया जाता है इसके गुण कर्बन और शैलम्के समान हैं। यह जह$_4$, जउह$_3$ (जर्मन-हरोपिपील) आदि यौगिक देता है। दारेनके समान इसका वायव्य उदिद, जह$_4$ भी होता है।

जिरकुनम—यह लंकाके ज़िरकोन खनिजमें जिरकुन शैलेत, जिशैओ$_4$ के रूपमें पाया जाता है। इसके ओषिद, जि ओ$_2$, का विद्युत् लैम्पोंमें उपयोग किया जाता है।

हेफनम्—इस तत्वका कौस्टर और हेवेसीने सं० १६८० वि० में रोञ्जन रश्मिचित्र द्वारा अन्वेषण किया था। इसके विषयमें अभी बहुत ही कम ज्ञान है। यह दुष्प्राप्य तत्व है।

थोरम्—यह मोनेज़ाइट खनिजमें पाया जाता है। इसके ओषिद, थो ओ$_2$ (थोरिया) का विद्युत् लैम्पोंमें उपयोग होता है।

अब हम इस समूहके वंगम् और सीसम् दो मुख्य तत्वोंका विवरण देंगे। शेष तत्वोंके यौगिकों का वर्णन आगे दिया जावेगा।

खनिज

वंगम्—साइबेरिया, बोलिविया आदि स्थानों में यह धातु रूपमें भी पाया जाता है। इसका मुख्य खनिज टिन स्टोन है जिसे कैसेटराइट भी कहते हैं। यह वंग द्विओषिद, व ओ$_2$, है।

सीसम्—इसके खनिज विस्तृत रूपसे पाये जाते हैं। गेलीना; सीग, इसका मुख्य खनिज है। गेलीनामें थोड़ा सा क्वार्टज़, खटिकम्, भारम् आदि धातुओंके यौगिक एवं ०.१% रजत भी मिला रहता है। सैरूसाइट, सीस कर्बनेत, सी क ओ$_3$ और एंग्लेसाइट, सीगओ$_4$ खनिज भी समुचित मात्रामें पाये जाते हैं।

धातु-उपलब्धि

वंगम्—वंगम्के खनिजोंमें गन्धक, संक्षीणम्, लोहा और ताँबा की अशुद्धियां होती हैं। खनिज को तिरछी घूमती हुई नलिका-भट्टीमें तपाते हैं। भट्टीके ऊपरी सिरेमें से खनिज को शनैः शनैः डालते हैं। भट्टी की आगसे गन्धक और संक्षीणम् गन्धक-द्विओषिद, और संक्षीण त्रिओषिद, क्ष ओ$_3$, बनकर निकल जाते हैं क्योंकि ये उड़नशील हैं। ताम्र और लोहके ओषिद और गन्धेत बन जाते हैं। भट्टीके निम्न भागसे इस प्रकार तप्त पदार्थ को निकाल कर पानी द्वारा संचालित करते हैं। घुलनशील ताम्र और लोह-गन्धेत घुलकर पृथक् हो जाते हैं और लोह ओषिदके अनघुल कण भी घुल जाते हैं। इस प्रकार 'श्याम वंग' या ब्लैकटिन प्राप्त होता है जिसमें ६०-७०% वंगम् होता है। इसको क्षेपण भट्टीमें एन्थ्रेसाइट-कोयले के साथ गरम करते हैं। कर्बन द्वारा वंग-ओषिद का अवकरण हो जाता है और वंगम् धातु मिल जाती है :—

$$\text{व ओ}_2 + 2\,\text{क} = \text{व} + 2\,\text{क ओ}$$
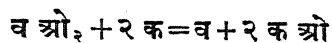
फिर इस प्रकार प्राप्त वंगम्को पिघला कर साफ़ करते हैं। धातुकी छड़ोंको क्षेपण भट्टो की अंगीठियोंमें पिघलाते हैं। शीघ्र पिघलने वाली वंगम् धातुको अलग उंडेल लेते हैं; और न पिघलने वाले पदार्थ (लोह, ताम्र, वंग तथा संक्षीणम्के धातु संकर) अङ्गीठीमें रह जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त धातुको फिर पिघलाते हैं और द्रव धातुको हरी ताज़ी लकड़ीसे टारते हैं। ऐसा करने से अन्य अशुद्धियाँ भी दूर हो जाती हैं।

सीसम्—गेलीना, सीग, से ही मुख्यतः सीसा प्राप्त किया जाता है। इस खनिज को क्षेपण भट्टी (reverberatory furnace)में पहले मामूली तापक्रम पर भूजते हैं। इस प्रकार कुछ गेलीना सीस ओषिद में और कुछ सीस गन्धेतमें परिणत हो जाता है।

$$2\,\text{सीग} + 3\,\text{ओ}_2 = 2\,\text{सीओ} + 2\,\text{गओ}_2$$

$$\text{सीग} + 2\,\text{ओ}_2 = \text{सीगओ}_4$$

तत्पश्चात् तापक्रम बढ़ाया जाता है, और कुछ चूना भी मिला दिया जाता है। इस प्रकार सवर्ष प्रक्रिया (smelting) आरम्भ होती है अर्थात् बना हुआ सीस गन्धिद् पूर्व प्रक्रियासे प्राप्त सीसओषिद और गन्धेतसे प्रभावित होता है :—

सीग + २ सी ओ = ३ सी + गओ२

सीग + सी गओ४ = २ सी + २ गओ२

इस प्रकार लगभग ९०°/० प्रतिशत खनिज सीसम् धातुमें परिणत हो जाता है। शेष १०°/० को कोयलेके साथ मिलाकर साधारण भट्टीमें अवकृत कर लेते हैं।

यदि गैलीनाका उपयोग न किया जाय और दूसरा कोई खनिज लिया जाय तो उसे भूंज कर ओषिद्में परिणत कर लेते हैं। तदुपरान्त कोयले के साथ प्रवाह भट्टी (blast furnace) में (जिसमें गरम वायु प्रवाहित होती रहती है) गरम करते हैं। इस प्रकार ओषिदका अवकरण हो जाता है और सीसम् प्राप्त हो जाता है।

२ सी ओ + २ क=२ सी + २ कओ

रजतम् और सीसम्के पृथक् करनेकी पार्कस और पैटिन्सन विधियां रजतम् का वर्णन करते समय दी जा चुकी हैं।

वंगम् और सीसम्के गुण

वंगम्—इसे साधारण बोलचालमें टीन कहते हैं। बाजारमें टीनके कनस्तर या कमरा छानेकी टीन जो मिलती है वह सर्वथा टीन ही नहीं होतो है। यह तो केवल लोहा ही होता है, केवल ऊपरसे टीनकी कलईकी होती है। वंगम्के भौतिक गुण पूर्वोल्लिखित सारिणीमें दिये जा चुके हैं। यह चमकदार श्वेत रंगका धातु है। गरम करके यह आसानीसे पिघलाया जा सकता है। झुकाकर छोड़ने पर इसमें विशिष्ट ध्वनि निकलती है। वंगम् पर वायु या नमीका प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी लिये लोहे और तांबेके बर्तनों पर इसकी कलई कर देते हैं। कलई करनेके लिये बर्तनको गरम करते हैं और पिघली हुई वंगम् धातु उंडेल देते हैं। फिर ऊपरकी सतहको एक सा कर देते हैं। थोड़ा सा नौसादर डालनेसे इस क्रिया में सहायता मिलती है। द्रवित वंगम्को वायुमें खुला छोड़नेसे ओषिद की पपड़ी पृष्ठतल पर जम जाती है। हलके अम्लों का वंगम् पर प्रभाव अत्यन्त धीरे होता है पर यह तप्त तीव्र उदहरिकाम्लमें शीघ्र घुल जाता है। यदि घोलमें थोड़ा सा पररौप्यम्के तार का टुकड़ा भी डाल दिया जाय तो धातु और भी शीघ्र घुलने लगेगी। प्रक्रियामें वंगस हरिद, वह२, बनता है।

व + २ उह=वह२ + उ२

हलके गन्धकाम्ल का वंगम् पर धीरे धीरे प्रभाव पड़ता है और वंगस गन्धेत, वगओ४, बनता है—

व + उ२ गओ४ = व गओ४ + उ२

पर यदि तप्त तीव्र गन्धकाम्ल द्वारा प्रक्रियाकी जाय तो वंगिक गन्धेत, व (ग ओ४)२, बनता है और गन्धक द्विओषिद् निकलने लगता है। जलरहित तीव्र नोषिकाम्लका वंगम् पर कोई प्रभाव नहीं होता है पर थोड़ेसे भी जलकी विद्यमानतामें प्रक्रिया ज़ोरोंसे होती है और मध्यवंगिकाम्ल (meta-stannic), उ२ व५ ओ११ का श्वेत चूर्ण मिलता है। गरम क्षारोंके घोलमें वंगम् घुल जाता है और सैन्धक वंगेत, पांशुज वंगेत आदि लवण प्राप्त होते हैं।

वंगम्को एक दम ठंडा करनेसे (५०°श तक) खाकी चूर्ण प्राप्त होता है। १८°—१७०° तक का वंगम् स्थायी और रवेदार होता है, और १८°श के नीचे दूसरे प्रकार का अस्थायी वंगम् रहता है।

वंगम् अनेक धातुओंके साथ धातु-संकर देता है। कुछ धातु संकर ये हैं:—

कांसा या ब्रौञ्ज़—९·२ भाग वंगम्, ०·७ भाग सीसा, ८८·८ भाग तांबा और १·३ भाग दस्तम्।

गनमैटल (बन्दूक की धातु)—८ भाग वंगम्, ९२ भाग तांबा।

तत्पश्चात् तापक्रम बढ़ाया जाता है, और कुछ चूना भी मिला दिया जाता है। इस प्रकार सवर्ष प्रक्रिया (smelting) आरम्भ होती है अर्थात् बचा हुआ सीस गन्धिद पूर्व प्रक्रियासे प्राप्त सीसओषिद और गन्धेतसे प्रभावित होता है :—

सीग + २ सी ओ = ३ सी + गओ$_2$

सीग + सी गओ$_4$ = २ सी + २ गओ$_2$
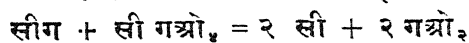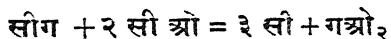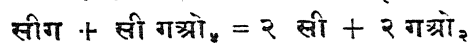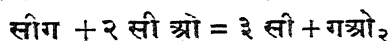
इस प्रकार लगभग ६०% प्रतिशत खनिज सीसम् धातुमें परिणत हो जाता है। शेष ४०% को कोयलेके साथ मिलाकर साधारण भट्टीमें अवकृत कर लेते हैं।

यदि गैलीनाका उपयोग न किया जाय और दूसरा कोई खनिज लिया जाय तो उसे भूंज कर ओषिदमें परिणत कर लेते हैं। तदुपरान्त कोयले के साथ प्रवाह भट्टी (blast furnace) में (जिसमें गरम वायु प्रवाहित होती रहती है) गरम करते हैं। इस प्रकार ओषिदका अवकरण हो जाता है और सीसम् प्राप्त हो जाता है।

२ सी ओ + २ क = २ सी + २ कओ

रजतम् और सीसम्के पृथक् करनेकी पार्कस और पैटिन्सन विधियां रजतम् का वर्णन करते समय दी जा चुकी हैं।

वंगम् और सीसम्के गुण

वंगम्—इसे साधारण बोलचालमें टीन कहते हैं। बाजारमें टीनके कनस्तर या कमरा छानेकी टीन जो मिलती है वह सर्वथा टीन ही नहीं होतो है। यह तो केवल लोहा ही होता है, केवल ऊपरसे टीनकी कलईकी होती है। वंगम्के भौतिक गुण पूर्वोल्लिखित सारिणीमें दिये जा चुके हैं। यह चमकदार श्वेत रंगका धातु है। गरम करके यह आसानीसे पिघलाया जा सकता है। झुकाकर छोड़ने पर इसमें विशिष्ट ध्वनि निकलती है। वंगम् पर वायु या नमीका प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी लिये लोहे और तांबेके बर्तनों पर इसकी कलई कर देते हैं। कलई करनेके लिये बर्तनको गरम करते हैं और पिघली हुई वंगम् धातु उंडेल देते हैं। फिर ऊपरकी सतहको एक सा कर देते हैं। थोड़ा सा नौसादर डालनेसे इस क्रिया में सहायता मिलती है। द्रवित वंगम्को वायुमें खुला छोड़नेसे ओषिद की पपड़ी पृष्ठतल पर जम जाती है। हलके अम्लों का वंगम् पर प्रभाव अत्यन्त धीरे होता है पर यह तप्त तीव्र उदहरिकाम्लमें शीघ्र घुल जाता है। यदि घोलमें थोड़ा सा पररौप्यम्के तार का टुकड़ा भी डाल दिया जाय तो धातु और भी शीघ्र घुलने लगेगी। प्रक्रियामें वंगस हरिद, वह$_2$, बनता है।

व + २ उह = वह$_2$ + उ$_2$

हलके गन्धकाम्ल का वंगम् पर धीरे धीरे प्रभाव पड़ता है और वंगस गन्धेत, वगओ$_4$, बनता है—

व + उ$_2$ गओ$_4$ = व गओ$_4$ + उ$_2$

पर यदि तप्त तीव्र गन्धकाम्ल द्वारा प्रक्रियाकी जाय तो वंगिक गन्धेत, व (ग ओ$_4$)$_2$, बनता है और गन्धक द्विओषिद निकलने लगता है। जलरहित तीव्र नोषिकाम्लका वंगम् पर कोई प्रभाव नहीं होता है पर थोड़ेसे भी जलकी विद्यमानतामें प्रक्रिया ज़ोरोंसे होती है और मध्यवंगिकाम्ल (meta-stannic), उ$_2$ व$_5$ ओ$_{11}$ का श्वेत चूर्ण मिलता है। गरम क्षारोंके घोलमें वंगम् घुल जाता है और सैन्धक वंगेत, पांशुज वंगेत आदि लवण प्राप्त होते हैं।

वंगम्को एक दम ठंडा करनेसे (५०°श तक) खाकी चूर्ण प्राप्त होता है। १८°—१७०° तक का वंगम् स्थायी और रवेदार होता है, और १८°श के नीचे दूसरे प्रकार का अस्थायी वंगम् रहता है।

वंगम् अनेक धातुओंके साथ धातु-संकर देता है। कुछ धातु संकर ये हैं:—

कांसा या ब्रौञ्ज—९·२ भाग वंगम्, ०·७ भाग सीसा, ८८·८ भाग तांबा और १·३ भाग दस्तम्।

गनमैटल (बन्दूक की धातु)—८ भाग वंगम्, ९२ भाग तांबा।

ब्रिटेनिया मैटल—८२ भाग वंगम्, २ भाग दस्तम्, १६ भाग आंजनम्।

सोल्डर—५० भाग वंगम् और ५० भाग सीसा।

वंगम्के यौगिक दो प्रकारके होते हैं। वंगस (stannous) जिसमें वंगम् द्विशक्तिक होता है जैसे वंगस हरिद, वह$_2$। दूसरे वंगिक (stannic) जिसमें वंगम् चतुर्शक्तिक होता है जैसे वंगिक हरिद, वह$_4$।

सीसा—स्वच्छ सीसा तो चांदीके समान सफेद होता है पर साधारणतः यह नीलापन लिये हुए कुछ मटमैला मिलता है। यह इतना नरम होता है कि चाकूसे भी काटा जा सकता है। कागज पर घिसनेसे यह काले रंगका निशान देता है। इसका द्रवांक ३२८° है और केवल ओष-उद्जन ज्वालाके तापक्रम पर ही उबल सकता है।

वायुमें गरम करने पर यह धीरे धीरे सीस-एकौषिद (लिथार्ज) सी ओ, में परिणत होने लगता है। यह उदहरिकाम्ल एवं हलके गन्धकाम्ल में अनघुल है पर हलके नोषिकाम्लमें शीघ्र घुल जाता है। प्रक्रियामें सीस-नोषेत, सी (नो ओ$_3$)$_2$ और सीस गन्धेत, सी ग ओ$_4$ बनते हैं। यदि हरिन् या गन्धकके साथ गरम किया जाय तो यह क्रमशः हरिद और गन्धिद देगा।

सीसम् विषकारक भी है। थोड़ीसी मात्राका विषैला प्रभाव कम होता है पर थोड़ी थोड़ी मात्रा यदि शरीरमें प्रविष्ट होती रहे तो फिर शरीरमें संचित सीसा भयंकर गुण दिखाने लगता है। पानीके नलोंके निर्माणमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये।

सीसाके अनेक धातु संकर बनते हैं। सोल्डर का उल्लेख ऊपर आचुका है। छापेखानेके टाइप भी इससे बनाये जाते हैं। इनमें ५० भाग सीसा २५ भाग वंगम् और २५ भाग आंजनम् होता है।

संयोग तुल्यांक और परमाणु भार

यह ऊपर कहा जा चुका है कि वंगम् दो श्रेणियोंके लवण देता है—वंगस और वंगिक। वंगिक लवणोंमें वंगम्का संयोग तुल्यांक निकालनेके लिये लवणको पहले अमोनिया द्वारा अवक्षेपित कर गरम करके वंगिक ओषिदमें परिणत कर लेते हैं। वंगिक ओषिदकी मात्रा ज्ञात होनेसे वंगम्का संयोग तुल्यांक निकाला जा सकता है। इस प्रकार वंगिक लवणोंमें संयोग तुल्यांक २९.६७५ मिलता है। वंगम् का आपेक्षिक ताप ०.०५५२ है जिसके अनुसार इसका परमाणुभार ६.४/०.०५५२=११६ के लगभग निकलता है। इससे प्रतीत होता है कि वंगम् का परमाणुभार वंगिक लवणोंमें निकाले गये संयोग तुल्यांक का चार गुना है अर्थात् २९.६७५ × ४=११८.७ है। वंगिक लवणोंमें वंगम् चतुर्शक्तिक है।

वंगस लवणोंमें वंगम्का संयोग तुल्यांक वंगिक लवणोंमें के संयोग तुल्यांक की अपेक्षा ठीक दुगुना है अर्थात् ५९.३५० है। इससे स्पष्ट है कि वंगस लवणोंमें वंगम् द्विशक्तिक है।

सीसम्—स्टासने सीसम्का संयोग तुल्यांक इस प्रकार निकाला। शुद्ध सीसम् की ज्ञात मात्रा को उसने तीव्र नोषिकाम्लमें घुलाया। इस प्रकार प्राप्त घोलको उसने वाष्पीभूत करके जितना सीस-नोषेत मिला उसे तौल लिया। इस प्रकार १ भाग सीसम्से १.५९८६ भाग सीसनोषेत मिला। कल्पना करो कि सीसनोषेतमें नोषेत मूलों, नोओ$_3$, की 'न' संख्या प्रत्येक सीस परमाणुसे संयुक्त है—सी (नोओ$_3$)$_न$। नोषेतमूल का भार =१४+४८=६२। प्रयोग से मालूम हुआ किः—

·५९८६ भाग नोषेतमूल १ भाग सीसेसे संयुक्त

अतः—१ ... ... $\frac{१}{·५९८६}$ ... ...

६२ ... ... $\frac{६२}{·५९८६}$ =१०३.६ ...

इस प्रकार सीसम्का संयोग तुल्यांक १०३.६ है। सीसम्का आपेक्षिकताप ०.०३०५ है अतः परमाणुभार ६.४/०.३०५=२१६ के लगभग हुआ अर्थात् ठीक परमाणुभार संयोग तुल्यांक का दुगुना अर्थात् १०३.६ × २=२०७.२ है। इस प्रकार सीसम् द्विशक्तिक है।

सीसम् वंगम्के समान चतुर्शक्तिक होकर सीसिक ओषिद, सीओ२, और सीसिक हरिद—सीह४ के समान भी लवण दे सकता है पर इसके द्विशक्तिक लवण ही अधिक मुख्य हैं। वंगस लवणोंके समान सीस-द्विशक्तिक लवणोंमें अवकारक गुण भी नहीं हैं। सीसिक लवण अधिकतर अस्थायी हैं।

ओषिद

वंगिक ओषिद—व ओ२—कैसेटराइट नामक खनिजके रूपमें यह पाया जाता है। वंगम् को तीव्र नोषिकाम्लमें घोलकर वंगनोषेत बनाया जाता है। इस नोषेतको रक्त तप्त करनेसे वंगिक ओषिद मिल जायगा और नोषसवाष्प उड़ जायंगी यह श्वेतचूर्ण है जो उच्च तापक्रम पर कुछ भूरा हो जाता है पर ठंडा पड़ने पर फिर सफेद हो जाता है।

वंगक लवणोंमें सैन्धक ओषिद डालनेसे वंगिक-उदौषिद, व (ओउ)४ का झिल्लीदार अवक्षेप प्राप्त होता है जिसे गरम करनेसे भी वंगिक ओषिद मिल सकता है उस अवक्षेप में यदि सैन्धक उदौषिद्का तीव्र घोल डाला जाय तो यह घुल जायगा। घोलमें सैन्धक वंगेत, सै२ व ओ३, लवण बन जायगा जिस प्रकार सैन्धक स्फटेत आदि बनते हैं।

व (ओउ)४ + २ सैओउ = सै२ व ओ३ + ३ उ२ओ

उदविश्लेषण होनेके कारण इस लवणके घोल क्षारीय होते हैं। वाष्पीभूत करके सैन्धक वंगेतके रवे प्राप्त हो सकते हैं जिनमें स्फटिकी करणके तीन जलाणु होते हैं।

वंगिक ओषिद शैलओषिद्के समान उदहरिकाम्ल, नोषिकाम्ल आदिमें अनघुल है। पर यदि सैन्धक कर्बनेतके साथ गलाया जाय तो इसका सैन्धक वंगेत, सै२ व ओ३ बन जाता हैः—

सै२ क ओ३ + व ओ२ = सै२ व ओ३ + क ओ२

इस लवणके घोलमें यदि उदहरिकाम्ल डाला जाय तो वंगिक उदौषिद्का झिल्लीदार अवक्षेप मिलेगा। वंगिक हरिद्के घोलमें थोड़ासा सैन्धक उदौषिद डालकर पार्चमेण्टके थैलेमें घोल भरकर थैलेको कई दिन तक स्रवित जलमें डुबाये रखनेसे कलाई घोल (colloidal solution) मिलेगा।

वंगम् धातु पर नोषिकाम्लके प्रभाव द्वारा श्वेत चूर्ण प्राप्त होता है जो अम्लोंमें अनघुल है पर सैन्धकक्षारमें घुलजाता है। यह चूर्ण मध्य वंगिकाम्ल का बताया जाता है जो क्षारके संयोगसे घुलनशील सैन्धक मध्य वंगेत, सै२ व५ ओ११ देता है।

वंगस ओषिद—व ओ—वंगस हरिद्के घोलमें किसी क्षारका घोल डालनेसे वंगस उदौषिद्का अवक्षेप मिलेगा। यह स्फट उदौषिद्के समान अम्लों और क्षारों दोनोंमें घुल जाता है, पर अमोनियामें नहीं घुलता है। यह वायुसे ओषजन अभिशोषित करके वंगिक ओषिदमें परिणत हो जाता है। पर यदि कर्बनद्विओषिद्के प्रवाहमें इसे सावधानीसे शुष्क करें तो वंगस ओषिद्का काला चूर्ण प्राप्त होगा। यह चूर्ण वायुमें गरम करने पर जल उठता है और वंगिक ओषिद बन जाता है।

सीस ओषिद, सी ओ-या लिथार्ज—सीसम् धातु को वायुमें गरम करनेसे यह पीले रूपका प्राप्त होता है। इसे ही फिर और रक्ततप्त करनेसे लाल चूर्ण मिलता है जो दूसरा उच्च ओषिद, सी३ ओ४, है। उदजन प्रवाहमें गरम करनेसे इन ओषिदोंका अवकरण हो जाता है। कर्बनके साथ गरम करनेसे भी यही फल होता है और सीसम् धातु रह जाती है। सीस ओषिद नोषिकाम्लमें घुलनशील है, और घुलकर नोषेत देता है। इस ओषिदसे ही सीसम्के अन्य लवण बनाये जाते हैं।

सीसके लवण घोलमें क्षारका घोल डालनेसे सीस उदौषिद, $सी_2$ ओ $(ओउ)_2$ का श्वेत अवक्षेप मिलता है जो जलमें थोड़ा सा ही घुलनशील है। इसका घोल लाल द्योतक पत्रको नीला कर देता है।

सीसद्विओषिद—$सीओ_2$—लाल सीसा अर्थात् $सी_3$ $ओ_4$ को तीव्र नोषिकाम्ल द्वारा प्रभावित करनेसे सीस नोषेत और सीस द्विओषिद दोनों बनते हैं :—

$सी_3$ $ओ_4$ + ४ उ नो $ओ_3$

= २ सी $(नोओ_3)_2$ + सी $ओ_2$ + $२उ_2$ ओ।

इसमें जल डालने के सीस नोषेत तो घुल जायगा और द्विओषिदका भूरा पदार्थ रह जायगा। सीस एकौषिद, सी ओ, पर रंग विनाशक चूर्ण या सैन्धक उपहरित का प्रभाव डालने से भी यह बनता है :—

सीओ + सै ओ ह = सी $ओ_2$ + सैह

सीस लवणके अम्लीय घोलको परारौप्यम्-बिजलोदोंके बीचमें विद्युत् विश्लेषित करने से सीस द्विओषिद धनोद पर संग्रहीत हो जाता है।

सीसेत—(plumbate) सीस एकौषिद को चूने के साथ वायुमें गरम करने से खटिक सीसेत, $ख_2$ $सीओ_4$ बनता है। १०० ग्राम दाहक पांशुज क्षार और ३० ग्राम पानीके साथ सीस द्विओषिद को चांदी की प्यालीमें गलाने से पांशुज सीसेत बनता है। इस प्रकार प्राप्त पदार्थके क्षारीय घोल को वाष्पीभूत करने से पांशुज सीसेत, $पां_2$ $सीओ_3$, ३ $उ_2$ ओ, के रवे मिलेंगे।

हरिद, अरुणिद और नैलिद

वंगिक हरिद, $वह_4$—वंगम् को हरिन्के प्रवाह में भभकेमें गरम करने से उड़नशील धुंआदार नीरंगद्रव प्राप्त होता है जो वंग चतुर्हरिद या वंगिक हरिद कहलाता है। यह थोड़ेसे ही जलमें घुलनशील है। घुलकर यह कई प्रकारके रवेदार उद्येत देता है—$वह_4$, ३ $उ_2$ ओ, या $वह_4$ $५उ_2$ओ इत्यादि। पारदिक हरिद और वंगम्के संयोगसे भी यह मिलता है :—

	$वह_4$	$वरु_4$	$वनै_4$	$वप्ल_4$
द्रवांक	—३३°	३०°	१४३५°	ऊर्ध्वपातन
क्वथनांक	११४·१	२०१°	३४०°	७०५°
घनत्व	२·२३४/१५°	३.३४६/३५°	४.६९६	४७८
	नीरंग प्रबल धुंआ-दार द्रव	श्वेत धुंआदार रवे-दार ठोस	नीला, स्थायी, अष्टतलीय रवे	श्वेत पसीजने वालेके रवे

२ पाह$_2$ + व=वह$_4$ + २ पा

वंगिक नैलिद—व नै$_4$ और वंगिक अरुणिद, वरु$_4$, वंगम् धातु और लवणजनोंके संयोग से मिलते हैं। वंगिक हरिद और अनार्द्र उदप्लविकाम्लके संयोगसे वंगिक प्लविद मिलता है।

सीस हरिद—सीह$_2$—सीसम् धातु को हरिन् में तपाने से हरिद धीरे धीरे बनता है। तप्त तीव्र उदहरिकाम्ल भी सीसम् को घुला कर सीस-हरिद देता है—

सी + २ उह = सीह$_2$ + उ$_2$

किसी घुलनशील सीस लवणमें किसी हरिद का घोल डालनेसे सीस हरिदका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है:—

सी (नोओ$_3$)$_2$ + २ सैह = सी ह$_2$ + २ सै नोओ$_3$

सीस हरिद जलमें बहुत कम (१°/$_\circ$) घुलनशील है पर गरम जलमें अधिक घुल जाता है (३.२°/$_\circ$)। इसके घोलको ठंडा करनेसे रवेदार अनार्द्र रवे प्राप्त होते हैं। इसका द्रवांक ४९८° और क्वथनांक ९५६°श है। यह तीव्र उदहरिकाम्लमें घुल कर उदहरो-सीससाम्ल, (hydrochloro plumbous acid) उ$_2$ सीह$_4$, देता है।

सीसलवण के घोलमें पांशुज नैलिद डालनेसे सीस-नैलिद सी नै$_2$, का पीला अवक्षेप मिलेगा जो गरम करने पर घुल जायगा। घोलके ठंडे होने पर फिर सुनहरे सुन्दर रवे पृथक् होने लगेंगे। सीस-अरुणिद, सीरु$_2$ और सीस-प्लविद, सी प्ल$_2$, भी सीस लवणको पांशुज अरुणिद या प्लविद द्वारा अवक्षेपित करके बनाये जा सकते हैं।

सीस द्विओषिदको ठंडे तीव्र उदहरिकाम्लमें घोलकर हरिन् प्रवाहित करनेसे उदहरो-सीसिकाम्ल, उ$_2$ सीह$_6$ का भूरा घोल प्राप्त होता है।

वंगस-हरिद,—वह$_2$—वंगम् धातुको संपृक्त उदहरिकाम्ल में घोलनेसे वंगस हरिद का घोल प्राप्त होता है। यदि उदहरिकाम्ल में छोटा सा परदौप्यम् के तारका टुकड़ा भी डाल दिया जाय तो यह प्रक्रिया और भी अधिक शीघ्रतासे होती है। घोलको वाष्पीभूत करने वंगस हरिद के रवे प्राप्त हो सकते हैं। यह जलमें भली प्रकार घुलनशील है पर यदि जलकी बहुत मात्रा ली जायगी तो वंग ओष हरिद, व (ओउ) ह, का श्वेत अवक्षेप आ जायगा। यह अवक्षेप उदहरिकाम्ल में घुलनशील है। वंगस हरिदका घोल वायुमें रक्खा रक्खा ओषदीकृत होकर वंगिक हरिद बन जाता है।

वंगस हरिदमें प्रबल अवकारक गुण विद्यमान हैं। यह पारदिक हरिदके घोलको अवकृत करके पारदसहरिदका अवक्षेप दे देता है—

२पाह$_2$ + वह$_2$ = वह$_4$ + २पाह

यदि प्रक्रिया आगे और चलने दी जाय तो पारदस हरिद फिर पारद धातुमें परिणत हो जाता है!

२पाह + वह$_2$ = वह$_4$ + २पा

इसी प्रकार ताम्रिक हरिद एवं लोहिक हरिद को अवकृत करके यह क्रमशः ताम्रस और लोहस हरिद दे देता है—

२ताह$_2$ + वह$_2$ = ता$_2$ह$_2$ + वह$_4$

२लोह$_3$ + वह$_2$ = २लोह$_2$ + वह$_4$

उदहरिकाम्लकी विद्यमानता में यह नैलिन् का अवकरण कर देता है और उदनैलिकाम्ल प्राप्त होता है :—

२ नै + वह$_2$ + २ उह = वह$_4$ + २ उ नै

इसी प्रकार तीव्र नोषिकाम्ल द्वारा भी यह वंगिक हरिदमें परिणत हो जाता है।

३ वह$_2$ + ६ उह + २ उ नोओ$_3$

= ३ वह$_4$ + २ नोओ + ४उ$_2$ ओ

इन प्रक्रियाओंसे वंगसहरिदके अवकरण-गुण स्पष्ट हैं। कार्बनिक प्रक्रियाओं में इस गुणके कारण इसका बहुत उपयोग किया जाता है।

वंग और सीस गन्धिद

वंगस गन्धिद—वग – वंगस हरिद्के घोलमें उद्जन-गन्धिद प्रवाहित करनेसे वंगस गन्धिदका भूरा अवक्षेप मिलता है। यह अवक्षेप उदहरिकाम्ल एवं नीरंग अमोनिदम गन्धिदमें अनघुल है। पर पीत अमोनियम गन्धिद जिसमें गन्धककी मात्रा अधिक होती है, यह घुल जाता है। इस प्रक्रियामें वंगस गन्धिद गन्धकसे संयुक्त होकर वंगिक गन्धिदमें परिणत होता है और फिर गन्धको-वंगेत बनकर घुल जाता है। गन्धक और वंगम् धातुकी उपयुक्त मात्राओंको साथ गलानेसे भी काले रंगका वंगस गन्धिद प्राप्त होता है।

वंगिक गन्धिद—वग$_2$, वंगम् धातुके बुरादेको गन्धक और अमोनियम हरिद्के साथ गरम करने से वंगिक गन्धिदका सुनहरे पत्रोंके रूपमें ऊर्ध्वपतन होने लगता है। वंगिक हरिद्के घोलमें उद्जन गन्धिद प्रवाहित करनेसे वंगिक गन्धिदका पीला अवक्षेप मिलता है। यह अमोनियम गन्धिदमें घुल जाता है। प्रक्रियामें अमोनियम गन्धको-वंगेत बनता है—

$$\text{वग}_2 + (\text{नोउ}_4)_2 \text{ग} = (\text{नोउ}_4)_2 \text{वग}_3$$
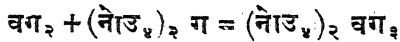
सीस गन्धिद—सीग-यह गेलीना खनिजके रूपमें उपलब्ध होता है। गन्धककी वाष्पोंमें सीसम् को गरम करनेसे भी यह मिल सकता है। सीस लवणके घोलमें उद्जनगन्धिद प्रवाहित करनेसे भी इसका काला अवक्षेप प्राप्त होता है। यह उदहरिकाम्ल एवं अमोनियम गन्धिदमें अनघुल है पर गरम हलके नोषिकाम्लमें सीस नोषेत बन कर यह घुल जाता है। पर यदि तीव्र नोषिकाम्ल का उपयोग किया जाय तो गन्धिदका कुछ अंश ओषदीकृत होकर अनघुल सीस गन्धेतमें भी परिणत हो जाता है। उद्जन परौषिदके संसर्गसे यह गन्धिद अति शीघ्र ही गन्धेतमें परिणत हो जाता है।

$$४\text{उ}_2\text{ओ}_2 + \text{सीग} = \text{सीगओ}_4 + ४\text{उ}_2\text{ओ}$$
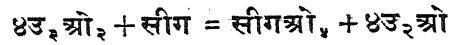
सीस सिरकेत द्वारा छन्ना-कागज़ को भिगो-कर उद्जन गन्धिद की वाष्पोंका स्पर्श करने से सीस गन्धिदका भूरा धब्बा पड़ जाता है। इस विधिसे उद्जन गन्धिद की पहिचान की जाती है।

अन्य लवण

वंगस नोषेत—व (नोओ$_3$)$_2$—वंगम् धातु पर बहुत हलके नोषिकाम्लके प्रभावसे यह प्राप्त होता है।

सीस नोषेत, सी (नोओ$_3$)$_2$—लिथार्ज (सीस एकौषिद) को नोषिकाम्लमें घोलकर वाष्पीभूत करने से सीस नोषेत प्राप्त होता है। इसके अष्टतलीय श्वेत रवे होते हैं, जो जलमें सरलतया घुल जाते हैं। नोषेत को गरम करने से सीसम्का लाल ओषिद, सी$_3$ ओ$_4$, प्राप्त होता है।

सीस गन्धेत, सीगओ$_4$—सीस लवणके घोलमें किसी गन्धेतका घोल अथवा गन्धकाम्ल डालने से सीस गन्धेतका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है। यह जलमें सर्वथा अनघुल है। पर सैन्धक उदौषिद अथवा तीव्र गन्धकाम्ल और तीव्र उदहरिकाम्ल में घुल जाता है। सफेद पेण्ट या वार्निश बनाने में इसका उपयोग किया जाता है।

सीसकर्बनेत, सीकओ$_3$—सीस नोषेतके घोल में अमोनियम कर्बनेतका घोल डालने से सीस-कर्बनेतका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता हैं। यह अवक्षेप कर्बनद्विओषिद की विद्यमानतामें धीरे-धीरे घुलने लगता है। भस्म कर्बनेत, २ सीकओ$_3$ + सी-(ओ उ)$_2$ को श्वेत सीसा (white lead) कहते हैं और श्वेत पेंटोंमें इसका उपयोग किया जाता है। यह श्वेत सीसा अनेक विधियोंसे बनाया जाता है। लिथार्ज, सीओ, को पानी और सैन्धक अर्धकर्बनेतके साथ पीसने से यह बनाया जा सकता है।

डचविधिमें यह इस प्रकार बनाते हैं कि सीस-पत्रोंके सर्पिलों (Spiral) के निम्न भागको चार

पांच सप्ताह तक सिरके में डुबो रखते हैं और ऊपरसे गोबर या विष्ठासे ढक देते हैं। सिरकेके प्रभावसे सीसा सीस सिरकेतमें परिणत होजाता है। विष्ठामेंसे निकला हुआ कर्बन द्विओषिद इस सिरकेत को श्वेत सीसामें परिणत कर देता है। इस प्रकार फिर सिरकाम्ल मुक्त होजाता है जो फिर शेष सीसम् को प्रभावित करता है।

सीससिरकेत, सीस-शर्करा—सी (कउ$_3$ कओ-ओ)$_2$ + ३उ$_2$ ओ—लिथार्ज को सिरकाम्लमें घोलने से यह प्राप्त होता है। यह मीठे स्वाद का होता है अतः इसे सीस-शर्करा कहते हैं। इसके सूच्याकार घुलनशील रवे होते हैं।

सोसरागेत, सीराओ$_4$—किसी घुलनशील शाश-लवणमें पांशुज रागेतका घोल डालनेसे सीस रागेत का पीला अवक्षेप आता है। यह अवक्षेप हलके नोषिकाम्लमें अनघुल है पर तीव्र नोषिकाम्लमें घुल जाता है। सीस-लवणोंमें यह सबसे कम घुल-नशील है। अमोनियम सिरकेत की विद्यमानतामें यह पूर्णतः अवक्षेपित हो सकता है। यह अवक्षेप तीव्र दाहक सैन्धक क्षारके घोलमें घुलकर पीला द्रव देता है। प्रक्रियामें सैन्धक सीसित सै$_2$ सी-ओ$_2$, बनता है :—

सी राओ$_4$ +४ सै ओउ

= सै$_2$ सी ओ$_2$ + सै$_2$राओ$_4$ + २उ$_2$ओ

सीस रागेत, सी रा ओ$_4$, को हलके दाहक क्षारके घोलके साथ उबालने से नारंगी और लाल रंगके भस्मिक रागेत प्राप्त होते हैं।

अमोनियम सिरकेत की विद्यमानतामें सीस नोषेतके घोलमें पांशुज द्विरागेत का घोल डालने से भी सीसरागेत बन सकता है। सीस रागेत सीस गन्धेतके साथ मिलाकर पीली वार्निश का काम देता है।

सीस स्फुरेत, सी$_3$ (स्फुओ$_4$)$_2$ और सी स्फु$_2$ओ$_7$-सीस सिरकेतके घोलमें सैन्धक स्फुरेत डालने से इनका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है।

———

टिटेनम् (Titanium), टि, Ti

यह कहा जा चुका है कि टिटेनम् ओषिद को विद्युत भट्टी में कर्बन के साथ गरम करने से टिटेनम् धातु मिलती है। यह धातु ठंडे हलके गन्धकाम्ल में घुलनशील है, और घुलने पर उद्जन निकलने लगता है। तप्त तीव्र नोषिकाम्ल और अम्लराज में भी घुल जाती है। इस तत्त्वके तीन प्रकारके ओषिद होते हैं। टिटेनम्-द्विओषिद, टिओ$_2$; टिटेन-एकार्ध (Sesqui) ओषिद, टि$_2$ओ$_3$; और परौषिद, टि ओ$_3$। द्विओषिद खनिजोंमें पाया जाता है। इस द्विओषिद को उद्जनके प्रवाह में गरम करके उद्जन-प्रवाहमें ही ठंडा करने पर एकार्ध ओषिद मिलता है। टिटेन-हरिद में अमोनिया डालने से टिटेन द्विउदौषिद का अवक्षेप आता है। टिटेन हरिद को हलके मद्य में डालकर उद्जन परौषिद द्वारा प्रभावित करने से त्रिओषिद या परौषिद, टिओ$_3$, मिलता है। शैलिकाम्ल के समान टिटेनिकाम्ल भी पूर्व, मध्य आदि पाये जाते हैं—पूर्व टिटेनिकाम्ल, टि (ओउ)$_4$, मध्य टिटेनिकाम्ल, टि ओ (ओउ)$_2$। इसके लवण टिटेनेत कहलाते हैं। पांशुज टिटेनेत, पां$_2$ टि ओ$_3$, टिटेन-द्विओषिद को दाहक पांशुज क्षारके साथ गलानेसे मिलता है। टिटेन-द्विओषिद को खटिकप्लविदके साथ मिलाकर धूम्रित गन्धकाम्ल द्वारा परौप्यम् के बर्तन में स्रवित करने से टिटेन चतुर्प्लविद, टिप्ल$_4$, बनता है। टिटेन द्विओषिद, पांशुजप्लविद और उद्प्लविकाम्ल के संसर्ग से पांशुजटिटेनो-प्लविद, पां$_2$ टिप्ल$_6$, नामक द्विगुण लवण मिलता है। टिटेनम् धातु हरिन् में गरम करनेसे जल उठती है और टिटेन चतुर्हरिद, टिह$_4$, बनजाता है। यह नीरंग द्रव है और वंग चतुर्हरिदके समान माना जासकता है। इसकी वाष्पों को उद्जनके साथ रक्ततप्त नली में प्रवाहित करने से टिटेनत्रिहरिद, टिह$_3$, प्राप्त होता है। यह बैंजनी रंग का पदार्थ है और इसमें प्रबल अवकारक गुण हैं।

टिटेनम् धातु को हलके गन्धकाम्लसे प्रभावित करने पर टिटेन गन्धेत टि₂ (गओ₄)₃ प्राप्त होता है। टिटेन द्विओषिद को अमोनिया गैस में जोरोंसे जलाने पर टिटेन द्विनोषिद, टिनो₂, मिलता है। टिटेन-एक-नोषिद, टिनो, द्विओषिदको विद्युत भट्टी में नोषजनके साथ गरम करने से मिल सकता है।

जर्मनम् (Germanium), ज, Ge

जर्मन द्विओषिदको कर्बन के साथ रक्त तप्त करने से जर्मन धातु मिलती है। यह भंजन शील-चमकदार पदार्थ है जो उच्च तापक्रम पर तप्त करके ओषिद में परिणत किया जासकता है। यह उदहरिकाम्ल में अनघुल है। पर अम्लराजमें घुल जाता है। नोषिकाम्ल के प्रभाव से यह द्विओषिद, ज ओ ₂, देता है। इस द्विओषिद को उद्प्लविकाम्ल में घोलकर पांशुज प्लविद डालने से पांशुज जर्मन प्लविद, पां₂ ज प्ल₆, मिलता है जर्मनम् और हरिन् के संयोग से अथवा जर्मनम्को पारदिक हरिद के साथ गरम करके जर्मन चतुर्हरिद, जह₄, मिलता है। यह नीरंग द्रव है। जर्मन द्विओषिद के घोल में उदजन-गन्धिद प्रवाहित करने से जर्मन द्विगन्धिद, ज ग₂, मिलता है।

ज़िरकुनम् (Zirconium), जि, Zr.

जिरकोन खनिज, जि शै ओ₄, को परौप्यम्के बर्तन में पांशुजप्लविद और उद्प्लविकाम्ल के साथ गरम करने से घुलनशील पांशुज-जिरकुनोप्लविद, पां₂ जिप्ल₆ और अनघुल पांशुज शैल प्लविद बनते हैं। इस प्रकार छानकर शैल प्लविदको अलग किया जा सकता है। पांशुज जिरकुनो प्लविदके रवों को गन्धकाम्लके साथ गरम करके उद् प्लविकाम्ल अलग उड़ा देते हैं और जिरकुन गन्धेतमें अमोनिया डालकर जिरकुन द्विओषिद, जिओ₂, प्राप्त कर लेते हैं। इस द्विओषिद को कर्बनके साथ विद्युत् भट्टीमें गरम करने से जिरकुनम् धातु मिल सकती है। यह धातु रक्त तप्त करने पर वायु द्वारा ओषदीकृत नहीं होती है। हरिन् या उदहरिकाम्ल वायव्यमें, गरम करनेसे यह हरिद, जिह₄, में परिणत हो जाती है। दाहक पांशुज क्षारके घोलमें यह घुल जाती है और उदजन निकलने लगता है। गरम करने पर भी उद्प्लविकाम्लके अतिरिक्त अन्य अम्लोंका इस पर प्रभाव नहीं होता है। अम्लराज इसे ओषिदमें परिणत कर देता है। ज़िरकुन द्विओषिद और कोयलेके तप्त मिश्रण पर हरिन् प्रवाहित करनेसे ज़िरकुन हरिद, जिह₄, बनता है।

ज़िरकुन द्विओषिद और गन्धकाम्लके घोलको वाष्पीभूत करके रक्त तप्त करनेसे जिरकुन गन्धेत, जि (गओ₄)₂ मिलता है। यह श्वेत पदार्थ है जो गरम जलमें शीघ्र घुलनशील है। उदौषिद को नोषिकाम्लमें घोल कर जिरकुन नोषेत बनाया जा सकता है। जिरकुन द्विओषिदको कर्बनकी अधिक मात्राके साथ विद्युत् भट्टीमें गरम करनेसे जिरकुन कर्बिद, जिक, मिलता है।

थोरम् (Thorium), थो, Th

यह मोनेज़ाइटमें पाया जाता है। थोराइट भी मुख्य खनिज है।

थोराइट खनिजको गन्धकाम्ल द्वारा संचालित करके शुष्क पदार्थ को गरम कर गन्धकाम्ल की अनावश्यक मात्राको उड़ा देते हैं। और शेष पदार्थको ६-७ भाग बर्फीले पानीमें घोल कर छान लेते हैं। फिर घोलमें अमोनिया डालकर उबालते हैं। इस प्रकार उदौषिद अवक्षेपित हो जाते हैं जिन्हें उदहरिकाम्लमें घोलकर काष्ठिकाम्ल द्वारा अवक्षेपित करते हैं। अवक्षेपको तप्त करने पर थोरिया (थोर द्विओषिद) प्राप्त हो जाता है। थोराइट खनिजमें ५८% थोरिया है। शेष ताम्र, वंगम्, स्फट, लोह, बालू आदि हैं।

थोर उदौषिद्से उदप्लविकाम्लके संसर्गसे प्लविद, थोप्ल$_४$, मिल सकता है। इसे कर्बनके साथ हरिन्के प्रवाहमें गरम करने से थोर हरिद, थोह$_४$, मिलता है। यह हरिद पांशुज हरिदके साथ द्विगुण लवण पांह+२ थोह$_४$ १८ उ$_२$ ओ देता है। इस द्विगुण लवण को लोहेके बेलनोंमें सैन्धकम्के साथ गरम करने से थोरम् धातु मिलती है।

थोरिया को तप्त तीव्र गन्धकाम्लमें घोलने से थोर-गन्धेत, थो (गओ$_४$)$_२$ मिलता है। और इसी प्रकार थोर नोषेत, थो (नोओ$_३$)$_४$ १२ उ$_२$ ओ, भी बनाया जा सकता है। नोषेत और गन्धेत दोनों घुलनशील लवण हैं।

स्वाद और रासायनिक संगठन

[Taste and Constitution.]

(ले० श्री जटाशङ्कर मिश्र बी० एस-सी०)
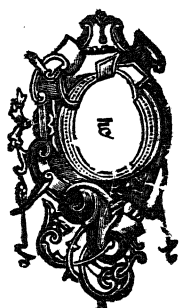
हम नित्यप्रति अनेक प्राकृतिक एवं रासायनिक पदार्थ व्यवहार में लाते हैं। इनमें से कुछ मीठे, कुछ कड़वे, सीठे, खट्टे चरपरे इसी प्रकार अनेक स्वादोंके होते हैं। कृत्रिम विधियोंसे भी अनेक प्रकारके स्वादोंके पदार्थ बनाये गये हैं। इन पदार्थोंके रासायनिक संगठन और उनके स्वादोंमें क्या सम्बंध है; इसका कुछ विवरण यहां दिया जावेगा। अकार्बनिक लवणोंके स्वादोंका उल्लेख हम नहीं करेंगे क्योंकि इनके विषयमें अभी बहुत ही कम परीक्षाकी गई है। साधारणतः कहा जा सकता है कि उदहरिकाम्ल गन्धकाम्ल आदि अम्ल खट्टे होते हैं पर जो अम्ल घोल रूपमें बहुत कम उदजन देते हैं उन अम्लोंमें खट्टापन भी विशेष प्रतीत नहीं होता है। टंकिकाम्ल (boric) में खट्टापन प्रतीत नहीं होगा। सैन्धक हरिद, जिसे हम साधारण नमक कहते हैं विशेषतः नमकीन होता है पर पांशुज हरिद का नमकीन स्वाद कुछ अरुचिकर तीक्ष्ण होता है। सुलेमानी नमक के स्वाद में एक और ही तरह का ठंडा नमकीन स्वाद होता है। वेरीलम् तत्वके बहुतसे यौगिक मीठे होते हैं।

इरा रैमस्एन साहबकी शर्करिन्की खोज और मिटशरलिश साहबकी डलसिन (Dulcin) की खोज ने वैज्ञानिकोंका ध्यान इस पहेलीकी ओर विशेष आकर्षित किया है। यह समस्या अभी बहुत नवीन है, इस कारण इसके सम्बन्धमें कुछ विशेष सिद्धान्त निश्चित नहीं हो सके हैं। कुछ थोड़े बहुत सामान्य नियम ही जो बन पाये हैं, उन्हीं का विवरण यहाँ दिया जावेगा।

मद्य

यह पाया गया है कि उदौषील मूलों (OH group) का स्वादके ऊपर बड़ा प्रबल प्रभाव पड़ता है। ज्वलीलमद्य, क$_२$ उ$_५$ ओउ (C_2H_5 OH) हलकी अवस्थामें स्वादिष्ट होता है। इसी कारण मदिरा पीने वालोंको इसकी चाट पड़ जाती है। मधुओल, (glycol) कउ$_२$ ओउ कउ$_२$ ओउ, जिसमें ज्वलीलमद्य के ही बराबर कर्बन परमाणु होत हैं मद्यसे कहीं ज्यादा मीठा होता है। इसी कारण इसका नाम मधुओल (glycol) पड़ा है। ग्लिसरिन या मधुरिन् (glycerine) क$_३$ उ$_५$ (ओउ)$_३$ कितनी स्वादिष्ट होती है यह तो सभी जानते हैं। किसी किसी कारखानेमें तो चीनीके शीरेकी जगह मधुरिन् ही शरबत इत्यादि तैयार करनेके निमित्त उपयोग की जाती है। इरिथ्रिटोल (Erythritol) ओउकउ$_२$ (कउओउ)$_२$ कउ$_२$ ओउ और भी अधिक मीठा होता है। इसी प्रकार अरबिटोल (Arabitol) ओउ कउ$_२$ (कउ ओउ)$_३$ कउ$_२$ ओउ, उससे भी बढ़कर है। यहां तक कि मैनीटोल ओउ कउ$_२$(कउ-ओउ)$_४$ कउ$_२$ ओउ (mannitol) लगभग द्राक्षशर्करा ही के बराबर मीठा होता है। इसी प्रकार उदौषील मूलोंकी संख्या बढ़ाते जानेसे

उपलब्ध पदार्थमें मिठास बढ़ता ही जाता है परन्तु हर एक नियम परिमित है। २४ कर्बन परमाणुओं तक तो कुशल है परन्तु उसके पश्चात् स्वाद बिगड़ने लगता है। केरामेल (caramel), डेक्सट्रिन (dextrin) और साइज (size) कम मीठी वस्तुएं हैं, यहां तक कि नशास्ता (starch) बिलकुल ही फीकी वस्तु है।

अम्ल

अम्ल तो प्रायः सभी खट्टे होते हैं परन्तु सब का खट्टापन एकसा नहीं होता है। पिपीलिकाम्ल (formic acid) बहुत तुर्श, सिरकाम्ल (acetic acid) उससे कम; अग्रिकाम्ल (Propionic) और भी कम खट्टा होता है। इसी प्रकार श्रेणीमें ज्यों-ज्यों कर्बन परमाणुओं को मात्रा बढ़ाते चलिये खट्टेपन का स्वाद हलका ही होता चला जाता है, यहां तक कि चर्बिकाम्ल (Stearic) और खजूरिकाम्ल (Palmitic acids) तो विषम यौगियों (paraffin) ही की तरह स्वाद रहित होते हैं। इससे यह सिद्ध है कि खट्टापन उद्जन-यवनोंकी प्रबलता (H-ion concentration) के साथ साथ बढ़ता घटता है और यह विचार ठीक भी है। यदि दो अम्ल ऐसे लिये जावें जिनमें कर्बन परमाणुओंकी संख्या बराबर हो तो इनमें से वही अम्ल विशेष तीव्र स्वाद का होगा जिसमें कर्बोषिल, कओ ओउ, मूलों की मात्रा अधिक है। उदाहरणतः काष्ठिकाम्ल (Oxalic acid), कओ ओउ. कओ ओउ, सिरकाम्ल, $कउ_3$ कओओउ, से तेज है। रालिकाम्ल (succinic acid) कओओउ $(कउ_2)_2$ कओओउ, नवनीतिकाम्ल (Butyric acid), $कउ_3 कउ_2 कउ_2$ कओओउ, से ज्यादा खट्टा है। नीबूइकाम्ल (citric acid) $क_3$ $उ_4$ (ओउ) (क ओ ओउ $)_3$ पीनिकाम्ल (adipic) (कओ ओउ $)_2$ ($कउ_2$ $)_4$ या षष्ठिकाम्ल (Hexylic) $कउ_3$ ($कउ_2$ $)_4$ कओओउ से अधिक खट्टा है परन्तु इसमें उदौषिल मूलकी भी कुछ प्रभुता जान पड़ती है।

मद्यानार्द्र और कीतोन—पिपील मद्यानार्द्र (form aldehyde) कड़वा होता है। परन्तु कड़वाहट आगे चलकर घटती ही जाती है। नवनीतिक (Butyric) मद्यानार्द्रका स्वाद कुछ बुरा नहीं है। यह सामान्य नियम स्थापित किया जा सकता है कि १ से ४ कर्बन परमाणुओं तक कड़वाहट रहती है ४ से ८ तक मिठास रहता है परन्तु ९ से आगे कच्चे आँवले या हड़का सा तीक्ष्ण (astringent) स्वाद आने लगता है।

कीतोनों की भी यही दशा है। वे भी ३ से ५ कर्बन परमाणुओं तक कड़वे होते हैं। ५ से ७ तक मीठे, ७ से ९ तक तीक्ष्ण (astringent) और ९ के बाद स्वाद रहित हो जाते हैं। मद्यानार्द्रिक या कीतोनिक समूह और उदौषील मूलोंके मेल से मिठास बहुत ही बढ़ जाता है। मधुओलिक मद्यानार्द्र, $कउ_2$ ओउ कउओ, मधुओल ($कउ_2$-ओउ$)_2$ से विशेष मीठा होता है। मधुरिक मद्यानार्द्र (glyceric aldehyde) $कउ_2$ ओउ—कउ ओउ—कउओ या द्विउदौष सिरकोन (Dihydroxy-

```
           कउ₂ओउ           कउ₂ ओउ
             |               |
acetone) कओ        मधुरिन  कउ ओउ   से कहीं
             |               |
           कउ₂ओउ           कउ₂ ओउ
```

अधिक मीठा होता है। मैनीटोल (Mannitol)

```
                              कउ₂ओउ
                                |
अथवा सोर्बीटोल (sorbitol) (कउओउ)₄   का
                                |
                              कउओ
```

मिठास द्राक्षोज, दुग्धस्योज अथवा मनोज (man-

```
        कउ₂ओउ
          |
nose) (कउ ओउ)₄  या  फलोज  (Fructose)
          |
        कउओ
```

$कउ_2$ ओउ (कउ ओउ$)_3$ कओ $कउ_2$ ओउ के मिठाससे कहीं कम है परन्तु मद्यानार्द्रिक मूल

एक से अधिक संख्यामें रहने पर अपना कड़वापन दर्शाने लगते हैं।
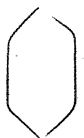
मधुरिक द्विमद्यानार्द्र, कउओकउ$_2$ओउ कउओ, (glyceric-di-aldehyde) अथवा द्राक्ष-द्वयोज, कउओ (कउओउ)$_4$ कउओ (glucodiose) चखने पर तो मीठे लगते हैं पर बादको जीभ कड़वी हो जाती है।

दिव्योल

दिव्योल, क$_6$ उ$_5$ ओउ, कड़ुवा होता है। इसमें एक और उदौषमूल लग जानेसे तीन भिन्न पदार्थों की उत्पत्ति होती है और तीनोंका स्वाद भी भिन्न ही होता है। (ओउ, ओउ) कत्थोल दिव्योल से कम कड़ुवा होता है। रेशेनोल, (ओउ, ओउ) (Resorcinol) अवश्य ही मीठा पदार्थ है, परन्तु, उदकुनोन (ओउ, ओउ) (hydroquinone) का स्वाद तीक्ष्ण होता है। और आगे परमाजूफलोल, (ओउ, ओउ, ओउ) (Pyrogallol) तो दिव्योल ही जैसा कड़वा होता है। प्रभद्राक्षिनोल (ओउ, ओउ, ओउ) (phloroglucinol) का तो कहना ही क्या। अत्यन्त ही मीठी वस्तु है। उदौष-कुनोल (ओउ, ओउ, ओउ) (hydroxyquinol) फिर एक तीक्ष्ण पदार्थ मिल जाता है। इन सब बातों से प्रतीत होता है कि मध्य-स्थानमें स्थापित उदौषयौगिक (meta hydroxy compounds) ही प्रायः मीठे होते हैं, पूर्व (ortho) उदौषयौगिक उससे कम और पर (para) उदौष यौगिक तीक्ष्ण होते हैं।
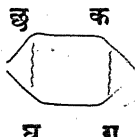
नवीन मत के अनुसार बानजावीन केन्द्र में मध्य स्थानीय (meta position) समूह सबसे अधिक दूरी पर होते हैं, पूर्व स्थानीय (ortho) उससे कम और 'पर' सबसे निकट। [इस मतमें बानजावीन केन्द्र का समतल रूप माना गया है। इस बात को समझने के निमित्त कागज़में से एक षटकोण, (च, छ, क, ख, ग, घ) काट लो और दोनों सिरों को बुन्देदार रेखा छ घ और क ग पर मोड़ो। ऐसा करने से यह साफ़ दीख पड़ेगा कि च और ख सबसे निकट हैं, च और घ उससे अधिक दूरी पर और च और ग सबसे अधिक दूरी पर] अब यह सिद्ध हुआ कि उदौषीलमूल जितने ही एक दूसरेसे अधिक दूरी पर हों उतना ही मीठा स्वाद होता है। निकट आने पर तो मिठास के बदले तीक्ष्ण स्वाद का अनुभव होने लगता है।

बानजाविक मद्यानार्द्र, क$_6$ उ$_5$ कउओ (Benzaldehyde) कड़वा होता है। दिव्यील सिरक-मद्यानार्द्र (Phenyl acetaldehyde) क$_6$उ$_5$कउ$_2$-कउओ उससे कुछ अच्छा होता है। दिव्यील अग्रिक

मद्यानाद्र्, क$_3$ उ$_5$ कउ$_2$ कउ$_2$ कउओ का झुकाव मिठास की ओर चला, और दिव्यील नवनीति मद्यानाद्र् (Phenyl butyric aldehyde), क$_6$उ$_5$-(कउ$_2$)$_3$कउओ, एक मीठी वस्तु है। इसे शक्कर की जगह सेवन करनेका प्रस्ताव होचुका है। इसी तरह बानजावीन केन्द्र और मद्यानाद्रिक मूलके बीचकी दूरी बढ़ाते जाने से स्वाद सुधरता जाता है परन्तु दूरी बहुत अधिक कर देने पर पदार्थ का स्वाद तीक्ष्ण और फिर स्वाद रहित हो जाता है।

कउओ

विटपील मद्यानाद्र् ओउ(salicylaldehyde)

का स्वाद दिव्योलसे अच्छा होता है। इसके द्राक्षोसिद (glucoside) हेलिसिन (Helicin) का औषधियोंमें सेवन होता है। प्रति कत्थिक मद्यानाद्र्

(protocatechuic aldehyde) मीठा होता है। रेशोनल मद्यानाद्र् (ओउ, कउओ, ओउ) (Resorcinal aldehyde) लगभग द्राक्षशर्करा के बराबर ही मीठा होता है। उदकुनोल (ओउ, कउओ, ओउ) मद्यानाद्र् (Hydroquinol aldehyde) स्वाद हीन होता है परन्तु उदकुनोन की भांति तीक्ष्ण नहीं होता।

परमाजू फलोल मद्यानाद्र्,

(Pyrogallol aldehyde) का स्वाद मिठास और तीक्ष्णताका मिश्रण होता है। प्रमद्राक्षिनोल मद्यानाद्र्

(Phloroglucinol aldehyde)

ओउ
ओउ
कउओ
ओउ

विशेष मीठी वस्तुओंमें से एक है। अभी तैयार नहीं हो पाया है। इस कारण इसके विषयमें कुछ भी कहना असंभव है।

वैराट्रिक मद्यानाद्र्,

(veratric aldehyde) मीठी वस्तु है। वैनीलिन (vanillin)

प्रति कत्थोल से अधिक मीठा होता है और मिर्चोनाल

(piperonal)

इससे कम। वैराट्रोल ओकउ$_3$ ओकउ$_3$ (ver-atrol) वैराट्रिक मद्यानाद्र से अधिक मीठा होता है। यह सब उदौष समूहकी शक्तिका मद्यील मूलों द्वारा स्थापन करके निराकरण कर देनेके फल हैं।

नोषजन यौगिक

अमोनिया (नोउ$_3$) बहुत दिनोंसे हृदय की कमज़ोरी को दूर करनेके लिए औषधिमें सेवन किया जाता रहा है। इसका स्वाद कुछ क्षारीय और तीक्ष्ण होता है। इसके उदजन परमाणुओं को अन्य मूलों द्वारा स्थापित करने से इसकी तीक्ष्णता तो घटती जाती है परन्तु उड़नशीलताके भी साथ ही साथ घटते जानेके कारण तीक्ष्णताका प्रभाव बहुत देर तक रहता है। इस भांति तीक्ष्णता कम होनेका लाभ उड़नशीलता कम होने की हानिसे व्यर्थ हो जाता है। दारीलामिन, कउ$_3$. नोउ$_2$ (methylamine) अमोनिया से कम तीक्ष्ण है। द्विदारीलामिन, उससे कम, त्रिदारीलामिन, (कउ$_3$)$_3$ नो, औरभी कम। स्थापित समूहों का भार जितना ही अधिक होगा उतनी ही तीक्ष्णता और उड़नशीलता भी कम होती जायगी। नीलिन्, क$_6$उ$_5$ नोउ$_2$ (aniline) का भी तीक्ष्ण प्रभाव देर तक रहता है।

नोषजनके भिन्न चक्री यौगिक—पिरीदिन, क$_5$उ$_5$ नो अत्यन्त ही कड़वी वस्तुओंमें से एक है। पिकोलिन क$_5$ उ$_4$ (कउ$_3$) नो कम कड़वी है, लुटीदिन, क$_5$उ$_3$ (कउ$_3$)$_2$ नो उससे कम और कौलीदिन क$_5$ उ$_2$ (कउ$_3$)$_3$ नो और भी कम कड़वी है। कुनोलिन क$_5$ उ$_3$ नो क$_6$ उ$_4$, बहुत ही कम कड़वी है।
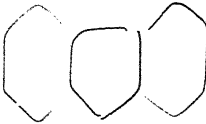
चरपरिन,

(acridine) में खट्टापन मिली हुई थोड़ी थोड़ी चरपराहट अनुभव होने लगती है।

प्रभोल

(Pyrrol) कड़वी चीज़ है

द्विदारील प्रभोल (dimethyl pyrrol) उससे कम। इण्डोल (indol)

और भी कम, यहां तक कि द्विबानजावो प्रभोल

(di-benzopyrrol) बिलकुल स्वादरहित पदार्थ है। ऐसे यौगिकोंके 'भिन्न-चक्र' (heterocyclic ring) पर जितना ही अधिक बोझ दिया जायगा उतना ही कम कड़वापन रह जायगा। इस नियम का एक से अधिक भिन्न-चक्रिक नोषजन परमाणु वाले यौगिक भी पालन करते हैं। प्रभाजीवोल (pyrazole), ओषाजीवोल (oxazole)

इमिदाजीवोल (Imidazole) मधुओषलिन (Glyoxalin) इत्यादि कम कड़वे होते हैं त्रयजीवोल (triazole) में कुछ कुछ खट्टा-पन प्रतीत होने लगता है। चतुरजीवोल (tetra-zole) का स्वाद अधिक खट्टा होता है।

गन्धकी यौगिक

उद्जन गन्धिद, $उ_2$ ग, कुछ मीठा सा होता है, दारील पारदवेधन $कउ_3$ गउ (methyl mercaptan) उससे कम, द्विदारील पारद वेधन $(कउ_3)_2$ग (di-methylmercaptan) और भी कम मीठा होता है। दिव्यील पारदवेधन, $क_6उ_5$-गउ तक आते आते कड़वापन मालूम होने लगता है। द्विदामील पारदवेधन, $(क_6उ_5)_2$ ग तो अत्यन्त ही कड़वी वस्तु है। इन सब बातोंसे यह प्रत्यक्ष है कि स्थापित समूह जितना ही विशेष भारी होगा उतना ही ये यौगिक कड़वे होते जायंगे।

इस विभागमें खोज करना अभी कठिन है, स्वाद नापनेके निमित्त वैज्ञानिकोंके पास अभी कोई यन्त्र नहीं है। और जिह्वा इस कामके लिये बहुत ही साधारण एवं अनिश्चित यन्त्र है। इससे स्वाद की निरपेक्ष पहिचान हो ही नहीं सकती। स्वाद अनुभव करते समय नासिका अवश्य बाधक हो जाती है। कुछ पदार्थ जैसे उदजन गन्धिद मीठे हैं परन्तु दुर्गन्धित होनेके कारण उनसे सहज ही में अरुचि हो जाती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति किसी एक वस्तुको एक ही समान नहीं जांच सकता है कोई चीज किसी को मीठी लगती है तो किसी को तीक्ष्ण और किसी को खट्टी या कड़वी। पहिले तो स्वादका निरपेक्ष-मान होही नहीं पाता। सापेक्षिक मान जो हो भी पाता है वह भी सर्व तन्त्र नहीं रह जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ वस्तुओं का स्वाद हलके पनसे परिवर्तित होता रहता है, शर्करिन (Saccharine) का रवा यदि मुँहमें रख लिया जाय तो कड़वा जान पड़ता है परन्तु इसके हलके घोलमें शर्बत का मजा आ जाता है। इसी प्रकार इण्डोल या विष्ठोल (Skat-ole) की गन्ध घोलके हलके पन पर परिवर्तित हो जाती है।

इन सब कठिनाइयोंके कारण इस मनोरञ्जक विषय का अभी तक कोई सन्तोषप्रद समाधान नहीं हो पाया है।

विज्ञान परिषत्‌का वार्षिक वृत्तान्त

(सभापति विज्ञान परिषत्‌की सेवा में)

ह कार्य-विवरण जो मैं आपकी सेवामें उपस्थित करता हूँ केवल एक सालका है जो १ अक्तूबर सन् १९२७ को आरंभ और ३० सितम्बर १९२८ को समाप्त हुआ। इस वर्षभी पिछले साल की नाईं आर्थिक अवस्था शोचनीय ही रही और ऐसा जान पड़ता है कि आर्थिक अवस्थाकी उन्नति आजकल के कार्य्य-कर्ताओंकी शक्तिके बाहर है। या तो यह लोग इस अवस्थाको अच्छी करनेका प्रयत्न नहीं करते हैं या इनके बूतेके बाहर है। चूंकि मैंभी इन्ही कार्य्य-कर्ताओंमें से एक हूँ इसलिए यह कहनेमें जरा भी नहीं सकुचाता हूँ कि इनके किये यह अवस्था नहीं बदल सकती है। सभ्योंको कई बेर याद दिलाने पर उनसे वार्षिक चन्दा नहीं मिलता है जैसा कि हिसाब देखनेसे स्पष्ट है और विज्ञानके ग्राहकोंकी संख्या भी बढ़नेके बदले हर साल घटती ही जाती है। मैं फिर इस साल परिषद्‌के सभ्यों और अन्य सहायकों से यही प्रार्थना करूंगा कि परिषद् का जीवित रहना और विज्ञानका चलना देश और आप लोगोंके हितके लिए आवश्यक है, तो इनकी आर्थिक सहायता आप समयसे करते चलें नहीं तो किसी बैठकमें प्रस्ताव उपस्थित कर दोनोंको बन्द करें।

धनाभावके कारण कार्य्यकर्ताओंको बड़ा दुख होता है और आप उनसे यह आशा नहीं कर सकते हैं कि काम भी करें और मानसिक दुख भी उठायें। इसी कारण पुस्तकोंका छपना तो बिलकुल बन्द ही हो गया है, और जिन पुस्तकोंके संस्करण खतम हो गये हैं उनका फिरसे छपवाना भी कठिन है। कभी कभी अच्छे प्रकाशकोंसे भी इनकार ही मिलता है। इस कारण शायद साहित्यकी वृद्धि जो मुख्य उद्देश था, वह जाता रहेगा।

इस वर्ष भी विज्ञानके सपाम्दनका काम ब्रजराज जी और सत्यप्रकाश जी करते रहे। ब्रजराजजी को समय कम मिलता है इस कारण सम्पादनका सब काम सत्यप्रकाशजी ही को करना पड़ा। इन्होंने इसे किया तो अवश्य ही परन्तु जिन कठिनाइयांका सामना करना पड़ा वे ही जानते हैं। लेख लिखवाना, जब लिखनेवालोंकी कमी है, उनकी भाषाको कभी कभी शुद्ध करना, नये नये शब्द बनाना, तीन तीन प्रूफ पढ़ना, इनको ध्यानमें रखते हुए आप देखिये, विज्ञानका सम्पादन कितना समय लेनेवाला है। हम आपको धन्यवाद देते हैं कि आपने इतना काम बड़ी ही खुशीसे किया और जैसे तैसे विज्ञानको समयपर निकालनेका प्रयत्न भी किया। अब वह समयपर निकलता जावेगा ऐसी आशा है। यहाँ हम लेखकोंको भी धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने हमारी सहायता की है।

इस साल हमने गवर्नमेंटसे आर्थिक सहायता बढ़ानेके लिए प्रार्थनाकी आजकल गवर्नमेंटसे ६००) सालाना मिलता है हमने यह प्रार्थनाकी कि यह १०००) साल करदी जावे। पहले तो उन्होंने हमको लिखा कि हिन्दुस्थानी एकेडेमीसे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए परन्तु जब एकडेमीसे इनकार मिल गया और हम लोगोंने गवर्नमेंटको फिर लिखा तब उन्होंने पिछले तीन सालके हिसाबात और कुल कार्रवाई मंगवाई जो भेज दी गयी। अभी कोई जवाब नहीं मिला है कि सहायता बढ़ायी जावेगी या नहीं। यदि गवर्नमेंटसे सहायता बढ़ भी जावे तब भी उससे वह बात नहीं हो सकती है जो विज्ञानके ग्राहकोंकी संख्या बढ़ानेसे होगी, इसलिए इसके सहायकोंसे यही प्रार्थना है कि इसके ग्राहकों के बढ़ानेका यत्न करें जब तक ग्राहक न बढ़ेंगे तब तक न तो इसका उद्देशही पूरा होगा और न इसकी आर्थिक स्थिति ही अच्छी होगी।

हिन्दीके मुख्य-मुख्य पत्रोंके सम्पादकोंकी सेवा में भी यह प्रार्थनाकी गयी कि वे अपने ग्राहकोंके सामने हमारी कठिनाईको उपस्थित करें और प्रार्थना करें कि विज्ञानके ग्राहक बढ़ाये जावें। इन सम्पादकोंको हम धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकारकी और अपने पत्रों-द्वारा मातृ-भाषाके प्रेमियोंसे इसकी सहायताके लिए भीख मांगी, परन्तु अभी इसका कोई फल नहीं निकला। देखिए, क्या होता है।

पं० सुधाकर द्विवेदी की पुस्तक समीकरण मीमांसाके दो फर्मे और बाकी हैं। आशाकी जाती है कि सन् १६२८ के समाप्त होने तक यह पुस्तक प्रकाशित हो जावेगी। सम्भव है कि उसी समय तक हम तीन और पुस्तकें भी निकाल सकें, पहली पुस्तक 'साधारण रसायन', दूसरी 'कार्बनिक रसायन' और तीसरी 'वैज्ञानिक परिमाण' होगी। पहली दोनों पुस्तकें सत्यप्रकाशजीके उन लेखोंके संग्रह हैं जो वे विज्ञानमें देते रहते हैं और जिनको हमने विज्ञानसे पुस्तकोंके रूपमें उद्घृत कर लिया है। तीसरी पुस्तक डा० निहालकरण सेठी और सत्यप्रकाशजीके परिश्रमका फल है और यह भी इसी प्रकार विज्ञानमें निकले हुए लेखोंका संग्रह है। यह तीनों पुस्तकें बड़ी हीं उपयोगी हैं। रसायनवाली दोनों पुस्तकें तो पाठ्य-पुस्तकोंका काम दे सकती हैं और अवश्य ही देंगी। तीसरी पुस्तककी उपयोगताका इसीसे अनुमान लगाया जासकता है कि यह उसी पुस्तकका हिन्दी रूप है जिसको पढ़ने और पढ़ानेवाले अंग्रेजीमें (Tables of constants) के नामसे जानते हैं और रोजमर्रा काममें

लाते हैं। आजकलकी अवस्थामें तो यह पुस्तक संक्षिप्त वैज्ञानिक शब्द कोषका भी काम देगी।

एस० सी० देव,
सालिगराम भार्गव
प्रधान मन्त्री।

विज्ञान परिषत् प्रयाग।

वार्षिक अधिवेशन

विज्ञान परिषद् प्रयाग का वार्षिक अधिवेशन ता० ११ जनवरी १९२९ को प्रयाग विश्व विद्यालय के भौतिक विभाग भवन में हुआ। इस अवसर पर श्री प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ने डा० सर तेज बहादुर सप्रू के सभापतित्व में हिन्दुस्तानी भाषा में 'बेतार वाणी सुनना' विषय पर एक मनोहर व्याख्यान दिया जिसे जनता ने बहुत पसन्द किया। व्याख्यान अनेक चित्रों और प्रयोगोंके कारण अति मनोरञ्जक हो गया था। इस व्याख्यान की प्रतिलिपि हम विज्ञान के आगामी अंक में प्रकाशित करेंगे। व्याख्यान के पश्चात् विज्ञान परिषद की कार्यकारिणी समितिके सदस्य तथा पदाधिकारियोंका निर्वाचन हुआ।

आय व्यय विवरण

पहली अक्तूबर सन् २७ से ३० सितम्बर सन् २८ तक

आय	रु.	आ.	पा.	व्यय	रु.	आ.	पा.
बकाया	६१७	११	०	टिकट	१२३	०	६
ग्राहकोंसे चन्दा ...	४३३	४	६	तनखाह क्लर्क	११५	०	०
किताबों की बिक्री ...	२०१	१३	०	विज्ञान की छपाई ...	७३८	१३	०
सभासदों के चन्दे ...	१०८	०	०	कागज	१९४	१०	९
आजन्म सभ्यों से ...	१००	०	०	ब्लाक बनवाई	१३४	१५	०
विज्ञापन छपाई ...	३०	०	०	फुटकर काम	१५	१४	६
फुटकर आय ...	३	०	०	जोड़	१३२२	५	९
				बकाया	१७१	६	९
	१४९३	१२	६		१४९३	१२	६

विज्ञान परिषद् के पदाधिकारी तथा कार्य कारिणी समिति के सदस्य

१—महा महोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट०, एल० एल-डी०, वाइस चान्सलर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, सभापति।

२—डाक्टर नीलरतन धर, प्रोफेसर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, उपसभापति।

३—प्रोफेसर एस० सी० देव, एम० ए०, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, प्रधान मन्त्री।

४—श्रीसालिगराम भार्गव, एम० एस-सी०, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, प्रधान मन्त्री।

५—प्रोफेसर ब्रजराज एम० ए०, बी० एस-सी०, एल० एल० बी०, कायस्थ पाठशाला कालेज, मन्त्री।

६—श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०, इलाहाबाद, मन्त्री

७—श्री श्रीरंजन, एम० एस-सी०, वनस्पति विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, खजानची

समितिके सदस्य

८—पं० अमरनाथ झा, एम० ए०, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी,

९—पं० कन्हैयालाल भार्गव रईस, कीटगञ्ज, इलाहाबाद

१०—श्री ए० सी० बनर्जी, एम० ए०, एम० एस-सी०, अध्यक्ष, गणित विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

११—प्रोफेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी०, कायस्थ पाठशाला कालेज

१२—डा. एन. के. सेठी, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस

१३—बाबू महावीर प्रसाद बी. एस-सी, एल. टी, विशारद, गवर्नमेन्ट हाई स्कूल रायबरेली।

१४—प्रोफेसर रामदास गौड़, एम. ए., गुरुकुल कांगड़ी, हरद्वार

१५—प्रोफेसर पी. एस. वर्मा, एम. ए., हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस

१६—श्री पुरुषोत्तम दास टंडन, एम. ए., एल. एल-बी., लाहौर

विज्ञान प्रशस्ति

(ले० श्री० विपिनविहारीलाल दीक्षित)

१

विज्ञानात्प्रतिभातिना जयधरः विज्ञानधारी सुखी,
विज्ञानी गुण गुम्फितः शुभकरः प्रज्ञाभृताभूषणः।
विज्ञानं सुखदं सदैव सफलं सत्कर्मणां ज्ञायकम् ,
धातव्यं सुजनैः सदा हृदिपटे विज्ञानहीनापशुः ॥

२

विज्ञानस्य न यो नरः प्रियतमः धिग्धिक्सदा तन्नरं,
विज्ञाती नर पुंगवः गुणधरः कामादि षण्णासकः।
विज्ञानेन सुयाति रामशरणे संसार रोगौषधौ,
विज्ञानं परिरक्षकं भवभयात् विज्ञानहीना पशुः ॥

३

यत्स्थानं सुरदुर्लभं खुंखकरं शोभा प्रदं सर्वदा,
संयुक्ताः सुजनः समाः सुमुदिताः लब्धुं सदासोत्सुकाः।
सर्वे सौरपि यत्सदा सुखमयं लभ्यं नवैसर्वगैः,
विज्ञानात् सुलभस्तदेव मनुजैः सुज्ञानसाम्यंकुतः ॥

४

विज्ञाने विरतो विबोध सहितः विज्ञो विबुद्धिः सदा,
विक्रो निजकर्मधर्म विफलः व्याधः विदुःखी पुनः।
विव्याजः विसुखः सदैव विबलः व्याशो पि वैव्याश्रयः,
विक्षोभः विशुभो विलासरहितो विख्याश्चकश्चिद्भवेद् ॥

५

ज्ञानात्क्रोधसहायकः सकटकः सप्लायते सवदा,
ज्ञानाद्यर्पक दर्प-दुःख-दलनं विज्ञानज्ञानी गुणी।
विज्ञानादघ लोभमोहविगताः सन्तोविराजन्ति वै,
विज्ञानाज्जगती कुदुःखदहनं धन्याः प्रविज्ञानिनः ॥

तारोंके नाम	विषुवांश			क्रान्ति उत्तर			सूर्यकाविषुवांश			सूर्यकी क्रान्ति			सूर्यकी क्रान्तिकी
	घं०	मि०	से०	अं०	क०	विक०	घं०	मि०	से०	अं०	क०	विक०	दिशा और ता०
अभिजित्	१८	३४	३२	३८	४३	०	१८	३६	१६	२३	११	१८	दक्षिण, ३० दि०
ब्रह्म हृदय	५	११	२६	४५	५५	४०	५	१२	३४	२३	०	८	उत्तर, १० जून
स्वाती	१४	१२	२५	१९	३३	५	१४	१३	५	१३	२३	९	द०, २९ अक्टूबर
श्रवण	१९	४७	१९	८	४०	४७	१९	४७	१८	२१	९	४१	द०, १५ जनवरी
धनिष्ठा	२०	३६	२०	१५	३९	३८	२०	३७	५६	१८	३०	२४	द०, २७ जनवरी

सूर्य-सिद्धान्त

(ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी०, एल० टी० विशारद)

गतांकसे आगे

विज्ञान भाष्य—नक्षत्रोंमें कोई गति नहीं देख पड़ती इसलिए सूर्य ही उनके पास पहुँचता हुआ देख पड़ता है। जब सूर्य उनके इतना पास हो जाता है कि वे इसके प्रकाशमें दब जाते हैं तभी उनका अस्त समझा जाता है। इसलिए इनका अस्त सदैव पच्छिममें होता है जैसा कि मंदगामी मंगल, गुरु और शनि ग्रहोंके साथ होता है। जब सूर्य इनके इतना आगे बढ़ जाता है कि वे देख पड़ने लगते हैं तभी उनका उदय समझा जाता है और इस समय यह सूर्योदयके पहले पूर्व क्षितिजमें देख पड़ते हैं।

यह पहलेही कहा जा चुका है कि नक्षत्रोंकी क्रान्ति नहीं बदलती इसलिये इनका कालांश जाननेके लिए केवल आक्षदृक्कर्म संस्कारकी आवश्यकता होती है।

अभी बतलाया गया है कि उदय अस्तका गत-गम्य दिन जाननेके लिए सूर्य और ग्रह की कालगतियोंके अन्तरसे कालांशान्तरको भाग दिया जाता है। परन्तु नक्षत्रोंमें गति शून्य होती है इस लिए केवल सूर्यकी गतिसे ही कालांशान्तरको भाग देनेकी आवश्यकता पड़ती है।

कभी अस्त न होने वाले तारे—

अभिजिद् ब्रह्महृदयं स्वाती वैष्णव वासवाः ।
अहिर्बुध्न्यमुदक्स्थत्वान्न लुप्यन्तेऽर्करश्मिभिः ॥१८॥

अनुवाद—(१८) अभिजित्, ब्रह्महृदय, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तरा भाद्रपद बहुत उत्तरमें होनेके कारण सूर्यके प्रकाशसे नहीं छिपते।

विज्ञान भाष्य—जब सूर्य इन तारोंके विषुवांश पर या इसके निकट आता है तब उससे इनका अंतर उत्तरकी ओर इतना अधिक होता है कि ये सूर्यके उदयास्त कालसे इतना पहिले उदय या अस्त होते हैं कि देख पड़ते हैं इसलिए सूर्यके प्रकाशसे यह कभी लुप्त नहीं हो सकते। यह बात ६७४ पृष्ठ की सारणी* से और भी स्पष्ट होती है:—

इससे प्रकट है कि सूर्यकी क्रान्ति केवल ब्रह्महृदयके सामने उत्तर होती है अन्यथा दक्षिण है जब कि तारोंकी क्रान्ति सदैव उत्तर है। ब्रह्महृदय और सूर्यका क्रान्त्यन्तरभी २३ अंशके लगभग है। अब देखना है कि काशी या प्रयागमें ब्रह्महृदयका चरकाल क्या है।

चरज्या = क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा

∴ ब्रह्महृदयकी चरज्या = स्परे ४५°५६′ × स्परे २५°२५′

= १.०३३१ × .४७५२

= .४९०९

∴ चरांश = २९°२४′

∴ चरकाल = १ घण्टा ५८ मिनटके लगभग

इस दिन सूर्यका चरकाल ४७ मिनटके लगभग होता है। दोनोंकी क्रांति उत्तर है। इसलिए ब्रह्महृदयका उदय सूर्योदय कालसे १ घण्टा ५८ मिनट–४७ मिनट = १ घण्टा ११ मिनट पहले होगा और इसका अस्त सूर्यास्तसे इतना ही पीछे होगा इसलिए इस दिन ब्रह्महृदय प्रातःकाल और सायङ्काल दोनों समय देखा जा सकता है। जिस दिन सूर्योदयकालमें यह तारा पूर्व क्षितिजमें लग्न होता है उस दिन तो इसका दैनिक अस्त सूर्योदय कालसे १९ घण्टेके उपरान्त होगा जब सूर्य को अस्त होनेमें १४ घण्टेसे अधिक नहीं लग सकता। इसलिए इस दिन भी यह सायंकालमें अच्छी तरह देखा जा सकता है। इसी प्रकार जिस दिन यह सूर्यास्त कालमें पश्चिम क्षितिजमें लग्न होता है उस दिन सूर्योदयसे २ घण्टे से भी अधिक पहले उदय होकर लोगोंको दर्शन देता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि काशी प्रयागके उत्तरके देशोंमें तो यह कभी अदृश्य नहीं हो सकता, हाँ उन स्थानोंमें जिनका उत्तर अक्षांश २० अंशसे कम है, यह कुछ दिनोंके लिए अवश्य अदृश्य हो जायगा इसलिए यह जगन्नाथ पुरीमें प्रत्येक दिन देखा जा सकता है परन्तु बम्बईमें नहीं।

शेष तारोंमें श्रवण ऐसा तारा है जिसकी उत्तर क्रान्ति बहुत कम है। इसलिए देखना चाहिये कि इसके लिए यह नियम कहां तक ठीक है।

काशी प्रयागमें श्रवणका चरकाल = १७ मिनटके लगभग

" सूर्यका चरकाल = ४३ " "

दोनोंकी क्रान्ति भिन्न हैं इसलिए इस दिन सूर्योदयसे १७ + ४३ मिनट = १ घण्टा पहले श्रवणका उदय होगा। परन्तु श्रवकका कालांश ५६ मिनट है इसलिये यह अच्छी तरह देखा जा सकता है। परन्तु काशी प्रयागके दक्षिणके देशोंके लिए यह नियम लागू नहीं हो सकता।

इसी प्रकार अन्य तारोंके बारेमें भी जाना जा सकता है।

इस प्रकार उदयास्ताधिकार नामक ९ वें अध्यायका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

---

* १९२९ के नाविक पंचांगके अनुसार

शृङ्गोन्नत्याधिकार नामक दसवाँ अध्याय

संक्षिप्त वर्णन

श्लोक १—चन्द्रमाका उदय अस्त जाननेकी विधि पहलेकी तरह है और कालांश १२ हैं। श्लोक २-४ शुक्ल पक्षमें चन्द्रमाका दैनिक अस्तकाल जाननेकी रीति। श्लोक ५ कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाका दैनिक उदयकाल जाननेकी रीति। श्लोक ६-८ सूर्यास्तकालमें सूर्यसे चन्द्रमाका रेखात्मक अन्तर जाननेकी रीति। श्लोक १०-१४ चन्द्रमाके शुक्ल भागका परिलेख खींचनेकी रीति। श्लोक ९—चन्द्रमाके शुक्ल भागका बिम्ब जाननेकी रीति। श्लोक १५—कृष्ण पक्षमें चन्द्रबिम्बका लेख खींचनेका नियम।

इस अध्यायमें चन्द्रमाका उदयास्तकाल जाननेकी रीति बतलायी गयी है। इससे पहलेके अध्यायमें केवल उस प्रकारके उदय अस्त वर्णन हैं जिसमें ग्रह सूर्यके बहुत पास आजानेसे अदृश्य हो गया है। परन्तु इस अध्यायमें इस प्रकारके उदय अस्तके सिवा चन्द्रमाके दैनिक उदयास्तकाल जाननेकी रीति भी है। फिर यह जाननेकी रीति बतलायी गयी है कि किस दिन चन्द्र बिम्बका कितना भाग प्रकाशित रहता है और उसका आकार कैसे खींचा जा सकता है। शुक्ल पक्षके आरम्भमें चन्द्रमाके प्रकाशित या शुक्ल भागका आकार शृङ्गकी तरह होता है और उत्तर या दक्खिनकी तरफ उठा रहता है इसीलिए इस अध्यायका नाम शृङ्गोन्नत्यधिकार है।

यहां यह याद दिलानेकी आवश्यकता है कि चन्द्रमाका स्पष्ट स्थान सूर्यसिद्धान्तकी गणनाकी रीतिसे जाने गये स्थानसे बहुत भिन्न होता है। जैसा कि स्पष्टाधिकारके पृष्ठ २७२-२८७ में अच्छी तरह दिखलाया गया है। इसके सिवा चन्द्रमाकी स्पष्ट कान्ति भी सूर्यसिद्धान्तकी रीतिसे ठीक नहीं होती। इन सब कारणोंसे अध्यायके लिए दृग्गणितके मूलाङ्कोंसे ही काम लेना चाहिए नहीं तो सूर्यसिद्धान्तके मूलाङ्कोंके द्वारा चन्द्रमाके उदयास्तका जो समय ज्ञात होगा वह प्रत्यक्षसे १५, १६ मिनट आगे पीछे होगा इसलिए आवश्यक है कि भारतीय ज्योतिषका संशोधन करनेके लिए एक अच्छी बेधशाला हो जिसमें चन्द्रमा, ग्रहों और नक्षत्रोंकी सूक्ष्मसे सूक्ष्मवेध लेकर इनके मूलाङ्क फिरसे स्थिर किये जांय। ऐसे काममें भी नाविक पंचांगके आश्रित होना किसी प्रकार बांछनीय नहीं है।

चन्द्रमाका उदयास्तकाल और कालांश—

उदयास्त विधिः प्राग्वत्कर्तव्यः शीत गोरपि।
भागैर्द्वादशभिः पश्चाद्दृश्यः प्राग्यात्य दृश्यताम् ॥१॥

अनुवाद—(१) चन्द्रमाके भी उदय और अस्त होनेका समय उदयास्तधिकारके श्लोक ४, ५ में बतलायी गयी रीतिसे जानना चाहिए।

जब इसका कालांश सूर्यसे १२ अंश पीछे होता है तब पच्छिम दृश्य होता है और पहले होता है तब पूर्वमें अदृश्य हो जाता है।

विज्ञान-भाष्य—इस पर विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि जैसे और ग्रहोंका उदयास्तकाल जाना जाता है वैसे ही चन्द्रमाका भी। चन्द्रमाका ऐसा उदय अस्त चन्द्र मासमें केवल एक बार होता है। चन्द्रमा की गति बहुत तीव्र है इसलिए चन्द्रमा अस्त पूर्वमें कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को होता है और उदय पच्छिममें शुक्ल पक्ष की प्रतिपदाके उपरान्त सन्ध्याकालमें होता है।

दैनिक उदयास्तकाल जानने की रीति—

रवीन्द्वोः षड्भयुतयोः प्राग्वल्लग्नान्तरासवः ।
एकराशौ रवीन्द्वोश्च कार्या विवरलिप्तिकाः ॥२॥
तन्नाडिकाहते भुक्ती रवीन्द्वोः षष्टिभाजते ।
तत्फलान्वित यो भूयः कर्तव्या विवरासव ।.३॥

एवं यावत् स्थिरी भूता रवीन्द्वोरन्तरासवः ।
तैः प्राणैरस्तमेतीन्द्रः शुक्लेऽर्कास्तमयात्परम् ॥४॥

अनुवाद—(२) (शुक्ल पक्षके जिस दिन चन्द्रमाका अस्त काल जानना हो उस दिनके सूर्यास्तकालके सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट करके और चन्द्रमामें आय और आयन दृक्कर्म संस्कार करके) सूर्यके भोगांश और चन्द्रमाके दृक्कर्म संस्कृत भोगांशमें छ छ राशि जोड़ने से जो आवे उनके उदय लग्नोंके अन्तरासुओं को जान ले। यदि सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशिमें हो तो इनके भोगांशोंके अन्तर की कला बना लेना पर्यात होगा (२) इन उदय लग्नोंके अन्तरासुओं की घड़ी बना कर इससे सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक गतियोंसे गुणा कर दे और गुणनफल को ६० से भाग दे दे। सूर्यकी गतिसे जो लब्धि मिले उसको सूर्यके भोगांशमें और चन्द्रगति से जो लब्धि मिले उसे चन्द्रमाके भोगांशमें जोड़कर इनका फिर लग्नान्तर काल पहले की तरह फिर निकाले। (४) इस प्रकार कई बार करनेसे लग्नान्तर काल स्थिर हो जाता है। इतने ही समय पर शुक्ल पक्षमें सूर्यास्तके उपरान्त चन्द्रमाका अस्त होता है।

विज्ञान-भाष्य—किसी किसी ग्रन्थमें इन तीन श्लोकोंके स्थानमें केवल एक श्लोक है जिसका पूर्वार्ध २ रे श्लोकका पूर्वार्ध है और उत्तरार्ध ४ थे श्लोक का उत्तरार्ध। इसलिए किसी किसीके मतसे २ रे श्लोकके उत्तरार्धसे लेकर ४ थे श्लोकके पूर्वार्ध तककी ४ पंक्तियां प्रक्षिप्त हैं। पं० इन्द्र नारायण द्विवेदी, पं० माधव पुरोहित अथवा पं० बलदेव प्रसाद मिश्र जी ने इन चार पंक्तियोंको लिख तो दिया है परन्तु इनका अर्थ नहीं किया है और न इनके विषयमें कुछ लिखा ही है। हां, आचार्य रङ्गनाथजी की संस्कृत टीकामें जिसका सम्पादन भी पं० बलदेव प्रसाद जी ने अपनी हिन्दी टीकाके साथ किया है इसकी चर्चा अच्छी तरह है जहाँ लिखा है—१

श्लोक मध्य एक राशावित्यादि रवीन्दोरित्यन्त रासव इत्यन्त श्लोक द्वयं केनचिन्मन्दमतिना समयोऽसकृदेव साध्य इति शिष्य

१. श्री सूर्यसिद्धान्त पृष्ट १६७ श्री वेंकटेश्वर प्रेस का छपा

धीवृद्धिर तन्नोक्तं सुबुद्धि मन्येनायुक्तमपि युक्तं मत्वानिक्षिप्तम् ।

स्वामी विज्ञानानन्द सम्पादित बंगलाके सूर्यसिद्धान्तमें ये दो श्लोक मूल संस्कृत श्लोकोंके साथ नहीं दिये गये हैं वरन् बङ्गालकी टीकामें हैं और वहां बतलाया गया है कि ये प्रक्षिप्त क्यों हैं।

चन्द्र शेखर सिंह सामन्तके सिद्धान्त दर्पणमें ३ रा श्लोक ज्यों का त्यों उद्धृत[1] किया गया है और चौथे श्लोकके पूर्वार्ध के अर्थको कई श्लोकोंमें विस्तार पूर्वक लिखकर उत्तरार्ध भी दे दिया गया है। इसके उपरान्त यह श्लोक[2] लिखा गया है—

> अत्रार्क साधनत्वं हि द्वयोस्तात्कालिकी कृतौ
> तत्कृतौ केवलस्येन्दोः प्राणानामार्जिता मता
> सूर्यास्त कालिकौ तौ चेद्ग्राह्यौ ते चन्द्रसाधना ॥११॥

जिससे यह सिद्ध होता है कि चन्द्र शेखरसिंह सामन्त ने सूर्यसिद्धान्तके प्रक्षिप्त कहे जाने वाले श्लोकोंके डेढ़ श्लोकों को बहुत आवश्यक समझा है। यथार्थ में यह है भी आवश्यक जैसा कि अभी दिखलाया जायगा। इसलिए मेरी समझमें इसको प्रक्षिप्त कह कर उड़ा देना और इसका अर्थ ही न करना उचित नहीं है क्योंकि यदि यह प्रक्षिप्त हो तो भी अनुचित नहीं है क्योंकि इसके अनुसार गणना न करनेसे तो चन्द्रमाके अस्तकालमें १ घड़ी या २४ मिनट तक का अन्तर पड़ सकता है। आचार्य रङ्गनाथ जी ने अपनी टीका १५२५ शाके[3] में की थी इसलिए यह विवाद सवा तीन सौ वर्ष पहलेका है कि यह प्रक्षिप्त है या नहीं। मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि इन श्लोकों का क्या अर्थ है। श्लोक २ के पूर्वार्धमें तो संक्षेपमें उदयास्ताधिकारके ४थे और ५वें श्लोकोंमें बतलाये गये नियमकी ओर संकेत है जो बिलकुल ठीक है। उत्तरार्धमें यह बतलाया गया है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा एकही राशिमें हों तो इन दोनोंके दृक्कर्म संस्कृत भोगांशोंके अन्तर को ही कालांश समझ कर जान लेना चाहिए कि सूर्यास्तके उपरात कितने समय पर चन्द्रमाका अस्त होगा। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जब चन्द्रमा सूर्यसे इतने थोड़े अन्तर पर रहता है कि ये दोनों एकही राशिमें हों तब इनके लग्नान्तरासुओंमें जो अन्तर होता है वह इनके भोगांशोंके अंतरसे बहुत भिन्न नहीं होता इसलिए सुगमताके लिए यह स्थूल नियम बतला दिया है।

इसके बाद श्लोक ३ में असकृत्कर्म (approximation) से चन्द्रमाका अस्तकाल सूक्ष्मता पूर्वक जाननेकी रीति बतलायी गयी है। इसका कारण यह है कि २ रे श्लोकके पूर्वार्धके अनुसार चन्द्रमाके अस्तकालका जो समय आता है वह ठीक नहीं होता क्योंकि चन्द्रमाकी गति बहुत तीव्र होती है इसलिए सूर्यके अस्तकालमें चन्द्रमाका जो भोगांश होता है

१. देखो योगेशचन्द्र राय सम्पादित सिद्धान्त दर्पण पृष्ठ १३३
२. " " " १३४, श्लोक १०, ११

३. देखो वेंकटेश्वर प्रेसका सूर्यसिद्धान्त पृष्ठ २४९

। उससे चन्द्रमाके अस्तकालका भोगांश कुछ बढ़ जाता है जिससे वह कुछ देरमें अस्त होता है। सूर्यसे चन्द्रमा जितना ही अधिक दूर रहता है उसीके अनुपातमें चन्द्रमाके अस्त होनेमें बिलम्ब लगता है। शुक्लपक्षकी त्रयोदसी या चतुर्दशीके के दिन तो यह विलम्ब २० मिनटके लगभग हो जाता है क्यों कि इस दिन सूर्यास्तसे १०, ११ घण्टेसे भी अधिक समयमें चन्द्रमाका अस्त होता है और इतने समयमें इसकी गति ५, ६ अंशके लगभग होती है जिससे इसके अस्त होनेमें २० से २४ मिनट तकका बिलम्ब हो सकता है। यही जाननेके लिए कहा गया है कि सूर्य और चन्द्रमामें ६ राशि जोड़नेसे जो लग्नान्तरासु आवे उसकी घटिका बनाकर अर्थात् असुओंको ६ से भाग देकर पल और पलोंको ६० से भाग देकर घड़ी बनाकर इसको सूर्य और चन्द्रमाकी दैनिक गतियोंसे गुणा कर दे और गुणनफलको ६० से भाग दे दे तो यह मालूम हो जायेगा कि लग्नान्तरासुओंमें सूर्य और चन्द्रमामें कितनी गति हुई। क्योंकि जब ६० घड़ीमें सूर्य और चन्द्रमाकी गति दैनिक गतिके समान होती है तो लग्नान्तसुओंमें इसीके अनुपातसे होगी। यह गति जान लेनेपर इसे सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशमें जोड़कर और योगफलमें ६ राशि और जोड़कर इनके लग्नोंके अन्तरासु फिर निकाले। इस प्रकार २, ३ बार असकृत्कर्म करनेसे जब अन्तर स्थिर हो जाय तब सूर्यास्तसे उतने ही समय उपरान्त चन्द्रमा का अस्त होता है।

यहां एक बात विचारणीय है। जब सूर्यास्तकालके सूर्य और चन्द्रमा एक बार स्पष्ट कर लिये गये और पहली बार यह मालूम कर लिया गया कि सूर्यास्त कालसे इतने समय उपरान्त चन्द्रमा का अस्त होगा तब इसमें और चन्द्रमाके प्रत्यक्ष अस्तकालमें जो अन्तर पड़ेगा वह केवल चन्द्रमा की गतिके कारण होगा इसलिए असकृत्कर्मके लिए केवल चन्द्रमा की गति को सूर्यास्तकालिक चन्द्रमाके भोगांशमें जोड़ना चाहिए न कि सूर्य की गति को भी परन्तु नियममें सूर्य और चन्द्रमा दोनों की गतियों को जोड़नेको कहा गया है। सूर्य की गति को भी जोड़नेसे जो समय आवेगा वह नक्षत्र काल नहीं होगा वरन् सावन काल होगा परन्तु पहला अन्तर नक्षत्र कालमें आता है। इस लिए नाक्षत्रकाल और सावनकाल का योग नहीं हो सकता। इसलिए उचित यह है कि केवल चन्द्रमाकी गतिका असकृत्कर्म किया जाय। परन्तु सूर्यकी गति लेनेसे अधिकसे अधिक अन्तर २ मिनट का हो सकता है क्यों कि १२ घन्टेका नाक्षत्र काल १२ घण्टेके सावनकाल से केवल २ मिनट अधिक होता है। इसलिए इतनी भूलके लिए नियम को ही प्रक्षिप्त समझ कर निकाल देना बुद्धिमानी नहीं जान पड़ती।

कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाका उदयकाल जानना

भगणार्धं रवेर्दत्वा कार्यास्तद्विवरासवः।
तैःप्राणैः कृष्णक्षे तु शीतांशुरुदयं व्रजेत् ॥५॥

अनुवाद—सूर्यास्तकालिक सूर्यके भोगांशमें ६ राशि जोड़ने से जो आवे उसके लग्नकाल और सूर्यास्तकालिक स्पष्ट चन्द्रमा के लग्नकालके अन्तरासुओंसे असकृत्कर्मके द्वारा जो समय आता है सूर्यास्तसे उतने ही समय उपरान्त कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाका पूर्व क्षितिजमें उदय होता है।

विज्ञान-भाष्य—कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाका भोगांश सूर्यास्तकालिक सूर्यके भोगांशसे १८० अंशसे अधिक होता है इसलिए सूर्यास्तके उपरान्त पूर्व क्षितिजमें चन्द्रमाका उदय होता है। यह जानने के लिए सूर्यास्तकालके सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश जानकर केवल सूर्यके भोगांशमें ६ राशि जोड़ना चाहिए क्योंकि चन्द्रमाका उदय तो पूर्व क्षितिजमें होता ही है इस लिए केवल यह जानने की आवश्यकता है कि सूर्यास्तकालमें पूर्व क्षितिजमें कौन राशि लग्न है और इसके उपरान्त चन्द्रमा कितने समयमें लग्न होगा। इस क्रियासे जो समय आवेगा उस समय चन्द्रमाका उदय नहीं होगा क्योंकि इतने समयमें चन्द्रमा अपनी गतिसे और पूर्व हो जायगा। इससे कितना अन्तर पड़ जायगा यह जानने के लिए तीसरे श्लोकमें बतलाये गये नियमसे असकृत्कर्म करना होगा। यहां भी केवल चन्द्रमाकी गतिसे ही असकृत्कर्म करना चाहिए।

सूर्यास्तकालमें सूर्यसे चन्द्रमाका रेखात्मक अन्तर जाननेकी रीति—

अर्केन्द्वोः क्रान्तिविश्लेषो दिक् साम्ये युतिरन्यथा।
तज्ज्येन्दुरर्काद्यत्रासौ विज्ञेया दक्षिणोत्तरा ॥६॥
मध्याह्नेन्दु प्रभाकर्ण संगुणा यदि सोत्तरा।
तदार्कघ्नाक्षजीवायां शोध्या योज्या च दक्षिणा ॥७॥
शेषं लम्बज्यया भक्तं लब्धो बाहुः स्वदिङ्मुखः।
कोटिः शंकुस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रुतिर्भवेत् ॥८॥

अनुवाद—(६) सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्ति जानकर यदि इनकी दिशाएं एक हैं। तो इनकी ज्याओंका अन्तर करे और भिन्न हों तो योग करे। सूर्यसे चन्द्रमा जिस दिशामें हो वही दिशा इस अंतर या योगकी भी समझे अर्थात् यदि चन्द्रमा सूर्यसे दक्षिण समझे और उत्तर हो तो उत्तर समझे। (७) इसयोग या अन्तरको चन्द्रमाके तात्कालिक छाया कर्णसे गुणा कर दे। यदि दिशा उत्तर हो तो इस गुणनफलको १२ और अक्षज्याके गुणनफलमें घटा दे और यदि दिशा उत्तर हो तो जोड़ दे। (८) इस शेष या योगफलसे भाग दे दे। और लब्धिको इष्ट दिशाका भुज समझे। चन्द्रमाके शंकु अर्थात् नतांश कोटिज्याको कोटि मानकर भुज और कोटिके वर्गोंके योगफल का वर्गमूल निकालनेसे जो आवे उसे कर्ण समझना चाहिए। यही कर्ण सूर्य और चन्द्रमाका सूत्रात्मक या रेखात्मक अंतर है।

विज्ञान-भाष्य—इन तीन श्लोकों का सार यह है:—

यदि सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तिज्याओं का अंतर प मान लिया जाय तो ६ ठें श्लोक के अनुसार

प=चन्द्र क्रान्तिज्या ± सूर्य क्रान्तिज्या,

सातवें और आठवें श्लोकके पूर्वार्धके अनुसार

$$\text{भुज} = \frac{\text{प} \times \text{चन्द्रछायाकर्ण} \pm १२ \text{ अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

कोटि=चन्द्रमाका शंकु अर्थात् चन्द्रमाकी नतांशकोटिज्या

$$\therefore \text{कर्ण} = \sqrt{\text{भुज}^२ + \text{कोटि}^२}$$

छठें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियोंके अन्तर या योगकी ज्याको लेकर ७वें श्लोकके अनुसार काम करना चाहिये परन्तु यह नियम तभी लागू हो

सकता है जब सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियां बहुत कम हों क्योंकि किसी कोण और उसकी ज्यामें अन्तर तभी बहुत कम होता है जब उस कोणका मान कम हो। इसलिये अनुवाद में क्रान्तियोंके योग या अन्तर की जगह क्रान्ति ज्याओंका योग अन्तर कहा गया है।

इसी तरह ७ वें श्लोकके पूर्वार्धमें 'मध्याह्नेन्दुप्रभाकर्ण' कहा गया है जिसका अर्थ है मध्याह्न कालिक चन्द्रमा का छायाकर्ण परन्तु यह युक्ति युक्त नहीं जान पड़ता इसलिए इसकी सूर्यस्त कालिक अथवा जिस समय की शृङ्गोन्नति जाननी हो उस समय का चन्द्रमाका छाया कर्ण ही समझना उचित है। स्वामी विज्ञानानन्द जी तथा आचार्य रङ्गनाथ जी ने भी इसका अर्थ यही किया है और बतलाया है कि यदि एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदय तकके समय को १ दिन माना जाय तो सूर्यास्त का समय मध्याह्न कहा जा सकता है। परन्तु मध्याह्नका शब्द यहां भ्रमात्मक है क्योंकि मध्याह्नका साधारण अर्थ १२ बजे दिन का ही लिया जाता है। इसलिए श्लोकमें मध्याह्न शब्द उचित नहीं है।

उपपत्ति—सूर्यास्तकालमें सूर्यसे चन्द्रमाका जो रेखात्मक अन्तर होता है उसीको यहां कर्ण कहा गया है और उसीको जाननेकी रीति बतलायी गयी है सूर्यास्तकालमें चन्द्रमा आकाशमें जिस विन्दु पर हो उसका धरातलसे जो लम्बान्तर (perpendicular distance) होता है उसे ही यहां कोटि कहा गया है परन्तु यह भारतीय प्रथाके अनुसार उन्नतांश ज्या अथवा नतांश कोटि ज्याके समान होता है और नतांश कोटि ज्या का दूसरा नाम शंकुभी है (देखो पृष्ठ ४१६) इसलिए कोटिको शंकु कहा गया है। इसी कोटिके आधारविंदसे सूर्यका जो रेखात्मक अंतर धरातल पर होता है उसेही भुज या बाहु कहा गया है जिसको जाननेकी रीति श्लोक ६, ७ और ८ के पूर्वार्ध में बतलायी गयी है।

यहां एक बात और ध्यानमें रखनी चाहिए। इस नियम से तभी काम लिया जा सकता है जब सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमाको यामोत्तर वृत्तके तल (plane) में समझ लिया जाय अर्थात् चन्द्रमा द्रष्टासे जिस दिशामें हो उसे दक्षिण या उत्तर दिशा समझनी चाहिए और चन्द्रमाके भुज कोटि और कर्णको भी यामोत्तरवृत्तके तलमें समझना चाहिए। यह सब बातें*चित्र ११५ से अच्छी तरह समझ में आ जायगी।

क्रमशः

*यह चित्र स्वामी विज्ञानानन्दके बङ्गला सूर्यसिद्धान्तसे लिया गया है।

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
पूर्ण संख्या—१६७ Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A.708

भाग २८ Vol. 28. कुम्भ १९८५ संख्या ५ No. 5

फरवरी १९२९

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular

Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

व्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २८ | कुम्भ संवत् १९८५ | संख्या ५

देश और काल

[ले० श्री सुरेशचन्द्र देव, एम. एस-सी]

गत लेखमें (भाग २८ सं० ३) मैंने कहा था कि मिकेलसन और मोरली आकाश और पृथ्वीकी आपेक्षिक गति प्रयोग द्वारा निकालनेमें असफल रहे। वहाँ यह भी कहा जा चुका है कि सापेक्षिकवादकी पहली प्रतिज्ञा यह है कि आकाश और पृथ्वीकी आपेक्षिक गतिका निकालना असम्भव है। मिकेलसन और मोरलीके प्रयोगके अतिरिक्त और भी कई प्रयोग किये गये थे। किन्तु ऐसे अभूत पूर्व सिद्धान्त निश्चित करनेके लिये इतने प्रयोग ही काफी नहीं हो सकते हैं। किन्तु यह ध्यानमें रखना अच्छा होगा कि इस प्रतिज्ञाके प्रमाणित करनेके लिये चाहे उन प्रयोगोंके फल समुचित न माने जायं फिर भी इसकी सत्यताको स्वीकार करनेके लिये कई उपयुक्त हेतु हैं। नीचे जो कहेंगे उससे यह स्पष्ट हो सकता है।

न्यूटन साहब ने जो गति-विज्ञान निर्धारित किया था उसमें यह पहलेसे ही स्वीकार कर लिया गया था कि किसी वस्तुकी समभाविक गतिका (uniform motion) कोई प्रभाव उस वस्तुके अन्तर्गत कार्यों पर नहीं पड़ता है—यह बात स्वयं सिद्ध मान ली गई थी और इसके लिये किसी प्रमाण या व्याख्या की आवश्यकता नहीं पड़ी। अगर कभी कोई ऐसी घटना मिले जिसमें यह सिद्धान्त न लग सके तभी तो उसके कारण, व्याख्या, आदिके खोज करने का प्रयास किया जायगा परन्तु जब तक प्रयोग द्वारा इस सिद्धान्तको अपवाद युक्त नहीं बताया जायगा तब

तक इस तरहका विचार करना असंगत और युक्ति रहित ही तो माना जायगा। यह स्पष्ट है कि प्रकृति के अन्तर्गत जितनी जटिलता हो सकती है और जिसने अभी तक किसी परीक्षाके द्वारा अपना अन्तर्रहस्य प्रगट नहीं किया है उन सभोंसे सम्बन्ध रखना विज्ञान समय का अपव्यवहार समझता है।

'आपेक्षिकत्व की प्रथम प्रतिज्ञा' नाम देकर जो सिद्धान्त हम लोगोंने स्वीकार किया है वह सामान्य दृष्टि से जितना सरल प्रतीत होता है, वास्तवमें वैसा नहीं है। इसके माननेपर हमें अनेक क्रान्तिकारी और आश्चर्यजनक सिद्धान्तोंको भी मानना होगा। इनमेंसे कुछका उल्लेख यहां किया जावेगा।

एक किसी असम्भव उदाहरण पर विचार किया जाय। क्या जानें, शायद यह ही प्रकृति-अवस्था है। पाठक! अनुमान कीजिये कि आप आकाशके भीतरसे एक सेकण्ड में १६१००० मील प्रति सेकंडकी गतिसे ऊपरकी ओर (vertically upwards) भाग रहे हैं। यदि आप अत्यन्त दृढ़ता के साथ इस गति ही को अपनी निजी गति कहते हैं तो कोई भी आपकी बातको भ्रान्तिपूर्ण नहीं कह सकेगा। इस गतिके लिये लोरेन्ट्स संकोचन (Lorentz contraction) है ठीक $\frac{1}{2}$। फल स्वरूप, जितनी वस्तु हैं सब इस गतिकी दिशा में (अर्थात् ऊपर की तरफ) फिरा के रखने पर अपनी पूर्व लम्बाई का आधा सँकुचित होकर छोटी हो जायंगी।

जब आप लेटे रहते हैं, आपकी लम्बाई-मानिये कि ६ फुट है। आप सीधे खड़े हो जाइये—आप तीन फुट हो गये। आप समझते होंगे कि यह असम्भव है—ठहरिये मैं आपको समझा देता हूँ। एक नापने का रूलर लीजिये—बाजारमें जो फुट-रूल मिलता है उसीसे काम चल जायगा। जब इसको खड़ा करियेगा तब इस पर लौरेन्ट्स सँकोचनका असर पड़ेगा और यह आधा फुट हो जायगा। अगर आप इससे अपने को नापते हैं तो आप निजको ठीक ६ "आधा फुट" पाते हैं। अर्थात् आपकी लम्बाई तीन फुट मिलती है। आपके चेहरेमें अभी तक अविश्वासकी लहर खेल रही है। यह हम स्पष्ट देखते हैं क्योंकि आप तुरन्त बोल उठते हैं कि "रूलर को घुमा कर रखनेपर तो कोई परिवर्त्तन हम नहीं पाते हैं" इसका उत्तर भी हमारे पास है। जो आप देखते हैं वह आपके दृष्टिपटल पर उस रूलरका प्रतिबिम्ब (image) है। होता है यह कि दोनों अवस्थाओंमें रूलर का प्रतिबिम्ब (image) दृष्टिपटलके समपरिमाण स्थान-पर जाकर बनता है। किन्तु आपका दृष्टिपटल भी ऊपर की दिशामें (vertically upwords) आपके बिना जानेही सँकुचित हो जाता है। और इसी कारणसे ऊपरकी दिशामें जो प्राकृतिक लम्बाई है उसका ठीक दुगना आप नेत्रोंसे पाते हैं। जितनी परीक्षा आप सोच सकते हैं सब ही में यही दशा प्रकट होगी क्योंकि सब वस्तुएँ एक ही रूपसे परिवर्त्तित होती हैं। फलतः कोई परिवर्त्तन परिदृश्यमान नहीं होता है। दृष्टिक्रियाके एक प्रान्त में पदार्थ सँकुचित होता है, दूसरे प्रान्तमें उसका सम्पूर्ण परिपूरण हो जाता है।

गणितज्ञको, जितनी सम्भावित परीक्षायें हो सकती हैं, उन सबको विस्तारसे विचारने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है। वह जानता है पूर्ण परिपूरण (complete compensation) प्रकृतिके मूल नियमों के साथ मिला हुआ है और इसीलिये हर एक कार्य्य पर यह अपना असर डालता है। आकाशके भीतर से अपनी गतिकी जो संख्या हम लोग निर्धारण करके लिख आये हैं वह वास्तविक संख्यासे बहुत कम है और लम्बाईका परिवर्त्तन भी जितना कहा गया है इसकी तुलनामें अल्प है इस परिवर्त्तनको हम प्रयोग द्वारा नहीं जान सकते हैं, इसलिए नहीं कि यह अति अल्प है, प्रत्युत इसलिये कि इस रहस्यमयी प्रकृतिमें हमारे पास इसके लिये कोई निरपेक्ष साधन नहीं है।

लम्बाईके ऊपर गति का जो असर अभी बताया गया है उसमें एक विचित्रता है । निम्न-

लिखित उदाहरणसे यह विचित्रता अच्छी तरह से समझमें आसकती है।

हवाई जहाज़ने आजकल इतनी उन्नति की है कि वह घण्टेमें ३०० मील तक जा सकता है। हमारे कामके लिये यह गति (speed) ही बहुत है। मनुष्यका शरीर अत्यन्त सीमाबद्ध है। इसीलिये वह अपने शरीर द्वारा जो काम करता है उसमें भी सीमाबद्धता आ पड़ती है। किन्तु उसकी एक इन्द्रिय है—जिसकी सीमा कहां है—यह अभी तक कोई नहीं जान सका है। इस इन्द्रिय का नाम है मन। हमलोग इस मन की सहायता लेकर जो चाहें कल्पना कर सकते हैं। अतएव कल्पना कीजिये कि विमान की उन्नति ऐसी हो गयी है कि वह एक सेकेण्डमें १६१००० हजार मीलकी गतिसे जा सकता है। कल्पनाको यहीं पर न छोड़िये, थोड़ा सा और सोचिये कि इतनी भयंकर गति होनेपर भी उसका गठन ऐसा आदर्श स्थानीय (perfect) है कि वैमानिक पर जो उसको चलाता है, इस गतिका कोई असर नहीं पड़ता है। स्वाभाविकतासे वह उसमें घूमता फिरता है और जिस दिशामें विमान जा रहा है उसी दिशामें वह खड़ा भी है। बस और अधिक कल्पना अब नहीं करनी है।

अगर इस अवस्थामें हम लोग उस वैमानिक को एक मुहूर्त्तके लिये भी देख लेंगे तो हमलोग उसको सिर्फ तीन ही फुट लम्बा पायेंगे, किन्तु उसकी चौड़ाई और मोटाई-साधारण मनुष्यके ही समान मिलेगी और आश्चर्यकी बात यह होगी कि वह अपनी इस तरहकी विचित्र सूरतसे पूर्णतः अनभिज्ञ रहेगा। अगर एक दर्पण लेकर वह अपने को देखेगा तो अपनेको वह ठीक एक ही तरह पायेगा। इसका कारण समझनेमें अब कठिनाई नहीं मालूम होगी क्योंकि पहले जैसा कहा गया है उसकी दृष्टिपटलका संकोचन हो जानेके कारण लम्बाईके तदनुरूप संकोचनका परिपूरण हो जाता है किन्तु वह जब नीचे हमारे तरफ देखेगा तो उसको भी एक विचित्र दृश्य दिखाई पड़ेगा। उसको मनुष्यकी एक अति विचित्र अभिनव जाति दिखाई पड़ेगी जिसका प्रत्येक व्यक्ति किसी कारण से चिपटा होगया है। वह देखेगा कि कोई मनुष्य अपने एक कन्धेसे दूसरे कन्धे तक केवल आठ इञ्च है, और जिसकी चौड़ाई ठीक है, उसकी मोटाई चार पांच इञ्चसे अधिक नहीं है। जब यह लोग एक दिशासे दूसरी दिशामें घूमजाते हैं उस समय उनकी दृष्टिमें हमारी चौड़ाई और मोटाई का परस्पर परिवर्त्तन हो जाता है, जब चौड़ाई घटती है तो मोटाई बढ़ती है, और जब मोटाई घटती है तो चौड़ाई बड़ी हो जाती है। किसी सम्पूर्ण गोलाकार दर्पणमें अपनी छाया देखकर घूमते वक्त जो दृश्य दिखाई पड़ता है उसको स्मरण करने से वैमानिक क्या देखता है उसका अनुमान करना कठिन नहीं होगा।

वैमानिक और हम—दोनों एक दूसरेको देखते हैं कि संकुचित (contracted) हो जाते हैं, लेकिन स्वयं अपरिवर्तित ही रहते हैं। दृश्य के इस विपर्ययको (reciprocity) समझना अत्यन्त कठिन प्रतीत होगा। यह हमारी साधारण कल्पनाके विपरीत है, क्योंकि जिसको हम बड़ा देखते हैं उसकी दृष्टिमें हम छोटे हैं। हम लोगोंने स्कूलमें एक पुस्तक अवश्य पढ़ी है—उसका नाम है गुलिवर की यात्रा (Gulliver's travels)। गुलिवरने लिलिपुटोंके निवासियोंको एक वामन जातिका समझा था और लिलिपुटके लोग स्वयं गुलिवरको दानव समझते थे—ऐसा ही हम लोग साधारणतः स्वभाविक समझते हैं। यदि लिलिपुटके लोग गुलीवरके समक्ष वामन होकर प्रकट होते और साथ साथ गुलिवर भी लिलिपुटोंके पास वामन रूपसे अपने को प्रकट करता—नहीं नहीं यह कल्पना उपन्यासके लिये अत्यन्त असम्भव है, ऐसा विचार केवल विज्ञानके गम्भीर पृष्ठोंके भीतर ही गोपन रहता।

ऐसा विपर्यय आपेक्षिकवादका एक अति प्रयोजनीय सिद्धान्त (deduction) है। जिस तरहसे हम लोग अपने समीपवर्ती सब गतिशील पदार्थोंमें संकोचनका अनुभव करते हैं, ठीक उसी तरह वैमानिक भी अपनी अपेक्षा सब गतिशील पदार्थोंमें लारैन्ट्ज संकोचन अनुभव करेगा; और आकाशमें स्थिर पर्यवेक्षक की तरह अपने चारों तरफ की वस्तुओंको संकुचित देखेगा। अगर ऐसा न देखकर वह कुछ दूसरा दृश्य देखता है तो उससे आकाशके भीतरसे उसकी आपेक्षिक गतिके निकल पड़नेकी आशंका आपड़ती है और जिससे कि आपेक्षिक वादकी प्रथम प्रतिज्ञाका जो हम लोग विज्ञानकी पूर्व संख्यामें प्रकाशित लेखके अन्तमें सत्य समझकर स्वीकार कर आये हैं, विरोध हो जाता है।

केवल देशमें ही नहीं, काल में भी ऐसा विचित्र परिवर्तन होता है। अगर बैमानिकको हमलोग और विचार पूर्वक देखते तो हमको उसके सब कार्यों में अत्यन्त मन्दता (slowness) दिखाई पड़ती केवल उसकी ही गतिमें मन्दता नहीं मालुम होती, बल्कि विमानान्तर्गत सब कार्योंमें उसी तरहकी मन्दता प्रकट होती। मालुम होता कि काल ही मानो चलना भूल गया है। वैमानिक अगर चुरट पीता है तो उसकी चुरट खतम होनेमें हमारी चुरटका दूना समय लगता है—चाहे हमारी और वैमानिककी चुरट एक ही प्रकारकी हो। आप कहेंगे कि वैमानिक हमसे दूर चला जा रहा है इस लिये उसके निकटसे जो प्रकाश हमारी दिशामें आता है वह प्रति मुहूर्तमें दूरसे आता है और इससे उसका सब कार्य विलम्बयुक्त मालूम पड़ना असम्भव नहीं है। किन्तु हम जिस विलम्बताके विषयमें कहते हैं वह हम दोनोंकी सापेक्षिक दूरीको ठीक करलेने पर भी विद्यमान् रहती है।

इस स्थान पर भी, अर्थात् कालमें भी, देशके सम्बन्धमें उपलब्ध विपर्ययके समान विपर्यय दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि वैमानिककी दृष्टिसे लोग सेकेन्डमें १६१००० मील गतिसे दूर भागे जा रहे हैं। और उनको जब दूरत्वके निरन्तर बढ़ जानेके लिये जो विलम्बन अनुभूत होगा उसको ठीक कर लेनेके पश्चात् वह देखेगें कि हम लोग अपने सब कार्यों में अत्यन्त ढीले पड़ गये हैं। हमारी ही चुरट खतम होनेमें दूना समय लगता है।

जो अब तक कहा गया है उसीको और एकबार कहना लाभ जनक हो सकता है। ऐसे अभावित कार्योंके होनेका मूल कारण यही है कि हम लोग समझते हैं कि हमीं आकाशमें स्थिर हैं, प्रत्युत् वैमानिक जानता है कि वही आकाश मंडलमें स्थिर हैं, अर्थात् हमारे मतके अनुसार जब प्रकाश संकेत (चुरटका जलना) उसकी तरफ सिर्फ (१८६००० -१६१०००) मील प्रति सेकेन्डमें भागा जाता है, तब वह देखता है कि यह संकेत उसकी तरफ स्थिर आकाशके भीतरसे प्रकाशकी साधारण गतिसे (सेकेन्डमें १८६००० मील) चला आ रहा है। यह स्मरण रखना उचित है कि प्रत्येक पर्यवेक्षक अपनी बातको सत्य प्रमाण करनेके लिये परीक्षित फल लेकर निर्भय होकर बैठा है। अगर हम वैमानिक को कहें कि तुम्हारी भयंकर गतिके कारणसे जो प्रकाश तरङ्ग तुम्हारे पास जाती हैं उसकी आपेक्षिक गति सेकेन्डमें २५००० मील हो जाती है तो वह तुरन्त उत्तर देगा—"मैंने अपनी अपेक्षा प्रकाश तरङ्गकी गतिको नाप करके देखा है कि वह है सेकेन्डमें १८६००० मील। इस लिये मैं जानता हूँ कि समयके शुद्ध करनेके लिये हमने जो गणना की है वह निभ्रम है।" उसकी घड़ी और रूलर हमारी दृष्टिसे एक अति असम्भव रूपसे विचित्र आचरण करता है, इसलिये यह असम्भव नहीं है कि उसकी निर्धारित प्रकाश तरङ्ग की गति हम जैसी पायेगें उससे विलक्षण होगी, किन्तु उसको इस बातके समझानेके लिये किसी तरहका कोई उपाय नहीं है।

किन्तु प्रश्न आता है कि कौन ठीक है—किसका कहना संशय रहित है ? हमारा या वैमानिकका ? या दोनों ही भ्रान्तिके दास हैं—मायाके कवलमें पड़े हैं ? साधारण दृष्टिसे जिसको भ्रान्ति कहते हैं, वह भ्रान्ति नहीं है क्योंकि हमारी और वैमानिक-दोनों की सब बातें वैज्ञानिक परीक्षा और गणितके द्वारा प्रमाणित हो सकती हैं।

कोई नहीं जानता है कि किसकी बात सत्य है, न कोई कभी जान सकेगा। क्योंकि हम लोगोंमें कौन आकाशके भीतर स्थिर है इसको किसी भी प्रकार की परीक्षा द्वारा मालूम करना हमारे लिये नितान्त असम्भव है।

हमारी समझमें यह समस्या चिरकाल रहस्यमय रहेगी।

[क्रमशः]

रोञ्जन किरणोंकी उत्पत्ति और उनकी उपयोगिता

[ले० श्रीरघुनाथ सहाय भार्गव तथा श्री० त्रिवेणीलाल श्रीवास्तव]

यह भली भांति मालूम है कि जिस समय कोई वस्तु रोञ्जन किरणोंके पथमें रख दी जाती है तो इस वस्तुसे पार होकर जो किरणें निकलती हैं उनका प्रभाव कुछ कम हो जाता है अथवा मंदी होजाती हैं, और यह प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। इस प्रभावके कम हो जाने को शोषण कहते हैं। यह शोषण वस्तुके परमाणुभार पर निर्भर है। अगर परमाणु भार अधिक है तो उसी मोटाई की वस्तुसे शोषण भी अधिक होगा और यदि परमाणु भार कम है, तो कम होगा। निम्न लिखित प्रयोगसे रोञ्जन किरणोंका शोषण अच्छी प्रकार समझा जा सकता है।
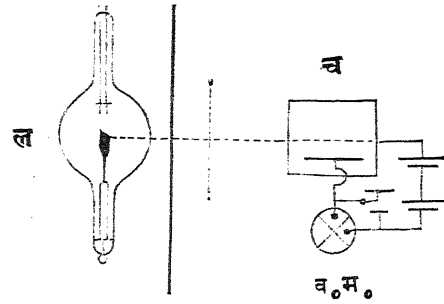
चित्र सं० १

प्रयोगः—ल एक कूलिज लेम्प है जिसमेंसे रोञ्जन किरणें चारों ओर जारही हैं। इस लेम्पके सम्मुख दो परदे कुछ अन्तर पर रक्खे हुए हैं। दोनोंमें एक २ छेद है जो एक ही ऊंचाई पर एक दूसरेके सामने है। इनमें होकर रोञ्जन किरणें एक रेखामें चलती हैं और चलकर 'च' एक यापन बकस पर पड़ती हैं। इस बकसमें एक धातुका पट सीधा रक्खा है जो एक विद्युत मापकसे जुड़ा हुआ है और इस बकस की दीवालोंका सम्बन्ध जैसा चित्रमें दिखाया है बैटरी द्वारा 'ब० म०' विद्युत मापकसे कर दिया गया है। हम भली प्रकार जानते हैं कि गैस अच्छी विद्युत वाहक नहीं है जिसके कारण साधारणतः विद्युत धारा बकस की दीवारों और पटके बीचमें होकर नहीं बह सकती परन्तु रोञ्जन किरणोंके पड़नेसे गैसमें यापन आरम्भ हो जाता है और बकस की गैस विद्युत वाहक बन जाती है और इसी कारण विद्युत मापक विद्युत धाराका प्रवाह बतलाने लगता है। धाराकी प्रबलता यापनकी कमी बेशी पर निर्भर है और यापन की कमी बेशी रोञ्जन किरणोंकी मन्दी और तेज़ी पर निर्भर है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि विद्युत धारा जो विद्युत मापकमें बहती है, प्रबल है तो रोञ्जन किरणें तीव्र हैं और यदि धारा दुर्बल है तो किरणें मंदी हैं। अब हमको यह देखना है कि यदि हम रोञ्जन किरणोंके पथमें कोई वस्तु रख दें तो विद्युत मापकमें विद्युत धारा कम होती है या नहीं इस लिये हमको पहिले रोञ्जन

किरणों को यापन बकस तक सीधे जाने देना चाहिये और विद्युतधारा की प्रबलता नाप लेनी चाहिये। और फिर रोञ्जन किरणोंके पथमें कोई वस्तु रखकर विद्युतधारा नापनी चाहिये। इस से हमको यह मालूम होगा कि विद्युतधारा जो दूसरी वार विद्युत मापकमें बहती है पहिली वारसे कम है। इससे सिद्ध होता है कि रोञ्जन किरणें उस वस्तुसे पार होनेमें अंशतः शोषित होती हैं।

प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि जिस समय रोञ्जन किरणें यापन बकसके गैस पर पड़तीहैं गैसके विद्युत रहित परमाणु धन और ऋण यवनोंमें विभक्त होजाते हैं यह यवन अपनी प्रतिविजलोद की ओर दौड़ते हैं और उसीसे टकरा कर लोप होजाते हैं अथवा अपनी बिजली बिजलोद को दे देते हैं। इस प्रकार धन यवन ऋणोद की तरफ दौड़ेगा। और यदि रास्तेमें वे किसी ऋण यवनसे जो धनोद की ओर दौड़ा जा रहा है टकरावे तो वे दोनों मिलकर फिर विद्युत रहित परमाणु बना देंगे और मिलते समय वह सामर्थ्य जो परमाणुओंके यापित होते समय ली थी वापस कर देंगे जिसका अनुमान विद्युत मापक नहीं लगा सकता। इस लिये जो अन्दाजा रोञ्जन किरणों की तीव्रताका विद्युत मापक द्वारा लगाया जावेगा वह असली तीव्रतासे कम होगा इसलिये ऐसा उद्योग करना चाहिये कि यवन आपसमें मिल कर विद्युत रहित परमाणु कमसे कम बनावें और यह तभी सिद्ध हो सकता है जब यवन अपनी प्रति बिजलोद तक पहुँचनेमें बहुत ही कम समय लें। समय जब ही कम हो सकता है जब यवन अधिक वेगसे दौड़ें। यवनोंका वेग बकस की दीवारकी अवस्था पर निर्भर है। यदि अवस्था अधिक है तो यवन अधिक वेगसे दौड़ेंगे। इस हालतमें रोञ्जन किरणोंके वास्तविक प्रभावमें और वह प्रभाव जो हम विद्युत् मापक द्वारा नापेंगे, बहुत कम अन्तर होगा।

रोञ्जन किरण चित्र मापक (X-ray spectrometer) के आविष्कारसे पहले रोञ्जन किरणें धातुओं-[प्रायः स्फटम् (Aluminium)] के शोषणके अनुसार दो भागोंमें विभक्त की जाती थीं। एक वह किरणें जो स्फट पटकी थोड़ी सी मोटाईसे पूर्ण शोषित हो जाती थी अर्थात् जिनमें धातुओंके पार जानेकी शक्ति कम होती थी, वह 'थ' किरणें कहलाती थीं; और दूसरी वह किरणें जो स्फट पट की अधिक मोटाई होने पर भी पूर्ण शोषित न होती थीं अर्थात् जिनमें धातुओंके पार जानेकी शक्ति अधिक होती थी वह 'त' किरणें कहलाती थीं। 'थ' किरणें 'त' किरणोंकी अपेक्षा कोमल हुईं। कुछ दिनोंसे 'द' और 'ध' किरणोंका भी आविष्कार हो गया है जिनके बारेमें इस समय कुछ अधिक न लिखेंगे। यह 'थ' किरणोंसे भी अधिक कोमल होती हैं।

हम अभी यह बतला चुके हैं कि जिस समय रोञ्जन किरणें किसी वस्तुसे पार होती हैं तो उनकी तीव्रता कम हो जाती है। इस समय प्रश्न यह उठता है कि जो सामर्थ्य वस्तुओंसे पार होनेमें लोप हो गई है उसका क्या होता है। क्या वह सर्वदाके लिए नष्ट हो जाती है या फिर किसी दूसरे रूपमें प्रगट होती है। यह प्रसिद्ध वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि सामर्थ्य कदापि नष्ट नहीं होती है, वह किसी न किसी रूपमें बदल कर प्रगट होती है। यहां पर भी इस सिद्धान्तका पालन होता है और यह सामर्थ्य दूसरे प्रकार की रोञ्जन किरणोंमें बदलती है जो उप-किरणें कहलाती हैं। इनकी तीव्रता पतित किरणोंकी तीव्रतासे कम होती है क्योंकि जैसा हम पूर्व कह चुके हैं कि शोषित सामर्थ्यका एक ही भाग तो रोञ्जन उप-किरणोंके रूपमें प्रगट होता है और दूसरा भाग वस्तुसे चारों ओर बिखर जाता है। इसलिये इनकी तीव्रता एक दिशामें पूर्ण तीव्रताका एक भाग होती है। मुख्य प्रयोग इन उप किरणोंकी उत्पत्तिमें निम्नलिखित है।
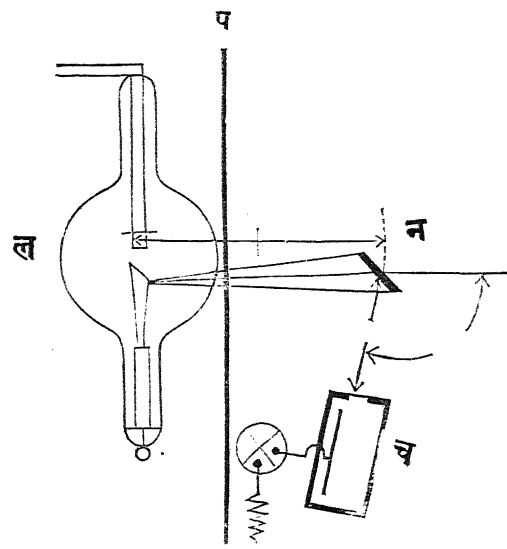
चित्र सं० २

प्रयोग।—'ल' एक कूलिज लेम्प है जिसमें से रोञ्जन किरणें निकल रही हैं। इस लेम्पके आगे 'प' एक सीसेका परदा है जिसमें एक छेद है। रोञ्जन किरणें छेद में होकर 'न' एक धातु पट पर टकराती हैं। टकरानेके पश्चात् ऐसा दीख पड़ता है कि पटमें से भी रोञ्जन किरणें चारों ओर निकल रही हैं जो चमकने वाले परदे द्वारा निश्चयकी जा-सकती हैं। इनमें से कुछ एक यापन बकस 'च' की हवासे टकराती हैं उसमें यापन आरंम्भ हो जाता है और उसकी दीवार और पटके बीचमें धारा बहने लगती है जिससे पता चलता है कि किरणोंके पट पर पड़नेसे उपकिरणें पैदा होगई हैं।
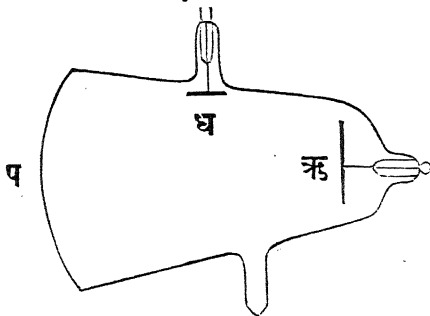
चित्र सं० ३

सब से पहली नली जिससे रोञ्जन ने प्रयोग किया वह चित्र सं० ३ में दिखलाया गया है। इस नली में 'ऋ' ऋणोद है और 'ध' धनोद है, इस नलीकी हवाको उच्चशून्यपम्प द्वारा इतना निकाल देते हैंकि इसके बिजलोदोंके बीचमें ४०००० वोल्टोंके अवस्थाभेद होने परही विद्युत धारा प्रवाह करे। विद्युत धाराके प्रवाहके समय ऋणोदसे ऋणोद किरणें निकलने लगती हैं। यह किरणें ऋणोदके पृष्ठके लम्बोंकी ही दिशामें जाती हैं, इस लिए जो चीज उसके सामने रखी होती है उसी पर पड़ती है। नलीमें सामने की काँच की दीवार पर टकराती हैं। रोञ्जनके सबसे पहले प्रयोगमें हम बता चुके हैं कि जिस समय ऋणोद किरणें कांचसे टकराती हैं, कांच चमकने लगता है। और उसी समय रोञ्जन किरणें कांचसे सर्वत्र चलने लगती हैं। इस प्रकार इस नलीके 'प' भागसे रोञ्जन किरणें निकलने लगती हैं। इन किरणोंसे प्रयोग करनेपर ज्ञात हुआ कि प्रकाश-चित्र-पट पर किसी चीजका चित्र अच्छा नहीं आता है और भार-पररौप्य-श्यामिद परदे पर भी चीजोंकी साफ छाया नहीं पड़ती है। इसका कारण यह है कि रोञ्जन किरणें कांचके बहुत बड़े हिस्सेसे आरही हैं। यदि कांच परके किसी एक बिन्दुसे आतीं तो छाया चित्र तीक्ष्ण होती और यह तभी होसकता है जब ऋणोद किरणें एक विन्दु पर एकगित करदी जावें। इसलिए सपाट ऋणोदके बदले एक नतोदर (बीचमें पिचका हुआ) ऋणोद लिया जाता है जिसका केन्द्र कांच पर हो ता ऋणोद किरणें कांच पर एकत्रित होजाती हैं। परन्तु ऐसा करना इतना सहल नहीं है जैसा कि हमने थोड़े शब्दोंमें कह दिया है। ऐसा करनेसे कांचकी नली पलोंमें ही पिघल जावेगी और न केवल किरणोंकी उत्पत्ति ही बन्द हो जावेगी वरन् नली भी नष्ट हो जावेगी। पिघलनेका कारण यह है कि जिनको ऋण किरणें कहते हैं वह वास्तवमें ऋणाणुओं की षर्वा है जो ऋणोदसे बड़े वेगसे निकलते हैं। जिस

समय यह काँचपर पड़ते हैं, रुक जाते हैं, और रुकते ही इनकी गति-सामर्थ्य तापके रूपमें बदल जाती है। यह ताप इतना अधिक होता है कि थोड़े ही समयमें कांच पिघलजाता है । यदि हम ऐसी वस्तु पर ऋण किरणोंको टकराने दें जिसका द्रवांक अधिक है अर्थात् जो उच्च तापक्रम परही पिघलती है तो बहुत संभव है कि इस कठिनाईसे बच जावे। परन्तु ऐसा करने के पहले यह प्रश्न उठता है कि ऋण किरणें प्रत्येक वस्तुसे रुकनेसे रोञ्जन किरणें उत्पन्न करती हैं या नहीं । इसको निश्चय करने के लिये प्रयोग किये गये जिसमें प्रति ऋणोदको जो किसी धातुका बना था नतोदर ऋणोदके केन्द्र पर रख दिया, ताकि ऋण किरणें प्रति ऋणोद पर आकर रुकें । तब यह देखा गया कि दोनों बिजलोदों को एक बड़ी भारी बिजली चलाने वाली शक्तिजनक जैसे रुह्मकोर्फ की बेठनके दोनों सिरोंसे जोड़नेपर नलीमें धारा बहने लगी और प्रति ऋणोदसे किरणें निकलने लगी । पहले प्रति ऋणोद पररौप्यम् (Platinum) का बनाया गया क्योंकि इसका द्रवांक बहुत ऊंचा है, अर्थात् २०००°श से भी अधिक है। प्रति ऋणोद इस प्रकार रखते हैं कि रौञ्जन किरणें नलीके एक ओरसे निकलती रहें। पररौप्यम् जैसी धातुका प्रति ऋणोद होने पर भी कुछ न कुछ प्रबन्ध ठंडे होते रहने का करना पड़ता है। प्रति ऋणोदके ठंडा रखनेसे रोञ्जन किरणों की तीव्रता बढ़जाती है। साधारण नलामें दो बिजलोद होते हैं और वह नली रौंजन लम्प बनजाती है जिस में ऋणोद नतोदार कर दिया जाता है और ऋणोदके केन्द्र पर एक प्रति ऋणोद रख दिया जाता है। यह प्रति ऋणोद धनोदसे जुड़ा रहता है । धारा बहानेके लिये धारा जनकके सिरे ऋणोद और धनोदसे जोड़ दिये जाते हैं ।

यह हम पहले बतला चुके हैं कि बिजलोदोंमें कितना अवस्था भेद रखें कि विद्युत् धारा लैम्पमें बहने लगे। यह लैम्पके भीतरी हवाके दबाव पर निर्भर है। यदि दबाव कम है तो अवस्था भेद अधिक होना चाहिये। यदि अवस्था भेद ज्यादा है तो ऋणोदसे निकले ऋणाणु अधिक वेगसे चलते हैं। रोञ्जन किरणों की कठोरता ऋणाणुओंके वेग पर निर्भर है। अगर वेग ज्यादा हो तो कठोरता ज्यादा होगी, अर्थात् रोञ्जन किरणें स्फटम् धातुके पटकी अधिक मोटाईसे पार हो सकेंगी। ऐसी किरणों को हम 'त' किरणें कहते हैं। इन किरणों की लहर लम्बाई कमहोती है। यदि हम यह अवस्था भेद कम करते चले जावें तो एक समय आवेगा कि उसे यदि थोड़ा भी और कम करें तो 'त' किरण निकलनी बन्द हो जावेंगी। ऐसे अवस्था भेद को 'त' किरणोंके लिये आवश्यक-अवस्था भेद कहते हैं। इस आवश्यक अवस्था भेदके कम होने पर भी जो किरणें निकलेंगी उनकी कठोरता कम होगी। ऐसी किरणों को हम 'थ' किरणें कहते हैं। यदि हम अवस्था भेद और भी कम करते चले जायं तो एक समय ऐसा भी आवेगा कि 'थ' किरणें भी निकलनी बन्द हो जावेंगी। तात्पर्य यह है कि 'त' किरणों पर प्रयोग करनेके लिये हमको किरणोंके आवश्यक-अवस्था भेदका ध्यान रखना चाहिये, अन्यथा किरणें न निकलेंगी।

सबसे बड़ी कठिनाई इस रौंजन लैम्पमें यह है कि प्रयोग करते समय इसमें दबाव बदलता रहता है। इसका कारण यह है कि ऋणाणु नली की गैसके परमाणुओ को यापित कर देते हैं। धन यवन काँचके अन्दर चले जाते हैं, और वहां ही रह जाते हैं। इस तरह गैसकी मात्रा कम होती है, और उसके कम होनेसे दबाव भी कम होता जाता है। दबाव कम होते होते वह दशा हो जाती है कि जिस अवस्था भेद पर पहले लम्पमें विद्युत धारा का प्रवाह होता था, अब नहीं होता है। जब विद्युत् धाराका प्रवाह नहीं होगा—तो हमारा प्रयोग किसी भांति पूर्ण नहीं हो सकता है क्योंकि रोञ्जन किरणें ऐसी दशामें न निकलेंगी इस लिये इन लेम्पोंमें ऐसा प्रबन्ध किया जाता है कि जब गैस कम होजावे तो गस डाली जा सके। कूलिज

लैम्पके आनेसे यह कठिनाई भी दूर हो गई है। इस लम्पमें से हवा यहां तक निकाल दी जाती है, कि जो कुछ बच जाती है उसका दबाव १ नियुतांश मीटरके लगभग होता है। लम्पमें विद्युत् धाराका प्रवाह नहीं होता है क्योंकि लेम्पके भीतर हवा बहुत कम होनेके कारण विद्युत् मय कण बहुत कम रह जाते हैं। इनको अधिक करनेके लिये इसमें एक तन्तु रखा जाता है जिसको बिजलीकी धारासे गरम किया जाता है तन्तुके गरम होनेसे उसमें से ऋणाणु निकलने लगते हैं जिनकी संख्या तन्तुके तापक्रम पर निर्भर है। तन्तु का तापक्रम धाराके घटाने बढ़ानेसे घटता बढ़ता है इसलिए ऋणाणुओं की संख्या भी घटती बढ़ती है इन ऋणाणुओंका वेग बहुत कम होता है परन्तु बिजलोदोंकी अवस्था घटाने बढ़ानेसे यह वेग भी घटाया बढ़ाया जा सकता है ऋणाणुओंके वेगके घटने बढ़नेसे किरणोंकी कठोरता घटती बढ़ती है ऋणाणुओंकी संख्याके घटने बढ़नेसे लम्पमें धारा घटती बढ़ती है धारा घटने बढ़नेसे किरणें मंदी और तेज होती हैं इसलिए इस लम्पमें किरणोंकी कठोरता और तीव्रता आसानी से घटायी और बढ़ायी जा सकती है आजकल स्पतालोंमें प्रायः ऐसे ही लम्प काम में आते हैं।

फुप्फुस प्रदाह

[ले० श्रीरामचन्द्र भार्गव एम. बी., बी. एस.]

दिसम्बर के अङ्कसे आगे

प्राणियों पर फुप्फुस-विन्दुके प्रभावकी जांच—फुप्फुसविन्दुमें बहुत प्राणियोंके प्रति रोगोत्पादक शक्ति पाई जाती है। यद्यपि प्रभावोंकी तीव्रता फुप्फुसविन्दुकी नस्लकी तीव्रता पर भी निर्भर रहती है भिन्न प्राणियोंमें प्रभावशीलता भी भिन्न रहती है। शशक और मूषक, बहुत प्रभावशील होते हैं, विशेषतः मूषक तो बहुत ही प्रभावशील होता है। कबूतर बिल्कुल अप्रभावशील होता है और गिनी शूकर; चूहे, और कुत्ते की स्थिति मध्यस्थ समझी जा सकती है। अधिक प्रभावशील प्राणियोंमें फुप्फुसप्रदाहके स्थानमें जीवाणुमयरक्त रोग उत्पन्न होता है। इस प्रकार यदि फुप्फुस प्रदाहका बलगम अथवा प्रदाहित फुप्फुस की खुर्चन शशक अथवा मूषककी त्वचाके नीचे चढ़ा दी जाय तो २४ से ४८ घन्टेमें प्राणी मर जाते हैं। जीवाणु-प्रवेशके स्थानपर कुछ सूत्रिनीय निःस्राव पाया जाता है, प्लीहा बड़ी और कड़ी पाई जाती है और रक्तमें असंख्य आवरणयुक्त फुप्फुस विन्दु पाये जाते हैं। यदि जीवाणु सीधे फुप्फुसमें ही चढ़ा दिये जायं तो साधारणतः दोनों फुप्फुसावरणोंमें द्रव मिलेगा और फुप्फुसमें लगभग मानुषी भीषण सूत्रिनीय फुप्फुस प्रदाहके समान ही परिवर्तन भी पाये जा सकते हैं। हृदयावरण प्रदाह और प्लीहाका बढ़ना भी अधिकतर पाये जाते हैं। यह हम पहिले ही बतला आये हैं कि कृत्रिम माध्यमों पर फुप्फुस विन्दु की तीव्रता कम हो जा सकती है। यदि यह कम तीव्र फुप्फुस-विन्दु शशक की त्वचाके नीचे चढ़ा दिये जांय तो स्थानीय प्रतिक्रिया अधिक तीव्र होती पाई जायगी, फुप्फुस प्रदाह और फुप्फुसावरणों पर लसीकाका निःस्राव पाये जा सकते हैं और परिविस्तृतावरणमें भी यही परिवर्तन पाया जा सकता है। यदि कम तीव्र कृषिये चढ़ाकर शशकको पहिले अभय करके फिर तीव्र कृषि चढ़ाई जांय तो भी उसी प्रकार अधिक तीव्र स्थानीय प्रतिक्रिया उत्पन्न होती पाई जायगी। इन प्राणियोंकी अपेक्षा भेड़में अधिक अभय की उपस्थिति इससे प्रकट होती है कि अधःत्वच अन्तःक्षेपणके पश्चात् प्रवेश स्थान पर बहुत सूत्रिनीय निःस्राव पाया जाता है और रक्त में बहुत ही कम फुप्फुस विन्दु पाये जाते हैं। भेड़में फुप्फुसके भीतर अन्तःक्षेपणके पश्चात् आदर्श फुप्फुस प्रदाह उत्पन्न हो जाता है जो कि साधारणतः प्राणघातक सिद्ध होता है।

श्वासके द्वारा रोग केवल मूषक और शशकमें ही उत्पन्न किया जा सकता जान पड़ता है। इस विधिसे भी जीवाणु प्रवेश किये जाने पर जीवाणु मयरक्त उत्पन्न हो जाता है। कुत्तोंमें टेटुएके भीतर जीवाणु चढ़ानेसे सूत्रिनीय फुप्फुसप्रदाह उत्पन्न हो आता है जो कि लगभग मानुषी रोगके समान ही होता है।

इन परीक्षणोंसे यह ज्ञात होता है कि बहुत अधिक प्रभावशील प्राणियोंमें तीव्र फुप्फुसविन्दुके रोग प्रवेशसे जीवाणुमयरक्त रोग उत्पन्न होता है। अधिक अभीत प्राणियोंमें स्थानीय प्रतिक्रिया अधिक तीव्र होती है और यदि जीवाणु सीधे फुप्फुस में ही पहुँचा दिये जायँ तो फुप्फुसप्रदाह उत्पन्न हो आ सकता है जो कि केवल विशेष तन्तु का प्रदाह ही है। जब फुप्फुसविन्दु की इतनी मात्रा कि जो एक शशक को मार सके मनुष्यमें चढ़ादी जाती है तो प्रवेश स्थान पर प्रदाहिक सूजन उठ आती है और कुछ ज्वर चढ़ आता है जो कि कुछ दिनमें अच्छे हो जाते हैं। इसलिये ऐसा जान पड़ता है कि मनुष्य में मध्यम श्रेणीकी प्रभाव शीलता विद्यमान रहती है और मनुष्यमें प्रभाव शीलताकी मात्रा की स्थिति कुत्ते और भेड़की प्रभावशीलताओंके बीचमें जान पड़ती है और जब फुप्फुस-विन्दु फुप्फुसमें पहुँच जाते हैं तो फुप्फुस-प्रदाहके रूपमें स्थानीय प्रदाह आरम्भ हो जाता है। इस सम्बन्धमें फुप्फुस प्रदाहके साथ साथ जीवाणुमय रक्तके लक्षण भी पाये जाना बहुत महत्व पूर्व घटना है। यह देखा ही जा चुका है कि मस्तिष्कावरण प्रदाह और अन्य पेचेदगियोंका पाया जाना साधारण है और ऐसे रोग को स्थानीय रोग और बहुत प्रभावशील प्राणियोंमें उत्पन्न हो जानेवाले जीवाणुमय रक्त विकारके बीचकी अवस्था समझना चाहिये।

एक घटना जोकि फुप्फुस विन्दुके फुप्फुसप्रदाह के कारण होनेमें संदेह डालती जान पड़ती थी पाश्चर द्वारा स्वस्थ मनुष्योंकी रालयें अन्य जीवाणुओंके साथ फुप्फुसविन्दुका पाया जाना था। प्रभावशील प्राणियोंमें अन्तः क्षेपण द्वारा फुप्फुस-विन्दु बहुतसे स्वस्थ मनुष्योंके मुँहों और नासिकाओंमें से पृथक् किया जाता है। कभी इन की संख्या व्यक्तियोंमें समय समय पर बहुत पाई जा सकती है विशेषतः सर्दीके मौसिममें जब फुप्फुस प्रदाह बहुत फैला रहता है, और कभी कभी फुप्फुस विन्दु अनुपस्थित भी पाया जा सकता है। इससे केवल सहायक कारणोंका महत्व सूचित होता है जैसा कि पूयजन विन्दुगच्छ और विन्दु शृंखला और वृहद् अन्त्रीय छड़ इत्यादिके आक्रमणोंमें भी देखनेमें आता है। ऐसे कारणोंसे फुप्फुसकी जीवत्व शक्ति और प्रतिरोध शक्ति कम होजाती हैं और फिर फुप्फुस विन्दु प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार यह समझाजा सकता है कि जीवत्व शक्ति कम करने वाले कारण जैसे ठंडक मद्यसारका अधिक पान इत्यादि का रोग उत्पन्न करनेमें कितना अधिक भाग होता है। इस प्रकार श्वासपथकी असाधारण अवस्थायें भी जैसे जैसे वायु प्रणाली प्रदाह इत्यादि भी फुप्फुस प्रदाह उत्पन्न कर सकनेमें सहायक सिद्ध होसकते हैं। रॉक फेलर खोजकोंकी खोजोंके अनुसार स्वस्थ मनुष्यमें पाये जाने वाले फुप्फुस-विन्दु अधिकतर चौथी प्रकारके होते हैं जिनमें मनुष्यमें रोग उत्पन्न करनेकी शक्ति बहुत कम होती है। बहुत तीव्र रोगोत्पादक शक्ति वाले जीवाणु अधिकतर फुप्फुस प्रदाहके बीतरोगियोंके और रोगियोंसे स्पर्शमें आये मनुष्यके मुँहमें और रोगियोंके कमरों में ही पाये गये हैं। अधिकतर तो यह तीव्र जीवाणु वीतरोगियों और स्पर्श में आये मनुष्योंके मुँहमें शीघ्र ही मिलना बन्द हो जाते हैं परन्तु तब भी कुछ रोगियोंमें फप्फुस विन्दु बहुत अधिक समय तक पाये जाते हैं और ऐसे मनुष्य रोगके वाहक सिद्ध हो सकते हैं।

यह समझना और भी कठिन जान पड़ता है कि फुप्फुस-विन्दु द्वारा उत्पन्न हुआ प्रदाह कभी कभी तो बहुत फैल जाता है कि जैसा भीषण

सूत्रिनीय प्रदाहमें देखा जाता है और कभी कभी सूक्ष्म-वायुप्रणाली-प्रदाहमें कुछ क्षेत्रोंमें ही सीमा बद्ध रह जाता है। यह हो सकता है कि पहिली अवस्थामें जीवाणु बहुत तीव्र होते हैं परन्तु इस कोई अन्य साक्षी नहीं ज्ञात है । परन्तु ऐसी ही घटना त्वचाका विषैला लाल रोग (इरीसिपे लास) में भी देखनेमें आती हैं क्योंकि यह देखा जा चुका है कि जब विन्दुशृंखलामें तीव्रता अधिक होती है तो इरीसिपे लास उत्पन्न होती है और जब उसमें तीव्रता कम होती है तो प्रदाह होकर और पीप पड़ कर कम होती है तो ही रोग अच्छा हो जाता है।

फ्रेंकेलके फुप्फुसविन्दु और फुप्फुस प्रदाहके विषयमें संक्षेपसे यह कहा जा सकता है कि यह विन्दु लगभग प्रत्येक भीषण सूत्रिनीय फुप्फुस प्रदाहसे और कभी कभी अन्य फुप्फुस प्रदाहोंसे निकाला जा सकता है। जब फुप्फुसविन्दु बीचकी प्रभाव शीलता वाले प्राणियोंके फुप्फुसोंमें चढ़ाये जाते हैं तो फुप्फुसप्रदाह हो जाता है । इस कारण यह कहा जा सकता है कि सूत्रिनीय फुप्फुसप्रदाह का वास्तविक कारण फुप्फुस-विन्दु ही है और अन्य प्रकारके फुप्फुस प्रदाहोंके उत्पन्न करनेमें भी इस विन्दुका बहुत भाग रहता है।

फुप्फुस प्रदाहके प्रति अभय उत्पन्न करना—५५° श. पर रखकर मारी हुई कृषि चढ़ानेसे, कृत्रिम माध्यमों पर डालकर अतीव्र की हुई कृषि को चढ़ानेसे अथवा प्रकृतिमें पाई गई अतीव्र प्रकारके फुफुस विन्दुओंको चढ़ानेसे प्राणियोंमें तीव्र फुप्फुसविन्दुके प्रति अभय उत्पन्न किया जा सकता है । कभी कभी केवल एक और कुछ दिन पश्चात् दो अन्तः क्षेपणोंके पश्चात् अभय उत्पन्न हो जा सकता है परन्तु अधिकतर अभय बहुतही कम दिन रहता है और कुछ ही सप्ताहमें जाता रहता है । बहुत शीघ्र और बहुत अधिक अभय उत्पन्न करनेकी एक विधि यहाँ वर्णन की जाती है। इन अभीत प्राणियोंका तोय (सीरम) जब शरीरके बाहिर फुप्फुस विन्दुमें मिला लिया जाता है तो फिर अन्तः क्षेपण करनेसे फुप्फुसविन्दुओंका कोई प्रभाव नहीं होता है और इस मिश्रणका अन्तःक्षेपण भविष्यमें किये जाने वाले फुप्फुसविन्दुके अन्तः क्षेपणके प्रति रक्षा भी कर सकता है । फुप्फुस विन्दुओंके प्रवेशके २० घन्टेके भीतर ही यदि अभीत प्राणियों का तोय चढ़ा दिया जाय तो उनके प्राण बच जा सकते है। अभीत तोयमें बहुत अधिक तनूकरणमें भी उस ही नस्लके विन्दुओंका संश्लेषित करनेकी शक्ति उपस्थित रहती है।

जीवाणु नाशक तोयों द्वारा फुप्फुस-विन्दुओंकी नस्लों को पहिचानना—फुप्फुस विन्दुके अभयके अध्ययनसे हुए लाभोंमें यह भी लाभ हुआ है कि फुप्फुसविन्दुकी अब नस्ल पहिचानी जा सकती है। यह तो पहले भी देखा जा चुका था कि भिन्न उद्‌गमोंसे निकाले हुए फुप्फुस विन्दुओं में कुछ विशेष भिन्नतायें पाई जाती थी परन्तु इस विषयमें ठीक ज्ञान रॉकफेलर विद्यालय, न्युयार्क की खोजोंसे हुआ। भीषण फुप्फुस खंड प्रदाहके रोगियोंसे उगाई बहुत सी कृषियोंको प्राणियोंमें चढ़ानेसे जो प्रतितोय बनते थे उनकी संश्लेषक शक्तिका अध्ययन करते हुए यह ज्ञात हुआ कुछ नस्लोंसे तैयार किये हुए तोय कुछ नस्लोंके फुप्फुस विन्दुओंमें तो संश्लेषण उत्पन्न कर सकते थे परन्तु अन्य कुछ नस्लों पर उनका कोई प्रभाव न होते हुए पाया गया। यह भी ज्ञात हुआ संश्लेषक शक्तिके साथ संरक्षक शक्ति भी विद्यमान रहती थी । इस प्रकार नस्लोंको चार प्रकारोंमें विभाजित किया जा सका। इनमें तीन प्रकार तो बिल्कुल पृथककी जा सकती हैं। परन्तु चौथी प्रकारमें वे नस्लें सम्मिलित कर दी गई कि जिनसे उत्पन्न हुए प्रतितोय केवल उसही नस्लके जीवाणुओंको संश्लेषित कर सकते थे और जिनसे उत्पन्न हुए तोयमें पहिली, दूसरी, तीसरी प्रकारोंके भी प्रति संश्लेषण शक्ति बिल्कुल अनुपस्थित थी। तीसरी प्रकारके फुप्फुस बिन्दुओंमें तोयीय जांचमें विशेषता पाये जानेके अतिरिक्त यह एक और विशेषता थी कि

उसमें फुप्फुस--बिन्दु चिपकनेके कृषि लक्षण विद्यमान थे। प्रकार पहिली और दूसरी लगभग ६०% फुप्फुस प्रदाह रोगियोंके रोगका कारण सिद्ध हुई और इनमें मनुष्यके प्रति बहुत तीव्रता उपस्थित रहती है विशेषतः प्रकार दूसरीमें। तीसरी प्रकारमें अधिकतम तीव्रता पाई जाती हैं और उसके रोगियोंमें ४५% मर जाते हैं। चौथी प्रकार ४०% रोगियोंमें पाई जाती है और इसके रोगियों में मृत्यु बहुत कम (१६%) होती है। स्वस्थ मनुष्योंके मुँहमें पाई जाने वाली नस्लें भी इस प्रकारमें सम्मिलित की जा सकती जान पड़ती हैं। इन सब खोजोंका अच्छी तरह समर्थन किया जा चुका है निदान और चिकित्साकी दृष्टिसे ये खोजें बहुत महत्त्व पूर्ण जान पड़ती हैं। यह भी हो सकता है कि पृथ्वीके अन्य भागोंमें और भी भिन्न प्रकार पाई जाती हों। इस प्रकार लिस्टर ने दक्षिण अफ्रीकामें मालूम किया कि न्युयोर्ककी प्रकारें पहिली और दूसरी तो पाई ही जाती हैं परन्तु एक तिहाई रोगियोंमें फुप्फुसविन्दुकी ऐसी प्रकार भी पाई जाती हैं कि जो न्युयार्कमें मिलती नहीं जान पड़ती।

संश्लेषण द्वारा फुप्फुस विन्दुकी पहिचान—निर्दीक्षक के पास पहिली, दूसरी, तीसरी प्रकारोंके प्रति तोय होने चाहिये। एक सफेद मूषकके परिविस्तृता वरणमें थोड़े बलगमका ·५ अथवा १ घ. श. मी. सामान्य लवणीय घोलमें बना हुआ मिश्रण चढ़ा दिया जाता है। मिश्रण बनानेके पहिले मिश्रणको पवित्र लवण घोलसे धो लेना अच्छा है। मूषक ५-२४ घन्टेमें मर जा सकता है और यदि परिविस्तृतावरणीय निःस्रावमें तीव्र और शुद्ध कृषि हो तो उदर प्रदेशीय विवर ५ घ. श. मी. लवण घोलसे धो लिया जाता है और फिर जूष और रक्त आगर डिबियायें बोदी जाती हैं। परिविस्तृत आवरणीय धोवनको चक्कर खिलाये जाते है कि जिससे जीवाणुओंका तलछट गिर जाय। तलछटका लवणीय घोलमें गाढ़ा मिश्रण बना लिया जाता है और फिर वह तलछट वाली जांचके लिये काममें लाया जाता है। यदि रक्तसे अथवा और निःस्रावसे निकाले जीवाणु उपयोग किये जा रहे हों तो भी इसी प्रकारका दोलन तैयार कर लेना चाहिये। फिर ०·५ घ. श. मी. तोय १ (१-२०), ०·५ घ. श. मी. तोय २ (अतनु) ०·५ घ.श.मी. तोय २ (१-२०) और ०·५ घ.श.मी. तोय ३ (१-५) चारनलियोंमें डाल लिये जाते हैं और प्रत्येकमें ०·५ घ.श.मी. जीवाणिक मिश्रण लिया जाता है। पांचवीं नलीमें ·१ घ. श.मी. पवित्र गोपित्त और ०·३ घ.श.मी. जीवाणिक दोलन छोड़ लिया जाता है। यह सब नलियें एक घन्टे तक ३७° श पर पानीमें रखी जाती हैं; और फिर उनका निरीक्षण किया जाता है। यदि किसी भी नलीमें कोई परिवर्तन न हो और जीवाणु गोपित्तमें घुलजाय तो बह चौथी प्रकारका समझा जा सकता है। अन्यथा जिस प्रकारके तोय वाली नलीमें भी तलछट आ जाय जीवाणु उसी प्रकारका समझा जा सकता है।

तोयोंसे फुप्फुस प्रदाहकी चिकित्सा

बहुत वर्ष हुए क्लेम्परोंने अभीत प्राणियोंसे निकाले तोय द्वारा कुछ फुप्फुस प्रदाहके रोगियों की चिकित्साकी और उससे बहुत कुछ लाभ भी हुआ जान पड़ता है। फिर रोमरने मोडके तोय और मधुरिन मिले जूषमें फुप्फुसविन्दुओंको उगा कर और फिर उन फुप्फुसविन्दुओंको भिन्न प्राणियोंमें चढ़ाकर, उनके तोयोंको मिलाकर तोय मिश्रण बनाया। इससे कभी कभी लाभ तो होता था परन्तु नियत रूपसे कोई सफलता न हुई। फिर न्यूफेल्ड हेइनडेल ने इस विषय पर नवीन प्रकाश डाला और उसने यह देख लेने का महत्त्व दर्शाया कि जब फुप्फुस बिन्दु नाशक तोय उपयोगमें लाया जाय तो यह देख लिया जाय कि विशेष आक्रमणकारी जीवाणु पर भी उसका कोई प्रभाव होता है अथवा नहीं।

न्युयार्क वाली खोजों ने भी इसी विचारको दृढ़ किया। भिन्न प्रकारोंको पहिचाननेकी विधि

निकालनेके पश्चात् उन्होंने यह खोजकी कि उनके प्रतितोयों का उनपर क्या प्रभाव होता है उन्होंने यह मालूम किया कि १ ली प्रकारके फुप्फुस विन्दुके रोगियोंमें इसके ही उपयोगसे बनाये प्रतितोयका बहुत लाभदायक प्रभाव होता है। दूसरी और तीसरी प्रकारके फुप्फुस विन्दुके रोगियों पर उन ही के प्रतितोयोंका कोई लाभदायक प्रभाव पड़ता न पाया गया। १ली प्रकारके प्रतितोयका भी २री और ३री प्रकारके फुप्फुस विन्दुके रोगियों पर कुछ प्रभाव नहीं होता। साधारण बहुनस्ली फुप्फुसविन्दु नाशक तोयके उपयोगसे जो अनियत और असन्तोष जनक फल देखनेमें आते हैं, उन पर इन खोजोंसे कुछ प्रकाश पड़ता है। रॉकफेलर तोय मृतकृषियोंसे घोड़ोंको अभीत बनाकर तैयार किया जाता है। ६ दिन तक दैनिक अन्तःक्षेपण दिये जाते हैं। फिर एक सप्ताहके अन्तरके पश्चात् छ दैनिक अन्तःक्षेपण और दिये जाते हैं। इनके पश्चात् कभी कभी जीवित जीवाणुओं के चढ़ानेकी आवश्यकता पड़ जाती है। ०·२ घ० श० मी० तोय सफेद मूषककी १८ घण्टेकी कितनी अधिकतम कृषिसे रक्षा करता है यह देखकर और प्रमाण तोयसे तुलना करके यह ध्यान रखा जाता है कि तोय एक ही समान तीव्रताके तैयार होकर निकले। १ली प्रकारके फुप्फुस विन्दुके रोगीकी चिकित्साके लिये तोयकी बहुत मात्रा चढ़ानी पड़ती है इसलिये यह देखनेकी आवश्यकता पड़ती है कि रोगीमें घोड़ेके तोयके प्रति अधिक चैतन्यता तो नहीं उपस्थित है और यदि पाई जाय तो उसे नाश करनेके प्रयत्न किये जाते हैं। यदि चैतन्यता अनुपस्थित है तो उतना ही ताजा निष्कर्षित जल मिला कर तोय शिराके भीतर चढ़ा दिया जाता है।

१ घ० श० मी० प्रति मिनटकी गतिसे १५-२० घ. श. मी. तोय चढ़ा दिया जाता है। हृदयकी क्रिया और श्वासका भी निरीक्षण करते जाना चाहिये और यह भी देखते जाना चाहिये कि पित्ती तो नहीं निकलती है, और यदि कोई भी असाधारण लक्षण दिखाई दे तो चिकित्सा एक दम १५ मिनटके लिये रोक दी जाती है। यदि सब ठीक रहे तो १५ मिनट के भीतर भीतर बची हुई मात्रा भी चढ़ा दी जाती है। आरम्भिक मात्रा ९०-१०० घ. श. मी. होनी चाहिये और जब तक लगभग २५० घ० श० मी० न पहुँच जांय सीरमके अन्तः क्षेपण प्रत्येक आठवें घण्टे दुहराना चाहिये। चिकित्सा आरम्भ करनेके थोड़ी ही देर पश्चात् तापक्रम बढ़ जा सकता है परन्तु शीघ्र ही फिर तापक्रम गिर जाता है। रोगीका अवस्था अच्छी जान पड़ने लगती है। फुप्फुसमें आक्रमण का फैलना बन्द हो जाता है और फुप्फुस विन्दुओं का रक्तमें घुसना बन्द हो जाता है। अभी तक इस चिकित्साका फल बहुत सन्तोष जनक हुआ है। राकफेलर विद्यालयमें इस तोयसे अक्टूबर १९१७ तक १०७ रोगियोंकी चिकित्साकी गई थी, उनमेंसे केवल ७·५% मरे तोपीय चिकित्सा आरंभ होनेके पहले १ ली प्रकारके फुप्फुस बिन्दुके रोगियोंमें मृत्यु २५ से ३०% होती थी। अभी तक २री और तीसरी प्रकारके फुप्फुस विन्दुओंके रोगियोंकी तोयसे चिकित्सा करनेकी कोई विधि नहीं निकल सकी है। चौथी प्रकार के फुप्फुसविन्दु तो कोई सामूहिक प्रतितोय बनाते ही नहीं हैं।

फुप्फुसविन्दु द्वारा रोग उत्पन्न होनेकी क्रियाका अध्ययन मनुष्य जैसे अप्रभावशील प्राणीमें फुप्फुसविन्दुसे उत्पन्न किये जा सकने वाले प्रभावोंका निरीक्षण करनेसे तो यह अनुमान होता है कि इनके उत्पन्न करनेमें विषोंका भाग बहुत रहता है। फुप्फुसप्रदाह एक स्थानीय रोग है परन्तु साथ साथ विष समावेशके भी लक्षण उपस्थित रहते हैं। फुप्फुसकी क्रियामें विकारके कारण ओषजनकी कमी होनेसे तो बहुत ही कम रोगियोंकी मृत्यु होती है। मृत्यु अधिकतर हृदयकी क्रियाके विकार तापको ठीक रखनेवाले साधनोंमें विकार और वात संस्थानीय क्रियाओंकी न्यूनताके कारण होती है इन

बातोंको और यह ध्यानमें रखते हुए कि अधिकतम जीवाणु फुप्फुसमें पाये जाते हैं अनुमान यही होता है विषोंका प्रबल प्रभाव रखनेवाले विषोंको पृथक करनेके बहुत प्रयत्न किये गये हैं परन्तु वे सब निष्फल ही हुए। इससे यही विचार यह होता है कि फुप्फुसविन्दुमें विष अन्तः कोषीय होते हैं और शरीरमें इन विषोंके वितरणका क्रम विन्दुओंके लय होने पर निर्भर है। कुछ निरीक्षकोंके कथनानुसार १ घ.श.मी. रक्तमें १५ फुप्फुस विन्दुओं का पाया जाना प्राणघातक सिद्ध होता है।

फुप्फुस-विन्दुके प्रति अमय उत्पन्न होने की क्रिया और अभीत तोयों की संरक्षक और रोग निवारण शक्ति के विषयोंमें भी बहुत मतभेद है। तोयोंमें कोई विषनाशक अथवा विन्दुनाशक शक्ति की उपस्थितिकी कोई साक्षी नहीं मिलती। इसलिये तोयकी भक्षणिन(ओपसोनिन)बढ़ानेकी शक्तिकी ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इस सम्बन्धमें मेनीज़ने यह मालूम किया है कि साधारण श्वेताणु केवल उस ही समय फुप्फुस विन्दुओंको खा सकते हैं कि जब वे अभीत प्राणीके तोयमें पड़े हों। राईट ने फुप्फुस विन्दुको ऐसे जीवाणुकी उपमा बतलाया है कि जिस पर जीवाणु नाशन क्रियाका तो बहुत कम प्रभाव होता है परन्तु भक्षणिनोंके प्रतिवे बहुत प्रभावशील होते हैं। न्युफेल्ड और रिम्पाऊने भी फुप्फुस नाशक तोयमें रक्तीय भक्षणिनोंके बढ़ानेकी शक्तिकी उपस्थितिका वर्णन किया है।

भक्षणिनोंके प्रभाव और फुप्फुस विन्दुके आक्रमणके सम्बन्धकी खोजमें फुप्फुस प्रदाहके रोगियों के रक्तकी भक्षिणोंकी मात्रा परभी ध्यान दिया गया है विशेषतः इस अभिप्रायसे कि ज्वरकेशीघ्रता से उतर जानेके कारण पर कुछ प्रकाश पड़े क्योंकि इस विषयमें अभी बहुत कम ज्ञान है। कुछ खोजों के अनुसार तो भक्षणिन-सूचक संख्या तो साधारण से अधिक नहीं जान पड़ती परन्तु यदि सभीके समस्त रक्तकी भक्षण शक्ति की ओर ध्यान दिया जाय तो वह स्वस्थ मनुष्यके रक्तकी भक्षण शक्ति से भी अधिक हो सकती है क्योंकि रक्तमें सफल प्रति क्रियाके अवसर पर साधारणतः रोगीके रक्तमें श्वेताणुओंकी संख्या बहुत अधिक रहती है। परन्तु यह भी मालूम हुआ है कि ज्वरके उतार के समय भक्षणिन सूचक संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है और जब ज्वर उतर चुकता है तो ज्वर बहुत कम हो जाता है। इसके साथ साथ रक्तमें ऐसे द्रव्यकी मात्रा भी बढ़ जाती है कि जो प्राणाकी फुप्फुस विन्दुके आक्रमणसे रक्षा कर सकते हैं। इनही द्रव्योंको तोयकी रोग निवारण शक्तिका आधार समझा जा सकता है। इनके विषयमें न्युफेल्ड और हेइन्डेलका यह कहना है कि शरीर भरमें इन द्रव्योंकी मात्राकी अपेक्षा रक्तमें इन द्रव्योंका घनापन अधिक महत्व पूर्ण है। इस बातकी कुछ साक्षी मिली है कि जब रक्तमें इन द्रव्योंका घनापन एक श्रेणी तक पहुँच जाता है तो बहुत फुप्फुस विन्दु सफलतासे खा डाले जा सकते हैं परन्तु इस श्रेणीके घनेपनके नीचे फुप्फुस विन्दुओंकी थोड़ी भी संख्यासे प्राणघातक सिद्ध हो सकती है। यह भी पाया गया है कि अतीव्र फुप्फुस विन्दु अधिक सरलतासे खा डाले जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि यदि अतीव्र नस्लोंमें तीव्र नस्लोंके लय होनेसे बना हुआ द्रव्य अथवा उनकी धोवन मिलादी जाय तो वे कम सरलता से खाये जाने लगते हैं। यदि तीव्र फुप्फुस विन्दु नमकके घोलसे धो दिये जाँय तो वे अधिक सरलता से खाय जाने लगते हैं। यह बहुत निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता कि फुप्फुस विन्दुके प्रति प्रतिरोध शक्तिकी उपस्थितिके लिये तोयमें भक्षणिनोंका होना आवश्यक है परन्तु तो भी श्वेताणुओंका उसमें बहुत बड़ा भाग रह सकता है। यह बहुत दिनोंसे ज्ञात है कि कई रोगोंमें श्वेताणुओंकी संख्या बढ़ जाती है और श्वेताणुओं की संख्यासे रोगीकी प्रतिरोध शक्ति का कुछ पता चल सकता है। इस प्रकार श्वेताणु का कम संख्या में पाये जानेके साथ यदि रोग लक्षण अधिक

भीषण हो तो वह कम प्रतिरोध शक्ति सूचित करती है और यदि रोग लक्षण बहुत ही अतीव्र हो तो जीवाणुके अतीव्र प्रकारका होना सूचित होता है। १०,००० से अधिक की संख्यामें श्वेताणुओं-का पाया जाना, यदि और कोई पेचेदगी न उप-स्थित हो, तो रोगी के अच्छे होनेकी सम्भावना सूचित करता है। बानजाविनसे अस्थियोंकी मज्जामें विकार उत्पन्न करके भी फुफ्फुस प्रदाहके अच्छे होनेमें श्वेताणुओंके भागकी खोजकी गई है। ऐसी अवस्थामें प्राणीकी प्रतिरोध शक्ति बहुत कम हो जाती है।

फुफ्फुस-प्रदाहमें फुफ्फुस विन्दुसे निकला हुआ एक द्रव्य मूत्रमें आने लगता है। जिस प्रकार का फुफ्फुस-विन्दु रोगीमें उपस्थित हो उसही प्रकारके प्रतितोय मूत्रमें मिलानेसे तलछट वाली प्रतिक्रिया दर्शाई जा सकती है। इस प्रति कियाको दर्शानेके लिये बराबर बराबर घुमाया हुआ स्वच्छ मूत्र और प्रति तोय मिलाओ। वास्तवमें इस विधि से रोगीमें उपस्थित फुफ्फुस विन्दुकी प्रकारका पता चल सकता है। इस द्रव्यका मूत्रमें मिलना रोगका तीव्र होना सूचित करता है और इसकी मात्राका मूत्रमें बढ़ना बुरा है।

मनुष्यमें अभय थोड़े ही समयके पश्चात् मिट जा सकता है और बहुतसे रोगियोंमें पहिले आक्रमणका पूर्व इतिहास मिलता है। फुफ्फुस प्रदाहमें तोय के बहुत लक्षण न समझ सकनेके कारण लायर ने फुफ्फुस विन्दुओं पर साबुनों के प्रभावकी खोज करना आरम्भ किया। वेल्श बहुत दिन पहिले ही फुफ्फुस प्रदाहके निःस्रवोंमें जीवा-णुओंका लय होना वर्णन कर चुका था। लायरने यह मालूम किया कि यदि फुफ्फुस बिन्दु की कुछ सैन्धव तैलेतसे धो लिया जाय और विशेषतः नैलिन् सोख सकने वाली अम्लों पांशुजीय साबुनोंसे धोने पर, फुफ्फुस विदुन्ओंमें कुछ अन्तर आजाता है और उनका लय अधिक सरलतासे होने लगता है और तोयोंका प्रभाव भी उन पर अधिक होता है और अभीत तोयोंका साबुनका प्रभाव और विशे-षतः जीवाणुके मेदस्वी भाग पर पड़ता हुआ जान पड़ता है और इस प्रकार तोपके उपादान जीवाणुमें अधिक सरलतासे घुस सकने लग जाते हैं। इस बात की भी कुछ साक्षी पाई जाती है कि तोय की आदिने (प्रोटीन) साबुनोंके लय कारी प्रभावमें कुछ रुकावट डालती हैं और लायरने यह भी मालूम किया है कि टंकिक अम्लसे यह रुकावट वाला प्रभाव बन्द हो जाता है। ये सब निरीक्षण बहुत महत्व पूर्ण जान पड़ते हैं क्योंकि ये चिकित्सा विधिके आधार सिद्ध हो जा सकते हैं। इन निरीक्षणों का प्राकृतिक रोग निवारणसे कुछ सम्बन्ध तो प्रदाहिक निःस्रावोंमें साबुनोंके अधिक मात्रामें पाये जानेसे सिद्ध होता है।

फुफ्फुस प्रदाहमें मृत विन्दुओं द्वारा चिकित्सा—फुफ्फुस प्रदाहकी चिकित्साके लिये मृत जीवाणु भी चढ़ाये गये हैं। जबतक रोगीमें उपस्थित जी-वाणुसे दवा तैयार न करली जा सके तबतक बनी हुई दवा चढ़ाई जा सकती है। बनी हुई दवाकी मात्रा २०० से ३०० लाख तक दी जाती है। रोगी में उपस्थित फुफ्फुस-विन्दु फुफ्फुसमें छेद करके निकाले जा सकते हैं। यह कहने की तो आवश्य-कता नहीं जान पड़ती किइस प्रकारकी चिकित्सा में बहुत सावधानी और विचारकी आवश्यकता पड़ती है। कुछ रोगियों में तो लाभ होता जान पड़ता है और कुछ में अधिक लाभ होता हुआ नहीं प्रतीत होता। विन्दु-शृंखलाके आक्रमणोंमें वर्णनकी हुई चिकित्साके अनुसार फुफ्फुस प्रदाहमें भी तोय और मृतजीवाणु मिश्रण भी चिकित्साके लिये प्रयोग किया जा सकता है।

रोगसे बचनेका टीका—दक्षिण अफ्रीकाकी खानों में वहाँके निवासी मजदूरोंमें फुफ्फुस प्रदाहके प्रति बहुत प्रभावशीलता पाई जाती है। प्रति १००० मेंसे आक्रमणके दिनोंमें ३०-१५० तक मजदूरोंको फुफ्फुस प्रदाह होते हुए पाया गया और इनमें १०-३० भर

भी जाते थे। राइटकी खोजोंके आधार पर लिस्टर ने एक रोग बचाने वाली वेकसीन तैयार की कि जिसमें वहाँ पाये जाने वाली सब प्रकारके विन्दु सम्मिलित थे। एक एक सप्ताहके अन्तर पर तीन अतःक्षेपणोंमें जीवाणु- नाशक द्रव्यों द्वारा मारे हुए ७०,००० लाख फुप्फुस विन्दु चढ़ाये जाते थे। इस प्रकार फुप्फुसप्रदाहके कारण होने वाली मृत्यु संख्या बहुत कम हो गई।

जांचकी विधियां—बलगम, पीप, और अन्य निःस्रावोंमें विशेष आकारके द्वि विन्दु पाये जाँयगे और ग्रामकी विधिमें उनका रंग नहीं छुटता पाया जायगा। आवरणके रंगने की विधियोंसे अधिकतर आवरण दिखलाया जा सकेगा, और ग्रामकी विधि से रंगी हुई परतमें भी आवरण रंगा हुआ पाया जा सकता है। रक्त आगर पर कृषि में, ३७° श. पर २४ घन्टे रखनेसे यदि फुप्फुस विन्दु उपस्थित होंगे तो विशेष प्रकारकी सघे उग आयेगी। तोयीय जूष और तोयसे सनेहुए आगर की कृतियों में आवरण भी बनता हुआ पाया जा सकता है। पित्तमें घुलनशीलता और इन्युलिन पर प्रभावकी भी जांच का जा सकती है। नमूनेका द्रव्य एक सफेद चूहेमें चढ़ाया जा सकता है और इस प्रकारस रोगोत्पादक शक्ति की जांचकी जा सकती है।

तार पर समाचार भेजना और बातचीत करना

[लेखक—श्री उमाशंकर निगम, बी. एस-सी.]

हम एक जगहसे दूसरी जगह समाचार भेजनेकी चेष्टा कई प्रकारसे करते हैं। सबसे पहले किसी दूत द्वारा सन्देसा कहलाते थे किन्तु जब मनुष्य भाषा लिखना सीख गया तबसे पत्रव्यवहार आरंभ हुआ और पत्र भेजनेकी अनेक प्रकारकी विधियाँ चलगई; किन्तु जब मनुष्यको किसी एक जगहसे दूसरी जगह बहुतही जल्दी सन्देसा भेजना होता है तो वह आजकल तार की शरण लेता है। यह नहीं कहा जा सकता चूँकि मनुष्यको किसी अवसर पर समाचार शीघ्र भेजनेकी आवश्यकता होती है इस लिए यह तार निकाला गया और न यही ठीकसे निश्चय किया जा सकता है कि तार अन्धेके हाथ बटेरकी तरह मनुष्यको प्राप्त हुआ। यद्यपि दूसरे कथनमें बहुत कुछ सचाई है।

हमें अब यह देखना है कि तार किस तरह अपने वर्त्तमान रूपमें आया, भविष्यके लिए कुछ नहीं कहा जा सकता:—

रेल की पटरी के इधर उधर ऊँचे ऊँचे खम्बों पर लोगोंने तार अवश्यही देखे होंगे। इन्ही तारों से एक ऐसा यंत्र जुड़ा रहता है जिसके द्वारा हम एक जगह कुछ संकेत करें तो वही संकेत दूसरी जगह जो इससे तार द्वारा मिलाई गई है मालूम कर लिया जाय। जो समाचार इस प्रकार तार द्वारा भेजे जाते हैं उनको लोग बाग तार कहने लग गये हैं।

तारका सारा जीवन विद्युत पर निर्भर है और इसी विद्युतके प्रभावसे संकेत मिलते हैं। विद्युत को एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेके लिए किसी

धातुके तारका मार्ग होना चाहिये । इसीलिए खम्बों पर तार तान दिये जाते हैं । अब बेतार के भी समाचार और वाणी भेजे जाने लगे हैं जिसका हाल पाठकगण विज्ञानमें ही कहीं पढ़ेंगे । इस लेखमें 'तार' पर समाचार और वाणी भेजनेका हाल देंगे। इसमें तीन मुख्य बातें है—

(१) विद्युत् धाराकी उत्पत्ति और इसके द्वारा संकेत भेजना

(२) विद्युत् के चलनेका मार्ग

(३) इन संकेतोंका दूसरे स्थानपर अंकित होना

पहले पहल घर्षण विद्युत्की सहायतासे ही समाचार भेजे जाने लगे । 'लीडन' घटमें बिजली भरी रहती थी और एक तार द्वारा जब घटकी बिजली भेजी जाती थी तो इसके दूसरे सिरेपर जो दो सरकंडे के गूदेकी गेंदें लटकती थीं एक दूसरेसे अलग हो जाती थीं । इन गेंदोंके बीचकी दूरीसे एक विशेष रीतिके संकेतोंका प्रगट होना मानकर इन्हीं संकेतोंका कोष बनाकर यह निश्चय किया जाता था कि अमुक स्थानसे क्या सन्देसा आया । किन्तु इस प्रकार समाचार भेजनेमें बहुत सफलता न हुई क्योंकि लीडन घटसे बिजली प्रायः धीरे धीरे निकल जाती थी ।

तारका दूसरा जन्म जो कि इधरउधर मामूली परिवर्त्तनोंके अतिरिक्त अब भी सारांशमें वैसाही है बाटरीके आविष्कारके पश्चात् हुआ ।

(तारका ठीक ढंग पर आना १८१६ से कहा जा सकता है)

इसके उपरान्त अक्षर दिखानेकी रीति आरम्भ हुई इसमें जो अक्षर एक स्थानपर दिखाये । जाते थे वही दूसरे स्थानपर भी एक पहियेके घूमनेसे दीखते थे । दोनों जगहों पर—जहांसे कि तार भेजना है और दूसरे जहाँको भेजना है—दो पीतल के पहिये जो कि एक दूसरेके साथ और समानान्तर चलते हैं लगे हैं उनका किनारा एक एक जगह कटा है । इसके नीचे एक और पीतल का पहिया है जिसमें बीस बीस खाने बने हैं और इन खानोंमें एक एक अक्षर और एक अंक बनने हैं, और यह इस प्रकार ठीक किये जाते हैं कि यदि एक स्थान पर एक तरहका खाना चले तो दूसरे स्थान पर भी ठीक उसीप्रकार का खाना दूसरे पहियेके सामने आवे फिर इसके उपरान्त विद्युत् का संचार होता है और तब जैसा पहले लिखा है, दो गूदेकी गेंदें एक दूसरे से अलग होती जिससे यह पता चलता है कि अब इन पहियों के घूमने पर क्या पढ़ना होगा—अक्षर अथवा अंक इसके लिए आपसमें पहलेसे निश्चय कर रखते हैं कि गेंदें बहुत दूर हो जावें तो अक्षर पढ़ेंगे और यदि थोड़ी ही दूर हों तो अंक । इसी प्रकार काम चलता था । इसमें पहियोंके चलने और बिजलीसे कोई तात्पर्य नहीं ।

अब इसके उपरान्त जैसा अभी लिख चुके हैं कि अक्षर दीखते हैं। यह बिजलीकी सहायतासे किया गया और इसमें जो अक्षर एक स्थान पर चाहा वही दूसरे स्थान पर दीखता है। यह कई एक चुम्बक और पहियों पर तारके लपेटोंकी सहायता से किया गया है ।

इन दो रीतियों को मिलाकर ह्यूजेज ने नई रीति निकाली जिसमें कि एक स्थानका संदेसा दूसरे स्थान पर लिख जाये ।

चित्र नं० १
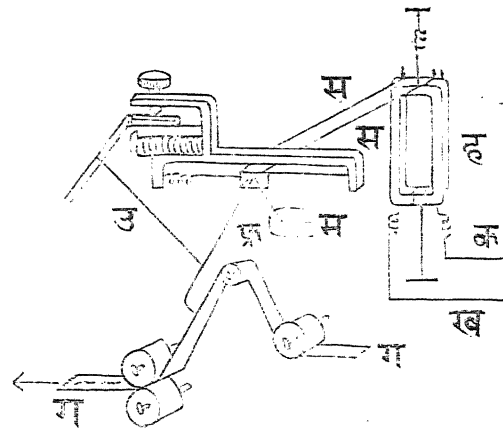
'क' से आती हुई बिजली की धारा एक 'ह' बेठन (coil) में जाती है और 'ख' से फिर वापस चली जाती है। यह बेठन (coil) एक चुम्बकके बीच में रक्खी है जो कि चित्र में नहीं दिखाई गई है। बिजली की धारा 'क' और 'ख' किसी भी ओर से आ सकती है और दूसरी ओरसे जा सकती है। बेठन (coil) बिजली की धाराके चलने से घूमता है और इसके घूमने की दिशा बिजली की धारा की दिशा पर निर्भर है। यह फैरेडे (Faraday) महाशय के सिद्धान्त से निश्चय किया जा सकता है। फिर इस बेठन(coil) के चौखटे 'ह' पर दो तार 'स' 'स' लगे हैं जिनसे कि लंगड़ी नली (siphon) 'फ' जैसा कि चित्र में दिखाया गया है बाहर या भीतर को चलती है और कागज की पट्टी के ऊपर एक टेढ़ी मेढ़ी रेखा बनती जाती है यह कागजकी पट्टी बेलन पर चलती है रेखा इस प्रकार की उस पर आजाती है।

चित्र नं० २

अब जिस प्रकार बिजली की धारा आयगी उसी प्रकार लंगड़ी नली (siphon) चलेगी और उसीके अनुसार रेखा अंकित होगी अब इस रेखा मेंसे अक्षर निकाले जाते हैं।

अब मामूली तार 'dot' विन्दु 'dash' लकीर या 'गट' 'गर' वाले पर ध्यान लाइये। यह नीचे दिये हुए चित्रसे विदित होगा।

चित्र नं० ३
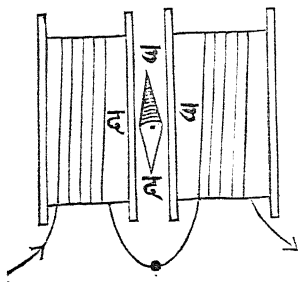
दो बेठनोंके बीचमें एक दिक-सूचक-चुम्बक बिलकुल सीधी एक अक्ष पर लटकी है। जब इन तारों में बिजलीकी धारा बहने लगती है तो यह चुम्बक एक ओर या दूसरी ओर आकर्षित होती है।

इसका किसी एक ओर आकर्षित होना बिजलीकी धाराकी दिशापर निर्भर है तो जब एक स्थानसे धारा भेजी जाती है और उसको एक (key) चाबी द्वारा कभी एक ओर कभी दूसरी ओर भेजते हैं तो जिस प्रकारका चिन्ह (dot) और (Dash) लकीर अथवा 'गट' और 'गर' वहाँ पर होता है उसी प्रकारकी चाल इस सुईकी यहाँ होती है। इसको कान से सुन सकते हैं और आँखसे देख सकते हैं क्योंकि जब चुम्बक एक ओर जायगी और अगर उसके रास्तेमें कोई चीज (जैसी घण्टी) रख दी जाय तो चुम्बक उसपर टकराकर ध्वनि उत्पन्न करेगी।

ध्वनिका संकेत और भी सफल बनानेके लिए ऐसा भी करते हैं कि चुम्बकके दोनों ओर एक एक घण्टी लगाते हैं और जब यह सुई उन घण्टियोंसे टकराती है तो दोनोंसे स्पष्ट रूपमें भिन्न भिन्न टंकार सुनाई देती है, इसमें सुईका एक ही सिरा घण्टियों से टकराता है।

अब बिजलीके चलनेकी रीति चित्र नं० ४ में देखिये। चित्र नं० ४
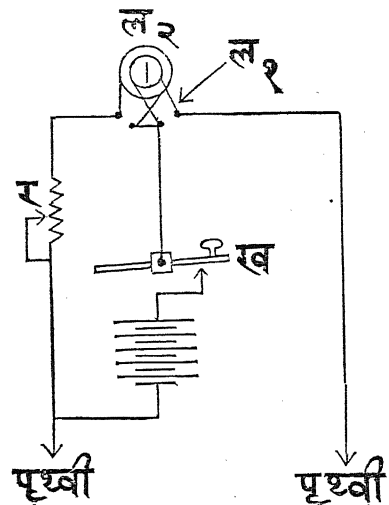
यही रीति दो तरफा तार भेजनेमें काममें (Duplex telegraphy) आती है। हम पहलेसे ही जानते हैं कि एक बेठन (coil) में चुम्बकत्व बिजली की धाराकी प्रबलता और तारके लपेटोंकी संख्या पर निर्भर है। चित्र नं० ४ को देखिये। इसमें जब 'ख' खटका दबाया जाय तो बाटरीसे बिजलीकी धारा बहने लगेगी और इसके दो मार्ग हैं—एक 'र' बाधा और बेठन ल२ और दूसरा दूसरी बेठन ल१ लैन और पृथ्वी। एक बेठनमें धारा एकदिशामें जाती है, और दूसरीमें दूसरा दिशामें। यदि तारकी लपेटें दोनों बैठनोंमें एकसी हों और बिजलीकी धारा भी एकही हो तो चुम्बक पर दो ओरसे दो अलगअलग शक्तियाँ लगेंगी और एक दूसरेको नष्ट कर देंगी क्योंकि धाराओंकी दिशाएं एक दूसरेके विरुद्ध हैं। इस कारण चुम्बक अपने स्थानसे न हटेगा और लैनमें होकर दूसरे स्थानपर धारा चलीही जायगी (देखिए चित्र नं० ५) और अगर उस स्थान पर इसी प्रकार एक चुम्बक एक बेठनके अन्दर हो तो वहाँ पर उसमें धाराके प्रवाहसे विचलन उत्पन्न होगा और कोई मनुष्य उसे देखकर जान सकता है कि वहाँसे किस प्रकारका संदेसा आ रहा है। आपस में पहलेसे तै कर लेते हैं कि अगर चुम्बक इस प्रकार चले तो एक अक्षर पढ़ेंगे और अगर दूसरी प्रकार चले तो दूसरा।

अब दोनों स्थानोंसे तार चलनेकी विधि देखिये।

चित्र नं० ५
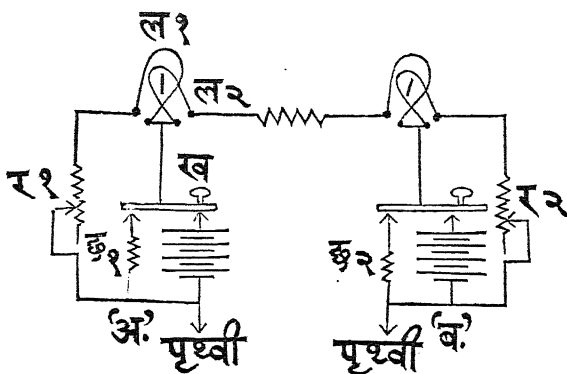
ऊपरके चित्रसे प्रत्यक्षही ज्ञात हो जाता है कि एक स्थानसे दूसरेपर किसप्रकार तार भेजते हैं इस समय 'अ' स्थानसे 'ब' स्थानको तारभेजा जा रहा है। 'अ' स्थानका खटका दबा है, और 'ब' स्थानका उठा है। जब खटका दबा रहता है तो बाटरी लैनमें जुड़ी रहती है और धारा बहाती रहती है। 'र' बाधाको घटा बढ़ाकर हम यह ठीककर लेते हैं कि 'अ' स्थानके दोनों बेठनोंमें एक ही धारा बहे तब 'अ' स्थानकी चुम्बक अपनी ही जगह पर रहेगी और 'ब' स्थानकी ही चुम्बक इधर उधर चलेगी बाधाको इस प्रकार सँभालते हैं कि लैन और उसमें जुड़ी हुई अन्य चीजोंके बराबर हो (लैनकी बाधामें 'अ' स्थानकी बाटरी और यहाँकी दूसरी बेठन और दूसरे स्थानकी एक ही बेठन और लैन सम्मिलित हैं और छोटीसी बाधा 'छ२' भी आती है) खटका दबाकर 'अ' से 'ब' को तार भेजते हैं 'अ' स्थानपर किसी प्रकारका संकेत नहीं होता किन्तु 'ब' स्थान पर उनको संकेत मिलते हैं क्योंकि वहां पर एक ही बे नमेंसे बिजलीकी धारा जाती है और दूसरेमें से कुछ नहीं। अब यदि 'ब' 'अ' को तार भेजे तो 'ब' स्थानका खटका दबेगा और 'अ' स्थानका खटका उठ जावेगा और सब चीजोंकी यही दशा रहे तो 'ब' स्थान पर कोई संकेत न होंगे किन्तु 'अ' स्थान पर संकेत प्रकट होंगे। दोनों स्थानकी 'छ१' 'छ२' बाधा बराबर हैं और बेठन भी दोनों स्थान पर एक से हैं। इस भाँति 'अ' और 'ब' के बीच तार भेजा जा सकता है।

अब अगर दोनों स्थानोंके खटके दबा दिये जायँ तो प्रतीत होता है कि चुम्बकें दोनों स्थानों पर चलेंगी किन्तु एक स्थानसे दूसरे स्थान पर कोई बिजलीकी धारा नहीं जायगी यदि दोनों स्थानोंकी बाटरी एक सी हैं और इसीलिए हम तारके लिए एक सी ही बाटरी काममें लाते हैं।

समुद्र पार तार भेजने के लिये इसी रीतिमें थोड़ा सा अदल बदल कर लेते हैं।

अभी आपने देखा कि एक स्थानसे दूसरे स्थान तक तारमें बिजलीकी धारा बहा कर चिन्ह कैसे भेजे जा सकते हैं और उन चिन्होंसे अक्षर बना कर समाचार किस प्रकार जाने जा सकते हैं। अब मैं आपको यह बतलाना चाहता हूँ कि तारमें धारा बहाकर किस प्रकार दूर दूर बातचीत की जा सकती है। कुछ समय पहले तो तार पर बातचीत करना भौतिक शास्त्रकी एक छोटी सी शाखा ही समझी जाती थी परन्तु इन दिनों इस विद्यामें इतनी उन्नति हो गई है कि यह शाखा शास्त्रकी पदवी को पहुँच गई है। इस शास्त्रको तार बाणी कहते हैं।

तार पर बातचीत करनेके लिए दो मुख्य यन्त्रोंकी आवश्यकता होती है। एक यन्त्र का तो यह काम है कि बाणीको बिजलीकी धारामें बदले जो तार द्वारा दूर तक चली जावे। इस यन्त्रको बाणी प्रेषक (भेजने वाला) कहते हैं और दूसरा वह कि जिसमें जब यह धारा बहे तो इसको फिर बाणीमें बदल दे। इस यन्त्र को बाणी ग्राहक (Telephone receiver) कहते हैं। सुभीतेके लिए दोनों प्रेषक और ग्राहक जोड़कर एक ही यन्त्र के रूपमें बनाये जाते हैं ताकि जब हाथमें लिये जावें तो प्रेषक मुंहके सामने आ जावे और ग्राहक कान के सामने। चित्र नं० ६ में यह दोनों जुड़े हुए दिखलाये गये हैं। ऐसा यन्त्र बाजारमें मिलता है और जिन शहरों में लगा हुआ है देखने में आता है। इसीके साथमें उचित रीतिसे घण्टी भी लगी रहती है जो जब किसी को बात करना हो तो बजती है और जब यन्त्र उठाकर बात चीत करना आरम्भ कर दिया जाता है तो बन्द हो जाती है इनका वर्णन अलग अलग करना उचित है।

चित्र नं० ६
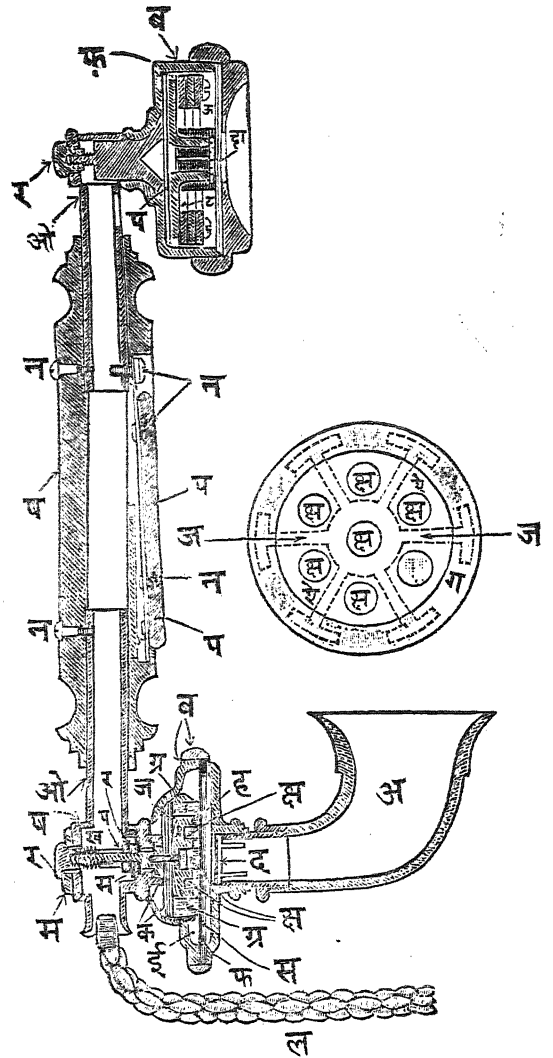
अ मुंह नाल अथवा सींगी
ब स्फटम का ढकना
स वारनिश चढ़ा रेशम
द छत्री
ई कर्बनका का पर्दा
फ़ कागज़ के घेरे
ग ऊन या नम्दे का घेरा
ह कर्बन के कण

ऐ कर्बन की डिबिया
ज ताँबे की स्प्रीङ्ग
क एल्यूमीनियम
ल तार की रस्सी
मम धातु के घेरे
नन पेंच
ओ पीतल की नली
पप मिलान की जगह
ख सपोर्ट
रर ढिबरी
ष वलकेनाईट
ट चुम्बक
ऊ बेठन (coil)

'अ' ओरसे बात करते हैं। वह स्थान मुँहके लिये है और 'हा' की तरफसे बात सुनते हैं, यह चित्र बीचसे कटे हुए यंत्रका दृश्य दिखाता है। इस कारणजो रेखाये गोल होनी चाहिए वह सब सीधी सीधी दीख पड़ती हैं। 'ई' कर्बनका पतला पत्तर है जिसे परदा कहते हैं। इसके पीछे 'ऐ' दूसरा कर्बनका टुकड़ा है और इन दोनोंके बीचकी जगह 'ह' में कर्बनके छोटे छोटे कण भरे हैं। जब कोई बात करता है तो हवा 'अ' से घुसती है और 'द' छल्लीसे होकर 'इ' परदे पर पड़ती है और परदेको दबाती है इसके कारण कर्बनके छोटे छोटे कण भी दबते हैं। बाटरीके चक्करका एक सिरा परदेसे और दूसरा सिरा कर्बनके टुकडोंसे जोड़ा जाता है; इसलिए जब कण दबते हैं तो चक्करकी बाधा बदल जाती है। बिजलीकी धारामें तुरन्तही अन्तर पड़ जाता है और वह अन्तर दूसरे स्थानके सुनने वालेके ग्राहकमें भी जो कि इस जगहके बात करने वाले के प्रेषकके साथ बाटरीके चक्करमें जुड़ा हुआ है तार द्वारा आवाज पैदा कर देता है यह आवाज बिलकुल वैसीही होती है जैसी कि इस स्थानसे भेजी गई है।

अब यह देखना है कि विद्युत् की धारामें अंतर कैसे पड़ता है और फिर ध्वनि किस प्रकार सुन पड़ती है। इसके समझानेके लिए एक प्रयोग नीचे दिया जाता है। बाटरीके चक्करमें एक धारा सूचक और दो कर्बनकी छड़ोंके बीचमें एक कर्बनकी बत्ती जुड़े हुए हैं। बिजलीकी धारा 'क' में होकर 'भ' 'अ' में होती हुई ऊपर वाले 'क' से निकलकर

चित्र नं० ७
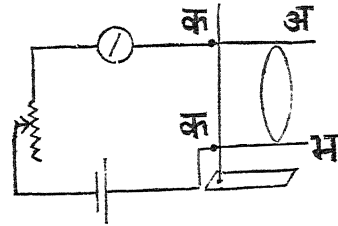
बाटरीमें जाती है। अब अगर 'अ' 'भ' के सिरे दबाये जायं तो धारामें अन्तर पड़ता है और धारा सूचकसे पता चल जाता है। इससे पता चलता है कि कर्बनके दबनेसे बाधामें कितना अन्तर पड़ता है। यह तो हुई प्रेषक के कर्बनकणों के दबनसे धारामें अन्तर पड़नेकी बात। अब देखिये कि ग्राहक में आवाज किस प्रकार सुनाई देती है। अब फिर चित्र नं० ६ की ओर ध्यान लगाइये। इसमें 'ट' नाल चुम्बक है जिसके दोनों बाजुओं पर रेशम लिपटे हुए तारकी लपेटें हैं। इन्हीं लपेटोंके तारोंमें होकर विद्युत्की धारा आती है। धाराके घटने बढ़नेसे चुम्बकका चुम्बकत्व घटता या बढ़ता है।

अब इस चुम्बकके सिरोंके सामने एक लोहेका पतला परदा है। चुम्बकके चुम्बकत्व घटने बढ़नेसे यह उसकी ओर आकर्षित होता है और आगे पीछे हिलने लगता है हम जानते हैं कि जब चुम्बक लोहेके पर्देको अपनी ओर आकर्षित करता है तो उसकी आकर्षण शक्ति चुम्बकीय आवेश (Magnetic Induction) के वर्ग (square) के हिसाबसे घटती बढ़ती है। अब यदि आवेश (Induction) जब कि तारों की लपटोंमें बिजली की धारा न बहती हो, 'अ' हो और धारा बहनेसे इसमें 'ब' और बढ़ जाये तो आकर्षण शक्ति $(अ+ब)^2 - अ^2$

होगी अथवा उसमें बढ़ती २ (अ × ब) + ब² के बराबर होगी तो हम सहज ही देख सकते हैं कि अगर 'अ' अधिक हो तो आकर्षण शक्तिकी बढ़ती भी अधिक होगी । इसी कारण आज कलके ग्राहकोंमें एक स्थाई चुम्बक होता है और इसका चुम्बकीय आवेश (magnetic induction) भी काफी होता है । किन्तु यदि यह बहुत भारी मात्रामें होजाय तो फिर चुम्बक कामका नहीं रहता क्योंकि तब दुर्बल विद्युतकी धाराएँ इसे बहुत कम बदल सकेंगी और तब लोहेके परदे का हिलना कठिन होगा। इसलिए चुम्बकका चुम्बकत्व इतना ही रखा जाता है कि यह ठीक काम करे । परदेके हिलने से जैसा कि पहले बताया है आवाज उत्पन्न होती है। पहले पहल जब बाणी सुनने और भेजनेकी प्रथा चली तब इस भांतिके ग्राहक और प्रेषक नहीं बनते थे। उनमें स्थाई चुम्बक नहीं होता था बल्कि साधारण लोहेका टुकड़ा जिसके ऊपर तार लिपटा रहता था और धारा के प्रवाह होनेसे उसमें चुम्बकत्व उत्पन्न होता था जिससे लोहेका परदा आकर्षित होता था। पहले जब प्रेषक (microphones) भेजने वाला यन्त्र नहीं तैयार हुआ था तब यही सुनने वाले ग्राहकसे भेजने वालेका काम भी लिया जाता था।

बाणी प्रेषक और ग्राहक किस प्रकार बाणी भेजते और सुनते हैं । प्रेषक और ग्राहकके परिचय के उपरान्त अब उनके प्रयोगमें लानेकी रीति देखनी है कि किस प्रकार घण्टी बजती है और तब आदमी यन्त्र उठाकर कानमें लगा लेता है और फिर दोनों आपसमें वार्त्तालाप आरम्भ करते हैं।

साधारण रीतिसे यदि हम दो स्थानों 'अ' और 'ब' के बीच में बातचात करने वाला यन्त्र लगाना चाहें तो हमें चार जोड़े तारोंको आवश्यकता होनी चाहिए। एक तो 'अ' स्थान के भेजने वाले यन्त्र और 'ब' स्थानके सुनने वाले यन्त्रके बीचमें इन हीके साथ बाटरी भी जुड़ी रहेगी। दूसरा 'ब' स्थान के भेजनेवाले यन्त्र और 'अ' स्थानके सुननेवाले यन्त्रको मिलाने के लिए इसीमें भी बाटरी भी जुड़ी रहेगी जैसा कि चित्रसे ज्ञात होगा।
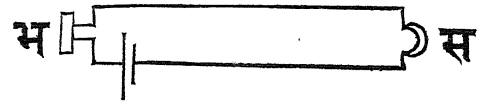
चित्र नं० ८

स, सुनने वाला यन्त्र
भ, भेजने वाला यन्त्र

दो जोड़े तारोंकी अभी और आवश्यकता है, एक स्थान की घण्टी, एक खटका और बाटरी द्वारा मिलाने के लिए ताकि 'अ' स्थानका मनुष्य 'ब' स्थानके मनुष्यको सूचित कर दे कि अब बात करना चाहता है और इसी प्रकार 'ब' स्थानसे 'अ' स्थानको सूचित करनेको दूसरी घण्टी के लिए । किन्तु प्रयोगमें ऐसा नहीं होता क्यों कि 'अ' और 'ब' स्थानोंको एकही साथ घण्टी बजानेकी कोई आवश्यकता नहीं और जब वे आपस में बातें करें तबतो किसीको घण्टी बजानेसे क्या प्रयोजन, और दोनों भेजनेवाले और सुननेवाले यंत्रोंको एक ही जोड़े तारसे मिला देते हैं। तो अब सहज ही समझमें आ जायगा कि यदि कोई ऐसा उपाय हो सके कि एक स्थानपर कोई बटन दबाने से दूसरे स्थान की घण्टी जो कि तारके द्वारा इससे मिली हो बजने लगे और जब इस स्थानका मनुष्य यंत्र उठाकर कानमें लगा ले तो इस घण्टीसे संबंध टूट जाय और सुनने वाला यंत्र धाराके चक्करमें आ जाय तो एक जोड़ा तारसे घण्टी और तमाम सुनने और बोलने वाले यंत्र का काम बन जाय।

यथार्थमें यही होता है और घण्टीका संबंध दूसरे स्थानपर ग्राहक उठाने पर अपने आपही अलग होजाता है और बनी हुई जगह पर रख देनेसे फिर सम्बन्धमें आ जाती है। इसको चाबी हुक कहते हैं। अब यद्यपि यंत्र के दोनों भाग एक स्थान का सुनने वाला यंत्र और दूसरे स्थान

का बोलने वाला यंत्र जैसा कि पहले बताया है मिला दिये जायं तो भी काम चल जायगा किन्तु ऐसा करनेसे यह हानि होती है कि यदि यह दोनों स्थान बहुत दूर हों तो मिलाने वाले तारकी बाधा बहुत बढ़ जायगी और इससे विद्युत धारा कमजोर हो जानेके कारण काम न चलेगा। इसलिए उत्पादित धाराओंसे काम लिया जाता है। इन धाराओं के लिए दो बेठनोंकी आवश्यकता होती है। वे उचित रीतिसे आपसमें युक्त रहते हैं। जब उनमें से एकमें धारा घटती या बढ़ती है तो दूसरेमें क्षण मात्रके लिए धारा उत्पन्न हो जाती है इसीलिए ऐसे दो बेठनोंको बेठनों का जोड़ा या युगल कहते हैं।

चित्र नं० ९
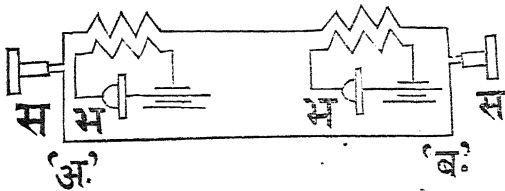
भ. भेजने वाला यंत्र,
स. सुनने वाला यंत्र,

इस चित्र में 'अ' और 'ब' स्थान ऊपर के सिद्धान्त पर मिलाये गये हैं इसमें भेजने वाला यन्त्र 'बेठनोंके युगलके (primary) भीतर वाले तार से मिलाया गया है और उसके बाहरी लपेट (secondary) में सुनने वाला यन्त्र। ठीक ऐसा ही दूसरे स्थान पर भी है। इस समय चित्र में यह दिखाया गया है कि दोनों स्थान एक दूसरे से बातें कर रहे हैं। बेठनोंके युगलकी सहायतासे ग्राहकमें प्रवेश करने वाली बिजलीकी धारायें बहुत बढ़ जाती हैं

अब यह देखना है किसी शहरमें बहुतसे 'फोन' एक दूसरेसे बात करनेके लिये किस भाँति लगाये जाते हैं। यह दो तरीकोंसे लगाये जाते हैं। एक यह कि जिस मनुष्य को जिस स्थान वालेसे बात करना हो वह उस स्थानसे आप ही सम्बन्ध कर ले। यह प्रथा कई एक शहरोंमें प्रचलित है जैसे कानपूर इत्यादि। इसमें प्रत्येक बोलने वालेके पास एक पहिया सा लगा रहता है और उस पहिये पर ० अंक से ९ तक बने रहते हैं हर एक स्थानके बोलने वाले का कुछ नम्बर होता है। अब पहियेको घुमा कर एक एक अंक करके उस नम्बरको पूरा कर लेनेसे उस स्थानसे सम्बन्ध हो जाता है। यह प्रत्यक्ष में देखनेसे ठीक समझ में आयगा। दूसरा तरीका यह है अगर किसी मनुष्य को किसी स्थान पर बात करना है तो वह अपना प्रेषक उठाएगा और उसके उठाते ही एक दफ़र से सम्बन्ध हो जाता है जहाँ सब लोगोंके ग्राहकोंका सम्बन्ध है। तब वहाँ पर घण्टी बजती है और वहाँ के कर्मचारी पूछ कर आपको जिस स्थानसे बात करना है उसी से मिला देते हैं। यह प्रथा धीरे धीरे उठ रही है है किन्तु लखनऊ में अब भी प्रचलित है। इनका वर्णन विस्तारमें करना इस स्थान पर ठीक न होगा। इससे यह किसी दूसरे अंक में देखा जायगा।

———

पञ्चम और षष्ठ समूही धातुयें

(Metals of fifth and sixth groups)

(ले० श्री सत्यप्रकाश, एम-एस-सी.)

आवर्त्त संविभागके पांचवें समूहकी सम श्रेणीमें बलदम्, कौलम्बम्, और तंतालम्, ये तीन धातु तत्त्व हैं। इस समूह की विषम श्रेणीमें नोषजन स्फुर, संक्षीणम्, आञ्जनम् और विशदम् तत्व हैं। इन पांच तत्वोंमें नोषजन, स्फुर और संक्षीणम् तो पूर्णतः अधातु हैं ही पर आञ्जनम्में भी धातुकी अपेक्षा अधातुके ही गुण अधिक पाये जाते हैं। इसे अर्धधातु कहा जासकता है। विशदम् तत्वमें धात्विक गुणप्रधान हैं और अधातु-गुण केवल नाम

मात्र ही हैं। अधातु-खण्डमें नोषजन, स्फुर, संज्ञीणम् और आञ्जनम् का उल्लेख किया जा चुका है। यहां हम शेष बलदम्, कौलम्बम्, तन्तालनम् और विशदम् का वर्णन करेंगे। निम्न सारिणीमें इन तत्वोंके भौतिक गुण दिये जाते हैं:—

तत्व	संकेत		परमाणुभार	द्रवांक	क्थनांक	घनत्व	आपेक्षिकताप
बलदम्	ब	V	५१·०	१६२०°श	—	५·५	०·११५
कौलम्बम्	कौ	Nb	९३·१	—	—	—	—
तन्तालम्	त	Ta	१८१·५	२९१०	—	१६·६	०·०३६
विशदम्	वि	Bi	२०८·९	२६९	१४२०°श	९·७८	०·०३०४

षष्ठ समूहमें भी सम और विषम श्रेणियां हैं। सम श्रेणीमें रागम्, सुनागम्, वुल्फ्राम्म् और पिनाकम् तत्व हैं। विषम श्रेणीमें ओषजन और गन्धक तो अधातु तत्व हैं पर शशिम् और थलम् धातु तत्व हैं। रागम् तत्वके अधिकांश गुण मांगनीजसे जो सातवें समूहका धातु तत्व है, मिलते जुलते हैं अतः इसका वर्णन मांगनीज के साथ ही देना अधिक उपयुक्त होगा। षष्ठ समूही तत्वोंके भौतिक गुण नीचेकी सारिणी में दिये जाते हैं:—

तत्व	संकेत		परमाणुभार	द्रवांक	क्थनांक	घनत्व	आपेक्षिकताप
रागम्	रा	Cr	५२·०	१४८९°श	२२००°श	६·५	·११२/१००°
सुनागम्	सु	Mo	९६·०	>श्वेतताप	३२०० ?	८·६	·०७२
वुल्फ्राम्म्	वु	W	१८४·०	३०८०	३७००	१७-१८·८	·०३४
पिनाकम्	पि	U	२३८·२	—	—	१८·७	·०२८
*	*	*	*	*	*	*	*
शशिम्	श	Se	७९·२	२१७	६९०	४·५	·०८४
थलम्	थ	Te	१२७·५	४५०	१३९०	६·२५	·०४८

इस सारिणीको देखनेसे पता चलेगा कि सम श्रेणी वाले तत्वोंमें (रागम् से पिनाकम् तक) ज्यों ज्यों परमाणुभार बढ़ता जाता है तत्वोंके द्रवांक, क्वथनांक और घनत्व भी बढ़ते जाते हैं पर आपेक्षिक ताप बराबर कम होता जाता है। शशिम् और थलम्के साथ-साथ उसी श्रेणीके गन्धककी तुलना करनेसे भी यही नियम प्रत्यक्ष होता है—

[गन्धक—पर. भा. ३२, द्र० ११५°, क्व०, ४४४° घन० २.०७, आ० ताप. ०.१६३] अर्थात् परमाणुभारकी वृद्धिके साथ साथ द्रवांक, क्वथनांक और घनत्व बढ़ते जाते हैं पर आपेक्षिक ताप कम होता जाता है। अब हम इन तत्वोंका क्रमशः उल्लेख करेंगे।

बलदम् (Vanadium), ब, V

सं० १८५८ वि० में डेलरिओ नामक वैज्ञानिक ने इस तत्त्वकी विद्यानता सीसम्के खनिजोंमें पायी थी। बरज़ीलियसने इसके गुणोंकी परीक्षा की। इसके मुख्य खनिज बलदीनाइत (vanadinite) जो सीस बलदेत, ३ सी$_३$ (बओ$_४$)$_२$ सी ह$_२$ है; और मौट्रेमाइट जो सीस-ताम्र-बलदेत, (सीता)$_३$ (बओ$_४$)$_२$ है, हैं। मौट्रेमाइट खनिजको तीव्र उदहरिकाम्लसे संचालित करके छान लेते हैं। इस प्रकार प्राप्त अम्लीय घोलको उबालकर गाढ़ाकर लिया जाता है और फिर अमोनियम हरिद (नौसादर) के साथ मिलाकर वाष्पीभूत कर देते हैं। इस प्रकार, अमोनियम-मध्य-बलदेत, नो उ$_४$ ब ओ$_३$ बन जाता है। इसे चीनी मिट्टीके बर्तनोंमें भून कर बलद-पंच-ओषिद, ब$_२$ ओ$_५$, में परिणत कर लेते हैं। इस ओषिदको विद्युत् भट्टीमें कर्बनके साथ गरम करनेसे बलदम् धातु प्राप्त हो जाती है। यह धातु अशुद्ध होती है। शुद्ध धातु बलद द्विहरिद, ब ह$_२$, को उदजनके प्रवाहमें गरम करके प्राप्त हो सकती है। बलदम् मटमैला चूर्ण पदार्थ है। इसपर वायु एवं जलका बहुत धीरे धीरे प्रभाव होता है। इस पर ठंडे एवं गरम उदहरिकाम्लका भी कोई प्रभाव नहीं होता है। साधारण तापक्रम पर तीव्र एवं हलके गन्धकाम्लसे यह प्रभावित नहीं होता है पर यदि तीव्र गन्धकाम्लके साथ गरम किया जाय तो यह घुलकर पीतहरित घोल देता है। पर नोषिकाम्ल इसको अति शीघ्र ओषदीकृत कर देता है, नोषस-वाष्पें निकलने लगती है और नीला घोल मिलता है। सैन्धकक्षारके घोलका इसपर कोई प्रभाव नहीं होता है पर यदि ठोस सैन्धकक्षारके साथ गलाया जाय तो सैन्धक बलदेत बनजाता है।

बलद पंचौषिद, ब$_२$ ओ$_५$—मौट्रेमाइट खनिजसे पंचौषिद प्राप्त करनेकी विधि ऊपर दी जा चुकी है। पीलापन लिये हुए इसके सुन्दर सूच्याकार रवे होते हैं। यह तीव्र अम्लोंमें घुलकर बलदील लवण देता है। पंचौषिदके अतिरिक्त एकौषिद, ब$_२$ ओ, द्विओषिद, ब$_२$ ओ$_२$ (या ब ओ), त्रिओषिद, ब$_२$ओ$_३$, आदि भी ओषिद होते हैं। इसी प्रकार यह कई रूपके अम्लोंके लवण—(पूर्व बलदिकाम्ल; उ$_३$ ब ओ$_४$; मध्य बलदिकाम्ल, उ ब ओ$_३$; उष्म बलदिकाम्ल, उ$_४$ ब$_२$ ओ$_७$) देता है। इन लवणों को बलदेत (Vanadate) कहते हैं इनमें से मध्य बलदेत अधिकतम स्थायी हैं। सैन्धक पूर्व बलदेत, सै$_३$ बओ$_४$ और सीस पूर्व बलदेत, सी$_३$ (बओ$_४$)$_२$, अमोनियम मध्य बलदेत, नो उ$_४$ ब ओ$_३$, रजत उष्मबलदेत, र$_४$ ब$_२$ ओ$_७$ इनके उदाहरण हैं।

बलदील हरिद, ब ओ ह$_३$, या बलद ओषहरिद—यह बलद पंचौषिदको कर्बनके साथ हरिन्के प्रवाह में गरम करनेसे मिलता है—

ब$_२$ ओ$_५$ + ३ क + ३ ह$_२$ = २ ब ओ ह$_३$ + ३ क ओ
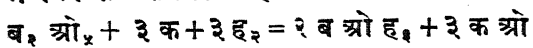
यह पीले रंगका द्रव है जिसका क्वथनांक १२६.७ है। इसके अतिरिक्त बलदस हरिद, ब ह$_३$, और चतुर्हरिद, ब ह$_४$ भी प्राप्त हुए हैं। अरुणिद, नैलिद, और प्लविद भी पाये जाते हैं।

बलदील गन्धेत, (ब ओ)$_२$ (ग ओ$_४$)$_३$ —यह बलद पंचौषिदको गरम गन्धकाम्लमें घोलकर बनाया जा सकता है।

———

कौलम्बम् (Columbium or Niobium) कौ Nb.

इस तत्वको निओबियम् भी कहते हैं। यह खनिजोंमें तन्तालम्के साथही पाया जाता है। मुख्य खनिज टैण्टेलाइट, कौलम्बाइट, फर्गूसोनाइट आदि हैं। इन खनिजोंमें तन्तालम् और कौलम्बम् के अतिरिक्त टिटेनम्, वंगम्, वुल्फ्रामम्, लोहम् आदि की अशुद्धियां भी विद्यमान रहती हैं। खनिजको पीसकर पांशुज उदजन गन्धेतके साथ गलाया जाता है। उपलब्ध पदार्थके घोलमें अमोनियम गन्धिद डालकर वंगम् और वुल्फ्रामम् की अशुद्धि दूर कर लेते हैं। और फिर हलके उदहरिकाम्लसे संचालित करके टिटेनम्, कौलम्बम् और तन्तालम् के उदौषिद मिश्रण प्राप्त कर लिये जाते हैं। इसे फिर उदप्लविकाम्लमें घोलते हैं। उदप्लविकाम्लके संसर्गसे टिटेनम्, कौलम्बम् और तन्तालम्के प्लविद बन जाते हैं। इस घोलमें पांशुज प्लविद डाल कर स्फटिकीकरण करनेसे इन तीनोंके द्विगुण पांशुज प्लविद भिन्न भिन्न घुलनशीलताके कारण घोल की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में पृथक् होने लगते हैं। इस प्रकार तीनों को अलग कर लिया जाता है।

इस प्रकार पांशुज कौलम्ब प्लविद, २ पां प्ल, कौ ओ प्ल$_3$, उ$_2$ ओ प्राप्त होता है। इसे गन्धकाम्ल द्वारा संचालित करनेसे कौलम्ब ओषिद कौ$_2$ ओ$_5$ मिलता है। शुष्क पांशुज कौलम्ब प्लविद को सैन्धक के साथ गरम करनेसे कौलम्ब द्विओषिद, कौ$_2$ ओ$_2$ मिलता है। पंचौषिद को हड्डीके कोयलेके साथ हरिन्के प्रवाहमें गरम करनेसे कौलम्ब पंच हरिद कौ ह$_5$ मिलता है। और द्विओषिद को केवल हरिदके साथ गरम करनेसे कौलम्ब ओष हरिद, कौ ओ ह$_3$ मिलता है। इन हरिदोंकी वाष्पोंको उदजन के साथ रक्त तप्त नलिकाओंमें प्रवाहित करने से कौलम्बम् धातु प्राप्त हो सकती है। यह धातु उदहरिकाम्ल, नोषिकाम्ल एवं अम्लराज द्वारा गरम करने पर भी प्रभावित नहीं होती है पर तीव्र गन्धकाम्लमें घुलकर नीरंग घोल देती है।

तन्तालम् (Tantalum), त, Ta

यह कहा जा चुका है कि यह कौलम्बम्के साथ मिलता है। उपर्युक्त प्रक्रियाओं द्वारा यह पांशुज तन्ताल प्लविद, पां$_2$ त प्ल$_7$, में परिणत कर लिया जाता है। इस द्विगुण प्लविद को पांशुजम्के साथ गरम करनेसे तन्तालम् धातु मिल सकती है।

पां$_2$ त प्ल$_7$ + ५ पां = ७ पां प्ल + त

यह श्याम चूर्ण धातु है। वायुमें गरम करने पर यह जल उठती है और ओषिद, त$_2$ ओ$_5$, बन जाता है। यह उदप्लविकाम्ल को छोड़कर अन्य किसी भी अम्लमें नहीं घुलती है। हरिद या गन्धक की वाष्पोंमें भी गरम करनेसे जल उठती है। तंताल पंचौषिद, त$_2$ ओ$_5$ को कोयलेके साथ हरिद के प्रवाहमें गरम करनेसे तन्ताल हरिद, त ह$_5$ प्राप्त होता है। यह धुंआदार सूच्याकार पीले रवों का होता है। जलके साथ शीघ्र मिलानेसे यह झिल्ली दार तन्तालिकाम्ल, उतओ$_3$ का अवक्षेप देता है। इसके लवण तन्तालेत (tantalate) कहलाते हैं। अम्लको दाहक पांशुजक्षार में घोलनेसे पांशुज-षड् तन्तालेत, पां$_8$ त$_6$ ओ$_{19}$ प्राप्त होता है।

विशदम् (Bismuth) वि, Bi

आवर्त्त संविभागके पांचवें समूह की विषम श्रेणीमें नोषजन, स्फुर, संक्षीणम्, आञ्जनम् और विशदम् तत्व हैं। इन तत्वोंके गुणों पर दृष्टि डालने से पता चल जायगा कि ज्यों ज्यों परमाणु भार बढ़ता जा रहा है, तत्वों के अधातु-गुण कम होते जा रहे हैं। आञ्जनम् को तो अर्ध धातु भी माना जा सकता है। विशदम्में तो केवल धातुके ही गुण हैं। परमाणुभारकी वृद्धिके साथ साथ तत्वों के ओषिदों में अम्लीय गुण कम होते जाते हैं और क्षारीय गुण बढ़ते जाते हैं। नोषजनके ओषिद नोषसाम्ल और नोषकाम्लके समान प्रबल अम्ल देते हैं। स्फुर और संक्षीणम्के ओषिद स्फुरिकाम्ल और संक्षीणिकाम्ल देते हैं, जो कि पूर्वकी अपेक्षा कम

प्रबल हैं। आञ्जनिकाम्ल तो बहुतही क्षीण अम्ल है। विशदिकाम्ल की विद्यमानता सन्देह-जनक ही है। इसमें अम्लीय गुणों की अपेक्षा विशदिक उदौषिद् के गुण हैं।

इन तत्त्वोंके उदिदोंमें भी इसी प्रकार का क्रम मिलता है। नोषजन का उदिद् अमोनिया अत्यन्त स्थायी और प्रबल क्षार है। सभी अम्लों से यह संयुक्त होकर लवण दे सकता है। स्फुर का उदिद्, स्फुरिन, स्फु उ₃, भी स्थायी है पर इसमें क्षारीय गुण प्रबल नहीं है। यह केवल उदनैलिकाम्ल और उदअरुणिकाम्लों के साथ ही संयुक्त हो सकता है। संक्षीणम् का उदिद्, संक्षीणिन् क्ष उ₃, २३०° पर ही विभाजित हो जाता है और इसमें क्षारत्व का भी अभाव है। यह किसी अम्लमें संयुक्त नहीं हो सकता है। आञ्जनम् का उदिद् १५०° के नीचे ही विभाजित हो जाता है और यह भी किसी अम्लसे संयुक्त होकर लवण नहीं देता है। विशद उदिद् की विद्यमानता सन्देह जनक ही है।

इस सबसे स्पष्ट है कि अन्य तत्त्वों की अपेक्षा विशदम् में प्रबल धात्विक गुण हैं और इसका वर्णन धातु तत्त्वोंके साथ ही किया जा सकता है।

खनिज—विशदम् मुख्यतः धातु रूपमें ही पाया जाता है, पर यह बिसमथाइट खनिजमें ओषिद्, वि₂ ओ₃, और बिस्मुथाइन में गन्धिद्, वि₂ ग₃ के रूपमें भी पाया जाता है।

धातु उपलब्धि—यदि धातु रूपमें विशदम् मिला तो उसे पिघला का शुद्ध कर लेते हैं। इसका द्रवांक केवल २७१° है अतः सरलता से पिघलाया जा सकता है। पिघले हुए द्रवको एक ओर उंडेल लेते हैं और इस तापक्रम पर न पिघलने वाली अशुद्धियां दूर हो जाती हैं। यदि गन्धिद् या ओषिद् खनिज लिया (इन खनिजोंमें कोबल्टम् और नकलम् की भी अशुद्धियां रहती हैं) तो इन्हें पहले भूंजते हैं। इस प्रकार विशद त्रिओषिद्, बि₂ ओ₃, बन जाता है। इसमें कोयला, थोड़ा सा लोहा और थोड़ा सा द्रावक* (Flux) मिला देते हैं। तत्पश्चात् घरिया या क्षेपण भट्टी में गरम करते हैं। तप्त करने पर विशदम् पिघल जाता है और नकलम् के ओषिदोंकी तह ऊपर आ जाती है। इस प्रकार पिघले हुए भागको पृथक् कर लिया जाता है।

यदि इस प्रकार प्राप्त धातुको और भी अधिक शुद्ध करना हो तो उसे हलके नोषिकाम्लमें घोलते हैं और घोलको पानीमें उंडेलते हैं। इस प्रकार भस्मिक विशद नोषेत अवक्षेपित हो जाता है। इस अवक्षेपको छान-सुखाकर तप्त करनेसे विशद ओषिद् मिलता है जिसे फिर कर्बनके साथ अवकृत करनेसे विशदम् धातु मिल सकती है।

विशदम्के गुण—यह कठोर भंजनशील धातु है जिसमें लाली लिये हुए मटमैला रंग होता है और धातुकी चमक होती है। पिघले हुए विशदम्-को ठोस करनेसे आयतनमें कमी होनेके स्थानमें वृद्धि होती है। द्रव विशदम्का घनत्व १०.०४ और ठोस का ९.७८ है। अन्य भौतिक गुण पूर्व सारिणीमें दिये हुए हैं। शुष्क वायुमें यह अप्रभावित रहता है, और पानीका भी इस पर केवल धीरे धीरे प्रभाव होता है। गलानेपर यह ओषिदमें परिणत हो जाता है और ज़ोरोंसे गरम करने पर यह नील-श्वेत ज्वालासे जलने लगता है, एवं विशद ओषिद्, वि₂ ओ₃, की भूरी वाष्पें निकलने लगती हैं। यह हरिन् और गन्धकसे संयुक्त हो सकता है। यह उदहरिकाम्ल और गन्धकाम्ल द्वारा साधारण तापक्रम पर अप्रभावित रहता है। गन्धकाम्ल के साथ गरम करनेसे गन्धक द्विओषिद् निकलने लगता है।

$$२ \text{ वि} + ६ \text{ उ}_२ \text{ ग ओ}_४ = \text{वि}_२ (\text{ग ओ}_४)_३ + ३ \text{ ग ओ}_२ + ६ \text{ उ}_२ \text{ ओ}$$
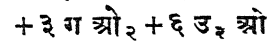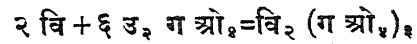
यह नोषिकाम्लमें घुलकर विशद नोषेत, वि (नो-ओ₃)₃ देता है और अम्लराजमें घुलकर विशद-

*द्रावक वे पदार्थ होते हैं जिनके मिलनेसे मिश्रण कम तापक्रम पर पिघलने लगता है।

हरिद्, वि ह₃ । विशदम्के लवणोंका घोल अधिक पानीमें डालनेसे उद्विश्लेषित हो जाता है और भस्मिक लवण अवक्षेपित हो जाते हैं :—

वि ह₃ + २ उ₂ ओ ⇌ वि (ओ उ)₂ ह + २ उ ह

⇌ वि ओ ह + उ₂ ओ + २ उ ह
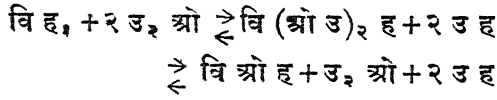
धातु संकर—विशदम्के धातुसंकर अत्यन्त उपयोगिताके हैं क्योंकि बहुधा इनमें वे गुण होते हैं जो पृथक् पृथक् धातुओंमें नहीं होते हैं। सब धातु संकरोंमें ५०% विशदम् धातु होती है और शेष सीसम्, वंगम्, संदस्तम् आदि। निम्न सारिणीमें कुछ धातु संकर दिये जाते हैं:—

इन धातु संकरोंके द्रवांकोंसे स्पष्ट हो जायगा कि यह कितने शीघ्र विघलने वाले हैं।

	न्यूटन-धातु	रोज़ धातु	वुड-धातु	लाइटेन वर्ग धातु	लिपोविट्ज धातु
विशदम्	८	२	४	५	१५
सीसम्	५	१	२	३	८
वंगम्	३	१	१	२	४
संदस्तम्	०	०	१	०	३
द्रवांक	६४·५°	६३·७५°	७१°	६१·६.	६०°-६५°

संयोग तुल्यांक और परमाणुभार—विशद धातु को नोषिकाम्ल द्वारा नोषेत में परिणत करते हैं और नोषेतको तप्त करके विशद त्रिओषिद बनाते हैं। इस ओषिदकी मात्रा ज्ञात होनेसे विशदम्का संयोग तुल्यांक निकाला जा सकता है।

४ वि (नो ओ₃)₃ = २ वि₂ ओ₃ + १२ नो ओ₂ + ३ ओ₂

४१६ ग्राम विशदम् धातुसे इस प्रकार प्रक्रियाको करनेसे ४६४ ग्राम विशद ओषिद मिलता है अर्थात् ४८ भाग ओषजन ४१६ भाग विशदम् से संयुक्त है अतः ८ भाग ओषजन ६९·३३ भाग विशदम्से संयुक्त है अतः संयोग तुल्यांक ६९·३३ हुआ।

विशदम् के अनेक उड़न शील यौगिक हैं जिन का वाष्पघनत्व निकाला जा सकता है। वाष्पघनत्व द्वारा परमाणु भार २०० के लगभग आता है अतः निश्चित परमाणुभार ६९·३३ × ३ = २०८ हुआ। विशदम् त्रिशक्तिक है।

ओषिद्—विशदम् के ४ ओषिद् पाये जाते हैं। विशद द्विओषिद, वि₂ ओ₂, जिसमें कुछ क्षारीय गुण हैं; विशद त्रिओषिद, वि₂ ओ₃, यह क्षारीय है। चतुरोषिद, वि₂ ओ₄ और पंचौषिद, वि₂ ओ₅ अम्लीय हैं। इनमें त्रिओषिद ही अधिक मुख्य है।

विशद त्रिओषिद—विशद उदौषिद, विओ (ओउ) या विशद नोषेतको गरम करनेसे मिलता है। यह पीलापन लिये हुए श्वेत पदार्थ है जो ८२०° पर गल जाता है, ७०४° तक गरम करने से यह हरित्-पीत रवोंका एक दूसरा ही रूप धारण कर लेता है। पोर्सीलेनकी बनी हुई घरिया में इसे पिघलानेसे पीले सूच्याकार रवे प्राप्त होते हैं। यह इसी त्रिओषिद का तीसरा रूप है। अन्य

धातुओं के साथ मिलाकर यह ओषिद रङ्गदार कांच बनाने के काम में आता है। राग-ओषिद के साथ मिलाने से पीला कांच बन सकता है।

किसी विशदम् लवण के घोलमें अमोनिया या दाहक क्षार डालनेसे विशद त्रिउदौषिद, वि (ओउ)$_3$ का श्वेत अवक्षेप मिलता है। यह अवक्षेप क्षारोंमें अनघुल और अम्लोंमें घुलनशील है। इस उदौषिद का शीघ्र अवकरण हो सकता है और अवकृत होने पर विशदम् धातुका काला चूर्ण प्राप्त होता है। इस प्रकार यदि विशद-लवणके घोलमें वंगस हरिद वह$_2$, की अधिक मात्रा डालकर यदि दाहक क्षार का घोल डालकर गरम किया जाय तो विशदम् धातुका काला अवक्षेप आवेगा। प्रक्रियायें इस प्रकार हैं:—

वह$_2$ + २ सै ओउ = व (ओउ)$_2$ + २ सै ह

वि ह$_3$ + ३ सै ओउ = वि (ओउ)$_3$ + ३ सै ह

२ वि (ओउ)$_3$ + ३ व (ओउ)$_2$ = २ वि + ३व (ओउ)$_4$

इस प्रकार विशदम् धातु और वंगिक उदौषिद, व (ओउ)$_4$, मिलते हैं।

विशद द्विओषिद—वि$_2$ ओ$_2$—भस्मिक विशद काष्ठेत, (वि ओ)$_2$ क$_2$ ओ$_4$ को गरम करनेसे विशद द्विओषिदका काला चूर्ण मिलता है।

(वि ओ)$_2$ क$_2$ओ$_4$ = वि$_2$ ओ$_2$ + २क ओ$_2$

वंगस हरिद, और विशद त्रिओषिद की उपयुक्त मात्राको उदहरिकाम्लमें घोलकर मिश्रणको दाहक पांशुज क्षार के घोलमें छोड़नेसे भी यह मिल सकता है। इसके काले अवक्षेपको १२०° पर सुखा लेना चाहिये।

विशद चतुरोषिद—वि$_2$ ओ$_4$—विशद त्रिओषिद को क्षारीय घोलमें पांशुज लोहीश्यामिद, पां$_3$ लो-(कनो)$_6$ द्वारा ओषदीकृत करनेसे चतुरोषिदका भूरा चूर्ण मिलता है।

वि$_2$ ओ$_3$ + २ पां$_3$ लो (कनो)$_6$ + २ पां ओउ
= वि$_2$ ओ$_4$ + २ पां$_4$ लो (कनो)$_6$ + उ$_2$ ओ

विशद पंचौषिद—वि$_2$ ओ$_5$—उबलते हुए पांशुज उदौषिदके घोलमें विशद त्रिओषिद छितराकर हरिन् प्रवाहित करनेसे पंचौषिदका लाल चूर्ण प्राप्त होता है।

वि$_2$ ओ$_3$ + २ ह$_2$ + ४ पां ओ उ
= वि$_2$ ओ$_5$ + ४ पां ह + २ उ$_2$ ओ

रंगमें चतुरोषिद और पंचौषिद सीस द्विओषिदके समान हैं और नोषिकाम्लमें अनुघुल हैं। विशद त्रिओषिदको दाहक पांशुज क्षारके साथ गलानेसे पांशुज विशदेत, पां वि ओ$_3$, का भूरा पदार्थ मिलता है। यह जलमें उदविश्लेषित हो जाता है। इस प्रकार पंचौषिद, वि$_2$ ओ$_5$ अवक्षेपित हो जाता है:—

२ पां वि ओ$_3$ + उ$_2$ ओ
= वि$_2$ ओ$_5$ + २ पां ओ उ

विशद हरिद—विह$_3$-विशद ओषिद, वि$_2$ओ$_3$, को उदहरिकाम्लमें घोलनेसे अथवा विशदम् धातुको हरिन्के प्रवाहमें गरम करनेसे विशद हरिद प्राप्त होता है। यह मृदु श्वेत रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक २२७° और क्वथनांक ४४७° है। विशदमको अम्लराजमें घोलने से भी यह मिल सकता है। विशद हरिद का घोल पानीमें छोड़नेसे उदविश्लेषित होकर विशदओषहरिद, वि ओह, का अवक्षेप देता है जैसा कि पहले कहा जा चुका है।

विशदम् और अरुणिन्के संसर्गसे सुनहरा विशद अरुणिद, वि रु$_3$, बनता है जो जलके संसर्गसे श्वेत ओषअरुणिद, वि ओ रु में परिणत हो जाता है। वंगस हरिदमें नैलिन्को घोलकर उदहरिकाम्ल द्वारा संपृक्त करनेके पश्चात् यदि घोलमें विशद ओषिद मिलाया जाय तो काला विशद नैलिद, वि नै$_3$, बनता है। यह नैलिद जलके प्रभाव से लाल, वि ओ नै, देता है।

विशद् नोषेत—वि (नो ओ$_3$)$_3$—यह विशदम्को नोषिकाम्लमें घोलनेसे बनता है। जलके संसर्गसे भस्मिक विशद् नोषेत में परिणत हो जाता है।

वि < नो ओ$_3$; नो ओ$_3$ + २ उ$_2$ओ ; नो ओ$_3$

= वि < ओउ ; ओउ + २ उ नो ओ$_3$; नोओ$_3$
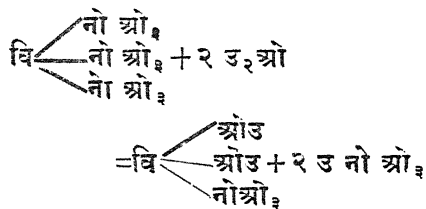
विशद् गन्धेत—वि$_2$ (गओ$_4$)$_3$—विशदम्को तीव्र गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे यह बनता है। पानीके संसर्गसे यह अनघुल भस्मिक विशद गन्धेत, वि$_2$ (ओउ)$_4$ गओ$_4$ का अवक्षेप देता है। पांशुज गन्धेतके साथ यह द्विगुण लवण, पां वि-(गओ$_4$)$_2$ भी देता है।

विशद् गन्धिद्—वि$_2$ ग$_3$—यह विशदम्को गन्धकके साथ गलानेसे मिलता है अथवा विशद-लवणके घोलमें उद्‌जन गन्धिद प्रवाहित करनेसे इसका काला अवक्षेप मिल सकता है। यह अवक्षेप नोषिकाम्ल और उबलते हुए उदहरिकाम्लमें घुलनशील है पर क्षारोंमें एवं पीत अमोनियम-गन्धिदमें अनघुल है।

विशद् कर्बनेत—वि$_2$ (क ओ$_3$)$_3$—यह नहीं पाया जाता है। पर यदि विशद-नोषेतके घोलमें सैन्धक कर्बनेत डाला जाय और उपलब्ध अवक्षेप को सुखाया जाय तो भस्मिक विशद कर्बनेत, (विओ)$_2$ कओ$_3$ मिलेगा। इसे भस्मिक विशद हरिद, वि ओ ह के समान समझा जा सकता है।

सुनागम् (Molybdenum,) सु, Mo

सुनागम् तत्त्वका मुख्य खनिज सुनागित (मोलिबडेनाइट), सुग$_2$, है। यह वुल्फेनाइट, सीसुओ$_4$ में भी पाया जाता है। लोहे के खनिजों में भी इसकी कुछ मात्रा विद्यमान रहती है। इन खनिजोंको वायुमें भूँजनेसे त्रिओषिद, सुओ$_3$, प्राप्त होता है। इसके अन्य ओषिद, सुओ, सु$_2$ ओ$_3$ और सुओ$_2$, भी पाये गये हैं। त्रिओषिदको सैन्धकपारदमेलसे अवकृत करने पर घोल का रंग नीला होकर भूरा और अन्तमें काला पड़ जाता है। इस प्रकार एकार्ध-ओषिद, सु$_2$ ओ$_3$ मिलता है। इस ओषिदको वायु प्रवाहमें गरम करनेसे द्विओषिद, सुओ$_2$ मिलता है। सुनाग-द्विहरिद, सुह$_2$ को गरम पांशुजउदौषिदके घोलके साथ उबालनेसे एकौषिद, सुओ का काला चूर्ण प्राप्त होता है।

सुनाग त्रिओषिद, या हरिदको उद्‌जन प्रवाह में गरम करनेसे सुनागम् धातु प्राप्त होती है। सुनागद्विओषिद को हड्डीके कोयलेके साथ कर्बन की घरियामें विद्युत-भट्टीमें गरम करने सेभी यह धातु बनायी जासकती है।

सुनागत्रिओषिद् अमोनियामें घुलनशील है। घुलकर अमोनियम सुनागेत, (नोउ$_4$)$_2$ सुओ$_4$, यौगिक बनाता है। घोलको वाष्पीभूत करनेसे जो रवे प्राप्त होते हैं वे (नोउ$_4$)$_6$ सु$_7$ ओ$_{24}$. ४उ$_2$ ओके हैं। साधारण अमोनियम सुनागेत का यही सूत्र समझना चाहिये। इसी प्रकार पांशुज सुनागेत भी कई प्रकार के होते हैं—पां$_2$सु ओ$_4$; पां$_6$ सु$_7$ ओ$_{24}$; पां$_2$ सु$_4$ ओ$_{13}$, इत्यादि। अमोनियम सुनागेतमें नोषिकाम्ल डालनेसे सुनागिकाम्ल, उ$_2$ सुओ$_4$ की पीली पपड़ी प्राप्त होती है।

किसी स्फुरेतके घोलमें नोषिकाम्ल डालकर अमोनियम सुनागेतका घोल डालकर गरम करनेसे निम्न पदार्थ का पीला अवक्षेप मिलता है।

(नोउ$_4$)$_3$ स्फुओ$_4$, १२सुओ$_3$, २उ नो ओ$_3$, उ$_2$ओ

इस अवक्षेपको १५०°-१८०° तक गरम करनेसे अमोनियम-स्फुरो-सुनागेत, (नोउ$_4$)$_3$ स्फुओ$_4$, १२ सुओ$_3$, रह जाता है।

सुनागम् धातु प्लविन्‌से साधारण तापक्रम पर ही संयुक्त हो सकती है पर रक्ततप्त करने से हरिन्‌से भी संयुक्त हो जाती है। यह नोषिकाम्लको छोड़ कर अन्य हलके अम्लोंमें अनघुल है पर तीव्र

गन्धकाम्लमें घुलनेपर पहले हरा घोल देती है, पर बादको गन्धक द्विओषिद वाष्पोंके निकल जाने पर घोल नीरंग हो जाता है और सुनाग त्रिओषिद रह जाता है।

सुनागमके लवण दो प्रकारके होते हैं-सुनाग-लवण (Molybdenum salt) और सुनागील (Molybdenyl) लवण।

सुनागहरिद—सुनागमको शुष्क हरिन्में गरम करनेसे सुनागपंच हरिद, सुह$_5$, के काले रवे प्राप्त होते हैं जिनका द्रवांक १९४° है। इस हरिदको कर्बन द्विओषिदमें वाष्पीभूत करनेसे सुनाग त्रिहरिद, सुह$_3$ और चतुर्हरिद, सुह$_4$ प्राप्त होते हैं।

सुनागीलहरिद, सुओ$_2$ ह$_2$-यह सुनाग द्विओषिद को हरिन्के प्रवाहमें गरम करनेसे बनता है। यह जल और मद्यमें घुलनशील है। द्विओषिद और अरुणिन् के संसर्गसे सुनागील अरुणिद, सुओ$_2$ रु$_2$ बनता है।

वुल्फ्रामम्(Tungsten), वु, W

इसके खनिज शीलाइट, खटिक वुल्फ्रामेत, खवुओ$_4$; वुल्फ्राम, लोह वुल्फ्रामेत, लो वु ओ$_4$; वुल्फ्रेमाइट, (मा, लो) वु ओ$_4$ आदि हैं। खनिज को सैन्धक कर्बनेत और नोषेतके मिश्रणके साथ गलानेसे घुलनशील सैन्धक वुल्फ्रामेत बन जाता है जिससे वुल्फ्राममके अन्य लवण बनाये जा सकते हैं। वुल्फ्रामम्-धातु त्रिओषिदको कर्बनके साथ अवकृत करके अथवा उदजन प्रवाह में गरम करके प्राप्त हो सकती है। यह चमकदार धातु है जो साधारण तापक्रम पर प्लविन्से और ३००° पर हरिन्से संयुक्त हो सकती है। वायुमें धातु का चूर्ण रक्त तप्त किया जाने पर जल उठता है और त्रिओषिद बन जाता है पर पांशुज हरेतके साथ गरम करने पर यह प्रक्रिया और भी आसानीसे हो सकती है। गन्धकाम्ल, उदहरिकाम्ल और उदप्लविकाम्ल का इसपर बहुत ही कम प्रभाव होता है पर नोषिकाम्ल और उदप्लविकाम्ल के मिश्रणमें यह शीघ्र घुल जाता है। अम्लराजके प्रभावसे भी शीघ्र ओषदीकृत हो जाता है। उबलते हुए दाहक सैन्धक क्षारके घोलमें यह घुलनशील है और सैन्धक वुल्फ्रामेत बन जाता है, एवं उदजन निकलने जाता है।

ओषिद—वुल्फ्राम त्रिओषिद, वु ओ$_3$, तो खनिज रूपमें भी पाया जाता है। वुल्फ्रामम् धातु पर अम्ल-राजके प्रभावसे भी यह बनता है। इसको उदजन प्रवाहमें गरम करनेसे द्विओषिद, वु ओ$_2$, बनता है। द्विओषिद भूरा और त्रिओषिद पीला चूर्ण होता है। द्विओषिद सैन्धक क्षारमें घुलकर सैन्धक वुल्फ्रामेत देता है।

$$\text{वु ओ}_2 + 2\ \text{सै ओ उ} = \text{सै}_2\ \text{वु ओ}_3 + \text{उ}_2$$

वुल्फ्राम त्रिओषिद अम्लीय ओषिद है। इसके लवण वुल्फ्रामेत कहलाते हैं जैसे सैन्धक वुल्फ्रामेत सै$_2$ वु ओ$_4$, सैन्धक मध्य वुल्फ्रामेत, सै$_2$ वु$_4$ ओ$_{13}$ और परवुल्फ्रामेत, सै$_{10}$ वु$_{12}$ ओ$_{41}$। ठंडे सैन्धक वुल्फ्रामेत में अम्ल डालनेसे वुल्फ्रामिकाम्ल, उ$_2$ वु ओ$_4$ का श्वेत घुलनशील अवक्षेप आ जाता है, पर यदि उबालकर गरम अम्लसे प्रभावित किया जाय तो पीला अनघुल अवक्षेप आवेगा।

वुल्फ्रामो-शैलिकाम्ल—(Tungstosilicic acid) और इनके लवण जैसे पां$_8$ वु$_{12}$ शै ओ$_{42}$ शैलिकाम्ल और वुल्फ्रामेतों के संसर्गसे बनाये जा सकते हैं। स्फुरिकाम्ल (या स्फुरेत), नोषिकाम्ल औरसैन्धक वुल्फ्रामेत के घोल को गरम करनेसे स्फुरो वुल्फ्रामिकाम्ल के लवण भी प्राप्त होते हैं।

शुष्क हरिद—शुद्ध हरिन् के प्रवाहमें वुल्फ्रामम् धातु को गरम करनेसे वुल्फ्राम-षड्-हरिद, वु ह$_6$ बनता है। वुल्फ्राम द्विओषिद पर हरिन् प्रवाहित करनेसे वुल्फ्राम ओष हरिद, वु ओ ह$_4$ और वु-ओ$_2$ ह$_2$, बनते हैं। वुल्फ्राम हरिद, व ह$_6$ ठोस बैंजनी रवेदार पदार्थ है। इसे उदजनके प्रवाहमें गरम करनेसे पंचहरिद वु ह$_5$ और चतुर्हरिद, वु ह$_4$ भी बनते हैं।

पिनाकम् (Uranium), पि, U

यह तत्व बहुत कम पाया जाता है। सं० १८४६ वि०में क्लेपराथने पिचब्लैण्डी खनिजमें इस तत्वकी संभावनाका निर्देश किया था। पिचब्लैण्डी-में पिनाकोसो पिनाकिक ओषिद, $पि_3$ $ओ_8$, अशुद्ध रूपमें है। इसमें यह ओषिद ४०-६०% प्रतिशतक तक पायाजाता है। इसके अतिरिक्त शेष बालू, लोहा, सीसम्, मगनीसिया, खटिकम् आदि रहते हैं। खनिज पदार्थ को गन्धकाम्ल द्वारा सञ्चालित किया जाता है, तत्पश्चात् जलमें घोल बनाने से सीसगन्धेत, बालू आदि अशुद्धियाँ अनघुल रह जाती हैं जिन्हें छानकर अलग कर दिया जाता है। इसके बाद स्वच्छ घोलमें उदजन गन्धिद वायव्य प्रवाहित किया जाता है जिससे बहुत सी अशुद्धियोंके अनघुल गन्धिद अवक्षेपित हो जाते हैं। इन्हें फिर छान कर अलग कर देते हैं। तदुपरान्त घोलको नोषिकाम्ल द्वारा ओषदीकृत करके अमोनिया द्वारा अवक्षेपित करते हैं। इस प्रक्रियासे लोह उदौषिद और पिनाकिक उदौषिद दोनों का अवक्षेप प्राप्त होता है। इस अवक्षेपमें अमोनियम कर्बनेत डालते हैं जिसमें लोह उदौषिद अनघुल है पर पिनाकिक उदौषिद द्विगुण कर्बनेत, पि $ओ_2$-$कओ_3$. २ $(नोउ_4)_2$ $कओ_3$ बनकर घुल जाता है। स्फटिकीकरण करने पर इसके पीले रवे प्राप्त होते हैं। इसे तप्त करनेसे शुद्ध ओषिद, $पि_3$ $ओ_8$, प्राप्त हो जाता है।

यह ओषिद नोषिकाम्लमें घुलकर पीला पिनाकील (uranyl) नोषेत, पि $ओ_2$ $(नोओ_3)_2$ ६ $उ_2ओ$ देता है। पिनाकम्के मुख्य लवणोंमें पिनाकील मूल, पि $ओ_2$, है जो द्विशक्तिक है। इस नोषेतको २५०°तक कांचकी नलीमें गरमकरनेसे पिनाकील ओषिद, (पि $ओ_2$) ओ, मिलता है जो भूरा चूर्ण है। पर यदि ओषिद, $पि_3ओ_8$, को उदजन प्रवाहमें गरम किया जाय तो पिनाक-द्वि- ओषिद, पि $ओ_2$ मिलता है।

पिनाक द्विओषिद्को उदजनहरिद्में तप्त करने से पिनाक चतुर्हरिद या पिनाकस हरिद, $पिह_4$ मिलता है। किसी भी ओषिद्को कोयलेके साथ मिलाकर हरिन् प्रवाहमें गरम करनेसे यह मिल सकता है। इसके सुन्दर हरे अष्टतलीय रवे होते हैं जिनमें धात्विक चमक होती है। इसमें प्रबल अवकारक गुण होते हैं। स्वर्ण और रजतके लवणोंको यह शीघ्र अवकृत कर देता है। हरिन्के संयोगसे यह पिनाक पंच हरिद, $पिह_5$, भी देता है।

पिनाक चतुर्हरिद् और पांशुजहरिद्के मिश्रणको सैन्धकम् धातुसे प्रभावित करनेसे पिनाकम् धातु प्राप्त होती है। पिनाकम् धातु पिनाकोसो पिनाकिक ओषिद, $पि_3$ $ओ_8$, को विद्युत् भट्टीमें शक्करके कोयलेके साथ गरम करके भी मिल सकती है। शुद्ध पिनाकम् श्वेत धातु है। पिसे हुए रूपमें यह वायुमें ही ओषदीकृत हो जाता है। जलको भी यह धीरे धीरे विभाजित कर देता है। यह प्लविन्, हरिन्, नैलिन्, अरुणिन्, गन्धक आदिसे भी सरलतासे संयुक्त हो सकता है। इसमेंसे रौञ्जनरश्मियों के समान बेकेरल रश्मियें निकला करती हैं।

पिनाक द्विओषिद पर शुष्क हरिन् गैस प्रवाहित करनेसे पिनाकील हरिद, पि $ओ_2$ $ह_2$, बनता है जो पीला रवेदार पदार्थ है। यह पांशुज हरिद्के साथ द्विगुण लवण, २ पांह. $पिओ_2$ $ह_2$, २ $उ_2$ ओ, देता है। पिनाक अरुणिद, $पिरु_4$, और पिनाकील अरुणिद भी हरिदोंके समान बनाये जा सकते हैं।

पिनाकम् धातुको गन्धककी वाष्पोंमें गरम करनेसे पिनाकस गन्धिद, $पिग_2$, बनता है। ओषिद, $पि_3$ $ओ_8$ को हलके गन्धकाम्लमें घोलकर मद्यकी विद्यमानतामें स्फटिकी करण करनेसे पिनाकस गन्धेत पि $(गओ_4)_2$ के रवे मिलते हैं। पिनाकील नोषेतमें गन्धकाम्ल डालकर पिनाकील गन्धेत; $पिओ_2$ $गओ_4$ बनाया जा सकता है। पिनाकील नोषेत, पि $ओ_2$ $(नोओ_3)_2$, पिनाक ओषिदको नोषिकाम्लमें घोलकर बनाया जा सकता है।

पिनाकील लवणोंके घोलमें पांशुजक्षारके घोल की समुचित मात्रा डालने से पांशुज द्विपिनाकेत, पां$_2$-पि$_2$ ओ$_7$ का पीला अवक्षेप मिलता है। इसी प्रकार सैन्धक पिनाकेत, सै$_2$ पि$_2$ ओ$_7$ भी बन सकता है जिसके गरम घोलमें अमोनियम हरिद डालकर अमोनियम पिनाकेत बनाया जा सकता है।

शशिम् और थलम्

(Selenium and Tellurium)

अब हम यहां उन दो तत्वोंका विवरण देंगे जिनमेंसे एकका नाम चन्द्रलोक (शशि=चन्द्र) पर और दूसरेका नाम भूलोक (थल=भू) पर दिया गया है। छठे समूह की विषम श्रेणीमें गन्धकके साथ साथ शशिम् और थलम्का भी नाम आता है। गन्धक अधातु तत्व है और उन दोनों तत्वोंके अनेक यौगिक गन्धकके यौगिकोंके समान हैं, फिर भी इनमें धातुओंके भी समुचित गुण हैं।

खनिज—शशिम्के खनिज क्लौसथैलाइट,सीश, ओनोफ्राइट, पा श, ४ पा ग; ज़ोरगाइट, सी ता, और क्रूकेसाइट, (ता, थै, र)$_2$श हैं। थलम् तत्व-रूपमेंभी पाया जाता है, और थलिदोंके रूपमें भी; श्यामथलम्, (स्व, सी)$_2$ (थ, ग, ज)$_3$; हेसाइट, र$_2$ थ आदि इसके खनिज हैं।

धातु-उपलब्धि—(१) शशिम्के खनिजोंमेंसे शशिम् तत्व निकालनेके लिये खनिजको पांशुज-श्यामिदके घोल द्वारा संचालित करते हैं। इस प्रकार पांशुज शशो श्यामिद बन जाता है जिसे पांशुज गन्धको श्यामिद (पां क नो ग) के समान समझना चाहिये।

श + पां क नो = पां क नो श

इस शशोश्यामिदमें उदहरिकाम्ल डालनेसे शशिम् अवक्षेपित हो जाता है :—

पां क नो श + उ ह = पां ह + उ क नो + श

इसको और शुद्ध करनेके लिये इसे नोषिकाम्ल में घोलकर वाष्पीभूत करते हैं। इस प्रकार शशि-द्विओषिद, श ओ$_2$, बन जाता है जो जलमें रवे जमाने पर शशसाम्ल, उ$_2$ श ओ$_3$ देता है। इस शशसाम्लमें गन्धक द्विओषिद प्रवाहित करनेसे शशिम् लाल चूर्णके रूपमें अवक्षेपित हो जाता है:—

उ$_2$श ओ$_3$ + २ ग ओ$_2$ + उ$_2$ओ = श + २ उ$_2$ग ओ$_4$

(२) थलम्के खनिजोंमेंसे थलम्को प्राप्त करने के लिये खनिजोंको उदहरिकाम्लमें घुलाते हैं और फिर इसमें सैन्धक गन्धित डालते हैं। ऐसा करनेसे थलम् अवक्षेपित हो जाता है। इसे फिर सैन्धक गन्धिद और गन्धकके साथ उबालकर सैन्धक गन्धित द्वारा अवक्षेपित करनेसे शुद्ध थलम् प्राप्त हो सकता है। यह खाकी काला रंगका होता है।

धातुओंके गुण—(१) जिस प्रकार गन्धक कई रूपका पाया जाता है उसी प्रकार शशिम् भी कई प्रकारका मिलता है—(क) जमाहुआ शशिम—यह पिघले हुए शशिम्को शीघ्र ठंडा करनेसे मिलता है। यह अपार दर्शककाला चूर्ण है जिसका घनत्व ४.२८ है। (ख) चूर्ण शशिम्—यह शशिम्के पांशुज श्यामिद घोलमेंसे उदहरिकाम्ल द्वारा अवक्षेपित करने पर मिलता है। यह लाल चूर्ण है जिसका घनत्व ४.२६ है। (ग) रवेदार शशिम्—शशिम्को कर्बनद्वि गन्धिदमें घोलकर बानजावीन द्वारा अवक्षेपित करके यह मिल सकता है। इसका घनत्व ४.४७ है। (घ) धातु शशिम्--उपर्युक्त किसी भी प्रकारके शशिम् को २००°-२२०° तापक्रम पर कुछ समय तक गरम करके यह बन सकता है। शशिम्के भौतिक गुण आरम्भकी सारिणीमें दिये हुए हैं। इसकी वाष्पें रक्तवर्ण की होती हैं।

(२) थलम् भी चूर्ण रूपका जिसका घनत्व ६.०१५ होता है और अष्टतलीय रवेदार जिसका घनत्व ६.३१ होता है पाया जाता है। इसकी वाष्पें सुनहरी होती हैं। यह वायुमें नीली ज्वालासे जलता है और जलकर थल ओषिद, थ ओ$_2$, देता है।

उदिद्—जिस प्रकार गन्धक उदजनसे संयुक्त होकर उदजनगन्धिद, उ$_2$ग, देता है, उसी प्रकार, शशिम् और थलम् भी उदजनसे संयुक्त होकर उदजनशशिद उ$_2$ श, और उदजनथलिद, उ$_2$ थ देते हैं।

(१) बन्दनली में उदजनके साथ शशिम्को गरम करनेसे उदजन शशिद बनता है—

उ$_2$ + श = उ$_2$श

लोह बुरादेको शशिम्के साथ गरम करनेसे लोह शशिद, लोश, बनता है जो उदहरिकाम्लके साथ उदजन शशिद दे देता है—

लो श + २ उ ह = लो ह$_2$ + उ$_2$ श

उदजन शशिद नीरंग जलनेवाली गैस है जिसमें तीक्ष्ण दुर्गन्ध होती है। यह जलमें घुलनशील है। यह घोल अनेक धातु लवणोंके घोलोंके संसर्गसे धातु शशिदोंको अवक्षेपित कर सकता है पर यह स्थायी नहीं है। वायुमें खुला छोड़ने पर शशिम् अवक्षेपित हो जाता है।

(२) दस्तथलिद, या स्फट थलिद पर हलके उदहरिकाम्लका प्रयोग करनेसे उदजन थलिद बनता है। ५०°/० गन्धकाम्ल या स्फुरिकाम्लका −२०° पर थलम् ऋणोदका प्रयोग करके विद्युत् विश्लेषण करनेसे भी यह बन सकता है। इस तापक्रम पर यह द्रव है जिसका क्वथनांक १·८ और द्रवांक—५७° है।

थलम् पांशुजश्यामिदके साथ गलाने पर पांकनोश या पांकनोगके समान कोई यौगिक नहीं देता है, केवल पांशुजथलिद, पां$_2$थ बनता है।

ओषिद—(१) शशिम् ओषजनमें नीली ज्वालासे जलता है और रवेदार शशिओषिद, शओ$_2$, देता है। इसे गन्धक द्विओषिद, ग ओ$_2$, के समान समझना चाहिये पर यह ठोस है। जिस प्रकार गन्धक द्विओषिद जलमें घुलकर गन्धसाम्ल उ$_2$ग ओ$_3$, देता है उसी प्रकार शशि ओषिद से शशसाम्ल, उ$_2$ शओ$_3$ मिलता है। शशिम्को नोषिकाम्लके साथ उबालनेसे भी शशसाम्ल मिलता है। इसके नीरंग सूच्याकार रवे होते हैं। यह गन्धसाम्लके समान द्विभस्मिक है। और दो प्रकारके लवण—पां उ श ओ$_3$, और पां$_2$ श ओ$_3$, देता है।

गन्धक त्रिओषिद, ग ओ$_3$, के समान शशित्रिओषिद, श ओ$_3$, भी होता है। यह त्रिओषिद पीला ठोस पदार्थ है। शशिओषहरिद, श ओ ह$_2$, में शशिम् घोल कर ओषोन द्वारा प्रभावित करनेसे यह बन सकता है। गन्धकाम्ल, उ$_2$ गओ$_4$, के समान शशिकाम्ल, उ$_2$ श ओ$_4$, भी मिलता है। शशिम् को जलमें छितरा कर अथवा शशसाम्लको घोलकर हरिन् द्वारा प्रभावित करनेसे यह अम्ल बनता है—

श + ३ उ$_2$ ओ + ३ ह$_2$ = उ$_2$ श ओ$_4$ + ६उ ह

रजत शशित, र$_2$ श ओ$_3$, को जल और अरुणिन्से प्रभावित करनेसे भी यह बन सकता है।

र$_2$श ओ$_3$ + उ$_2$ ओ + रु$_2$ = २ र स + उ$_2$ श ओ$_4$

इसके घोल को वाष्पीभूत करके ९७·४°/० शशिकाम्लका घोल (घनत्व २·६२७) मिल सकता है जिसको भली प्रकार ठंडा करनेसे शशिकाम्लके रवे मिल सकते हैं जिनका द्रवांक ५८° श है। गन्धकाम्लके समान इसमें भी जल शोषण करनेकी प्रबल शक्ति है और जलमें घोलने पर अत्यन्त ताप देता है।

शशिकाम्ल उदहरिकाम्लके साथ उबालनेपर विभाजित हो जाता है और शशसाम्ल मिलता है।

उ$_2$ श ओ$_4$ + २ उ ह
= उ$_2$ शओ$_3$ + ह$_2$ + उ$_2$ ओ

(२) थलम् वायुमें नीली ज्वालासे जलकर थल द्विओषिद, थओ$_2$ देता है जो जलमें बहुत ही कम घुलनशील है। थलसाम्ल नहीं पाया जाता है पर पांशुज थलित पा$_2$ थ ओ$_3$ के समान लवण पाये जाते हैं।

थलम् धातुको नोषिकाम्ल, उदहरिकाम्ल, और हरिकाम्लके मिश्रणमें घोलकर शून्यमें वाष्पीभूत करनेके उपरान्त फिर नोषिकाम्ल द्वारा अवक्षेपित करनेसे थलिकाम्ल, उ$_2$ थओ$_4$, प्राप्त होता है। यह

निर्बल अम्ल है। थलसाम्ल और थलिकाम्ल की निर्बलतासे यह स्पष्ट है कि थलम्में अधातुओंके बहुत ही है कम गुण हैं।

थलिकाम्लके लवण गन्धेतोंके समान थलेत कहलाते हैं। धातु थलेत थलितोंको शोरेके साथ गलाकर बनाया जा सकता है। पांशुज थलितके क्षारीय घोलमें हरिन् प्रवाहित करनेसे भी यह बन सकता है—

$$पां_2 थओ_3 + ह_2 + 2 पां ओ उ = पां_2 थ ओ_4 + 2 पां ह + उ_2 ओ$$

थलेतोंको उदहरिकाम्लके साथ उबालनेसे थलित मिलते हैं—

$$पां_2 थ ओ_4 + 2 उ ह = पां_2 थ ओ_3 + ह_2 + उ_2 ओ$$

हरिद्—(१) गले हुए शशिम् पर हरिन् प्रवाहित करनेसे शशि द्विहरिद, $श_2 ह_2$, मिलता है जो भूरा द्रव है। जलसे यह विश्लेषित होकर शशसाम्ल देता है—

$$2 श_2 ह_2 + 3 उ_2 ओ = उ_2 श ओ_3 + 3 श + 4 उ ह$$

गरम करने पर यह चतुर्हरिद, $श ह_4$ और शशिम् तत्वमें परिणत हो जाता है।

$$2 श_2 ह_2 = शह_4 + 3 श$$

इस प्रकार द्विहरिदकी अपेक्षा चतुर्हरिद अधिक स्थायी है। शशिद्विओषिद और स्फुर पञ्चहरिदके प्रभावसे भी चतुर्हरिद मिल सकता है। शशिचतुर्हरिद पीला ठोस पदार्थ है।

$$3 श ओ_2 + 3 स्फुह_5 = 3 श ह_4 + स्फ_2 ओ_5 + स्फुओह_3$$

द्विहरिदके समान चतुर्हरिद भी जल द्वारा विश्लेषित होकर शशसाम्ल देता है। शशिद्विओषिद और शशि चतुर्हरिदके प्रभावसे पीला द्रव मिलता है जो शशिओषहरिद, $शओह_2$, का है। इसका क्वथनांक १७६.५° है।

(२) पिघले हुए थलम् पर हरिन् प्रवाहित करनेसे थल द्विहरिद, $थ_2 ह_2$, मिलता है जो रवेदार काला पदार्थ है। वायुके संसर्गसे यह ओषहरिद, $थ ओह_2$ और चतुर्हरिद में परिणत हो जाता है। जल द्वारा इसका उद्विश्लेषण हो जाता है और थलसाम्ल मिलता है—

$$2 थह_2 + 3 उ_2 ओ = थ + उ_2 थ ओ_3 + 4 उह$$

यदि हरिन्की अधिक मात्रा उपयुक्तकी जाय तो चतुर्हरिद, $थ ह_4$, बनता है। यह भी जल द्वारा विश्लेषित होकर थलसाम्ल देता है। यह स्थायी हरिद है।

हरिदोंके अतिरिक्त प्लविद और अरुणिद भी पाये गये हैं जैसे $शप्ल_4$, $शप्ल_3$, $श_2रु_2$, $शरु_4$ और $थप्ल_4$, $थप्ल_3$, $थरु_2$ और $थरु_4$। थलसाम्ल और उदनैलिकाम्ल के संसर्ग द्वारा थलिक नैलिद बनता है—

$$उ_2 थ ओ_3 + 4 उनै = थनै_4 + 3 उ_2ओ।$$

बेतार वाणी सुनना

(यह व्याख्यान परिषद्के वार्षिक अधिवेशनके अवसर पर दिया गया)

मैं जानता था, व्याख्यान सुनते समय आप लोगोंमें से किसी किसीके मनमें ऐसे विचार आयेंगे कि मैं शुद्ध हिन्दी नहीं बोल रहा हूँ और कोई कोई यह कहेंगे कि मैं सही उर्दू नहीं बोल रहा हूँ। मैं इन भाषाओंका पण्डित नहीं हूँ; इसलिये आशा है कि आपके विचारोंके अनुसार जो त्रुटियें पाई जांयगी आप यह समझ

कर कि एक अधपढ़ अपनी बोलीमें बोलनेका प्रयत्न कर रहा है मुझे क्षमा करेंगे।

जो मैं बोल रहा हूँ और आप सुन रहे हैं यह भी बेतार॰बाणी बोलना और सुनना है। आगे चल कर मैं यह बताऊंगा कि यह बेतारबाणी तो हवाकी बेतारबाणी है और जो साधारणतः बेतार बाणीसे समझा जाता है वह वास्तव में आकाश बाणी है।

आजके व्याख्यानके विषयका नाम 'बेतार बाणी सुनना' उपयुक्त नहीं जान पड़ता। मैंने यह नाम इस ही लिये दे दिया कि 'बेतार' का शब्द बहुत प्रचलित है।

डाकसे जो चिट्ठियां आती और भेजी जाती हैं उन्हें 'डाक' के नामसे सूचित करते हैं। यहां वाहकको ही ध्यानमें रखते हुये ऐसा नाम पड़ गया। इसी प्रकार जो समाचार तार द्वारा भेजे जाते अथवा आते हैं उनको 'तार' के नाम से सूचित करते हैं। सभी देशोंमें ऐसा ही होता है। यदि इस ही मर्यादा पर चलें तो जिसे आजकल 'बेतारबाणी' कहा जाता है उसे आकाशबाणी कहा जाना चाहिये क्योंकि यह बाणी आकाश द्वारा ही आती है। जिनके यहां आकाश बाणी सुनने अथवा भेजनेका प्रबन्ध है उनके मकान पर एक तार दिखाई पड़ता है जिसके लिये आकाशी तार का नाम बहुत उपयुक्त है। 'आकाश बाणी' और 'बेतार बाणी' दोनों ही शब्द शायद कुछ दिन चलते रहेंगे परन्तु मेरा विचार है जैसे लोगोंमें इसका ज्ञान बढ़ता जायगा 'आकाश बाणी' शब्दका प्रचार भी बढ़ता जायगा।

अब मैं आप को बतलाऊंगा कि बाणी किसे कहते हैं और इसका सुनना क्या है। यह एक इकतारा (इकतारा दिखाकर) है, इसके दोनों पर्दों के बीच के तार को मैं अंगुलीसे दबाता हूँ। अंगुली हटाते ही यह तार ऊपर नीचे हिलने अथवा झूलने लगेगा और आपको एक स्वर सुनाई देगा। इस तार की लम्बाई बढ़ानेसे स्वर नीचा होता जायगा और इस तारकी लम्बाई घटानेसे स्वर ऊँचा होता जायगा यदि यह लम्बाई इतनी अधिक हो कि तार के झोटों की संख्या प्रति सैकिन्ड ३० के लगभग हो तो यदि तार झूलता भी हो तो आप को कोई स्वर सुनाई न देगा। इसी प्रकार यदि इसकी लम्बाई इतनी कम हो कि झोटों की संख्या ४०,००० फी सैकिन्ड हो तो फिर आप को कोई स्वर नहीं सुनाई देगा।(इतना ऊंचा स्वर पैदा करनेके लिए एक विशेष यन्त्रकी आवश्यकता होती है यहां केवल उदाहरणके लिए ऐसा कहा गया है) अर्थात् ३० और ४०००० के बीचके झोटोंकी संख्या आपको स्वरके रूप में मालूम होती है और झूलनेवाली चीजको बजनेवाली चीजके नामसे सूचित करते हैं। अब यह स्वर आपके कान तक कैसे पहुँचता है। वैज्ञानकोंका मत है कि झूलनेवाली चीज़ हवामें लहरें पैदाकर देती हैं और जब ये लहरें आपके कान के पर्देपर पड़ती हैं तो आपके कान का पर्दा हिलने अथवा झूलने लगता है। इसके झोटों की संख्या प्रति सैकिन्ड उतनीही होती है जितनी बजनेवाली चीज के। पर्देके झूलनेसे आपको बजनेवाली चीजके झोटोंकी संख्या अथवा स्वर का ज्ञान हो जाता है। अब मैं आपको कुछ तार बाणीका हाल बताना चाहता हूँ। जो यन्त्र आप देखते हैं जिसे चित्रमें 'भ' से सूचित किया है इसे तार-

चित्र १
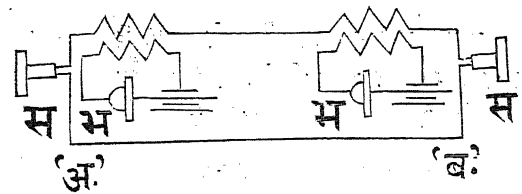
[भ—भेजने वाला यंत्र]
[स—सुनने वाला यंत्र]

बाणी प्रेषक (भेजनेवाला) कहते हैं। इसके एक तरफ पर्दा है और एक बाटरी इसमें बिजलीकी धारा बहाती है। जैसे यह पर्दा हिलता है

बिजलीकी धाराकम होती और बढ़ती है। इस ही के चक्करमें एक वेठन है। परदेके हिलनेसे वेठनमें भी धारा घटती बढ़ती है। फेरेडेने १८३१ में यह देखा कि यदि दो वेठनें पास पास रखी हों और यदि एकमें धारा घटे अथवा बढ़े तो दूसरीमें भी क्षणमात्रके लिये धारा उत्पन्न हो जाती है, बढ़ने पर यह धारा एक दिशा और घटने पर दूसरी दिशामें बहती है। ऐसी क्षणिक धारा को उपपादित धारा कहते हैं। जिस वेठनमें धारा घटती बढ़ती है उसे प्रधान बेठन और दूसरीको उप वेठन कहते हैं। चित्रमें 'भ'के साथ जुड़ी हुई वेठन प्रधान वेठन हुई और 'स' सुनने वालेके साथमें जुड़ी हुई बेठन को उप वेठन कहेंगे। इस उप बेठन के साथ तारवाणी ग्राहक 'स' जुड़ा हुआ है जब क्षणिक धारा उत्पन्न होती है तो इस ग्राहकका पर्दा हिलने अथवा झूलने लगता है इसके झोटों की संख्या वही होती है जो प्रेषकके पर्दे की होती है इसलिये जैसा स्वर प्रेषकके पर्दे पर पड़ता वैसा ही स्वर ग्राहकके पर्दे से निकलने लगता है और ग्राहकके सामने कान लानेसे उस ही स्वरका अनुभव होता है अथवा जो बोली प्रेषकके सामने बोली जाती है वही बोली ग्राहकका पर्दा पैदा कर देता है और कान सुन लेता है। प्रेषकके चक्करका तार कितना ही लम्बा हो सकता है और इस प्रकार तार द्वारा बोली कितनी ही दूर जा सकती है। यही तार पर बोलना और सुनना अथवा तार बाणी भेजना और सुनना हुआ। इससे तुलनाके विचारसे वेतारका शब्द निकला। ग्राहकमें आवाज बहुत धीमी रहती है लोग कान लगाकर ही सुन पाते हैं त्रयोद-कपाट द्वारा इसको बहुत तीव्र कर सकते हैं। अब हम इस त्र्योद कपाटका वर्णन करेंगे। इस त्र्योद-कपाट में तीन चीजें होती है; एक तन्तु दूसरी जाली, तीसरी पट्टी जिसको सदैव बाट्रीके धन सिरेसे जोड़ते हैं इस लिए धनोद कहते हैं क्योंकि हम उस सिरेको जिसमें होकर बिजलीकी धारा किसी यंत्रके भीतर जाती या बाहर आती है बिज-लोद कहते हैं।

इन तीनों को शीशेके कुमकुमे में बन्द करके उसमें से हवा बिल्कुल निकाल देते हैं। तन्तु के दोनों सिरे, जालीका एक सिरा और धनोदका एक सिरा चार चिरी हुई खूंटियोंसे कुमकुमे के बाहिर जुड़े रहते हैं। तन्तुके दोनों सिरों को एक बाटरी के दोनों सिरोंसे जोड़ते हैं जिससे तन्तुमें बिजलीकी धारा बहने लगती है और तन्तु गरम हो जाता है। उस समय उसमें से ऋण विद्युतके परमाणु जिने ऋणाणु कहते हैं निक-लने लगते हैं। अब यदि एक बाटरीके समूहका धन सिरा धनोदसे और ऋण सिरा तन्तुसे जोड़ें तो धनोद चक्करमें धारा बहने लगती है।

इसे कपाट इसलिये कहते है कि यदि तन्तुसे उलटी सीधी धारा जनकके एक सिरेसे और जिसे धनोद कहा है उसे दूसरे सिरेसे जोड़ दें तो धनोद चक्करमें धारा एकही दिशामें बहती है। जिस कपाटमें यह जाली नहीं थी और जो इस त्र्योद कपाटसे पहिले बना था जिसे उलटी सीधी

चित्र सं० २
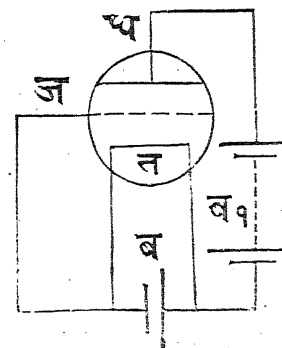
और 'ध' उसका धनोद। 'ब' तंतु बाटरी और ब१ धनोद बाटरी इसचित्रमें. यह दिखलाया है कि तंतु के साथ जाली किस प्रकार जोड़ी जाती है। ['त' त्र्योदकपाटका तंतु है 'ज' उसकी जाली]

धारा जनक से जोड़ कर एकही दिशामें धारा भेजनेके काममें लाते थे द्विओद कहते थे।

यदि जालीको तन्तुसे एक तार द्वारा जोड़ दें तो जालीके चक्करमें भी धारा बहने लगती है अब हम जालीको तन्तुसे केवल एक तारसे न जोड़ कर उस बेठनसे जोड़ें जो तारबाणी ग्राहक से जुड़ी

चित्र सं० ३
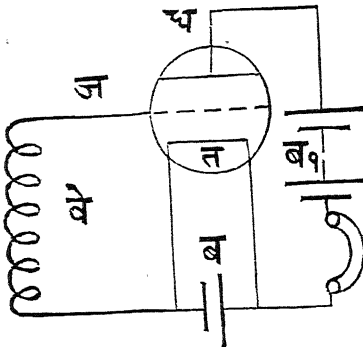
[इस चित्रमें यह दिलाया है कि वाणी ग्रहकको कपाटके धनोद चक्करमें और उसके साथके बेठनको कपाटके जाली चक्करमें किस प्रकार जोड़ना चाहिए यहां 'वे' बेठन है और धनोद चक्करमें बाणी ग्रहक जुडा हुआ है।]

हुई थी और धनोद चक्करमें जोरसे बोलने वालेको जोड़ दें तो जब कभी प्रेषकके सामने बोलनेसे धाराकी घटती और वृद्धि होगी तो जोरसे बोलने वाले में जो धारा जाती है उसमें कहीं अधिक ८ या १० गुनी कमी वेशी होगी जिसका नतीजा यह होगा कि जोरसे बोलने वाला बोलने लगेगा और जो आवाज़ कि पहिले तार बाणी ग्राहकके पास कान लाने से सुनाई पड़ती थी दूर तक सुनाई पड़ेगी। कभी कभी जालीके चक्करमें अलग धारा बहाने की आवश्यकता होती है बेठन के साथ साथ जालीके चक्करमें भी बाटरियां जोड़देते हैं। उनही बाटरियोंको जालीकी अवस्था बदलने वाली बाटरियां कहते हैं।

चित्र सं० ४
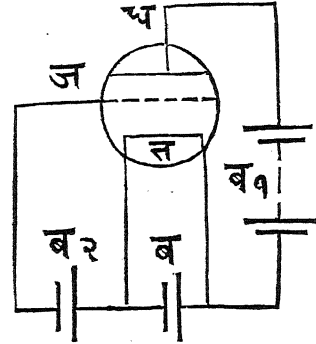
[इस चित्रमें यह दिखलाया है कि यदि जाली की अवस्था तंतुसे भिन्न रखनेकी अवश्यकता हो तो जाली तंतु चक्करमें बाटरी 'ब२' कैसे जोडना चाहिए 'ब२' जालीकी अवस्था बदलने वाली बाटरी कहलाती है।]

* जिस प्रयोग द्वारा फैरेडेने अपना आविष्कार किया था वह इस प्रकार किया जा सकता है। एक ऐसी तांबेके तारकी बेठन लीजिए कि जिसमें लोहेके तारों का लट्ठा लगा हो अथवा एक विद्युत चुम्बक लीजिए इस बेठनका सिरा एक चक्कर भंजकके सिरेसे जोड़ दीजिए बेठनका दूसरा सिरा बाटरीके एक सिरेसे और भंकजका दूसरा सिरा बाटरी के दूसरे सिरेसे जोड़कर बाटरीका चक्कर पूरा कर दीजिए। एक दूसरी बेठन लेकर उसके दोनों सिरोंको एक बिजलीके लम्प (छोटा) के दोनों सिरोंसे जोड़ दीजिए। जैसेही चक्कर भंजक अपना काम शुरू करेगा अथवा चक्करको जोड़ने और तोड़ने लगेगा विद्युत चुम्बकमें धारा बहने और बन्द होने लगेगी लम्पसे जुड़े हुए बेठनमें उत्पादित धारा-धारा बन्द होनेपर एक दिशामें और फिर धारा प्रवाह आरंभ होने पर दूसरी दिशामें बहने लगेगी और लैम्प जलने लगेगी। यहां प्रधान

* यहप्रयोग कर कर दिखलाया गया था.

और उप बेठनें पास पास हैं। १८८३ में मैक्सवेलने यह कहा कि प्रधान चक्करमें धारा कम और बेश होनेसे जो उप चक्करमें क्षणिक उत्पादित धारा उत्पन्न होती है उसके लिये इन दोनों बेठनोंका पास पास होना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रधान चक्करमें जब धारा घटती बढ़ती है तो आकाशमें लहरें उत्पन्न हो जाती हैं जो १८६,००० मील प्रति सैकिण्डके वेगसे चलती हैं। यदि दूसरी बेठन पर यह लहरें पड़ें तो उसमें उलटी सीधी धारा उत्पन्न हो जाती है केवल इतनाही भेद है कि वह उतनेही समयके बाद उत्पन्न होगी जितना समय उनको उतना फासला चलनेमें लगेगा। यदि बेठनोंमें १८६००० मीलका फासला हो तो धारा १ सैकिण्ड के बाद उत्पन्न होगी। यहां यह बात ध्यानमें रखना जरूरी है कि जैसे जैसे फासला बढ़ाते जायेंगे धारायें दुर्बल होती जाँयगी। जैसे मैं बोलता हूँ जो लोग मेरे पास हैं उन्हें मेरी आवाज़ जोरकी मालूम होती है परन्तु जो लोग दूर हैं उन्हें मेरी आवाज धीमी मालूम होती है और कुछ फासले पर तो मेरी बोली सुनाई देगी ही नहीं। मैक्सवेल के सिद्धान्त की जांच हर्ट्जने की और प्रयोगों द्वारा उसकी सत्यताको स्थापित कर दिया। इसही समय बिना तार अर्थात् आकाशी लहरों द्वारा समाचार भेजने का बीज पड़ गया जो मारकोनी, हर्ट्ज के शिष्य के प्रयत्नों और प्रयोगोंसे फूला और फला और आज लोगोंको चकित कर रहा है। मारकोनीने यह दिखाया कि आकाशमें जो लहरें आकाशी तारमें (वह तार जिसका एक सिरा हवा और दूसरा धरतीमें हो) उलटी सीधी धारा बहानेसे उत्पन्न होती हैं वह बहुत दूर तक जाती हैं।

इसका यह मतलब हुआ कि वाणीकी लहरें जो हवा में होती हैं वे कम दूर जाती हैं परन्तु यदि उनहीको आकाशकी लहरोंमें बदलदें तो वे अधिक दूर तक जाने लगती हैं। यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि यह बाणीस्वर वाली आकाश-की लहरें सैकड़ों मील नहीं जा सकतीं यदि आकाशकी लहरें सैकड़ों मील भेजना हो तो उनका स्वर बहुत ऊँचा होना चाहिये ऐसे ऊँचे स्वर को बखेर स्वर कहने लगगये हैं और यह स्वर सुनाई नहीं दे सकता क्योंकि वह श्रवण स्वरोंकी हदके बाहिर है। ऐसा ऊँचा स्वर तार बाणी प्रेषक द्वारा

चित्र सं० ५
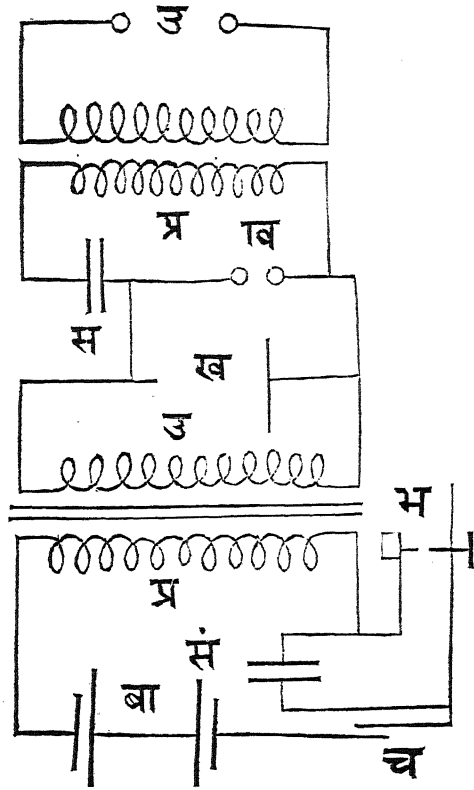
[इस चित्रमें निचला बेठनोंका युगल रुम कार्फकी बेठन है 'प्र' इसका प्रधान चक्कर है जिसमें 'च' चाबी है जिससे चक्कर खोला और बंद किया जासकता है 'बा' बाटरियां हैं, 'भ' भंजक है जिससे 'सं' संग्राहक हार बद्ध है इसके उप चक्कर 'उ' में 'ख' तडित खंड है। उपरला बेठनोंका युगल टेसला बेठन है इसके प्रधान चक्कर 'प्र' में 'ख' तडित खंड और 'स' संग्राहक है।]

उत्पन्न नहीं हो सकता यह झूलन चक्कर द्वारा उत्पन्न किया जाता है । इस चक्करमें एक बेठन होती है और एक संग्राहक होता है। संग्राहकके दोनों सिरे बेठनसे जुड़े होते हैं । संग्राहकमें बिजली उचित रीति से भर दी जाती है और जब यह खाली होने लगता है तब बेठनमें उलटी सीधी धारा जिसे झूलती धारा कहते हैं उत्पन्न होती है। इसके झोटोंकी संख्या उचित संग्राहक और उचित्त बेठन लेकर कई लाख प्रति सैकिण्ड तक कर सकते हैं । अब मैं आपको झूलती धारा उत्पन्न करनेकी विधि बतलाता हूं । यह रुमकॉर्फकी बेठन है (वह यंत्र दिखाकर जिसका वर्णन चित्र ५ में है) यह भी दो बेठनोंका युगल है इस युगलके प्रधान चक्करमें भञ्जक लगा हुआ है जो अपने आप चक्करको तोड़ता और जोड़ता है जिससे अपने आप धारा बहने और बन्द होने लगती है और अपने आप उपचक्करमें उपपादित धारा पैदा होती है इसके उप चक्करमें सैकड़ों लपेट हैं जिस कारण उपपादित बिजली चलाने वाली शक्ति बहुत बड़ी उत्पन्न होती है इसके प्रधान चक्करमें मैंने पांचही बाटरियां जोड़ी हैं और इनकी शक्ति इतनी कम है कि यह आपकी घरोंकी बत्तियाँ भी नहीं जला सकती परन्तु इसके उपचक्करमें इतनी बड़ी शक्ति पैदा होती है कि हवामें होकर भी धारा बहती है और चड़ चड़ पड़ पड़की आवाज निकलती है और साथ साथ प्रकाश भी निकलता है । चित्रमें ऊपर की ओर एक दूसरा बेठनोंका युगल दिखलाया है जिसे टेसला बेठन कहते हैं इसके भी प्रधान चक्करमें कोई २० लपेटे हैं और उपचक्रमें बीसियों लपेटें हैं इसके प्रधान चक्करके साथ उचित रीतिसे संग्राहक (संग्राहक दो बराबर वाली लकीरोंसे सूचित किया है) जुड़ा हुआ है और इस चक्रमें एक खंड (घुंडियोंके बीचका खंड) है जिसे तड़ित खंड कहते हैं। इस संग्राहकके सिरों को रुमकोर्फके उप चक्करसे जोड़ दिया है जिससे जब रुमकोर्फकी बेठन चलने लगेगी संग्राहकमें बिजली भरने लगेगी और एक अवस्थामें चलकर तड़ितखंड़में से धारा बह निकलेगी उस समय बेठनमें झूलती धारा बहने लगेगी और उपचक्करमें भी बिजली चलाने वाली शक्ति पैदा होने लगेगी यदि एक नूतनम नली लाई जावेगी नली चमकने लगेगी । परन्तु इतनी बड़ी शक्ति होनेपर भी एक सिरेको हाथसे छुआ जा सकता है कोई हानि नहीं पहुँचती । जब झूलती धाराके झोटोंकी संख्या लाखों पर पहुँचती है तब जानको कोई जोखिम नहीं रहती, नहीं तो यह किसने न सुना होगा कि इस शक्तिसे कहीं कम शक्ति वाले तारको छूने से लोगोंकी मृत्यु हो जाती है ।

यदि इसही प्रकार रुमकोर्फकी बेठनका एक सिरा छू लिया जावे जिसके उपचक्रमें कहीं कम चलाने वाली शक्ति है तो बड़ी दुर्घटना का सामना हो जाय । इसी टेसला बेठनके उपचक्करको यदि आकाशीका रूप देदें तो चारों ओर आकाश मण्डल में लहरें चलने लगेंगी जब तक झोटे होते जाँयगे लहरें चलती रहेंगी लगातार झोटे होनेसे लगातार लहर चलेगी ऐसा ही प्रत्येक बखेर स्थलमें किया जाता है। आजकलकी रीति इससे कुछ भिन्न अवश्य है । ऐसी झूलती धारा उत्पन्न करने में उद्योत कपाटकी ही सहायता ली जाती है परन्तु हमें इस समय इससे कोई मतलब नहीं हमें केवल बखेर स्वरकी लहरोंसे मतलब है प्रत्येक बखेर स्थलके लिये यह लहर एक नियत लम्बाईकी होती है और इसही को वाहक लहर कहते हैं । इसको वाहक लहर इस लिये कहते हैं कि वाणीकी लहर को यह बहुत दूर ले जाती है अथवा यह कहिये कि वाणी आकाश लहरोंके रूपमें इनहीं लहरोंपर सवार होकर पहुँचती है। जब आकाशीपर इन झूलती धाराओंके साथ साथ तार वाणी क्षेपकके चक्करकी घटती बढ़ती धारा एक बेठनको उचित रीतिसे युक्तकर डाल देते हैं तो यह लगातार वाहक लहर समूहोंमें भंजित हो जाती है । जब यह

* कलकत्तेके बखेर स्थलकी लहर लम्बाई ३७० ४मीटर है और बम्बईके बखेर स्थलकी लहर लम्बाई ३५७.१ मीटर है।

आकाशी तार पर पड़ते हैं तो उसमें धारा उत्पन्न होजाती है और आकाशीसे बेठन द्वारा युक्त हुए किसी त्रयोद कपाटके जाली चक्कर में यह धारायें बहने लगती हैं। यह त्रयोद कपाट

चित्र सं० ६
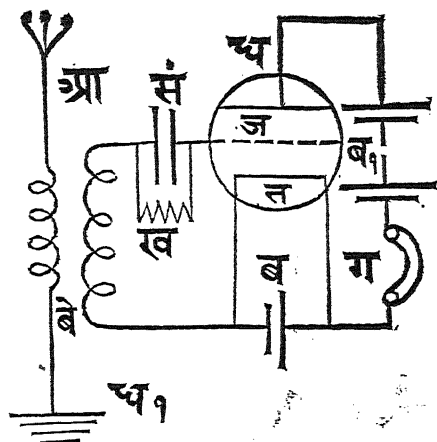
['आ' आकाशीतार है जिसका ऊपरी सिरा हवामें है और निचला सिरा धरतीमें। 'बे' बेठनें हैं 'स' एक नियत समाई वला संग्राहक और 'ख' उसको खाली करने वाली बाधा, 'ग' वाणीग्रहक 'ध१' धरती। इसमें और चित्र ३ में इतनाही अंतर है कि इसमेंजाली चक्करमें बेठन के साथ एक सूचक संग्राहक 'सं' और उसके खाली करने वाली बाधा जोड़ दी गयी है चित्रमें बाटरीको छोटी बड़ी लकीरोंसे और संग्राहकको बराबर लम्बी लकीरों से सूचित करते हैं।]

का गुण है कि वह अपने जाली चक्करमें एक दिशामें धारा अधिक और दूसरीमें कम जाने देता है जिस कारण जाली चक्करमें जुड़ा हुआ संग्राहक समूहके निकलजाने पर भर जाता है जिससे जाली की अवस्था बदल जाती है जालीकी अवस्था बदलते ही धनोद चक्करकी धारा बदलती है और इसमें जुड़े हुए तार वाणी ग्राहकमें खट निकलती है जाली चक्करमें ऐसा प्रबन्ध रहता है कि संग्राहक खाली हो जाता है और फिर दूसरे समूहके आने पर भरनेके लिये तैयार हो जाता है। इसही तरह प्रत्येक समूहके आने से एक एक खट होती है इन खटोंकी संख्या प्रति सैकिण्ड वाणीके स्वरके बराबर होती है। इसही कारण वाणी ग्राहकके पास कान लानेसे वाणी सुनाई देने लगती है।

वाणीको उचित रीतिसे कपाटों द्वारा प्रबल कर जोरसे बोलने वाले में दे देते हैं तो बहुतसे लोगों को एक साथ सुनाई देने लगती है। यह तो हुआ बखेरका पकड़ना। अब यदि कई स्थलों से बखेर एक साथ हो जैसा कि होता रहता है तो किसी एक स्थल की बखेर को कैसे पकड़ेंगे अथवा यह कहिये कि स्थलों की छांट कैसे होती है। वह होती है अनुनाद के सिद्धान्त से। वह सिद्धान्त यह है कि यदि दो बजने वाली चीजों का स्वर एकही हो तो यदि उनमेंसे एक बजने लगे तो दूसरी आप बड़े जोरसे बजने लगती है। इसकी जांच इस प्रकारकी जा सकती है। इकतारा लेकर उसके पर्दों के बीचमें तारकी ऐसी लम्बाई रखिए कि इस तार के हिलनेसे जो स्वर पैदा हो वह एक दुशाखे के स्वर के बराबर हो। दुशाखे को बजा कर इस इकतारे पर रख दीजिए रखते ही तार जोर से हिलने लगेगा। यदि इस तारकी लम्बाई बदल दी जावे तो यह तार बिल्कुल नहीं हिलेगा और जब यह तार और दो शाखा साथ साथ बजाये जावेंगे तो घों घों शब्द सुननेमें आवेगा फिर तारकी लम्बाई को बदलकर दोनों-का स्वर एक करते ही घों घों बन्द हो जावेगी और आपको एक ही स्वर सुनाई देगा। सितार और सारंगी बजाने वाले अपने बाजों को इसही प्रकार मिलाते हैं और हम भी अपने आपको किसी बखेर स्थलसे इसही प्रकार मिलायेंगे। जाली चक्करकी बेठन के आर पार एक बदलने वाली समाईका संग्राहक लगा दिया जाता है। जिससे कि झूलन चक्कर बन गया। यदि इस झूलन चक्करका स्वर

आने वाली लहरोंके स्वरके बराबर होगा तो बड़ी प्रबल धारा जाली चक्करमें बहने लगेगी और

चित्र सं० ७
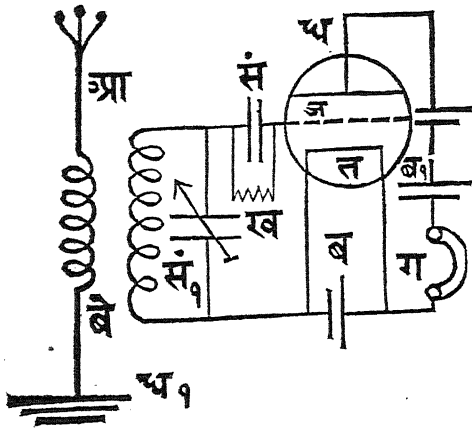
[इस चित्रमें जाली वाली बेठनके आर पार एक बदलने वाली समाईका संग्रह 'सं₁' लगा दिया गया है बेठन और संग्राहक मिल कर एक झूलन चक्कर बनालेते हैं।]

दूसरे स्वर की लहरोंका इसपर कोई असर नहीं होगा। इसको मिलानेके लिये इसही चक्करमें झूलती धारा उत्पन्न करनी चाहिये। यह कपाटके धनोद चक्करमें बेठन और बदलने वाली समाईके संग्राहक को उचित रीतिसे जोड़ देनेसे हो जाता है। धनोद चक्करके संग्राहककी समाई को एक नियत मानकी करनेसे झूलती धारा उत्पन्न होने लगती है यदि समाई इस मानसे कम हो तो यह धारा उत्पन्न होहीगी नहीं और इससे अधिक होने पर धारा उत्पन्न होती रहेगी और बढ़ाते जानेसे झोटोंकी संख्या प्रति सेकंड कम होती जावेगी अर्थात स्वर गिरता जावेगा। संग्राहक की समाईको इस मान से अधिक रखकर झूलती धारा उत्पन्न करते हैं और जब तक इनका स्वर आने वाली लहरके स्वर-से भिन्न रहता है तब तक एक सीटी सुनाई देती है जिसे बाहक लहर सीटी कहते हैं और जैसे जैसे स्वर धनोद और जाली वाली समाइयोंको बदल कर मिलाते हैं और बराबर लाते हैं सीटी मोटी

चित्र सं० ८
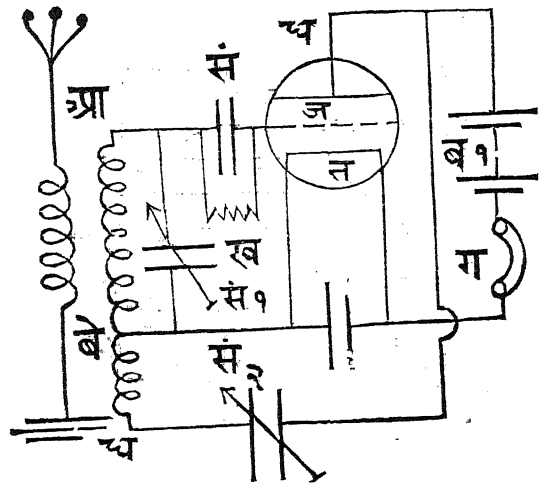
["आ' आकाशीतार जिसका एक सिरा हवामें और दूसरा धर्ती 'ध' में 'बे' बेठनें हैं। 'सं' सूचक संग्राहक नियत समाई वाला। 'ख' इस संग्राहकको खाली कर ने वाली बाधा। 'सं₁' मिला ने वाला संग्राहक जिसकी सकाई बदली जा सकती है। सं₂ बदलने वाली समाईका संग्राहक जो झूलने वाला संग्राहक कहलाता है 'त' श्योद कपाटका तंतु 'ज' उसकी जाली और ध उसका धनोद 'ब₁' धनोद बाटरी 'ग' बाणी ग्राहक।]

होती जाती है जब बहुत मोटी हो जाती है धनोद-चक्करकी समाई बदलकर झुलाना बन्द कर देते हैं। और जाली वाले संग्राहक की समाई बदलते रहते हैं जब तक बाणी जोरसे सुनाई न दे। इस प्रकार आपने देखा कि बाणी ग्राहकमें एक मिलाने वाला संग्राहक रहता है और एक झुलाने वाला संग्राहक जिनकी समाईयां बाहिर से ही बदली जा सकती हैं और इनकी समाई बदल बदलकर हर एक बखेर स्थल की बखेर को सुनते हैं इन बखेर ग्राहकों का नाम कपाटों की संख्या

पर दिया जाता है एक कपाट-ग्राहक दो कपाट ग्राहक इत्यादि। बखेर स्थलके करीब होनेसे एक कपाट वाले ग्राहकसे काम चल जाता है परन्तु जैसे जैसे दूर होते जाते हैं वाणी प्रबल करनेके लिये कपाटोंकी संख्या बढ़ाना जरूरी हो जाता है। कई कपाट काममें लानेसे उठाऊ आकाशी से ही काम चल जाता है। बहुधा उठाऊ आकाशी के साथ आठ कपाट वाले ग्राहक की आवश्यकता होती है। एक बार बखेर सुननेमें सुनते समय आपके चित्तमें यह विचार अवश्य आयगा कि यदि कोई बात फैलाना हो और देशमें बहुतसे ग्राहक हों तो वह बात तुरन्त फैल जा सकती है अन्य देशोंमें ऐसा ही होता है। अब मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ कि इतनी देर आप मुझे शान्ति पूर्वक सुनते रहे और विज्ञान परिषद्का भी बड़ा ऋणी हूँ कि जिसने आपके सामने इस विषय पर व्याख्यान देनेका अवसर दिया।

समालोचना

प्रकृति—सचित्र वैज्ञानिक द्वि-मासिक पत्रिका (बंगाली भाषा)—सम्पादक श्रीसत्याचरण लाहा, प्रकाशक प्रकृति आफिस ५० कैलाश बोस स्ट्रीट, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य ४) और प्रति संख्या ॥॰) छपाई, कागज़ अत्युत्तम।

वंग भाषामें यह सुन्दर वैज्ञानिक पत्रिका ५ वर्ष से प्रकाशित हो रही है। इसके प्रत्येक अङ्कमें ज्योतिष, भौतिक विज्ञान, रसायन, वनस्पति तथा जीव-विज्ञान सम्बन्धी उपयोगी और हृदय ग्राह्य लेख प्रकाशित होते रहते हैं, जो स्पष्ट एवं सरल भाषामें लिखे जाते हैं। यदि समस्त भारतीय भाषाओंमें इस प्रकारकी वैज्ञानिक पत्रिकायें निकलती रहें और उनमें पारस्परिक सहानुभूति एवं सहयोग भी हो तो वैज्ञानिक साहित्यकी उन्नति शीघ्र हो सकती है। जहां तक हमारा विचार है, इस समय भारतीय भाषामें तीन पत्रिकायें ही निकलतीं है। एक तो 'विज्ञान' है जो सबसे पुरानी हिन्दी मासिक पत्रिका है, दूसरी यह वंग भाषाकी द्वय मासिक प्रकृति जो लगभग ५ वर्षसे प्रकाशित हो रही है और तीसरा उर्दूका हैदराबादसे निकलने वाला सायंस जो त्रयमासिक है और अभी नया निकलना आरंभ हुआ है। यदि गुजराती और मराठी भाषाओंमें भी इसी प्रकारकी पत्रिकायें निकलने लगें तो बहुत ही अच्छा हो। हमारी यही शुभाकांक्षा है कि वंग भाषाकी यह प्रकृति पत्रिका उत्तरोत्तर वृद्धि करती जाय। इस पत्रिकाकी छपाई कागज एवं चित्र बहुत सुन्दर हैं। सम्पादक महोदयको अवश्य इस कार्य्यमें विशेष परिश्रम करना पड़ता होगा। हम उन्हें इसके लिये बधाई देते हैं।

श्रीकृष्ण—मासिक पत्रिका-संपादक श्री रूपनारायण पांडेय वार्षिक मूल्य ४), प्रति संख्या ।=) पता—शारद प्रसाद, मंत्री, 'श्रीकृष्ण', गया।

पं० रूपनारायण पांडेयजी सिद्धहस्त सम्पादक हैं। आप लखनऊ रहते हुए इस गयासे प्रकाशित पत्रिका का सम्पादन करनेके लिये नियुक्त हुए हैं। इस पत्रिका मार्गशीर्षका अंक हमारे पास समालोचनार्थ भेजा गया है। पत्रिकाके संचालक राजा जगन्नाथ प्रसाद सिंह 'किंकर' हैं। इसमें दीनजी की कविता, रामदास गौड़जी का भावमय लेख, लोचन प्रसाद पांडेयजीका खोज सम्बन्धी पांडित्य पूर्ण वर्णन तथा शिवनन्दन सहाय, लक्ष्मीधर वाजपेयी, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि धुरंधरोंके लेख हैं। इस प्रकार पत्रिका होनहार प्रतीत होती है।

—सत्यप्रकाश

सूर्य-सिद्धान्त

(ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी०, एल० टी० विशारद)

गतांकसे आगे

प = क्षितिज का पच्छिम बिन्दु

द = " का दक्षिण विन्दु

पद = पच्छिम विन्दुसे दक्षिण विन्दु तकका क्षितिज का चतुर्थांश

ख = खस्वस्तिक

र रि = सूर्यके अहोरात्र वृत्तका खंड जो याम्योत्तर वृत्त और पच्छिम क्षितिजके बीचमें है जब कि सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होती है।

रा री = सूर्यके अहोरात्रवृत्त का खंड जब क्रान्ति दक्षिण हो।

रि, री = पच्छिम क्षितिजके विन्दु जहां सूर्य अस्त होता है।

च चा = चन्द्रमाके अहोरात्र वृत्तका खंड जो याम्योत्तर वृत्त और पच्छिम क्षितिजके बीचमें है।

विप = विषुवद्वृत्त का चतुर्थांश जो याम्योत्तरवृत्त और क्षितिजके बीच है।

श = सूर्यास्तकालका चन्द्रमाका स्थान जब कि यह याम्योत्तरवृत्तसे पच्छिम होता है।

शक = चन्द्रमासे क्षितिज तल पर लम्ब या चंद्र-शंकु या कोटि।

शरि वा शरी = सूर्यसे चन्द्रमाका रेखात्मक अंतर या कर्ण।

करि या करी = भुज; पट और चाठ सूर्यके अहोरात्र वृत्त पर लम्ब हैं।

इस चित्रमें याम्योत्तर-वृत्तके तल खदप पर क्षितिजके ऊपर के खगोलका वह अंश दिखलाया गया है जो पच्छिम क्षितिज के सूर्यास्त विन्दुसे लेकर दक्षिण विन्दु तक फैला हुआ है। इसी लिए चन्द्रमाका स्थान श याम्योत्तर वृत्तसे पच्छिम होते हुए भी याम्योत्तर वृत्तपर ही जान पड़ता है और चन्द्रमाके शंकु, भुज, कर्ण याम्योत्तर-वृत्तके तल पर देख पड़ते हैं। सूर्य और चन्द्रमाके अहोरात्रवृत्त तथा विषुवद्वृत्तका चतुर्थांश भी याम्योत्तरवृत्त के ही तल पर दिखलाये गये हैं। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि पद क्षितिजके दक्षिणार्ध और याम्योत्तरवृत्त की छेद रेखा (projection) है र रि और च चा इष्ट कालके सूर्य और चन्द्रमाके अहोरात्रवृत्त हैं। रा री भी सूर्यका अहोरात्रवृत्त है जब क्रान्ति दक्षिण होती है। इसलिए विर सूर्य की उत्तर क्रान्ति, विच चन्द्रमा की दक्षिण क्रान्ति और विरा सूर्यकी दक्षिण क्रान्ति है। खवि इष्ट स्थानका अक्षांश और विद लम्बांश है। अहोरात्र वृत्तों और क्षितिजके बीचके कोण भी लम्बांशके समान हैं।

चित्रसे प्रकट है कि चन्द्रकर्ण $शरि^2 = शक^2 + करि^2$

इसमें शक इष्टकालिक चन्द्रमाका शंकु है जिसकी गणना चन्द्रमाके नतकालसे त्रिप्रश्नाधिकार के पृष्ठ ४२७ के सूत्र(क) अथवा पृष्ठ ४३१ के सूत्र (ग) के अनुसार सहज ही जाना जा सकता है और करि चंद्रमाका भुज है जिसको जाननेकी रीति ऊपरके ढाई श्लोकोंमें बतलायी गयी है।

करि=रिचा+चाक, जिसमें रिचा सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियोंके अन्तर पर आश्रित है और चाक चन्द्रमाके उन्नतांश पर।

समकोण त्रिभुज चाठरि में भारतीय रीतिके अनुसार,

$$\frac{\text{चाठ}}{\text{ज्या चारिठ}} = \frac{\text{चारि}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\therefore \text{चारि} = \frac{\text{चाठ} \times \text{त्रिज्या}}{\text{ज्या चारिठ}}$$

परन्तु चाठ = चाड + ड ठ = चन्द्रक्रान्तिज्या + सूर्यक्रान्ति· ज्या और ज्या चारिठ = लम्बज्या

$$\therefore \text{चारि} = \frac{(\text{चंद्रक्रान्तिज्या} + \text{सूर्यक्रान्तिज्या})\ \text{त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

इसी प्रकार समकोण त्रिभुज शकचा में

$$\frac{\text{चाक}}{\text{ज्या चाशक}} = \frac{\text{शक}}{\text{ज्या शचाक}}$$

परन्तु कोण शचाक = लम्बांश और कोण चाशक लम्बांश का पूरक है इसलिए यह अक्षांशके समान हुआ और शक चंद्रमाका शंकु है इस लिए,

$$\text{चाक} = \frac{\text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

यहां चाक और चारि के मान कलाओं में है क्योंकि भारतीय रीतिसे ज्याके मान कलाओंमें होते हैं। परन्तु परिलेख के लिए नाप अंगुलोंमें की जाती है इसलिए इसको अंगुलोंमें बदलनेके लिए यह मान लेना होगा कि चन्द्रमाका शंकु शक १२ अंगुल है और इसका तात्कालिक अंगुलात्मक छायाकर्ण त्रिज्या अर्थात् ३४३८ के समान है। यदि मान लिया जाय कि चारि और चाक के अंगुलात्मक मान क्रमानुसार त और थ हैं तो नीचे लिखे तीन अनुपात सिद्ध होते हैं—

$$\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}} = \frac{\text{शक}}{१२} = \frac{\text{चारि}}{\text{त}} = \frac{\text{चाक}}{\text{थ}}$$

$$\therefore \text{त} = \frac{१२ \times \text{चारि}}{\text{शक}} = \frac{१२ \times \text{चारि} \times \text{छायाकर्ण}}{१२ \times \text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{१२ \times (\text{चंद्रक्रांतिज्या} + \text{सूर्यक्रांतिज्या})\text{त्रिज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{१२ \times \text{त्रिज्या} \times \text{लम्बज्या}}$$

$$= \frac{\text{छायाकर्ण} \times (\text{चंद्रक्रांतिज्या} + \text{सूर्यक्रांतिज्या})}{\text{लम्बज्या}}$$

इसी तरह $\text{थ} = \frac{१२ \times \text{चाक}}{\text{शक}} = \frac{१२ \times \text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{शक} \times \text{लम्बज्या}}$

$$= \frac{१२\,\text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

क्योंकि शक और शंकु एक हो वस्तु है।

यहां चंद्रमा और सूर्यकी क्रांतिज्याएं जोड़ी गयी हैं क्योंकि इनकी क्रांतियोंकी दिशाएं भिन्न हैं। यदि दोनोंकी क्रांतियोंकी दिशा एक ही हो तो अंतर निकालना पड़ेगा जैसे यदि सूर्य र पर हो तो अंतर निकालना पड़ेगा क्योंकि इस दशामें

करी=चाक—चारा

इस प्रकार ६—८ श्लोकों की उपपत्ति सिद्ध हुई।

चन्द्रबिम्बका शुक्ल भाग जाननेकी रीति—

सूर्योनशीतगोर्लिप्ताः शुक्लं नवशतोद्धृताः ।
चन्द्रबिम्बांगुलाभ्यस्तं हृतं द्वादशभिः स्फुटम् ॥९॥

अनुवाद—चंद्रमाके भोगांशसे सूर्यका भोगांश घटानेसे जो आवे उसकी कला बनाकर ९०० से भाग देने पर जो आता है वह अंगुलोंमें चंद्रमाका शुक्ल भाग होता है। इसको चंद्रमाके तात्कालिक अङ्गुलात्मक बिम्बसे गुणा करके १२ से भाग देने पर स्फुट शुक्ल भागका मान अंगुलोंमें आ जाता है।

विज्ञान भाष्य—पूर्ण चंद्रमाका मध्यम बिम्ब १२ अङ्गुलका माना गया है। जिस समय चंद्रमा पूर्ण होता है उस समय यह पूरा शुक्ल देख पड़ता है और जिस समय अमावस्या होती है उस समय चंद्रमाके शुक्ल भागका अभाव रहता है। जैसे जैसे चन्द्रमा सूर्यसे आगे बढ़ता है तैसे तैसे इसका शुक्ल भाग भी बढ़ता जाता है और अन्तमें पूर्णिमा कालमें इसका पूरा बिम्ब शुक्ल देख पड़ता है। ऐसी दशामें चन्द्रमाका सूर्यसे अन्तर १८० अंश या $१८० \times ६० = १०८००$ कला होता है इस लिए चंद्रमाके शुक्ल भागका परिमाण इस प्रकार हुआ कि जब सूर्यसे चन्द्रमा १०८०० कला आगे जाता है तब इसका शुक्ल भाग १२ अंगुलके समान होता है इस लिए जब किसी कालमें चन्द्रमा सूर्यसे अ कला आगे हो तब उसका शुक्ल

$$\text{भाग} = \frac{\text{अ} \times १२}{१०८००} = \frac{\text{अ}}{९००} \text{ अंगुल}$$

परन्तु यह मध्यम बिम्बमानसे लगाया गया है। स्पष्ट बिम्ब इससे भिन्न होता है जिसकी गणना चन्द्रग्रहणाधिकार (पृष्ठ ६८७-८९) के अनुसार करनी चाहिए। जब स्पष्ट बिम्बका मान अगुलोंमें आजाय तब फिर अनुपात करना चाहिए कि जब मध्यम बिम्ब १२ अङ्गुल का होता है तब इष्ट शुक्ल भागा $\frac{\text{अ}}{९००}$ अङ्गुल होता है, इसलिए जब स्पष्ट बिम्ब च है

$$\text{तब शुक्ल भाग} = \text{स्पष्ट बिम्ब} \times \frac{\text{अ}}{९००} \div १२$$

$$= \text{स्पष्ट बिम्ब} \times \frac{\text{अ}}{९००} \times \frac{१}{१२}$$

यह नियम स्थूल है क्योंकि चंद्रबिम्बके शुक्ल भाग की वृद्धि तिथि वृद्धिके अनुपातमें नहीं बढ़ती जैसा कि अभी प्रकट होगा। चंद्रमाके शुल्क भागकी नोकोंको श्रृङ्ग (cusp या horn) कहते हैं। दोनों श्रृङ्गोंको मिलानेवाली रेखा चंद्रबिम्ब के उस वृत्तका व्यास है जो उसके प्रकाशित भागको अप्रकाशित भागसे अलग करता है। इसलिए यह चंद्र सूर्यके केन्द्रों को मिलानेवाली रेखासे समकोण पर होता है। यह उस वृत्तका भी व्यास है जो चंद्रमाके द्रष्टाके सामने वाले भागको उसके दूसरी ओर वाले भागसे अलग करता है। इसलिए यह द्रष्टा और चन्द्रकंद्रको मिलानेवाली रेखासे भी समकोण पर होता है। जब दोनों श्रृङ्गोंको मिलानेवाली रेखा द्रष्टा और चंद्रकेन्द्र तथा सूर्य और चंद्र केन्द्रोंको मिलानेवाली रेखाओंके समकोण पर होती है तब यह उस तल (plane)

के भी समकोण पर होगी जो द्रष्टा चंद्रकेन्द्र और सूर्यकेन्द्र से होकर जाता है अर्थात् सूर्य और चंद्रकेन्द्रोंसे होकर जानेवाला महावृत्त (great circle) शृङ्गोंको मिलानेवाले व्यासको दो समान भागोंमें काटता है। यह महावृत्त क्षितिज-तलसे जो कोण बनाता है वह बहुत परिवर्त्तनशील है इसलिए चंद्रमाका शृङ्ग भिन्न भिन्न मासोंमें भिन्न भिन्न रीतिसे झुका रहता है अर्थात् कभी क्षितिज-तलके समानान्तर होता है और कभी लम्ब की दिशा में।

चंद्रमाके दृश्य गोलार्धका शुक्ल भाग दो वृत्तार्धोंके बीच में होता है जिनमेंसे एक वृत्तार्ध द्रष्टाके सामनेवाले चंद्रबिम्ब का होता है और दूसरा सूर्यके सामनेवाले चंद्रबिम्बका। द्रष्टाके सामनेवाले चंद्रबिम्बका वृत्तार्ध सूर्यकी ओर किनारे पर होता है। परन्तु सूर्यके सामनेवाले चंद्रबिम्बका वृत्तार्ध भीतरकी ओर होता है और द्रष्टाको तिरछी (obliquely) दिशामें देख पड़ता है इसलिए यह दीर्घवृत्तार्धके आकारका देख पड़ता है। क्योंकि किसी वृत्तका छेद (projection) तिरछी रेखामें देखने पर दीर्घवृत्त (ellipse) होता है। इसकी जांच कोई मनुष्य एक गोल चूड़ी और दीपकसे सहज ही कर सकता है। चूड़ी लेकर दीवाल और दीपकके बीचमें इस प्रकार थामना चाहिए कि चूड़ीका तल दीवालके समानान्तर हो और दीपकका केन्द्र, चूड़ीका केन्द्र और दीवाल पर चूड़ी की छाया का केन्द्र समसूत्रमें दीवालके तलसे समकोण पर हो। ऐसी दशामें चूड़ी की छाया गोल होगी। यदि चूड़ी इसी जगह थामे हुए तिरछी कर दी जाय जिससे इसका तल दीवालसे समानान्तर न रहे अथवा चूड़ीके तलको दीवालके समानान्तर रखते हुए चूड़ीको नीचे ले जांय या ऊपर उठा दें जिससे तीनोंके केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा दीवाल की लम्ब दिशामें न हो तब दीवाल पर चूड़ी की जो छाया पड़ेगी वह बिलकुल गोल न होगी वरन् दीर्घवृत्तके आकार की होगी। पहली दशामें छायाके दीर्घवृत्तका दीर्घअक्ष सम दिशा (horizontal) में होगा और दूसरी दशामें ऊर्ध्वाधर (vertical)। इसी प्रकार चंद्रबिम्बके शुक्ल भाग की भीतरी सीमा दीर्घवृत्तार्ध होती है जिसका दीर्घअक्ष चंद्रबिम्बके व्यासके समान होता है और लघुअक्ष सदैव परिवर्त्तनशील। अब यह बतलाया जायगा कि सूर्य और चंद्रमाके स्थानोंके अनुसार शुक्लभाग की वृद्धि या क्षीणता किस प्रकार होती है।

मान लो कि च चंद्रमाका केन्द्र, च द द्रष्टाकी दिशा, क ख ग घ चंद्रबिम्बका वह तल जो द्रष्टाकी दिशासे समकोण पर है, च र सूर्यकी दिशा और ख ज घ चद्रबिम्बका वह तल है जो च र दिशासे समकोण पर है। चंद्र-पृष्ठका जो खण्ड ख क घ और ख ज घ वृत्तार्धोंके बीच में है वही चन्द्रबिम्बका शुक्ल भाग है जो द्रष्टाको देख पड़ता है। परन्तु ख ज घ वृत्तार्धको द्रष्टा तिरछा देखता है इसलिए यह क ख ग घ तल पर प्रलम्बित (projected) होकर दीर्घवृत्तार्ध ख ट घ के रूपमें देख पड़ता है। यही दीर्घवृत्तार्ध ख ट घ चंद्र बिम्बके शुक्ल भागकी

चित्र ११६ Hugh Godfray M. A. की A Treatise on Astronomy से लिया गया है।

भीतरी सीमा है। यहां च ज चंद्रगोलकी त्रिज्या है इसलिए च क के समान है और च ट च ज का छेद्य है इसलिए

च ट=च ज कोज्या ज च ट

=च क कोज्या र च चा

क्योंकि कोण ज च ट चंद्रमा के उन तलोंके बीचका कोण है जो द्रष्टा और सूर्यकी दिशाओंसे समकोण पर हैं इस लिये यह द्रष्टाकी दिशा द च चा और सूर्यकी दिशा च र के बीचके कोण र च चा के समान है। इसलिए

ट क=च क—च ट

=च क—च क कोज्या र च चा

=च क (१—कोज्या र च चा)

=च क उत्क्रमज्या र च चा

कोण र च चा का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि त्रिभुज द च र का यह वहिः कोण है और इसके तीनों भुज द च, च र और द र क्रमानुसार द्रष्टासे चंद्रमा, चंद्रमासे सूर्य और द्रष्टासे सूर्यकी दूरियां है जो ज्ञात हो सकती हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि शुक्ल भागका मान तिथि वृद्धि के अनुपातके अनुसार नहीं बढ़ता जैसा कि ९ वें श्लोकमें बतलाया गया है। क्योंकि किसी कोणकी उत्क्रमज्याका मान उस कोणकी वृद्धिके अनुपातसे नहीं बढ़ता, जैसे यदि कोण दूना हो जाय तो उसकी उत्क्रमज्या भी दूनी नहीं हो जाती (देखो पृष्ठ १७८)।

चित्र ११६

रिआयत

स्व० पं० सुधाकर द्विवेदी लिखित समीकरण-मीमांसा का एक भाग विज्ञानके ग्राहकोंके पास पहले ही पहुँच चुका है। इसी पुस्तक का दूसरा भाग भी एक मास में तैयार हो जावेगा। इस विचार से कि विज्ञानके ग्राहकोंके पास यह पूरी पुस्तक पहुँच जावे, ऐसा निश्चय किया गया है कि जिन ग्राहकों का चन्दा मार्च १९२९ के विज्ञानके अंक के साथ समाप्त होता है, उनके पास यह दूसरा भाग बिना मूल्य ही भेज दिया जावे यदि उनसे आगामी सालके वार्षिक चन्देके ३) और पुस्तक भेजनेका डाक व्यय ॥) कुल ३॥) १५ अप्रेल १९२९ तक मिल जावें। विज्ञानके निम्न लिखित पुराने भाग भी मिल सकते हैं इसलिए जिन विज्ञानके ग्राहकों को पुराने भागोंकी आवश्यकता हो यदि वार्षिक चन्देके ३) के साथ साथ ॥) प्रति भागके हिसाबसे कार्यालयमें १५ अप्रेल तक भिजवा देंगे तो पुराने भाग भी भेज दिये जावेंगे कार्यालयमें यह भाग मौजूद हैं। ३—४—५ और ९ से १९ तक और २१ से २६ तक

फरवरी का यह अंक ग्राहकोंकी सेवामें भेजा जा रहा है। मार्च का अंक भी इस मासके अन्त तक प्रकाशित हो जावेगा और हमें यह पूर्णाशा है कि १५ अप्रेल तक हम अप्रेल का अंक भी ग्राहकों के पास वी-पी-द्वारा भेज सकेंगे। जिन पाठकोंको आगामी वर्षमें ग्राहक रहना स्वीकार न हो वे कृपा करके हमें पहले से ही सूचना दे दें ताकि हम उनके नाम विज्ञान वी-पी-न करें।

विज्ञान परिषत्, प्रयाग।

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

पूर्ण संख्या—१६८ *Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A.708

भाग २८
Vol. 28.

मीन १९८५
मार्च १९२९

संख्या ६
No. 6

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २८ } मीन संवत् १९८५ { संख्या ६

वनस्पति तंतु

(ले० श्री ब्रजबिहारीलाल दीक्षित, बी० एस-सी.)

न्तुओं की चर्चा इस प्रकारके तंतुओंके थोड़ेसे हालके बाद समाप्त की जा सकती है, और इसके विषयमें अधिक कहना भी लाभप्रद प्रतीत नहीं होता है। हम सभी लोग सदैव ऐसे तंतुओंके वस्त्र पहिनते हैं और सम्भवतः कोई भी व्यक्ति उसके थोड़े व अधिक हाल से अनभिज्ञ न होगा। रेशमके वस्त्र तो धनाढ्योंके मतलबके हैं और ऊन तो शीत काल में ही प्रयोग की जाती है किन्तु साधारण वस्त्र शीत, वर्षा, ग्रीष्म, इत्यादि सभी ऋतुओं में धनी, निर्धनी सबके लिये आवश्यक हैं। भारतवर्षमें अनेकोंने कभी भी रेशम तथा ऊनके वस्त्र न पहिने होंगे, किन्तु ऐसा कोई भी व्यक्ति न होगा जिसने इन तंतुओंके वस्त्र न पहिने हों। अतः इन तंतुओं की प्रसिद्धता तथा गौरव का विचार पाठकगणोंके विचारालयमें ही हो सकता है, इस क्षुद्र लेखनी में नहीं।

यह तंतु रसायन विज्ञानके अनुसार छिद्रोजके बने होते हैं। छिद्रोज तृतीय यौगिक (Tertiary-compound) है और इसको बहुद्राक्षोसिद भी कह सकते हैं क्योंकि यह कमसे कम द्राक्ष शर्कराके दो अणुओं (Molecules) के स्थापनसे बनता है। यद्यपि इसकी रासायनिक व्यवस्था अबतक रसायनिकों को पता नहीं चल सकी है किन्तु इसके संगठनमें केवल तीन तत्वों की ही विद्यमानता है। फिर भी उसमें विशेषता यह है कि समस्त उदजन तथा ओषजन उसी अनुपातमें है जिसमें कि जलमें। यों समझो कि छिद्रोज केवल जलके साथ कर्बन का

योग करनेसे बनता है। उसका संगठन जल और कर्बनके अक्षरोंमें इस प्रकार है:—

कर्बन—४३·८७ प्रतिशत
जल—५६·१३ प्रतिशत } [क$_6$ (उ$_2$ ओ)$_5$]$_न$

शुद्ध स्वरूपमें इसमें गन्ध, वर्ण इत्यादि कुछ नहीं होता है और न इसका कुछ स्वाद ही होता है और यह एक पारदर्शक श्वेत ठोस पदार्थ है। यह जल, मद्य, ज्वलक तथा अनेक अन्य चार्विक तथा वाष्पशील तैलोंमें अनघुल है। २००° के तापक्रम पर यह विभाजित होकर अनेकानेक पदार्थ उत्पादित करता है। शुद्ध दशामें इस पर जलवायु तथा उनकी विभिन्निताओंका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है किन्तु साधारण काष्ठ-छिद्रोज बहुत शीघ्रही नाशको प्राप्त हो जाता है। इसका कारण प्रायः उसमें नोषजन की विद्यमानता ही है, और इसकी रसायनिक क्रियायें उसी भांति होती हैं जैसे कि अन्य नोषजनिक वनस्पतियोंके सड़ने की। वायुमें सुखाई गई वनस्पतिमें कुछ जल रह जाता है और जब उसको १००° पर शुष्क करते हैं तो वनस्पति उससे भी मुक्त हो जाती है किन्तु वायुके संसर्गमें आनेसे पुनः वही मात्रा अधिशोषित हो जाती है। यह प्रायः ८-१२ प्रतिशतके लगभग होती है। स्वयंम् छिद्रोजमें ही यह गुण विद्यमान है और सम्भवतः अनेक उदौषील (ओउ) मूलों की उपस्थितिके कारणसे है क्योंकि यदि यह मूल कुछ कमकर दिये जावें तो इस विशिष्ट गुणमें अवश्य परिवर्तन हो जाता है। तीव्र अमोनिया का भी १००° तक कुछ प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु २००°श के लगभग योग होना प्रतीत होता है और छिद्रोज में अमिन मूलों, नो उ$_2$, की उपस्थिति इस प्रकार प्रमाणित होती है कि उसमें क्षारीय वर्णों (Basic dyes) के प्रति एक महान् प्रेम उत्पन्न हो जाता है। छिद्रोज ताम्र ओषिदमें घुलनशील है। पहले तो छिद्रोज कुछ ४०-६०°/₀ संकुचित सा हो जाता है किन्तु फिर उसका आकार थोड़े ही समयमें लगभग छः गुना बढ़ जाता है, विभाजित होता है, अन्ततोगत्वा उसमें घुल जाता है और किञ्चित्मात्र किसी अम्लसे अम्लित करनेसे छिद्रोज फिर एक फुलफुले स्वरूपमें अवक्षेपित हो जाता है। इस अवक्षेपित छिद्रोजमें कोई रासायनिक परिवर्त्तन नहीं होता है और यह क्षारके हलके घोलोंमें घुलनशील नहीं है और न क्षारकर्बनेतों तथा हरिन् जलमें ही। इसी गुण पर वस्त्रोंका उपहरितों—वर्ण विनाशन चूर्ण—से वर्ण विनाश निर्भर है किन्तु अधिक समय तक प्रतिकृत होने से तथा तीव्र घोलोंसे वह नाशको प्राप्त होने लगता है।

यह तन्तु रुईके बनते हैं और रुई इस देशके लिए एक अति साधारण वस्तु है। काले मिट्टीके देशोंमें बिनौलोंके बोनेसे यह तैयार होती है। फूल उगनेके बाद पक कर उनमें फल निकल आते हैं। फलों में जिस प्रकार बीही में बीज होते हैं और यह बीज गूदे के अन्दर फैले रहते हैं इसी प्रकार रुईके फलमें गूदा महान् सूक्ष्म तन्तुओं का बना होता है और इन्हीं तन्तुओं में इधर उधर फँसे हुए बीज होते हैं। जब यह फल सूखते हैं तो इनकी चमड़ी इस प्रकार संकुचित होती है कि वह पूर्वनिर्मित चिह्नों के अनुरूप फट जाते हैं। इनके अभ्यन्तरमें ठोस रूपमें रुईकी एक गुठली सी होती है। इसमें एक प्रकार का तैल भी होता है जो तन्तुओंको ठोस बननेमें सहायता देता है। जब चमड़ी फट जाती है और रुई निकल आती है तो वह वायुसे जल आदिका अधिशोषन करने लगती है और बहुत फूलती है यहां तक कि वह काफी स्थान न पाकर बाहर निकल पड़ती है। इसी रूपमें मनुष्य उसे चुन लाते हैं और बहुत से इकट्ठे हो जाने पर उनकी रुई निकालते हैं। रुई सूक्ष्म तन्तुओंके रूपमें होती है जो बीजोंसे बड़े बल से चिपटे रहते हैं। इनको निकाल कर रुई और बीज पृथक् पृथक् कर लिए जाते हैं। यह क्रिया एक मशीन द्वाराकी जाती है। मशीन इस प्रकारसे बनी होती है कि रुईकी पकौ-

ड़ियां एक ओर भर दी जाती है। उनसे सम्बन्धित दो बेलन होते हैं। जब बेलन घूमते हैं तो उनमें बीचके केवल रुईके तन्तु निकल जाने भरकी ही जगह होती है। पकौड़ियोंके कुछ तन्तु जब बेलनोंके बीचमें फँस गए तो वह बड़े बलसे खिंचने लगते हैं और इस बलके सहारे उन्हें बीजोंसे अपना सम्बन्ध छोड़ देना पड़ता है। ज्यों ज्यों वह तन्तु आगे बढ़ते हैं, उन्हींके साथ साथ अन्य तन्तु भी आते जाते हैं, फिर वह भी बीजोंसे अलग हो जाते हैं। इसी प्रकार समस्त रुई बीजसे पृथक् कर ली जाती है। बीजोंको बिनौले कहते हैं। यह बड़े ही कामके होते हैं। लोग इन्हें गाय भैंस को भी खिलाते हैं, इनसे उनका दूध बढ़ता है और पशु लोग इनके सहारे भोजन भी चाव से करते हैं। मनुष्य भी यदि इनको खोल कर इनकी गूदी एक तोले भर ही नित्य प्रति प्रातःकाल घोट कर पीवे तो उसे जो लाभ बादाम के सेवन से होता है वही लाभ प्राप्त होगा। इन्हें पीस कर तैल भी निकाला जाता है। आजकल यह तैल अधिक मात्रामें उपलब्ध किया जाता है और सवेटियर तथा सेन्डूरैन्स की विधिके अनुसार प्रतिकृत करने से यह एक अति श्वेत तथा ठोस रूप धारण कर लेता है। खानेमें स्वाद भी सुन्दर आने लगता है और यह आजकल शुद्ध वनस्पति घी तथा तिल चिह्नित घृत के नामसे संसारको मुग्ध करनेमें लगा हुआ है। बिनौलेको पहले हाथ ही से पृथक् किया जाता था किन्तु अब मशीनें बन गई हैं। मशीनोंसे बहुतसे बिनौले तो टूट जाते हैं और रुईके साथ ही साथ चले जाते हैं। इससे रुई उतनी साफ नहीं बनती जितनी कि पहिले बनती थी और आगेकी धुनकने की क्रियायें अधिक क्लिष्टता पैदा कर देती हैं। धुनकने का अभिप्राय रुई के तन्तुओंको पृथक् पृथक् करना होता है। यह क्रिया भी ग्रामोंमें एक बड़े ही सरल यन्त्रसे की जाती है। यन्त्र केवल एक लम्बे कमान के रूप का होता है और रुईमें डाल कर जब उसकी तांत की प्रत्यंचाको एक मुगरीसे फटकारते हैं तो वह अत्यन्त ही लचकदार होनेके कारण तन्तुओंको इधर उधर उड़ानेकी चेष्टा करती है और इसी प्रकार शनैः शनैः सब कपास तन्तुओं में परिवर्त्तित हो जाती है, बिनौले इत्यादि नीचे पड़े रह जाते हैं। मशीनमें यह कार्य इस प्रकार होता है कि पहिले एक साधारण चक्कीमें जाकर रुई चक्कीके दन्तोंसे नन्हें नन्हें टुकड़ोंमें टूट जाती है फिर एक सूक्ष्म चक्कीमें जाकर उनके दन्तोंके द्वारा प्रत्येक प्रत्येक तन्तु पृथक् पृथक् होकर उड़ने लगते हैं। वह सब इकट्ठे कर लिए जाते हैं।

रुईके अतिरिक्त अनेक अन्य बनस्पति पदार्थ भी संसारमें विद्यमान है जो वस्त्रोंके व्यापारमें प्रयोग होते हैं। एक अति परिचित पदार्थ राम बांस है। यह बड़ी बड़ी मात्रामें गर्म देशोंमें स्वतः ही उत्पन्न होता है। पृथ्वीसे ही इसमें बड़े लम्बे पत्ते निकलते हैं। मूलीकी भाँति इसमें नीचे तना इत्यादि नहीं होता। पत्तियाँ प्रायः चारसे लेकर ६ अंगुल तक चौड़ी होती हैं और लम्बाईमें दो दो गज़ तथा उससे भी अधिक पाई गई हैं। इनके किनारों पर पैने पैने नन्हें नन्हें बड़े तीव्र कंटक होते हैं जो हुक की भाँति मुड़े रहते हैं। यह बड़े विषैले भी होते हैं। समस्त पत्तियाँ गोलाकार चक्रोंमें प्रबन्धित रहती हैं और इन चक्रोंके केन्द्रमें सब पत्तियोंके सिरे मिले रहते हैं। यहीं पर एक वृद्धि-बिन्दु भी होता है जो एक तने पर स्थिति होता है परन्तु यह तना भी बड़ा छोटा होता है और साधारणतः दृष्टिगोचर नहीं होता। पेड़ की आयु जब अधिक हो जाती है तो उसमें वृद्धि बिन्दु बड़े वेगसे बढ़ने लगता है और थोड़े ही समयमें उस केन्द्र स्थानसे एक डण्डा निकलता दृष्टिगोचर होने लगता है। यह बड़े वेगसे बढ़ता है और इस पर बड़ी बड़ी पत्तियां इत्यादि कुछ नहीं होतीं। गाँठे अवश्य होती हैं और इन गाठों पर नन्हीं इन्हीं पत्तियाँ होती हैं। यह पत्तियाँ वास्तवमें कलियाँ हैं और कुछ ही समय बाद

गिर जाती है, जहां भी वह गिरती हैं वहीं वह बढ़ने लगती है और इन्हींके द्वारा उस स्थानमें रामबाँसका बनका बन हो जाता है। यही कारण है कि रामबाँसका कहीं एकाध पौधा पैदा नहीं होता है। जहां होता है वहां बनके बन होते हैं। डण्डे बढ़ते बढ़ते बहुत लम्बे हो जाते हैं और आयु के पूर्ण हो चुकने पर मनुष्य उन्हें काट लेते हैं और साधारण बाँसोंके स्थानमें प्रयोग करते हैं। इन्हीं बासोंकी तरह रामबाँसभी बड़े लचकदार और बलिष्ठ होते हैं।

अब रामबाँसकी पत्तियों को लीजिए। पत्तियाँ बड़ी और लम्बी होती हैं और खींचनेपर केन्द्रके स्थूल आधारसे टूट कर निकल आती हैं। इनको थोड़ा सा कूट देते हैं और जब वह फूट जाती हैं तो उनको किसी ऐसे स्थानमें गाड़ देते हैं जहां उन पर सदा जल बहता रहता है। एक सप्ताहके पश्चात् यहांसे पत्तियाँ खोदकर निकाल ली जाती हैं। पत्तियां सड़ जाती हैं किन्तु उनके तन्तु जो बड़े ही शक्तिशाली होते हैं, जैसेके तैसे ही बने रहते हैं। अब इन सड़ी पत्तियोंको भली प्रकार कूट कूट कर स्वच्छ करते हैं। कूटनेसे जो छीटें इधर उधर उड़ती हैं वह बड़ी ही विषैली होती हैं और यथा सम्भव उनसे बचनेका उद्योग करना चाहिए। शरीर पर पड़नेसे बड़ी ही खुजली पैदा करती हैं और अधिक मात्रामें हो जानेसे वहां पर विषैली फुन्सी भी निकल आती हैं। कूटनेसे स्वच्छ लम्बे लम्बे तागे निकलते हैं। पहिले तो वह हरे हरे प्रतीत होते हैं और स्पर्शमें कठोर तथा दृष्टिमें खुर खुरे दीख पड़ते हैं किन्तु कटनेसे वह बिलकुल श्वेत निकल आते हैं। प्रत्येक तन्तु स्वच्छ होने पर अति सूक्ष्म तथा लचकदार हो जाता है। यह फिर मुलायम तथा कांतिमय दीख पड़ने लगते हैं। साधारणतः यह ऐसे ही धूप में फैला कर शुष्क कर लिये जाते हैं। प्रायः अन्य सब तन्तुओं की अपेक्षा यह बड़े ही शक्तिशाली होते हैं और भारतवासी इनको साधारण तौर पर स्वच्छ करके रस्सी बनाने के कार्यमें लाते हैं। थोड़े ही समयसे इसका प्रयोग वस्त्र व्यापारमें भी बढ़ने लगा है। सबसे कच्छी बात तो यह है कि तन्तु लम्बे लम्बे कते कताए ही तैयार मिलते हैं। कूटनेसे उनकी सूक्ष्मता, नर्मता तथा कान्ति बढ़ती जाती है और जब यह गुण एक नियमित मात्रा तक पहुँच जाते हैं तो उनको फिर वस्त्रोंमें प्रयोग करते हैं। यद्यपि तन्तु तैयार ही मिलते हैं फिर भी उनमें थोड़ी सी कातने की क्रिया करनी आवश्यक होती है जिससे दो तीन तन्तु को मिला कर ऐंठने से उनको तागोंके स्वरूपमें परिणत कर लेते हैं। यह तागे फिर बिने जाते हैं और इनसे ऐसे ऐसे पदार्थ तैयार होते हैं जिनमें बहुधा मोटे तागोंकी आवश्यकता होती है जैसे कि गलेमें डालने के मफलर, पलंगों पर बिछानेकी पुष्पचित्रित चादरें, मेज पोश इत्यादि। यह वस्त्र देखनेमें बड़े ही चमकदार तथा सुन्दर प्रतीत होते हैं और होते भी बड़े ही स्थाई हैं, बहुत थोड़ी सी मात्रामें ऐसे तंतुओंके वस्त्र भी बनते हैं जो पहिनने के काम आते हैं। बहुधा इस तन्तुके बने पदार्थ रेशमके से प्रतीत होते हैं।

इसके अनन्तर सनके तंतु हैं। यह तंतु भी भारतवर्षमें कुछ कम प्रसिद्ध नहीं हैं। इसी नामके बीजको बोनेसे खेतोंमें सनके पौधे की कृषि हो जाती है। अरहर की कृषिके ही समान इसके पौधे पतले लम्बे लम्बे होते हैं। फूल पीले होते हैं। पक जानेके पश्चात् खेत काट लिए जाते हैं और पौधों के गट्ठर बांध बांध कर उनको भी किसी तालाबमें ही गाड़ देते हैं। वहां इन पौधोंकी बकली सड़ जाती है। निरर्थक पदार्थ सड़कर नर्म पड़ जाता है और तंतु मात्र अप्रभावित रह जाते हैं। कृषक लोग लगभग २ सप्ताहके पश्चात् इसको खोदकर निकाल लेते हैं और उसी तालाबमें धोकर साफ़ भी कर लेते हैं। समस्त तंतु इस भांति पृथक् पृथक् हो जाते हैं और उनमें स्थित लकड़ियाँ एक-एक करके सब निकाल ली जाती हैं। इस प्रकार यह नर्म तंत-

मय पदार्थ रह जाता है जिसके तंतु अत्यन्त ही लम्बे, श्वेत और सुन्दर होते हैं। तंतु-उपलब्धि की एक भिन्न रीति यह भी है कि सनके पौधोंको जल में गाड़ कर सड़ाते नहीं हैं। उसको वैसा ही शुष्क कर लेते हैं। शुष्क करने पर यद्यपि तंतु बलपूर्वक लकड़ीमें सटे रहते हैं, लकड़ीको तोड़ तोड़ कर उनकी बकली को उसको पृथक् कर लेते हैं। इस भांति समस्त बकली पृथक् करली जाती है और रस्सी इत्यादिके बनानेमें ऐसी ही काम आती है। इन तंतुओं को कातनेके लिए एक छोटा सा यंत्र बड़ा ही सरल होता है। एक छोटी सी लकड़ीके एक सिरे पर दो लकड़ियाँ चौकोन रुपमें लगी रहती है और दूसरे सिरे पर एक कील होती है। कीलसे कुछ तंतु फाँस कर जब नीचेका चतुर्कोण घुमाते हैं तो तंतु ऐंठकर तागोंके स्वरूपमें परिणत हो जाते हैं। जिन का ताग बन जाता है, वह चतुर्कोण में लपटते जाते हैं और इसी भांति अनेक तागे इच्छित मोटाई के कत कर तैयार हो जाते हैं। फिर इनसे ऐसे वस्त्र बनते हैं जो पशु इत्यादि को शीत कालमें पहिनानेके काम आते हैं तथा भूसा इत्यादिके भरनेको तथा पृथ्वी पर बिछानेके निमित्त मोटे वस्त्र। साधारण कपड़ों के वस्त्र इन स्थानों में कभी प्रयोग नहीं किए जाते क्योंकि वह तो इनकी अपेक्षा अति निर्बल प्रमाणित होंगे। असली वस्त्रों के निमित्त तो यह तंतु बहुत ही कम प्रयोगमें आता है और यदि आता भीहै तो केवल उन्हीं स्थानोंमें जहां कि रामबांस तन्तु।

लिनेन भी इसी समुदाय का एक महत्व पूर्ण तन्तु है और प्रसिद्धतामें केवल रुई से ही कम है। यह एक पौदेकी केवल बकली होती है। प्रत्येक तन्तु लम्बा लम्बा गोलाकार होता है और इसके कोष्ठ भी लम्बे तथा दोनों ओर नोकीले होते हैं, उनकी दीवालें मोटी तथा अन्तःभाग बहुत ही कम होता है। प्रत्येक की लम्बाई साधारण १-१½ अंगुल होती है। अनेक कोष्ठ मिलकर एक ताग बनाते हैं जिसमें से वह गोंद इत्यादि द्वारा बड़े बलसे जुड़े रहते हैं। रूईके तन्तुसे वह कम लचकदार होते हैं। शीतोष्ण जलवायु में उत्पन्न लिनेन के तन्तु अधिर सुन्दर होते हैं। बिलकुल पकनेसे प्रथम ही पौधे जड़से उखाड़ दिये जाते हैं। लकड़ीमेंसे तन्तु निकालनेकी भिन्न भिन्न विधियां हैं :—

(क) गर्म जलके तालोंमें वह बंडलोंमें बांध बांध कर गाड़ दिए जाते हैं यहां तक कि कीटाणुओं (बैक्टीरिया) का कार्य्य प्रारम्भ हो जाता है। इससे गोंदीले तथा राल पदार्थ ढीले पड़ जाते हैं जिससे तन्तु बड़े बलसे लकड़ीसे चिपटा रहता है। तन्तु भी न सड़ जावे इसकी बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। इस क्रियामें बड़ी बुरी दुर्गन्ध आती है। क्रिया के पूर्ण हो जाने पर धोकर बंडलों को अनेक दिन तक वायु तथा प्रकाशके प्रभावके लिये छोड़ देते हैं। स्वच्छ जलमें वही क्रिया की जाती है जो कि ऊपर वालेमें। इसमें बंडल किसी लकड़ी द्वारा बहती हुई नदीकी धारामें अटका दिये जाते हैं। इसमें समय अधिक लगता है। वर्ण पदार्थ घुल जाता है और सुन्दर पदार्थ निकल आता है।

(ख) ओस के संसर्गसे भी यही क्रियाकी जाती है, बंडल अनेक सप्ताहों तक खुले मैदानमें पड़े रहते हैं और प्रायः उपर्युक्त क्रियाएं होती हैं।

(ग) तप्तजलमें करनेसे वही क्रिया शीघ्र हो जाती है। बड़ी देर तक ३०°—३५°श पर तप्त जलमें रखने के बाद वह बेलनों (रोलरों) में से निकाला जाता है जिससे उसकी लकड़ी पिचक जाती है और उसके सड़नेमें सहायता मिलती है। जल तथा दबावमें वाष्पसे संसर्गित करनेसे यह पदार्थ जल्दी सड़ जाता है और सुन्दर रेशमी तंतु निकल आता है।

(घ) कभी कभी अम्ल भी (क) क्रियामें प्रयोग किए जाते हैं ताकि दुर्गन्ध न आवे। बार बार बहुत हलके उदहरिकाम्लसे धोकर बहुत हलके सैन्धकक्षार घोलसे धोनेसे सड़ना वहीं ही शीघ्र समाप्त हो जाता है।

(च) कभी कभी यह कोई भी क्रिया नहीं होती, केवल बेलनोंसे दबाकर लकड़ी तोड़ डालते हैं फिर उसे चूर्ण करके झाड़ देते हैं जिससे लकड़ी नन्हें नन्हें टुकड़ोंके रूपमें झड़ जाती है। तत्पश्चात् उसे कंघीमें से निकाल कर उस पर कंघी कर देते हैं जिससे समस्त तंतु समानान्तर रूपमें प्रबन्धित हो जाते हैं और कातनेमें सरलता रहती है। यह तंतु रुईकी तरह शुद्ध नहीं होता वरन् शक्तिशाली तथा स्वभावतः चमकदार होता है। यह तापका सुन्दर चालक है और इसी कारणसे स्पर्शसे शीतल मालूम होता है। इसके वर्णोदन तथा वर्णवेधनमें बड़ी क्लिष्टता पड़ती है।

अन्य तन्तु कोई विशेष महत्वके नहीं हैं। वन इत्यादिमें एक वृक्ष अवश्य होता है जिसके पत्ते बीचसे दुहरे लौटे रहते हैं। इस वृक्षकी पतली शाखाओंको कूटनेसे सुन्दर सुन्दर लम्बे ताग निकलते हैं जो रस्सी इत्यादिके काममें बड़े ही लाभप्रद होते हैं बन तथा पहाड़ इत्यादि पर भ्रमण करनेमें ये बड़े ही कामके हैं। इसी प्रकार एक घास होती हैं जिसे चीनी घास कहते हैं। यह चीन तथा पूर्वी देशोंमें बहुत होती है। इसकी बकली निकालना कठिन होता है। सड़ानेसे कोष्ट कोष्ठ अलग हो जाते है और घास हाथ नहीं आती। इस कारण कूटकर धोकर लकड़ी दूर कर देनी पड़ती है। उसमें बड़ी ही प्राकृतिक चमक होती है जो रंगने पर नष्ट हो जाती है। यह बड़ाही शक्तिशाली तन्तु है और प्रायः शुद्ध छिद्रोजका ही होता है। नारियलकी जटाओंके भी तंतुओंका बहुत उपयोग होता है। उनसे अनेकानेक पदार्थ, ब्रुश, चटाई, रस्सियां इत्यादि बनाए जाते हैं। इसी प्रकार न्यूजी-लैण्डके एक वृक्षसे उत्पन्न लम्बे तंतु वाला 'न्यूजी-लैन्ड-सन' भी है जिससे रस्सियां बनती हैं।

अब इस तन्तुओंके वर्ण-विनाश या रंग उड़ाने की बात लीजिए। जिन जिन तन्तुओंके वस्त्र बनते हैं उन्हीं के वर्ण विनाश की आवश्यकता पड़ती है, रस्सी इत्यादिमें प्रयोग होने वालोंमें नहीं। इनमें भी यदि वस्त्र गाढ़े रंग में रंगा जाना है तो केवल भली भांति धोने तथा सैन्धक उदौषिद द्वारा, उसकी चिकनाहट, गोंदीले पदार्थ तथा राल (रेजिन) इत्यादिको दूर कर देनेसे काम चल जाता है। इस प्रकार धोनेके बाद वस्त्र रङ्ग दिया जाता है। यदि श्वेत रखना हो या सुन्दर सुन्दर हलके रङ्ग लाने हों तो भली भांति वर्ण विनाश करना पड़ता है जो इतना सरल नहीं हैं। रुई बहुधा सूतकी लच्छिओंके रूप में अथवा बिने हुए वस्त्र के रूपमें ही रंग-हीन की जाती है।

वर्णविनाशार्थ सूतके लच्छे एक दूसरेमें फांस-फांस कर उनकी सांकरें बना लेते हैं और इन सांकरों को एक बर्त्तनमें भर देते हैं। इस बर्त्तन की पेंदी छिद्रित होती है। इसमें सैन्धकक्षार भर देते हैं और कई घण्टों तक उबालते हैं। एक नल बर्त्तन के बीचों बीचमें से होकर ऊपर से नीचे तक छिद्रित पेंदीमें से निकलता हुआ नीचेके जलाशय तक जाता है। तपाने पर वाष्पके भार से समस्त द्रव इसी नलमें होकर ऊपरको आता है और ऊपरी सिरेमें से निकल कर सूत पर बरसता है। सूतमें से निकल कर, छिद्रोंमें से वह फिर उसी आशयमें इकट्ठा हो जाता है। इसी भांति होता रहता है। सूतको फिर निकाल कर धो लेते हैं और उसे 'वर्ण विनाशक चूर्ण' के हल्के शीतल घोलसे प्रतिकृत करते हैं और क्रिया ऊपरकी ही तरहके बर्त्तनमें की जाती है। पांच या छः घण्टे तक यह घोल सूत पर प्रवाहित करनेके बाद उसे निकाल लेते हैं और निचोड़ कर कुछ समय तक पानीमें धो डालते हैं। तुरन्त ही सूतको गन्धकाम्ल अथवा उदहरिकाम्लके हलके घोल के स्नानागारमें डाल देते हैं। तन्तुमें अधिशोषित चूर्ण में से हरिन् मुक्त होती है, वह जलमें से ओषजनको मुक्त करती है। इस भांति मुक्त ओषजन, तन्तुके वर्ण पदार्थको ओषदी कृत कर उसे शीघ्रही शुद्ध श्वेत

बना देता है। इसमें १५—२० मिनट लगते हैं। तत्पश्चात् सूत को जलसे धोते हैं और फिर साबुनके घोल से, जिसमें किञ्चिद् मात्र नील पड़ा होता है। बेलनों द्वारा सूत खूब मर्दित किया जाता है जिससे नील एक सार फैल जाता है। अब साबुन घोलकी अधिक मात्रा केन्द्र-गर्वित-यन्त्र (Centrifugal machine) द्वारा निकाल देते हैं और तंतु शुष्क कर लिया जाता है।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण वस्त्रका वर्ण-विनाश है। इसकी विधियां भी तीन है, (क) व्यापारिक वर्णविनाशक (Market bleach) जो श्वेत ही क्रिया करनेके लिये तैयार किए जाते हैं (ख) तुर्कारुण वर्ण विनाशक (Turkey-red bleach) उन वस्त्रोंके लिये है जो मंजिष्ठा से लाल रंगने के लिए तैयार किये जाते हैं और (ग) मंजिष्ठा वर्ण विनाशक विधि जो अनेकों वर्ण बेधकोंसे प्रतिकृत करनेके बाद मंजिष्ठासे रंगा जानेको है। अन्तिम विधि बहुत ही पूर्ण रूपसे विनाश करती है और इससे रुई प्रायः शुद्ध छिद्रोज ही रह जाती है। वस्त्रोंमेंसे प्रत्येक अशुद्धि जिसका वर्णके प्रति अधिक आकर्षण होता है निकाल दी जाती है। यदि रुई रासायनिक शुद्ध न होगी तो उसपर न तो कोई झलक ही अच्छी आ सकती है और न पूर्ण श्वेत वस्त्र ही तैयार होगा।

मंजिष्ठा वर्णविनाशक विधि यह है। समस्त टुकड़ोंको चिह्नित कर लेते हैं ताकि बाद को पहचान जावें और उन सबको एक दूसरेमें नाथ लेते हैं। अब उसे खूब चौड़ा कर तप्त तांबे की चादरों परसे निकालते हैं जो एक भट्टी की छत पर जड़ी रहती हैं और कुछ कुछ झुकावदार होती हैं। वस्त्रके निकलनेसे यह कहीं कहीं पर अधिकठंडी हो जानेसे अपना कार्य्य एकसार नहीं कर पातीं। इस कारण अब वस्त्रको ताम्र बेलन पर से निकलते हैं जिसको अड़ोस पड़ोसकी भट्टी की लपटोंसे अग्नि पहुँचा कर गर्म रक्खा जाता है। इस प्रकार करनेसे मुक्त बाल, तंतु, गर्दा, कपड़ेके नन्हें नन्हें टुकड़े इत्यादि दूर हो जाते हैं अन्यथा वह छपाईमें कठिनाई डालते। अब खूब धोकर उसमें से मैल तथा माड़ी निकाल डालते हैं और उसे एक ढेर में जमा करके रात भर छोड़ देते हैं ताकि उसमें की गोंदीले वस्तुएं ढीली पड़ जावें। अब यह वस्त्र चूनेके साथ उबाले जाते हैं। प्रथम तो वस्त्र चूनेके एक घोलमेंसे निकाले जाते है जहां वह अपनेका ४-५% चूना अधिशोषित कर लेते हैं। बिना धोए हुए यह वस्त्र फिर एक वर्त्तन में भर दिए जाते हैं जहाँ वह बड़े वाष्प-दबाव के अन्दर उबलते रहते हैं। इस प्रकार तमाम चार्विक पदार्थों के तो साबुन बन जाते हैं और नशास्ता (Starch) इत्यादि घुल जाती हैं। अवशिष्ट अशुद्धियोंमें भी इस प्रकार रासायनिक परिवर्त्तन हो जाता है कि वह जो खटिक साबुन बने हैं उनसे घुल जावें और आगामी क्रियाओंमें निकल जावे। अब वस्त्र को पूर्णतया धोकर उसमें से चूना, घुलनशील पदार्थ तथा मुक्त गर्द निकाल डालते हैं। कपड़े की रस्सी अब दो बेलननोंके मध्यसे निकाल कर एक नलके नीचे फैलाते हैं जहांसे भली भांति धुलकर वह फिर बेलनों द्वारा निचोड़े जाते हैं। अब वस्त्र प्रथम अम्लागारमें जाता है जहां हलके गन्धकाम्ल तथा उदहरिकाम्लके घोलसे घुलकर खटिक, साबुन, लोह तथा अन्य धात्वीय लवणके दाग इत्यादि दूर हो जाते हैं। फिर बेलनों द्वारा निचोड़ कर धोते हैं अन्यथा अधिक देरमें वायुके संसर्गमें रहकर अम्ल द्वारा वस्त्र नाश न हो जानेकी सम्भावना है।

अब वस्त्र को फिर तीन मिश्रित द्रवोंके साथ अलग अलग उबालना पड़ता है, पहिले तो १% सैन्धक भस्मके साथ ३घण्टे तक फिर ३.६% सैन्धक भस्म ८७% सैन्धक क्षार तथा १.६१% रोसीन (Rosin) के साथ लगभग १२ घंटे तक और अन्तमें फिर ३ घंटे तक सैन्धक भस्मके साथ। इस प्रकार खटिक साबुनमें से अवशिष्ट चार्विक पदार्थ तथा तैल सब निकल जाते हैं और बहुत सा बाकी वर्ण

पदार्थ भी निकल जाता है। मंजिष्ठा वर्ण-विनाश में रोसीन डालना एक विशिष्ट बात है क्योंकि इस से प्रायः अनेक वर्णाकर्षक पदार्थ निकल जाते हैं। अब वस्त्र 'चूर्णित' किए जाते हैं। इसमें वर्ण विनाशक चूर्णके स्वच्छ शीतल घोलमें से कपड़े को निकाल कर कुछ घंटों तकके लिए एक ढेरमें जमा कर देते हैं। वायुमें विद्यमान कर्बन द्विओषिद से चूर्ण विभाजित हो जाता है और उससे जनित उपहरसाम्ल ओषजन को मुक्त करता है जो वर्ण पदार्थको ओषदीकृत करके नाश कर देता है। यदि चूर्णका घोल अधिक तीव्र होगा तो वह कपासको भी ओषदीकृत कर देगा जो अन्तमें हानिकारक रहेगा। चूर्णित वस्त्र कुछ देर तक ढेर में जमा रहनेके बाद हल्के अम्लोंसे धोए जाते हैं और इस प्रकार तन्तुमें जमे हुए विनाशक चूर्ण में से अवशिष्ट हरिन भी मुक्त की जाती है। उदहरिकाम्ल इस क्रियामें रहता है क्योंकि इससे चूना घुलनशील हो जाता है। अब वस्त्र पूर्णतया वर्ण हीन हो गया, भली भांति धोकर बेलनों द्वारा निचोड़ कर उसे ताम ढोलों परसे फैलाकर निकालते हैं जो वाष्प द्वारा तपाये जाते हैं। इस प्रकार वस्त्र शुष्क हो जाते हैं।

तुर्कारुण-वर्णविनाश विधिमें वह वस्त्र वर्ण-हीन किए जाते हैं जो मंजिष्ठ रंगोंसे उनकी पूरी शक्ति भर रंगे जाने को हैं। इसमें गर्म ताम्र बेलनों पर वस्त्र तपाने तथा हरिन्के संसर्गमें रखनेकी बहुतही कम आवश्यकता है। इससे रङ्ग चमकदार तथा भली भांति नहीं आते। व्यापारिक विनाश विधिमें भी बेलनों पर तपानेकी तथा रोसीन के साथ उबालनेकी आवश्यकता नहीं होती है और वस्त्र शुष्क करनेसे पहिले किञ्चिद् मात्र माड़ीकृत एवम् नीलकृत कर दिया जाता है।

लिनेनमें वर्ण पदार्थ अधिक मात्रामें—२५% से भी अधिक—होते हैं और उसमें यह क्रिया इतनी सरल नही होती। लिनेन क्षार, अम्ल तथा हरिन्से प्रभावित भी शीघ्र ही हो जाती है, इसलिए इसमें अधिक समय तथा देख रेखकी आवश्यकता रहती है। घोल बहुधा अधिक हल्के प्रयोग किए जाते हैं और क्रियाएं बार बार दुहराई जाती है। बहुधा सप्ताहों तक फैलाए रखने से तथा भिगो कर फैलाने से भी यह वर्णहीन की जाती है। वायुमें विद्यमान् ओषोन (ozone) ही प्रायः इसमें कार्यकर्ता रहता है। उदजन-पर-ओषिद तथा गन्धसाम्लके साथ साथ पांशुजपरमांगनेत से भी कार्य्य भली भांति चल सकता है। इनसे वर्णविनाश सरलतासे तथा शीघ्र हो जाता है।

जूटके तन्तु केवल वर्णविनाशक चूर्णसे प्रतिकृत करनेसे ही वर्णहीन हो जाते हैं; केवल उन्हें बादमें अम्लित करके जलसे भली भांति धोना पड़ता है। चूर्ण का घोल तीव्र होना चाहिए और तापक्रम ऊंचा, ४५° से ५० श तक। श्वेत करनेके लिए तीन बर्त्तनोंमें २०%, १०% और ५% वर्णविनाशक चूर्णके घोल बना कर पिंडोंको क्रमशः प्रत्येकमें एक एक घंटा पड़ा रहने देते हैं इसको होशियारी से न करनेसे तन्तु निर्बल पड़ जाता है। चूर्णके स्थानमें सैन्धक उपहरित् प्रयोग करना प्रायः भला रहता है। इससे सैन्धक क्षार के कारण तन्तुके हरिन् यौगिक नहीं बनने पाते। जलकी विद्यमानतामें हरिन् जूट तन्तुसे संयुक्त होकर पीत वर्णके अनेक यौगिक बनाता है। सनके वर्ण विनाश करनेकी आवश्यकता ही नहीं होती, वह तो अधिकतर रस्सी इत्यादि ही में प्रयोग होता है। कभी कभी सैन्धक शैलेत (रेत) के साथ उबाल कर पानीसे धोकर फिर घटों वर्ण विनाशक चूर्णके साथ प्रतिकृत करके, अम्लित करके भली भांति धोकर साफ कर लेते हैं।

यह तन्तु बहुधा पक्के नहीं रंगे जा सकते। इनमें वर्ण वेधनकी आवश्यकता पड़ती है। प्रायः स्फट लवण प्रयोग होते हैं और उसके भी सिरकेत तथा गन्धेत ही अधिकतर प्रयोग होते हैं। भस्मिक गन्धेतसे ५०% तक स्फट तन्तु में अधि-

शोषित हो जाता है। वस्त्र केवल इसके घोल में भली भांति भिगोकर शुष्क करनेके लिये वायुमें बड़ी देर फैलाया जाता है कभी कभी इससे पहिले वस्त्र को टैनिकाम्ल अथवा सैन्धक वंगेतमें भिगो लेते हैं। राग-लवण भी वेधिक पदार्थों का काम देते हैं। वस्त्रको राग-लवणके घोलमें भिगोकर उसे भली भांति सैन्धक क्षारके साथ उबालते हैं। इसी प्रकार पुनः पुनः करने से इच्छित मात्रा तन्तु पर जम जाती है। लोहे के लवण भी प्रयोग में अधिक आते हैं। वस्त्रको टैनिकाम्लमें भिगोनेके बाद उसे लोहस गन्धेतमें डालते हैं इस प्रकार तन्तु पर लोह टैनेत जमजाता है। लोहस तथा लोहिक दोनों ही प्रकारके लवण-बहुधा गन्धेत, भस्मित गन्धेत, सिरकेत तथा नोषेत—प्रयोग किए जाते हैं। वेधनके अतिरिक्त यह भारण तथा ओषदीकरण का कार्यभी भली भांति देता है। इसके अतिरिक्त अनेकानेक लवल टैनिकाम्ल माजूफलिकाम्ल, कत्था, सुमश (Sumach) इत्यादि वर्ण वेधन में प्रयोग होते हैं। वेधित करनेके पश्चात् इच्छित रंगों से रंगा जाता है।

रंगना

रंगनेका अभिप्राय तंतु पर या उसके अन्दर वर्ण को अवक्षेपित कर देना है। वर्ण पदार्थ और रङ्गों (Pigments) में यही तो भेद है। बादवाले जलमें घुलनशील होते हैं। बहुधा वर्ण पदार्थके शीतल तथा गरम जलके घोलमें वस्त्रको डुबोना पड़ता है। कभी कभी जलके अतिरिक्त अन्य घोलक भी प्रयोग होते हैं या वर्ण घोलको बौछारके रूपमें वस्त्र पर डालते हैं। वनस्पतिके लिए बहुधा क्षारित अथवा शिथिल घोल ही प्रयोग होते हैं।

रंगनेका सिद्धान्त पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। भौतिक वादके अनुसार तंतुके छिद्रोंमें कण केवल अधिशोषित हो जाते हैं और रासायनिक वादके अनुसार वर्ण पदार्थ और तंतुमें कोई रासायनिक प्रतिक्रिया ही हो जाती है। अनेक पदार्थ सब तंतुओंको एकसार नहीं रंगते। यह प्रथम वादके अनुसार इस प्रकार है कि वर्णके कण एकसे ही नहीं होते और न तंतुके छिद्र ही। छिद्र तापसे तथा रसोंसे बढ़ जाते हैं और शीतसे संकुचितहो जाते हैं। दूसरे वादको इन बातोंसे सहायता मिलती है कि तंतु या तो अम्लिक या क्षारित होता है और उनमें अम्ल, क्षार या लवण अधिशोषित करके शिथिल कर लेनेकी शक्ति होती है। इसके अतिरिक्त सबवर्ण पदार्थ भी निश्चय रूपसे अम्ल या क्षारही होते हैं। बिट साहेबका एक 'ठोसघोल वाद' भी है जिसके अनुसार तंतु जलके घोलमें से वर्णको इसी प्रकार निकाल लेता है जैसे कि ज्वलक जलके घोलमें से अनेक वस्तुओंको निकाल लेता है। इस प्रकार तंतु केवल एक ठोस घोलक ही है। रेशममें कोई शृंखलाबद्ध वाद अभी नियमित नहीं हैं। उनका संगठन तो बिल्कुल भिन्न होता ही है।

रुई तथा लीनेनमें रंगके प्रति कम प्रेम होता है और बानजाविदिन, प्रिमुलिन तथा कुछ गन्धोन वर्णोंके अतिरिक्त सभीमें वर्ण वेधक की आवश्यकता पड़ती है। जलका गुण भी महत्व पूर्ण है। उसमें लोह इत्यादि हानि-कारक अवयव न होने चाहिए। कठोर जलको शुद्ध कर लेना चाहिये यद्यपि लालवुड तथा तुर्क अरुणसे रंगते समय चूनेकी विद्यमानता आवश्यक होती है। पहिले पत्थरके वर्तन प्रयोग होते थे किन्तु अब लोहेकी टंकी आविष्कृत हो गई हैं। रेशमके लिए काष्ठकी टंकीमें काम करना पड़ता है ताकि वर्ण घोलके संसर्गमें लोहा कदापि न आने पावे। छिद्रित पेंदी या बर्त्तनोंमें ऊपर लकड़ियोंमें से लच्छे लटका दिए जाते हैं। लच्छे बराबर लौटे जाते हैं और नीचेसे वाष्प प्रवाहितकी जाती है। श्रमको बचानेके लिए अनेक यंत्र भी आविष्कृत हुए हैं जिनके अनेकानेक रूप होते हैं। कोई तो सीधे रखनेके लिए नीचेसे बेलनों द्वारा दबे रहते हैं और काष्ठ तथा चीनीके आधारों पर रक्खे हुए उचित यंत्र द्वारा घूमते रहते हैं। या लच्छे काष्ठ के बेलनों पर लपटे रहते हैं जिनमेंसे एक द्रवके

अन्दर और एक बाहर रहता है। दोनोंके घूमने पर लच्छे क्रमशः द्रवमें आते जाते रहते हैं। पूरा यंत्र काष्ठ के घेरेमें रहता है अन्यथा समस्त ताप तथा वाष्प निकल जावे और लच्छे द्रवसे बाहर रहने पर शीघ्र ही शीतल हो जावें।

अधिकतर बिने बिनाए वस्त्र रंगेजाते हैं। तमाम वस्त्र जाड़कर एक अनन्त पट्टी बना ली जाती है और द्रवमें से निकाली जाती है। द्रवमें रहते समय कुछ ढील देकर उसका द्रवसे संसर्ग का समय बढ़ा देते हैं। पट्टी द्रवमें घूमती रहती है यहां तक कि इच्छित रंग आ जाता है। एक मशीनमें दो बेलन द्रव में और तीन ऊपर द्रवके बाहर होते हैं। ऊपर के बेलन से निकल पर पट्टी पूरी खुली हुई अन्दर वाले बेलनके नीचे से होकर फिर ऊपर वाले पर होकर अन्दर वालेके नीचेसे निकलती है। अन्तमें ऊपर वाले बेलन पर से होकर वस्त्र फिर लौटा दिया जाता है और फिर समस्त पट्टी प्रथम ऊपर वाले बेलन पर से होकर 'स्वच्छक यन्त्र' को चली जाती है। एक दूसरा यन्त्र भी वर्णो दन तथा वर्ण बेधनमें प्रयोग होता है जिसमें एक छोटी सी टंकीके ऊपर बेलन लगे रहते हैं जिनसे द्रव की अधिक मात्रा निचुड़ जाती है। इस प्रकार रंगके एक सार होने में सहायता मिलती है।

वर्ण अनेक समुदाओंमें विभाजित किए जा सकते हैं और प्रत्येक समुदायमें अनेकानेक सदस्य हैं। इच्छित वर्णके अनुसार तथा उसकी क्रियाओं और मूल्य को विचार करके प्रयोग किए जाते हैं। प्रयोगमें लानेके लिए वर्णोंका निश्चय करना भी साधारण कार्य नहीं है, विशेष कर आज कल जब कि सारा संसार वर्ण पदार्थोंसे ही भरा चला जाता है और इस कार्यमें बड़े अनुभवी मनुष्यको ही अग्रसर होना चाहिए। यदि सम्भव हो तो रंगने वाले एक स्वयम् अपना ही कार्य्यालय वर्ण-पदार्थ तैयार करने के लिए भी खोल लेवें तो सर्वोत्तम रहे। इससे उन्हें रंगभी अच्छे और विश्वसनीय मिलेंगे और मूल्य भी कम ही रहेगा। इसके अतिरिक्त उनका कार्य अन्य लोगों पर निर्भर नहीं रहेगा औरइ च्छित पदार्थ सदैव करतलगत ही होगा। यह भी कोई कम बात नहीं है, वास्तवमें सफलता की कुञ्जी यही है।

बिजलीका लैम्प

(ले० श्री दौलतसिंह कोठारी, एम.एस-सी.)
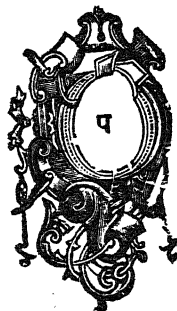
हिले पहल जे० डब्लू० स्वान (J. W. Swann) एक अमेरिकन ने सन् १८४१ में बिजली का लेम्प बनाने का प्रयोग किया पर इसमें कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन १८७८ में (E.A. Edison) इ. ए. एडीसन और जे० डब्लू० स्वान ने कर्बन तन्तुका लेम्प (carbon filament lamp) बनाया। सन १६०२ और १६०३ में वासम धातु (osmium metal) और तन्तालम् धातु (tantalum) के लेम्प बनने लगे। सन् १६०४ में जेनेरल इलेक्ट्रिक कम्पनी अमेरिका ने वुलफ्रामम् (tungsten) का लैम्प जो आज कल हर मकानमें मिलता है बनाया। यह देखा गया है कि जितना ही ज्यादा गर्म वुलफ्रामम् हो उतनी ही ज्यादा वह रोशनी देता है। वुलफ्रामम् ३६००°श पर पिघलता है पर लैम्पमें इसका तापक्रम २३००° से ज्यादा नहीं बढ़ा सकते क्योंकि इस तापक्रम से ऊपर उसमें से भाप निकलने लगती है। अगर इन लैम्पोंको वायु शून्य (vacuum) न कर कोई ऐसा गैस भर दिया जाय कि जिसका वुलफ्रामम् पर कोई असर न हो तो इस गैसके होनेकी वजह से वुलफ्रामम् का भाप बनना कम हो जाता है। इसलिये ऐसे लैम्पोंमें जिनमें गैस भरा हो वुलफ्रामम् का तापक्रम शून्य वाले लैम्प से ज्यादा किया जा सकता है और इसलिये वे ज्यादा रोशनी देते हैं। यह लैम्प गैस भरे लैम्प कहलाते हैं।

अगर हम कोई शून्य लैम्प देखें तो उस पर उसके बनाने वाले के नाम के अलावा यह भी लिखा रहता है।

220—20 W. (डब्लू)

इसका मतलब यह है कि यह लैम्प २२० वोल्ट पर जलाया जाना चाहिये और उस समय इसमें २० वाट खर्च होंगे। नीचे दी हुई सारणीसे यह मालूम हो सकता है कि एक बत्ती (candle power) की रोशनी देनेके लिये कितने वाट खर्च होंगे। शून्य लैम्पमें बहुधा एक बत्तीकी रोशनीके लिए १.२५ वाट खर्च होते हैं। वाट बलकी इकाई है, इसलिये वोल्ट और एम्पीयर का गुणन फल है। इसलिये अगर हमारा लैम्प २२० वोल्ट और २० वाटका है तो इसमें जलते समय कितनी धारा बह रही है हमको मालूम हो सकती है।

वोल्टन × एम्पियर=वाट

(Volts × Amperes=Watts)

जब धारा मालूम हो जाय तो इस लैम्पकी बाधा भी हम मालूम कर सकते हैं।

अगर हमारे मकानमें ३० लैम्प हों और हर एक १६ बत्तीका हो और अगर यह ३० लैम्प तमाम रात जलाये जायं तो हमको कितना खर्च देना पड़ेगा मालूम हो सकता है।

जो मापक अथवा यंत्र यह बतलाता है कि हमने कितनी बिजली खर्च की और जो हमारे मकानमें लगा रहता है उसमें १ इकाई १००० × ६० × ६० वाट के बराबर होती है और इसको १ हजार वाट घंटा या साधारण भाषामें १ इकाई कहते हैं। अगर १ इकाई का दाम बिजलीकी कम्पनी ८ आना लेती है तो हमको १ महीने का १०८) देना पड़ेगा।

अगर हम बिजली कम्पनीसे नहीं लेना चाहते तो हमको अपना धाराजनक (Dynamo) चलाना होगा और उसको चलानेके लिये अपना मोटर (Motor) चलाना पड़ेगा और बिजली के खर्च जाननेके कारण हम मोटरके बलका ठीक ठीक अन्दाज़ा लगा सकते हैं।

अगर एक २० वाट का शून्य लैम्प जो १६ बत्तीकी रोशनी देता है एक दीवारसे ४ फीटकी दूरी पर रक्खा जाय तो उस दीवार के हिस्से पर जो उससे ४ फीटकी दूर पर है जो रोशनी की तेज़ी होगी उसको एक फुट बत्ती कहते हैं। अगर यह लैम्प दीवारसे ८ फीटकी दूरी पर हो तो रोशनीकी तेज़ी पहिलेसे एक चौथाई हो जायगी क्योंकि रोशनी लैम्पसे चारो तरफ़ फैलती है इसलिये उसकी तेजी दूरीके वर्गसे विपरीत संबंध रखती है। इस कारणसे हमको ८ फीट पर एक ६४ बत्तीका लेम्प रखना पड़ेगा अगर हमको दीवार पर पहिले के बराबर रोशनी लेनी है।

मामूली तौर पर रोशनीकी तेजीके चार दर्जे हैं।

१. जिन जगहों पर बहुत तेज़ रोशनी की ज़रूरत नहीं पड़ती वहां ५ फुट बत्तीकी रोशनी काफी होती है। जलसे और व्याख्यान देनेकी जगहें, कोयला भरनेकी जगहें, माल गोदाम और आम रास्ते इत्यादि ऐसी जगहोंमें से हैं।

२. जहां पर छोटी और बारीक चीज़ों तथा हलकी रंगी हुई चीज़ों से काम पड़ता है वहाँ पर १० फुट बत्तीकी रोशनी ज़रूरी होती है।

३. १५ फुट बत्तीकी बहुत अच्छी रोशनी होती है। इस प्रकारकी रोशनीमें ऐसे काम जिनमें आंखों पर ज़ोर पड़ता है आसानी से किये जा सकते हैं और काम करने वाले को कोई तकलीफ नहीं मालूम होती।

४. आदमीकी बनाई हुई रोशनी का ऊंचा दर्जा ५० से १०० फुट बत्ती तक है। इससे तेज रोशनी में काम करने वालेको चका चौंध मालूम देता है। ऐसी तेज रोशनीकी जरूरत खाली बहुत ही बारीक और कारीगरीके कामोंमें जरूरत पड़ती है। ऐसी रोशनी खाली काम करनेकी जगह पर

काममें लाई जाती है और आस पासकी जगहमें हलकी रोशनी की जाती है ।

संकरों (Alloys) की बाधा (resistance) उनके तापक्रमके साथ बहुत कम बदलती है लेकिन धातुओंकी बाधा (resistance) तापक्रम के साथ बढ़ती है और ऐसी चीज़ें जैसे कर्बन (carbon) जो धातु नहीं हैं उनकी बाधा तापक्रम के बढ़ने से कम हो जाती है। अगर 'त' तापक्रम पर बाधा '$ब_त$' और शून्य तापक्रम पर '$ब_०$' हो तो $ब_त = ब_० (१ + बत)$ जहाँ $ब = .००४$। शून्य लैम्प में तापक्रम करीब २३००°श के होता है इस लिये जलते हुए लैम्पकी बाधा ठण्डे लैम्पसे करीब १० गुनी होती है, क्योंकि तापक्रम बहुत ज्यादा होता है इसलिये $ब_त = ब_० बत$ लिख सकते हैं। ४.२ जूलोंके बराबर जब सामर्थ्य खर्च होती है अथवा जब ४.२ जूलोंके बराबर काम किया जाता है तो एक कलारी गर्मी पैदा होती इस संबंधको समीकरणके रूपमें इस भाँति लिखते हैं ।

$$ज ग = का$$

इस समीकरणमें 'ज' ४·२ जूलोंके लिए लिखा गया है, 'ग' गर्मी सूचित करता है और 'का' काम के बराबर है इसी समीकरण से यह भी स्पष्ट है कि जब कभी 'का' काम किया जाता है तो $\frac{का}{ज}$ कलरियों के बराबर गर्मी पैदा होती है ।

जो 'वा' वाट वाला लैम्प होता है तो उसमें 'वा' जूल प्रति सेकंड खर्च होते हैं क्योंकि वाट बलकी इकाई है इसलिए इस लैम्प में $\frac{वा}{ज}$ कलारियों के बराबर गर्मी प्रति सैकंड पैदा होती रहती है, जब लैम्प जलता रहता है ।

स्टीफन (Stefan) के नियमके अनुसार फी सैकंड लैम्पमें से $सत^४$ गर्मी बाहर निकलती रहती है। यहां 'स' स्थिर संख्या है और 'त' विकीर्णक चीज़का तापक्रम केलविन मापके हिसाबसे है। जब लैम्प जलता है तो जितनी गर्मी एक सेकेन्डमें पैदा होती है इतनीही उस समयमें बाहर निकल जाती है वरना लैम्प का तापक्रम बढ़ता चला जाय।

$$इसलिये\ सत^४ = \frac{वा}{ज} = \frac{अ.धा}{ज}$$

क्योंकि 'वा' वाटोंकी संख्या अवस्था भेद और धाराके गुणनफल के बराबर है किन्तु ओह्म के नियम के अनुसार

$$धा = \frac{अ}{ब}$$

$$\therefore सत^४ = \frac{धा^२.ब}{ज}$$

$$\therefore त = \frac{ध^{\frac{१}{२}} ब^{\frac{१}{४}}}{ज^{\frac{१}{४}} स^{\frac{१}{४}}}$$

इससे हमको यह दो समीकरण मिलते हैं

$$वा = स_१ अ^{१.६}$$

$$वा = स_२ ध^{२.७}$$

जहां पर $स_१$ = स्थिर संख्या, जहां पर $स_२$ = स्थिर संख्या। यदि लेम्प ऐसी चीज़ का होता कि जिसकी बाधा तापक्रमके साथ नहीं बदलती तो

$$वा = स_३ अ^२$$

$$वा = स_४ ध^२$$

लैम्प के लिये जो समीकरणों दिये गये हैं उनसे यह विदित है कि यदि लैम्पका वोल्टन १°/० से बढ़ा दिया जाय तो वाट १.६°/० बढ़ जांयगे। वाट के बढ़नेसे लैम्पमें जो हर सेकेण्ड गर्मी पैदा होती है बढ़ जायगी। इससे लैम्प के तंतुका तापक्रम बढ़ जायगा और उसकी रोशनी तथा बत्ती बल भी पहिले से बढ़ जायगा । तन्तुके तापक्रम बढ़नेसे उसका भाप बनना ज्यादा हो जायगा और इस लिये लैम्प की जिन्दगी कम हो जायगी। नीचे

दी हुई सारणीसे यह साफ ज़ाहिर होता है कि लैम्प उतने ही वोल्टन पर जलाये जांय जितना उन पर लिखा होता है क्योंकि कम वोल्टन पर जलाने से पूरी रोशनी नहीं मिलती और ज्यादा वोल्टन पर जलानेसे उनकी रोशनी ज़रूर बढ़ जाती है परन्तु उनकी ज़िन्दगी बहुत कम हो जाती है।

सारणी १.

शून्य लैम्प (Vaccum Lamps)

जिस वोल्टन पर लैम्प जलाना चाहिये	जितने वाट लैम्प में खर्च होंगे	प्रति बत्ती जितने वाट खर्च हुए
१०० से तक १३०	२० ४० ६०	१·४६ १·३६ १·३३
२०० से तक २६०	२० ४० ६०	१·५३ १·४५ १·३८

गैस भरे लैम्प (Gas Filled Lamps)

जिस वोल्टन पर लैम्प को जलाना चाहिये	जितने वाट लैम्प में खर्च होंगे	प्रति बत्ती जितने वाट खर्च हुए
१०० से १३०	३० ७५ २०० १०००	१·१६ ·६४ ·७८ ·६३
२०० से २६०	४० ७५ २०० १०००	१·४२ १·१० ·८६ ·६७

वोल्टन (Voltage) में अंतर पड़ने से शून्य टुलफ्रामम लैम्प के बत्तीबल व वाट और एक बत्ती बल के लिए वाट और धारा में जो अंतर पड़ते हैं नीचे दिये जाते हैं।

सारणी २.

अवस्था भेद अथवा वोल्टन फी सैकड़ा	बत्ती बल	वाटें	वाटें प्रति बत्ती	धारा
%	%	%	%	%
९५	८२·८	९२	१११·२	९७
९९	९६·५	९८·५	१०२·४	९९·४
१००	१००	१००	१००	१००
१०१	१०४·१	१०१·६	९७·६	१००·६
१०५	१२०	१०८·२	९०·२	१०३

एडिसनका जीवन चरित्र

[ले०—श्री हरीलाल पंचौली]

मस अलवा एडिसनका जन्म मीलान में ११ फरवरी सन् १८४७ में हुआ था। ऐसा कहा जाता है की इनके पूर्वज सन् १७३० ई० के लगभग हौलैण्ड देश से आये थे। इनके प्रपितामह सन् १७७८ ई० में एक बंकमें अफ़सर थे और १०४ वर्ष की आयु पाकर मरे । एडिसनके दादाका नाम जोन एडिसन था । मृत्युके समय इनकी अवस्था १०२ वर्ष की थी। इनके पुत्रका नाम सेमुअल एडिसन था। सेमुअल एडिसनके भाग्य में पैतृक संपत्ति बिलकुल नहीं थी। इन्होंने सन् १६२८ ई० में मिस नैन्सी इलियट (Miss Nanoy-Elliott) नाम की एक स्कूल की अध्यापिकासे विवाह किया। उनकी अवस्था बहुत अच्छी थी और चेहरेसे तेज झलकता था इस कारण एक सेनाके कप्तान हो गये थे। सन् १८४२ ई० में ये मीलानमें बस गये। और वहीं व्यापार करने लगे। एडिसन की माता एक पढ़ी लिखी विदुषी थीं उनका जन्म १८१० में न्यूयार्क में हुआ था।

एडिसन पर इनके चरित्र और विद्या का बड़ा प्रभाव पड़ा। इनके दो पुत्र और एक पुत्री थी। बड़े लड़के का नाम विलियम पिट था। यह बचपन ही से ड्राइङ्ग के काम में बहुत निपुण था और वृद्ध अवस्था में मिशिगनमें एक रेलवे लाइन का मैनेजर हो गया था। एडिसन की बहिन मिस टेनी एडिसन बेली (Tannie Edison Baily) पढ़ने लिखने में बहुत होशियार थी और उसका अधिकांश समय लिखने में ही व्यतीत होता था।

एडिसन का स्वास्थ्य उसके पिताके समान अच्छा नहीं था और इसी कारण इनको बहुत समय तक स्कूल पढ़ने के निमित्त नहीं भेजा गया था। इनका सिर इतना बड़ा था कि डाक्टरोंको मस्तिष्क में रोग हो जाने का भय था। भाग्यशाली एडिसन की माता पढ़ी लिखी, सुन्दर और योग्य थी और उन्होंने अपने अनुभव से एडिसन को ऐसी शिक्षा दी जोकि स्कूल में मिलनी असम्भव थी। ऐसा कहा जाता है कि माता का प्रभाव उनके ऊपर इतना पड़ा कि वे जो कुछ भी लाभदायक साहित्य पढ़ते उसको कभी न भूलते। इस छोटी अवस्थामें ही इनको कला कौशलसे बड़ा प्रेम था। उन्होंने स्वयम् कहा है कि जो कोइ भी नई बात उन्होंने पढ़ी अथवा देखी, स्वयम् सिद्ध किये बिना उसको नहीं छोड़ा। बचपन में जब किसी नई वस्तु को देखते तो पिता से इतने प्रश्न लगातार उस वस्तु के बारे में करते कि उनके पिता उत्तर देते देते थक जाते।

इन्होंने घर पर ही अपनी माता से पढ़ा। कुछ इतिहास भी इन्होंने देखा था । गणितमें इनकी बिलकुल रुचि न थी क्योंकि इनकी समझ में न आती थी विक्टरह्यूगो की गल्प कहानियों से इनको इतना प्रेम था कि इनके साथी इनको विक्टरह्यूगो-एडिसन कहते थे। दस वर्ष की अवस्था से इनको रसायन विद्या से बड़ा प्रेम था। ग्यारह वर्ष की अवस्थामें ही इन्होंने घर में एक रसायनशाला खोली जिसमें दो सैा बोतलें अनेक प्रकारके रसायनिक पदार्थोंसे भरी रक्खी थीं और उनके उपर "विष" लिख दिया था जिससे कोई दूसरा उनको न छुए। इस प्रकार इस छोटी अवस्था में शीघ्र ही उनको अनेक प्रकार के रसायनिक पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त हो गया। उनको खेल प्रिय नहीं थे। इस कारण अधिक समय इसी शाला में काम करने में व्यतीत करते थे। इस प्रकार उन्होंने अपना जेब खर्च का सब धन व्यय कर दिया तब माता पिता से किसी प्रकार आज्ञा लेकर अखबार बेचने लगे और इससे जो कुछ मिलता, रसायन शालामें लगाते । कुछ समय पुस्तकालय में किताबें पढ़ने में भी लगाते थे । १८५९ में इन्होंने ग्राण्डट्रङ्क रेल रोड पर पोर्ट हूरोन

और डेट्रोएटके बीच में समाचार पत्र बेचने की अनुमति ले ली। सबेरे ७ बजे यह रेल पर जाते और रात को नौ बजे बापिस आ जाते थे। कुछ दिनों बाद इन्होंने एक साथी लेकर पोर्ट हूरोन पर अखबार बेचने की दूकान खोलली परन्तु शीघ्र ही उठा दी। फिर वे एक्सप्रेस गाड़ी पर अखबार बेचने लगे और इस गाड़ी पर वे शाक पात भी बेचते थे। इस प्रकार ये एक डालर नित्य अपनी मा को देते और शेष रसायन शालामें लगा देते। रेल पर इन्होंने एक छापे की कल भी रखली और लोगों को खबरें छाप २ कर देने लगे। गृहयुद्ध (Civil war) के छिड़जाने से उनको इस काम में अच्छी उन्नति हुई।

कामकी अधिकताके कारण इन्होंने एक मित्रको अपना साथी बना लिया। इस अखबारके कारण उनको प्रतिमास २० से ३० डालर तक मिल जाते थे। उसी गाड़ीमें उन्होंने अपनी रसायनशाला स्थापित कर ली और बराबर उसमें चीजोंको बढ़ाने लगे क्योंकि इनको आमदनी अच्छी हो जाती थी। अभाग्य वश एक दिन गाड़ीको बड़े जोरका धक्का लगा इससे स्फुर (phosphorus) का एक टुकड़ा नीचे गिर पड़ा और आग लग गई। उसी समय गाड़ी के निरीक्षक ने आकर पानीसे अग्नि शान्ति कर दी। दूसरे स्टेशनपर उस क्रोधी निरीक्षक ने एडिसनको गाड़ीपर से उतार दिया और उनकी सब वस्तुएं स्टेशनपर फेंक दी और उनको वहीं छोड़कर गाड़ी चल दी। इस घटना के कारण एडिसनको कुछ कम सुनाई पड़ने लगा और जन्म भर उनका कान ठीक न हुआ क्योंकि निरीक्षकने बड़े जोर का घूंसा उनके कानपर मारा था। एडिसन ने कहा है कि इस बहरेपनसे उनको कई प्रकारके लाभ हुए। तार घरमें अपनी मशीनके सिवाय दूसरी मशीनोंके शब्द नहीं सुनाई देते थे और वे अपना काम ध्यानसे शान्ति पूर्वक कर सकते थे। इस घटनासे हताश न होकर उन्होंने घर पर फिर रसायनशाला खोल ली और साप्ताहिक पत्र वीकली हरल्ड (Weekly Herald) वहीं से छापने लगे। रेल पर वे कभी कभी एन्जिन में जाते थे और उन्होंने अपने आपको कल पुर्जों से खूब परिचित कर लिया और रेल चलाना भी इसी समय सीख लिया।

जब कि एडिसन रेलपर अखबार बेचते थे वे बहुधा तार घरमें जाया करते और इस प्रकार उनको विद्युत् विज्ञानसे अति प्रेम हो गया। उन्होंने अपने और अपने मित्रके घरसे तार द्वारा सम्बन्ध कर लिया। सस्ती बिजली पैदा करनेके लिये बिल्लियोंको रगड़नेमें काम लाते थे यहाँ तक कि वे बेचारी डर कर भाग जाती थीं। उसके पिता ने उसको रात्रिको साढ़े ग्यारह बजे सो जानेका आदेश किया था परन्तु इससे उनको तार द्वारा बात करनेका समय न मिलता उन्होंने यह चाल खेली कि जो पत्र वह बेचने से बचा लाते उनको अपने घर न लाकर मित्रको दे देते और जब पिता पढ़नेके लिये पत्र माँगते तो कहते कि तार के द्वारा सब खबर मँगवा देता हूँ। इस प्रकार रात्रिको एक बजे तक वह काम करते। कुछ दिनोंमें पिता ने उन्हें एक बजे तक जागनेकी अनुमति दे दी और इस प्रकार उन्होंने इस विद्याको सीख लिया एक बार एडिसन ने तेल के अधिकारी (agent) के लड़के को गाड़ीके नीचे आ जाने से बचा लिया, इस पर कृतज्ञ अधिकारी (agent) ने उनको तार घर का काम सिखलाना स्वीकार कर लिया। तीन चार मास तक इस काम को सीखा। इस समय वे अठारह घण्टे तक बराबर काम करते थे इससे उनके काम करने की शक्ति भली प्रकार विदित होती है। इस समय तार में काम करने की एक जगह मिलिटेरी टेलीग्राफ कोर (military telegraph corps) में खाली हुई जहां पर पोर्ट हूरोनके तार घरके आदमी ने एडिसनको करवा दिया। एडिसन वहीं पर रात दिन रहा करते थे दिन भर नौकरी कर रात्रिको समाचारोंकी नकल करते जिससे उनकी योग्यता बहुत बढ़गई। सन् १८६३में

उनको ग्राण्ड ट्रङ्करेलरोड पर एक तार घरमें काम करनेकी जगह मिल गई। रात्रिको वह इस बातको समझनेकी कोशिश करते कि समाचार क्यों तारके द्वारा आ जा सकता है और मशीन किस प्रकारसे काम करती है. एक बार उनको ८० बाटरियाँ जो कि रद्दकी जा चुकी थी ले लेनेकी आज्ञा हो गई जिससे कि उसको परगैप्यम् (platinum) धातुके बिजलोद् (electrodes) बहुत से मिल गये और ४० वर्ष तक बराबर काम देते रहे। एक दिन उन्होंने भूल से गाड़ी छोड़ दी जिस समय कि दूसरे स्टेशन से भी गाड़ी छूट चुकी थी अपराध हो जाने के डर से वे वहाँ से भाग कर सारनिया चले गये एक बार बर्फके जम जानेसे तार टूट गये और बातें करना असम्भव हो गया। एडिसन ने रेलकी सीटी से तरह तरह के शब्द निकालकर संकेत द्वारा बात करनेकी अनोखी चाल सुझाई।

अबसे एडिसन् के पाँच वर्ष इधर उधर भटकने और जहाँ तहाँ नौकरी करने में बीते। स्ट्रेटफोर्ड जंकशन से नौकरी छूटतेही उनको एड्रियन में एक जगह तार घरमें मिल गई। उन्होंने रात्रिमें ही काम करना पसंद किया जिसको कि दूसरे आदमी न चाहते थे, कारण कि उनको रात्रि में आविष्कार करनेके काममें अधिक सरलता मिलती थी। एक दिन सुपरिन्टेन्डेन्टने इनके ऊपर झूठा दोषारोपण किया जिससे ये नौकरी छोड़ कर टोलिडो चले गये और फोर्टवेन में नौकरी कर ली। यहां पर दिनमें काम होनेके कारण इनको रुचिकर न हुआ और ये सन् १८६४ ई० के अंतमें वेस्टर्न यूनियन टेलीग्राफ कंपनीके यूनियन स्टेशन में ७५ डालर मासिक वेतन पर नियुक्त हुए। यहां के सुपरिन्टेन्डेन्ट वालिक महोदय ने इनको कुछ यन्त्र उधार काम करनेके लिये दिये परन्तु एडिसन यहांसे १८६५ की फरवरीमें नौकरी छोड़कर सिनसिन्नेटी चले गये और यहां ४० डालर मासिक वेतन पर एक कम्पनीमें नौकरी कर ली। यहां पर उन्होंने एडेम्स महोदय से मित्रता करली एडेम्स महोदयकहते हैं कि एडिसन १८ वर्षके दुबले पतले एकान्त प्रेमी युवक थे और इधर उधर नौकरी की फिक्रमें फिरते थे। अपने धंधेमें वे अपना सानी नहीं रखते थे और चन्दही लोग उनकी होड़कर सकते थे। उनका बहुत समय बाटरियोंके साथ उलझे रहने में ही व्यतीत होता था। उनको दुःखान्त नाटक अधिक प्रिय थे। इस कारण कभी ओथेलो का नाटक देखने जाया करते थे। यह किसी भी आदमीकी एवजमें काम करने को हर समय तैयार हो जाते इससे इनका अभ्यास (प्रेक्टिस) इतना बढ़ गया कि यह तारका काम करने वालोंमें प्रथम श्रेणीके माने जाने लगे। इनका वेतन १२५ डालर कर दिया गया परन्तु ये उसी समय दक्षिणमें चल दिये क्योंकि तार घरके काम करने वाले मुफ्तमें जा सकते थे और उनकी उन दिनोंमें मांग भी अधिक थी। यहां पर एक जगह नौकरी करली परन्तु शीघ्रही छोड़नी पड़ी। उनके पास खानेको धन भी न रहा। बड़ी कठिनता से ये लूईविले पहुँचे। यहां वे ३ वर्ष तक रहें यहां पर भी ये तार घरमें काम करते रहे। एक बार इनको दक्षिण अमेरिका जानेकी इच्छा हुई क्योंकि वहां पर तारका काम करनेवालोंकी बहुत आवश्यकता थी और ये न्यूआरलिअन्स तक जहाजमें बैठनेके लिये चले आये परन्तु वहां एक मनुष्यके समझानेसे जो कि मेक्सिको पीरो वगैरह का वास्तविक रहस्य जानता था, ये जानेसे रुक गये। यह फिर लूईविले में आकर काम करने लगे। यहां इनका समय पढ़ने और विद्युत् विज्ञान पर काम करनेमें ही जाता था। इनकी विद्याकी प्रबल इच्छाके कारण से ही यहां की नौकरी भी इनके हाथ से निकल गई। जहां कहीं भी ये जाते वहां कुछ न कुछ नई बात करने की कोशिश करते और इससे ही झगड़ा होकर नौकरी छूट जाती। यहांपर एक दिन गन्धकाम्ल लेनेके लिये ये उस कमरेमें गये जहांपर जानेकी आज्ञा नहीं थी। बोतल उलट गई, तेजाब नीचे मैनेजरके दफ़्तरमें बह गया और टेबिल और

दरी वगैरह सब खराब हो गई। दूसरे दिन ही इनको बुलाया गया और कह दिया गया कि कम्पनी काम करनेवालोंको चाहती है, आविष्कारकको नहीं। इनको उनका वेतन मिल गया और नौकरीसे हाथ धो बैठे। यह बात सबको विदित हो गई थी की इनको काम करने और पढ़नेसे अति प्रेम है। इनको समाचारों की खबर बहुत रहती थी क्योंकि यह समाचार पत्र स्वयम् बहुत पढ़ते थे। यहांसे ये सिनसिनाटी (Cincinnati) वापिस चले गये और रात्रि की नौकरी उनको फिर मिल गई। आफिसके ऊपरके कमरे में वे रहने लगे। उन्होंने सुपरिंटिंडेण्ट सोमर्स महोदयसे घनिष्टता करली और उन शस्त्रोंको लेनेकी अनुमति लेली जिन का कि कम्पनीको काम नहीं पड़ता था यहां पर वे बहुत दिन न ठहरे और थक कर पोर्टहुरोन (Port Huron) में घरको चले गये। यहांसे उन्होंने अपने मित्र एडम्स (Adams) को जो कि बोस्टन (Boston) में थे नौकरीके लिये लिखा। एडम्स (Adams) ने उनको तत्काल बुला लिया और वेस्टर्न यूनियन आफिस (western union office)में नौकरी दिलवा दी। वहांके दूसरे काम करने वालों ने इनका मजाक उड़ाने के लिये एक ऐसी जगह काम करनेके लिये बिठलाया जहां कि न्यूयार्क (New york) का सबसे जल्दी खबर भेजनेवाला तार देता था, परन्तु ये तो अपने काममें पूर्ण दक्ष थेही इससे सरलता ही से इन्होंने इसके सब समाचार लिख लिये जिससे वहांके मनुष्योंको बड़ा ताज्जुब हुआ और फिर वे एडिसनको आदर कि दृष्टिसे देखने लगे। इनको पत्रोंके (press) समाचार लेनेसे घृणा थी क्योंकि यह काम लगा तार करना पड़ता था इस कारण इनको पढ़ने की फुरसत नहीं मिलती थी। उनको विद्युत् विज्ञानके सिद्धान्तोंको जाननेकी बड़ी इच्छा थी। उनको अपनी सूरत अथवा कपड़े पर बिलकुल ध्यान नहीं था, परन्तु वैज्ञानिक यंत्र मोल लेने में वे कभी नहीं हिचकते थे। एक बार उन्होंने ३० डालर का एक सूट बनवाया और वह दूसरे दिन ही अम्लसे फट गया। उन्होंने कहा कि नये सूटको पहिनकर मैंने यह पाया। एडम्स कहता है कि फैरेडे (Faraday) की किताबें वे सायंकाल ४ बजे से सवेरे तक पढ़ते रहे और फिर कहा मित्र जीवन तो थोड़ा है और मुझे बहुत काम करना है।

बोस्टन (Boston) में एडिसनने कई आविष्कार किये। उन्होंने एक वोट लेखक (vote recorder) बनाया और सोनेका व्यापार करनेवाली कम्पनीके लिये स्टोक टिकर (stock ticker) बनाया, जिस का प्रचार बहुत शीघ्र हो गया। एक दिन एक अवेश वेठन (induction coil) के दोनों बिजलोद (electrodes) उन्होंने पकड़ लिये जिससे उनके हाथ उसमें चिपकगये। उन्होंने बिजलीका सम्बन्ध तोड़नके लिये बेठन (induction coil) खेंचा जिस से बाटरी (battery) गिर पड़ी और नोषिकाम्ल (nitric acid) उनके कपड़ों और मुँह पर गिर पड़ा, सब कपड़े फट गये और मुह पोला हो गया। २ सप्ताह तक वे घर से बाहर न निकले। १८६८ ई० में एडिसन न्यूयार्क (New york) आये और स्टोक प्रिन्टर (stock printer) बेचनेकी बहुत कोशिशकी परन्तु फलीभूत न हुए। वे (Boston) बोस्टन वापिस गये और एक दो तरफा तार (duple telegraph बनाया जिससे कि वे एकही तारसे दो खबरें साथ भेज सकते थे। इससे उनको कोई लाभ न हुआ। और उनकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई। इसी आवस्थामें वे न्यूयार्क (New york) १८६६ में आये। यहां ये गोल्ड इन्डिकेटर कम्पनी (Gold indicator company) के बाटरी वाले कमरे में ठहरे और वहांके कल पुर्जों को ध्यान से देखने और समझने लगे। एक दिन उनमें कुछ खराबी हो जाने के कारण बड़ी अड़चन पड़ी और वहांके आदमी से ठीक न हो सकी। एडिसन ने उसकोतुरन्त ठीक कर दिया जिससे वहांके अधिकारी ने प्रसन्न होकर उनको ३०० डालर मासिक

वेतन पर सबके ऊपर नियुक्त किया। इस वृद्धिसे उनको अत्यन्त आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। कंपनी के प्रधान (president) ने एडिसनसे स्टोकटिकर (stockticker) को और अच्छा बनाने की प्रार्थना की और उनको पर्याप्त धन दिया। एडिसन कहते हैं कि मैंने इस समय बहुतसे आविष्कार किये। एक खास स्टोकटिकर (stock ticker) बनाया जोकि बहुत ही साधारण था। यही लंदन (London) के स्टोक एक्सचेंज (stock exchange) में भी काममें लाया गया। बहुतसे आविष्कारोंके बाद मैनेजर ने इनको आविष्कार करनेकी मनाइ कर दी और इनको ५०००० परितोषिक दिया जिसको इन्होंने अत्यन्त कौतूहल तथा आश्चर्यसे लिया क्योंकि ये इसको अपने कामके उपलक्षमें बहुत भारी रकम समझते थे। इस प्रकार थोड़े ही समयमें एडिसन गरीब से स्वतन्त्र हो गये। इस समय ये काममें इतने लगे हुए थे कि न्यूयार्क (New york) में तीन दुकाने खोल रक्खी थीं। इसी समयसे इनके आविष्कारों का आरम्भ होता है और १८६६ से १९१० तक इन्होंने १३२८ विशिष्टाधिकार पत्र (पेटेंट) लिये। सबसे अधिक आविष्कार इनके १८८२ में हुए। इन्होंने एक यन्त्र बनाया जिससे १ मिनिट में १००० शब्द न्यूयार्क (Newyork) और वाशिंटन (Washington) के बीचमें भेजे जा सकते थे। मामूली यन्त्र ४० व ५० से अधिक शब्द नहीं भेज सकते थे। कम्पनी ने अब एक दुकान का अधिकार जिसमें २५००० के यन्त्र खरीदे गये एडिसनको दे दिया जिसमें वे आविष्कार करें। उन्होंने ऐसा यन्त्र निकाला जिसमें कि रोमनलिपि (Roman) में अपने आप तार द्वारा एक मिनिट में ३००० शब्द लिखे जाते थे। सन् १८७३ ई० में एडिसन स्वयम् तार लेखक (automatic telegraphic) यंत्रको समझानेके लिये इङ्गलैण्ड भेजे गये। पहिले तो कृतकार्य न हुए क्योंकि बाटरियां (batteries) वहां काफ़ी शक्तिकी न मिलीं, परन्तु अच्छी बाटरी (battery) मिलने पर इनको अपने काममें पूर्ण सफलता हुई। अन्तमें स्वयम्-लेखक-रीति (automatic system) का इंगलैण्डमें प्रचार हो गया परन्तु एडिसनको एक पाई भी उनके कार्य्यके उपलक्षमें न मिली। एडिसनके बारेमें एक अखबार लिखता है मिस्टर एडिसन एक नवयुवक हैं जिनको यंत्र कलाका पूर्ण ज्ञान है और बिजलीके काममें पूर्णतया अनुभवी हैं। उन्होंने एक ही समयमें कई शाखाओंमें आविष्कार किये। अब इनका चित्त दो तरफा और चौतरफा तार भेजनेकी विधि (duplex telegraphy & quadruplex telegraphy) यंत्र निकालनेमें लगा हुआ था। इन यंत्रोंके आविष्कारसे कंपनियोंका खर्चा बहुत घट गया क्योंकि अब लाइनमें उतने तारों की आवश्यकता न रह गई। इन सब आविष्कारोंके करनेमें तारोंकी लंबाई इत्यादि सोचकर मनुष्यका चित्त विच्छिन्न हो जाता है और वह घबराता जाता है परन्तु एडिसन सदा यही ख्याल रखते थे कि वे एक कमरेसे दूसरे कमरे तक ही काम कर रहे हैं इस कारण इनको कठिनाई नहीं पड़ती थी। इन आविष्कारोंके कारण एडिसनको बहुत धन मिला और इससे इनका काम अच्छी तरह चलता रहा। कभी कभी जब यंत्रोंकी माँग बहुत हो जाती तो ये अपने आदमियोंको तालेमें बन्दकर देते और जब सब यंत्र बनकर तैयार हो जाते उनको जाने देते थे।

अब इनका ध्यान वाणी ग्राहक (telephone) की ओर खिंचा। बैल (Bell) ने इस यंत्रका आविष्कार किया था परन्तु सर्व साधारणमें इसका प्रचार नहीं हो सकता था। कारण कि शब्द बहुत धीमे सुनाई पड़ते थे। सन् १८७६ ई० में एडिसन ने इस कठिनाई को दूर करनेका भार अपने ऊपर लिया न्यूयार्क और वाशिंगटनके बीचमें इसकी जाँच होने लगी। पहिले तो बाज़ारके शोर गुलकेमारे कुछ सुनाई ही न पड़ता था। फिर उन्होंने कर्बनके प्रेषक (carbon transmitter) बनाकर

इस कठिनाईको दूरकर दिया और तार वाणी (tele phone) जनतामें प्रचलित हो गई। ओरटन (Mr. Orton) एक कम्पनीके मैनेजर ने इनको इस काम के उपलक्षमें १००००० डालर देकर आविष्कार ख़रीद लिया। एडिसन ने इस धनको एक साथ न लिया क्योंकि इनको डर था कि ये उसको बहुत शीघ्र व्यय कर देंगे, इस कारण ६००० डालर प्रति-वर्ष लेनेका प्रबन्ध कर लिया। एक विशिष्टाधिकार (patent) उन्होंने उसी कंपनीके लिये और दिया और १००००० डालर इनको फिर मिले इस प्रकार इनको आमदनी १२००० डालर प्रतिवर्ष हो गई।

दो वर्ष बाद इन्होंने खड़िया ग्राहक (chalk receivers) बनाये जिससे कि बहुत ज़ोरकी आवाज़ आती थी, लंदन की एक कंपनीने इसको ख़रीद कर इनको ३०००० पौंड दिये। एडिसनके इस ग्राहक का प्रचार बैल (Bell) के ग्राहकके कारण न हुआ क्योंकि बैल (Bell) का ग्राहक बहुत सरल था। इनके ग्राहक का प्रचार इंगलैंडमें भी खूब हुआ और बहुत लोगों ने इनकी बुद्धिकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की। इन्होंने वाणी प्रेषक (microphone) भी बनाया जिससे कि आवाज बढ़ाई जा सकती है।

एडिसनके सन् १८७७ ई० के आविष्कारके पहिले कोई ऐसा यंत्र नहीं था जिससे कि मनुष्यों के शब्दोंको इस प्रकारसे रक्खा जाये कि उनका प्रयोग किसी समय भी किया जा सके चाहे वह मनुष्य रहे अथवा न रहे। इस यंत्रके आविष्कार से जो लाभ संसारको हुआ है वह किसीसे छिपा नहीं है। सभ्यता समय समय पर अपना चोला बदलती है और देशके रहन-सहन रीति रिवाज और भाषामें आकाश पातालका अन्तर हो जाता है। उदाहरणार्थ टर्कीहीको देखिये जहां कि सामाज और बोलीके एकदम बदल जानेके अतिरिक्त अरबी लिपी भी उठा दी गई। स० १८७७ के पहिले यह बात असम्भव थीकि भाषाके बोलनेका तरीका, उ र के उच्चारण (accent) आदिका भविष्यके मनुष्यों को मालूम हो सकते। परन्तु एडिसनने सन् १८७७ में वाणीचित्रक (phonograph) का आविष्कार करके इस बात को नितान्त संभव बना दिया। एडिसन का वाणीचित्रक (phonograph) आजकल कासा नहीं था। बादमें लोगों ने बहुत से सुधार इसमें किये हैं परन्तु यन्त्रके बनानेका सिद्धान्त वही है। लोगोंका कहना है कि आविष्कारकोंको नई बातें संयोगवश मालूम हो जाती है परन्तु हम एडिसनके बारेमें ऐसा नहीं कह सकते। उनमें काम करनेकी सिद्धान्त समझने की और यन्त्रोंका आविष्कार कर लेने की अद्भुत शक्ति थी। वह लगातार उद्यम करनेका फल था अब तक जो आविष्कार उन्होंने किये उनसे उनको बहुतसे नये सिद्धान्त मालूम हुए और उन्हीं की सहायतासे अनेक तर्क वितर्क मनमें करनेके बाद वे वाणीचित्रक (phonograph) बनानेमें सफल हुए। जब और लोगोंको मालूम हुआ कि एडिसन एक यन्त्र द्वारा मनुष्योंकी आवाज़की ठीक उसी प्रकार जैसे मनुष्य बोलता है, फिरसे निकाल सकते हैं तो उनको विश्वास न हुआ परन्तु जब एडिसन ने लोगोंके सामने कई प्रकारकी बोलियोंको बोलकर उस यंत्रसे उन्हीं शब्दोंको बोलवाया तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। बहुत समय तक तो लोगोंको यही विश्वास रहा कि कोई चाल है। एक दिन एक आदमी इनके पास आया। वह एक गिरजेका पादरी था। उसने एडिसनसे कहा कि यदि यंत्र मेरे शब्दोंको दोहरा दे तो यंत्र सच्चा है। एडिसनने परीक्षार्थ उसे निकाला। पादरी ने बहुत जल्दी बहुतसे नाम बाइबिलमें से बोले जिनको यन्त्र ने ठीक उसी तरह दोहरा दिया। इससे पादरीको विश्वास हो गया क्योंकि उसको विश्वास था कि इनके बराबर जल्दी अमरिकामें कोई मनुष्य उन नामोंको नहीं बोल सकता।

संसार भरमें वाणी चित्रक (phonograph) की हलचल मच गई। भीड़की भीड़ उसको देखने व

सुनने आती। स्पेशलें जगह २ छूटने लगीं। सबजगह एडिसनकी ही चर्चा थी। दूसरे देशोंमें इनके बारेमें तरह तरह की अफवाहें उड़ती थीं। पेरिसके एक पत्रने लिखा कि एडिसनका अपने ऊपर अधिकार नहीं है। वह एक कंपनीका धन है। उसको हिलने तक की आज्ञा बिना अनुमति लिये नहीं है, और न वह अपने बारेमें बिना आज्ञा कुछ सोच सकता है। ऐसी ऐसी गप्पें उन दिनोंमें एडिसनके बारेमें उड़ती थीं। सच तो यह है कि लोगोंके ख़यालमें एडिसन अद्भुत शक्तिवाले विचित्र मनुष्य थे। कई महीनों तक इस यन्त्रकी बड़ी धूम रही। अमेरिकाके प्रेसिडेण्टने एडिसन बुलवा कर इनके यन्त्रको देखा और सुना। एडिसन ने इस यन्त्रसे बहुत से लाभ लिखे हैं, इसी प्रकारके एडिसनने और भी कई यन्त्र निकाले। मेगाफोन (megaphone) में शब्दको प्रबल (magnify) किया जाता है। एक यंत्र,एक्रोफोन (acrophone) था जिससे भापके जरियेसे मनुष्यकी बोलीकी नक़लकी जाती थी और डेढ़ मील तक आवाज़ जाती थी। एडिसनने एक आवाज अंजन (voice engine) या फोनोमोटर (phonomotor) बनाया जिससे कि संगीतसे (vibration) खिलौने आदिको चलाया जा सकता था।

इन सब आविष्कारोंमें वे काम करते करते थक कर एडिसन उकता गये और एक ज्योतिषियों की पार्टीके साथ सन् १८७८ में पश्चिममें चले गये। उस समय सूर्य ग्रहण पड़ने वाला था और उसीके बारेमें कुछ अनुसन्धान करने ज्योतिषी लोग जा रहे थे। कुतूहल और भी अधिक था क्यों कि सूर्य्यका खगग्रास होने वाला था जो कि बहुत कम होता है। एडिसनको भी अपने ताप व दबाव मापक (tasimeter) की परीक्षा करनी थी परन्तु उनका यन्त्र बहुत ही तीव्र सूचक (sensitive) था इस कारण ये उसमें फलीभूत न हो सके। दो मास उन ज्योतिषियों का छुट्टीमें बीता परन्तु एडिसन एक मासमें ही अपनी यंत्र शालामें आ बिराजे और रास्तेमें उठे हुए भावों पर विचार करने लगे। (क्रमशः)

शून्य

(लेखकः—श्री त्रिवेणी लाल श्रीवास्तव तथा श्री रघुनाथ सहाय भार्गव बी० एस-सी०)

मन में पहिला प्रश्न यही आता है कि शून्य क्या वस्तु है। साधारण लोगों का यह विचार है कि जहां कुछ भी न हो उसे शून्य कहते हैं। उस स्थानमें वायु हो तो कोई बात नहीं। यदि आप एक खाली गिलासका ध्यान करें तो आप यही सोचेंगे कि उसमें वायु छोड़ कर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। परन्तु आप उसमें वायुकी उपस्थिति किस प्रकार सिद्ध करेंगे। उसे आप एक पानी भरे बरतन में उलट कर रखिये और ऊपर से दबाइये आप देखेंगे कि पानी उसमें चढ़ रहा है। किन्तु सारे ग्लास में पानी न भरेगा। पर इससे हम यह सिद्ध नहीं कर सकते कि वह ग्लास हवा से पूरा नहीं भरा था। ग्लास की हवा उपर से दबाने में भीतर सिकुड़ जाती है। और उसमें पानी भर आता है। चाहे आप उस ग्लास को कितना ही दबावें पानी उसमें पूरा नहीं भर पावेगा। क्योंकि उसमें की हवा संकुचित होकर थोड़ेसे परिमाण में भीतर रह जावेगी।

ऐसे ग्लास को वास्तव में शून्य गिलास नहीं कह सकते। शून्य स्थान में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं रहनी चाहिये जिसे हम अपनी इन्द्रियों से अनुभव कर सकें।

अब यदि शून्य स्थान उसे कहते हैं जहां कुछ भी न हो तो साधारणतया यह आश्चर्य मालूम होता है कि ऐसे शून्यके विषयमें हम क्या जानना चाहते हैं। हमारी खोजका अब एक विशेष विषय

यह होगा कि हम किन किन उपायोंसे किसी स्थानको शून्य बना सकते हैं। हमारे सन्मुख सबसे सरल उपाय यह था कि उस ग्लासकी हवाको हम अपने स्वांस द्वारा मुंहसे खींचलें। किन्तु हम देखते हैं ऐसा घंटों तक करनेपर भी यह स्थान शून्य नहीं हो पाता। क्योंकि जितनी हवा हम एक स्वांसमें खींचते हैं दूसरे वार स्वांस लेते तक उतनी ही हवा उसमें भर जाती है और वह स्थान फिर वैसा ही हो जाता है।

शून्य बनानेमें जो कठिनाइयां पड़ती थीं उसी से प्राचीन विज्ञानवेत्ताओं ने यह सिद्ध किया कि कोई स्थान शून्य नहीं हो सकता। किन्तु अब यह बड़ी सरलतासे किया जा सकता है। इसलिये इस बातका ज्ञान प्राप्त करना बड़ा मनोरञ्जक होगा कि वैज्ञानिक संसारने शून्य स्थान स्थापित करने में कैसे उन्नतिकी और उन्हें किन किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

हमारी खोजका दूसरा विषय होगा कि हम उसकी महत्ताको जाने तथा यह भी जानने का प्रयत्न करें कि इस शून्यसे हमारे घरोंमें, कारखानों में, रेलोंमें तथा अस्पतालों में कैसी कैसी सहायता मिलती है।

इसका अभी तक निर्णय नहीं हो सकता है कि शून्यका विचार लोगोंके हृदयमें कबसे आया किन्तु हम यह कह सकते हैं कि इस बात का ज्ञान विक्रमी सम्बत् के बहुत पहिले रहा होगा। जब कि भारतवर्ष और यूनान विद्याके केन्द्र थे। कई शताब्दियों तक भारतीयके दर्शनशास्त्र वेत्ताओं के आत्मवाद तथा यूनानके वैज्ञानिकोंके ज्ञानका खूब आदर रहा और ये लोग संसारमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। यूनानके प्रसिद्ध विद्वानों सुकरात प्लैटो और अरस्तूके नाम आते हैं। इस बीसवीं शताब्दी में इन विद्वानों के ग्रन्थ पढ़े जाते हैं। उन पर वाद-विवाद होते हैं। तथा अपने सिद्धान्तोंके पुष्टिके लिये उनके ग्रन्थोंको उद्धृत करते हैं। इन ग्रन्थोंको उतनाही महत्व दिया जाता है जितना वर्तमानकालके ग्रन्थों को।

जब यूनान उन्नति के शिखर पर था तब वहां के एक विद्वानों को 'शून्य' की धारणा हुई पर हम यह नहीं कह सकते कि उसके मनमें यह धारणा कैसे आई। क्योंकि वह स्वयं 'शून्य' कभी नहीं बना सका।

शून्य बनाना अति कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है इसी बातकी ओर वैज्ञानिकोंके ध्यानको आकर्षित करनेके लिये कदाचित् उसने यह चरचा की थी। आगे चल कर जब शून्य उत्पन्न करनेमें लोगोंको बारम्बार असफलता मिली तब उन्होंने यह परिणाम निकाला कि प्रकृतिका शून्यसे विरोध है। यद्यपि यह एक वैज्ञानिक विचार नहीं है पर इस सुन्दर वाक्य से यह सिद्ध होता है कि प्रकृतिमें कोई स्थान शून्य नहीं रहता।

अरस्तू उस समय के एक बडे दार्शनिक थे। शून्य विषय में उनका यही विचार था। उन दिनों लोग अपने मतको सिद्ध करनेके लिये प्रयोग नहीं करते थे केवल तर्क किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करते थे। यदि वे अपने तर्कसे ज्ञानकी पुष्टि प्रयोगों से करते तो सम्भव था उनसे इतनी त्रुटियां नहीं होतीं। यदि उनकी त्रुटियोंका अन्त उन्हींके साथ होता तो वैज्ञानिक संसारको इतनी हानि न होती पर जब वैज्ञानिकों को यह मालूम होता कि इस मत को अरस्तू जैसे विद्वान लोगों ने स्वीकार कर लिया है तो उनके हृदयपर उसका प्रभाव पड़ता था, और वे यही सोचते कि यह मत निर्विवाद होगा। इन विद्वानोंके विरुद्ध आवाज उठाने का उन्हें साहस न होता था और यदि कोई ऐसा करता भी तो वह दण्डका भागी होता। परन्तु अब समयमें परिवर्तन हो गया है। अब व्यक्तित्व का प्रभाव नहीं पड़ता। प्रयोग द्वारा सिद्ध समस्याओं का ही आदर होता है। अरस्तू ईसा मसीह के चार सौ वर्ष पूर्व हुए थे लेकिन ईसा के १६३० वर्ष पश्चात् भी फराँसीसी विद्वान डाक्टर

'जीनरे' लिखते हैं कि इसमें कोई संशय नहीं कि शून्य जो कि केवल शून्य ही है प्रकृतिमें कोई स्थान नहीं पा सकता। उपरोक्त लेखसे पता चलता है कि १७ वीं शताब्दी तक अरस्तूके इस भ्रमात्मक विचारका प्रभाव बना रहा किन्तु इसी समयसे लोगोंको इस बातमें सन्देह होने लगा था कि वास्तवमें प्रकृतिका शून्य से विरोध है या नहीं।

जीनरेके उपरोक्त लेख प्रकाशित होनेके कुछ वर्ष पूर्व इटालीमें एक विचित्र घटना हुई। टसकनी के महाराजा ने अपने महलमें पानी पहुँचानेके लिये एक कूआं खोदने की आज्ञा दी। खोदनेपर पता लगा कि पानी धरातलसे ४० फीट नीचे था। उन दिनों पम्प की उयोगिता लोगों को अच्छी तरह मालूम थी, इसलिये लोगों ने पम्प द्वारा महल तक पानी पहुँचानेका उद्योग किया पर अनेक उद्योग करने पर भी उससे पानी ३३ फीटसे उंचा नहीं चढ़ा सके। परन्तु उसकाल तक पम्पसे सफलता पूर्वक काम होता था इससे लोगोंको यह सन्देह हुआ कि पम्प कहींसे चूता है। लगातार प्रयत्न करते रहने पर भी उस पम्पमें किसी छिद्र का पता न चला। वे इस रहस्यको समझ न सके।

अन्तमें जब प्रत्येक उपाय करके थक गये तब उन्होंने जगत् विख्यात वैज्ञानिक गैलेलियो का सहारा लिया,—जोकि अपने वैज्ञानिक खोज और आविष्कारोंसे प्रसिद्ध हो गया था। किन्तु गैललियो भी इस समस्या को हल न कर सके। कहा जाता है कि उन्होंने उत्तर दिया कि सम्भवत: प्रकृति का शून्यसे विरोध ३३ फीट के ऊपर नहीं रहता।

गैललियोके इस उत्तरके अर्थ समझनेके लिये हमें यह जानना चाहिये कि पम्प का उपयोग किस प्रकार होता है। जो कि अरस्तू के समय के पहिले भी प्रचलित थे उनका यह विचार था कि जब पम्पका गट्टा (Piston) उठाया जाता है तो पम्पसे शून्य की उत्पत्ति हो जाती है। पर प्रकृतिका शून्यसे विरोध होनेके कारण इस शून्यस्थानमें जहां पहिले हवा थी अब पानी भर जाता है। इटलीके उपरोक्त कूएेमें पानी ३३ फीट की ऊंचाई तक सरलता से चढ़जाता था परन्तु उसके पश्चात् यदि गट्टा उपर खींचा जाता था तो पम्पके शेष भागमें शून्य अवश्य उत्पन्न होता था किन्तु पानी ऊपर नहीं बढ़ता था। इन्हीं कारणोंसे गेललियोने कहा था कि प्रकृतिका शून्यसे ३३ फीटके ऊपर विरोध नहीं होता पर उपरोक्त ३३ फीट तक ही क्यों होता है। गैललियोके इस उत्तरसे दूसरे वैज्ञानिकोंको सन्तोष न हो सका और उन्होंने कहा कि इस समस्याको हल करनेके लिये हमें दूसरे मत का सहारा लेना पड़ेगा। इस विषयमें इस प्रकारकी जटिल समस्याओंको लगातार बहुत दिनों तक कोई हल न कर सका पर इटलीकी इस घटनासे यह निश्चय हो गया कि प्रकृति का शून्यसे सदैव विरोध नहीं रहता है तथा शून्य की रचनाकी जा सकती है। यह निश्चय होनेके पश्चात् शून्यकी रचना करने के लिये लोगों ने अधिक प्रयत्न किये तथा अन्तमें यह विश्वास हो गया कि शून्यके विषयमें यूनानियोंके विचार भ्रमात्मक थे जैसा की हम आगे चल कर देखेंगे।

गैलेलियो कोपरनिकन सिद्धान्तका एक प्रधान पुष्टिकर्त्ता था। कोपरनिकन पैालेन्ड का एक सुविख्यात ज्योतिषी था जिसने कि १६ वीं शताब्दी के प्रथम भागमें यह सिद्ध कर दिया था कि सूर्य पृथ्वीकी प्रदक्षिणा नहीं करता परन्तु पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। परन्तु यह नया सिद्धान्त क्रिस्तानों की पवित्र पुस्तक बाइबिलके विरुद्ध था इसलिये गिरजा घरके अधिकारियोंने गैलेलियो पर यह दोष लगा कर उसे दण्ड देना निश्चय किया। उसे वृद्धावस्था में उन्होंने कैदखाने (कारागार) में रक्खा पर उसे अपने पास एक दो मित्र रखनेकी इजाजत दी। उनके इन मित्रों में एक टोरसिली था। उसने गैलेलियोसे विज्ञानके कुछ सिद्धान्त सीख लिये पर अधिक अध्ययन करने का अवसर उसे न मिला।

यद्यपि गैलेलियो ७० वर्ष तक जीवित रहे पर ऐसे विद्वान पुरुष के लिये यह अवस्था भी थोड़ी ही थी। उसके सन्मुख ऐसी समस्याएँ उपस्थित थीं। उसके समय में जल-घड़ीका उपयोग होता था। एक बड़े घड़े में पानी भर दिया जाता। उस पानीके ऊपर एक कटोरा रक्खा जाता उस कटोरेके पेंदेमें एक ऐसा छेद होता जिसके द्वारा उस कटोरेमें पानी भर जाता और वह कटोरा उस घड़ेमें डूब जाता। उस कटोरेमें नित्य प्रति एक निश्चित समयमें पानी भरता और उसीसे समय की गणनाकी जाती पर गैलेलियो ने यह सबसे प्रथम पता लगाया कि जब किसी धातुका एक गोला डोरीसे या तारसे बाँध कर लटका दिया जाय और उसको झुलाया जाय तो एक झोंटा पूरा होने में जो समय लगता है वह सदैव एक ही रहता है अर्थात् छोटे से छोटे झोटोंमें उतना ही समय लगता है जितना कि सब से बड़ेमें अपने मरनेके पहिले वे अपने इस विचार को अपने पुत्रको बता गये कि इसी सिद्धान्त पर घड़ी (Clock) बनायी जा सकती है। और वर्तमान कालके बड़े घण्टे (Clock) उसी सिद्धान्त के आधार पर बनाये जाते हैं। उसके सन्मुख दूसरा प्रश्न यह रह गया था कि उपरोक्त इटलीके कूयें का पानी पम्पके द्वारा ४० फीट तक क्यों नहीं चढ़ सका। यह विश्वास किया जा सकता है कि उन्होंने इसकी चर्चा टोरिसिलीसे की होगी क्योंकि उनकी मृत्युके बाद शीघ्र ही टोरिसिलीने उस समस्याके हल करनेके लिये प्रयोग आरम्भ कर दिये थे।

टोरिसिली ने सोचा कि पारा पानीसे १४ गुना भारी है यदि पानी के बदले पारे का उपयोग किया जाय तो वह लगभग ३३ फीट का १४ अंश अर्थात् ३० इंच ऊपर चढ़ेगा। इस अवस्थामें उसे एक छोटी कांचकी नलीकी आवश्यकता होगी। यह नहीं कहा जा सकता कि उसने वास्तवमें पारेको पम्पसे चढ़ाने का प्रयत्न किया पर १६४३ ई० में उन्होंने अति उत्तम प्रयोग किया जो आजतक उस के नाम पर टारसिलियन प्रयोग कहलाता है। इस प्रयोगके करनेमें उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि उनको ३ फीट लम्बी कांचकी नली सरलतासे न मिल सकी। उन दिनों कांचकी नली बनाने तथा कांचके व्यवसाय की आजकलके समान उन्नति नहीं हुई थी। उसका अधिक समय नष्ट हुआ। उन दिनों टोरसिली कुछ गणितकी समस्याओंको हल करनेमें निमग्न हो रहे थे इसलिये वे इधर अधिक ध्यान न दे सके और उन्होंने विवियानी को यह प्रयोग करनेके लिये कहा।

विवयानी ने निम्न लिखित प्रयोग किये:— उसने एक बड़े बर्तनमें पारा लिया और एक ३ फीट लम्बी कांचकी नली जिसका मुंह एक तरफ बन्द था पारेसे भर दिया। उसके खुले हुये मुंहको अँगूठेसे बन्दकर औंधा किया ताकि उसमें पारा गिरने न पाये। उसने उस नलीके खुले हुये मुंहको बर्तनके पारेमें डुबो दिया। तब उसने देखा कि उस नलीका कुछ पारा लगभग ६ या ७ इंच ऊंचाई के बराबर नीचेवाले बर्तनमें गिर गया। अब पारे की ऊंचाई नलीमें ३० इंच रह गई थी। (१) सारा पारा उस नलीमेंसे क्यों नहीं गिरा? (२) उसमेंके पारेको गिरनेसे कौनसी वस्तु रोक रही थी? (३) नलीके ऊपरके खाली स्थानमें क्या है। टारसिली तथा विवियानीके मनमें उस नलीकी इस घटनाको देखकर ऐसे ही प्रश्न आपही आप शीघ्र उठे। टोरसिली ने इस प्रश्नके निम्न लिखित उत्तर दिये।

नलीके ऊपर 'क' स्थान शून्य है और हवाका दबाव पारेको नीचेवाले बर्त्तनमें गिरनेसे रोकता है। यह दबाव इतना अधिक नहीं है कि तीन फीट ऊंचे पारेका बोझ सम्हाल सके।

उन दिनों इस प्रकारके उत्तरमें कोई आसानी से विश्वास नहीं लाता था और उसे लोग असम्भव मानते थे। इस प्रकार से कई वैज्ञानिको ने उसमें

विश्वास करनेसे इनकार किया। पर सबको अपना मत प्रकट करने का अधिकार था। कुछ
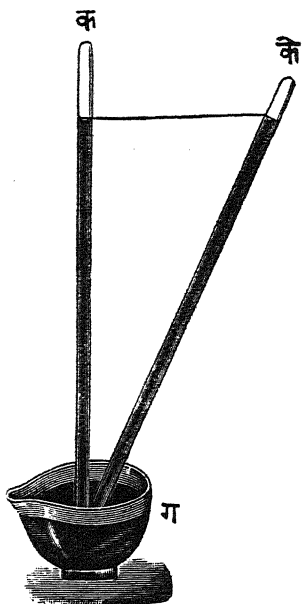
वैज्ञानिकों ने ऐसे उत्तर दिये कि जो वर्त्तमान काल के वैज्ञानिकोंको हास्यप्रद जान पड़ेंगे। हम इस स्थान पर उनकी चर्चा न करेंगे। पर एक वैज्ञानिक ने पारे के बोझका माप लिया तो ज्ञात हुआ कि वह १५ पौंड प्रतिवर्ग इंच है। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वायु जैसी हल्की वस्तु १५ पौंड प्रति वर्ग इंच का दबाव डाल सकती है। यदि इसमें एक बार विश्वास भी कर लिया जावे तो यह सोचने की बात है कि हमारा शरीर जो सैकड़ों वर्ग इंच है १५ पौंड प्रति वर्ग इंचके हिसाबसे इतना अधिक हवाका बोझ सम्हाल सकता है। क्या ऐसी बातोंपर कोई विश्वास ला सकता है? कदापि नहीं। इन्हीं कारणों से लोगों ने टोरसिली के उत्तर विश्वास नहीं किया पर अब यह प्रश्न रह जाता है कि यदि वहां हवाका दबाव ३० इंच ऊँचे पारेके बोझको नहीं सम्हाल सकता है तो फिर ऐसी कौनसी शक्ति है जो इस अद्भुत कार्यको कर रही है।

विवादके विषयका आरम्भ यहां होता है। कुछ विज्ञान-नेताओंने टोरसिलीकी बातोंपर विश्वास किया और कुछ लोगोंने नहीं। टोरसिली का दूसरे उत्तर ने कि नलीका उपरी भाग शून्य है अधिक आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि वैज्ञानिकोंको यह विश्वास हो गया था कि प्रकृतिका शून्यसे सदैव विरोध नहीं रहता है।

कुछ समयके पश्चात् टोरसिली ने अपने एक पेरिस निवासी मित्रको यह समाचार भेजा कि उसने अमुक प्रकारका प्रयोग किया है। और उनसे यह परिणाम निकाला है। जब उनके प्रयोग का समाचार फ्रांसमें पहुँचा तो वहांके विज्ञान वेत्ताओं ने उसपर वाद-विवाद करना आरम्भ कर दिया।

व्लसीपेस्कल नामके एक नवयुवक ने इस प्रयोगका समाचार सुना पर ऐसा मालूम होता है कि उसे इसकी संक्षिप्त ही सूचना मिली। क्योंकि उसके विषयमें विचार करने और तीन फीट लम्बी कांचकी नली प्राप्त करनेमें काफी समय लगा। अन्तमें सब कठिनाइयां दूर हो गईं और उसने टोरसिलीके प्रयोगको दोहराया। उसने टोरसिलीके उत्तरमें शीघ्रतासे विश्वास नही किया पर उसे इसकी अधिक सम्भावना मालूम होती थी। इसी समयसे लोगोंका यह भ्रम दूर हो गया कि एक प्रसिद्ध पुरुषने जो कुछ कह दिया वह सदैव सत्य ही है। उसने उसको पुष्ट करने-का निश्चय किया। उसने सोचा कि यदि हवाके इस पारेके बोझको सम्हाले हुए है तो हवा दबावको कम करनेसे यह निश्चय है कि पारे की ऊंचाई नलीमें कम हो जायगी। हवाके दवावके करनेका निम्न लिखित उपाय उसे सूझा। यदि वह धरातलसे किसी ऊंचे स्थान पर जावे जहां की हवा हल्की हो तो उसको हवाका दवाव कम मिलेगा। वह इस बिचारसे 'रु ऑं' के एक गिरजे के शिखर पर अपने प्रयोगको सिद्ध करनेके बिचार से गया? उसे मालूम हुआ कि पारेकी

ऊंचाई इस बार कुछ कम है। पर इतनी कम नहीं थी कि उसे विश्वास हो जाता कि हवाके दवाव कम होनेसे नलीमें पारेकी ऊंचाई कम होजाती है। इसको निश्चय करनेके पूर्व उसने किसी और ऊंचे स्थान पर जाना उचित समझा पर एक तो रुआं के निकट कोई ऊंची पहाड़ी नहीं थी और दूसरे उसका स्वास्थ्य छोटी अवस्थासे ही विद्याध्यनमें अधिक परिश्रम करनेसे नष्ट हो गया था। यात्राके योग्य वह नहीं था। आजकल जिस प्रकार हम वायुयान और रेल आदि की सहायता से सैकड़ों मील घंटे भरमें चल सकते हैं ऐसी सुविधायें उन दिनोंमें नहीं थी और किसी भी यात्राके लिये लोगोंको बहुत कष्ट उठाना पड़ता था। अस्तु अर्वने नामक एक पहाड़ी प्रदेश में उनका एक सम्बन्धी पेरियर नामका रहता था वह स्वयं विज्ञानसे परिचित था। इससे पेस्किल ने उसे उस प्रयोग करने तथा बातोंको सिद्ध करने के लिये लिखा?

पेरियर एक उपयुक्त दिन अपने कुछ मित्रोंके साथ उस प्रयोगके लिये लूडीडोल नामकी एक पहाड़ी के नीचे पहुँचा उसने दो नलियां लेकर प्रयोग आरम्भ किया और अन्तमें उसे पता लगा कि दोनों नलियोंमें पारेकी ऊंचाई समान ही थी उसने एक को वहीं छोड़ दिया और दूसरेको पहाड़की चोटीपर लेजा कर उस प्रयोगको दोहराया। नीचे प्रयोग करनेपर नलीमें पारेकी जो ऊंचाई थी पहाड़की चोटीपर उससे तीन इंच कम उंचाई निकली। चोटीपरसे नीचे उतरते २ उसने पारेकी उंचाईको कई जगह नापा पर वह जैसे जैसे नीचे उतरता जाता था वैसे वैसे ऊंचाई बढ़ती जाती थी और जब एक दम नीचे पहुँच गया, उंचाई उतनी ही हो गई जितनी कि पहाड़के नीचे पहिले थी।

पेरियरके प्रयोगका समाचार पाकर पेस्किल को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इससे यह सिद्ध होगया कि इस विषयमें टोरसिलीने जो कुछ कहा वह सत्य ही है। पारा वाला भाग सच मुच ही हवाके दवाव पर अवलंबित था और जैसे जैसे हवाका दवाव कम होता गया वैसे वैसे पारेकी ऊंचाई भी कम होती गई। इस सिद्धान्त के निश्चय होजाने पर वैज्ञानिकों को हवा के दवाव नापने के लिये वायुभार मापक यंत्र एक उपयोगी यंत्र मिला जो कि अब विज्ञान-प्रयोग-शालाओंमें काम आता है।

गैलेलियोको चकित करनेवाली समस्या हल हो गई। अब यह प्रगट है कि बम्बेमें पानी हवाके दबावके अनुसार ऊपर चढ़ा सकता है। पानी ४० फीट तक नहीं चढ़ सकता क्योंकि इतने ऊंचे पानीका बोझ हवाके दबावसे ज्यादा है।

टोरसिली ने इस बात को सिद्ध कर दिया और पेस्किल ने उसकी पुष्टिकरदी कि वायु ३० इंच पारे का बोझ धरातल पर सम्हाल सकती है और यदि किसी नलीमें ३० इंच की ऊंचाईसे अधिक पारा लिया जावे तो जैसा ऊपरके प्रयोगसे प्रगट है इतना पारा नलीके बाहर निकल आवेगा जबतक कि पारे की ऊंचाई का बोझा हवाके दबावके बराबर न होजावे। पानी चौदहगुना पारे से हलका है इस कारण हवा पारेके ऊँचाईकी चौदहगुनी ऊंचाई पानी अथवा ३४ फीट पानीको सम्हालनेमें समर्थ होगी। इटली के कुयेंमें पम्पके प्रत्येक वार चलने से नली में से कुछ हवा बाहर निकल जाती थी। इस कारण पम्पके भीतरका दबाव बाहर की हवा के दबाव की अपेक्षा कम हो जाता था। फलतः पम्प में पानी उतनी ऊंचाई तक आ जाता था जब कि पम्पके अन्दर का दबाव बाहरकी हवाके दबावके बराबर न हो जावे। जब पानीकी ऊंचाई ३३ फीट के लगभग पहुँच जाती है तो पानी का दबाव बाहर की हवा के दबाव के बराबर हो जाता है। यदि पम्पका उपयोग जारी रक्खा जावे तो उससे पम्प में शून्य अवश्य उतपन्न होगा पर पानी अधिक न चढ़ेगा क्योंकि हवा ३३ फीट से ज्यादा पानी का बोझ नहीं सम्हाल सकती। इसने उस कठिन समस्याको हल कर दिया

और भविष्यमें विज्ञानके इस अंशमें खोज करने के लिये एक मार्ग दिखला दिया !

उद्भिज का आहार

या

उद्भिजमें प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis)

(ले० श्री एन. के. चटर्जी, एम. एस-सी.)

मारे पूर्वपुरुष सूर्य्यको बराबरसे देवता मानकर पूजते आये हैं और इस वैज्ञानिक कालमें भी हममेंसे बहुत ऐसे मिलेंगे जो सूर्य्यको सबसे बड़ा देवता मानते हैं। सूर्य्यके उपासकोंका कहना है कि सूर्य्यसे ही सब चर और अचर जीते हैं और सूर्य्य देवता यदि दो चार दिनके लिये विश्राम लेलें तो पृथ्वीपर महा अनर्थ हो जायगा। वैज्ञानिक अन्वेषणोंसे यह ज्ञात होता है कि सूर्य्यके उपासकोंका कहना सचमुच सही है। सूर्य्य ही हमारा धन, प्राण और शक्ति है, बिना उसके इस पृथ्वी पर कुछ नहीं।

जिस प्रकार कोयला एंजिन चलानेमें बहुत आवश्यकीय वस्तु है, पेट्रोल मोटर चलानेमें, उसी तरह हम लोगोंके अन्दर भी ऐसी वस्तुकी आवश्यकता होती है जिससे हम लोग हिलने डुलनेमें समर्थ होते हैं। इससे यह मालूम होता है कि कोयला और पैट्रोलमें कोई छिपी हुई सामर्थ्य (energy) रहती है, जिसके द्वारा एंजिन और मोटर चलनेमें समर्थ होते हैं। इस प्रकार छिपी हुई सामर्थ्य हम लोगोंको कहांसे मिलती है ? वह सामर्थ्य हम लोगोंको केवल भोजन द्वारा ही प्राप्त होती है। पृथ्वीके प्रत्येक जीवित पदार्थको इस शक्तिकी आवश्यकता होती है और यह शक्ति उन सबोंको खाद्य पदार्थ द्वारा मिलती है। खाद्य पदार्थके लिये हर एक जीव जन्तु को उद्भिज पर ही निर्भर होना पड़ता है। कृषि (agriculture) का मुख्य उद्देश्य यही है कि हम लोगोंको उद्भिजसे इस प्रकारकी शक्ति खाद्य-पदार्थ द्वारा मिल जाय कि जिससे हम लोग अपनी शारीरिक और जाति उन्नति पर दृष्टि रख सकें।

मनुष्यका भोजन-मुख्य मांस और शाक है और मांसके लिये वे जीव जन्तु ही आहार के उपयोगमें आते हैं जिनको भोजनके लिये उद्भिज पर निर्भर रहना पड़ता है। दूसरे पशुओंके लिये भी यही बात है। इसलिये देखा जाता है कि प्रत्येक जीव जन्तुको सीधे तौरसे या फेरफार कर भोजन यानी सामर्थ्यके लिये उद्भिजका ही सहारा लेना पड़ता है। लेकिन पौधे या उद्भिज अपना भोजन किस प्रकार बनाते हैं ? क्या इनको जीव जन्तुओं पर निर्भर नहीं रहना पड़ता ? हाँ ! इनको भी जीव जन्तुओं पर एक प्रकारसे निर्भर रहना पड़ता है। जीव जन्तुओंके मल मूत्र और उनके श्वास प्रश्वास से जो कर्बन द्विओषिद निकलती है ये उनका व्यवहार करते हैं और इसीसे वे अपना भोजन सुचारुरूपसे बना लेते हैं। इसीलिये आहारके विषय में इस पृथ्वी पर प्राणी मात्रको चाहे उद्भिज हो या जीव एक दूसरेकी सहायता लेनी पड़ती है।

कर्बन द्विओषिद ही केवल उद्भिजके भोजन बनानेमें काम नहीं आता। पौधोंके बढ़नेके समय जो नयी नयी शाखायें, पत्तियां और जड़ निकलती हैं वे बिल्कुल पुरानोंके समान ही होते हैं। यदि थोड़ा ध्यान देकर देखा जाय कि इन नयी नयी शाखाओं, पत्तियों या जड़ों में कौन कौन से पदार्थ हैं और इन पदार्थोंको पौधे किस प्रकारसे और कहाँ से पातेहैं तो पौधोंके भोजन बनाने का साधारण नियम ज्ञात हो जायगा।

यदि एक पौधेकी डालके टुकड़ेको कांचके बर्त्तनमें गरम किया जाय तो देखा जाता है कि बर्त्तनके ऊपरी ठंडे भागमें जलके छोटे छोटे विन्दु एकत्र हो जाते हैं और इसी प्रकार यदि हम उस

डालके टुकड़ेसे सब जल वाष्प रूपमें निकाल दें तो उस डाल का भार बहुत कम हो जाता है। परीक्षा करके देखा गया है कि पौधोंमें प्रतिशत ६० से ९० भाग पानीका होता है।

यदि उसी डालको सब जल निकल जानेके बाद भी और अधिक गरम किया जाय तो वह कोयलेके समान काली पड़ जाती है और उसमेंसे वाष्पीय वस्तु निकलने लगती है। लकड़ी या कोयला इसी प्रकार लकड़ियां जलानेसे ही बनता है। कांचके बर्त्तनके ऊपर दियासलाई जलाकर लगानेसे देखा जाता है कि वह वायव्य या गैस (gas) जलने लगती है और यदि उस गैसको चूने के साफ पानीके भीतरसे निकाला जाय तो चूने के साफ पानीपर छोटे छोटे सफेद डेले दिखाई पड़ने लगते हैं और इससे यह मालूम होता है कि वह गैस ओषजन और कर्बन द्विओषिद है।

उसी डालको इसके बाद और गरम करने पर देखा जाता है कि वह काला कोयला भी लाल होकर जलने लगता है और अन्तमें अदृष्ट हो जाता है और केवल थोड़ी सी राख बाकी रह जाती है। इस प्रकार पौधोंको जलानेसे उसमेंसे पानी, कर्बन, और राख ये तीन वस्तुयें पाई जाती हैं।

राख और पानी का भाग पौधोंको पृथ्वीमें से जड़ों द्वारा मिलता है क्योंकि यदि पौधोंकी जड़ोंमें पानी नहीं दिया जाय तो पोधे सूख कर मर जाते हैं। पृथ्वीके पानीको छान कर देखा गया है कि उसमें बहुतसे खनिज पदार्थ घुले हुए रहते हैं और पौधोंमें जलके साथ यह भी पहुँच जाते हैं और यही खनिज पदार्थ जलाने पर राखके आकारमें दिखाई देते हैं।

एक तौले हुए मिट्टीमें बड़े डेले पर यदि एक तौला हुआ पौधा उगाया जाय तो कुछ दिनोंके बाद फिर तौलनेसे देखा गया है कि मट्टीके डेले का वजन कुछ कम अवश्य हो गया है लेकिन पोधे का वजन उस कमीसे कहीं अधिक हो गया है। इससे यह जान पड़ता है कि पौधे मिट्टीसे कर्बन नहीं लेते परन्तु वे हवा से अपना कर्बन लेते हैं और हवामें यह कर्बन जीव-जन्तु के जल मूत्र, श्वास प्रश्वाससे, और वस्तुओंके जलने से सर्वत्र रहता है। पौधोंमें जीव-जन्तुके समान चलने फिरने की शक्ति नहीं होती। जिस जगह पर वे उगते हैं उसीके आस पास की हवा और मिट्टीसे उनको सन्तुष्ट रहना पड़ता है।

पैधोंमें भोजन बनानेका प्रबंध अत्यन्त जटिल है। इस जटिलताका मुख्य कारण यह है कि भोजन बनानेके प्रबन्धमें बहुत ऐसे तत्व (Element) या हेतु (Factors) आ जाते हैं जिन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है और ये प्रत्येक प्रबंधको सुगमता और सुचारुरूपसे चलानेमें सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक हेतु भोजन बनाने के कार्य्यमें आवश्यक हैं और इनके परिमाणमें अल्प अंतर होनेसे प्रबंध की गति और शक्तिमें भी अंतर आ जाता है। ये हेतु मुख्यतः बाह्यपरिस्थिति सम्बन्धी हैं। इनमें विशेष उल्लेखनीय निम्न हैं:—

(१) कर्बनद्विओषिद का परिमाण
(२) प्रकाश की तेजी
(३) उत्ताप
(४) जल

दूसरे छोटे छोटे बाहरी हेतु ये हैं:—

(५) पैधों पर पड़नेवाली सूर्य्यकी किरणों की लहर लम्बाई (Wave length)

(६) पुष्टकारी धातु मिश्रण या लवण (Salts)

(७) आसपासके स्थान के निःसरण दबाव का प्रभाव (Osmotic Pressure)

(जलज पैधोंके लिये जलके दबावका प्रभाव)

(८) ओषजन (Oxygen)
(९) दूसरी छोटी छोटी वस्तुयें
(१०) पैधेके घाव का प्रभाव
(११) बिजली का प्रभाव

भीतरी कारण ये हैं:—यथा

(१२) पर्णहरिन का परिमाण (Chlorophyll-Content)

(१३) पर्णहरिनके अतिरिक्त प्रेरकजीव (Enzyme) और दूसरे कललात्मक हेतु (Protoplasmic factors)

(१४) पौधों का भीतरी गठन (Anatomy)

(१५) आहारीय पदार्थ का पौधोंके भीतर संग्रहीत हो जानेका प्रभाव (Accumulation-of the products of assimilation)

भोजन बनानेकी गति और शक्ति पर इन प्रत्येक कारण का प्रभाव देखना उचित है। परन्तु इसके पूर्व दो चार मोटे मोटे विषयों पर ध्यान देना चाहिये। प्राचीनकालके वैज्ञानिकों ने साधारण रूपसे यह मान लिया था कि प्रत्येक क्रिया की गतिके लिये ऐसी एक अवस्था होती है कि उस अवस्थाके नीचे वह क्रिया होही नहीं सकती और इसी प्रकार पौधोंमें भोजन बनाने की सामर्थ्य के लिये ऐसी एक अवस्था की आवश्यकता है। पौधों में भोजन बनानेकी गति और सामर्थ्य होने की इस अवस्थाके लिये 'न्यूनतम संख्या' (minimum value) शब्द का व्यवहार किया जाता है।

इस अवस्थाकी क्रमशः उन्नति करनेसे भोजन बनानेकी गति और शक्तिमें भी उन्नति होती जाती है और उस अवस्थाकी संख्याको जब कि यह गति और सामर्थ्य सबसे अधिक होती है महत्तम संख्या (optimum value कहते हैं। परन्तु यह देखा गया है कि इस अवस्था को उससे अधिक बढ़ानेसे गति और सामार्थ्य घटती जाती है। यहां तक कि एक ऐसी अवस्था पर आकर भोजन बनानेका समस्त कार्य बिल्कुल रुक जाता है अर्थात् गति और सामर्थ्य दोनों लोप हो जाती हैं और उस अवस्थाकी संख्याको जिसके आगे पौधोंमें भोजन बनानेकी गति और सामर्थ्य लोप हो जाती है अधिकतम संख्या (maximum-value) कहा जाता है।

महत्तम संख्या (optimum)से अधिक अवस्था को बढ़ानेसे पौधोंमें भोजन बनानेकी गति और शक्ति घट जानेका कारण भली भाँति किसीको मालूम नहीं, परन्तु यह देखा गया है कि यदि कर्बन द्विओषिदका परिमाण अत्यन्त अधिक हो जाय तो उद्भिजके लिये विषके समान हानिकारक हो जाता है, और उत्ताप और प्रकाशके अतिरिक्त तेजी से उद्भिजके पर्णहरिनकी कार्य करनेकी शक्ति लोप हो जाती है।

ये उक्त संख्यायें भिन्न भिन्न पौधोंके लिये भिन्न भिन्न तो होती ही हैं परन्तु एक ही पौधेके लिये भी बाहरी अवस्थाके परिवर्तनके साथ ही साथ परिवर्तित होती हैं जैसे अत्यन्त धीमे प्रकाश में यदि बहुतसा कर्बन द्विओषिद किसी पौधेको दिया जाय तो उस अवस्थाकी ये संख्यायें उसी कर्बन द्विओषिदके परिमाणमें प्रकाशकी तेज़ी बढ़ानेसे परिवर्त्तितही जायंगी। इसी कारण वैज्ञानिकोंने अपनी अपनी परीक्षाकी अवस्थानुसार भिन्न भिन्न महत्तम संख्यायें पायीं और इसलिये महत्तम संख्याके विषयमें भली भांति किसीको ज्ञात नहीं है।

लेकिन ब्लेकमान (Blackman) के प्रयोगोंसे अब हम लोग यह जानने लगे हैं कि किसी निर्दिष्ट हेतु (factor) का प्रभाव जाननेके लिये हम लोगों को उचित है कि दूसरे हेतुओं पर भी ध्यान दें क्योंकि ब्लेकमान को यह पता चला कि ये हेतु एक दूसरेसे घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं। सन् १६११ में उन्होंने एक ताजे पत्ते पर इस प्रकारका प्रकाश छोड़ा जिसमें इतनी शक्ति थी कि पत्ती एक घन्टे में पाँच (५) घन शतांशमीटर (घ. श. म.) कर्बन द्विओषिदका उपयोग कर सके। अब यदि कर्बन द्विओषिदका परिमाण घटा कर एक (१) घन श. म. कर दिया जाय तो प्रकाशकी शक्ति द्वारा पत्ता सुगमताके साथ उस कर्बन द्विओषिदका उपयोग कर डालेगा और इसी प्रकार उस पत्ते की भोजन बनानेकी गति और शक्ति उस प्रकाश

द्वारा कर्बन द्विओषिद्‌को एक घन. श. म. से लेकर पांच (५) घ. शम. तक बढ़ाने से बढ़ती हो रहेगी। इस समय तक कर्बन द्विओषिद ही केवल भोजन बनाने की गति और शक्ति पर प्रभाव डाल कर उसको रोक सकता है; परन्तु यदि उसी प्रकाश की तेज़ी में ६ घ. शम. कर्बन द्विओषिद दी जाय तो गति और शक्ति में कुछ वृद्धि नहीं होगी क्यों कि उस प्रकाश की तेज़ी में पत्ती ६ घ. शम. कर्बन द्विओषिद का उपयोग नहीं कर सकी, और अब यह देखा जाता है कि भोजन बनाने की गति और शक्ति प्रकाश का प्रभाव पड़ने से रुक जाती है।

नीचे दिये हुए रेखा चित्र द्वारा यह बात भली भांति समझ में आ जायगी।
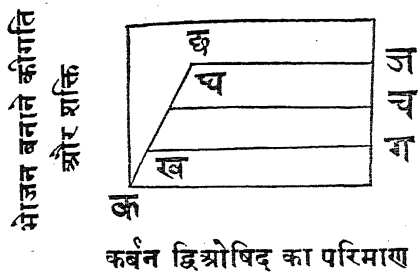
कर्बन द्विओषिद का परिमाण

क और ख रेखा पर तो गति और शक्ति में कर्बन द्विओषिद के परिमाण का प्रभाव पड़ कर रुक सकता है क्यों कि देखा जाता है कि पांच घन श.म. तक कर्बन द्विओषिद बढ़ानेसे उस प्रकाश की तेज़ी में पहले की भोजन बनाने की गति और शक्ति क्रमशः उसके साथ ही साथ बढ़ती रहती है। और "ख" बिन्दु पर उस प्रकाश की शक्तिद्वारा पत्ता पांच (५) घन श. म. कर्बन द्विओषिद ठीक-ठीक उपयोग कर लेता है। परन्तु "ख" और "ग" रेखासे यह ज्ञात हाता है कि उस प्रकाशकी तेज़ीमें पांच घन श० म० से अधिक कर्बन द्विओषिदका प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ता क्योंकि उस प्रकाशकी शक्ति इतनी तेज़ नहीं है कि पत्ता पांच ५ घन श० म० से अधिक कर्बन द्विओषिदका उपयोग कर सके। इस कारण देखा जाता है कि रेखा-चित्रके केवल दो भाग हो सकते हैं एक तो सीधी उठती हुई रेखा जहां भोजन बनाने की गति और शक्ति पर कर्बन द्विओषिद प्रभाव डाल कर रोक सकता है। और दूसरी समानान्तर रेखा जहां कि प्रकाश का प्रभाव पड़ने से भोजन बनाने की गति और शक्ति रुक जाती है, पहले भाग में प्रकाश की अधिकता और दूसरे भाग में कर्बन द्विओषिद की अधिकता है और "ख" बिन्दु पर जहां से रेखा मुड़कर सीधी और समानान्तर होजाती है, प्रकाश या कर्बन द्विओषिद में से किसी की अधिकता नहीं अब यदि प्रकाश की तेज़ी को दूना कर दिया जाय तो उसी प्रकार अधिक कर्बन द्विओषिद लेकर पत्तीमें भोजन बनाने की गति और शक्ति बढ़ जायगी। इसी प्रकार अब यदि "ख" बिन्दु पर प्रकाशकी तेजीको और कर्बन द्विओषिद का परिमाण दोनोंको बढ़ाकर दूना कर दिया जाय तो भोजन बनानेकी गति भी दूनी हो जायगी परन्तु थोड़ी देरके बाद प्रकाशका प्रभाव पड़ कर भोजन बनानेका प्रबन्ध फिर सीमाबद्ध हो जाता है और रेखा चित्र "क घ च" का आकार धारण करता है। इसी प्रकार प्रकाश की तेजी और अधिक बढ़ानेसे रेखा चित्र "क, छ, ज" का आकार धारण करता है।

उक्त परीक्षा द्वारा यह सिद्ध होता है कि भोजन बनानेकी गति और शक्तिमें कर्बन द्विओ-षिदका प्रभाव जाननेके लिये प्रकाशके प्रभाव पर भी सतर्क दृष्टि रखना आवश्यक है और इसी तरह दूसरे हेतुओं पर भी ध्यान देना चाहिये। सारांश यह है कि जिस हेतुका प्रभाव जानना आवश्यक है उसके अतिरिक्त और सब हेतु काफी अधिक परिमाणमें होने चाहिये जिससे कि वे हेतु भोजन बनानेकी गति और शक्तिमें प्रभाव डाल कर रोक न सकें।

इस उपर्युक्त घटना द्वारा ब्लेकमान (Blackman) सन् १९०५ में इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि

जब किसी क्रियाकी गति पर भिन्न भिन्न हेतुओं का प्रभाव पड़ता है तो इस क्रियाकी गति केवल सबसे क्षीण हेतु द्वारा निर्धारित होती है।

कौनसा हेतु प्रभाव डालकर क्रियाको सीमाबद्ध कर रहा है यह जाननेके लिये उनका यह सिद्धान्त उस समय पर काम आ सकता है कि जब किसी क्रियाकी गति और शक्ति अनेक हेतुओं में से एक हेतुके प्रभाव द्वारा रुक जाय तो केवल उसी क्षीणहेतुका परिमाण बढ़ानेसे उस क्रियाकी गति भी बढ़ जाती है।

बहुत दिनों तक ब्लाकमान (Blackman) के इस सिद्धान्त पर किसीने हस्तक्षेप नहीं किया परन्तु सन् १९१८ में डबल्यू. एच. ब्राउनने (W. H. Brown) ने उनके इस सिद्धान्त पर तर्क उठाया। उन्होंने अपनी निज परीक्षा द्वारा ब्लेकमानके रेखा। चित्रके समान अपना रेखा चित्र नहीं पाया। उनके बाद वायसेन और जेनसन (Boysen and Jensen) ने सन् १९१८ में अपनी परीक्षा द्वारा यह ज्ञात किया कि ब्लेकमान के से तेजी से मुड़ने वाले रेखा चित्र पाये नहीं जा सकते और अपनी परीक्षा का फल उन्होंने रेखा चित्रमें एक धीमें झुकाव (Smooth curve) द्वारा बताया है। उनका रेखा-चित्र निम्न प्रकार का है।
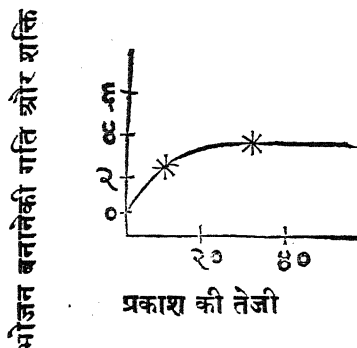
उनके रेखा चित्रका पहला भाग तो उठती हुई सीधी रेखा है और उसके बाद ब्लेकमानके रेखा-चित्रकी भांति तेजीसे कोण बनाकर मुड़नेके अलावा क्रमशः धीरे धीरे झुक कर अन्तमें अक्ष-रेखा (axis) के समानान्तर हो जाता है। इनके रेखा चित्रके पहले भागमें प्रकाशका प्रभाव ही भोजन बनानेकी गति और शक्तिको रोक सकता है और रेखा-चित्रके शेष भागमें कर्बन-द्विओषिद, उत्ताप या अन्य किसी हेतुका प्रभाव गतिको रोक सकता है और इन दो भागोंके मध्यमें दोनों हेतुओं का प्रभाव पड़ता है। ब्लेकमानकी उक्तिके अनुसार केवल एक विन्दु-यथा "ख" पर ही दोनों हेतुओं-का प्रभाव पड़ता है परन्तु बायसेन और जेनसनके अनुसार तारकांकित समस्त मध्य भागमें दोनों हेतुओंका प्रभाव पड़ता है।

हारडर (Harder) ने सन् १९२१ में वायसेन और जेनसेनके सिद्धान्तका समर्थन किया। उन्होंने भी अपनी परीक्षाका फल रेखा-चित्रमें बहुत कुछ वायसन और जेनसनका सा दिखाया है।

पूर्व समयकी महत्तम (optimum) संख्याका उपयोग इन बड़ेबड़े वैज्ञानिकोंकी मीमांसाओं द्वारा अब बिलकुल नहीं होता है और आजकल उसके स्थानपर यह कहा जाता है कि उद्भिजमें भोजन बनानेकी गति और शक्ति अनेकोंमें से सबसे क्षीण हेतु द्वारा ही निर्द्धारित होती है और केवल उसी क्षीण हेतु (factor) के बढ़ाने और घटानेसे महत्तम संख्या (optimum value) भी बढ़ती और घटती है।

पीछे लिखे हुए हेतु एक दूसरेसे किस प्रकारका सम्बन्ध रखते हैं और वे आपसमें किस प्रकारका एक दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हैं देखनेके पश्चात् अब हम लोगोंको उचित होगा कि इन प्रत्येक हेतुओंका भोजन बनानेकी गति और शक्ति पर प्रभाव देखें।

सूर्य-प्रकाशकी तेजीका प्रभाव—यदि थोड़ी देरके लिये किसी पौधेका निरीक्षण किया जाय तो यह मालूम हो जाता है कि पौधेकी पत्तियां सूर्यका प्रकाश पानेके लिये एक दूसरेसे आपसमें

कभी कभी लड़ भी जाती हैं लेकिन साधारण प्रकारसे यह पत्तियां इस प्रकारसे लगी हुई रहती हैं कि प्रत्येक दिवसके किसी न किसी समयपर सूर्य्यका प्रकाश थोड़ी देरके लिये पा जाती हैं और यह भी देखा गया है कि यदि कोई पौधा अंधेरे में उगाया जाया और पौधे को केवल एक ओरसे प्रकाश दिया जाय तो उसकी पत्तियोंकी शाखाय प्रकाशकी तरफ मुड़ जानेका प्रयत्न करती हैं और जड़का हिस्सा प्रकाशसे दूर भागनेकी कोशिश करता है। इसलिये मालूम होता है कि पौधेकी पत्तियों और सूर्य्यमें एक प्रकार का आकर्षण है।

प्रीस्टले (Priestley) ने परीक्षा द्वारा यह दिखाया है कि यदि दो मोम की बत्तियां दो ऐसे ढके हुए कांचके वर्त्तनके अन्दर जलाई जांय जिसमें कि बाहर से कोई गैस जा सके तो कुछ देर के बाद मोम की बत्तियां बुझ जाती हैं और यदि उन प्रत्येक बर्त्तनमें पौधेकी एक एक डाल सावधानीसे इस तरहसे रख दी जाय कि बर्त्तनोंके अन्दरका कर्बन द्विओषिद बाहर न निकल सके और यदि उनमें से एक को अंधेरेऔर दूसरे को सूर्य्यके प्रकाशमें रख दिया जाय तो देखा जाता है कि सूर्य्यके प्रकाश की सहायतासे पौधेकी एक डालने बर्त्तन के सारे कर्बन द्विओषिद का उपयोग कर डाला है, परन्तु अंधरेवाली दूसरी डाल कर्बन द्विओषिद का उपयोग नहीं कर सकी। इससे यह निश्चिन होता है कि सूर्य्यके प्रकाशमें पौधे कर्बन द्विओषिदका उपयोगकर सकते हैं और अंधेरेमें नहीं।

एक अन्य परीक्षा द्वारा भी हम इसी निश्चय पर आ सकते हैं यदि एक काले पट्ठे पर विज्ञान का शब्द काट कर लिख दिया जाय और उसी पट्ठे को पेड़ पर लगी हुए एक पत्ती पर इस तरह लगा दिया जाय कि सूर्य्यका प्रकाश केवल "विज्ञान" के कटे हुए मार्ग द्वारा जा सके और दूसरी राह से नहीं और यदि शाम को या दूसरे दिन गरम मद्य (Alcohol) द्वारा उस निर्दिष्ट पत्ती का सब पर्णहरिन (Chlorophyll) निकाल कर, उसको नैलिन (iodine) के पानीमें डूबोया जाय तो पत्ते पर "विज्ञान" का शब्द काले रंगमें लिख जायगा; कारण—कटे हुए अक्षर की राह से ही सूर्य्यका प्रकाश उस पत्ती पर पड़ा था और केवल इसी स्थान पर पत्ती अपना भोजन बनाने मे समर्थ हुई और दूसरे स्थानों पर नहीं। भोजन नैलिन्से काला पड़ गया।

ऊपर लिखे हुए प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि सूर्य्य का प्रकाश पौधोंके भोजन बनानेके लिये अति आवश्यक है परन्तु यह भी विचार करना हमको उचित होगा कि प्रकाश की अधिकता और तेजी इस प्रबन्धमें क्या प्रभाव डालती है।

वैज्ञानिक वान वाकोफ़ (von Wolkoff) ने सन् १८६६ में परीक्षा द्वारा यह निर्णय किया कि प्रकाशकी अधिकता और तेज़ीसे पौधेमें भोजन बनानेकी गति और शक्ति भी उतनी ही बढ़ जाती है। यथा यदि प्रकाश की तेज़ी दूनी कर दी जाय तो भोजन बनानेकी गति और शक्ति भी दूनी बढ़ जाती है। उन्होंने यह परीक्षा निम्न प्रकारसे की।

एक अन्धे कांच (ground glass) के टुकड़े द्वारा उन्होंने सूर्य्यका प्रकाश एक पौधे पर डाला। काँच और पौधेके बीचकी दूरी को घटाने और बढ़ानेसे भोजन बनानेकी गति और शक्तिमें भी घटना और बढ़ना आरंभ हो जाता है। पौधे की भोजन बनाने की गति और शक्ति देखनेके लिये यह उपाय है:—

यदि किसी जलज पौधे को एक काँचके गिलास में पानी भर कर रक्खा जाय और पौधेके ऊपर एक कांच का चोंगा (funnel) उलटा कर ढांक दिया और चोंगेकी नली पर पानी से भरी हुई कांचकी परखनली उल्टी कर चित्रके समान रक्खी जाय तो देखा जाता है कि पौधेसे छोटे छोटे वायव्यके बुदबुदे उठते रहते हैं और यह पानीकी जगहमें परखनलीके ऊपरी भाग पर

जमा होते रहते हैं। यह वायव्य ओषजन (oxygen) है और पौधे भोजन बनानेके समय कर्बन द्विओषिद लेते हैं और ओषजन देते हैं। इस ओषजनकी गति देखनेके लिये विलमट् (Wilmot) ने एक बहुत सुन्दर कांचका यन्त्र बनाया है लेकिन
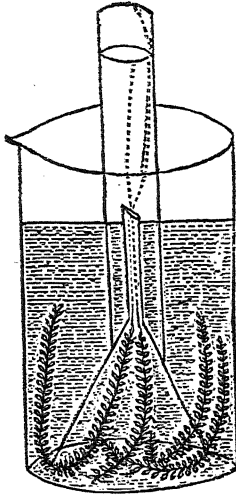
बान वाकोफ ने यह साधारण प्रकारही से देखा था। इसीलिये उनकी परीक्षापर इतना विशेष ध्यान नहीं दिया गया परन्तु जो कुछ भी हो इन्होंने यह साबित किया था कि प्रकाशकी तेजी घटाने और बढ़ानेसे ओषजनके निकलनेमें भी यथोचित अंतर हो जाता है।

इसी प्रकार रेङ्के (Reinke) में सन् १८८३ में इस बातको सिद्ध किया। इन्होंने सूर्यका प्रकाश एक ताल (lens) द्वारा संग्रह कर परीक्षा की जिससे प्रकाशकी बहुत अधिक तेजी भी इनको मिल गई। इनका कहना यह है कि धीमी प्रकाश-की तेजीमें भोजन बनानेकी गति और शक्ति यथो-चित तो बढ़ती ही है और अधिक प्रकाशकी तेजी बढ़ानेसे भी भोजन बनानेकी गति बढ़ती है परन्तु यथोचित नहीं अत्यन्त अधिक तेजीमें भोजन बनाने-की गति घटती जाती है। इनकी परीक्षामें यह भूल पाई जाती है कि इन्होंने केवल प्रकाशके सिवाय और किसी हेतुपर ध्यान नहीं दिया क्योंकि यदि कर्बन द्विओषिद या और किसी हेतुकी कमी पड़ जाय तो फिर प्रकाश बेचारा अकेला क्या कर सकता है।

रेङ्केके बाद पेनटेनेलाई (Pantanelli) ने सन् १६०३ में रेङ्के की तरह परीक्षा की और उन्हींकी तरह परीक्षा का फल भी पाया लेकिन इन सब वैज्ञानिकोंने केवल प्रकाशके सिवाय और किसी हेतुपर ध्यान नहीं दिया था और इनके यंत्र भी विश्वसनीय नहीं थे इसलिये इन सबोंकी परी-क्षाओं का फल अधिक नहीं माना जाता है।

सन् १६०५ में ब्लेकमान और कुमारी मेथाई (Blackman and Miss Mathei) भोजन बनानेके और सब हेतुओं (factors) पर ध्यान देते हुए इस सिद्धान्त पर आये कि यदि किसी हेतुकी कमी न हो तो भोजन बनानेकी गति प्रकाशकी तेजीके साथ ही साथ बढ़ती जाती है यथा प्रकाशकी तेजी यदि पहले से दूनीकर दी जाय तो भोजन बनाने की गति भी दूनी हो जायगी।

लुनडेगार्ड (Lundegardh) ने सन् १६२१ में धूप और छाया में उगने वाले पौधों पर काम कर यह निश्चित किया कि धूपमें उगने वाले पौधे छाये वालोंसे कहीं अधिक सूर्य्यके प्रकाशका उपयोग करते हैं। कारण, छायामें उगने वाले पौधोंमें पेलि सेड (Palisade cells) कोष्टकी केवल एक ही तह होती है और इसीलिये वे सूर्य के प्रकाशका थोड़ा ही उपयोग कर पाती हैं। उन्होंने अपनी परीक्षा द्वारा यह भी बताया कि छायामें उगने वाले पौधेमें यदि प्रकाशकी तेज़ीकी कमी या वृद्धि की जाय तो प्रकाशकी कम तेज़ी (Low intensity) में वे उसी अनुसार घटते और बढ़ते हैं परंतु ऊँची तेज़ी में (High intensity) उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु धूपमें उगने वाले पौधोंमें प्रकाश की तेजीके साथ ही साथ भोजन बनाने की गति घटने और बढ़ने लगती है। इस उपर्युक्त घटनासे उन्होंने यह निश्चत किया कि छायामें उगने वाले पौधोंमें

स्थानका प्रभाव पड़ता है। उनको सूर्यके सीधे प्रकाशका लाभ नहीं प्राप्त होता; सूर्यके विकीर्ण प्रकाशमें सर्वदा वे रहते हैं और उसीसे उन्हें अपना काम निकालना पड़ता है परन्तु उन्होंने यह भी बताया है कि कर्बन द्विओषिद का भाग साधारण हवासे उनके आसपास दूना रहता है। इसलिये इस छितरे हुए सूर्य्यके प्रकाशमें कर्बन द्विओषिदका भाग अधिक रहनेके कारण वे अपना भोजन बनानेका प्रबन्ध भली भांति कर लेते हैं।

सूर्य्यके प्रकाशकी प्रखरतामें देखा गया है कि उद्भिज में नशास्ता (Starch) नहीं बन सकता और यदि यह प्रखरता अत्यन्त अधिक हो जाय तो बना नशास्ता (Starch) फिर शकर और दूसरी वस्तुओं में परिवर्तित होता है।

प्रकाशकी प्रखरतासे ताप में भी अन्तर आ जाता है और इस प्रखरतासे उद्भिजके पर्ण हरिन की शक्ति कुछ घट जाती है और पौधे के अन्दर जो वायव्य रहते हैं उनका परिमाण भी बढ़ जाता है और जब उन्हें अन्दर रहनेका स्थान नहीं मिलता तो बाहर निकलनेका प्रयत्न करते हैं। इसलिये देखा जाता है कि सूर्य्यके प्रकाशकी प्रखरताका अधिक होना उद्भिजके लिये हानिकारक है। (क्रमशः)

सुगन्धित तेलोंका बनाना और इत्रोंका निकालना

[ले० श्री राधानाथ टंडन]

मारे देशमें सुगन्धित तेलोंके बनानेकी क्रिया बहुत दिनोंसे चली आई है। हमारे यहाँ बहुतसे सुगन्धित तेल व इत्र ऐसे हैं जो बाहरसे बनकर आते हैं अर्थात् फ्रान्सके दक्खिनी भागसे या विलायतसे जैसे रुमालके लेवेण्डर या ओटो। बहुतसे इत्र जैसे गुलाब, चमेली, मोतिया, हिना, खसखस इत्यादि हमारे यहां भी बहुत बनते हैं। बढ़िया गुलाबके इत्र बहुधा फ्रान्स देशसे ही आते हैं क्योंकि वहां गुलाबके फूलकी खेती यहां की अपेक्षा अधिक है। आपने सुना होगा कि फूलोंकी गन्ध बहुधा किसी न किसी तेल द्वारा ही खींची जाती हैं, मसलन तिल्ली, व जैतून वग़ैरह और बादको मिट्टीके तेल या पेट्रोलियम ज्वलकके ज़रिए उसमेंसे इत्र यानी सुगन्धित अंश (essence) अलग किया जाता है। सुगन्धित अंशकी मात्राके अनुसार तेल कई दरजेके होते हैं और पोमेड (pomade) या सुगन्धित तेलके नामसे बेंचे जाते हैं। पेट्रोलियम ज्वलक (petroleum ether) में इत्रको घुला लेनेका गुण होता है पर तिल्ली या और किसी तेलसे नहीं मिलता, इसी तरह मद्य (alcohol) में भी यही गुण विद्यमान है। पर मद्य कई तरहका होता है जो जलके न्यूनाधिक होनेसे पृथक् पृथक् नामसे बोला जाता है, जैसे पचास प्रतिशत मद्य, ६६ प्रतिशत मद्य, ७० प्रतिशत मद्य इत्यादि। इत्र खींचनेके लिए ६६°/₀ वाला मद्य लिया जाता है क्योंकि इसमें पानी का अंश नहीं के बराबर है। इसके पश्चात् मद्य और इत्र (essence) के घोलको या पेट्रोलियम ज्वलक (petroleum ether) और इत्रके घोलको भभकेसे स्रवण करके अलग कर लेते हैं, क्योंकि मद्य (alcohol) पहले निकल आता है और इत्र रह जाता है अर्थात् मद्य तथा पेट्रोलियम ज्वलक बहुत पहले उबल कर भाप रूप हो जाते हैं और इत्र बहुत पीछे। भभके की क्रिया भी दो तरहकी होती है। एक जल कुंडी पर उबलना (water bath distillation) और एक सीधे आग पर उबालना। सुगन्धित अंश और मद्यको पहली रीतिसे अलग करते हैं। इसी तरह पेट्रोलियम ज्वलकसे काम लेते हैं। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि पेट्रोलियम ज्वलक मिट्टीके तेलका ही एक अंश है। जो मिट्टीका तेल हमको ज़मीनके भीतर कुओंसे मिलता है। वह जलानेके काबिल नहीं होता। उसमेंसे बहुतसी चीज़ें निकाली जाती हैं। जैसे पेट्रोल (petrol) जो मोटरके काममें आता है, गैसोलीन, पेट्रोलियम ज्वलक (petroleum ether) जिसका वर्णन

ऊपर हो चुका है और खास मिट्टीका तेल (petroleum oil)। पहले वाली चीजें मिट्टीके तेलसे पहले उबल आती हैं। अर्थात् उनका क्थनांक मिट्टीके तेलके क्थनांकसे बहुत कम होता है। जलाने वाले मिट्टीके तेलके निकल आनेके पश्चात् जो हिस्सा बच रहता है वह वैसलीन (Vaselene) के नामसे बेचा जाता है। अच्छा तो अब आपको ज्ञात हो गया कि पेट्रोलियम उबलक क्या चीज़ है। जब यह भभकेसे अलग हो जाता है तो इत्रका अंश भभकेके पात्रमें रह जाता है।

बहुतसे सुगन्धित पदार्थ ऐसे हैं जो भभके द्वारा निकाले जाते हैं और बहुतसे ऐसे हैं जो और और रतिसे, किसी तेल या चरबी द्वारा पहले निष्कर्ष करके और उसमें उसकी बास पैवस्त करके और फिर किसी ऐसे द्रव पदार्थ जैसे मद्यसे घोल बनाकर भभके द्वारा अलग करते हैं जिसका पूरा वर्णन चित्र द्वारा आगे समझाया जायेगा।

वनस्पतियों या फूलोंसे निकले हुए सुगन्धित पदार्थ इन रीतियोंसे निकाले जाते हैं।

१—मशीन द्वारा दबाकर (Pressure).

२—भभकेसे स्रवण करके (Distillation).

३—चरबी व तेलमें बास खींचकर और फिर मद्य या अन्य द्रव पदार्थसे घोल बनाकर (Infusion)

१—दबाकर (pressure) बहुतसे वनस्पतिक तेल (Vegetable oil) जो फलों और छिलकोंके थैलोंमें अधिकांशमें होता है मशीन द्वारा सुगमतासे खींचा जाता है। वनस्पतिक तेल निकालनेकी एक बेलन दार मशीन (hydraulic press) अच्छी निकाली गई है यह एक लोहेकी बेलनाकार नली है जिसके ऊपर अगणित छिद्र होते हैं। एक तरफ यह नली बन्द रहती है और दूसरी ओर ठीक पिचकारीके डाट और डन्डेकी तरह कल रहती है, जिसको अङ्गरेजीमें पिस्टन (piston) कहते हैं। वनस्पतिक पदार्थको जिसमें तेल रहता है उस नलीमें भरकर पिस्टनसे दबाते हैं जिससे अधिकांश तेल छिद्रसे निकल आता है। नलीमें बचा हुआ अंश छाछ (wood cape) कहलाता है। यह तेल रहित होता है। सुगन्धित तेल (essential oil) के अतिरिक्त पानीका अंश तथा और वनस्पतिक रेशे भी विद्यमान रहते हैं जिससे इसका रङ्ग दूधकी तरह हो जाता है। सबको एक कांचके लम्बे पात्रमें एकत्रित कर लेते हैं और ऐसी जगह रख देते हैं जहां कोई हरकत न हो। कुछ घंटों पश्चात् द्रव पदार्थ दो भागोंमें विभाजित हो जाता है। नीचेका पानी रेशेसे मिला हुआ और ऊपर वाला स्वच्छ तेलका अंश अलग कर उसको फिर छन्ने द्वारा छान लेते हैं। पानी और तेल अलग करनेकी रीति आगे दिए हुए चित्रसे ज्ञात हो जायगी।
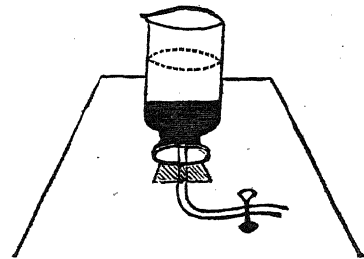
चित्र १

इसमें एक बोतलकी तरह शीशेका बर्तन होता है। यह शीशेके लम्बे बोतलसे नीचेके पेंदेको काटकर और एक शीशेकी नली काग द्वारा लगा कर बनाया जाता है। शीशेकी नलीमें भारतीय रबरकी नली (India rubber tube लगा) देते हैं जिसके सिरे पर एक कमानीदार चिमटी (stop cock) लगी रहती है जिसके खोलने और मूंदनेसे पानी सब निकाला जा सकता है और खाली तेल बरतनमें रह जाता है। ऊपर लिखी हुई रीति केवल थोड़े पदार्थोंके निकालनेमें काम आती है और जो सुगन्धित भी बहुत कम होते हैं। परन्तु ऐसे मशीनोंके रखनेसे अत्तारियोंको लाभ भी बहुत है क्योंकि इससे ऐसे तेल भी निकल सकते हैं जो बहुधा काममें आते हैं जैसे बादामका तेल, अखरोटका तेल इत्यादि।

रागम् और मांगनीज

(Chromium and Manganese)

[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम. एस-सी.]

षष्ठ समूहके धातु तत्वोंका वर्णन पहले दिया जा चुका है। वहां यह कहा गया था कि इस समूहके रागम् धातुके गुण सप्तम समूहके मांगनीजके गुणोंसे अधिक मिलते जुलते हैं अतः इन दोनोंका साथ साथ वर्णन करना ही उचित प्रतीत होता है। रागम् और मांगनीज दोनों प्रथम दीर्घ खण्डकी समश्रेणीके तत्व हैं। इनके भौतिक गुण नीचेकी सारिणीमें दिये जाते हैं।

सप्तम समूहमें मांगनीजके अतिरिक्त मैसूरम् (Masurium) और रैनम् (Rhenium) नामक दो धातु तत्व और हैं जिनका अभी तीन वर्ष हुआ कुमारी टके तथा नोडक ने आविष्कार किया है। ये अत्यन्त दुर्लभ तत्व हैं और इनके गुणों एवं यौगिकोंके विषयमें बहुत कम ज्ञात हुआ है।

खनिज

रागम्—इस धातुका सबसे प्रसिद्ध खनिज रागित (क्रोमाइट) है जो लोहस रागित, लोरा$_2$ओ$_4$ होता है। यह एशिया माइनर, अमरीका, भारतवर्ष आदि प्रदेशोंमें पाया जाता है। इसके अन्य खनिज क्रोमिटाइट, लो$_2$ ओ$_3$, रा$_2$ ओ$_3$; क्रोमओके, रा$_2$-ओ$_3$ आदि उपयोगी नहीं हैं।

तत्व	संकेत		परमाणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक	आपेक्षिक ताप
रागम्	रा	Cr	५२०	६.५०	१४८९	२२००	०.११२
मांगनीज	मा	Mn	५४.९३	७.३९	१२०७	१६००	०.१२२

मांगनीज—मांगनीजका सबसे मुख्य खनिज पाइरोलूसाइट है जो मांगनीज-द्विओषिद, मा ओ$_2$ होता है। ब्रोनाइट, मा$_2$ ओ$_3$; रोडेनाइट, माशै ओ$_3$ आदि इसके अन्य खनिज हैं जो बहुत उपयोगी नहीं हैं।

धातु उपलब्धि

रागम्—रागम् धातु मुख्यतः राग एकार्ध ओषिद, रा$_2$ओ$_3$, से बनाई जाती है। इस ओषिद-के बनानेका विवरण आगे दिया गया है। गोल्डश्मितकी उत्ताप विधि (thermit process) का उपयोग रागम् धातुके प्राप्त करनेमें किया जाता है। राग एकार्ध ओषिद और स्फट-चूर्णके मिश्रणको एक घरियामें रखते हैं। इस मिश्रणमें मगनीसम् और भार परौषिदका एक छोटा सा कारतूस रख देते हैं जिसे मगनीसम् तार द्वारा जलानेसे सम्पूर्ण मिश्रण जल जाता है। स्फटम् धातुका वर्णन करते हुए यह कहा जा चुका है, कि जब यह ओषजनसे संयुक्त होता है तो बहुत ताप उत्पन्न होता है। राग एकार्ध ओषिदका सम्पूर्ण ओषजन स्फटम् ले लेता है और रागम् धातु प्राप्त हो जाती है।

$$\text{रा}_2\,\text{ओ}_3 + 2\,\text{स्फ} = \text{स्फ}_2\,\text{ओ}_3 + 2\,\text{रा}$$
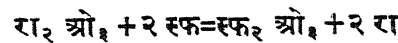
बहुत ताप उत्पन्न होनेके कारण स्फट ओषिद भी पिघल जाता है। ठंडे होने पर इस ओषिदके रवे जिन्हें कोरूबिन कहते हैं जम जाते हैं। इन रवों-के नीचेकी तहमें रागम् रहता है जिसे अलग कर लिया जाता है। यह धातु ९९.५ प्रतिशत शुद्ध रहता है पर इसमें लोहम् और शैलम्की कुछ अशुद्धियाँ विद्यमान रहती हैं।

मांगनीज़—पाइरोलूसाइट खनिजका कर्बनके साथ अवकरण करनेसे मांगनीज़ धातु मिल सकती है—

$$मा\ ओ_2 + २\ क = मा + २\ क\ ओ$$
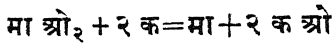
इस प्रक्रियामें समीकरण द्वारा प्रदर्शित मात्रासे कम कर्बनकी मात्राका उपयोग करनेसे अधिक शुद्ध मांगनीज़ प्राप्त हो सकता है अन्यथा प्राप्त मांगनीज़ में कर्बनके कुछ कण रह जाते हैं।

यदि और भी शुद्ध मांगनीज़ प्राप्त करना हो तो रागम्के समान गोल्डश्मित की उत्ताप-विधि द्वारा मांगनीज़के ओषिद, $मा_3\ ओ_4$, को स्फटम् द्वारा अवकृत करना चाहिये।

$$३\ मा_3\ ओ_4 + ८\ स्फ = ४\ स्फ_2\ ओ_3 + ९\ मा$$

मांगनस हरिद, $मा\ ह_2$, के घोलको पारद-ऋणोदका उपयोग करके विद्युत-विश्लेषित करनेसे और भी अधिक शुद्ध धातु मिलेगी। धातु-पारद मिश्रणको शून्यमें २५०° तक गरम करके पारदम् उड़ा देनेपर शुद्ध धातु रह जावेगी।

धातुओंके गुण

रागम्—यह चांदीके समान श्वेत, कठोर, रवे-दार धातु है। इसके घनत्व आदि भौतिक गुण आरम्भमें दिये जा चुके हैं। यह ओष-उदजन ज्वालामें अत्यन्त प्रचंडतासे जलता है और राग-एकार्ध ओषिद, $रा_2\ ओ_3$ बनता है। यह हलके गन्धकाम्ल, और उदहरिकाम्लमें घुल जाता है, घुलने पर नीला घोल मिलता है जो रागस-लवणों का है—

$$रा + २\ उ\ ह = रा\ ह_2 + उ_2$$
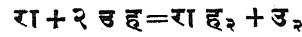
रागस लवण वायुके संसर्गसे ओषजन ग्रहण करके शीघ्रही रागिक लवणोंमें परिणत हो जाते हैं।

$$४\ रा\ ह_2 + ओ_2 + ४\ उ\ ह = ४\ रा\ ह_3 + २उ_2ओ$$
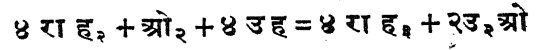
रागम् हलके नोषिकाम्लमें भी घुल जाता है पर तीव्र नोषिकाम्लमें यह शिथिल (Passive) पड़ जाता है और इसकी घुलनशीलताका गुण नष्ट हो जाता है। तीव्र नोषिकाम्लमें एक बार डुबाकर फिर चाहे इसे हलके नोषिकाम्लमें ही क्यों न रखा जाय, यह फिर नहीं घुलेगा। हवामें खुला छोड़नेसे तथा रागिकाम्लमें भी डुबोनेसे इसी प्रकार की शिथिलता इसमें आ जाती है। पर शिथिल रागम्को हलके गन्धकाम्लके अन्दर रखकर इसके पृष्ठ तलको दस्तम् धातु द्वारा छूनेसे यह शिथि-लता दूर हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस शिथिलताका कारण यह है कि धातुके ऊपर नोषि-काम्ल या वायुद्वारा राग-ओषिदकी एक पतली तह जम जाती है जिसके कारण फिर यह धातु घुलन-शील नहीं रह जाता है। दस्तम् और हलके गन्ध-काम्लके संसर्गसे उदजन जनित होता है जो ओषिद की तह का अवकरण कर देता है जिससे शिथिलता फिर दूर हो जाती है। रक्त तप्त होने पर रागम् भापको विश्लेषित कर सकता है:—

$$२रा + ३उ_2ओ = रा_2ओ_3 + ३उ_2$$
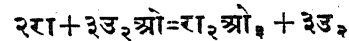
मांगनीज़—यह ख़ाकी रंगका धातु है जो कठोर एवं भंजनशील होता है, यह कर्बनकी अनुपस्थितिमें वायु द्वारा ओषदीकृत नहीं हो सकता है। यह साधारण तापक्रम पर ही जलको विश्लेषित कर देता है और उदजन निकलने लगता है। यह हलके लवणोंमें घुल कर मांगनस लवण देता है—

$$मा + उ_2ग\ ओ_4 = मा\ ग\ ओ_4 + उ_2$$
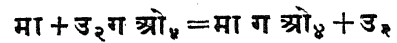
१२१०° से ऊंचे तापक्रम पर यह नोषजनसे संयुक्त होकर कई प्रकारके नोषिद, $मा_{५}$ $नो_{२}$, $मा_{३}$ $नो_{२}$ आदि देता है। गरम मांगनीज पर अमोनिया प्रवाहित करने से भी इसी प्रकारके नोषिद मिलते हैं। विद्युत् भट्टीमें कर्बनके साथ संयुक्त हो कर यह कर्बिद, $मा_{३}$ क, देता है।

... मांगनीज़ के कई धातु संकर प्रसिद्ध हैं—

(१) लोह मांगनीज—७०—८०% मांगनीज़, शेष लोहा, ०·३% से कम कर्बन

(१) स्पीगल—२०—३२% मांगनीज़ शेष लोहा, ०·३% से अधिक कर्बन

(३) मांगनीज़ ब्राञ्ज या कांसा—मांगनीज़ दस्तम् और ताम्रम् का संकर

(४) मांगेनिन—८३ भाग तांबा, १३ भाग मांगनीज़ और ४ भाग नकलम्,

रागम् और मांगनीज़ दोनों के लवण दो श्रेणियोंके होते हैं—रागस और रागिक तथा मांगनस तथा मांगनिक। अस-लवणों में ये तत्व द्विशक्तिक है और इक-लवणों में त्रिशक्तिक। रागस लवणों की अपेक्षा रागिक लवण अधिक स्थायी हैं। पर मांगनिक लवणोंकी अपेक्षा मांगनस लवण अधिक स्थायी होते हैं।

ओषिद और उदौषिद

रागउदौषिद—रा $(ओउ)_{२}$—किसी रागस लवण के घोलमें सैन्धक उदौषिदका घोल डालनेसे रागस उदौषिद, रा $(ओ उ)_{२}$ का पीला अवक्षेप मिलता है। यह जलमें ही ओषदीकृत होकर शीघ्रही रागिक उदौषिदमें परिणत हो जाता है और उदजन निकलने लगता है।

$$२\ रा\ (ओउ)_{२} + २उ_{२}ओ = २\ रा(ओउ)_{३} + उ_{२}$$
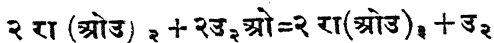
अतः रागस उदौषिदको गरम करनेसे रागसओषिद, राओ, नहीं बन सकता है

रागिकओषिद या रागएकार्ध ओषिद—$रा_{२}$ $ओ_{३}$-रागिक उदौषिद को जो रागिक लवणों के घोल में क्षारोंका घोल डालनेसे अवक्षेपित होता है, गरम करनेसे रागिक ओषिद मिलता है—

$$२\ रा\ (ओउ)_{३} = रा_{२}ओ_{३} + ३उ_{२}ओ$$
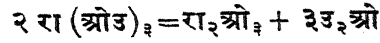
अमोनियम द्विरागेतको गरम करनेसे भी यह मिल सकता है—

$$(नो\ उ_{४})_{२}\ रा_{२}ओ_{७} = रा_{२}\ ओ_{३} + नो_{२} + ४\ उ_{२}ओ$$
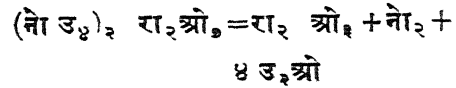
पांशुजद्विरागेत को गन्धकके साथ गरम करने से भी यह मिल सकता है

$$पां_{२}\ रा_{२}\ ओ_{७} + ग = पां_{२}\ ग\ ओ_{४} + रा_{२}ओ_{३}$$
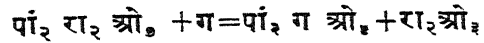
यह ओषिद गले हुए सुहागे या कांचमें घुल जाता है। घुलने पर कांचका रंग हरा हो जाता है। यदि स्त्रंशम् भी विद्यमान हो तो रंग नीला हो जावेगा।

रागिक त्रिओषिद—$राओ_{३}$—तीव्रगन्धकाम्ल और पांशुज द्विरागेत के मिश्रणसे लाल घोल प्राप्त होता है जो त्रिओषिदका घोल है। इसे रागिकाम्ल भी कहते हैं।

मांगनीज़के ६ प्रकारके ओषिद होते हैं। इनमें कम ओषजनवाले ओषिद भस्मिक होते हैं और अधिक ओषजनवाले अम्लिक। प्रत्येक ओषिदसे किस प्रकारके लवणोंका सम्बन्ध है यह आगेकी सारिणीमें दिखाया गया है।

मांगनस ओषिद—माओ—मांगनस कर्बनेत, माक $ओ_{३}$, को उदजनमें गरम करनेसे यह मिल सकता है। मांगनस काष्ठेत, मा $क_{२}$ $ओ_{४}$ को गरम करनेसे भी यह मिलता है—

नाम	सूत्र	मांगनीज की संयोग शक्ति	सम्बन्धित लवण
मांगनस ओषिद	मा ओ	२ (प्रबल क्षारीय)	मांगनस लवण जैसे मा ग $ओ_४$
मांगनो मांगनिक ओषिद	$मा_३$ $ओ_४$	—	यह माओ और $मा_२$ $ओ_३$ का मिश्रण है
मांगनिक ओषिद	$मा_२$ $ओ_३$	३ (क्षीण क्षारीय)	मांगनिक लवण जैसे $मा_२$ $(ग ओ_४)_३$
मांगनीज़ द्विओषिद	मा $ओ_२$	४ (क्षीण अम्लीय)	मांगनित, जैसे खमा$ओ_२$
मांगनीज त्रिओषिद	मा $ओ_३$	६ (अम्लीय)	मांगनेत, जैसे $पां_२$ मा $ओ_४$
मांगनीज सप्तौषिद	$मा_२$ $ओ_७$	७ (अम्लीय)	पर मांगनेत, जैसे पां मा $ओ_४$

$$मा\ क_२\ ओ_३ = मा\ ओ + क\ ओ + क\ ओ_२$$

यह खाकी हरा पदार्थ है। मांगनस लवणोंके घोलमें सैन्धक क्षार डालनेसे मांगनस उदौषिद, मा $(ओ\ उ)_२$ का श्वेत अवक्षेप मिलता है जो वायुके संसर्गसे मांगनिक उदौषिद, मा ओ (ओ उ) के भूरे अवक्षेपमें परिणत हो जाता है।

मांगनो मांगनिक ओषिद—$मा_३$ $ओ_४$-यह हौसमैनाइट खनिजमें पाया जाता है। अन्य किसीभी ओषिदको वायुमें गरम करनेसे यह बन सकता है।

$$३\ मा\ ओ + ओ = मा_३\ ओ_४$$

$$३\ मा\ ओ_२ = मा_३\ ओ_४ + ओ_२$$

इसे यदि तीव्र गन्धकाम्लमें घोला जाय तो घोल में मांगनस और मांगनिक गन्धेतों का मिश्रण मिलेगा—

$$मा_३\ ओ_४ + ४उ_२\ ग\ ओ_४ = मा\ ग\ ओ_४ + मा_२\ (ग\ ओ_४)_३ + ४उ_२\ ओ$$

जिससे स्पष्ट है कि यह ओषिद मांगनस और मांगनिक ओषिदों का मिश्रण है।

मांगनिकओषिद—$मा_२$ $ओ_३$—अन्य ओषिदों को ओषजनके प्रवाहमें गरम करनेसे सका काला चूर्ण प्राप्त होता है।

$$२मा\ ओ + ओ = मा_२ओ_३$$

मांगनस उदौषिदका अवक्षेप वायुमें ओषदीकृत होकर मांगनिक उदौषिद, मा ओ (ओ उ) बन जाता है। यह उदौषिद ठंडे उदहरिकाम्लमें घुल जाता है और खाकी रंगका घोल मिलता है जिसके गरम करनेसे हरिन् निकलने लगती है। यह उदौषिद तीव्र तप्त नोषिकाम्लमें घुल जाता है और मांगनस नोषेत बनता है तथा मांगनीज द्विओषिद अवक्षेपित हो जाता है:—

$$मा\ ओ\ (ओ\ उ) + २\ उ\ नो\ ओ_३$$
$$= मा\ (नो\ ओ_३)_२ + मा\ ओ_२ + २\ उ_२\ ओ$$

मांगनीज द्विओषिद—मा $ओ_२$—यह पाइरोलूसाइट खनिजमें पाया जाता है। मांगनस नोषेतको इतना गरम करनेसे कि सब लाल वाष्पें निकल जावें, यह शुद्ध रूप में मिल सकता है—

$$मा\ (नोओ_३)_२ = माओ_२ + २\ नोओ$$

पांशुज परमांगनेतके घोलमें थोड़ासा हलका सैन्धक उदौषिद डाल कर द्राक्ष शर्कराके साथ उबालनेसे भी मांगनीज़ द्विओषिद अवक्षेपित हो सकता है। उदजन परौषिद और परमांगनेत के घोलके संसर्ग से कलार्द्र मांगनीज़ द्विओषिद मिलता है।

मांगनीज़ त्रिओषिद—मा$ओ_3$—यह बहुत थोड़ी मात्रामें ही बनाया जा सकता है। पांशुजपरमांग-नेतको तीव्र गन्धकाम्लमें घोलकर बूंद बूंद कर के शुष्क सैन्धक कर्बनेत पर टपकाने से इसकी लाल वाष्पें निकलनी आरम्भ होती हैं जो ठंडी पड़ने पर लाल स्निग्ध पदार्थ देती हैं। यह ओषिद अस्थायी है। इसके लवण मांगनेत कहलाते हैं।

मांगनीज़ सप्तोषिद—मा$_2$ओ$_7$—जब पांशुज-पर-मांगनेत का चूर्ण बर्फ द्वारा ठंडे किये हुये तीव्र-गन्धकाम्लमें थोड़ा थोड़ा कर के छोड़ा जाता है, तो चटकीला हरा घोल प्राप्त होता है। इस घोलमें मांगनीज़ त्रिओषिद गन्धेत, (मा$ओ_3$)$_2$ ग$ओ_4$, रहता है। यह घोल प्रबल विस्फुटक है। इसे बर्फीले पानीसे संचालित करनेपर मांगनीज़ सप्तौषिद तैल की बूँदों के रूप में पृथक् होने लगता है।

२ पां मा $ओ_4$ + २ $उ_2$ ग$ओ_4$

= (मा$ओ_3$)$_2$ ग$ओ_4$ + पां$_2$ ग $ओ_4$ + २ $उ_2$ ओ

(मा$ओ_3$)$_2$ ग$ओ_4$ + $उ_2$ ओ

= मा$_2$ $ओ_7$ + $उ_2$ ग $ओ_4$

यह सप्तौषिद अपारदर्शक तैल रूपद्रव है जिस का घनत्व २.४ है गरम करने पर इसमें प्रबल विस्फुटन होने लगता है।

हरिद

रागस हरिद—राह$_2$—५० ग्राम पांशुज द्विरागेत और ५० ग्राम दस्तम्के मिश्रणको एक कांचकी कुप्पी में लो और इसके मुँहमें काग लगाकर एक पेंचदार कीप और वाहकनली भी लगा दो। वाहक नली का दूसरा सिरा पानीमें डुबो दो। कीपमें ३०० घ.श. म. तीव्र उदहरिकाम्ल और २०० घ. श. म जलका मिश्रण रखो, इस अम्ल को बूँद बूँद करके द्विरागेत और दस्तम्के मिश्रण पर टपकाओ। ज़ोरों से प्रक्रिया आरम्भ होगी। पहले तो रागिक हरिद [राह$_3$] का हरा घोल मिलेगा जो बाद को रागस हरिद के नील घोलमें परिणत हो जावेगा।

पां$_2$ रा$_2$ $ओ_7$ + १४ उह = २ राह$_3$ + २पांह + ७ $उ_2$ ओ + $उह_2$

राह$_3$ + उ = राह$_2$ + उह

रागिक हरिद को उदजन के प्रवाहमें गरम करने से अनार्द्र रागस हरिद मिल सकता है।

रागिक हरिद—राह$_3$—रागम् को रक्त तप्त कर के, उसके ऊपर हरिन् प्रवाहित करनेसे रागिक हरिद मिलता है। राग एकार्ध ओषिद को कर्बन के साथ मिला कर हरिन्के प्रवाहमें गरम करने से भी यह मिल सकता है।

रा$_2$$ओ_3$ + ३ क + ३ $ह_2$ = २ रा $ह_3$ + ३ क ओ

इसके रवे हरापन लिये हुए श्याम वर्ण के होते हैं अनार्द्र शुद्धरागिक हरिद ठंडे जलमें अनघुल है। पर इसमें यदि थोड़ा सा भी रागसहरिद होगा तो यह शीघ्र घुलकर हरा घोल देगा।

इस हरिदके जलीय घोलमेंसे तीन उदेत पृथक् किये गये हैं—दो हरे और एक बैंजनी, इनको बहुधा निम्न प्रकार सूचित करते हैं—

१ बैंजनी—[रा (ओ $उ_2$)$_6$] $ह_3$

२ हरा—[रा (ओ $उ_2$)$_4$ $ह_2$] ह + २ $उ_2$ ओ

३ हरा—[रा (ओ $उ_2$)$_5$ ३] $ह_2$ + $उ_2$ ओ

रागिक प्लविद, रा $प्ल_3$—यह रागिक हरिद पर उदप्लविकाम्ल प्रवाहित करनेसे मिलता है। इसी प्रकार रागिक अरुणिद, रा $रु_3$, भी बनाया जा सकता है।

मांगनस हरिद—मा $ह_2$ पाईरोलूसाइडको उद-हरिकाम्लके साथ गरम करनेसे हरिन् गैस निक-लती है और मांगनस हरिद बनता है—

मा $ओ_2$ + ४ उ ह = मा $ह_2$ + २ $उ_2$ ओ + $ह_2$

[पाइरोलूसाइटमें थोड़ा सा लोह ओषिद, लो$_2$-$ओ_3$, भी मिला रहता है जो उदहरिकाम्लके संसर्ग से पीला लोह हरिद देता है। इस लोह हरिदकी विद्यमानतामें मांगनस हरिदका स्फटिकीकरण करना असम्भव हो जाता है अतः इस मांगनस-हरिद और लोह हरिदके मिश्रणके दशवें भागको

सैन्धक कर्बनेत द्वारा उबालते हैं। इस प्रकार लोह उदौषिद् और मांगनीज कर्बनेतका अवक्षेप आ आता है। इस अवक्षेपको धोकर शेष $\frac{९}{१०}$ भाग घोल में मिला देते हैं। फिर गरम करनेसे सम्पूर्ण मांगनस हरिद घोलमें रह जाता है और लोह उदौषिद् अवक्षेपित हो जाता है :

$$२ \text{ लो } ह_३ + \text{मा क ओ}_३ + ३ \text{ उ}_२ \text{ ओ}$$
$$= २ \text{ लो (ओ उ)}_३ + ३ \text{ मा उ}_२ + ३ \text{ क ओ}_२$$

अवक्षेपको पृथक् कर देते हैं और घोल को गरम करके मांगनस हरिदके रवे प्राप्त कर लेते हैं।]

मांगनस हरिदके रवे गुलाबी रंगके होते हैं, और इनमें स्फटिकीकरणके ४ जलाणु होते हैं।

मांगनिक हरिद, मा $ह_३$-जब मांगनीज द्विओषिद् को ठंडे तीव्र उदहरिकाम्लमें घोला जाता है तो भूरा घोल मिलता है। इस घोलमें मांगनिक हरिद होता है—

$$२ \text{ मा ओ}_२ + ८ \text{ उ ह} = २ \text{ मा ह}_३ + ४ \text{ उ}_२\text{ओ} + \text{ह}_२$$

पर यह स्थायी है और गरम करने पर मांगनस हरिदमें परिणत हो जाता है यदि मांगनीज द्विओषिदको कर्बन चतुर्हरिदमें छितराकर शुष्क उदहरिकाम्ल प्रवाहित किया जाय तो एक ठोस पदार्थ मिलता है जिसमें मांगनिक हरिद भी होता है। इसको शुष्क ज्वलक द्वारा धोनेसे बैंजनी रंग का मांगनिक हरिदका घोल मिलता है।

मांगनिक त्रिप्लविद, मा $प्ल_३$, द्विओषिदको उदप्लविकाम्लमें घोलनेसे मिल सकता है।

गन्धेत

रागस गन्धेत—रा ग $ओ_४$-७ $उ_२$ ओ—यह ऊपर कहा जा चुका है कि दस्तम्, पांशुज द्विरागेत तथा उदहरिकाम्लके संसर्गसे रागस हरिदका नीला घोल मिलता है। इस घोलमें सैन्धकसिरकेत का संपृक्त घोल डालनेसे रागस सिरकेत, रा (क $उ_३$-क $ओ_२$)$_२$ का लाल अवक्षेप प्राप्त होता है यह सिरकेत अन्य रागस लवणों की अपेक्षा अधिक स्थायी है। इस सिरकेतको हलके गन्धकाम्लमें घोलनेसे रागस गन्धेत बनता है। इसे लोहस गन्धेतके समान समझना चाहिये।

रागिक गन्धेत, $रा_२$ (ग $ओ_४$)$_३$—शुष्क रागिक उदौषिद और तीव्र गन्धकाम्लकी सम मात्रा मिलाकर कई सप्ताह तक रख छोड़ने पर रागिक गन्धेतके बैंजनी रवे मिलते हैं। पर यदि इसके घोलको थोड़े, मद्य द्वारा अवक्षेपित किया जाय तो $रा_२$ (ग $ओ_३$)$_३$ १८ $उ_२$ ओ, के बैंजनी अष्टतलीय रवे मिलेंगे। अधिक मद्य द्वारा अवक्षेपित करनेसे अनार्द्र रागिक गन्धेत मिलेगा।

रागिक गन्धेत क्षार तत्वोंके गन्धेतोंके साथ संयुक्त होकर जो लवण देता है उन्हें राग फिटकरी (chrome alum) कहते हैं। साधारण पांशुजराग फिटकरी—$पां_२$ $गओ_४$, $रा_२$ (ग $ओ_४$)$_३$, २४ $उ_२$ ओ सूत्र द्वारा प्रदर्शितकी जाती है। पांशुज द्विरागेत और हलके गन्धकाम्लके घोलका अवकरण करनेसे यह बन सकती है। १० ग्राम पांशुज द्विरागेत को ७५ घ. श. म. जलमें घोलो। घोलको ठंडा करके सावधानीसे २ घ. श. म. तीव्र गन्धकाम्ल डाल दो। बर्फीले पानी द्वारा ठंडा करके मिश्रणमें गन्धक द्विओषिद् वायव्य प्रवाहित करो जब तक कि इसका लाल रंग नील-हरित रंगमें परिणत न हो जावे। कुछ समय पश्चात् इस घोलमेंसे फिटकरीके पीले रवे पृथक् होने लगेंगे।

मांगनस गन्धेत—मा ग $ओ_४$—पाइरोलूसाइटको तीव्र गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे मांगनस गन्धेत मिलता है—

$$२ \text{ मा ओ}_२ + २ \text{ उ}_२ \text{ ग ओ}_४ = २ \text{ माग ओ}_४ + २ \text{ उ}_२ \text{ ओ} + \text{ओ}_२$$

साथही साथ लोहिक गन्धेत भी बनता है। मांगनस गन्धेत और लोहिक गन्धेतके मिश्रणको रक्त तप्त करनेसे लोहिक गन्धेत अनघुल लोहिक ओषिदमें परिणत हो जाता है—

लो$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$=लो$_2$ ओ$_3$ + ३ ग ओ$_3$

मांगनस गन्धेतमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसे फिर घोल लेते हैं और घोलको वाष्पीभूत करनेसे मांगनस गन्धेतके गुलाबी रवे पृथक् होने लगते हैं। इसके रवोंमें स्फटिकीकरण के ५ जलाणु और कभी ७ और कभी १ जलाणु होते हैं।

मांगनिक गन्धेत, मा$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$—ताजे अवक्षेपित मांगनीज द्विओषिदको तीव्र गन्धक द्वारा १३८° तक गरम करनेसे यह बन सकता है। यह जलमें बैंजनी रंगका घोल देता है। यह भी रागफिटकरीके समान फिटकरी, पां$_2$ गओ$_4$ मा$_2$ (गओ$_4$)$_3$, २४ उ$_2$ ओ, देता है।

अन्य लवण

रागनेषेत, रा (नो ओ$_3$)$_2$ ६ उ$_2$ओ—यह रागिक उदौषिद और नोषिकाम्लके संसर्ग से बनता है।

राग स्फुरेत—रा स्फु ओ$_4$—राग लवण को सैन्धक उदजन स्फुरेत द्वारा अवक्षेपित करनेसे यह बनता है।

राग गन्धिद, रा$_2$ ग$_3$—रागम् और गन्धकके मिश्रण को गरम करनेसे बनता है। रागिक हरिद के घोलमें उदजन गन्धिद प्रवाहित करनेसे भी मिल सकता है।

रागील हरिद, रा ओ$_2$ ह$_2$—इसे सुनागील हरिद सुओ$_2$ ह$_2$; पिनाकील हरिद, पिओ$_2$ ह$_2$ आदि के समान समझना चाहिये। सैन्धक हरिद और पांशुज द्विरागेतके मिश्रणको भभके में स्रवित करने से घोर लाल रंगकी वाष्पें उठती हैं जो ठंडी होकर अरुणिन्के समान काला द्रव देती हैं। यह द्रव रागील हरिद है। रागत्रिओषिद और उदहरिकाम्ल के मिश्रणमें धीरे धीरे तीव्र गन्धकाम्ल डालनेसे भी रागील हरिद बनता है—

रा ओ$_3$ + २ उ ह = रा ओ$_2$ ह$_2$ + उ$_2$ ओ

मांगनस कर्बनेत—मा क ओ$_3$—मांगनस लवणके घोलमें सैन्धक कर्बनेतका घोल डालने से पीला-भूरा अवक्षेप आता है। यह कर्बन द्विओषिद-मिश्रित-जलमें घुलनशील है क्योंकि इसका अर्ध-कर्बनेत बन जाता है।

मांगनस गन्धिद—मग—मांगनस कर्बनेतको गन्धकके साथ गरम करनेसे यह बनता है। मांगनस लवणके घोलमें अमोनिया डालकर उदजन गन्धिद प्रवाहित करनेसे मांसके रंगका अवक्षेप मिलता है। मांगनस गन्धिद हल्के अम्लोंमें यहां तक कि सिरकाम्लमें भी घुलनशील है। इस प्रकार विश्लेषणात्मक प्रक्रियामें यह दस्त गन्धिदसे पृथक् किया जा सकता है जो सिरकाम्लमें अनघुल है।

मांगनस अमोनियम स्फुरेत—मा नो उ$_4$ स्फुओ$_4$ उ$_2$ओ—मांगनस लवणमें अमोनियम हरिद अमोनिया और सैन्धक स्फुरेत डालनेसे इसका लाली लिये हुए श्वेत अवक्षेप मिलता है। इसको भस्म करनेपर मांगनस उष्म स्फुरेत मा$_2$ स्फु$_2$ ओ$_7$ मिलता है।

मांगनस कर्बिद—मा$_3$क—मांगनीज द्विओषिद को विद्युत् भट्टीमें कर्बनके साथ गरम करनेसे यह मिलता है।

रागेत और मांगनेत

रागेत—जिस प्रकार गन्धक त्रिओषिद का जलीय घोल गन्धकाम्ल कहलाता है उसी प्रकार राग त्रिओषिदका घोल रागिकाम्ल कहलाता है। रागिकाम्लके लवण रागेत कहलाते हैं इन्हें गन्धेतों के समान समझना चाहिये।

पांशुज द्विरागेतको तीव्र गन्धकाम्लमें घोलनेसे रागिकाम्लका लाल घोल मिलता है। इस रागिकाम्लको दाहक पांशुजक्षार द्वारा शिथिल करनेसे पांशुज रागेत, पां$_2$ गओ$_4$ के पीले रवे मिलेंगे। द्विरागेतके घोलको पांशुज कर्बनेत के साथ प्रभावित करके भी पांशुज रागेत बनाया जा सकता

है। यह जलमें बहुत घुलनशील है (१०० भाग जल में ६५.१३ भाग ३०°श पर)।

सैन्धकरागेत, सै$_2$ रा ओ$_4$, १० उ$_2$ ओ, पसीजने लगता है। अमोनियम रागेत अस्थायी है।

रजत रागेत—र$_2$ रा ओ$_4$—लाल रंगका होता है। यह जलमें अनुघुल है। पर अम्लों और अमोनियामें घुलनशील है। रजत नोषेतके घोलमें पांशुज रागेतका घोल डालनेसे यह अवक्षेपित हो जाता है। भार रागेत, भ गओ$_4$ पीला होता है। यह जल और सिरकाम्ल में अनघुल है पर खनिजाम्लोंमें घुलनशील है। सीस रागेत, सी राओ$_4$, सीस नाषेतके घोल की पांशुज द्विरागेत के घोल द्वारा अवक्षेपित करनेसे मिलता है। यह नोषिकाम्ल और सैन्धक क्षारमें घुलनशील हैं। भस्मिक सीस रागेतका उपयोग पीली वार्निश और रंग बनानेमें किया जाता है।

मांगनेत—यदि मांगनीज द्विओषिद को अधिक वायुमें दाहक क्षारोंके साथ गलाया जाय तो हरे लवण मिलते हैं जो मांगनेत कहलाते हैं जैसे पां$_2$ मा ओ$_4$। यदि पांशुज नोषेत या हरेत भी मिश्रणमें मिला दिया जाय तो प्रक्रिया और भी अधिक तीव्रतासे होगी।

४ पां ओउ + २ मा ओ$_2$ + ओ$_2$
 = २ पां$_2$ मा ओ$_4$ + २ उ$_2$ओ

मांगनेतके घोलमें हरिन् प्रवाहित करनेसे परमांगनेत बनता है :—

२पां$_2$ मा ओ$_4$ + ह$_2$ = २ पां मा ओ$_4$ + २ पां ह

द्विरागेत और परमांगनेत

पांशुज द्विरागेत—पां$_2$ रा$_2$ ओ$_7$, क्रोमाइट खनिजको सैन्धक कर्बनेतके साथ गलाकर जो पीला पदार्थ मिलता है उसे पानी द्वारा संचालित करते हैं। खनिजके लोहम् का उदौषिद बन जाता है, जो अनघुल है। इसे पृथक् छान कर छने हुए द्रवको वाष्पी भूत करते हैं तो पांशुजरागेत के पीले रवे मिलते हैं। इसके घोलमें गन्धकाम्ल की उपयुक्त मात्रा डालनेसे पांशुजद्विरागेत अवक्षेपित हो जाता है। पांशुरागेतकी अपेक्षा द्विरागेत जलमें कम घुलनशील है (१०० भाग जलमें ३०° श पर १८.०६ भाग)

पांशुजद्विरागेतका अम्लीय घोल पांशुजनैलिद में से नैलिन् मुक्त कर सकता है—

पां$_2$ रा$_2$ ओ$_7$ + ७ उ$_2$ ग ओ$_4$ + ६ पां नै
 = रा$_2$ (गओ$_4$)$_3$ + ४ पां$_2$ ग ओ$_4$ +
 ७उ$_2$ओ + ३ नै$_2$

आयतनमापक प्रयोगोंमें यह लोहस अवस्था के लोहम्का परिमाण निकालनेमें उपयुक्त होता है। यह स्वयं रागिक लवणोंमें परिवर्तित हो जाता है और लोहस लवणोंका ओषदीकरण हो जाता है—

पां$_2$ रा$_2$ ओ$_7$ + ४उ$_2$ ग ओ$_4$
 = पां$_2$ ग ओ$_4$ + रा$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$ +
 ४उ$_2$ ओ + ३ ओ

इस समीकरणसे स्पष्ट है कि अम्लीय घोलमें पांशुजद्विरागेत का एक अणु ३ ओषजन परमाणु दे सकता है। यह ओषजन लोहस गन्धेतको लोहिक गन्धेतमें परिणत कर देता है—

४ लो ग ओ$_4$ + २उ$_2$ ग ओ$_4$ + ओ$_2$
 = २ लो$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$ + २उ$_2$ ओ

लोहिक लवण पांशुज लोहो श्यमिदके साथ नीलारंग देते हैं। अतः लोहस घोल मेंतबतक द्विरागेतका घोल डालते जाना चाहिये जब तक कि घोल पांशुज लोहो श्यामिदके घोलसे नीलारंग न देने लगे।

परमांगनिकाम्ल, उ मा ओ$_4$—मांगनस गन्धेत और सीस द्विओषिद, सी ओ$_2$, के मिश्रणको नोषिकाम्लके साथ उबालनेसे परमांगनिकाम्लका घोल प्राप्त होता है। यह पांशुज पर मांगनेतसे भी बनाया

जा सकता है। रजत नोषेत और पांशुज-पर-मांगनेतके संसर्गसे रजत-पर-मांगनेत, र मा ओ$_4$, बनाते हैं। इसमें भारहरिद्का घोल डालनेसे भार पर मांगनेत, भ (मा ओ$_4$)$_2$ बन जाता है। भार पर-मांगनेतमें हलके गन्धकाम्लकी उपयुक्त मात्रा डालने से लाल रंगका परमांगनिकाम्ल मिलता है। यह अस्थायी अम्ल है।

पांशुज परमांगनेत – मांगनीज़ द्विओषिद्को दाहक पांशुज क्षार तथा पांशुज नोषेत या हरेतके साथ गलानेसे पांशुज मांगनेत बनता है। इसके छने हुए घोलमें कर्बन-द्विओषिद प्रवाहित करनेसे परमांगनेतका लाल घोल मिलता है। इसे फिर एस्बेस्टसमें होकर छानते हैं, और फिर वाष्पीभूत करके रवे प्राप्त करलेते हैं।

३ पा$_2$ मा ओ$_4$ + २ उ$_2$ ओ + ४ कओ$_2$
=२ पां मा ओ$_4$ + मा ओ$_2$ + ४ पांउ कओ$_3$

कुएँमें जो लाल दवा छोड़ी जाती है वह यही है। इसमें पांशुजद्विरागेत के समान प्रबल ओषद्-कारक गुण हैं। रक्त तप्त करनेसे इसमें से ओषजन निकलने लगता है। कोयले या गन्धकके साथ जलानेसे यह ज़ोरोंसे जलने लगता है। इसकी दो प्रकारकी ओषद् कारक प्रक्रियायें होती हैं (१) क्षारीय घोल में, तथा (२) अम्लीय घोल में।

क्षारीय घोलमें – अवकारक पदार्थों द्वारा पहले परमांगनेत हरे मांगनेतमें परिणत होता है और फिर मांगनीज द्विओषिद् अवक्षेपित होकर नीरंग घोल मिलता है।

२ पां माओ$_4$ + २ पां ओउ + उ$_2$ ओ
=२ माओ$_2$ + ४ पां ओउ + ३ ओ

इस प्रकार क्षारीय घोलमें पांशुज पर मांगनेतके दो अणुओंसे ओषजनके तीन परमाणु मुक्त होते हैं। पांशुज पर मांगनेतसे पांशुज नैलिद ओषदीकृत हो कर पांशुज नैलेत देता है।

२ पां मा ओ$_4$ + उ$_2$ओ + पांनै
=पांनै ओ$_3$ + २मा ओ$_2$ + पां ओ उ

अम्लीय घोल में—अम्लीय घोल में अवकरण द्वारा परमांगनेतसे मांगनस लवण बनता है। २ अणु पांशुज परमांगनेतसे ओषजनके ५ परमाणु मुक्त होते हैं।

२ पां मा ओ$_4$ + ३ उ$_2$ ग ओ$_4$
=पां$_2$ गओ$_4$ + २ मा गओ$_4$
+ ३ उ$_2$ओ + ५ ओ

अम्लीय घोलमें पांशुज पर मांगनेत पांशुज नैलिद्में से नैलिन् मुक्त कर देता है—

२ पां माओ$_4$ + १० पां नै + ८उ$_2$ गओ$_4$
=६ पां$_2$ गओ$_4$ + २ मा गओ$_4$
+ ५ नै$_2$ + ८ उ$_2$ ओ

काष्ठिकाम्लमें गन्धकाम्ल डालकर परमांगनेत से आयतन-मापन करने पर काष्ठिकाम्ल कर्बन द्विओषिद्में परिणत हो जाता है—

२ पां मा ओ$_4$ + ५ क$_2$ उ$_2$ओ$_4$ + ३ उ$_2$गओ$_4$
=पां$_2$ गओ$_4$ + २ मा गओ$_4$ + १० कओ$_2$
+ ८ उ$_2$ ओ

इसी प्रकार लोहस लवण लोहिक लवणोंमें परिणत हो जाते हैं तथा नोषित नोषेतोंमें परिवर्त्तित हो जाते हैं।

प्लविन् (Fluorine)

सप्तम समूहके लवण जन यौगिकोंका वर्णन अर्थात् तत्त्वोंका वर्णन करते समय दिया जा चुका है। वहां केवल हरिन्, अरुणिन् और नैलिन् का ही वर्णन दिया गया था और भूलसे प्लविन्का उल्लेख छूट गया था। उसका कुछ वर्णन यहाँ दिया जावेगा। इसके लवण मुख्यतः हरिदोंसे मिलते जुलते हैं। प्लविन् अत्यन्त प्रबल तत्व है और यह उदजनके संसर्गसे अंधेरेमें ही जल उठता है और उदप्लविकाम्ल बन जाता है। यह अम्ल भी बड़ा तीव्र है। कांचके बर्तनों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। अतः इसे कांचकी बोतलमें भी नहीं रख सकते हैं। इस अम्लका विद्युत् विश्लेषण करना कठिन हो जाता है।

मोयसाँ ने प्लविन्को तत्वरूपमें सर्व प्रथम प्राप्त किया यद्यपि अनार्द्र उदप्लविकाम्ल विद्युत्का चालक नहीं है पर यदि इसमें पांशुज उदजन प्लविद, पां उ प्ल$_2$, घोल दिया जाय तो यह अच्छा चालक हो जाता है। यदि परौप्यम् और इन्द्रम् धातु-संकरकी बनी हुई चूलहाकार नलीमें परौप्य-इन्द्रम् के बिजलोद लगाकर विद्युत धारा प्रवाहित कर पांशुज उदजन प्लविदके घोलका विश्लेषण किया जाय तो ऋणोदपर उदजन निकलने लगेगा और धनोद पर प्लविन गैस निकलेगी। मोयसाँने चूलहाकार नलीको दारील हरिद (क्वथ०-२३°) से भरे हुए बर्तनमें ठंडा करके रखा था और ५० वोल्ट अवस्थाभेद की धारा प्रवाहित की थी। परौप्यम्-के बर्तनमें भी पांशुज उदजन प्लविद और उदप्लविकाम्लके घोलका उदविश्लेषण किया जा सकता है। ताम्रके ऊपर ताम्रप्लविदकी एक तह जम जाती है जो फिर अन्दरके ताम्रको उदप्लविकाम्लके प्रभावसे बचाये रखती है।

प्लविन्के गुण—यह हरिद-पीत रंगकी गैस है जो आरम्भमें तो कांचको थोड़ा सा खरोदती है पर बादको उसी कांच पर फिर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है अतः यह कांचके बर्तनोंमें रखी जा सकती है। इसमें उपहरसाम्लके समान तीव्र गन्ध होती है। यह द्रववायु द्वारा द्रवीभूत हो सकती है। पीले द्रवका क्वथनांक १८७° श है। द्रव उदजनमें ठंडा करके डेवार ने इसे ठोस भी कर लिया था। ठोस प्लविन्का द्रवांक—२२३° है। यह नम वायुमें धुँआ देने लगती है और उदप्लविकाम्ल बन जाता है—

उ$_2$ ओ + २प्ल = २ उ प्ल + ओ
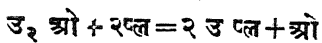
जितने भी तत्व अब तक पाये गये हैं, उनमें प्लविन् सबसे अधिक शक्तिवान् है। यह अरुणिन् और नैलिन्पे संयुक्त होकर क्रमशः रु प्ल$_3$, और नै प्ल$_5$ देती है। उदजनमें यह २५२° पर ही संयुक्त हो जाती है। गन्धक, शशिम्, थलम् कर्बन, टंकम्, पांशुजम् आदि अनेक तत्व इससे अतिशीघ्र संयुक्त हो जाते हैं। सीसम् और लोहेपर इसका शीघ्र प्रभाव पड़ता है। मगनीसम्, मांगनीज, नकलम्, स्फटम् और रजतम् धातुएँ थोड़ा सा गरम करने-पर इससे संयुक्त हो जाती हैं। स्वर्णम् और परौप्यम् पर साधारण तापक्रम पर प्रभाव नहीं पड़ता है पर गरम करने पर वे भी इसके साथ प्लविद देते हैं। इसका परमाणुभार १८.६ है।

उदप्लविकाम्ल—उ$_2$ प्ल$_2$ या उ प्ल-उदजन और प्लविन्के संसर्गसे यह बनता है। पांशुज उदजन प्लविदको गरम करनेसे भी यह बन सकता है।

पां उ प्ल$_2$ = पां प्ल + उ प्ल
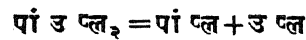
फ्लोरस्पार अर्थात् खटिक प्लविदको सीसम्के भभकेमें ६०% गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे उदप्लविकाम्लकी वाष्पें निकलती हैं जिन्हें सीसेके बर्तनमें पानी लेकर घुला लेना चाहिये। इस प्रकार उदप्लविकाम्लका घोल प्राप्त हो जाता है।

ख प्ल$_2$ + उ$_2$ ग ओ$_4$ = ख ग ओ$_4$ + २ उ प्ल
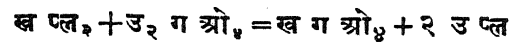
इस अम्लको कांचकी बोतलमें नहीं रखते हैं। मोम या गटापार्चाकी बोतलोंमें इसे रखा जाता है। कांचमें सैन्धकम्, खटिकम् आदिके शैलेत होते हैं। ये शैलेत उदप्लविकाम्लके संसर्गसे शैल प्लविद बन जाते हैं।

शै ओ$_2$ + ४ उ प्ल$_4$ = शै प्ल$_4$ + २ उ$_2$ ओ
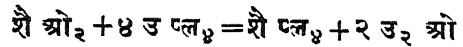
इस प्रकार कांचकी चीजों पर अक्षर लिखने या निशान करानेके लिये इसका उपयोग किया जाता है। कांचके ऊपर पहले मोम लगा देते हैं और सुईसे जो अक्षर लिखना हो. मोम पर खरोद देते हैं। तत्पश्चात् इस खरोदे हुए स्थान पर उदप्लविकाम्ल लगाते हैं। यह अम्ल कांचको खरोद देता है और जहां जहां मोम लगा रहेगा वहाँ इसका कोई प्रभाव न होगा।

उदप्लविकाम्लका बहुधा ४० % घोल मिलता है। अनार्द्र अम्ल नीरंग धुंआदार द्रव है जिसका क्वथनांक १९.४° और घनत्व ०.९८८ है। —१०२° तक ठंडा करके यह ठोस किया जा सकता है। इस अम्लके लवण प्लविद कहलाते हैं।

प्रकाशका परावर्तन

(लेखक श्री० सतीशचन्द्र सक्सेना, बी. एस-सी.)

छले लेखमें परावर्तनके नियम (Laws of reflection) बता चुका हूँ और असली और दिखावटी बिम्बोंकी परिभाषा भी बता चुका हूँ। अब मैं चित्र-द्वारा यह बताना चाहता हूँ कि दिखावटी बिम्ब क्या होता है।

चित्र नं० (१) में मान लीजिये कि एक चपटे दर्पण 'क ख' के आगे एक दीप्त बिन्दु 'ग' है तो 'ग' से चली हुई किरणें दर्पण पर हर दिशासे पड़ेंगी और परावर्तन के नियम अनुसार परावर्तित हो जायंगी।
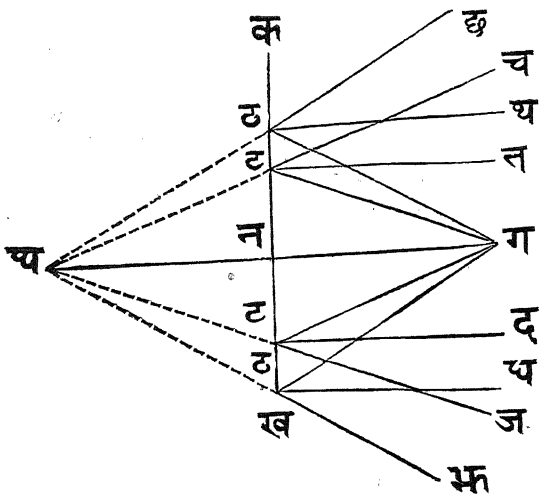
चित्र सं० १

चित्रमें केवल चार ही किरणें खींची गई हैं। किरण 'ग ट' परावर्तित होकर 'ट च' दिशामें और किरण 'ग ठ', 'ठ छ' दिशामें जाती हैं, इसी प्रकार 'ग ट' 'ट ज' दिशामें और 'ग ठ' 'ठ झ' दिशाओंमें जाती हैं। यह सब परावर्तित किरणें 'घ' से आती हुइ दिखाई देती हैं परन्तु वास्तव में 'घ' में हो कर कोई किरण नहीं गुजरती है तो 'घ' को 'ग' का दिखावटी बिम्ब (Virtual image) कहेंगे। दर्पण पर 'गन' लम्ब (normal) खींचिये और 'न घ' को मिला दीजिए। 'ट त' 'ठ थ' 'ट द' 'ध ढ' भी लम्ब (normals) खींचिए तो परावर्त न के नियमके अनुसार कोण∠ ग ट त =कोण∠ त ट च और चूंकि कोण∠ त ट न =कोण∠ त ट क

इस लिये कोण∠ग ट न=कोण∠च ट क =कोण∠ घ ट न

और इस लिये कोण∠ग ट ठ=कोण∠घ ट ठ

और इसी प्रकार कोण∠ठ ग ट=कोण∠ठ घ ट

इस लिये त्रिकोण△ग ट ठ और त्रिकोण△घ ट ठ में

कोण∠ग ट ठ=कोण∠घ ट ठ

कोण∠ग ठ ट=कोण∠घ ठ ट और इस लिये कोण∠ग ठ ट=कोण∠ ठ घ ट और ट ठ लकीर दोनों में है

इसलिये त्रिकोण△ग ट ठ=त्रिकोण△घ ट ठ इस लिये ट घ=ट ग

अब त्रिकोण ट न ग और त्रिकोण ट न घ लीजिए तो कोण∠ ग ट न=कोण<घ ट न

और भुज घ ट= भुज ग ट और भुज 'ट न' दोनों में है तो त्रिकोण△घ ट न=त्रिकोण△ ग न ट

इस लिये कोण∠ट न ग=कोण∠ट न घ =कोण∠ट नघ

परन्तु कोण∠ ट न ग समकोण है तो ट न घ भी समकोण हुआ, इसलिए 'ग न घ' एक ही लकीर हुई जो कि 'क ख' से समकोण बनाती है 'घ' 'न' से उतनी ही दूर है जितनी कि 'ग' 'न' से।

तो इससे मालूम हुआ कि अगर 'ग' से 'क ख' दर्पण पर लम्ब (Normal) 'ग न' खींचा जावे और उसको आगे बढ़ा दिया जावे और 'न' से 'न ध' 'न ग' की बराबर दूरी पर लिया

जावे तो 'घ' 'ग' का बिम्ब होगा अथवा किसी बिन्दु (जो दर्पणके आगे हो) का बिम्ब दर्पण के पीछे उतनी ही दूरी पर होता है जितनी दूरी पर बिन्दु दर्पणके आगे हो और चूंकि हर चीज बिन्दुओं ही से मिल कर ही बनती है इस लिये यह साबित हुआ कि किसी चीज़ का दिखावटी बिम्ब दर्पणके पीछे उतनी ही दूर होता है जितनी दूर वह चीज़ दर्पणके आगे हो आगे दिये हुए प्रयोग द्वारा यह बात सिद्ध हो सकती है।

एक चपटे दर्पणको मेज पर सीधा खड़ा रखिए। उसके पीछे एक लम्बी आलपीन (या ऐसी कोई चीज़) कुछ दूरी पर रख दीजिए और एक वैसी ही दूसरी आलपीनको दर्पणके आगे इस प्रकार रखियेकि इसका बिम्ब जो दर्पणमें दिखाई दे और पीछे रक्खी हुई आलपीनका वह हिस्सा जो दर्पणके ऊपर दिखाई दे रहा हो एक ही लकीर में मालूम होने लगे और इधर उधर आँख ले जाने से दोनों साथ ही साथ जाते मालूम हों अथवा दोनों एक ही स्थानमें हों, अथवा उनमें लम्बन (Parallax) न हो। (यदि इधर उधर आँख ले जानेसे बिम्ब और आलपीन एक ही लकीरमें न मालूम हों बल्कि अलहैदा होते हुए मालूम हों तो उनमें लम्बन होगा) बस जब बिम्ब और आलपीन दोनों एक स्थानमें हों अथवा 'लम्बन' बिलकुल न हो तो आगे रक्खी हुई व पीछे रक्खी हुई आलपीनों की दर्पणसे दूरी नाप लीजिये, नापनेसे, यह दोनों दूरी बराबर निकलेंगी। चूंकि पीछेवाली आलपीन और आगेवालीका बिम्ब दोनों एक ही जगह हैं इसलिये दर्पणसे उसकी दूरी उतनी है जितनी कि बिम्बकी। इससे साफ़ ज़ाहिर हो गया कि बिम्ब दर्पणके पीछे उतनी ही दूर है जितनी कि आलपीन दर्पणके आगे। इसी सिद्धांतसे हम किसी चीज़का बिम्ब चपटे दर्पणमें रेखागणित द्वारा खींच सकते हैं।

चित्र नं० (२) में 'क ख' एक तीर है उसका बिम्ब 'प म' दर्पणमें किस प्रकार बनेगा और कहां
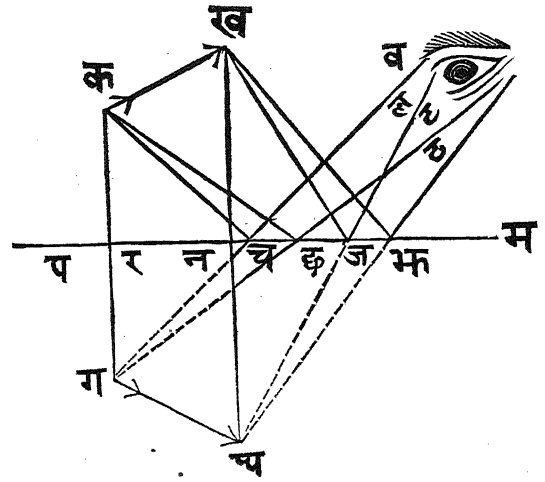
चित्र नं० (२)

होगा ऊपरके सिद्धांत द्वारा मालूम कर सकते हैं। 'क' से दर्पण 'प म' पर 'कर' (normal) लम्ब खींचिए और उसको बढ़ाकर 'र क' की बराबर दूरी नाप लीजिए इस तरह 'ग' बिन्दु जो 'क' का बिम्ब है मालूम हो जायगा। इसी प्रकार 'ख' से 'ख न' (normal) लम्ब खींचिए और उसको बढ़ाकर 'न घ' को 'ख न, की बराबर नाप लीजिए तो 'घ' 'ख' का बिम्ब होगा इसी प्रकार 'क ख' लकीर के और विन्दुओंके बिम्ब 'ग घ' लकीर पर होंगे तो 'ग घ' के मिलाने पर 'ग घ' तीर 'क ख' तीरका बिम्ब खिंच गया। अब यह बात कि यह बिम्ब किस प्रकार बना किरणों द्वारा जो कि चित्रमें खींची गई हैं साफ़ मालूम होता है 'क' से चली हुई 'क च' और 'क छ' किरणें परावर्तित होकर 'च व' 'छ ठ' की दिशामें चलती हैं और 'ग' से आती हुई दिखाई देती हैं। इसी प्रकार 'ख' से चली हुई किरणें 'ख ज', 'ख झ' परावर्तित होकर 'ज ल', 'झ ट' की दिशामें चलती हैं और 'घ' से आती हुई दीख पड़ती है इसीलिये 'ग' 'क' का औ 'घ', 'ख' का बिम्ब हुआ।

बस इसी प्रकार हम किसी चीज़का जो दर्पणके आगे रक्खी हो; बिम्ब खींच सकते और मालूम कर सकते हैं। इसी तरह हम किसी दर्पणकी मुटाई का अनदाज़ा भी लगा सकते हैं उसकी रीति यह है कि दर्पण पर अपनी उंगली रख दीजिए। उंगली का बिम्ब दर्पणमें दिखाई देगा बस चूंकि उंगली दर्पणकी सतह पर रक्खी हुई है इस लिए उसका बिम्ब भी दर्पणकी दूसरी ओरकी सतह पर होगा और इसलिए उन दोनोंके बीचकी दूरी दर्पणकी मुटाई होगी।

यह तो सभी का अनुभव होगा कि जब हम किसी दर्पणके सामने खड़े होते हैं तो हमारा दाहिना हाथ हमारे बिम्बका बायां हाथ मालूम होता है और बायां हाथ दाहिना मालूम होता है इसको बगली उलटाव (lateral inverion) कहते हैं। इसीके कारण यदि हम किसी कागज़ पर कुछ लिखें और उसको सोखते (blotting paper) से छाप दें तो सोखतेको आईनेके सामने रखने से सब छपा हुआ पढ़ा जा सकता है क्योंकि छापनेसे उलटा छपता है और वे शब्द फिर दर्पणसे उलट कर बिलकुल सुलटे हो जाते हैं जैसे कि कागज़ पर लिखे गये थे और इसलिये पढ़े जा सकते हैं इसी कारण छापने वाली मशीन पर अक्षर उलटे लगाये जाते हैं ताकि छप कर अक्षर सुल्टे दिखाई दें।

समानान्तर दर्पण (Parallel mirrors):—

यदि कोई वस्तु (object) समानान्तर दो दर्पणों क और ख के बीचमें रक्खी जावे तो उस के बहुत से बिम्ब आगे पीछे एक ही लकीरमें दिखाई देंगे। चित्र नं० ३ के देखनेसे मालूम होगा कि प का बिम्ब 'क' दर्पणमें $प_1$ पर बनता है और प क=$प_1$क परावर्तित किरण अब $प_1$ से आती हुई मालूम होती हैं और जब वे दूसरे दर्पण 'ख' पर पड़ती हैं तो वह एक और बिम्ब $प_2$ बनाती हैं जैसे कि वह वास्तव ही में $प_2$ से आती हों और '$प_2$ ख=$प_1$ख इसी प्रकार फिर '$प_2$' का बिम्ब 'क' दर्पण में '$प_3$' पर बनता है और तब
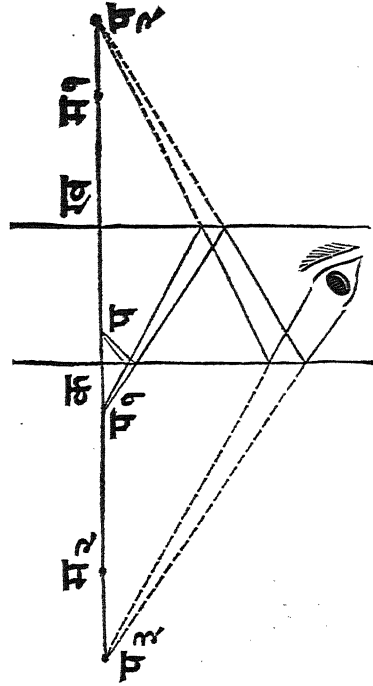
चित्र नं० (३)

$प_3$क=$प_2$क और इसी प्रकार और बहुत से बिम्ब आगे पीछे बनते जाते हैं परन्तु हर एक परावर्तनमें प्रकाशकी तेज़ी (Intensity) कम होती जाती है इसलिये दर्पणमें जो बिम्ब दूर बनते हैं वे दिखाई नहीं देते, केवल आगे ही के कुछ बिम्ब दिखाई देते हैं। एक और दूसरी श्रेणी (Series) बिम्बोंकी ख दर्पणमें पहिला परावर्तन होकर शुरू होती है इस श्रेणका पहिला बिम्ब $म_1$ है और म'ख=पख और दूसरा बिम्ब $म_2$ है जहाँ कि $म_1$क=$म_2$क और इसी प्रकार और बहुत से बिम्ब बनेंगे चित्रमें वह किरणें खींची गई हैं जिनसे '$प_3$' बिम्ब बनता है और दिखाई देता है। 'प' से किरणें चल कर 'क' दर्पणसे परा-

वर्तित होकर $प_1$ से आती मालूम होती हैं और यह 'ख' से फिर परावर्तित होकर '$प_3$' से आती दिखाई देती हैं।

(Inclined Mirrors) कोण बनाते हुए चपटे दर्पणः—मान लीजिए कि क ख और क ग द चपटे दर्पण हैं जो आपसमें समकोण बनाते हैं। और प एक वस्तु (Object) है [देखो चित्र नं० (४)] जो उनके बीचमें रक्खी है। यहां पर समानान्तर दर्पणोंकी भांति अनगिनती बिम्ब नहीं बनते बल्कि केवल तीन ही बनते हैं, हां बिम्बोंकी दो

चित्र सं० ४
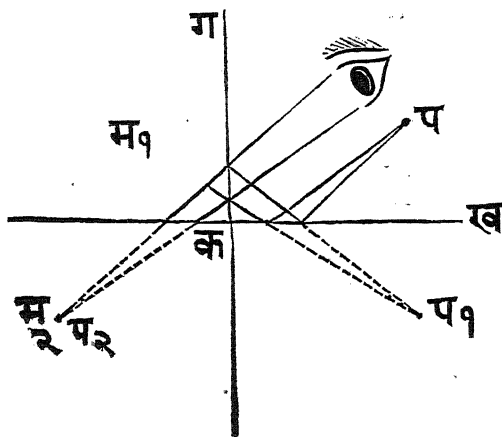
श्रेणियां (Series) अवश्य होती हैं। 'प' का बिम्ब 'क ख' दर्पणमें $प_1$ पर बनता है और $प_1$ से आती हुई दिखाई देती किरणें क ग दर्पण से परावर्तित होकर $प_2$ पर बिम्ब बनाती हैं परन्तु वह किरणें जो $प_2$ से आती दिखाई देंगी दोनों दर्पणों 'क ख' और 'क ग' के पीछे पड़ती है इसलिये उनसे और कोई बिम्ब नहीं बनेगा और इस श्रेणी (Series) के $प_1$ और $प_2$ दो ही बिम्ब होंगे इसी प्रकार दूसरी श्रेणीके बिम्ब $म_1$ और $म_2$ होंगे $म_1$ 'क ग' दर्पणसे बनता है और $म_2$ क ख दर्पणसे और चूंकि $म_2$ से आती दिखाई देती हुई किरणें दोनों दर्पणोंके पीछे पड़ती हैं इसलिए इस श्रेणी (series) का भी और तीसरा बिम्ब नहीं होगा परन्तु $म_2$ और $प_2$ एक ही जगह पर बनेंगे। और उनमेंसे केवल एक ही बिम्ब एक वक्तमें दिखाई देगा क्योंकि मान लीजिये कि एक कोणके किसी भागमें हमारी आंख है तो चित्रमें देखनेसे साफ मालूम हो जायगा कि यदि $म_2$ से किरणें आंख तक खींची जावें और जहां पर यह दर्पणको काटती हैं, वहांसे फिर $प_1$ और $म_1$ तक किरण खींची जावें तो $म_1$ से चली हुई किरणें आंख तक नहीं पहुँचेगी। इस लिए बिम्ब $प_2$ ही दिखाई पड़ेगा, $म_2$ नहीं। $म_2$ देखनेके लिए आंख को ∠प क ख कोणमें रखना होगा तब $प_2$ बिम्ब नहीं दिखाई देगा इस तरह पर केवल तीन ही बिम्ब दिखाई देंगे।

(क्रमशः)

→ प्रयागकी विज्ञान परिषत्का मुख पत्र ←

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफेसर ब्रजराज,

एम० ए०, बी० एस-सी०, एल० एल० बी०

श्रीयुत सत्यप्रकाश,

एम० एस-सी० विशारद,

भाग २८

तुला-मीन १९८५

प्रकाशक

विज्ञान परिषत् प्रयाग।

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

औद्योगिक रसायन

जीवन चरित्र

ज्योतिष

भौतिक विज्ञान

रसायन

बनस्पति शास्त्र

वैद्यक शास्त्र

मिश्रित

आवश्यक सूचना

जिन सज्जनोंका चन्दा इस अंकके साथ समाप्त हो गया उनसे प्रार्थना है कि आगामी वर्ष का चन्दा ३) मनीआर्डरसे भेज दें। इसमें उनकी बचत ही न होगी बल्कि जल्दी अंक भी मिलते रहेंगे। यदि उनको ग्राहक रहना स्वीकार न हो तो इसकी सूचना कार्यालय को एक सप्ताह के अन्दर दे दें। इसमें विज्ञान परिषद् को ≈)। की हानि न उठानी पड़ेगी।

यदि इस अंकके पहुँचने पर एक सप्ताह भीतर अपना चन्दा अथवा किसी प्रकार की सूचना कार्यालय में न भेज देंगे, तो उनके नाम का अगला अंक ३≈) की वी० पी० द्वारा भेजा जायगा जिसे वापस करने से 'विज्ञान' की स्थिति में बड़ा धक्का पहुँचेगा।

आशा है कि सहृदय पाठक विज्ञान के प्रति पूर्ववत् सहानुभूति दिखाते रहेंगे।

मैनेजर,

'विज्ञान' प्रयाग।